
220.91
3 IV

॥ श्रीः ॥

हरिदास-संस्कृत-ग्रन्थमाला



॥ श्रीः ॥

श्रीशार्ङ्गधराचार्यविरचिता

शार्ङ्गधरसंहिता

श्रीलक्ष्मीपतित्रिपाठिना कृतया

लक्ष्मी-नामिकया विषमस्थलटिप्पन्या परिशिष्टत्रयेण

च विभूषिता

आयुर्वेदाचार्य-श्रीप्रयागदत्तशर्मणा

कृतया

सुबोधिनी-नामिकया भाषाटीकया संयुता ।

सा च

व्राजमोहनिना भिषग्रत-श्रीब्रह्मशंकरमिश्रशास्त्रिणा

सम्पादिता ।



प्रकाशकः—

जयकृष्णदास-हरिदास गुप्तः-

चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस,

बनारस सिटी ।

वि० संवत् १९९८] —— [ई० सन् १९४२

प्राप्तिस्थानम्—

चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय,

बनारस सिटी ।

श्रीगौरकृष्णः शरणं ममास्तु ।

सम्पादकीय वक्तव्य—

अयि आयुर्वेदप्रेमिविद्वज्जन तथा विद्यार्थिजन !

आज बड़े हर्ष की बात है कि जगदीश्वर की परम अनुकम्पा से आप लोगों के संमुख आयुर्वेद के लघुत्रयी में प्रसिद्ध इस "शार्ङ्गधरसंहिता" ग्रन्थ को विस्तृत भाषा टीका, विमर्श, टिप्पनी एवम् परिशिष्ट के साथ विद्यार्थी तथा वैद्यजनों के लिये अत्युपयोगी समझकर इसका यथामति सम्पादन कर उपस्थित हो रहा हूं ।

आयुर्वेद के विषय में अब सभी लोग स्वीकार करने लगे कि–यह चिकित्सा के सभी अङ्गों से परिपूर्ण है और वैज्ञानिक है । अतः इसके विषय में अधिक न लिखकर मैं प्रस्तुत पुस्तक में वर्णित विषयों का संक्षेप में वर्णन करता हूं ।

प्रस्तुत पुस्तक तीन खण्डों में विभक्त है, जिसके **प्रथम खण्ड** में ७ अध्याय, **द्वितीय खण्ड** में १२ अध्याय, **तृतीय खण्ड** में १३ अध्याय हैं । और सम्पूण ग्रन्थ २६०० श्लोकों में है ।

जिसमें प्रथम खण्ड के **परिभाषाकथन** नामक **प्रथम** अध्याय में **मागध** तथा **कालिङ्ग** मान एवम् औषध ग्रहण–सम्बन्धी परिभाषाओं का वर्णन है, जिसकी आवश्यकता सर्वप्रथम चिकित्सकों को औषध–प्रदान में जानने की पड़ती है ।

भैषज्याख्यानक नाम द्वितीय अध्याय में औषधभक्षण–काल तथा द्रव्यों में स्थित रस, गुण, वीर्य, विपाक और शक्ति का वर्णन एवम् वातादि दोषों के सञ्चय, कोप, उपशम होने का वर्णन है ।

नाडीपरीक्षाऽऽदिविधि नामक **तृतीय** अध्याय में नाडी देखने की विधि, वैद्य को बुलाने के लिये आये हुये दूत की परीक्षा, उसके द्वारा शुभाशुभ–निर्णय, स्वप्न द्वारा शुभाशुभ की परीक्षा का उल्लेख है ।

दीपनपाचनादि कथन नामक चतुर्थ अध्याय में दीपन, पाचन, दीपनपाचन, संशमन, अनुलोमन, स्रंसन, भेदन, रेचन, वमन, संशोधन, छेदन, लेखन, ग्राहि, स्तम्भन, रसायन, वाजीकरण, वीर्यबर्द्धक, शुक्रजनक, शुक्ररेचक, सूक्ष्म, व्यवायि, विकाशि, मदकारि, प्राणहर, प्रमाथि तथा अभिष्यन्दि द्रव्यों का लक्षण वर्णित है ।

कलाऽऽदिकाख्यान नामक **पञ्चम** अध्याय में शरीर स्थित ७ कलायें,

७ आशय, ७ धातुयें, ७ मल, ७ उपधातुयें, ७ त्वचायें, ३ दोष, ९०० स्नायुयें, २१० सन्धियाँ, ३०० हड्डियाँ, १०७ मर्म, ७०० शिरायें, २४ धमनियाँ, ५०० मांसपेशियां (स्त्रियों की ५२० मांसपेशियां), १६ कण्डरायें, १० रन्ध्र (स्त्रियों के १३ रन्ध्र (छिद्र)), फुप्फुस, प्लीहा, यकृत् , क्लोम, वृक्क, वृषण, लिङ्ग, हृदय, प्राणवायु का कार्य, आयु तथा मृत्यु का स्वरूप, वैद्यों के लिये कर्त्तव्योपदेश, तथा सृष्टिक्रम वर्णित है।

आहारादिगतिकथन नामक **षष्ठ** अध्याय में आहार के पाकक्रम का निर्देश, आहार के रस से रक्तादि धातुओं के बनने का क्रम, गर्भोत्पत्तिनिर्देश, स्त्री–पुत्रादि सन्तति होने का हेतु निर्देश, बालक से वृद्ध तक रोगियों की औषध मात्रा का निर्देश, वातादिप्रकृतिक पुरुषों के लक्षण, निद्रा, मूर्च्छा, भ्रान्ति, तन्द्रा, ग्लानि, आलस्य, जृम्भा, छिक्का, उद्गार इनके लक्षण वर्णित हैं।

रोगगणना नामक **सप्तम** अध्याय में ज्वरादि रोगों की भेदों के साथ संक्षेप से केवल गणना मात्र है।

द्वितीय खण्ड के **स्वरसादिकल्पना** नामक प्रथम अध्याय में ओषधियों के स्वरस, तथा पुटपाक बनाने के नियम और साथ साथ विविध रोगों पर उनके प्रयोग भी सुचारु रूप से वर्णित हैं।

क्वाथकल्पना नामक **द्वितीय** अध्याय में क्वाथ बनाने के नियम एवं रोगों पर उनके विविध प्रयोग, और क्वाथ के भेद प्रमथ्या, यवागू, यूष, पान (पीने तथा भात आदि बनाने योग्य जल), उष्णोदक, क्षीरपाक, कृशरा, विलेपी, पेया, भात, मण्ड बनाने की विधि तथा उनके प्रयोगों का वर्णन है।

फाण्टादिकल्पना नामक **तृतीय** अध्याय में फाण्ट तथा मन्थ बनाने की विधि तथा रोगों पर उनके प्रयोग वर्णित हैं।

हिमकल्पना नामक **चतुर्थ** अध्याय में हिमनिर्माणविधि तथा उनके प्रयोगों का उल्लेख है।

कल्ककल्पना नामक **पञ्चम** अध्याय में, कल्क बनाने की विधि तथा उनके प्रयोग कहे हुये हैं।

चूर्णकल्पना नामक **षष्ठ** अध्याय में चूर्ण के लक्षण तथा उनमें गुडादि छोड़ने के मान, चूर्ण के साथ अनुपान का मान, अनुपान की आवश्यकता, चूर्ण में

भावना के लिये द्रव पदार्थ का मान तथा चूर्ण के विविध रोगों पर प्रयोग वर्णित हैं।

वटककल्पना नामक **सप्तम** अध्याय में वटक (गोली) के भेद और बनाने की विधि तथा उनमें गुड़, शर्करा आदि डालने का मान, एवम् रोगों पर वटीके विविध प्रयोग उल्लिखित हैं।

अवलेहकल्पना नामक **अष्टम** अध्याय में अवलेह के लक्षण, नाम तथा मात्रा का निर्देश, अनुक्तस्थल में अवलेह में चीनी आदि डालने का मान। अवलेह के सिद्धिलक्षण तथा अनुमान एवम् विविध रोगों पर प्रयोग वर्णित हैं।

स्नेहकल्पना नामक **नवम** अध्याय में घृत तथा तैल बनाने की विधियों तथा उनके प्रयोगों का वर्णन है।

आसवारिष्टादिसन्धानकल्पना नामक **दशम** अध्याय में आसव तथा अरिष्ट के लक्षण तथा उनमें जलादि डालने के मान, सीधु, सुरा, प्रसन्ना आदि मद्यके भेदों के लक्षण, वारुणी, शुक्त, चुक्र, गुडशुक्त, इक्षुशुक्त तथा द्राक्षाशुक्त, तुषाम्बु, सौवीर, काञ्जिक, सण्डाकी के लक्षण, आसवादिकों के विविध प्रयोग वर्णित हैं।

धातुशोधनमारणकल्पना नामक **एकादश** अध्याय में स्वर्णादिक धातुओं की संख्या तथा नाम और उनके शोधनेकी विधि, सोना, चांदी, तांबा, पीतल, कांसा, सीसा, रांगा, लोहा इनके शोधन तथा मारण की विधियां, माक्षिक (सोनामाखी, रूपामाखी), नीलाथोथा, अभ्रक, काला सुरमा, मैनसिल, हरताल, खपरिआ इन उपधातुओं के शोधन-मारण की विधि, हीरा, वैक्रान्त (तुरमली), मणियों (सूर्यकान्त, चन्द्रकान्त, माणिक्य, नीलमणि, वैदूर्य, पुखराज, गारुड, पन्ना आदि), मोती तथा मूङ्गा आदिकों के शोधन-मारण की विधि, शिलाजीत शोधनविधि मण्डूरशोधन-मारणविधि, क्षारनिर्माणविधि वर्णित हैं।

रसादिशोधनमारणकल्पना नामक **द्वादश** अध्याय में पारा शोधन विधि, पारा के स्वेदन, मर्द्दन, मूर्च्छन इन ३ संस्कारों की विधियां, गन्धक तथा हिंगुल का शोधनविधि, हिंगुल से पारा निकालने की विधि, पारद के मुख करने की विधियां, गन्धक जारणविधि, पारद मारण की विधियां, ज्वरादिक रोगों पर रसों के प्रयोग, जयपाल (जमालगोटा) तथा विषशोधन की विधि ये सब वर्णित हैं।

तृतीय (उत्तर) खण्ड के **स्नेहपानविधि** नामक **प्रथम** अध्याय में स्नेह के भेद और उसके पान की विधि तथा पान की मात्रा आदि का विशद विवेचन है।

स्वेदविधि नामक **द्वितीय** अध्याय में स्वेद के भेद, दोषभेद से स्वेद प्रयोग, तापस्वेद, ऊष्मस्वेद, उपनाहस्वेद, द्रवस्वेद इनके लक्षण आदि का निर्देश है।

वमनविधि नामक **तृतीय** अध्याय में वमन लेने का समय, वमन के योग्य रोगी तथा रोग का एवं वमनानर्ह जनों आदि का विशद विवेचन के साथ वमनसम्बन्धी विधियों का उल्लेख है।

विरेचनविधि नामक **चतुर्थ** अध्याय में विरेचन लेने के योग्य व्यक्ति तथा समय आदि का निर्देश करते हुये विरेचक औषधों का विशद वर्णन है। और अन्तमें अधिक विरेचन होने पर ओषधि तथा पथ्य का भी वर्णन है।

वस्तिविधि नामक **पञ्चम** अध्याय में वस्ति के भेद तथा उनके लक्षण, मात्रा, योग्य रोगी आदि के वर्णन के साथ २ वस्तिविधि का सुन्दर उल्लेख है। अनुवासनवस्ति द्वारा लिये हुये स्नेह के बाहर न आने पर उसकी चिकित्सा आदि का भी समुचित वर्णन है। और उससे होने वाले रोगों का वर्णन तथा पथ्य का उल्लेख हैं।

निरूहवस्तिविधि नामक **षष्ठ** अध्याय में निरूह वस्ति के भेद तथा उसके लेने की विधियों का एवम् उत्क्लेशन, दोषहर, शमन, लेखन, बृंहण, पिच्छिल, मधुतैलिक, दीपन, युक्तरथ और सिद्ध नामक वस्तियों को विधियों का तथा पथ्यापथ्य का वर्णन है।

उत्तरवस्तिविधि नामक **सप्तम** अध्याय में उत्तरवस्तिसम्बन्धी सम्पूर्ण विषयों का सुन्दर वर्णन है।

नस्यविधि नामक **अष्टम** अध्याय में नस्य के भेद, नस्य लेने का काल, तथा उसके अयोग्य व्यक्ति आदिका एवम् वैरेचन, शिरोविरेचन, अवपीडन, प्रधमन, बृंहण नस्य की विधियों का वर्णन तथा रोगों पर उनके विविध प्रयोग आदि वर्णित हैं।

धूमपानविधि नामक **नवम** अध्याय में धूम के शमन, बृंहण, रेचन, कासहा, वामन तथा व्रणधूपन भेदों का समुचित विशद वर्णन है। एवम् धूमनलिका तथा ईषिका बनाने की विधि आदि वर्णित हैं।

गण्डूष-कवल-प्रतिसारणविधि नामक **दशम** अध्याय में **गण्डूष** तथा **कवल** के स्नैहिक, शमन, शोधन और रोपण नामक ४ भेदों का समुचित वर्णन तथा उनके रोगों पर प्रयोग आदि भी वर्णित हैं।

लेपादिविधि नामक **एकादश** अध्याय में लेपके नाम तथा दोषघ्न, विषहा, वर्ण्य नामक ३ भेदों का वर्णन तथा रोगों पर उनके विविध प्रयोग वर्णित हैं। एवम् **मूर्धतैल** के अभ्यङ्ग, परिषेक, पिचु, बस्ति इन ४ भेदों का वर्णन, तथा कर्णपूरणविधि, कर्णरोगपर विविध प्रयोग आदि वर्णित हैं।

शोणितस्रावविधि नामक **द्वादश** अध्याय में शोणित स्राव का मान, समय, निकले हुये रक्त के वातादि दूषित होने पर विविध लक्षण आदि विषय, अग्निदाहसाध्य रोग, अत्यन्त रक्तस्राव से होने वाली हानियां तथा क्षीण होने पर पथ्यादि का समुचित वर्णन है।

नेत्रप्रसादनविधि नामक **त्रयोदश** अध्याय में **नेत्रप्रसादन** के सेक आश्च्योतन, पिण्डी, बिडाल, तर्पण, पुटपाक, अञ्जन नामक भेदों का सविधि वर्णन तथा उनके विविध रोगों पर विविध प्रयोग भी वर्णित हैं। एवम् पुटपाक तथा अञ्जन के स्नेहन, लेखन, रोपण नामक भेदों का तथा अञ्जन के गुटिका, रस, चूर्ण नामक ३ भेदों का भी सविधि रोगों पर विविध प्रयोगों के साथ उचित वर्णन है, और अन्तमें दृष्टिवर्द्धक उपाय का उल्लेख होकर ग्रन्थ समाप्त हुआ है।

उसके बाद ३३ अधिकारों में समाप्त होनेवाले **प्रथम परिशिष्ट** में शार्ङ्गधर संहिता में अनुक्त रोगों का निदान–लक्षण–चिकित्सा का उल्लेख है। जो कि चिकित्सकों को विशेष उपयुक्त है जिनके नाम ये हैं–यकृद्रोग, यकृद्विद्रधि, **हृद्रोग** में आवरणिक–कौष्ठिक—पृथुक—आयामिका—परिक्षय—मेदःसूत्र—विक्षेपिका, उरस्तोय, **औपसर्गिकोपदंश** में–गौणोपदंश–विषोपदंश, **आगन्तुजपक्षाघात** में पारदपक्षाघात–नागपक्षाघात, गदोद्वेग, शैशवसंन्यास, योषाऽपस्मार, तत्त्वोन्माद, मस्तिष्कस्नायुविकार, **स्नायुशूल** में–ऊर्ध्वभेद–अर्द्धभेद–अधोभेद, ताण्डवरोग, क्लोमरोग, वृक्कामय, औपसर्गिक मेह, शीर्षाम्बु रोग, मस्तिष्कवेपन, मस्तिष्कचयापचय, अंशुघात, **प्रजाजननबाधक स्त्रीरोग** में–रक्तमाद्री–षष्ठी–अङ्कुर–जलकुमारक, योनिकण्डू, योन्याक्षेप, जरायुरोग, अण्डाधार गद, ओजोमेह, योन्यङ्कुरवृद्धि, लसिकामेह, सोमरोग, **शातातपोक्त पापज रोगकथन** में महापापोद्भव रोग–उपपापोद्भवरोग–पापोद्भवरोग–अतिपापोद्भवरोग, ध्वजभङ्ग, ज्वरातिसार, **विविधरोगों** में–वातबलासकज्वर–प्रलेपकज्वर–अर्द्धाङ्गज्वर–रसगत ज्वर–रक्तगत ज्वर–मांसगत ज्वर–मेदो गतज्वर–अस्थिग-

तज्वर–मज्जगत ज्वर–शुक्रगत ज्वर–प्राकृत तथा विकृत ज्वर–अन्तर्वेग तथा बहिर्वेग ज्वर–आमज्वर–पच्यमान ज्वर–अभिन्यास ज्वर–जलसंत्रास–अण्डह्रास–नाभिभ्रंश–शुक्रदोष–आर्त्तव दोष–स्नायुक रोग–फिरङ्गरोग–पारद रोग–शीतला–बृहती शीतला–कोद्रवा–पाणिसहा–सर्षपिका–राजिका–मसूरिका–उष्णवात–ब्रध्न–कालज्वर–ग्रन्थिकज्वर–मन्थर ज्वर–दण्डक ज्वर–रसाज्ञान, सङ्क्रामक तरुण शोथ विशेष ।

नेत्रादि परीक्षा में नेत्र जिह्वा–मूत्र–पुरीष इनकी परीक्षा वर्णित है ।

द्वितीय परिशिष्ट में शार्ङ्गधरसंहिता तथा प्रथम परिशिष्ट में उक्त रोगों का पथ्यापथ्य है जिनके नाम ये हैं—ज्वर–अतीसार–ग्रहणीरोग–अजीर्ण–अग्निमान्द्य–अर्श–क्रिमिरोग–कामला–हलीमक–पाण्डुरोग–रक्तपित्त–कासरोग–यक्ष्मा–हिक्का–श्वास–अरोचक–छर्दिरोग–स्वरभेद–तृष्णारोग–मदात्यय–दाह–उन्माद–अपस्मार–आमवात–शूलरोग–उदावर्त्त–आनाह–हृद्रोग–उदररोग–गुल्म–मूत्राघात–मूत्रकृच्छ्र–अश्मरी–प्रमेह–सोमरोग–स्थौल्य–शोथरोग–वृद्धिरोग–गलगण्डादिरोग–अर्बुदरोग–श्लीपदरोग–विद्रधिव्रणरोग–व्रणशोथ–आगन्तुजव्रण–भग्न–नाडीव्रण–भगन्दर–उपदंश–शूकदोष–कुष्ठ–क्षुद्ररोग–विस्फोट–मसूरिका–विसर्प–शीतपित्तादिरोग–उदर्दकोठादिरोग–अम्लपित्त–वातरक्त–वातरोग–ऊरुस्तम्भ–वेपथुवात–अचलवात–खालित्य–खञ्जनिका–मुखरोग–दन्तरोग–गलरोग–कर्णरोग–नासारोग–शिरोरोग–नेत्ररोग–ध्वजभङ्ग–वाजीकरण–शुक्रमेह–प्रदर–योनिरोग–गर्भिणी–स्तनरोग–सूतिकारोग–बालरोग–विषरोग । **प्रथमपरिशिष्टोक्त रोगों में**–प्लीहा–यकृद्रोग–उरस्तोय–गदोद्वेग–शैशवसन्न्यास–योषाऽपस्मार–तत्त्वोन्माद–स्नायुशूल–ताण्डवरोग–क्लोमरोग–वृक्कामय–औपसर्गिकमेह–स्मरोन्माद–शीर्षाम्बुरोग–मस्तिष्कचयापचय–अंशुघात–बाधक–योनिकण्डू–योन्याक्षेप–जरायुरोग–अण्डाधार–ओजोमेह–लसिकामेह–पारदविकार ।

तृतीय परिशिष्ट में शार्ङ्गधरसंहिता के चूर्ण–वटी–घृत–तैल आदिक ओषधियों का एकत्र अपने २ रोगानुसार समावेश किया गया है जैसे वशीकरण के लिये **चन्दनादि तैल** तथा **वचाऽऽदि लेप** दो ओषधियां शार्ङ्गधर में हैं जिनका पृष्ठ उनके सामने अङ्कित है । और पाठकों की सुविधा के लिये रोगों का उल्लेख भी अकारादिक्रम से किया गया है ।

ग्रन्थ के आरंभ में विषयसूची तथा वर्णसूची भी दे दी गई है।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि-इसकी चिकित्सा वस्तुतः सद्यःफलप्रद है तथा सङ्कलन अत्युत्तम है अत एव इसका प्रचार होने से इसे लघुत्रयी में स्थान मिला, लघुत्रयीसे भावप्रकाश का निघण्टु भाग-माधवनिदान, शार्ङ्गधर का बोध होता है। बृहत्त्रयी से चरक-सुश्रुत-वाग्भट समझा जाता है। शार्ङ्गधर जी ने विशेष ध्यान चिकित्सा की ओर देकर इसे लिखा है अतः निघण्टु का स्पर्श तक नहीं किया और निदान में केवल संख्या निर्देश कर दिया है तथा शारीर में भी अस्थि आदि की गणना मात्र की है क्योंकि ये स्वतन्त्र विषय होने से पृथक् ग्रन्थ में निबद्ध हैं इन्हें अन्यत्र से जानना ही उचित है।

ग्रन्थकार का परिचय—पं० कालीप्रसाद शास्त्री द्वारा **विद्वद्वृत्त** के द्वितीय खण्ड के देखने से पता चलता है कि शार्ङ्गधर के पूर्वज अजमेर के रहने वाले थे। जिनमें डिङ्गलभाषा के सुप्रसिद्ध कवि **पृथ्वीराज रासौ** के कर्त्ता **चन्दबरदाई** प्रसिद्ध थे। शार्ङ्गधर के पितामह राघवदेव थे, यही संन्यास लेने के पश्चात् **राघवचैतन्य** के नाम से विख्यात सुप्रसिद्ध **महागणपतिस्तोत्र** के कर्त्ता हुये। यह सुप्रसिद्ध हठी **रणथम्भोर** नरेश हमीरदेव के गुरु थे हमीरदेव का समय १३९५ ख्रिस्ताब्द का उत्तरार्द्ध है। अत एव राघवचैतन्य का यही समय निश्चित है। **शार्ङ्गधरपद्धति** और **शार्ङ्गधरसंहिता** यह दो ग्रन्थ **शार्ङ्गधर** के पाये जाते हैं। **विद्वद्वृत्तकार** का कथन है कि शार्ङ्गधर **हमीरदेव** की सभा में कवि और वैद्यों में प्रधान थे। इससे ज्ञात होता है कि इनके पितामह **राघवचैतन्य** ने चिरायुष्य प्राप्त किया था। शार्ङ्गधर ख्रिस्त की १४ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में विद्यमान थे-यद्यपि **विद्वद्वृत्तकार** ने "अयं भाटवंशे समुत्पन्नः" लिखकर **शार्ङ्गधर** को उत्तर भारतीय "भाट" समझा है, जो राजा-रईसों को हिन्दी की कवितायें सुनाकर जीविका चलाते हैं। पर चन्दबरदाई जैसे योद्धा तथा पृथ्वीराज के अभिन्न मित्र और हमीरदेव के गुरु राघवचैतन्य जैसे संस्कृत भाषा के व्यापक विद्वान् में "भाट" होने की कल्पना मुझे कुछ प्रामाणिक नहीं ज्ञात होती है। इसलिये शार्ङ्गधर मेवाड़ प्रान्तीय "भट्ट" थे। जो उस प्रान्त के प्रतिष्ठित ब्राह्मणों की एक शाखा है, और जिसका सम्बन्ध **गुजरात** के **औदीच्यों** से है। जो **कान्यकुब्ज-इतिहास** के अनुसार कान्यकुब्ज ब्राह्मणों में

भुक्त माने गये हैं। शार्ङ्गधर-कवि और वैद्य थे, यही बात नहीं, वे एक अच्छे शास्त्रज्ञ थे जिसका प्रमाण उनके ग्रन्थों के देखने से प्राप्त होता है। **शार्ङ्गधर पद्धति** में इन्होंने अपने पितामह, अन्य विद्वानों और कवियों के जो श्लोक संगृहीत किये हैं उन्हें प्रकरणबद्ध कर देना साधारण विद्वत्ता का काम नहीं है।

इसकी टीका यद्यपि अन्यत्र छपी है तथापि कोई स्वल्पमूल्यसुलभ वैद्यविद्याऽर्थि जनों के लिये उपयोगी टीका से युक्त संस्करण न मिलने से धनहीन जनों की सुविधा के लिये **पं० प्रयागदत्त आयुर्वेदाचार्यजी** ने सुबोधिनी टीका लिखी है। जिसमें श्लोकों की भाषा तथा उसके ऊपर यथास्थल विमर्श भी दिया है। **पं० लक्ष्मीपतित्रिपाठी** सरयूपारीण पङ्क्तिपावन आयुर्वेदमनीषी ने 'लक्ष्मी' नामिका विषमस्थल टिप्पनी में निदानादि के ऊपर रोगों के लक्षण आदि आवश्यक विषय दे दिये हैं। और परिशिष्ट भी देकर इस संस्करण को विशिष्ट कर दिया है।

इस संस्करण से इस पुस्तक को लेकर चिकित्सकवृन्द निदानविषयक सन्देह निवृत्त कर सकते हैं अत एव आशा है कि—इस ग्रन्थ को विद्यार्थी तथा वैद्यवृन्द अपनाकर प्रकाशक के उत्साह को बढ़ावेगें।

धन्यवाद—इस ग्रन्थ की पूर्त्ति में सर्व प्रथम जगदीश्वर श्री आनन्दकन्द वृन्दावनविहारी मुरारि भगवान् को कोटिशः धन्यवाद है कि जिनकी दया से इसकी पूर्ति हुई। तदनन्तर विषयसूची तथा वर्णसूची-एवम् तृतीय परिशिष्ट के लिखने में सहायक पं० श्रीरघुराजमिश्र न्यायशास्त्री तथा पं० रामविहारी जी व्याकरण-शास्त्री धन्यवाद के पात्र हैं।

क्षमाप्रार्थना-इस ग्रन्थ के सम्पादन समय में मेरी पूज्या माता श्रीबान्धवीदेवी का काशीलाभ होजाने एवम् स्वयं रोगाक्रान्त होजाने से तथा शीघ्रतावश, भ्रान्तिवश किं वा अज्ञानवश जो कुछ त्रुटियां रहगई हैं उनके लिये मैं विज्ञवृन्द के संमुख क्षमाप्रार्थी हूं और वे कृपाकर अपनी त्रुटिओं की भांति समझ कर सुधार कर लेवें। किम्बहुना विज्ञेष्विति शम्।

श्रीराधारमणमन्दिरम्
बुलानाला काशी
महाशिवरात्रि
सं० १९९८ वै०

आयुर्वेदविदां विनेयतमो व्राजमोहनि-भिषग्रत्न-
ब्रह्मशङ्करमिश्र शास्त्री
पङ्क्तिपावन-माध्वः।

श्रीशार्ङ्गधरसंहिताया विषयानुक्रमणिका ।

पूर्वखण्डे प्रथमाऽध्यायः ।

औषधपरिभाषा ।

अथ द्वितीयोऽध्यायः ।

अथ सप्तमोऽध्यायः।

अथोत्तरखण्डम्

तत्र प्रथमोऽध्यायः ।

अथ द्वादशोऽध्यायः ।

शोणितस्रावविधिः ।

३ शा

इति ।

श्रीगणेशाय नमः ।

श्रीशार्ङ्गधरसंहिताया वर्णानुक्रमणिका

इति शम् ।



श्री धन्वन्तरये नमः ।

भिषग्वरेण श्रीलश्रीशार्ङ्गधराचार्येण रचिता—

शार्ङ्गधरसंहिता

'लक्ष्मी' टिप्पन्युपेतया 'सुबोधिनी' नामिकया भाषाटीकया समेता ।

पूर्वखण्डे प्रथमोऽध्यायः ।

मङ्गलाचरणम्—

श्रियं स दद्याद्भवतां पुरारिर्यदङ्गतेजःप्रसरे भवानी ।
विराजते निर्मलचन्द्रिकायां महौषधीव ज्वलिता हिमाद्रौ ॥ १ ॥

टीकाकर्त्तुर्मङ्गलाचरणम्—

प्रयागदत्ताशुपुमर्थमीश्वरं प्रयागदत्ताह्वभिषक् प्रणम्य तम् ।
प्रयागदत्तात्मरतिर्यथामति प्रयागदत्ताऽऽप्तचिकित्सकागमः ॥ १ ॥
तनोत्ययं शार्ङ्गधराख्यसंहितो-परि स्वयं शार्ङ्गधरानुकम्पया ।
निगूढभावार्थसुबोधिनीं शुभां स्वभाषया नाम सुबोधिनीमिमाम् ॥ २ ॥

जिस प्रकार शुभ्र हिमालय पर्वत पर चन्द्रमा की छिटकी हुई निर्मल चन्द्रिका में महौषधियां चमकती हुई—(संजीवनी आदि महौषधियाँ रात को चमकती रहती हैं) शोभा को प्राप्त होती हैं, उस तरह जिन पुरारि महादेव जी के अङ्ग से निकलते हुए शुभ्र कान्ति में उनके अर्धाङ्ग पर देदीप्यमान पार्वती जी शोभा पाती हैं, वे श्री महादेव जी आपको (वैद्यों को) श्री संपत्ति (१)प्रदान करें ॥ १ ॥

टिप्पनीकर्त्तुर्मङ्गलाचरणम्—

प्रणम्य लक्ष्मीपतिपादपङ्कजं त्रिपाठिलक्ष्मीपतिपङ्क्तिपावनैः ।
परार्थलक्ष्मीपतिरत्र तन्यतेऽद्भुतैव लक्ष्मीर्ऽपतिता हृदभ्रतः ॥ १ ॥
अधिशार्ङ्गधरं भव्य-विषमस्थलटिप्पनी ।
भाषामयीयमुदिता लक्ष्मीरस्तु सतां मुदे ॥ २ ॥

(१) प्रायः पहले से ही ऐसा नियम चला आता है कि ग्रन्थकर्त्ता (लेखक) ग्रन्थ के आरम्भ में मङ्गलाचरण करते हैं, और ऐसा करना उचित भी है। क्योंकि कार्य के आरम्भ में

समूलं ग्रन्थप्रयोजनम्—

प्रसिद्धयोगा मुनिभिः प्रयुक्ताश्चिकित्सकैर्ये बहुशोऽनुभूताः ।
विधीयते शार्ङ्गधरेण तेषां सुसंग्रहः सज्जनरञ्जनाय ॥ २ ॥

त्रिकालदर्शी मुनिगण जिन योगों का प्रयोग कर गये हैं तथा वे ही योग जो चिकित्स-गण भी बारंबार प्रयोग करके उनके गुण तथा प्रभाव आदि का अनुभव अच्छी तरह किये उन्हीं का एक अत्युत्तम संग्रह सज्जनों की प्रसन्नता के लिये **श्रीशाङ्गधर** आचार्य (१)करते हैं ॥ २ ॥

उसके निर्विघ्न पूर्ति के लिये अपने इष्टदेव (जगदीश्वर) की प्रार्थना करनी अत्युचित है। उस कार्य में जिसमें शरीर और स्वास्थ्य-सम्बन्धी कार्य करते हैं अत्यन्त ही उचित है। कहा भी है-**"शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्"** अर्थात् शरीर ही सर्व-प्रथम धर्म का साधन

मङ्गलाचरण प्रायः इसीलिये किया जाता है कि ग्रन्थ की पूर्त्ति निर्विघ्नता से हो जा और इससे ग्रन्थ-रचयिता के धार्मिक विचार की शुद्धता एवम् इष्टदेव का भी पूर्ण परिचय जाता है। **शार्ङ्गधर जी ने** अपने मङ्गलाचरण में पुरारि अर्थात् शिवीजी की स्तुति की अर्थात् शिवजी को इष्ट माना है। वास्तव में शिवजी से ही आयुर्वेद की उत्पत्ति हुई है, क्योंकि **"आस्ते वेदः पञ्चमो वैद्यकाख्यो वेत्ता कश्चित्तस्य नान्यो महेशात्"** ऐसा गया है। इन्हें शिव अर्थात् कल्याणकारी कहते हैं। आयुर्वेद की प्राचीन संहिता का नाम **"रुद्रसंहिता"** ही है। इसलिये आयुर्वेद के ग्रन्थ में सर्वप्रथम शिवजी को ही प्रणाम क उचित है। ग्रन्थकर्त्ता ने उपमा भी ऐसी ही दी है जो वनौषधि-सेवी के लिये अत्यन्त अनु है। क्योंकि शार्ङ्गधरजी ने प्रकृति-निरीक्षण और वनस्पति-प्राप्ति के लिये हिमालय ही उप माना है। जिस पर निर्मल चांदनी में चमकती हुई संजीवनी आदि दिव्य महौषधियों देखकर शिवजी की निवासभूमि तथा भवानी अर्थात् पार्वती (**'भवानी पार्वती चण्डी'त्यम** के पिता के गृह का स्मरण हो जाता है। शार्ङ्गधरजी ने **तेजःप्रसर** की उपमा चन्द्रिका को **दिव्यौषधि** की उपमा पार्वतीजी को और **हिमालय** की उपमा शिवजी को देकर तत्त्वज्ञता का पूर्ण परिचय दिया है। भवानी (पार्वती) से संसार की सुख-समृद्धि का होता है, और उनकी प्राप्ति पुरारि (त्रिपुरारि) यानी त्रिपुररूपी त्रिदोषादि व्याधि-समू निवारण में विद्यमान है।

(१) कहने का अर्थ यह है कि आचार्यजी यह ग्रन्थ कोई अपने मनसे कल्पना कर लिख रहे हैं परन्तु मुनि-प्रयुक्त योगों का ही संग्रह कर रहे हैं जो सहस्रों बार के अनुभूत और वास्तव में इस ग्रन्थ के योग हैं भी ऐसे ही जो प्रायः असफल होते नहीं देखे जाते अवश्य लाभ करते हैं। तब यह प्रश्न होना स्वाभाविक है कि जब त्रिकालदर्शी मुनियो प्रसिद्ध २ योगों से युक्त ग्रन्थों को लिख ही दिया है, तब पुनः उसी विषय की यह एक पुस्तक लिखने की क्या आवश्यकता ? इस पर शार्ङ्गरधरजी कहते हैं कि मुनीश्वरों ने अवश्य

रोगनिश्चयपूर्वकं चिकित्सा—

हेत्वादिरूपाकृतिसात्म्यजातिभेदैः समीक्ष्यातुरसर्वरोगान् ।
चिकित्सितं कर्षणबृंहणाख्यं कुर्वीत वैद्यो विधिवत्सुयोगैः ॥ ३ ॥

चिकित्सा रोग की ही की जाती है इस लिये पहले रोग का (१)निश्चय किये बिना ओषधि देना ठीक नहीं। इसी से वैद्य को उचित है कि पहले रोगी के शरीर के दोष की हर प्रकार से **हेतु, आदिरूप, आकृति, सात्म्य** तथा **जातिभेद,** इन पांच निदानों से ठीक ठीक परीक्षा करले, फिर अच्छे अच्छे योगों का प्रयोग कर **कर्षण** और **बृंहण** रूप चिकित्सा **करे।**

विमर्श—जिन कारणों से रोग की उत्पत्ति होती है उनको (२)**हेतु** कहते हैं जैसे—दिन में सोने से सरदी का होना आदि।

(३)**आदिरूप**-जो लक्षण रोग के पूर्ण रूप से व्यक्त होने के पहले प्रकट होते हैं वे **आदि-रूप** या **पूर्वरूप** कहलाते हैं, जैसे-ज्वर होने के पहले थकान, अरति, ठंढ आदि का लगना।

(४)**आकृति**—रोग प्रकट होने पर जो जो लक्षण व्यक्त होते हैं उन्हें **आकृति** या **लक्षण** कहते हैं, इसी से रोग पहचाना जाता है, जैसे कंपकपी हो, ज्वर कभी धीरे और कभी वेग से चढ़े, गला और मुंह सूखे आदि लक्षण हो तो वातज्वर का निश्चय होता है।

जो पदार्थ रोगी को लाभकर हो याने जिसके पाने या करने से रोगी को आराम मालूम हो उसे (५)**सात्म्य** कहते हैं और जो इसके विपरीत हो उसे (६)**असात्म्य** कहते हैं। इससे

ग्रन्थों की रचना की है, परन्तु उनका संग्रह तथा तत्त्व अत्यन्त गम्भीर होने के कारण सब कोई नहीं ग्रहण कर सकते। अतः सर्वसाधारण या अल्पधी वैद्यों की जानकारी के लिये इस ग्रन्थ में उन बड़े बड़े ग्रन्थों के प्रसिद्ध एवं वैद्यों के अनुभूत योगों का संग्रह रहेगा। इस ग्रन्थ की प्राचीनता और उपयोगिता सिद्ध होने पर सर्वत्र इसका सन्मान हो इसलिये पहले ही कह डाले हैं कि यह ग्रन्थ आर्ष-ग्रन्थों के ही आधार से है अर्थात् आर्ष ग्रन्थ के तुल्य है॥

(१) "रोगमादौ परीक्षेत ततोऽनन्तरमौषधम्। ततः कर्म भिषक् पश्चाज्ज्ञानपूर्वं समाचरेत्"॥ **अन्यच्च**—यस्तु रोगमविज्ञाय कर्माण्यारभते भिषक्। अप्यौषधविधानज्ञस्तस्य सिद्धिर्यदृच्छया॥ **रोगपरीक्षणविधिः**—निदानं पूर्वरूपाणि रूपाण्युपशयस्तथा। सम्प्राप्तिश्चेति रोगाणां विज्ञानं पञ्चधा स्मृतम्॥ (२) **निदानम्**—यद् भवेन्न विना येन निदानं तस्य तन्मतम्। हेतुर्निमित्तमुत्थानं प्रत्ययः कारणं तथा। वीजमायतनञ्चापि पर्यायास्तस्य भाषिताः॥ (३) **पूर्वरूपम्**—पूर्वरूपन्तु तद्व्याधिं भाविनं ज्ञापयेद्धि यत्। द्विविधं तच्च सामान्यविशेषपरिभेदतः॥ **यथा**—वायुना वाऽपि पित्तेन बलासेन कृतेन वा। असाधारणलिङ्गेन यन्न युक्तन्तु लक्षणम्॥ व्याधिमात्रं वदेद्व्यं तत् सामान्यमुदाहरेत्। यस्य यल्लक्षणं व्याधेस्तदीषद्व्यक्ततां गतम्॥ यच्च विशेषदोषस्य बोधकं तत्परं मतम्॥ (४) **रूपम्**—तदेव व्यक्ततां यातं रूपमित्यभिधीयते। संस्थानं व्यञ्जनं लिङ्गं लक्षणं चिह्नमाकृतिः॥ (५) **उपशयः**-हेतुव्याधिविपर्यस्तविपर्यस्तार्थकारिणाम्। औषधान्नविहाराणामुपयोगं सुखावहम्॥ विद्या दुपशयं व्याधेः स हि सात्म्यमिति स्मृतः॥ (६) **अनुपशयः**—विपरीतोऽनुपशयो व्याध्यसात्म्यमिति स्मृतः॥

रोग का पता चलता है, जैसे—यदि गरम खाने, गरम जगह रहने आदि से अच्छा मालू तो समझे कि रोग सर्दी से हुआ है आदि ।

जातिभेद—यानें **सम्प्राप्ति** के भेद से कुपित हुए दोष शरीर में ऊपर, नीचे या ति गमन कर जैसे जैसे रोग उत्पन्न करते हैं उनको जानना (१)**सम्प्राप्ति** है । उसके पांच भेद **संख्या** याने प्रकार जानना, जैसे ज्वर आठ है, कास पांच है आदि, **विकल्प** याने किस में वातादि दोषों की मात्रा क्या है; **प्राधान्य** याने उनमें से प्रधान कौन दोष है, जैसे-ज्व पित्त, शूल में वात आदि, **बल** याने रोग मृदु है या तीक्ष्ण है आदि, जैसे—सामान्य ज्वर मृदु होते हैं और सन्निपात ज्वर मारक होता है, **काल** से जैसे रोग प्रातः, दो पहर या स को अधिक बलवान् होता है आदि । ये **निदानपञ्चक** हुए । इनसे पहले रोग–परीक्षा करे **कर्षण** याने बढ़े दोषों को घटाने तथा **बृंहण** याने घटों को बढ़ाने के लिये अच्छे अच्छे अनु योगों का प्रयोग कर चिकित्सा करे । शरीर के घटे बढ़े धातुओं को फिर से उनकी स्वाभा अवस्था में लाना ही चिकित्सा कहलाती है ॥ ३ ॥

ओषधि प्रभावाः— **दिव्यौषधीनां बहवः प्रभेदा बृन्दारकाणामिव विस्फुरन्ति ।**
ज्ञात्वेति संदेहमपास्य धीरैः संभावनीया विविधप्रभावाः ॥ ४ ॥

जिस तरह देवताओं के अपरिमित भेद तथा प्रभाव हैं उसी तरह दिव्य ओषधियों के भेद और प्रभाव अपरिमित हैं, ऐसा समझ कर धैर्यपूर्वक अपने सन्देह को दूर कर द्रव्यों अनेक प्रभावों का होना निश्चय (२) करे ॥ ४ ॥

ग्रन्थप्रयोजनम्— **स्वाभाविकागन्तुककायिकान्तरा रोगा भवेयुः किल कर्मदोषजाः ।**
तच्छेदनार्थं दुरितापहारिणः श्रेयोमयान्योगवरान्नियोजयेत् ॥ ५ ॥

रोग चार (३)तरह के होते हैं—

१—**स्वाभाविक** याने जो रोग प्राकृतिक हैं जैसे भूख, प्यास, बुढ़ापा, मृत्यु आदि

---

(१)**सम्प्राप्तिः**–यथादुष्टेन दोषेण यथा चानुविसर्पता । निर्वृत्तिरामयस्यासौ सम्प्राप्तिर्जातिरागतिः संख्याविकल्पप्राधान्यबलकालविशेषतः । सा भिद्यते यथाऽत्रैव वक्ष्यन्तेऽष्टौ ज्वरा इति ॥

(२) अपने मन में पूर्ण विश्वास कर ओषधि करनी चाहिये । ओषधि और देवता सन्देहादि नहीं करनी चाहिये क्योंकि औषध और देवता का भेद असंख्य है, मनुष्य को उस सन्देह करने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि **"अचिन्त्यो हि मणिमन्त्रौषधीनां प्रभाव** इति । सन्देह रखकर करने से न देवाराधन में सफलता होती है न ओषधि ही गुण सकती है । हां ! निघण्टु आदि से पूर्ण परीक्षा अवश्य कर उसके गुणादिकों पर पूरी रखते हुए अनेक प्रभावों वाला समझते हुए ओषधि का व्यवहार करना चाहिये ॥

(३) शार्ङ्गधर जी ने चार तरह के रोगों को कहा है पर अन्य कई आचार्य तीन तरह रोगों को मानते हैं । जैसे—**कर्मज, दोषज और कर्मदोष मिश्रित** इस तरह तीन । यथा "कर्मजाः कथिताः केचिद्दोषजाः सन्ति चापरे । कर्मदोषोद्भवाश्चान्ये व्याधयस्त्रिविधाः स्मृताः

२—**आगन्तुक** याने जो रोग बाहरी कारणों से अकस्मात् उत्पन्न हो, जैसे-आघात आदि से तथा सांप आदि दुष्ट जीवों से प्राप्त रोग।

३—**कायिक** याने शरीर में ही पैदा होने वाले रोग अर्थात् शरीर के धातुओं के दूषित होने से प्राप्त होने वाले रोग ज्वर, रक्तपित्त प्रभृति।

४—**मानस** याने मन से सम्बन्ध रखने वाले रोग, जैसे-पागलपन, मूर्च्छा आदि।

ये चार प्रकार के रोग कर्म तथा दोष से पैदा होते हैं याने कोई **कर्मज** याने पूर्वजन्म के किये पापकर्मों के फलस्वरूप होते हैं, कोई आहार-विहार के **अयोग, अतियोग** और **मिथ्यायोग** से दोषों के कुपित होने से होते हैं और कोई कोई दोनों कारणों से होते हैं। इन रोगों को दूर करने के लिये अच्छे अच्छे और कल्याणप्रद योगों का प्रयोग करे।

विमर्श—याने यदि व्याधि **कर्मज** है तो जप, होम, दान, दया, गुरु-देवता-ब्राह्मणों की सेवा आदि करावे, **दोषज** हो तो पहले श्लोक में कहे अनुसार निदान करके चिकित्सा करे तथा यदि **दोनों से हुआ** हो तो दोनों कर्म करावे याने औषधादि भी करे और जप होम आदि भी॥ ५॥

ग्रन्थमाहात्म्यम्—

(१)प्रयोगानागमात्सिद्धान्प्रत्यक्षादनुमानतः।सर्वलोकहितार्थाय वक्ष्याम्यनतिविस्तरात्॥६

तथा च—"कर्मप्रकोपेन कदा चिदेके दोषप्रकोपेन भवन्ति चान्ये। तथा परे प्राणिषु कर्मदोषप्रकोपजाः कायमनोविकाराः॥ **कर्मजाः**—यथाशास्त्रं तु निर्णीतो यथाव्याधिचिकित्सितः। न शमं याति यो व्याधिः स ज्ञेयः कर्मजो बुधैः॥ **तथा च**—"दुष्टामया इतरद्रव्यऋणापहारगुर्वङ्गनागमनविप्रवधादिभिर्वा। दुष्कर्मभिस्तनुभृतामिह कर्मजास्ते नोपक्रमेण भिषजामुपयान्ति सिद्धिम्"॥ **कर्मज की शान्ति का उपाय**—दानैर्दयाऽऽदिभिरपि द्विजदेवतागो-संसेवनप्रणीतिभिश्च जपैस्तपोभिः। इत्युक्तपुण्यनिचयैरपचीयमानाः प्राक्कर्मजा यदि रुजः प्रशमं प्रयान्ति॥ **दोषजाः**—मिथ्याऽऽहारविहारप्रकुपितवातपित्तकफजाः। **दोषज तथा उसकी शान्ति का उपाय**—स्वहेतुदुष्टैरनिलादिदोषैरवप्लुतैः स्वेषु मुहुश्चलद्भिः। भवन्ति ये प्राणभृतां विकारास्ते दोषजा भेषजसिद्धिसाध्याः॥" **कर्मदोषोद्भवाः**—स्वल्पदोषा गरीयांसस्ते ज्ञेयाः कर्मदोषजाः। नश्यन्ति त्वक्रियाभिस्ते क्रियाभिः कर्मसंक्षये॥ शाम्यन्ति दोषसम्भूता दोषसंक्षयहेतुभिः। तेषामल्पनिदाना ये प्रतिकष्टा भवन्ति च॥ मृदवो बहुदोषा वा कर्मदोषोद्भवास्तु ते। कर्मदोषक्षयकृता तेषां सिद्धिर्विधीयते॥" **कर्म और दोष दोनों हों तो उसकी शान्ति का उपाय**—"दानादिभिः कर्मभिरोषधीभिः कर्मक्षये दोषपरिक्षयाद्वा। सिध्यन्ति ये प्रत्नवतां कथं चित् ते कर्मदोषप्रभवाविकाराः॥

(१) आगमादीनां लक्षणं जैज्जटादिभिराचार्यैरुक्तं तदेव सुबोधार्थं लिख्यते—यथा—आगमो वेदः, आप्तानां शास्त्रं वा। तथाहि-'सिद्धं सिद्धैः प्रमाणैस्तु हितञ्चात्र परत्र च'। आगमात् सिद्धाः श्रूयन्ते यथा—'जीवेद्वर्षसहस्राणि योगस्यास्य प्रभावतः। वृद्धा च शतवर्षीया भवेत्

श्रीशाङ्गधर जी आचार्य कहते हैं कि—मैं इस ग्रन्थ में वेद आदि आगम से सिद्ध योग हैं उनको प्रत्यक्ष से याने उनके प्रभाव आदि की स्वयं परीक्षा कर तथा जिनसे होगा ऐसे योगों को गुण आदि से अनुमान करके सब लोगों के हितार्थ अधिक विस्तार न संक्षेप से ही कहताहूं।

विमर्श—जो वस्तु आंख, कान प्रभृति इन्द्रियों से तथा मन से अभ्रान्त जानी जा वह **प्रत्यक्ष** है। और कार्य कारण आदि का विचार करके जो अटकल लगायी जाय वह अ**मान** है। त्रिकालज्ञ ऋषियों के ज्ञान को तथा वेद को **आगम** कहते हैं॥ ६ ॥

पूर्वखण्डाध्यायानुक्रमः—

प्रथमं परिभाषा स्याद्भैषज्याख्यानकं तथा। नाडीपरीक्षाऽऽदिविधिस्ततो दीपनपाच
ततः कलाऽऽदिकाख्यानमाहारादिगतिस्तथा। रोगाणां गणना चैव पूर्वखण्डोऽयमीरि

अब सात अध्यायों में **पूर्वखण्ड** की (१)सूची कहते हैं—**पहला अध्याय**–परिभाषा याने माप तौल आदि का है। **दूसरा भैषज्याख्यान** का है याने इसमें औषध खाने का स विधि तथा द्रव्यों के रस, गुण और विपाक तथा छः ऋतुओं का वर्णन है, **तीसरे अध्या** नाडीपरीक्षा तथा स्वप्नशुभाशुभ और दूतादिलक्षण कहे हैं, **चौथे अध्याय** में दीपन पा आदि गुणों का वर्णन, **पांचवें अध्याय** में कला आदि तथा सृष्टिक्रम आदि कहे हैं, **छठे अध्या** में आहार की गति, गर्भोत्पत्ति, कुमारपोषण आदि तथा **सातवें अध्याय** में रोगों की ग की गयी है। इस तरह पूर्वखण्ड समाप्त होता है॥ ७–८ ॥

मध्यमखण्डाध्यायानुक्रमः—

स्वरसः क्काथफाण्टौ च हिमः कल्कश्च चूर्णकम्।
तथैव गुटिकालेहौ स्नेहाः सन्धानमेव च।
धातुशुद्धी रसाश्चैव खण्डोऽयं मध्यमः स्मृतः॥ ९ ॥

अब बारह अध्यायों में **मध्यमखण्ड** की अनुक्रमणिका कहते हैं–**पहले अध्याय** में स

षोडशवार्षिकी'॥ **प्रत्यक्षमिति—**यत्किञ्चिदेव अर्थस्य साक्षात्कारिज्ञानं तदेव प्रत्यक्षम्। त हि–'मनोऽक्षिगतमभ्रान्तं वस्तु प्रत्यक्षमुच्यते। इन्द्रियाणामसज्ज्ञानं वस्तु तद् वै भ्रमः स्मृतः यथा—वमनविरेचनादिकयोगाः प्रत्यक्षफलाः। **अनुमानत इति—**अनु पश्चादव्यभिचारि ज्ञाल्लिङ्गं ज्ञायते येन तदनुमानम्। यथा–मृत्पाण्डुरोगेण मृद्भक्षणमनुमीयते, छर्द्या मक्षिकाऽ भक्षणं त्वक्परिपाटनादिभिः पक्वामव्रणमिति। "केन हेतुना क्रियते" इति विवक्षायां सर्व कहितार्थायेतिग्रहणं कृतम्। **सर्वलोक** इति। लोको हि द्विविधः–स्थावरजङ्गमात्मकभेदेन, पुरुषप्राधान्या जना एव लोकशब्देन गृह्यन्ते॥

(१) शाङ्र्गधरजी ने जो लिखा है वह क्रमवद्ध लिखा है। जिन २ वस्तुओं या की आवश्यकता आयुर्वेद शास्त्र में होनी चाहिये सबका संग्रह कर एकत्र कर अध्यायरू किया है, जो अन्य ग्रन्थों में इतना सुलभ नहीं है। अस्तु यह क्रम अत्यन्त उपयोगी है। लघु तथा कम उपकार करने वाला ग्रन्थ नहीं समझना चाहिये। और न ग्रन्थकार को समझना चाहिये॥

तथा पुटपाकविधि, **दूसरे** में क्वाथ याने काढ़ा, उष्णोदक, क्षीरपाक और अन्नसाधनविधि, **तीसरे** में फाण्ट तथा मन्थ की विधि, **चौथे** में हिम की विधि, **पांचवें** में कल्कों की विधि, **छठे में** चूर्णों की विधि, **सातवें** में गुटिकाओं की विधि, **आठवें** में अवलेह की विधि, **नवें** में तेल तथा घृत-साधनविधि, **दसवें** में मद्य आदि सन्धानों की विधि, **ग्यारहवें** में धातुओं का शोधन-मारण तथा **बारहवें** में सिद्धरसों के बनाने की विधि कही गयी है। इस प्रकार मध्यमखण्ड समाप्त हुआ ॥ ९ ॥

उत्तरखण्डाध्यायानुक्रमः— **स्नेहपानं स्वेदविधिर्वमनं च विरेचनम् ।**
ततस्तु स्नेहबस्तिः स्यात्ततश्चापि निरूहणम् ॥ १० ॥
ततश्चाप्युत्तरो बस्तिस्ततो नस्यविधिर्मतः ।
धूमपानविधिश्चैव गण्डूषादिविधिस्तथा ॥ ११ ॥
लेपादीनां विधिः ख्यातस्तथा शोणितविस्रुतिः ।
नेत्रकर्मप्रकारश्च खण्डः स्यादुत्तरस्त्वयम् ॥ १२ ॥

अब तेरह अध्याय में **उत्तर खण्ड** की सूची कहते हैं—**पहले** में (१)स्नेहपान, **दूसरे** में स्वेदविधि (पसीना दिलाना), **तीसरे** में वमन कराना, **चौथे** में विरेचन देना, **पांचवें** में स्नेह-वस्ति, **छठे** में निरूहवस्ति, **सातवें** में उत्तरवस्ति, **आठवें** में नस्यविधि, **नवें** में धूमपान, व्रणधूपन और गृहधूपन, **दसवें** में कुल्ले कराने का विधान, **ग्यारहवें** में लेप आदि करने की विधि, **बारहवें** में रक्तमोक्षण की विधि तथा **तेरहवें** में नेत्रकर्म की विधि कही गयी है। इस तरह उत्तर खण्ड भी समाप्त होता है ॥ १०–१२ ॥

ग्रन्थसंख्या— **द्वात्रिंशत्संमिताध्याययुक्तेयं संहिता स्मृता ।**
षड्विंशतिशतान्यत्र श्लोकानां गणितानि च ॥ १३ ॥

यह शाङ्गर्धर संहिता ३२ बत्तीस अध्यायों से युक्त है तथा इस में २६०० छब्बीस सौ

---

(१) **स्नेहपान**—घृत तैल आदि पीने के प्रयोग को **स्नेहपान** कहते हैं। **स्वेदविधि**—पसीना निकालने के विधि को **स्वेदविधि**—कहते हैं। **वमन**—कै कराने की विधि ओषधि द्वारा। **विरेचन**—दस्त कराने की विधि औषध द्वारा। **स्नेहवस्ति**—गुदादिकों में तैलादि की पिचकारी देने के प्रयोग को **स्नेहवस्ति** कहते हैं। **निरूहणवस्ति**—गुदादिकों में क्वाथादि की पिचकारी देने को **निरूहणवस्ति** कहते हैं। **उत्तरवस्ति**—लिङ्ग-भगादि में पिचकारी देने की विधि को **उत्तरवस्ति** कहते हैं। **नस्यविधि**—नाक में औषध देने को **नस्यविधि** कहते हैं। **धूमपान**—चिलम आदि पर औषध रखकर पीने को **धूमपान**-विधि कहते हैं। **गण्डूषविधि**—क्वाथादिकों के कुल्ले करने को गण्डूषविधि कहते हैं। **लेप**—बाहरी स्थानों पर दवा आदि के लेप को लेपविधि कहते हैं। **शोणितविस्रुति**—रक्तमोक्षण (फस्त खुलवाने की विधि) की विधि को कहते हैं। **नेत्रकर्मप्रकार**—आंख में दवा छोड़ने, पट्टी खोलने आदि की विधि ॥

श्लोक हैं। इस श्लोक से आचार्य जी अपने ग्रन्थ पर मुहर लगा देते हैं जिससे कोई इस प्रक्षेप न करने पावे ॥ १३ ॥

मानस्यावश्यकता–**न मानेन विना युक्तिर्द्रव्याणां जायते क्वचित्।**
अतः प्रयोगकार्यार्थं मानमत्रोच्यते मया ॥ १४ ॥

यदि मानपरिभाषा याने माप तौल आदि न हो तो द्रव्यों की योजना कहीं किसी तरह से हो नहीं सकती याने जब यह निश्चय ही नहीं होगा कि कौनसा द्रव्य कितना ग्रहण किया जाय तब उनकी योजना कैसे हो सकती है, अतः यहां पर मानों की मात्रा कही गयी है।

विमर्श—आयुर्वेद में दो प्रकार के मान का प्रचार है। एक **मागध मान** और दूसरा **कालिङ्ग मान** यहां पहले मागध फिर कालिङ्ग मान कहा गया है क्योंकि कालिङ्ग मान से मागध मान श्रेष्ठ माना जाता है ॥ १४ ॥

मागधमानपरिभाषा—**त्रसरेणुर्बुधैः प्रोक्तस्त्रिंशता परमाणुभिः।**
त्रसरेणस्तु पर्यायनाम्ना वंशी निगद्यते ॥ १५ ॥

तीस **परमाणुओं** का एक **त्रसरेणु** होता है। **त्रसरेणु** का दूसरा पर्यायनाम **वंशी**-(पाठभेद से **ध्वंसी**) है ॥ १५ ॥

परमाणोर्वंश्याश्च- **(जालान्तरगते भानौ यत्सूक्ष्मं दृश्यते रजः।**
लक्षणम्— **तस्य त्रिंशत्तमो भागः परमाणुः स कथ्यते।) ॥ १६ ॥**
जालान्तरगतैः सूर्यकरैर्वंशी विलोक्यते ॥ १७ ॥

जालियों से जो सूर्य की किरणें पड़ती हैं–उनमें उड़ती हुई जो बहुत ही सूक्ष्म धूलि दीखती है, उसके **तीसवें हिस्से** को **परमाणु** कहते हैं। परमाणु केवल आंख से देखा नहीं जा सकता सूर्य की किरणों में **वंशी** ही दीखती है, परमाणु अनुमान से जाना जाता है ॥ १६–१७ ॥

मरीचिप्रभृतिसंज्ञाः— **षड्वंशीभिर्मरीचिः स्यात्ताभिः षड्भिस्तु राजिका।**
तिसृभी राजिकाभिश्च सर्षपः प्रोच्यते बुधैः ॥ १८ ॥
यवोऽष्टसर्षपैः प्रोक्तो गुञ्जा स्यात्तच्चतुष्टयम्।
षड्भिस्तु रक्तिकाभिः स्यान्माषको हेमधान्यकौ ॥ १९ ॥

ऐसी छः वंशियों की एक **मरीचि** होती है। छः मरीचियों की एक **राजिका** याने राई होती है, तीन राइयों का एक **सरसों**, आठ सरसों का एक **जौ**, चार जौ की एक **गुञ्जा** या **रत्ती** और छः रत्ती का एक **माष** होता है। मासे के दूसरे नाम **हेम** और **धान्य** हैं।

विमर्श—यह मत **शार्ङ्गधर आचार्य** जी का है क्यों कि भिन्न भिन्न आचार्यों का मत भिन्न भिन्न है। कोई पांच रत्ती, कोई सात रत्ती और कोई दस रत्ती की मासा मानते हैं १८–१९।

शाणकोलसंज्ञे— **माषैश्चतुर्भिः शाणः स्याद्धरणः स निगद्यते।**
टङ्कः स एव कथितस्तद्द्वयं कोल उच्यते।
क्षुद्रको वटकश्चैव द्रङ्क्षणः स निगद्यते ॥ २० ॥

चार मासे का एक **शाण** होता है। उसे **धरण** और **टङ्क** भी कहते हैं। दो शाण का एक **कोल** होता है। **क्षुद्रक, वटक**—अन्य मत से **मोरट** और **द्रङ्क्षण** कोल के ही नाम हैं॥ २०॥

र्षस्तत्पर्यायाश्च—**कोलद्वयं च कर्षः स्यात्स प्रोक्तः पाणिमानिका ॥ २१ ॥**

अक्षं पिचुः पाणितलं किंचित्पाणिश्च तिन्दुकम् ।
विडालपदकं चैव तथा षोडशिका मता ॥ २२ ॥
करमध्यो हंसपदं सुवर्णं कवलग्रहः ।
उदुम्बरं च पर्यायैः कर्ष एव निगद्यते ॥ २३ ॥

दो कोल का एक **कर्ष** होता है। इसके दूसरे नाम ये हैं—**पाणिमानिका, अक्ष, पिचु, पाणितल, किञ्चित्पाणि, तिन्दुक, विडालपद, षोडशिका, करमध्य, हंसपाद, सुवर्ण, कवलग्रह** और **उदुम्बर** ॥ २१–२३ ॥

अर्द्धपलपलसंज्ञे—**स्यात्कर्षाभ्यामर्द्धपलं शुक्तिरष्टमिका तथा ।**
शुक्तिभ्यां च पलं ज्ञेयं मुष्टिराम्रं चतुर्थिका ।
प्रकुञ्चः षोडशी बिल्वं पलमेवात्र कीर्त्यते ॥ २४ ॥

दो कर्ष का **अर्धपल** होता है, उसे **शुक्ति** और **अष्टमिका** भी कहते हैं। दो शुक्ति का एक **पल** होता है। उसे **मुष्टि, आम्र, चतुर्थिका, प्रकुञ्च, षोडशी** और **बिल्व** भी कहते हैं॥२४॥

प्रसृतिकुडवादिशरावसंज्ञाः—**पलाभ्यां प्रसृतिर्ज्ञेया प्रसृतश्च निगद्यते ।**
प्रसृतिभ्यामञ्जलिः स्यात्कुडवोऽर्द्धशरावकः ॥ २५ ॥
अष्टमानं च स ज्ञेयः कुडवाभ्यां च मानिका ।
शरावोऽष्टपलं तद्वज्ज्ञेयमत्र विचक्षणैः ॥ २६ ॥

दो पल की एक **प्रसृति** या **प्रसृत** होता है। दो प्रसृति की एक **अञ्जलि, कुडव, अर्धशराव** या **अष्टमान** होता है। दो कुडव का एक**मानिका, शराव** या **अष्टपल** होता है॥२५–२६॥

प्रस्थाढकसंज्ञे— **शरावाभ्यां भवेत्प्रस्थश्चतुःप्रस्थैस्तथाऽऽढकम् ।**
भाजनं कंसपात्रं च चतुःषष्टिपलं च तत् ॥ २७ ॥

दो शराव का एक **प्रस्थ** होता है। चार प्रस्थ का एक **आढक, भाजन** या **कंसपात्र** होता है। यह चौसठ पल का होता है॥ २७॥

द्रोणद्रोणीसंज्ञे— **चतुर्भिराढकैर्द्रोणः कलशो नल्वणार्मणौ ।**
उन्मानश्च घटो राशिर्द्रोणपर्यायसंज्ञकाः ॥ २८ ॥
द्रोणाभ्यां शूर्पकुम्भौ च चतुःषष्टिशरावकः ।
शूर्पाभ्यां च भवेद् द्रोणी वाही गोणी च सा स्मृता ॥ २९ ॥

चार आढक का एक **द्रोण** होता है। **कलश, नल्वण, अर्मण, उन्मान, घट** और **राशि** ये द्रोण के ही नाम हैं। दो द्रोण का एक **शूर्प** या **कुम्भ** होता है। इसे चौसठ शराव कहते हैं। दो शूर्पों की एक **द्रोणी, वाही** या **गोणी** होती है॥ २८–२९॥

खारीसंज्ञा— **द्रोणीचतुष्टयं खारी कथिता सूक्ष्मबुद्धिभिः ।**
चतुःसहस्रपलिका षण्णवत्यधिका च सा ॥ ३० ॥

चार द्रोणी की एक **खारी** होती है। खारी चार हजार और छियानवे पल की होती है ऐसा सूक्ष्म बुद्धि वालों ने कहा है ॥ ३० ॥

भारतुलासंज्ञे— **पलानां द्विसहस्रं च भार एकः प्रकीर्त्तितः ।**
तुला पलशतं ज्ञेया सर्वत्रैवैष निश्चयः ॥ ३१ ॥

दो हजार पल का एक **भार** होता है और **तुला** सौ पल की होती है। सर्वत्र यही निश्चय जानें ॥ ३१ ॥

यथोत्तरचतुर्गुण- **माषटङ्काक्षबिल्वानि कुडवः प्रस्थमाढकम् ।**
माषादयः— **राशिर्गोणी खारिकेति यथोत्तरचतुर्गुणाः ॥ ३२ ॥**

माष, टङ्क, अक्ष, बिल्व, कुडव, प्रस्थ, आढक, राशि, गोणी और **खारी**-ये क्रम से एक एक से चौगुने होते हैं।

विमर्श—याने ४ मासे का **टङ्क,** चार टङ्क का **अक्ष,** ४ अक्ष का **बिल्व,** ४ बिल्व का **कुडव,** ४ कुडव का **प्रस्थ,** ४ प्रस्थ का **आढक,** ४ आढक की **राशि,** ४ राशि की **गोणी** तथा ४ गोणी की एक **खारी** होती है ॥ ३२ ॥ **इति मागधमानम् ।**

द्रवार्द्रशुष्कद्रव्याणामनुक्तमानपरिभाषा—

गुञ्जाऽऽदिमानमारभ्य यावत्स्यात्कुडवस्थितिः ।
द्रवार्द्रशुष्कद्रव्याणां तावन्मानं समं मतम् ॥ ३३ ॥

एक रत्ती की तौल से लेकर **कुडव** पर्यन्त का मान तरल (जलादि), आर्द्र (गीले औषधें) तथा सूखी वस्तुओं का मान सम होता है। याने जितना कहा उतना ही लिया जाता है–दूना नहीं होता।

विमर्श—पर किसी किसी के मत में कुडव के पहले तक ही सम (१)माना जाता है कुडव भी कहीं कहीं दूनी ली जाती है, जैसे कि—**दन्तीघृत** में ॥ ३३ ॥

द्रवार्द्रयोर्द्विगुणग्र- **प्रस्थादिमानमारभ्य द्विगुणं तद् द्रवार्द्रयोः ।**
हणार्थं परिभाषा—**मानं तथा तुलायास्तु द्विगुणं न क्वचित्स्मृतम् ॥ ३४ ॥**

प्रस्थ से लेकर जब तक तुला पूरी न हो जाय तब तक के मान सूखे की अपेक्षा तरल और गीले पदार्थ दूने (२)लिये जाते हैं याने इस बीच का यदि मान कहा गया हो तो सूखे

---

(१) "रक्तिकादिषु मानेषु यावन्न कुडवो भवेत् । शुष्कद्रवार्द्रयोस्तावत्तुल्यं मानं प्रकीर्त्तितम्" ॥ "प्रस्थादिमानमारभ्य द्रव्यादिद्विगुणं त्विदम् । कुडवेऽपि क्व चिद् दृष्टं यथा दन्तीघृते मतः" ॥

(२) शुष्क से द्रव की मात्रा दूनी लेनी चाहिये। क्योंकि सूखी चीज़ गुरु और तीक्ष्ण होती है। क्योंकि कहा भी है कि–"शुष्कद्रव्यस्य या मात्रा त्वार्द्रस्य द्विगुणा हि सा। शुष्कं गुरुतीक्ष्णत्वात्तस्मादर्द्धं प्रयोजयेत्" ॥

उतना ही लिया जायगा, पर द्रव, आर्द्र पदार्थ दूना लिया जायगा। यथा—यदि एक २ प्रस्थ द्रव्य लेने को कहा हो तो सूखी औषधें तो एक एक प्रस्थ ही ली जावेंगी पर गीली ओषधियां तथा तरल वस्तुयें दूनी याने दो दो प्रस्थ ली जावेंगी। तुला तथा उसके ऊपर के मानों की दूनी कभी नहीं ली जाती चाहे वस्तु जो भी ली जाय ॥ ३४ ॥

द्रवमानार्थकुडवपात्रनिर्माणप्रकारः— **मृद्वृक्षवेणुलोहादेर्भाण्डं यच्चतुरङ्गुलम् ।**
विस्तीर्णं च तथोच्चं च तन्मानं कुडवं वदेत् ॥ ३५ ॥

मिट्टी, लकड़ी, बांस, लोहा आदि का कोई भी बरतन जो लम्बाई में चार अङ्गुल, चौडाई में चार अङ्गुल तथा ऊंचाई में भी चार अङ्गुल हो याने उसका घनफल ३४ घन अङ्गुल हो तो उसमें आने वाले द्रव द्रव्य को एक **कुडव** कहते हैं। यह मानपात्र प्रायः द्रव पदार्थों के लिये ही जानना चाहिये ॥ ३५ ॥

योगपरिभाषा— **यदौषधं तु प्रथमं यस्य योगस्य कथ्यते ।**
तन्नाम्नैव स योगो हि कथ्यतेऽत्र विनिश्चयः ॥ ३६ ॥

जिस योग में जो औषध प्रथम आवे याने पहला हो या प्रधान हो वह औषध उसी नाम से कहा जाता है। जैसे—हिङ्ग्वष्टक, गुडूच्यादि आदि ॥ ३६ ॥

मात्रापरिभाषा— **स्थितिर्नास्त्येव मात्रायाः कालमग्निं वयो बलम् ।**
प्रकृतिं दोषदेशौ च दृष्ट्वा मात्रां प्रकल्पयेत् ॥ ३७ ॥

ओषधि के भक्षण करने की कोई स्वतन्त्र मात्रा निश्चित नहीं है क्योंकि मात्रा सिर्फ रोगों पर ही निर्भर नहीं हुआ करती, इस लिये काल याने ऋतु आदि, अग्नि की प्रखरता आदि, बाल—युवा आदि अवस्था, शारीरिक बल, प्रकृति याने पुरुष का स्वभाव, वातादि दोषों की क्षय—वृद्धि तथा आनूप, जाङ्गल आदि देश, इन सब का विचार करके जो योग्य हो ऐसी मात्रा ठीक करनी चाहिये ॥ ३७ ॥

कालिङ्गमानकल्पनायां हेतवः— **यतो मन्दाग्नयो ह्रस्वा हीनसत्त्वा नराः कलौ ।**
अतस्तु मात्रा तद्योग्या प्रोच्यते सुज्ञसंमता ॥ ३८ ॥

जब कि मनुष्य कलियुगके प्रभावसे मन्दाग्नि वाले, छोटे शरीर वाले और कम बल वाले हो गये हैं, इस लिये इन सबका विचार कर विद्वानों ने जो मात्रा निश्चय किया है वही कहते हैं।

विमर्श—याने मनुष्य इस कलियुग में सब बातों में पहले के लोगों की अपेक्षा नीचे के श्रेणी में उतर आये हैं। इस लिये उनके इतनी मात्रा को पचा नहीं सकते। इसी कारण से विद्वानों ने इस समय के योग्य लघु मात्रा का निर्धारण भी किया है सो **कालिङ्ग परिभाषा** के नाम से आगे कहेंगे ॥ ३८ ॥

कालिङ्गमानम्— **यवो द्वादशभिर्गौरसर्षपैः प्रोच्यते बुधैः ॥ ३९ ॥**
यवद्वयेन गुञ्जा स्यात् त्रिगुञ्जो वल्ल उच्यते ।
माषो गुञ्जाभिरष्टाभिः सप्तभिर्वा भवेत्क्व चित् ॥ ४० ॥

स्याच्चतुर्माषकः शाणः स निष्कष्टङ्क एव च ।
गद्याणो माषकैः षड्भिः कर्षः स्याद्दशमाषकः ॥ ४१ ॥
चतुःकर्षैः पलं प्रोक्तं दशशाणमितं बुधैः ।
चतुष्पलैश्च कुडवं प्रस्थाद्याः पूर्ववन्मताः ॥ ४२ ॥

बारह गौर याने पीली सरसों का एक **जौ** होता है, दो जौ की एक श्वेत **गुञ्जा** या र और तीन गुञ्जा का एक **बल्ल** होता है। आठ रत्ती और कहीं कहीं सात रत्ती का एक **मास** चार माशे का एक **शाण** होता है जिसे **निष्क** और **टङ्क** भी कहते हैं। छः मासे का **गद्याण** और दस मासे का एक **कर्ष** होता है। चार कर्ष या दश शाण का एक **पल** होता चार पल का एक **कुडव** होता है। इसके आगे–प्रस्थ से लेकर उसके आगे पहले कहे हुए मा धमान के अनुसार ही जाने। केवल उस क्रम से उनकी संख्या का ही ग्रहण है मात्रा तो मान के अनुसार रहेगी॥ ३९–४२ ॥ **इति कालिङ्गमानम् ।**

मानस्य द्वैवि- ध्यम्— **कालिङ्गं मागधं चैव द्विविधं मानमुच्यते ।**
कालिङ्गान्मागधं श्रेष्ठं मानं मानविदो विदुः ॥ ४३ ॥

कालिङ्ग और **मागध** ये दो प्रकार की मानपरिभाषा प्रसिद्ध है, जिसमें **कालिङ्गमान** **मागधमान** मानविद् पंडितों द्वारा श्रेष्ठ कहा जाता है। कलिङ्ग देश में अधिक व्यवहृत रहने के कारण 'कालिङ्ग' और मगध देश में अधिक प्रचार होने के कारण 'मागध' ऐसा (१)परिभाषाओं का नाम पड़ा है॥ ४३ ॥ **इति मानपरिभाषा ।**

---

(१) मान की परिभाषा प्रायः पहले ही से गड़बड़ चली आती है, क्योंकि चरक अलग मान **सुश्रुत** का अलग मान। इस समय भी प्रायः कहीं ८० तोले का सेर कहीं तोले का सेर कहीं ३२ तोले का सेर माना जाता है। पर **शार्ङ्गधर जी** ने दो मान माना एक **कालिङ्ग मान** और दूसरा **मागध मान** जिसका वर्णन श्लोकबद्ध है—और हम **मानचक्र** देते हैं जो आधुनिक मानयुक्त है॥

कोष्ठक ( ) के अन्दर आधुनिक मान से युक्त कालिङ्गमान—

१२ सर्सों का—१ यव। २ यव की—१ रत्ती। ३ रत्ती का—१ वल्ल=(३ रत्ती ८ रत्ती का—१ मासा=(१ मासा या ८ रत्ती)। ४ मासे का—१ शाण या ट (४ मासा या ३२ रत्ती)। ६ मासे का—१ गद्याण=(६ मासा या आधा तोला)। १० म का–१ कर्ष=(१ रु० भर)। ४ कर्ष का—१ पल=(४ रु० भर)। ४ पल का—१ कुडव (१६ रु० भर या ३ छ० १ रू० भर)। २ कुडव की—१ मानिका (शराव)=(३२ रु० भर ६ छ० २ रू० भर)। २ शराव का—१ प्रस्थ=(६४ रु० भर या १२ छ० ४ रू० भर)। प्रस्थ का—१ आढक=(२५६ रु० भर या ३ सेर ३ छ० १ रू० भर)। ४ आढक का— द्रोण=(१२ सेर १२ छ० ४ रू० भर)। २ द्रोण का—१ शूर्प=(२५ सेर ९ छ० ३ रू० भर २ शूर्प की—१ द्रोणी=(१ मन ११ सेर ३ छ० १ रू० भर)। ४ द्रोणी की—१ खारी

औषधपरिभाषा ।

तत्र द्रव्याणां युक्तायुक्तविचारः— नवान्येव हि योज्यानि द्रव्याण्यखिलकर्मसु ।
विना विडङ्गकृष्णाभ्यां गुडधान्याज्यमाक्षिकैः ॥ ४४ ॥

(५ मन ४ सेर १२ छ० ४ रू० भर)। २००० पल का—१ भार=(२ मन २० सेर या ८००० भर वा १०० सेर)। १०० पल की—१ तुला=(५ सेर या ४०० भर)।

कोष्ठक ( ) के अन्दर आधुनिक मान के साथ मागधमान—

३० परिमाणु का १ त्रसरेणु। ६ त्रसरेणु की—१ मरीचि। ६ मरीचि की—१ राई। ३ राई का—१ सर्सों। ८ सर्सों का—१ यव। ४ यव का—१ गुञ्जा या रत्ती=(१ रत्ती)। ५ रत्ती का—१ पण=(एक आना भर)। ६ रत्ती का—१ मासा=(६ र० या ~) आना भर)। ४ मासे का—१ शाण या टङ्क=(३ मासा या २४ रत्ती)। २ शाण का—१ कोल=(६ मासा या ½ तोला)। २ कोल का—१ कर्ष=(१२ मासा या १ तोला)। २ कर्ष का—१ अर्धपल या शुक्ति=(२ तोला)। २ शुक्ति का—१ पल=(४ तोले)। २ पल की—१ प्रसृति=(८ तोले)। २ प्रसृति की—१ अञ्जलि (कुडव)=(१६ तोले)। २ कुडव की—१ मानिका या शराव=(३२ तोले)। २ शराव का—१ प्रस्थ=(६४ तोले)। ४ प्रस्थ का–१ आढक=(२५६ तोले)। ४ आढक का—१ द्रोण=(१०२४ तोले)। २ द्रोण का—१ शूर्प=(२०४८ तोले)। २ शूर्प का—१ द्रोणी=(४०९६ तोले)। ४ द्रोणी की—१ खारी=(१६३८४ तोले)। २००० पल का—१ भार=(८००० तोले)। १०० पल की—१ तुला=(४०० तोले)। ४ मासे का—१ टङ्क। ४ टङ्क का—१ अक्ष। ४ अक्ष का—१ बिल्व। ४ बिल्व का—१ कुडव। ४ कुडव का—१ प्रस्थ। ४ प्रस्थ का–१ आढक। ४ आढक की–१ राशि। ४ राशि की–१ गोणी। ४ गोणी की–१ खारी।

इन मानों से अतिरिक्त मान—

कोष्ठक ( ) के अन्दर स्थित आधुनिक मानयुक्त व्रीह्यादिमान—

४ व्रीहि का—१ गुञ्जा=(१ रत्ती)। ५ गुञ्जा का—१ पण=(~) आना भर)। ८ पण का—१ धरण=(॥) आठ आना भर)। २ धरण का—१ कर्ष=(१) भर)। ४ कर्ष का–१ पल=(४) रु० भर)। १०० पल की—१ तुला=(५ सेर या ४०० रू०भर)। २० तुला का—१ भार=(१०० सेर या २॥ मन)।

कोष्ठक ( ) के अन्दर आधुनिक मानयुक्त वैजयन्तीकोषोक्त मान—

१० तुला (१०० पल की एक तुला वा ५ सेर)—१ ऋक्ष=(१। मन)। १० ऋक्ष—१ आचित=(१२॥ मन)। १० आचित—१ द्वयाचित=(१२५ मन)। १० द्वयाचित–१ होड़=(१२५० मन)। १० होड़—१ हेलक=(१२५०० मन)। १० हेलक–१ समक=(१२५००० मन)। १० समक—१ सम=(१२५०००० मन)। १० सम—१ वाहित=(१२५००००० मन)। १० वाहित—१ भारित=(१२५००००००मन)।

प्रत्येक काम के लिये ओषधियां नयी ही लेनी चाहिये, सिर्फ वायविडंग, पिप्पली, गु धान्य (धान आदि अन्न), घी और शहद पुराने लेने चाहिये।

विमर्श—पुराने याने एक वर्ष का पुराना प्रायः ग्रहण किया जाता है। गुड़ तीन सा का पुराना प्रायः ग्रहण किया जाता है। गुड़ तीन साल का पुराना अच्छा होता है। जितना पुराना हो उतना ही अधिक गुण वाला होता है, पर ओषधि आदि से पकाया हु घी सालभर बाद हीनवीर्य हो जाता है। खाने को भी ताजा ही लेना चाहिये। भात में कर खाने को दूध से निकाले मक्खन का घी सबसे उत्तम है। तेल चाहे पकाया हुआ हो न हो ज्यों ज्यों पुराना होता जाय त्यों त्यों अधिक गुणयुक्त होता है क्योंकि कहा भी है—

घृतमब्दात्परं पक्वं हीनवीर्यं प्रजायते। तैलं पक्वमपक्वं वा चिरस्थायि गुणाधिकम्॥
किञ्चिद्गन्धविवर्जितं गुणपरं तैलं पुराणं महत्॥ ४४॥

सदाऽऽर्द्राण्यद्विगु- **गुडूची कुटजो वासा कूष्माण्डश्च शतावरी।**
णानि द्रव्याणि— **अश्वगन्धा सहचरी शतपुष्पा प्रसारिणी॥ ४५॥**
प्रयोक्तव्या सदैवार्द्रा द्विगुणा नैव कारयेत्॥ ४६॥

(१)गुरुच, कुरैया, बांसा, पेठा, शतावर, असगन्ध, पियाबांसा सौंफ और प्रसारणी ओषधियां हमेशा गीली ही लेनी चाहिए पर दूने नहीं लेवे जैसा कि पहले लिख आये हैं४५-

नूतनद्रव्यस्य प्रा- **शुष्कं नवीनं यद् द्रव्यं योज्यं सकलकर्मसु।**
धान्यम्— **आर्द्रं च द्विगुणं युञ्ज्यादेष सर्वत्र निश्चयः॥ ४७॥**

ऊपर के श्लोक में कही हुई ओषधियों के सिवाय सब कामों के लिये शुष्क और नवी द्रव्यों की योजना करे, किसी के स्थान में यदि गीली ही लेनी पड़े तो उसे दुगुना ले ऐसा (२)सर्वत्र निश्चित है॥ ४७॥

अनुक्तावस्थायां **कालेऽनुक्ते प्रभातं स्यादङ्गेऽनुक्ते जटा भवेत्।**
परिभाषाविधिः— **भागेऽनुक्ते तु साम्यं स्यात्पात्रेऽनुक्ते च मृण्मयम्।**
द्रवेऽनुक्ते जलं ग्राह्यं तैलेऽनुक्ते तिलोद्भवम्॥ ४८॥

यदि औषध आदि सेवन करने का काल न कहा गया हो तो प्रभात का समय समझे, औषध के ग्रहण करने का अङ्ग—पत्र—छाल आदि न कहा हो तो जड़ का ग्रहण करे, ओषधियों का परिमाण न कहा हो तो सब सम भाग समझे, यदि ओषधि आदि का पात्र

---

(१) गुरुच आदि इन द्रव्यों के अतिरिक्त भी द्रव्य हैं जो आर्द्र होने पर भी द्विगुण किये जाते क्योंकि इनमें तथा अतिरिक्त द्रव्यों में तरलता अधिक नहीं होती।

अन्य द्रव्य जो आर्द्र रहते द्विगुण नहीं होते हैं जसे—

'वासा निम्बपटोल केतकिबलाकूष्माण्डकेन्दीवरी, वर्षाभूकुटजाश्च कन्दसहिताः सापूतिगन्धामृ ऐन्द्रीनागबलाकुरण्टकपुरच्छ त्रामृता सर्वदा, सार्द्रा न एवतु क चिद्द्विगुणिताः कार्येषु योज्याः

(२) इसमें आर्द्र दूनी लेने को कहे पर गुडूची आदि आर्द्र दूनी नहीं करनी चाहि और विडङ्गादि पुरना ही लेना चाहिये, इसका ध्यान अवश्य रखना चाहिये॥

कहा हो तो मिट्टी के बरतन में रखे, गुटिका आदि बनाने के लिये यदि द्रव न कहा हो तो जल लेवे और यदि तेल का नाम से स्पष्ट न हो तो तिल के तैल का व्यवहार करें।

विमर्श—इस आधे श्लोक को कई टीकाकार प्रक्षिप्त मानते हैं और ऊपर के 'चकार' से ही इसका अर्थ अध्याहरण कर लेते हैं, क्योंकि ग्रन्थान्तर में कहा है यथा—**द्रवेऽप्यनुक्ते जलमेव देयं भागेऽप्यनुक्ते समता विधेया। अङ्गेऽप्यनुक्ते विहितं तु मूलं, कालेऽप्यनुक्ते दिवसस्य पूर्वम्** ॥ ४८ ॥

पुनरुक्तद्रव्यमान-व्यवस्था— **एकमप्यौषधं योगे यस्मिन्यत्पुनरुच्यते।**
मानतो द्विगुणं प्रोक्तं तद् द्रव्यं तत्त्वदर्शिभिः ॥ ४९ ॥

यदि किसी एक ही योग में एक ही ओषधि दो बार कही गयी हो तो उसे (१)दूना ग्रहण करे भूल न समझे, यह रहस्यज्ञों का मत है ॥ ४९ ॥

रक्तश्वेतचन्दनादि-व्यवस्था— **चूर्णस्नेहासवा लेहाः प्रायश्चन्दनान्विताः।**
कषायलेपयोः प्रायो युज्यते रक्तचन्दनम् ॥ ५० ॥

चूर्ण, स्नेह याने घृत तैल आदि, आसव तथा अवलेह, गुटिका में भी (२)प्रायः श्वेत चन्दन का ग्रहण करे एवं स्वरसादि पांच कषायों की कल्पना में और लेप करने के काम में रक्तचन्दन का ग्रहण करे।

विमर्श—पर यह नियम कहीं कहीं नहीं भी लगता, जैसे—वमनाधिकार के लवङ्गादि चूर्ण में लाभकारी होने के कारण रक्तचन्दन का ग्रहण किया जाता है ॥ ५० ॥

प्रसिद्धद्रव्याणां कालातिक्रमेण हीनगुणत्वम्— **गुणहीनं भवेद्वर्षादूर्ध्वं तद्रूपमौषधम्।**
मासद्वयात्तथा चूर्णं हीनवीर्यत्वमाप्नुयात् ॥ ५१ ॥
हीनत्वं गुटिकालेहौ लभेते वत्सरात्परम्।
हीनाः स्युर्घृततैलाद्याश्चतुर्मासाधिकात्तथा ॥ ५२ ॥
ओषध्यो लघुपाकाः स्युर्निर्वीर्या वत्सरात्परम्।
पुराणाः स्युर्गुणैर्युक्ता आसवा धातवो रसाः ॥ ५३ ॥

वानस्पतिक ओषधियां यदि जङ्गल से लायी ज्यो की त्यों—बिना कोई चूर्ण आदि में लगाये रखी हों तो एक वर्ष बाद गुणहीन हो जाती हैं। चूर्ण ओषधियां दो मास के बाद वीर्य से हीन हो जाती हैं, याने न्यूनगुण हो जाती हैं। गुटिका और अवलेह एक साल बाद हीनगुण होने लगते हैं याने उनके गुणों में धीरे धीरे कमी होने लगती है। घृत-तैल आदि पक्व स्नेह चार महीने अधिक सालभर याने सोलह मास के बाद गुणहीन होने लगते हैं। (कोई २ विद्वान् 'चतुर्मासाधिकास्तथा' ऐसा पाठ लेकर चौमासा याने बरसात बीतने पर हीनगुण होना मानते हैं।) लघुपाकी औषधें एक वर्ष बाद निर्वीर्य याने बिलकुल गुणरहित हो जाते हैं।

---

(१) घृते तैले च योगे च यद् द्रव्यं पुनरुच्यते। तज्ज्ञातव्यमिहार्येण मानतो द्विगुणं भवेत्।

(२)**प्रायः** शब्द विशेषार्थ के लिये है "ऐसा कहीं नहीं भी माना जाता है" जैसे—लिखा है—"**प्रायः शब्दो विशेषार्थे क्वचिन्न्यूनेऽपि दृश्यते**" ॥

आसव, धातुओं की भस्में और रस–उपरस आदि ज्यों ज्यों पुराने होते हैं त्यों त्यों अधिक (१)युक्त होते हैं ॥ ५१–५३ ॥

रोगानुसारियुक्ता- **व्याधेरयुक्तं यद् द्रव्यं गणोक्तमपि तत्त्यजेत् ।**
युक्तद्रव्यविचारः– **अनुक्तमपि यद्युक्तं योजयेत्तत्र तद् बुधः ॥ ५४ ॥**

प्रयोग में कहीं हुई औषधों में से यदि कोई औषध जिसमें उसे प्रयोग करना है, अ न हो तो उस योग से उसे निकाल दे तथा जो औषध उस रोग में लाभकारी है उसे कहा न रहने पर भी मिला देवे । यह है ओषधियों का युक्तायुक्त विचार ।

विमर्श—आप ऐसा तभी कर सक्ते हैं जब आप ओषधितत्वज्ञ हों याने ओषधियों के गुण, वीर्य, प्रभाव, विरोध, संयोग आदि को अच्छी तरह समझते हों । अन्यथा नहीं । न झने वाले को ऐसा करने का प्रयत्न भूल कर भी न करना चाहिये । उनके लिये ग्रन्थ में अनुसार ही दवा प्रस्तुत कर प्रयोग करना निरापद है ॥ ५४ ॥

द्रव्येषु स्थानभेदेन- **आग्नेया विन्ध्यशैलाद्याः सौम्यो हिमगिरिर्मतः ।**
गुणभेदः— **अतस्तदौषधानि स्युरनुरूपाणि हेतुभिः ॥**
अन्येष्वपि प्ररोहन्ति वनेषूपवनेषु च ॥ ५५ ॥

विन्ध्य, सह्याद्रि, मलय आदि दक्षिण के पर्वत उष्ण कटिबन्ध में होने के कारण उष्ण हैं तथा हिमालय उष्ण कटिबन्ध से दूर होने के कारण सौम्यगुणभूयिष्ठ है, इसलिये उत्पन्न हुई ओषधियां भी उनके उत्पत्तिस्थान आदि के अनुरूप गुणवाली होती हैं। विन्ध्य आदि में उत्पन्न ओषधियां उष्णवीर्य वाली, और हिमालय में उत्पन्न ओषधियां वीर्य वाली होती हैं । अन्यान्य वनों में उत्पन्न ओषधियां भी उनके स्थान तथा ऋतु आ अनुरूप गुणवाली होती हैं ।

विमर्श—तात्पर्य यह कि उष्णवीर्य की ओषधियां विन्ध्य आदि पर्वतों से तथा सौम वाली ओषधियां हिमालय पर्वत से ग्रहण करे ॥ ५५ ॥

द्रव्याणां ग्रहणविधिः- **गृह्णीयात्तानि सुमनाः शुचिः प्रातः सुवासरे ॥ ५६ ॥**

---

(१) घृतमब्दात्परं किञ्चिद्धीनवीर्यत्वमाप्नुयात् । तैलं पक्वमपक्वं वा चिरस्थायि गुणाधिक
एतेषु यवगोधूमतिलमाषा नवा हिताः । रूढाः पुराणा विरसा न तथा गुणकारिणः ॥
हीनं तु स्याद् घृतं पक्वं तैलं वा वत्सरात्परम् ॥

औषधों की गुणहीनता जो बताई गयी है वह उचित है, पर अगर वनौषधियों के चूर्णादिकों को सुरक्षित रक्खा जाय तो अवधि के पश्चात् भी गुणवाली रह सकती हैं । मू ओषधियों में जल का अंश रहता है, अतः वर्ष भर में विगड़ कर गुणहीन हो जाती हैं। वारिष्ट में मद्यांश रहता है और पुराना होने से उसमें की तीक्ष्णता एवं मादकता कम हो है । इससे रोगी के लिये लाभप्रद पुराना ही होता है ! ऐसे ही रस–धातुओं में भी पुराना से तीक्ष्णता कम होती है अस्तु ये भी पुराने व्यवहृत होते हैं ॥

आदित्यसंमुखो मौनी नमस्कृत्य शिवं हृदि ।
साधारणधराद्द्रव्यं गृह्णीयादुत्तराश्रितम् ।। ५७ ।।

शुभ दिन में प्रातःकाल स्वस्थचित्त होकर साधारण भूमि में उत्पन्न हुई उत्तरदिशा की ओषधि को मौनावलम्बन कर पूर्व की ओर मुख कर भगवान् शिव को भक्तिपूर्वक मन ही मन नमस्कार कर ओषधि का ग्रहण करे।

विमर्श—साधारण(१) भूमि–जाङ्गल और आनूप दोनों देशों के लक्षणों से युक्त रहती है। इसलिये उनमें उत्पन्न ओषधियां भी सर्वगुणयुक्त होती हैं और सब स्थानों में प्रयुक्त हो सक्ती हैं। अतः जहां तक सम्भव हो साधारण देश ही की ओषधियां ग्रहण करें ॥ ५६–५७ ॥

कुत्सितस्थानोद्भव- **वल्मीककुत्सितानूपश्मशानोषरमार्गजाः ।**
द्रव्याणां परित्यागः- **जन्तुवह्निहिमव्याप्ता नौषध्यः कार्यसिद्धिदाः ।। ५८ ।।**

बांबी (सर्प के रहने का स्थान), बीभत्स या घृणित स्थान, जलप्राय स्थान या दलदल, श्मशान, रेतीली, ऊषर भूमि तथा रास्ते पर उत्पन्न ओषधियाँ और कीड़ों की खायी हुई, दावाग्नि से झुलसी हुई और पाला आदि से मारी हुई ओषधियाँ कार्य सिद्ध देने वाली नहीं होतीं। याने गुणहीन होने के कारण से कोई काम की नहीं होती हैं ॥ ५८ ॥

कार्यभेदेन द्रव्यग्रहणे ऋतुविशेषः— **शरद्यखिलकार्यार्थं ग्राह्यं सरसमौषधम् ।**
विरेकवमनार्थं च वसन्तान्ते समाहरेत् ।। ५९ ।।

शरद ऋतु में सब कामों में बरतने वाली ओषधियाँ (२)ग्रहण करनी चाहिये। क्योंकि इस समय ओषधियां रस से पूर्ण रहती हैं। वसन्त ऋतु के अन्त भाग में वमन और विरेचन की ओषधियां संग्रह करे ॥ ५९ ॥

अनुक्तावयवद्रव्याणां ग्रहणेऽङ्गविचारः— **अतिस्थूलजटा याः स्युस्तासां ग्राह्यास्त्वचो बुधैः ।**
गृह्णीयात्सूक्ष्ममूलानि सकलान्यपि बुद्धिमान् ।। ६० ।।
न्यग्रोधादेस्त्वचो ग्राह्याः सारः स्याद्बीजकादितः ।
तालीसादेश्च पत्राणि फलं स्यात्त्रिफलाऽऽदितः ।।
धातक्यादेश्च पुष्पाणि स्नुह्यादेः क्षीरमाहरेत् ।। ६१ ।।

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायां पूर्वखण्डे परिभाषाकथनं नाम प्रथमोऽध्यायः ।

बहुत मोटी जड़वाले वृक्षों की छाल ग्रहण करे। जैसे–बड़, नीम, आम आदि। बहुत ही सूक्ष्म जड़ वाली ओषधियों का सर्वाङ्ग याने जड़, पत्ती–फूल आदि सबको ग्रहण करे। बड़

---

(१) **साधारण भूमि के लक्षण**—"सर्वलक्षणसम्पन्ना भूमिः साधारणी स्मृता। द्रव्याणि तत्र तत्रैव तद्गुणाश्च विशेषतः ॥" (सु० सू०)। (२) **ऋतु के अनुसार वृक्ष का अङ्ग**—ग्रीष्मे मञ्जरिकाग्रेषु वर्षासु दलचर्मणि। वसन्ते मूलमाश्रित्य वृक्षाणां तु रसस्थितिः।

आदि वृक्षों का याने बड़, पीपल, आम, जामुन आदि की छाल ग्रहण करे। विजयसार आ
याने विजयसार, खैर, बबूल आदि वृक्षों का सार याने बीच का हिस्सा ग्रहण करे। ता
आदि याने तालीश, पत्रज, घीग्वार, पान तथा पत्रशाक प्रभृति का पत्र ग्रहण करे। त्रि
प्रियंगु, मैनफल प्रभृति का फल ग्रहण करे। धाय आदि का फूल तथा थूहर, सीज़ आदि
दूध ग्रहण करना चाहिये ॥ ६०–६१ ॥

इति श्रीप्रयागदत्तायुर्वेदाचार्यकृतायां सुबोधिनीनामिकायां श्रीशार्ङ्गधरसंहिता-भाषाटीकायां परिभाषाकथनं नाम प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः ।

औषधभक्षणार्हकालस्य सामान्यनिर्देशः— **भैषज्यमभ्यवहरेत्प्रभाते प्रायशो बुधः ।**
कषायांश्च विशेषेण तत्र भेदस्तु दर्शितः ॥ १ ॥

बुद्धिमान वैद्य प्रायः सवेरे ही औषध का भक्षण करे। प्रायः करके कषायों की याने स्व
कल्क, क्वाथ, हिम और फाण्ट इन पांच कषायों का सेवन विशेष करके प्रातःकाल करे।
साधारण नियम है। रोग आदि का विचार करके औषधि देने के समय में भेद होता
आगे दिखलाते हैं ॥ १ ॥

औषधभक्षणे पञ्चविधकालनिर्देशः— **ज्ञेयः पञ्चविधः कालो भैषज्यग्रहणे नृणाम् ।**
किंचित्सूर्योदये जाते तथा दिवसभोजने ॥ २ ॥
सायन्तने भोजने च मुहुश्चापि तथा निशि ॥ ३ ॥

मनुष्यों के औषध–भक्षण करने के समय का(१) पांच भेद है। **पहला**–कुछ कुछ सू

---

(१) औषधि के भक्षण में ५ तरह का समय निर्धारित करने का अभिप्राय यह है-
रोग, अवस्था, दोष, भेद इत्यादि जिसे अलग २ आगे कहे हैं। पर अतिपाति व्याधियों के
नहीं, ऐसा दूसरे आचार्य का मत है। यथा–**"अतिपातिषु रोगेषु नेच्छेद्विधिमिमां भि**
प्रदीप्तागारवच्छीघ्रं ततः कुर्यात् प्रतिक्रियाम्" ॥ उपर्युक्त विधि के अनुसार केवल अति
रोगों को छोड़ शेष स्थानों में वही ५ समय निर्धारित कर कार्य करना चाहिये।

१—**प्रथम काल—**प्रातः कषायादि तथा वमन विरेचनादि के लिये उत्तम है। २–
तीय काल—दिन के भोजन के समय जो ५ प्रकार से है—जैसे–१. **"भोजनाग्रे सदा**
लवणार्द्रकभक्षणम्"। २. **भोजनमिश्रं यथा हिङ्गु घृतादिकम्।** ३. **भोजनमध्ये**
पानीयप्रभृतिकम्। ४. **भोजनान्ते यथा लवङ्गहरीतक्यादि।** ५. **भोजनपूर्वान्ते**
यथा धात्रीलोहमम्लपित्ते। इस तरह दूसरा काल ५ तरह से विभक्त है। ३—**तृतीय का**
(सायंकाल का भोजन समय) यह भी तीन तरह का है—१. भोजन के आदि में, २.

ोने पर यह काल प्रायः करके **कषायों** के लिये है जो कि ऊपर कहा गया है। **दूसरा काल-** ेन के भोजन के समय का है, इसमें भी भेद है, भोजन के आगे, मध्य में, पीछे या भोजन ा साथ साथ यह आगे स्पष्ट करेंगे। **तीसरा काल—**संध्या के भोजन के समय का है— सका भी दूसरे काल के समान भेद है। **चौथा काल—**बारंबार देने का है। इसके भी दो द—अन्न के साथ और विना अन्न के, ऐसे हैं। **पांचवा समय—**रात्रि का है।

विमर्श—ये नियम रोग के साधारण अवस्था या मृदु अवस्था के समझें। सन्निपात ादि रोगों में जो कि पलभर में ही रोगी को समाप्त कर देते हैं, ये नियम नहीं लगते। ऐसी ालत में जैसे कि—आग लगे घर पर विना तीन-पांच किये ही पानी छोड़ा जाता है, उसी कार विना कोई नियम के ही शीघ्रातिशीघ्र ओषधि देने की व्यवस्था करनी पड़ती है। नहीं इधर ओषधि के काल की प्रतीक्षा करते ही उधर रोगी यमराज के यहां सिधार जायंगे॥२-३॥

तत्र प्रथमः कालः—**प्रायः पित्तकफोद्रेके विरेकवमनार्थयोः।**
लेखनार्थं च भैषज्यं प्रभाते तत्समाहरेत्।
एवं स्यात्प्रथमः कालो भैषज्यग्रहणे नृणाम्॥ ४॥

यदि पित्त और कफ अधिक उत्कट हो गये हों तो पित्त को विरेचन तथा कफ को वमन(१) रा दूर करने के लिये प्रातः ही ओषधि दें। प्रायः शब्द से अन्य समय में भी वमनादिक के ये औषध दे सक्ते हैं। जैसे खाते ही यदि ज्वर चढ़ जाय तो वमन करा दे। लेखन याने पों का पतला करना या क्षीण करना इसके लिये प्रातः ही औषध दे, अन्य समय नहीं। ह दवा लेने का पहला समय है॥ ४॥

द्वितीयः कालः—**भैषज्यं विगुणेऽपाने भोजनाग्रे प्रशस्यते।**
अरुचौ चित्रभोज्यैश्च मिश्रं रुचिरमाहरेत्॥ ५॥
समानवाते विगुणे मन्देऽग्नावग्निदीपनम्।
दद्याद्भोजनमध्ये च भैषज्यं कुशलो भिषक्॥ ६॥
व्यानकोपे च भैषज्यं भोजनान्ते समाहरेत्।
हिक्काऽऽक्षेपककम्पेषु पूर्वमन्ते च भोजनात्॥ ७॥
एवं द्वितीयकालश्च प्रोक्तो भैषज्यकर्मणि॥ ८॥

मध्य में, ३. भोजनान्त में। ४—**चतुर्थ काल—**बार बार कहा गया है, वह भी दो तरह का ता है। १. अन्न के साथ २. अन्नरहित। ५. **पञ्चम काल—**यह रात्रि में कहा गया है। ध का ध्येय रोगी की अवस्था पर होना चाहिये। जैसी अवस्था हो उसी के अनुसार औषध काल-मात्राऽऽदि की व्यवस्था करे।

(१) उपर्युक्त क्रम से अन्य समय में भी वमन कराने का शास्त्रीय मत है, जैसे—**"सद्यो- क्तस्य वा जाते ज्वरे सन्तर्पणोत्थिते। वमनं वमनार्हस्य शस्तमित्याह वाग्भटः"॥** ा—**"वमनेऽतिप्रवृत्ते तु हृद्यं कार्यं विरेचनम्"॥**

अब द्वितीय अन्न के समय का काल कहते हैं–यदि गुदस्थित अपान वायु बिगड़ ग तो उसके लिये औषध दिन में भोजन करने के पहले लेना चाहिये। यदि अरुचि हो तो प्रकार के सुस्वादु और आनन्ददायक भोजन के साथ जैसा कि रोगी को रुचिकर हो मि औषध सेवन करना चाहिये। यदि नाभिस्थित समान वायु कुपित हो गया हो, अथवा मन्द पड़ गयी हो तो वायुनाशक तथा अग्नि को बढ़ाने की ओषधियां भोजन के मध्य में को दे। यदि सर्वाङ्गस्थित व्यान वायु का कोप हो तो भोजन के अन्त में औषध भक्षण हिचकी, आक्षेपक तथा कम्प आदि वातरोग में भोजन के पूर्व तथा अन्त दोनों समय में सेवन करावे। इस प्रकार विचार कर कुशल वैद्य औषध देवे। यह दिन के भोजन का देने का समय दूसरा काल है ॥ ५–८ ॥

तृतीयः कालः—**उदाने कुपिते वाते स्वरभङ्गादिकारिणि।**
ग्रासे ग्रासान्तरे देयं भैषज्यं सान्ध्यभोजने ॥ ९ ॥
प्राणे प्रदुष्टे सान्ध्यस्य भुक्तस्यान्ते च दीयते।
औषधं प्रायशो धीरः कालोऽयं स्यात्तृतीयकः ॥ १० ॥

अब सायम् के भोजन का तृतीय काल कहते हैं—कण्ठस्थित उदानवायु के प्रकोप स्वरभङ्ग, मूकत्व तथा कण्ठरोग आदि में ग्रास ग्रास के साथ अथवा दो ग्रास के मध्य में सेवन करावे। हृदयस्थित प्राण वायु के कोप होने से संध्या के भोजन के अन्त में औषध यह औषध सेवन का तीसरा काल है।

विमर्श—यहां पर ५–१० श्लोकों के पांच भेदों का अलग २ समय कहा गया है, तथा कफ का नहीं। इसका अर्थ यह है कि जिसप्रकार वायु असंख्य तथा चित्रविचित्र को पैदा करता है वैसे पित्त या कफ नहीं करते तथा वायु ही दोषों में प्रधान और (१)चालक है। इस कारण उसके प्रत्येक भेद का जानना आवश्यक है ॥ ९–१० ॥

चतुर्थः कालः—**मुहुर्मुहुश्च तृट्च्छर्दिहिक्काश्वासगरेषु च।**
सान्नं च भेषजं दद्यादिति कालश्चतुर्थकः ॥ ११ ॥

अब बारंबार औषध देने का चौथा काल कहते हैं–प्यास, वमन, हिचकी, श्वास तथ खाये रोगी को बारंबार अन्न के साथ और अन्य प्रकार से कहीं कहीं बिना अन्न के भी देवे। यह औषध खिलाने का चौथा काल है ॥ ११ ॥

---

(१) यथा—“**एको दोषस्तु कुपितो दोषानन्यान्प्रकोपयेत्।**”
वायु की प्रधानता—**स्वयम्भूरेष भगवान्वायुरित्यभिशब्दितः।**
अचिन्त्यवीर्यो दोषाणां नेता रोगसमूहराट् ॥
तथा च—**पित्तं पङ्गु कफः पङ्गुः पङ्गवो मलधातवः।**
वायुना यत्र नीयन्ते तत्र गच्छन्ति मेघवत् ॥

पञ्चमः कालः— **ऊर्ध्वजत्रुविकारेषु लेखने बृंहणे तथा ।**
पाचनं शमनं देयमनन्नं भेषजं निशि ।
इति पञ्चमकालः स्यात् प्रोक्तो भैषज्यकर्मणि ॥ १२ ॥

अब रात के समय का पांचवां काल कहते हैं–ऊर्ध्वजत्रु याने गले के मूल से ऊपर के रोगों (शिर, आंख, कान, नाक, मुख आदि के रोगों) में तथा लेखन और बृंहण करने में रात को बिना भोजन औषध देनी चाहिये। यहां **निशि** शब्द से कोई कोई सारी रात का अर्थ लगाते हैं पर प्रयोग में सिर्फ प्रथम प्रहर में ही ओषधि दी जाती है। औषधि देने का यह पांचवा काल है ॥ १२ ॥

द्रव्ये रसादयः पञ्चा- **द्रव्ये रसो गुणो वीर्यं विपाकः शक्तिरेव च ।**
वस्थाः— **संबन्धेन क्रमादेताः पञ्चावस्थाः प्रकीर्त्तिताः ॥ १३ ॥**

अब द्रव्य में रसादिक की विशेषता दिखाते हैं कि—द्रव्य में रस, गुण, वीर्य, विपाक और शक्ति (प्रभाव) ऐसे क्रम से पांच अवस्थाएँ होती हैं।

विमर्श—रस जो जिह्वा से जाना जाय उसे **रस** कहते हैं। इनकी उत्पत्ति जल और पृथ्वी से तथा अन्यान्य महाभूतों के संयोग से हुई है, ये छः हैं। **गुण**—बीस हैं–गुरु, मन्द, हिम, स्निग्ध, श्लक्ष्ण, सान्द्र, मृदु, स्थिर, सूक्ष्म और विशद तथा इनके विपरीत लघु, तीक्ष्ण, उष्ण, रूक्ष, खर, द्रव, कठिन, सर, स्थूल और पिच्छिल। **वीर्य**–दो हैं, उष्ण और शीत। **विपाक**–जठराग्नि के संयोग से खाए हुए द्रव्यों का जो परिणाम होता है उसे **विपाक** कहते हैं। यह तीन हैं—मीठा, खट्टा और कडुवा। **द्रव्यों की शक्ति** यह अचिन्त्य हैं जैसे कि मणि–मन्त्र आदि का। ये पांच अवस्थायें द्रव्यों की होती हैं।

जो गुण एवं कर्म का आश्रयभूत एवं समवायिकारण होता है उसे **द्रव्य** कहते हैं। अथवा यों कह सकते हैं कि जो समवायिकारण क्रिया एवं गुण से युक्त हो वही **द्रव्य** है। **वैशेषिक** में भी कहा है **"क्रियावद् गुणवत्समवायिकारणं द्रव्यम्"** इति। यह द्रव्य सामान्य का लक्षण है। आयुर्वेद में प्रयुक्त होने वाले **द्रव्य** पञ्चभूतात्मक होते हैं। इनके प्राप्तिस्थान के भेद से तीन प्रकार होते हैं—**स्थावर, जङ्गम** और **पार्थिव**। **स्थावर**–यथा–जड़, छाल, सार, गोंद, नाल, स्वरस, पत्र, दूध, क्षार, फल, फूल, भस्म, तेल आदि। **जङ्गम**–यथा–शहद, दूध, पित्त, स्नेह, मज्जा, रक्त, मांस, हड्डी, मल, मूत्र, चमड़ा, वीर्य, स्नायु, सींग तथा नख आदि। **पार्थिव**—यथा–सोना, चाँदी, ताम्बा, सीसा, रांगा, लोहा आदि **धातु**, उनके यौगिक तथा अन्यान्य खनिज द्रव्य। रस, गुण, वीर्य, विपाक तथा प्रभाव, इन सब में द्रव्य ही मुख्य है क्योंकि वह सबका (१)आधारभूत है ॥ १३ ॥

---

(१) द्रव्य की **पाको नास्ति विना वीर्याद्वीर्यं नास्ति विना रसात् ।**
प्रधानता— **रसो नास्ति विना द्रव्याद् द्रव्यं श्रेष्ठतमं स्मृतम् ॥** इति।

तत्र रसः—**मधुरोऽम्लः पटुश्चैव कटुतिक्तकषायकाः ।**
इत्येते षड्रसाः ख्याता नानाद्रव्यसमाश्रिताः ॥ १४ ॥

मीठा, खट्टा, नमकीन, चरपरा, कड़वा और कसैला ये छः (१) रस हैं। जो क्रि द्रव्यों के आश्रय में रहते हैं, कभी स्वतन्त्र नहीं रह सक्ते।

द्रव्य के कहने से किस २ का ग्रहण होता है तथा स्थावर द्रव्य—

"मूलत्वक्सारनिर्यासनालस्वरसपल्लवाः। क्षीरं क्षारं फलं पुष्पं भस्म तैलानि कण्टक पत्राणि शृङ्गकन्दानि प्ररोहास्तूद्भिदादयः। द्रव्यशब्देन गृह्यन्ते जङ्गमाः पार्थिवास्त

जङ्गमद्रव्यम्—**"मधूनि गोरसाः पित्तं वसा मज्जाऽसृगामिषम् ।**
विण्मूत्रचर्मरेतोऽस्थि स्नायुश्शृङ्गनखं खुराः ॥
जङ्गमेभ्यः प्रयुज्यन्ते केशा लोमानि रोचनाः" ॥

पार्थिवद्रव्य—**"सुवर्णं समलाः पञ्च लोहाश्चेति कलासु च ।**
मनःशिलाले मणयो लवणं गरिकाञ्जनम् ॥ १३ ॥

(१) जिस प्रकार द्रव्य के वर्णन में द्रव्य की प्रधानता दिखाई गयी है उसी प्रका वर्णन में भी शास्त्रों में रस को प्रधान माना है। क्योंकि रस ही सार वस्तु है।

रसों से दोषों की उत्पत्ति और उपशम—

सं०	रूप	उदाहरण	सं०	रूप	उदाह
१	कटु-तिक्त-कषाय	वात की उत्पत्ति,	४	मधुर–अम्ल–लवण	वात की
२	कटु-अम्ल-लवण	पित्त ,,	५	मधुर–तिक्त–कषाय	पित्त
३	मधुर–अम्ल–लवण	कफ ,,	६	कटु–तिक्त और कषाय	कफ

ऐसे तीन३ रस एक २ दोष को उत्पन्न करते हैं और तीन२ एक २ दोष को शान्त हैं। चरक-सुश्रुत आदि के मत से ६ रसों के ६३ भेद हैं जो उदाहरण के लिये दिये जा

एक २ रसके ६ भेद—(रूप) हैं जैसे—

सं०	रूप	उदाहरण	सं०	रूप	उदाहरण
१	मधुररस	गोधूम–गोदुग्धादि	४	कटु रस	चव्यादि
२	अम्लरस	आम–नीबू	५	कषाय रस	न्यग्रोधादि
३	लवण रस	सैन्धवादि	६	तिक्त रस	निम्बादि

दो २ रस के १५—

सं०	रूप	उदाहरण	सं०	रूप	उदाहरण
१	मधुराम्लरस	कपित्थादि	५	मधुर–कषाय	तैलं, धन्वनफल
२	मधुर–लवण	उष्ट्रीक्षीरादि	६	अम्ल–लवण	एडकादि, ऊषक
३	मधुर–तिक्त	श्रीवास-सर्जरसादि	७	अम्ल–तिक्त	सुरादिक
४	मधुर–कटु	कुक्कुर-शृगालमांसादि	८	अम्ल–कटु	चुक्रादिक

विमर्श—यद्यपि यहां पर इनके लक्षण नहीं कहे हैं तो भी शास्त्रों से यहां कुछ लक्षण

सं०	रूप	उदाहरण	सं०	रूप	उदाहरण
९	अम्लकषाय	हस्तिनीदध्यादि	१३	तिक्तकटु	कर्पूर–जातीफलादि
१०	लवण–तिक्त	त्रपु–सीसादि	१४	तिक्त–कषाय	हस्तिनी–घृतादि
११	लवण–कटु	गोमूत्र–स्वर्जिकादि	१५	कटु–कषाय	भल्लातकमज्जा हरितालादि
१२	लवण–कषाय	समुद्रफेनादि			

तीन तीन रस के २०—

सं०	रूप	उदाहरण	सं०	रूप	उदाहरण
१	म. अ.लवण	हस्तिनीमांसादि	११	अ. ल.तिक्त	हस्ति–मृग–मूषादि
२	म. अ. तिक्त	गोधूमोत्थसुरादि	१२	अ. ल. कटु	रौप्य–शिलाजत्वादि
३	म. अ. कटु	शल्यमांसादि	१३	अ. ल. कषाय	हस्तिनीदधि
४	म. अ. कषाय	मस्तु–तक्रादि	१४	अ. ति कटु	मरिचसंस्कृतसुरादि
५	म. ल. तिक्त	शम्बूकादिमांस	१५	अ. ति. कषाय	करिमांसयुतसुरादि
६	म. ल. कटु	आपूपादि	१६	अ. कटु. कषाय	अविमूत्रम्
७	म. ल. कषाय	ताप्य–कासीसादि	१७	ल. ति. कषाय	समुद्रफेनसमुद्रस्थम्
८	म. ति. कटु	कटुकाम्लभक्तादि	१८	ति. क. कषाय	अरुष्कासत्ररोमकादि
९	म. ति. कषाय	गुडूच्यादि	१९	ति. क. कषाय	कृष्णागुरुसुरदारु-स्नेहादि
१०	म. क. कषाय	एरण्डतैलादि			

चार २ रस के १९—

सं०	रूप	उदाहण	सं०	रूप	उदाहरण
१	म.अ. ल. ति	गोमूत्रैकशफक्षीरादि	९	म. ति. क. कषाय	तिलगुग्गुल्वादि
२	म. अ. ल. कटु	गोमूत्रान्वितशिला-जत्वादि ।	१०	अ. ल. ति कटु	सैन्धवसौवर्चलान्वि-तशुकमांसादिसु-रादिकम्
३	म. अ. ल. कषाय	सैन्धवान्विततक्रादि			
४	म. अ. ति. कटु	लशुनान्वित सुराऽऽदि	११	अ. ल. ति. कषाय	उद्भिदलवणान्तितं शुकमांसप्रभृति
५	म. अ. ति, कषाय	कम्ब्वादिकम्			
६	म. अ. क. कषाय	काञ्जिकान्वितैरण्ड-तैलादि	१२	अ० ल० क० कषा	सौवर्चलान्वितं हस्ति-नीदध्यादि
७	म. ल. ति. कटु	उदुम्बरान्वितं यवादि	१३	अ. ति. क. कषाय	बालमूलकाक्तहस्ति-नीदध्यादि
८	म. ल. ति. कषाय	समुद्रफेनशर्करायुत-चन्दनम्	१४	ल. ति. क. कषाय	रोमकबालबिल्वा-दिकम्
८	म. ल. क. कषाय	गोमूत्रान्विततैलादि			

ज्ञानार्थ लिखते हैं–जिसके आस्वादन से मुख लिहस सा जाता है, आनन्द आता है, तृप्ति है वह मधुर रस है। जैसे–शहद, चीनी मिश्री, गुड़ आदि। जिसके आस्वादन से आंख, और भौंहों का संकोच होता है तथा दांतों में हर्ष होता है वह **खट्टा** रस है। यथा– आंवले, करोंदे, अमलवेद आदि। जिसके आस्वादन से रुचि होती है, आंख और मुँह में आता है, गाल और गले में जलन उत्पन्न होता है वह **नमकीन** रस है, यथा—सैंधा आदि। जिसके आस्वादन से जिह्वाग्र बँधता है, उद्वेग होता है, सिर भन्ना जाता है, से पानी निकलने लगता है वह **चरपरा** रस है, जैसे–लाल मिर्च, कालीमिर्च, पीपर, ल आदि। जिसके आस्वादन से मुख विरस हो जाताहै तथा गललक्षण दोष उत्पन्न हो है वह कड़वा रस है। जैसे–नीम, गुरुच, पटोल, करेले प्रभृति। जिसके आस्वादन से मुख जाता है, जीभ स्तंभित हो जाती, गला रुक जाता है वह कसैला रस है। जैसे–कच्चा त्रिफला, जामुन, मौलसिरी, पालख शाक प्रभृति ॥ १४ ॥

मधुरादिरसोत्पत्तिः—**धराऽम्बुक्ष्माऽनलजलज्वलनाकाशमारुतैः।**
वाय्वग्निक्ष्माऽनिलैर्भूतद्वयै रसभवः क्रमात् ॥ १५ ॥

इन प्रत्येक रस की उत्पत्ति दो दो महाभूतों से हुई है–पृथ्वी और जल से **मधुर**, पृथ्वी और अग्नि से **अम्ल रस,** जल और अग्नि से **लवण रस,** आकाश और पव **चरपरा रस,** वायु और अग्नि से **कड़वा रस,** पृथ्वी और पवन से **कसैला** रस उत्पत्ति हुई है ॥ १५ ॥

गुणाः—**गुरुः स्निग्धश्च तीक्ष्णश्च रूक्षो लघुरिति क्रमात्।**
धराऽम्बुवह्निपवनव्योम्नां प्रायो गुणाः स्मृताः ॥ १६ ॥
एष्वेवान्तर्भवन्त्यन्ये गुणेषु गुणसंचयाः ॥ १७ ॥

भारीपन, स्निग्ध, तीक्ष्ण, रूखा, लघु, ये पांच (१) गुण क्रमतः पृथ्वी का भारीपन,

पांच २ रस के ७—

सं०	रूप	उदाहरण
१	म. अ. ल. ति. कटु	आम्रकरमर्दान्वित-भृष्टवृन्ताकफलादि
२	म. अ. ल. ति. कषाय	उद्भिदान्वित-तक्रादिकम्
३	म. अ. ल. क. कषाय	त्रिकटुयवान्वित-तक्रादिकम्
४	म. अ. ति. क. कषाय	हरीतकीफ दिक
५	म. ल. ति. क. कषाय	रसोनादि
६	अ. ल. ति. क. कषाय	भल्लातक शिला मिश्र
७	अ. ल. ति. क. कषाय	पारदः

(१) इन्हीं ५ गुणों के अन्तर्गत श्लक्ष्ण, सान्द्र और मृदु तथा सत्त्व, रज और तम **महागुण** भी कहे गये हैं।

का स्निग्ध, अग्निका तीक्ष्ण, वायु का रूखा तथा आकाश का हलकापन—ये गुण मुख्य हैं। इन गुणों के अन्तर्गत ऊपर कहे मन्द आदि गुण आ जाते हैं। इनके अतिरिक्त व्यवायी और विकासी दो और गुण भी हैं, ये भी इन्हीं में आ जाते हैं॥ १६-१७॥

वीर्यम्—**वीर्यमुष्णं तथा शीतं प्रायशो द्रव्यसंश्रयम्।**
तत्सर्वमग्नीषोमीयं दृश्यते भुवनत्रये।
अत्रैवान्तर्भविष्यन्ति वीर्याण्यन्यानि यान्यपि॥ १८॥

क्योंकि यह सारा जगत ही **अग्नीषोमीय** है याने स्थावर—जङ्गम आदि भूतग्रामों की उत्पत्ति अग्नि याने तेज से तथा सोमीय वीर्य आदि से हुई है। **रज** अग्न्यात्मक है और **वीर्य** सोमात्मक है, इनके संयोग से जन्तुओं की उत्पत्ति **अग्नीषोमीय** ही है। सूर्य की उष्णता पाकर उष्ण अग्नि गुण युक्त पृथ्वी तथा शीत सोमगुण युक्त मेघ से स्थावरों की उत्पत्तिभी अग्नीषोमीय ही है। इस तरह यह त्रिभुवन ही अग्नीषोमात्मक है। इस लिये इन्हीं की अधिकता से (१)वीर्य भी द्रव्यों में दो प्रकार का होता है—उष्ण और शीत। याने तेजोगुण-भूयिष्ठ द्रव्य उष्णवीर्य वाला और सोमगुण-भूयिष्ठ द्रव्य शीतवीर्य वाला होता है। अन्यान्य कुछ आचार्य आठ प्रकार के वीर्य मानते हैं, यथा—गुरु, स्निग्ध, हिम, मृदु, लघु, रूक्ष, उष्ण और तीक्ष्ण, किन्तु ये सब अग्नि और सोम दोनों में अन्तर्भुक्त हो जाते हैं, इस लिये वीर्य दो ही हैं—उष्ण और शीत॥ १८॥

---

(१) जिस तरह द्रव्य तथा रस की प्रधानता कही गयी है—वैसे ही कई आचार्यों ने सब से प्रधान वीर्य को ही माना है। क्योंकि औषध—कर्म में संशोधन, संशमन, संग्राहण, दीपन, बृंहण रसायनादि कर्म औषध के वीर्य की प्रधानता से ही है।

१—जैसे-कुलत्थ-कषाय और कटु होने पर भी वात को नहीं बढ़ाता है, क्योंकि वीर्य उसका उष्ण है अतः वातनाशक होता है। २—इक्षुरस मधुर होने पर भी वायु को शान्त नहीं करता, क्योंकि शीतवीर्य है अतः वात को बढ़ाता है। ३—पीपल-चरपरी होने पर भी पित्तको नहीं बढ़ाती है—क्योंकि इसका वीर्य शीत है अतः पित्त को शान्त ही करती है। ४—काकमाची-कड़वी होने पर भी पित्त को नहीं शान्त करती है क्योंकि उष्णवीर्य है अतः पित्त को बढ़ाती है। ५—कैंत का फल (कपित्थ) अम्ल होने पर भी कफ को नहीं बढ़ाता क्योंकि वीर्य उसका रूक्ष है अतः कफ को शान्त करता है। ६—मूली तीक्ष्ण होने पर भी कफ को शान्त नहीं करती क्योंकि उसका वीर्य स्निग्ध है अतः कफ को बढ़ाती है।

अन्यच्च—

ये रसा वातशमना भवन्ति यदि तेषु वै। रौक्ष्यलाघवशैत्यानि न ते हन्युः समीरणम्॥
ये रसाः पित्तशमना भवन्ति यदि तेषु वै। तैक्ष्ण्यौष्ण्यलघुताश्चैव न ते तत्कर्मकारिणः॥
ये रसाः श्लेष्मशमना भवन्ति यदि तेषु वै। स्नेहगौरवशैत्यानि बलासं बर्द्धयन्ति ते॥

इन सब नियमों से वीर्य ही प्रधान है।

विपाकः—**त्रिधा विपाको द्रव्यस्य स्वाद्वम्लकटुकात्मकः ।**
मिष्टः पटुश्च मधुरमम्लोऽम्लं पच्यते रसः ॥ १९ ॥
कषायकटुतिक्तानां पाकः स्यात्प्रायशः कटुः ।
मधुराज्जायते श्लेष्मा पित्तमम्लाच्च जायते ॥ २० ॥
कटुकाज्जायते वायुः कर्माणीति विपाकतः ॥ २१ ॥

उदराग्नि के संयोग से भुक्त द्रव्यों में जो रूपान्तर होता है उसे (१)**विपाक** कहते हैं। यह है कि हम जो कुछ खाते पीते हैं, वे सब ज्यों का त्यों शरीर में नहीं मिल सक्ते। ऊपर उदर तथा अन्त्रों में पाचक रसों की तथा पित्तरस की क्रियायें होकर शरीर में मि योग्य पदार्थों में परिणत हो जाते हैं। इस परिवर्त्तन से जो रसान्तर की उत्पत्ति होती है **विपाक** कहते हैं। विपाक याने उदराग्नि के संयोग से जो प्रत्येक द्रव्य का एक विशिष्ट होता है। यह तीन तरह का होता है—स्वादु, अम्ल और कटु। मधुर और नमकीन रसों विपाक **मधुर** होता है। अम्लरस का विपाक **अम्ल** ही होता है तथा कषाय, कटु और ति रसों का विपाक प्रायः **कटु** ही होता है। **मधुर विपाक** से कफ की वृद्धि होती है, **खट्टा वि पाक** से पित्त की और **कटु विपाक** से वायु की वृद्धि होती है। इस प्रकार तीनों विपाक अ कर्म से तीनों दोषों को उत्पन्न करते हैं ॥ १९–२१ ॥

प्रभावः—**प्रभावस्तु यथा धात्री लकुचस्य रसादिभिः ।**
समाऽपि कुरुते दोषत्रितयस्य विनाशनम् ॥ २२ ॥
क चित्तु केवलं द्रव्यं कर्म कुर्यात्प्रभावतः ।
ज्वरं हन्ति शिरोबद्धा सहदेवीजटा यथा ॥ २३ ॥

द्रव्यों में जो एक शक्ति होती है उसे ही (२)**प्रभाव** कहते हैं। प्रभाव से जो काम है

---

(१) जिस प्रकार रसादिकों की प्रधानता कही गयी है उसी प्रकार कुछ आचार्य **विपा** को ही प्रधान मानते हैं। क्योंकि सेवन किया हुआ पदार्थ विना विपाक के गुण या दोष उत्पन्न कर सकता। पहले विपाक होता है तब उसके अनुसार उचित विपाक से **गुण**, मि विपाक से **दोष** उत्पन्न होता है। अतः इस मत से विपाक ही प्रधान है।

(२) जिस प्रकार रसादिकों की प्रधानता है उसी प्रकार प्रभाव भी है—मणि—मन्त्र—औ धियों का प्रभाव विख्यात ही है। ओषधियों का प्रभाव आगम से जाना जाता है। इसके लि प्रमाण की आवश्यकता नहीं। जैसे—१ लहसुन के दानों की माला बना कर गले में पहन से बच्चों का सूखा रोगनष्ट हो जाता है। २—अपामार्ग की जड़ की माला कण्ठ में बांधने कण्ठमाला नष्ट होती है। ३—अनार की बांझी, जटामांसी और कपूर एक में रख कमर बाधने से अर्श नष्ट होता है॥ ४—वासा की जड़ कमर में बांधने से गर्भिणी को प्रसव के स बालक शीघ्र उत्पन्न हो जाता है। ५—पाटला की मीगी (फल के भीतर का बीज) सूत बांध कर कान में बांधने से सूर्यावर्त्त नष्ट होता है। इन प्रमाणों से प्रभाव ही प्रधान है

है वह रसादि से नहीं हो सक्ता, जैसे–आंवला तथा बड़हर के फल रस आदि में समान हैं फिर भी आंवला तीनों दोषों का नाशक है पर बड़हर में ऐसा करने की शक्ति नहीं है। यह रसादिकों का प्रभाव है। कहीं कहीं सिर्फ द्रव्य ही अपने प्रभाव से कर्म करता है, जैसे कि सहदेई की जड़ को शिर में धारण करने से ज्वर चला जाता है।

विमर्श—ज्वर को नाशने में न रस न गुण, न वीर्य और न विपाक ही काम आये सिर्फ द्रव्य ही अपने प्रभाव से ज्वर को दूर कर दिया। इसीसे कहा है कि मणि–मन्त्र तथा ओषधियों का प्रभाव अचिन्त्य है ॥ २२–२३ ॥

रसवीर्यादीनां पृथक्–क **चिद्रसो गुणो वीर्यं विपाकः शक्तिरेव च ।**
पृथक् प्रभावः—**कर्म स्वं स्वं प्रकुर्वन्ति द्रव्यमाश्रित्य ये स्थिताः ॥ २४ ॥**

प्रति द्रव्य में जो रसादि निहित हैं वे सबके सब एक साथ अपने अपने कर्म को प्रायः नहीं करते, कारण उनमें जो उत्कृष्ट होता है वही दूसरों को दबा देता है। इस लिये कहीं **रस,** कहीं **गुण,** कहीं **वीर्य,** कहीं **विपाक,** और कहीं **शक्ति,** अपनी अपनी उत्कृष्टता से काम कर जाते हैं।

विमर्श—कहीं रस अपना काम करता है। जैसे–गुरुच उष्ण होने से पित्त को बढ़ाता किन्तु उसका कड़वा रस पित्त को शान्त करता है। कहीं **गुण** कर्म करता है–यथा मूली चरपरी होने से कफ का नाश करना चाहिये पर अपने स्निग्ध गुण से कफ को बढ़ा देती है। कहीं **वीर्य** कर्मकारी होता है। यथा—महत् पञ्चमूल कषाय रस तथा तिक्त अनुरस होने से वायु को बढ़ाना चाहिये पर वह उष्णवीर्य से उसको शान्त कर देता है। कहीं **विपाक** से कर्म होता है यथा–सोंठ कटुरस होने से वात को बढ़ाता पर वह मधुर विपाक के होने से वात का नाश करता है। कहीं **प्रभाव** से ही काम बन जाता है जैसे कि खैर रसादि से कोढ़ नाश करने में समर्थ न होने पर भी प्रभाव से उसका नाश कर देता है। यहां पर गुण और वीर्य में भेद क्या हैं इसे निम्नरीति से समझना चाहिये।

प्र०—वीर्य और गुण में क्या भेद है?

उ०—हां, भेद है। आंवला और हरड़ दोनों का गुण एक ही है पर आंवला शीतवीर्य और हरड़ उष्णवीर्य है। इसलिये गुण और वीर्य एक नहीं है, इनमें भेद है ॥ २४ ॥

ऋतुभेदेन वातादीनां–**चयकोपशमा यस्मिन्दोषाणां संभवन्ति हि ।**
संचयकोपोपशमाः—**ऋतुषट्कं तदाख्यातं रवे राशिषु संक्रमात् ॥ २५ ॥**

और मुनियों ने कहा भी है—

"अमीमांस्यान्यचिन्त्यानि प्रसिद्धानि स्वभावतः। आगमेनोपयोज्यानि भेषजानि विचक्षणैः॥ प्रत्यक्षलक्षणफलाः प्रसिद्धाश्च स्वभावतः। नौषधीर्हेतुभिर्विद्वान् परीक्षेत कथंचन ॥ सहस्रेणापि हेतूनां नाम्बष्ठादिर्विरेचयेत्। तस्मात्तिष्ठेत्तु मतिमानागमे न तु हेतुषु" ॥ इत्यादि।

जिन छः ऋतुओं में वात, पित्त तथा कफ **संचय, कोप** तथा **उपशम** होता है, वे छः ऋ सूर्य के मेषादि राशियों में गमन करने से होती हैं। **संचय** याने दोषों की वृद्धि होकर अ ही स्थान में जमा रहना, **कोप** याने संचित दोषों का शरीर में प्रसार होना तथा **उपशम** दोषों का फिर शान्त हो जाना है॥ २५॥

राशिक्रमेण ऋतुषट्क- निर्देशः— **ग्रीष्मो मेषवृषौ प्रोक्तः प्रावृण्मिथुनकर्कयोः।**
सिंहकन्ये स्मृता वर्षास्तुलावृश्चिकयोः शरत्।
धनुर्ग्राहौ च हेमन्तो वसन्तः कुम्भमीनयोः॥ २६॥

मेष संक्रान्ति से लेकर वृष के अन्त तक **ग्रीष्म** ऋतु रहती है, उसी प्रकार मिथुन कर्क में **प्रावृट्**, सिंह और कन्या में **वर्षा,** तुला और वृश्चिक में **शरत्**, धनु और मकर **हेमन्त** तथा कुम्भ और मीन में **वसन्त** ये ऋतुएं होती हैं। ये (१)ऋतु विभाग दोषों के च **कोप-प्रशम** के अनुसार किये गये हैं॥ २६॥

वातादिदोषत्रयस्य-चयकोपशमाः— **ग्रीष्मे संचीयते वायुः प्रावृट्काले प्रकुप्यति।**
वर्षासु चीयते पित्तं शरत्काले प्रकुप्यति॥ २७॥
हेमन्ते चीयते श्लेष्मा वसन्ते च प्रकुप्यति।
प्रायेण प्रशमं याति स्वयमेव समीरणः॥ २८॥
शरत्काले वसन्ते!च पित्तं प्रावृड्तौ कफाः॥ २९॥

वायु-ग्रीष्म ऋतु में संचित होता है तथा प्रावृट् काल में कुपित होता है। **पित्त**-वर्षा

---

(१) यहां पर वैशाख से लेकर चैत्र तक दो दो मासों की एक २ ऋतु माने हैं—श के अनुसार दोष-संचित, कुपित और शान्त होते हैं। ये ऋतुयें दोषों के संचयादि होने में मानी जाती हैं पर अन्य विषयों में नहीं। जैसे कहा है—

"इह तु वर्षाशरद्धेमन्तवसन्तग्रीष्मप्रावृषः षड् ऋतवो भवन्ति दोषोपचयप्र पशमनिमित्तम्"।

अन्य विषयों के लिये ऐसा वचन है—

"तत्र माघादयो द्वादश मासा द्विमासिकमृतुं कृत्वा षड् ऋतवो भवन्ति। ते शि शिरवसन्तग्रीष्मवर्षाशरद्धेमन्ताः। तेषां माघफाल्गुनौ शिशिरः। चैत्रवैशाखौ व न्तः। जेष्ठाषाढौ ग्रीष्मः। श्रावणभाद्रपदौ वर्षा। आश्विनकार्त्तिकौ शरत्। मार्गपौ हेमन्त इति।

यहां पर यह प्रश्न होता है कि एक पक्ष प्रावृट् ऋतु मानता है, और दूसरा शरद् क्यों है? तो जहां वर्षा अधिक होती है वहां वर्षा और प्रावृट् दो ऋतु मानी जाती है।

यदुक्तम्—

गङ्गाया दक्षिणे देशे वृष्टेर्बहुलभावतः। उभौ मुनिभिराख्यातौ प्रावृड्वर्षाऽभिधावृतू। तस्या एवोत्तरे देशे हिमप्रचुरभावतः। एतावुभौ समाख्यातौ हेमन्तशिशिरावृतू॥

संचित होकर शरत् ऋतु में कुपित होता है । **कफ—**हेमन्त में संचित होकर वसन्त में कुपित होता है । शरत् काल में **वायु,** वसन्त में **पित्त** तथा प्रावृट् ऋतु में **कफ** स्वभाव से ही शान्त हो जाते(१) हैं ।

विमर्श—स्पष्ट यह है कि वायु ग्रीष्म में संचित होता, प्रावृट् में कुपित तथा शरत् काल में शान्त होता है; **पित्त** वर्षा में संचित होता, शरत् काल में कुपित होता तथा वसन्त में शान्त हो जाता है ; कफ हेमन्त में संचित होता है, वसन्त में कुपित होता तथा प्रावृट में शांत होता है । यह इनका स्वभाव है । इसी प्रकार दिन-रात के भी ऋतु विभाग किये गये हैं नीचे के चक्र से सब अर्थ स्पष्ट हो जायगा—

दोषों का चयकोपप्रशमदर्शकचक्र

नाम	वात	पित्त	कफ
संचय	**ग्रीष्म** वैशाख-ज्येष्ठ (मेष-वृष) दिन का दूसरा पहर	**वर्षा** भादों-क्वार (सिंह-कन्या) दिन का चौथा पहर	**हेमन्त** पौष-माघ (धनु-मकर) रात का पिछला पहर
कोप	**प्रावृट्** आषाढ़-श्रावण (मिथुन-कर्क) दिन का तीसरा पहर	**शरत्** कातिक-अगहन (तुला-वृश्चिक) अर्धरात्र	**वसन्त** फागुन-चैत (कुम्भ-मीन) दिन का पहला पहर
प्रशम	**शरत्** कातिक-अगहन (तुला-वृश्चिक) अर्धरात्र	**वसन्त** फागुन-चैत (कुम्भ-मीन) दिन का पहला पहर	**प्रावृट्** आषाढ़-श्रावण (मिथुन-कर्क) दिन का तीसरा पहर

विस्तार भय से अधिक नहीं लिखा गया ॥ २७-२९ ॥

(१) जिस प्रकार ऋतुओं में दोषों का संचय कोप और उपशम होता है, उसी नियम को पालन करता हुआ मनुष्य अपने आहार विहारादिकों का उचित पालन करता रहे तो उसे कठिन रोगों का सामना नहीं करना पड़ेगा । और अगर संयोगवश हो जाय भी तो साधारण उपाय से ही रोग नष्ट हो जावेगा । अतः मनुष्य को ऋतु का और दोष का ध्यान रख कर अपना आहार-विहार करना चाहिये ।

यमदंष्ट्रासमयनिर्देशः—**कार्त्तिकस्य दिनान्यष्टावष्टावाग्रयणस्य च ।**
यमदंष्ट्रा समाख्याता स्वल्पभुक्तो हि जीवति ॥ ३० ॥

कार्त्तिक मास का अन्तिम आठ दिन और अगहन का पहला आठ दिन सोलह दिनों को **यमदंष्ट्रा** या **यम की दाढ़ें** कहते हैं। इन दिनों जो मनुष्य कम भोजन करता है, वह सुखी रहता है, जो अधिक भोजन करता है वह निश्चय रोग में पड़ता है और बहुत कष्ट भोगता अथवा यम के पाशमें मर कर पहुंचता है ॥ ३० ॥

दोषाणामकालेऽपि भोजनादिना चयकोपापचयाः—

चयकोपशमा दोषा विहाराहारसेवनैः ।
समानैर्यान्त्यकालेऽपि विपरीतैर्विपर्ययम् ॥ ३१ ॥

ऊपर दोषों के चय, कोप तथा शान्ति के स्वाभाविक काल कहे गये हैं इनके सिवा असमय में भी दोष उनके तुल्य गुण आहार–विहारों के सेवन करने से कुपित होते हैं और उनसे विपरीत गुण रखने वाले आहार विहारों से शान्त होते हैं ॥ ३१ ॥

वायोः प्रकोपशमहेतवः—**लघुरूक्षमिताहारादतिशीताच्छ्रमात्तथा ।**
प्रदोषे कामशोकाभ्यां भीचिन्तारात्रिजागरैः ॥ ३२ ॥
अभिघातादपां गाहाज्जीर्णेऽन्ने धातुसंक्षयात् ।
वायुः प्रकोपं यात्येभिः प्रत्यनीकैश्च शाम्यति ॥ ३३ ॥

हलके या शीघ्र पचने वाले रूखे–भूने चने आदि तथा निश्चित परिमाण का भोजन करते रहने से अति शीत पड़ने से अथवा अधिक ठंडे पदार्थों का सेवन करने, अधिक परिश्रम करने से प्रदोष या सायंकाल में, काम याने किसी प्रिय वस्तु की इच्छा और उसकी अप्राप्ति, शोक, भय, चिन्ता, रातको जागना चोट प्रभृति का लगना, अधिक नहाना, भोजन का जीर्ण हो जाना, रस रक्तादि धातुओं का क्षय–इन कारणों से वायु कुपित होता है और इनके विपरीत आहार–विहारों से शान्त होता है ॥ ३२–३३ ॥

पित्तस्य प्रकोपशमहे-**विदाहिकटुकाम्लोष्णभोज्यैरत्युष्णसेवनात् ।**
तवः—**मध्याह्ने क्षुत्तृषारोधाज्जीर्यत्यन्नेऽर्द्धरात्रके ।**
पित्तं प्रकोपं यात्येभिः प्रत्यनीकैश्च शाम्यति ॥ ३४ ॥

विदाही (जलन पैदा करने वाले पदार्थ), चरपरे, खट्टे, उष्ण भोजन, अधिक गरमी सहने, दो पहर में, भूख प्यास को रोकना, भोजन के जीर्ण होने की अवस्थामें, आधी रात में–इनसे **पित्त का कोप** होता है और इनके विपरीत आहार–विहारों से उसकी शान्ति होती है ॥ ३४ ॥

कफस्य प्रकोपशमहे-**मधुरस्निग्धशीतादिभोज्यैर्दिवसनिद्रया ।**
तवः—**मन्देऽग्नौ च प्रभाते च भुक्तमात्रे तथाऽश्रमात् ॥ ३५ ॥**
श्लेष्मा प्रकोपं यात्येभिः प्रत्यनीकैश्च शाम्यति ॥ ३६ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायां पूर्वखण्डे भषज्याख्यानकं नाम द्वितीयोऽध्यायः ।

मधुर, चिकनी तथा शीतवीर्य भोजन से, दिन में सोने से, मन्दाग्नि से, प्रातः समय, भोजन करते ही तथा परिश्रम न करने से **कफ का कोप** हो जाता है और इसके विपरीत आहार–विहार से उसकी शांति हो जाती है ॥ ३५–३६ ॥

इति श्रीप्रयागदत्तायुर्वेदाचार्यकृतायां सुबोधिनीनामिकायां श्रीशार्ङ्गधरसंहिता-भाषाटीकायांभिषज्याख्यानकं नाम द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः ।

नाडीपरीक्षाविधिः—**करस्याङ्गुष्ठमूले या धमनी जीवसाक्षिणी ।**
तच्चेष्टया सुखं दुःखं ज्ञेयं कायस्य पण्डितः ॥ १ ॥

हाथ के अंगूठे के जड़ के नीचे जो नाड़ी है वह जीव की साक्षी स्वरूप है याने उसे देख कर ही जीव है या नहीं जाना जाता है ? क्योंकि जब मनुष्य मूर्च्छित हो जाता है तब बाहर की सब चेष्टाएँ बन्द हो जाती हैं और उसके जीव का कोई भी लक्षण ज्ञात नहीं होता, पर नाड़ी छूते ही पता चल जाता है कि अभी प्राण है, कारण जब तक प्राण रहता है तब तक नाड़ी चलती रहती है । इससे उसे **जीव की साक्षिणी** कहते हैं । हृदय से रसादिकों को ये नाड़ियां वायु की सहायता से प्रतिक्षण घुमाती रहती हैं याने अविराम गति से बराबर पम्प की तरह रसादिकों को शरीर के सब भागों में भेजते रहते हैं । इससे इन्हें **धमनी** कहते हैं । इनका सम्बन्ध हृदय से होता है । शरीर में जब कोई भी सूक्ष्म से लेकर बड़ी तक गड़बड़ी या विगाड़ हुआ तो हृदय की गति में भेद आ जाता है और वही भेद नाड़ी में भी होता है । इस कारण (१)नाड़ी के देखने का स्थान, समय, प्रकार तथा उसकी भिन्न २ गति का ज्ञान ठीक

---

(१) यद्यपि नाड़ी वर्णन चरक-सुश्रुतादि आर्ष ग्रन्थों में नहीं है, तथापि इसकी उपयोगिता ऐसी है कि सभी को स्वीकार करना पड़ता है । विज्ञ–चिकित्सक इसकी चमत्कारिता से असीम लाभ एवं यश उत्पन्न करते हैं । आयुर्वेद शास्त्र की उन्नति में यह पूर्ण सहायक है, जब कि रोगी की अवस्था शोचनीय हो जाती है तब यही एक ऐसी परीक्षा है जिससे मनुष्य (वैद्य) सुख-दुःख का ज्ञाता होता है । जैसे—

"प्रदर्शयेद्दोषजनिस्वरूपं व्यस्तं समस्तं युगलीकृतं च ।
मूकस्य मुग्धस्य विमोहितस्य दीपप्रभावा इव जीवनाडी" ॥

इसके जाननेके लिये विशेष अनुभव, मन की शुद्धता, शान्ति एवं प्रसन्नता की आवश्यता है कुछ सुविधायें नीचे दी जाती हैं कि नाड़ी से कैसे २ और क्या २ जानी जाती है । नूतनाभ्यासी के लिये कठिनता तो है पर अभ्यास से ज्ञान हो जाता है ।

"वातं पित्तं कफं द्वन्द्वं सन्निपातं रसं त्वसृक् ।
साध्यासाध्यविवेकं च सर्वं नाडी प्रकाशयेत् ।।

ठीक रखने वाले विद्वान् पुरुष इसकी चेष्टा याने गति से ही शरीर के सुख दुख को चला लेते हैं ॥ १ ॥

प्रकुपितवातजनाडीलक्षणम्—**नाडी धत्ते मरुत्कोपे जलौकासर्पयोर्गतिम् ॥ २ ॥**

वात के कोप में—नाड़ी जोंक या सांप की तरह चलती है याने जैसे जोंक और टेढ़ी चाल से दाहिने बायें मुड़मुड़ कर चलते हैं वैसे ही नाड़ी भी वात के कोप से टेढ़ी चाल से चलती है ॥ २ ॥

प्रकुपितपित्तजनाडीलक्षणम्—**कलिङ्गकाकमण्डूकगतिं पित्तस्य कोपतः ॥ ३ ॥**

पित्त के प्रकोप में—नाड़ी कुलिंग या गौरेया पक्षी, कौवा तथा मेढ़क की चाल से है अर्थात् कुलिंग, कौआ अथवा मेढक जैसे फुदक फुदक कर चलते हैं नाडी भी वैसे ही तीचे कूद कूद कर चलती है ॥ ३ ॥

प्रकुपितकफजनाडीलक्षणम्—**हंसपारावतगतिं धत्ते श्लेष्मप्रकोपतः ॥ ४ ॥**

कफ के कोप में—हंस और कबूतर की चाल से चलती है याने जैसे हंस और क की चाल से चलती है याने जैसे हंस और कबूतर मन्द मन्द गति से तथा पृथ्वी पर पैर दबाते हुए से चलते हैं नाडी भी वैसी मन्द गति से नीचे दबती हुई चलती है ॥ ४ ॥

संनिपातजनाडीलक्षणम्—**लावतित्तिरवर्त्तीनां गमनं संनिपाततः ॥ ५ ॥**

तीनों दोषों के कुपित रहने से—याने सन्निपात में नाडी की गति लवा, तीतर बटेर की गति से चलती है याने जिस तरह ये पक्षियाँ कुछ ठहर कर बड़ी तेजी से चलते ठीक वैसी ही गति नाडी की भी होती है ॥ ५ ॥

द्विदोषजनाडीलक्षणम्—**कदा चिन्मन्दगमना कदा चिद्वेगवाहिनी ।**
द्विदोषकोपतो ज्ञेया …………॥ ६ ॥

किस २ की नाड़ी—**"सद्यः स्नातस्य भुक्तस्य तथा तैलावगाहिनः ।**
ज्ञात नहीं होती—**क्षुत्तृषाऽऽर्त्तस्य सुप्तस्य सम्यङ् नाडी न बुद्ध्यते" ॥**

अन्यच्च—**सद्यः स्नातस्य भुक्तस्य क्षुत्तृष्णाऽऽतपशीलिनः ।**
व्यायामश्रान्तदेहस्य सम्यङ् नाडी न बुद्ध्यते ॥

तथा च—**तैलाभ्यङ्गे च सुप्ते च तथा च भोजनान्तरे ।**
तथा न ज्ञायते नाडी यथा दुर्गतमा नदी ॥

प्रदर्शनविधिः—**पुंसो दक्षिण हस्तस्य स्त्रियो वामकरस्य तु ।**
अङ्गुष्ठमूलगां नाडीं परीक्षेत भिषग्वरः ॥
अङ्गुलीभिस्तु तिसृभिर्नाडीमवहितः स्पृशेत् ।
तच्चेष्टया सुखं दुःखं जानीयात्कुशलोऽखिलम् ॥
वाताधिके भवेन्नाडी प्रव्यक्ता तर्जनीतले ।
पित्ते व्यक्ता मध्यमायां तृतीयाङ्गुलिगा कफे ॥

दो दोषों के कोप में नाड़ी कभी मन्दी और कभी तेज चाल से चलती है याने यों समझिये कि जिन दो दोषों का कोप रहता है उन दोनों की चाल से नाड़ी चलती है ॥ ६ ॥

असाध्यनाडी- …………हन्ति च स्थानविच्युता ।

लक्षणम्— **स्थित्वा स्थित्वा चलति या सा स्मृता प्राणनाशिनी ।**
अतिक्षीणा च शीता च जीवितं हन्त्यसंशयम् ॥ ७ ॥

यदि नाड़ी चलते चलते अपने स्थान अंगुष्ठ–मूल से हट जाय तो वह अवश्य ही मारक होती है। जो नाड़ी ठहर ठहर कर चलती है याने चलती है और फिर बन्द हो जाती है, फिर चलती है, फिर बन्द हो जाती है, ऐसा ही क्रम रखती है तो वह भी प्राणों का नाश करती है। तथा जो नाड़ी अतिक्षीण चले याने छूने से कमल नाल के तन्तु जैसी पतली मालूम हो अथवा बर्फ जैसी ठंडी मालूम हो तो वह भी निश्चय करके प्राणों का घात करती है। सार यह है कि इन गतियों को देखकर वैद्य समझ ले कि रोगी अब बचेगा नहीं(१) ॥ ७ ॥

तर्जनीमध्यमामध्ये वातपित्ताधिके स्फुटा ।
अनामिकायां तर्जन्यां व्यक्ता वातकफे भवेत् ॥
मध्यमाऽनामिकामध्ये स्फुटा पित्तकफेऽधिके ।
अङ्गुलित्रितयेऽपि स्यात्प्रव्यक्ता सन्निपाततः ॥
वाताद् वक्रगतिं धत्ते पित्तादुत्प्लुत्य गामिनी ।
कफान्मन्दगतिर्ज्ञेया सन्निपातादतिद्रुता ॥
वक्रमुत्प्लुत्य चलति धमनी वातपित्ततः ।
वहेद् वक्रञ्च मन्दञ्च वातश्लेष्माधिकत्वतः ॥
उत्प्लुत्य मन्दं चलति नाडी पित्तकफेऽधिके ।
नाडी मध्यवहाऽङ्गुष्ठमूले याऽत्यर्थमुच्छलेत् ॥
शनरूर्ध्वोर्ध्वगमना कुटिला हन्ति मानवम् ॥

(१) जीवसाक्षिणी नाडी का सम्बन्ध सीधे हृदय से रहता है, और जब तक रोगी के हृदय में यह शक्ति रहती है कि वह अपने प्रस्पन्दन से अपने रक्त को शरीर की तरफ फेंक सके तब तक नाड़ी की गति ठीक रहती है। लेकिन जब हृदय दुर्बल हो जाता है और रक्त को उचित तरह से नहीं फेंक सकता है तब नाडी अपने स्थान को छोड़ देती है। और तब अवस्था शोचनीय हो जाती है। यही **"स्थानविच्युता"** कही जाती है। यह अवस्था हृदय की दुर्बलतासूचक है। नाडी अपने स्थान से अलग होती हुई नीचे की तरफ धीरे २ चलकर बन्द हो जाती है। इसी प्रकार रुक रुक कर चलने वाली को भी समझना चाहिये कि जब हृदय रक्त को फेकता है नाडी चलती है और जब वह प्रस्पन्दन रुक जाता है तब नाडी भी बन्द हो जाती है। और जब हृदय दुर्बल रहता है और अल्प प्रस्पन्दन होता है तब रक्त कम आता है और नाडी क्षीण हो जाती है। और जब हृदय में उष्णता कम रहती है और

ज्वरे नाडीलक्षणम्—**ज्वरकोपे तु धमनी सोष्णा वेगवती भवेत् ।। ८ ।।**

साधारण ज्वर के प्रकोप में नाडी उष्णता लिये हुए जल्दी जल्दी चलती है । यह लक्षण है ।

विमर्श—ज्वर में दोषों के अनुसार जैसा कि ऊपर कह आये हैं उनकी गति ही गरम तथा (१)तेज होती है ॥ ८ ॥

कामक्रोधचिन्ताभययुक्तानां नाडीलक्षणानि—

कामक्रोधाद्वेगवहा क्षीणा चिन्ताभयप्लुता ।। ९ ।।

काम(२) याने अपने अभिमत स्त्री आदि की अप्राप्ति में तथा क्रोध की हालत में तेज होती है, पर ज्वर की जैसी गरम नहीं होती, यही भेद है। चिन्ता और भय से पुरुष की नाडी क्षीण होकर चलती है ॥ ९ ॥

मन्दाग्नि—धातुक्षय—रक्तप्रकोप—सामावस्थासु नाडीलक्षणानि—

मन्दाग्नेः क्षीणधातोश्च नाडी मन्दतरा भवेत् ।
असृक्पूर्णा भवेत्कोष्णा गुर्वी सामा गरीयसी ॥ १० ॥

(३)मन्दाग्नि वाले की तथा जिसके रस—रक्तादि धातु क्षय को प्राप्त हुए हों उसकी अधिक मन्दी चाल से चलती है । शरीर में रक्त के कोप होने से नाडी कुछ कुछ गरम

रक्त नाडी तक पहुंचते २ ठंढा हो जाता है । इसलिये ऊपर ठंढा मालूम होता है । यह **शीताङ्ग** कही जाती है । इन अवस्थाओं में यदि हृदय में कुछ वल हो जाय तो कल्याण हो सकता है ।

(१) शरीर में उष्णता की विशेष वृद्धि को ज्वर कहते हैं। और यह उष्णता रक्त से होती है । इस अवस्था में रुधिर के उष्ण होने से सम्पूर्ण शरीर उष्ण हो जाता है और प्रभाव हृदय द्वारा नाडियों पर होता है इससे ज्वर में नाडी उष्ण और वेगवाली हो जाती है।

(२) काम और क्रोध की अवस्था में हृदय में उद्वेग रहता है जिससे प्रस्पन्दन होता है अतः काम—क्रोध की नाडी वेगवती होती है । तथा चिन्ता और भय में हृदय दु जाता है प्रस्पन्दन कम हो जाता है इससे नाडी क्षीण हो जाती है ।

(३) मन्दाग्नि और धातु क्षीण में हृदय दुर्बल रहता है अतः नाडी मन्दगामिनी है । और रक्त से पूर्ण होने पर हृदय में अधिक उष्णता रहती है। प्रस्पन्दन से रक्त निकलता है । इससे नाडी मोटी उष्ण और भारी होती है ।

आम (बिना पचा हुआ रस) की अवस्था में हृदय गम्भीर रहता है और प्रस्पन्दन गम्भीर ही होता है । अतः आमाजीर्ण आदि में नाडी गुरु रहती है ।

आमलक्षण—**जठरानलदौर्बल्यादविपक्वस्तु यो रसः। स आमसंज्ञको देहे सर्वदोषप्र**

आम और साम— **आमेन तेन सम्पृक्ता दोषा दूष्याश्च दूषिताः ।**
में भेद— **सामा इत्युपदिश्यन्ते ये च रोगास्तदुद्भवाः ॥**

चलती है तथा स्पर्श में भारी याने भरी हुई तथा कठिन जान पड़ती है। आम दोष से युक्त नाडी और भी भारी होकर चलती है ॥ १० ॥

दीप्ताग्नि-सुखित-**लघ्वी वहति दीप्ताग्नेस्तथा वेगवती मता ।**
क्षुधित-तृप्तपुरुषाणां-**सुखितस्य स्थिरा ज्ञेया तथा बलवती स्मृता ।**
नाडीलक्षणानि—**चपला क्षुधितस्य स्यात्तृप्तस्य वहति स्थिरा ॥ ११ ॥**

दीप्ताग्नि पुरुष की नाडी हलकी तथा तेज चलती है पर ज्वर आदि की तरह तेज नहीं चलती। सुखी पुरुष की नाडी स्थिर गति से चलती है। और बलवती होती है। भूखे की नाडी चपल गति करती है। पर तृप्त पुरुष की नाडी स्थिर गति से चलती है।

विमर्श—नाडी देखने के कुछ उपयोगी नियम—

१—नाडी देखने के पहले वैद्य अपने चित्त को स्थिर कर ले, फिर नाडी देखे। अस्थिर चित्त वाले को नाडी का पता नहीं लगता।

२—मलमूत्र त्याग कर सुख से बैठे हुए रोगी के हाथ को उसके दोनों जानुओं के बीच रखकर नाडी की परीक्षा करे।

३—स्त्री के बाएँ और पुरुष के दाहिने हाथ की नाडी देखे।

४—तुरन्त स्नान कर चुका हो, भोजन पर बैठा हो अथवा भोजन कर चुका हो, भूखा, प्यासा, धूप से आया हो या आग के पास से आया हो, कसरत करके आया हो, तेल मर्दन कराया हो अथवा थका हुआ हो, इतने पुरुष की नाडी न देखनी चाहिये। इससे नाडी का ठीक ठीक पता नहीं चलता।

५—साधारणतः हाथ की नाडी अंगूठे के नीचे देखी जाती है पर जब मरण के समय या संनिपात आदि में नहीं चलती तब पैर में टखनों के नीचे तीन अंगुल स्थान की, कंठ की जड़ में दो अंगुल स्थान की तथा नासामूल में एक अंगुल स्थान की नाडी देखी जाती है ॥ ११ ॥

दूतपरीक्षा—**दूताः स्वजातयोऽव्यङ्गाः पटवो निर्मलाम्बराः ।**
सुखिनोऽश्ववृषारूढाः शुभ्रपुष्पफलैर्युताः ॥
सुजातयः सुचेष्टाश्च सजीवदिशि संश्रिताः ।
भिषजं समये प्राप्ता रोगिणः सुखहेतवे ॥ १२ ॥
(यस्यां प्राणमरुद्भाति सा नाडी जीवसंयुता ।)

(१)दूत याने वैद्य को बुलाने के लिये जाने वाला पुरुष रोगी के ही जाति का हो, अव्यङ्ग हो याने किसी अङ्ग से रहित न हो, व्यवहार आदि में प्रवीण हो, स्वच्छ सफेद वस्त्र पहिना

---

(१) **दूत लक्षण—**रोगी का समाचार लेकर वैद्य को बुलाने जो जाता है उसे 'दूत' कहते हैं, वह कैसा होना चाहिये उसे कहते हैं—

"पाखण्डाश्रमवर्णानां सपक्षाः कर्मसिद्धये । त एव विपरीताः स्युर्दूताः कर्मविपत्तये ॥

हुआ हो, सुखी हो। (उसे किसी प्रकार का कष्ट न हो), घोड़े या बैल की सवारियों पर हो, सफेद फूल और सार वाले फल लिया हुआ अच्छी जाति का हो, शुभ चेष्टायें करता हो याने कोई अमङ्गलजनक या अश्लील चेष्टा न करता हो, नासिका के जिस ओर से श्वास बहता हो वैद्य के उसी दिशा में बैठा हुआ हो तथा शुभ काल में तथा समय पर ही आया हुआ हो तो वह रोगी के सुख का देने वाला होता है। इसके विपरीत लक्षण वाले दूत रोगी के लिये अमङ्गलकारक होते हैं ॥ १२ ॥

दूतस्य शकुनानि—**वैद्याह्वानाय दूतस्य गच्छतो रोगिणः कृते ।**
न शुभं सौम्यशकुनं प्रदीप्तं च सुखावहम् ॥ १३ ॥

वैद्य को बुलाने के लिये जाते हुए (१)दूत को सौम्य याने मङ्गलकारक शकुनों का

निषिद्धदूत लक्षणम्—**तैलकर्दमदिग्धाङ्गा रक्तस्रगनुलेपनाः ।**
फलं पक्वमसारं वा गृहीत्वाऽन्यच्च तद्विधम् ॥
वैद्यं च, उपसर्पन्ति दूतास्ते चापि गर्हिताः ॥

दूत की दुश्चेष्टा—**छिन्दन्तस्तृणकाष्ठानि स्पृशन्तो नासिकां स्तनम् ।**
वस्त्रान्तानामिकाकेशनखरोमदशस्पृशः ॥
स्रोतोऽवरोधहृद्गण्डमूर्धोरःकुक्षिपाणयः । कपालोपलभस्मास्थितुषाङ्गारकराश्च ।
विलिखन्तो महीं किञ्चिन्मुञ्चन्तो लोष्टभेदिनः ।

दूत की अनुत्तमता—
नपुंसकाः स्त्रीबहवो नैककार्या असूयकाः । पाशदण्डायुधधराः प्राप्ता वा स्युः परम्
आर्द्रजीर्णापसव्यैकमलिनोद्धृतवाससः । न्यूनाधिकाङ्गा उद्विग्ना विकृता रौद्ररूपि
वैद्यं य उपसर्पन्ति दूतास्ते चापि गर्हिताः ॥

सजीवलक्षणम्—**यस्यां प्राणमरुद् वाति सा नाडी जीवसंयुता ।**

अन्यच्च—**चन्द्रस्थाने यदा वायुः सूर्यस्थाने च पृच्छकः ।**
तदा न जीवति रोगी यदि वैद्यशतैर्वृतः ॥

अयोग्यदिशा—**याम्यां दिशि प्राञ्जलयो विषमैकपदेस्थिताः ।**
वैद्यं य उपसर्पन्ति दूतास्ते चापि गर्हिताः ॥

अनुत्तम समय तिथि-**वैद्यस्य पित्र्ये दैवे वा कार्ये चोत्पातदर्शने ।**
आदि— **मध्याह्ने चार्द्धरात्रे वा संध्ययोः कृत्तिकासु च ॥**
आर्द्रा श्लेषामघामूलपूर्वासु भरणीषु च । चतुर्थ्यां वा नवम्यां वा षष्ठ्यां सन्धिदिनेषु
दक्षिणाभिमुखे देशे त्वशुचौ वा हुताशनम् । ज्वलयन्तं पचन्तं वा क्रूरकर्मणि चोद्यतम्
नग्नं भूमौ शयानं वा वेगोत्सर्गेषु वाऽशुचिम् । प्रकीर्णकेशमभ्यक्तं स्विन्नविक्लवमेव वा
वैद्यं य उपसर्पन्ति दूतास्ते चापि गर्हिताः ॥

(१) दूत के शकुनः—**सद्योरणे कर्मणि वा प्रवेशे शुभग्रहे नष्टविलोकने च ।**
व्याधौ च नद्युत्तरणे भयार्त्ते शस्तः प्रयाणाद्विपरीतभावः ॥

भकारक नहीं होते, अप्रशस्त शकुनों का देखना मङ्गलकारक होते हैं ॥ १३ ॥

वैद्यस्य शकुनानि—**चिकित्सां रोगिणः कर्त्तुं गच्छतो भिषजः शुभम् ।**
यात्रेयं सौम्यशकुनं प्रोक्तं दीप्तं न शोभनम् ॥ १४ ॥

वैद्य जब रोगी की चिकित्सा करने को जाता हो तो उसका शास्त्रों में कथित यात्रा समय के शुभ शकुनों (१)का देखना मङ्गलकारक होता है और दीप्त याने अशुभ शकुन मङ्गलकारक होते हैं। दूतके जाने के शुभाशुभ शकुनों के विपरीत वैद्य के जाने के शुभा-भ शकुन हैं।

विमर्श—प्रसङ्गवशात् यहां पर कुछ शुभाशुभ शकुन ग्रन्थान्तर से लिखते हैं—

भेरी, मृदङ्ग, मृदुमर्दल, शंख, बांसुरी और वेद की ध्वनि, मधुर माङ्गलिक गीत, घंटे आदि ा घोष, बच्चे वाली स्त्री, बछड़े वाली गाय, धुला हुआ कपड़ा लेकर आता हो ऐसा धोबी, सब यदि यात्रा करते समय सामने मिले तो मङ्गल और ईप्सितार्थदायक होते हैं।

भृङ्गार, अंजन, वर्द्धमान नेवला, पशुओं का मांस, शंख, दूध, राजा, अन्न, पूर्णकलश, छत्र, फेद सरसों, वीणा, कमल, मछली, झण्डे, दही, शहद, घी, गोरोचन, लड़कियां, शक्कर, ख, वस्त्र, फूल, पुस्तक लिये हुए ब्राह्मण तथा जवाहरात ये सब भी मङ्गलदायक होते हैं।

कुत्ते और गीदड़ का बाएं से दाहिने की ओर जाना, नेवला और चाष पक्षी का दाहिने वाएं की ओर जाना, खरगोश तथा सांप का किसी भी ओर जाना, भास या अरण्य कुक्कुट गोष्ठ कुक्कुट तथा उल्लू का भी दोनों ओर जाना, गोह एवं गिरगिट का देखना और शब्द सुनना, कुलथी, तिल, कपास, धान आदि की भूसी, पत्थर, राख, कोयला, तेल और कीचड़—नसे भरा हुआ पात्र, प्रसन्ना के सिवाय अन्य मद्य से और लाल सरसों से भरा पात्र शव मुर्दा), पलाश के सूखे काष्ठ, पतित पुरुष, चाण्डाल आदि अन्त्यज, दीन, अन्धा तथा शत्रु, नका रास्ते में जाते वक्त मिलना अशुभ करने वाला होता हैं।

शुभ शकुनों को **सौम्य** और अशुभों को **दीप्त** कहते हैं ॥ १४ ॥

---

(१) सौम्यलक्षणम्—**भृङ्गाराञ्जनवर्द्धमाननकुला बद्धैकपश्वामिषं-**
शङ्खक्षीरनृयानपूर्णकलशं छत्राणि सिद्धार्थकाः ॥
वीणाकेतनमीनपङ्कजदधिक्षौद्राज्यगोरोचना-
कन्यारत्नसितेक्षुवस्त्रसुमनाविप्राश्वरत्नानि च ॥

दीप्तलक्षणम्—**"गमनं दक्षिणे वामान्न शस्तं श्वशृगालयोः ।**
वामं नकुलचाषाणां नोभयं शशसर्पयोः ॥
भासकौशिकगृध्राणां न प्रशस्तं किलोभयम् । दर्शनं च रुतं चापि न गोधाकृकलासयोः ॥
कुलत्थतिलकार्पासतुषपाषाणभस्मनाम् । पात्रं नेष्टं तथाङ्गारतैलकर्दमपूरितम् ॥
प्रसन्नेतरमद्यानां पूर्णं वा रक्तसर्षपः । शवकाष्ठपलाशानां शुष्काणां पथि सङ्गमाः ॥
नेष्यन्ति पतितान्तस्थदीनान्धरिपवस्तथा ॥

चिकित्स्यलक्षणम्—**निजप्रकृतिवर्णाभ्यां युक्तः सत्त्वेन संयुतः ।**
चिकित्स्यो भिषजा रोगी वैद्यभक्तो जितेन्द्रियः ॥ १५ ॥

जो रोगी अपनी(१) प्रकृति, वर्ण तथा सत्त्व से युक्त हो, जितेन्द्रिय तथा वैद्य में भक्ति वाला हो, तो उस रोगी की चिकित्सा वैद्य करे, इसके विपरीत की नहीं।

विमर्श—जन्म से ही मनुष्य का जो स्वभाव हो उसे उसकी **प्रकृति** कहते हैं। गर्भ के समय वातादि दोषों के प्रावल्य के अनुसार सात प्रकार की प्रकृति-प्रत्येक दोष से, दो से तथा तीनों से होती है। इनमें फिर नीचे लिखी विशेषताएं होती हैं—

१—**जातिप्रसक्ता**-याने अपनी जाति के अनुसार, जैसे—ब्राह्मणादि स्वभाव से ही आचारयुक्त होते हैं और म्लेच्छ यवनादि गन्दे। २—**कुलप्रसक्ता**-जैसे किसी कुल के लोग स्वभावतः ही चतुर, विनयी आदि गुणयुक्त होते हैं। ३—**देशानुपातिनी**-यथा भिन्न भिन्न देश के लोग अपने अपने आचार विचार वाले होते हैं। ४—**कालानुपातिनी**-यथा सत्ययुग के आदि। ५—**वयोऽनुपातिनी**—यथा बाल्यावस्था में अशौच आदि। ६—**प्रत्यात्मनि**-याने प्रत्येक पुरुष में जो कुछ न कुछ विशेषता होती है। **वर्ण** यानी शरीर का स्वाभाविक और **सत्त्व** का अर्थ मन-सत्, रज और तम युक्त-है ॥ १५ ॥

अथ शुभाशुभस्वप्नपरीक्षा ।

तत्र दुःस्वप्नलक्षणानि—**स्वप्नेषु नग्नान्मुण्डांश्च रक्तकृष्णाम्बरावृतान् ।**
व्यङ्गांश्च विकृतान्कृष्णान्सपाशान्सायुधानपि ।
बध्नतो निघ्नतश्चापि दक्षिणां दिशमाश्रितान् ।
महिषोष्ट्रखरारूढान्स्त्रीपुंसो यस्तु पश्यति ।
स स्वस्थो लभते व्याधिं रोगी यात्येव पञ्चताम् ॥ १६ ॥

नङ्गा, मूंड मुंडाया हुआ, लाल कपड़ा पहिना हुआ, काला कपड़ा पहिना हुआ, याने हाथ-पांव आदि अङ्ग से विहीन, लूले, लंगड़े आदि विकारयुक्त, काले, पशु आदि का पाश लिया हुआ, हथियार लिया हुआ, बांधता हुआ, प्रहार करता हुआ, दक्षिण दिशा आश्रय किया हुआ, भैंस, ऊँट, गधे आदि पर चढ़ा हुआ-ऐसे मनुष्यों को जो कोई

---

(१) प्रकृतिलक्षणम्-**शुक्रशोणितसंयोगे यो भवेद्दोष उत्कटः ।**
प्रकृतिर्जायते तेन तस्या मे लक्षणं शृणु ॥

वर्ण-प्रभा को कहते हैं उसी को छाया भी कहते हैं पर कोई २ भेद मानते हैं। जैसे

छायाप्रभाभेदः—**वर्णप्रभामिश्रिता या छाया सा परिकीर्त्तिता ।**
वर्णमाक्रामति च्छाया प्रभा वर्णप्रकाशिनी ॥
आसन्ना लक्ष्यते छाया प्रभा दूरात्तु लक्ष्यते ॥

सत्त्वयुक्त के गुण—**सत्त्ववान् सहते सर्वं संस्तभ्यात्मानमात्मना ।**
राजसः स्तभ्यमानोऽन्यैः सहते नैव तामसः ॥

अथवा पुरुष स्वप्न में देखता है तो वह यदि स्वस्थ है तो रोग को प्राप्त होता है और यदि रोगी है तो मरण को प्राप्त होता है ॥ १६ ॥

अन्यान्यपि दुःस्वप्नलक्षणानि— **अधो यो निपतत्युच्चाज्जलेऽग्नौ वा विलीयते ।**
श्वापदैर्हन्यते योऽपि मत्स्याद्यैर्गिलितो भवेत् ॥ १७ ॥
यस्य नेत्रे विलीयेते दीपो निर्वाणतां व्रजेत् ।
तैलं सुरां पिबेद्वाऽपि लोहं वा लभते तिलान् ॥ १८ ॥
पक्वान्नं लभतेऽश्नाति विशेत्कूपं रसातलम् ।
स स्वस्थो लभते रोगं रोगी यात्येव पञ्चताम् ॥ १९ ॥

जो अपने को स्वप्न में किसी ऊँचे स्थान से गिरते हुए, पानी में डूब जाते हुए, अग्नि में पतङ्गों की तरह समा जाते हुए, कुत्ते से आघात प्राप्त होते हुए, मछली—मगर प्रभृति जन्तुओं से निगले जाते हुए, अपने आँखों से दीपक के बुझ जाने को देखता है, वा तेल या (१)शराब पीता है, लोहा, तिल, सिद्ध अन्न पाता है अथवा खाता है, अत्यन्त गहरे कुएँ में प्रवेश कर जाता है—ऐसे स्वप्न देखने पर स्वस्थ मनुष्य रोग प्राप्त करता है और रोगी पुरुष मर जाता है ॥१७–१९॥

दुःस्वप्नदर्शने करणीयविधिः— **दुःस्वप्नानेवमादींश्च दृष्ट्वा ब्रूयान्न कस्य चित् ।**
स्नानं कुर्यादुषस्येव दद्याद्धेमतिलानयः ॥ २० ॥
पठेत्स्तोत्राणि देवानां रात्रौ देवालये वसेत् ।
कृत्वैवं त्रिदिनं मर्त्यो दुःस्वप्नात्परिमुच्यते ॥ २१ ॥

इस प्रकार के अशुभ स्वप्न देखने पर मनुष्य किसी दूसरे को इन्हें न कहे और प्रातःकाल ही स्नान करके सुवर्ण, तिल और लोह का दान करे, फिर देवताओं के स्तोत्र पाठ आदि करे और रात को देवमन्दिर में वास करे या उजागर रहे। इस प्रकार तीन दिन तक करने से बुरे स्वप्न के प्रभाव से मनुष्य मुक्त होता है ॥ २०–२१ ॥

शुभस्वप्नलक्षणानि—**स्वप्नेषु यः सुरान्भूपाञ्जीवतः सुहृदो द्विजान् ।**
गोसमिद्धाग्नितीर्थानि पश्येत्सुखमवाप्नुयात् ॥ २२ ॥

स्वप्न में जो पुरुष देवों को राजाओं को, मित्रों को, ब्राह्मणों को, गौओं को जीवितावस्था में देखता है, जलती हुई आग, तीर्थस्थान. आदि देखता है वह सुख को प्राप्त होता है ॥ २२ ॥

अन्यच्च—**तीर्त्वा कलुषनीराणि जित्वा शत्रुगणानपि ।**
आरुह्य सौधगोशैलकरिवाहान्सुखी भवेत् ॥ २३ ॥

और स्वप्न में जो मनुष्य नद, नदी समुद्र आदि के मैले कुचैले जल को तैर कर पार कर

---

(१) सुरा (शराब) का पीना स्वप्न में दोष माने हैं अतः यहां जौ पीसकर सिद्ध की हुई सुरा मानना चाहिये। अन्य सुरा नहीं। क्योंकि अन्यत्र स्वप्न में मद्य पीना शुभ कहा है यथा—
रुधिरं पिबति स्वप्ने मद्यं वाऽपि कथञ्चन ।
ब्राह्मणो लभते विद्यामितरस्तु धनं लभेत् ॥

लेता है, शत्रुओं को जीत लेता है, महल, वृषभ, पर्वत, हाथीआदि वाहनों पर चढ़ा हुआ अपने को देखता है वह सुखी होता है ॥ २३ ॥

अन्यच्च—**शुभ्रपुष्पाणि वासांसि मांसमत्स्यफलानि च ।**
प्राप्यातुरः सुखी भूयात्स्वस्थो धनमवाप्नुयात् ॥ २४ ॥

और जो स्वप्न में सफेद फूल तथा वस्त्र, कच्चे मांस, मछली, फल इनको प्राप्त करता है, वह रोगी आराम हो जाता है तथा स्वस्थ पुरुष देखने से धन लाभ करता है ॥ २४ ॥

अन्यच्च—**अगम्यागमनं लेपो विष्ठया रुदितं मृतिः ।**
आममांसाशनं स्वप्ने धनारोग्याप्तये विदुः ॥ २५ ॥

और जो मनुष्य स्वप्न में अपने को अगम्य स्थानों में गये हुए अथवा अगम्या (माता, बहिन आदि) से सङ्गम करते हुए, विष्ठा से हाथ-पैर आदि लिपे हुए, रोते हुए, मरे हुए, कच्चा मांस खाते हुए देखता है, वह रोगी हो तो स्वास्थ्य लाभ करता तथा स्वस्थ हो तो धन लाभ करता है ॥ २५ ॥

अन्यच्च—**जलौका भ्रमरी सर्पो मक्षिका वाऽपि यं दशेत् ।**
रोगी स भूयादुल्लाघः स्वस्थो धनमवाप्नुयात् ॥ २६ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायां पूर्वखण्डे नाडीपरीक्षाऽऽदिविधिर्नाम तृतीयोऽध्यायः ।

और स्वप्न में जिसे जोंक, भौंरे, ततैये आदि, साँप तथा मक्खी-मच्छर आदि काटें वह स्वस्थ हो तो धन और रोगी हो तो स्वास्थ्यलाभ करता है ॥ २६ ॥

इति श्रीप्रयागदत्तशर्मायुर्वेदाचार्यकृतायां सुबोधिनीनामिकायां श्रीशार्ङ्गधरसंहिताभाषाटीकायां नाडीपरीक्षाऽऽदिविधिर्नाम तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ।

अथ दीपनपाचनादिकथनम् ।

तत्र दीपनद्रव्यलक्षणम्—**पचेन्नामं वह्निकृच्च दीपनं तद्यथा मिशिः ॥ १ ॥**

जो द्रव्य आम रस को नहीं पचाता पर अग्नि को बढ़ाता है वह **दीपन** कहलाता है जैसे कि सौंफ(१) है ।

(१) शतपुष्पागुणाः—**शतपुष्पा लघुस्तीक्ष्णा पित्तकृद्दीपनी कटुः" ॥**
आमलक्षणम्—**आहारस्य रसः सारो यो न पक्वोऽग्निलाघवात् ।**
स मूलं सर्वरोगाणामाम इत्यभिधीयते ॥
अपि च—**जठरानलदौर्बल्यादविपक्वस्तु यो रसः ।**
स आमसंज्ञको ज्ञेयः सर्वदोषप्रकोपकः ॥

विमर्श—अग्नि के दुर्बल होने से खाए हुए द्रव्यों का जो रस अपक्व ही रह जाता है उसे **आम** कहते हैं। यह शरीर के सब दोषों को कुपित करता है। **सौंफ** इसे तो पकाती नहीं पर अग्नि को तेज करती है। यहां यह शङ्का होती है कि—जो द्रव्य अग्नि को तेज़ करता है वह आम को क्यों पचा नहीं सक्ता ? पर पहले लिखा जा चुका है कि द्रव्यों के प्रभाव अचिन्त्य हैं, इसलिये उनके कार्य को देखना चाहिये, कारण अनुसन्धान करने से कोई फल नहीं। (१)शास्त्र में कहा भी है–**'नौषधीर्हेतुभिर्विद्वान् परीक्षेत कथञ्चन'** ॥ १ ॥

पाचन–दीपनपाच–**पचत्यामं न वह्निं च कुर्याद्यत्तद्धि पाचनम् ।**
नद्रव्ययोर्लक्षणे— **नागकेशरवद्विद्याच्चित्रो दीपनपाचनः ॥ २ ॥**

जो द्रव्य आम रस को तो पचा देता है पर अग्नि को प्रदीप्त नहीं करता वह **पाचन** कहाता है—जैसे (२)**नागकेसर** । यह अग्नि को तो तेज़ नहीं करता पर आमरस को पचा देता है, इसी से इसे **पाचन** कहते हैं।

जो द्रव्य आम को भी पचाता तथा अग्नि को भी तेज़ करता है। उसे **दीपन-पाचन** कहते हैं। याने जो ऊपर कहे दोनों कामों को करता है वह दीपन और पाचन दोनों होने के कारण से **दीपनपाचन** कहाता है जैसा (३)**चीतामूल** ॥ २ ॥

संशमनद्रव्यलक्षणम्–**न शोधयति न द्वेष्टि समान्दोषांस्तथोद्धतान् ।**
समीकरोति विषमाञ्शमनं तद्यथाऽमृता ॥ ३ ॥

शरीर के बढ़े हुए वातादि दोषों को जो शोधता नहीं याने वमन–विरेचनादि द्वारा बाहर निकाल नहीं देता और न समस्थित याने अपने प्रमाण में रहे हुए दोषों को बढ़ाता ही है किन्तु घटे बढ़े दोषों को अन्दर ही अन्दर फिर से समान कर देता है याने रोग को दूर कर देता है। वह (४)**शमन** कहाता है। जैसे (५)**गुडूची** ॥ ३ ॥

अनुलोमनद्रव्यल–**कृत्वा पाकं मलानां यद्भित्त्वा बन्धमधो नयेत् ।**
क्षणम्— **तच्चानुलोमनं ज्ञेयं यथा प्रोक्ता हरीतकी ॥ ४ ॥**

जो द्रव्य अपक्व मलों को पका कर वायु के बन्ध को भेद कर नीचे ले जाता एवम् उन्हे गुदा के रास्ते से बाहर कर देता है उसे **अनुलोमन** कहते हैं। जैसे **हरड़** ॥ ४ ॥

---

(१) हेतुभिरौषधपरी–**नौषधीर्हेतुभिर्विद्वान् परीक्षेत कथञ्चन ।**
क्षणनिषेधः— **सहस्रेणापि हेतूनां नाम्बष्ठादिर्विरेचयेत् ॥**

(२) नागकेशरगुणाः–**नागकेशरकं रूक्षमुष्णं लघ्वामपाचनम् ।**

(३) चित्रकगुणाः—**चित्रकः कटुकः पाके वह्निकृत्पाचनो लघुः ॥**

(४) शमन के अन्य–**न शोधयति यद्दोषान् समान्नोदीरयत्यपि ।**
लक्षण— **समीकरोति च क्रुद्धांस्तत् संशमनमुच्यते ॥**

(५) गुडूचीगुणाः—**रसायनी संशमनी दोषाणां ज्वरनाशिनी ।**
गुडूची कटुका लघ्वी तिक्ताऽग्निदीपनी मता ॥

संशमन औषधि आकाशगुण–भूयिष्ठ होती है।

स्रंसनद्रव्यलक्षणम्—**पक्तव्यं यदपक्त्वैव श्लिष्टं कोष्ठे मलादिकम् ।**
नयत्यधः स्रंसनं तद्यथा स्यात् कृतमालकः ॥ ५ ॥

जो द्रव्य (१)कोठे में चिपके हुए पकने वाले मलों को विना पकाये, कच्चा ही नी जाकर गिरा देता है उसे **स्रंसन** कहते हैं। जैसा कि **अमलतास का गूदा** ॥ ५ ॥

भेदनद्रव्यलक्षणम्—**मलादिकमबद्धं यद्बद्धं वा पिण्डितं मलैः ।**
भित्त्वाऽधः पातयति यद् भेदनं कटुकी यथा ॥ ६ ॥

वातादि दोषों से मिले हुए अथवा न मिले हुए मलादिक जो कठिन हो गाढ़े बन जा उनको तोड़ फोड़ कर जो द्रव्य नीचे ले जाकर गिरा दे, उसे **भेदन** कहते हैं। जैसे–**कुटकी**

रेचनद्रव्यलक्षणम्—**विपक्वं यदपक्वं वा मलादि द्रवतां नयेत् ।**
रेचयत्यपि तज्ज्ञेयं रेचनं त्रिवृता यथा ॥ ७ ॥

जो पदार्थ पक्व हो या अपक्व, ऐसे मलादिकों को पतला कर दे एवं नीचे ले जाय दस्त कराके निकाल दे उसे(२) **रेचन** कहते हैं, जैसे–**निशोथ** ॥ ७ ॥

वमनद्रव्यलक्षणम्—**अपक्वपित्तश्लेष्माणौ बलादूर्ध्वं नयेत्तु यत् ।**
वमनं तद्धि विज्ञेयं मदनस्य फलं यथा ॥ ८ ॥

जो द्रव्य अपक्व पित्त तथा कफ और अन्न आदि को अपने प्रभाव से बलपूर्वक ऊ जाकर कै करादे। उसे (३)**वमन** (वामक) कहते हैं, जैसे–**मैनफल**।

विमर्श—यहां यह शङ्का होती है कि पित्त के लिये विरेचन देना प्रसिद्ध है, फिर **वमन** क्यों कहा ? उत्तर यह है कि अपक्व पित्त का वमन ही अच्छा होता है। और यह भी है कि पित्तज्वरादिकों में अथवा पित्त के अन्यान्य साधारण रोगों में भी वमन से पित्त कड़वा–चरपरा पीला–हरा सा होकर निकलता है। एवम् उसके बाद रोग भी शान्त हो जात इसी कारण से अम्लपित्त रोग में जिसमें पित्त विदग्ध होकर खट्टा हो जाता है पहले करना लिखा है ॥ ८ ॥

शोधकद्रव्यलक्षणम्—**स्थानाद् बहिर्नयेदूर्ध्वमधो वा मलसंचयम् ।**
देहसंशोधनं तत्स्याद् देवदालीफलं यथा ॥ ९ ॥

---

(१) पाचक स्थान का आश्रय मानकर कोई कोई कोष्ठ शब्द से हृदयादिकों का भी करते हैं, जैसे—**"स्थानान्यामाग्निपक्वानां मूत्रस्य रुधिरस्य च ।**
हृदुण्डुकः फुफ्फुसश्च कोष्ठ इत्यभिधीयते" ॥

(२) अनुलोमन, स्रंसन, भेदन और रेचन जो द्रव्य हैं उसमें पृथ्वी और जल की अधिकता रहती है। अत एव इनके गुरुत्वादि गुणों से नीचे की तरफ गमन होता है ये मलनिस्सरण कराते हैं।

(३) वामक द्रव्यों में वायु और अग्नि का गुण अधिक होता है, और इनके लघुता गुणों से ऊपर को गमन होकर वमन होता है।

जो द्रव्य अपने अपने स्थानों में इकट्ठे हुए मलों को ऊपर ले जाकर मुख या नासिका द्वारा बाहर निकाल दे अथवा नीचे ले जाकर गुदा, लिङ्ग या भग द्वारा बाहर कर दे और इस तरह शरीर को साफ करदे उसे (१)**संशोधन** कहते हैं। **जैसे देवदाली का फल** (बान्दालडोडा)॥९॥

छेदनद्रव्यलक्षणम्—**श्लिष्टान्कफादिकान्दोषानुन्मूलयति यद्बलात् ।**
छेदनं तद्यथा क्षारा मरिचानि शिलाजतु ॥ १० ॥

जो द्रव्य अपने अपने स्थानों में सञ्चित होकर या श्लिष्ट याने आपस में लिपटे हुए कफ आदि(२) दोषों को अपनी शक्ति से तोड़ फोड़ कर बलपूर्वक अलग अलग कर देता है उसे **छेदन** कहते हैं। जैसे **क्षार** (जवाखार, सज्जीखार, तिलखार आदि), **मिर्चें** (लाल, काली और सफेद) और **शिलाजीत** ॥ १० ॥

लेखनद्रव्यलक्षणम्—**धातून्म(क)लान्वा देहस्य विशोष्योल्लेखयेच्च यत् ।**
लेखनं तद्यथा क्षौद्रं नीरमुष्णं वचा यवाः ॥ ११ ॥

जो द्रव्य वात, पित्त, कफ आदि दोषों को तथा रसरक्तादि धातुओं को सुखा देकर खुरचता है याने मोटे को पतला कर देता है। उसे **लेखन** कहते हैं। जैसे-**शहद, गरम पानी, वच,** और **जौ** तथा ऐसे ही अन्य पदार्थ भी जो होते हैं वे सब ॥ ११ ॥

ग्राहिद्रव्यलक्षणम्—**दीपनं पाचनं यत्स्यादुष्णत्वाद्द्रवशोषकम् ।**
ग्राहि तच्च यथा शुण्ठी जीरकं गजपिप्पली ॥ १२ ॥

जो द्रव्य दीपनपाचन होता है याने आम को भी पकाता है अग्नि को भी दीप्त करता है तथा उष्ण गुण युक्त होने के कारण से द्रव को सुखा देता है। वह **ग्राही** कहलाता है। जैसे **सोंठ, जीरा, गजपीपल** आदि ॥ १२ ॥

स्तम्भनद्रव्यलक्षणम्—**रौक्ष्याच्छैत्यात्कषायत्वाल्लघुपाकाच्च यद्भवेत् ।**
वातकृत्स्तम्भनं तत्स्याद्यथा वत्सकटुण्टुकौ ॥ १३ ॥

जो द्रव्य रूखा गुण वाला, शीतवीर्य, कसैला तथा हलका याने शीघ्रपाकी होने के कारण

---

(१) संशोधन द्रव्य उभयगुण भूयिष्ठ होते हैं इससे दोनों काम वमन-विरेचनादि करते हैं।

(२) यहां पर **श्लिष्ट** शब्द का अर्थ **अत्यन्त कुपित भी** कोई मानते हैं। और **आदि** शब्द से कफ के साथ वात-पित्त, रक्त और कृमि का भी दोष शब्द में ग्रहण है, जैसा कहा है—

नर्त्ते देहः कफादस्ति न पित्तान्न च मारुतात् ।
शोणितादपि वा नित्यं देह एतैस्तु धार्यते ॥

(क) यहाँ "मलान् वा" यह ग्रहण किया गया है सो मनके दोष को पृथक् करने के लिये जानना चाहिये क्योंकि मन के दोषकी चिकित्सा दूसरी भी है जैसे—

धीर्धैर्यात्मविज्ञानं मनोदोषौषधं परम् ।

प्रश्न—कौन मनके दोष हैं ? उत्तर, जैसे—

रजस्तमश्च मनसो द्वौ च दोषावुदाहृतौ ॥

से वात को पैदा करके मलादिकों को रोकता है वह **स्तम्भन** कहाता है। जैसे—**कुरैया, स्योनाक** (सोनापाठा)।

विमर्श—मलों को रोकने वाली ओषधियाँ दो तरह की होती हैं—

१—जो द्रव्य ग्रहणी में आम का पाचन कर, अग्नि को तेज कर, वहां के गीलेपन सुखाकर रोक देता है उसे **उष्ण ग्राहक** या **ग्राही** कहते हैं।

२—जो द्रव्य अतीसार आदि में पक्व मलादिकों को रोकता है उसे **शीत ग्राहक स्तम्भन** कहते हैं ॥ १३ ॥

रसायनद्रव्यलक्षणम्—**रसायनं च तज्ज्ञेयं यज्जराव्याधिनाशनम् ।**
यथाऽमृता रुदन्ती च गुग्गुलुश्च हरीतकी ॥ १४ ॥

जो द्रव्य बुढ़ापे को रोकता तथा रोगों को दूर करता है उसे **रसायन** कहते है। जैसे **गुडूची, रुदन्ती शाक, गूगल** और **हरड़** आदि।

विमर्श—रसायन द्रव्य रस आदि धातुओं का पोषण करता है, तथा उनको परिणाम में रखता है, इसी से रोग आदि नहीं होते तथा बुढ़ापा जो धातुओं के क्षय होने से होता है नहीं होने पाता। यहां पर यह और समझना चाहिये कि **रुदन्ती** को कई **रुद्रवन्ती** भी कहते हैं पर **रुदन्ती** और वस्तु और **रुद्रवन्ती** और वस्तु है ॥ १४ ॥

वाजीकरद्रव्यलक्षणम्—**यस्माद् द्रव्याद्भवेत्स्त्रीषु हर्षो वाजीकरं च तत् ।**
यथा नागबलाऽऽद्याः स्युर्बीजं च कपिकच्छुजम् ॥ १५ ॥

जिस द्रव्य के सेवन से पुरुष को स्त्री के साथ संसर्ग करने की शक्ति बढ़े तथा उत्साह होवे वह **वाजीकरण** कहलाता है। जैसे नागबला और कौंच के बीज आदि।

विमर्श—यहां पर यह और समझना चाहिये कि जिस द्रव्य के सेवन करने से प्रभाव से तुरन्त ही वीर्य पैदा होता है उसे **वृष्य** कहते हैं। जैसे **दूध**। जो पदार्थ शरीर मोटा करता है उसे **बृंहण** कहते हैं। जैसे **मांस** ॥ १५ ॥

वीर्यवर्द्धकद्रव्यलक्षणम्—**यस्माच्छुक्रस्य वृद्धिः स्याच्छुक्रलं हि तदुच्यते ।**
यथाऽश्वगन्धा मुसली शर्करा च शतावरी ॥ १६ ॥

जिस द्रव्य से शुक्र की वृद्धि होती है उसे **शुक्रल** कहते हैं। जैसे—**असगन्ध, मुसली, चीनी, शतावर** आदि ॥ १६ ॥

शुक्रस्य जनकानि रेचकानि च द्रव्याणि—**दुग्धं माषाश्च भल्लातफलमज्जाऽऽमलानि च ।**
प्रवर्त्तकानि कथ्यन्ते जनकानि च रेतसः ॥ १७ ॥

दूध, उड़द, भिलावे की मींगी और **आमले** ये वीर्य को पैदा करते हैं और उसकी अधिकता होने पर उसे बाहर निकलने को चैतन्य करते हैं ॥ १७ ॥

वाजीकरद्रव्याणां विशेषाः—**प्रवर्त्तनी स्त्री शुक्रस्य रेचनं बृहतीफलम् ।**
जातीफलं स्तम्भकं च शोषणी च हरीतकी ॥ १८ ॥

स्त्री-वीर्य को प्रवर्त्तित करने वाली होती है याने स्त्री को देखने, याद करने, छूने, संभाषण करने, आलिङ्गन करने आदि से वीर्य निकलने को तैयार हो जाता है। **बड़ी कटेरी का फल**-वीर्य को निकालने वाली, **जायफल**-रोकने वाला तथा **हरड़**-उसको सुखाने वाली है ॥ १८ ॥

सूक्ष्मद्रव्यलक्षणम्—**देहस्य सूक्ष्मच्छिद्रेषु विशेद्यत्सूक्ष्ममुच्यते ।**
तद्यथा सैन्धवं क्षौद्रं निम्बतैलं रुबूद्भवम् ॥ १९ ॥

जो पदार्थ शरीर के सूक्ष्म छिद्रों में रोमकूप आदि में प्रवेश कर जाता है उसे **सूक्ष्म** कहते हैं। जैसे-**सेंधानमक, शहद, नीम का तेल, एरंड का तेल** आदि ॥ १९ ॥

व्यवायिद्रव्यलक्षणम्— **पूर्वं व्याप्याखिलं कायं ततः पाकं च गच्छति ।**
व्यवायि तद्यथा भङ्गा फेनं चाहिसमुद्भवम् ॥ २० ॥

जो द्रव्य पहले विना पके ही सारे शरीर में अपने प्रभाव से फैल जाते हैं और फिर मद्य आदि की तरह पकते हैं उन्हें **व्यवायी** कहते हैं। जैसे **भांग, अफीम** ।

विमर्श—अन्यान्य द्रव्य तो पहले पकते हैं फिर शरीर में फैलते हैं, पर **व्यवायि** द्रव्यों का प्रभाव ऐसा है कि ये पहले तो शरीर भर में फैल जाते हैं, पश्चात् पचते हैं ॥ २० ॥

विकाशिद्रव्यलक्षणम्— **सन्धिबन्धांस्तु शिथिलान्यत्करोति विकाशि तत् ।**
विश्लेष्यौजश्च धातुभ्यो यथा क्रमुककोद्रवाः ॥ २१ ॥

जो द्रव्य सारे शरीर में व्याप्त होकर रहने वाले ओज धातु को सुखाकर शरीर के रस से लेकर वीर्य पर्यन्त धातुओं से अलग करके सन्धिबन्धों को ढीला करता है उसे **विकाशी** कहते हैं। जैसे-**सुपारी, कोदो** ॥ २१ ॥

मदकारिद्रव्यलक्षणम्— **बुद्धिं लुम्पति यद् द्रव्यं मदकारि तदुच्यते ।**
तमोगुणप्रधानं च यथा मद्यसुराऽऽदिकम् ॥ २२ ॥

जो द्रव्य तमोगुण प्रधान होने के कारण बुद्धि का लोप कर देता है उसे **मदकारी** या **मादक** कहते हैं, जैसे-**शराब** आदि ।

विमर्श—मद्य मात्रापूर्वक विधान से पीने से बहुत ही गुणकारक होता है। इसके पान की चार अवस्थायें होती हैं जिनमें पहली उत्तम होती है इसमें बुद्धि आदि का विकाश होता है। शेष तीन बुद्धि का लोप करती हैं ॥ २२ ॥

प्राणहरद्रव्यलक्षणम्—**व्यवायि च विकाशि स्यात्सूक्ष्मं छेदि मदावहम् ।**
आग्नेयं जीवितहरं योगवाहि स्मृतं विषम् ॥ २३ ॥

जो द्रव्य व्यवायी हो, विकाशी हो, सूक्ष्म, छेदी, मदकारी, आग्नेय गुणवाला, प्राणनाशक और योगवाही हो वह **विष** कहलाता है। जैसे **सींगिया, वच्छनाग** आदि ।

विमर्श—विष **व्यवायी** होने के कारण पहले शरीर में फैल कर फिर पाक होता है, **विकाशी** होने से शरीर के धातुओं को सोखकर सन्धियों को ढीला करता है, **सूक्ष्म** होने से शरीर के सूक्ष्म छिद्रों से भी प्रवेश कर जाता है। **छेदी** होने से दोष, धातु तथा मलों

को बलपूर्वक उखाड़ देता है। **मदकारी** होने से नशा लाता है। **आग्नेय गुणवाला** होने से दहन पचन आदि कराता और प्राणनाश करता है तथा **योगवाही** होने से जिस द्रव्य में मिलाया जाय उसी का गुण अनुसरण करता है ॥ २३ ॥

प्रमाथिद्रव्यलक्षणम्—**निजवीर्येण यद् द्रव्यं स्रोतोभ्यो दोषसंचयम् ।**
निरस्यति प्रमाथि स्यात्तद्यथा मरिचं वचा ॥ २४ ॥

जो द्रव्य अपने प्रभाव से बलपूर्वक सञ्चित कफ आदि दोषों को मुख-नाक आदि स्रोतों या अन्य रसवाही स्रोतों से निकाल देता है उसे **प्रमाथी** कहते हैं। जैसे **मिर्च, बच** ॥ २४ ॥

अभिष्यन्दिद्रव्यलक्षणम्—**पैच्छिल्याद्गौरवाद् द्रव्यं रुद्ध्वा रसवहाः शिराः ।**
धत्ते यद्गौरवं तत्स्यादभिष्यन्दि यथा दधि ॥ २५ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायां पूर्वखण्डे दीपनपाचनादिकथनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ।

जो द्रव्य पिच्छिल होने से तथा भारीपन से शरीर के रसवाही शिराओं को रोककर शरीर में भारीपन पैदा कर दे उसे **अभिष्यन्दी** कहते हैं, जैसे **दही** ॥ २५ ॥

इति श्रीप्रयागदत्तशर्मायुर्वेदाचार्यकृतायां सुबोधिनीनामिकायां श्रीशार्ङ्गधरसंहिताभाषाटीकायां दीपनपाचनादिकथनं नाम चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ।

अथ कलाऽऽदिकाख्यानाध्यायः ।

(शारीरम्)

कलाऽऽदिकाख्यानम्—**कलाः सप्providerाश(क)याः सप्त धात(ख)वः सप्त तन्मलाः ।**
सप्तोपधात(ग)वः सप्त त्वचः(घ)सप्त प्रकीर्त्तिताः ॥ १ ॥
त्रयो दोषा नवशतं स्नायूनां संधयस्तथा ।
दशाधिकं च द्विशतमस्थ्नां च त्रिशतं तथा ॥ २ ॥
सप्तोत्तरं मर्मशतं शिराः(ङ) सप्तशतं तथा ।
चतुर्विंशतिराख्याता धमन्यो रसवाहिकाः ॥ ३ ॥

(क) आशयस्था- **स्थानान्यामाग्निपक्वानां मूत्रस्य रुधिरस्य च ।**
नकोष्ठलक्षणम्— **हृदुण्डुकः फुफ्फुसश्च कोष्ठ इत्यभिधीयते ॥**

(ख) धातवः—**रसाऽसृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः ।**

(ग) उपधातवः—**धातुसमीपे भवा उपधातवः ।**

(घ) त्वचः—**शुक्रशोणितस्याभिपच्यमानक्षीरस्येव सन्तानिका सप्त त्वचो भवन्ति ।**

(ङ) शिराः—**द्विसप्ततिसहस्राणि नाडीनां तद्विनिर्गताः ।**
ताभ्यो विनिर्गता नाडयस्ताभ्योऽथान्याः पुनः पुनः ॥

मांसपेश्यः(च) समाख्याता नृणां पञ्चशतं बुधैः ।
स्त्रीणां च विंशत्यधिकाः कण्डराश्चैव षोडश ॥ ४ ॥
नृदेहे दश रन्ध्राणि नारीदेहे त्रयोदश ।
एतत्समासतः प्रोक्तं विस्तरेणाधुनोच्यते ॥ ५ ॥

अब शरीर के कलादिकों को कहते हैं:—सात (७)कला, सात (७)आशय, सात (७)धातु, सात (७)धातुमल, सात (७)उपधातु, सात (७)त्वचा, तीन दोष, नौ सौ (९००)स्नायुएँ, दो सौ दस (२१०)सन्धियां, तीन सौ (३००)हड्डियां, एक सौ सात (१०७) मर्म, सात सौ (७००)शिराएं, चौबीस (२४)रसवाहिनी धमनियां, मनुष्य के पाँच सौ (५००)मांसपेशी, स्त्रियों के पाँच सौ बीस (५२०)मांसपेशी, सोलह (१६)कण्डरा, नर के शरीर में दस (१०)छिद्र तथा स्त्री के देह में तेरह (१३)छिद्र—यह संक्षेप में सिर्फ नाम और संख्या भर कहे हैं, आगे विस्तारपूर्व कहेंगे ॥ १–५ ॥

अथ सप्तकलाः—**मांसासृङ्मेदसां तिस्रो यकृत्प्लीह्नोश्चतुर्थिका ।**
पञ्चमी च तथाऽन्त्राणां षष्ठी चाग्निधरा मता ॥
रेतोधरा सप्तमी स्यादिति सप्त कलाः स्मृताः ॥ ६ ॥

मांस, रक्त, मेद, यकृत्–प्लीहा, आंतें, अग्नि, शुक्र, इन सात चीजों को धारण करने वाली सात कलाएं हैं।

विमर्श—दो धात्वाशय के बीच शरीर की गरमी से पका हुआ जो गीला गीला सा भाग होता है उसे (१)**'कला'** कहते हैं या ऐसा समझे कि एक धातु से दूसरे धातु को अलग करने की जो सीमा है वही कला है।

और स्नायु से विस्तृत, जरायु से ढका हुआ तथा कफ से लिहसा हुआ जो भाग झिल्ली के रूप में देखा जाता है उसे (२)**कला का भाग** कहते हैं। पहली कला (३)**'मांसधरा'** है। यह कला मांस को धारण करती है। इसी के आश्रय में मांस के अन्दर सिरा आदि फैले रहते

तावत्यो नाडिका देहे यावत्यो रोमकूपिकाः ।
स्थूलमूलाः सुसूक्ष्माग्राः पत्ररेखाप्रतानवत् ॥

(च) पेशीरूपम्—**चतुरस्रा भवेत्पेशी ।**

(१) कलालक्षणम्—**धात्वाशयान्तरस्थस्तु यः क्लेदस्त्वधितिष्ठति ।**
देहोष्मणा विपक्वो यः सा कलेत्यभिधीयते ॥

(२) अन्यच्च—**स्नायुभिश्च प्रतिच्छन्नान् सन्ततांश्च जरायुणा ।**
श्लेष्मणा वेष्टितांश्चापि कलाभागांस्तु तान् विदुः ॥ इति सुश्रुतः ।

अपि च—**धात्वाशयान्तरक्लेदो विपक्वः स्वं स्वमूष्मणा ।**
श्लेष्मस्नाय्वपराच्छन्नः कलाऽऽख्यः काष्ठसारवत् ॥ इति वाग्भटः ।

(३) तासां प्रथमा मांसधरा नाम यस्यां मांसगतानां सिरास्नायुधमनीस्रोतसां प्रताना भवन्ति ।

हैं। २ दूसरी (१)**'रक्तधराकला'** है। यह कला रक्त को धारण करती है। यह मांस के शिरा, स्नायु, धमनी और यकृत् तथा प्लीहा के अन्दर होती है क्योंकि यही रक्त के स्थान ३–तीसरी कला (२)**'मेदोधरा'** है। यह मेद को धारण करती है और खास कर पेट की अस्थियों में होती है। ४ चौथी कला यकृत् और प्लीहा के बीच में होती है और कफ को करती है, इस लिये इसे **'कफधरा'** (३)कला कहते हैं। ५–पाँचवीं कला आंतों में स्थित इसे **'पुरीषधरा'** (४)कला कहते हैं। क्योंकि यह मलों का विभाग करती और धारण है। ६–छठीं **'पित्तधरा'** (५)कला है। यह पक्वाशय में स्थित होकर खाद्य–पेयप्रभृति आम से गिरे पदार्थों को धारण कर पित्त के द्वारा पकाती है। ७–सातवीं कला **रेतोधरा** (६)है। शुक्र यानी वीर्य को धारण करती है और सभी प्राणियों के संपूर्ण शरीर में व्याप्त रहती है॥ ६॥

अथ सप्ताशयाः—**श्लेष्माशयः स्यादुरसि तस्मादामाशयस्त्वधः ॥ ७॥**
ऊर्ध्वमग्न्याशयो नाभेर्वामभागे व्यवस्थितः।
तस्योपरि तिलं ज्ञेयं तदधः पवनाशयः ॥ ८॥
मलाशयस्त्वधस्तस्माद्वस्तिर्मूत्राशयस्त्वधः।
जीवरक्ताशयमुरो ज्ञेयाः सप्ताशयास्त्वमी ॥ ९॥

नारीणां विशेषाशयाः–**पुरुषेभ्योऽधिकाश्चान्ये नारीणामाशयास्त्रयः।**
धरा गर्भाशयः प्रोक्तः स्तनौ स्तन्याशयौ मतौ ॥१०॥

---

(१) द्वितीया रक्तधरा नाम मांसस्याभ्यन्तरतः, तस्यां शोणितं विशेषतश्च सिरासु प्लीह्नोश्च भवति।

(२) तृतीया मेदोधरा नाम, मेदो हि सर्वभूतानामुदरस्थमण्वस्थिषु च महत्सु च मज्जा

(३) चतुर्थी श्लेष्मधरा नाम सर्वसन्धिषु प्राणभृतां भवति।

(४) पञ्चमी पुरीषधरा नाम, याऽन्तः कोष्ठे मलमभिविभजते पक्वाशयस्था।

(५) षष्ठी पित्तधरा नाम, या चतुर्विधमन्नपानमुपभुज्यमानममाशयात् प्रच्युतं पक्वा पस्थितं धारयति।

चतुर्विधमन्नपानं—**अशितं खादितं पीतं लीढं कोष्ठगतं नृणाम्।**
तज्जीर्यति यथाकालं शोषितं पित्ततेजसा ॥"

(६) सप्तमी शुक्रधरा नाम, सर्वप्राणिनां सर्वशरीरव्यापिनी।

शुक्रस्य सर्वशरीरव्या–**"यथा पयसि सर्पिस्तु गूढश्चेक्षौ रसो यथा।**
पकत्वं तु यथा—**शरीरेषु तथा शुक्रं नृणां विद्याद्भिषग्वरः॥**
शुक्रनिर्गमस्थानम्—**द्व्यङ्गुले दक्षिणे पार्श्वे वस्तिद्वारस्य चाप्यधः।**
मूत्रस्रोतःपथाच्छुक्रं पुरुषस्य प्रवर्त्तते॥
शुक्रनिर्गमे हेतुः—**कृत्स्नदेहाश्रितं शुक्रं प्रसन्नमनसस्तथा।**
स्त्रीषु व्यायच्छतश्चापि हर्षात् तत्सम्प्रवर्त्तते ॥ ६॥

अब सात आशयों को कहते हैं—**पहला**—कफ का आशय या थैली है। इसमें कफ रहता है और इसका स्थान हृदय है। **दूसरा**—उससे कुछ नीचे आमाशय है। इसमें आम यानी अपक्क अन्नरस रहता है। **चरक** के मत से (१)नाभि और स्तनों के बीच के भाग को ही **आमाशय** कहते हैं। **तीसरा**—अग्न्याशय है। यह नाभि के बायें ओर स्थित है। यही **ग्रहणी** (२)स्थान है, जहां पाचक अग्नि रहती है जो कि भोजन किये तथा पीये वस्तुओं को पकाती है। इसके ऊपर (३)तिल या क्लोम है जो जलवाही शिराओं की जड़ है। यह प्यास का स्थान है। यहीं से जन्तुओं को प्यास लगती है। **चौथा**-पवनाशय या वाताशय है। यह अग्न्याशय के नीचे है। यह वायु का स्थान है, इसमें समान नामक वायु रहती है। यहां कोई कोई विद्वान् ऐसा अर्थ लगाते हैं कि-यह पवनाशय की वायु अपने ऊपर के अग्नि को दीप्त करती है। अग्नि तिल यानी जलस्थान के जल को गरम करती है और गरम जल अपने ऊपर स्थित अन्न को पकाता है। **पांचवां**-मलाशय है। यह पवनाशय से नीचे है। इसे पक्काशय कहते हैं। यह पचा हुआ जो अन्न आता है, उसका अवशिष्ट सार यहीं सोख लिया जाता है और मल बाहर निकाल दिया जाता है। छठां-मूत्राशय है। यह मलाशय के नीचे है। यहां वृक्कों से छन कर आया हुआ मूत्र जमा होता है और अधिक होने पर बाहर कर दिया जाता है। इसे **'वस्ति'** भी कहा जाता है। **सातवां**-आशय जीवतुल्य रक्त का या जीव और रक्त का जीवरक्ताशय है। इसका स्थान हृदय है। यह हृदय के बायें भाग में स्थित है, इसे प्लीहा कहते हैं। येही सात आशय हैं। पुरुषों में ये सात ही आशय होते हैं। स्त्रियों में इनके सिवाय और तीन आशय अधिक होते हैं। एक गर्भाशय या धरा और दो स्तन्याशय। गर्भाशय का स्थान पित्ताशय या अग्न्याशय और पक्काशय के बीच में है। स्तन्याशयों का स्थान छाती में है। इन्हें **स्तन** कहते हैं ॥ ७-१० ॥

अथ सप्तधातूनां नामानि **रसासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः।**

तदुत्पत्तिक्रमश्च— **जायन्तेऽन्योऽन्यतः सर्वे पाचिताः पित्ततेजसा ॥ ११ ॥**

रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदः प्रजायते ।
मेदसोऽस्थि ततो मज्जा मज्जायाः शुक्रसंभवः ॥ १२ ॥

---

(१) **नाभिस्तनान्तरं जन्तोरामाशय उदाहृतः ।** इति चरकः ।

(२) ग्रहणी—**अग्न्यधिष्ठानमन्नस्य ग्रहणाद् ग्रहणी मता ।**
नाभेरुपरि स ह्यग्निबलोपस्तम्भवाहि च ॥

(३) कोई २ आचार्य तिल के ऊपर जल है ऐसा ही मानते हैं "तस्योपरि जलं ज्ञेयम्" इस वचन से। जिसका प्रमाण यों है-जैसे—

अग्नेरूर्ध्वं जलं स्थाप्यं तदन्नं च जलोपरि ।
अग्नेरधः स्वयं वायुः स्थितोऽग्निं धमते शनैः ॥
वायुना धममानोऽग्निरत्युष्णं कुरुते जलम् ।
तदन्नमुष्णतोयेन समन्तात् पच्यते पुनः ॥

अब सात धातुओं को कहते हैं-(१)रस. (२)रक्त, (३)मांस, (४)मेद, (५)अस्थि, (६) और (७)शुक्र-ये सात धातुयें हैं। ये क्रम से एक दूसरे से शरीर की अग्नि-पित्त से जाकर तैयार होते हैं। अन्न का जो रस बनता है वह पित्त की गरमी से पच कर रक्त बन रक्त पचकर मांस, मांस पचकर मेद, मेद पचकर अस्थि, अस्थि पचकर मज्जा और पचकर शुक्र या वीर्य बनता हैं। इस प्रकार एक दूसरे के अनुग्रह से ये सात धातुएँ ब

विमर्श—ये पककर सबके सब आगे के धातु में परिणत नहीं होते, कुछ तो मैल में निकल जाता है। सूक्ष्म भाग जो पककर तैयार होता है वह अगला धातु बनता है स्थूल भाग अपक्व रह जाता है वह वही धातु बना रहता है॥ ११-१२॥

अथ सप्तधातूनां मला-**जिह्वानेत्रकपोलानां जलं पित्तं च रञ्जकम्।**
स्तदुत्पत्तिक्रमश्च— **कर्णविड्रसनादन्तकक्षामेढ्रादिजं मलम्॥ १३॥**
नखनेत्रमलं वक्त्रे स्निग्धत्वं पिटिकास्तथा।
जायन्ते सप्तधातूनां मलान्येतान्यनुक्रमात्॥ १४॥

अब सात धातुओं के मैल कहते हैं—१-जिह्वा, नेत्र और मुख से जो जल निक वह **रस धातु का मल** है। २—रञ्जक पित्त जिसके कारण रक्त लाल रहता है, **रक्त का**

---

(१) प्रथमो रसधातुः-**सम्यक् पक्वस्य भुक्तस्य सारो निगदितो रसः।**
स तु द्रवः सितः शीतः स्वादुः स्निग्धश्चलो भवेत्॥
(२) द्वितीयो रक्तधातुः-**यदा रसो यकृद्याति तत्र रञ्जकपित्ततः।**
रागं पाकं च संप्राप्य स भवेद्रक्तसंज्ञकः॥
(३) तृतीयो मांसधातुः—**शोणितं स्वाग्निना पक्वं वायुना च घनीकृतम्।**
तदेव मांसं जानीयात्तस्य भेदानपि ब्रुवे॥
(इसका भेद पेशी आदि जानना चाहिये)
(४)चतुर्थो मेदोधातुः—**यन्मांसं स्वाग्निना पक्वं तन्मेद इति कथ्यते।**
तदतीव गुरु स्निग्धं बलकार्य्यतिबृंहणम्॥
(५)पञ्चमोऽस्थिधातुः—**"मेदो यत् स्वाग्निना पक्वं वायुना चातिशोषितम्।**
तदस्थिसंज्ञां लभते स सारः सर्वविग्रहे॥
अभ्यन्तरगतैः सारैर्यथा तिष्ठन्ति भूरुहाः।
अस्थिसारैस्तथा देहा ध्रियन्ते देहिनो ध्रुवम्॥
तस्माच्चिरविनष्टेषु त्वङ्मांसेषु शरीरिणाम्।
अस्थीनि न विनश्यन्ति सारा एतानि सर्वथा॥
(६) षष्ठो मज्जधातुः—**अस्थि यत्स्वाग्निना पक्वं तस्य सारो भवेद् घनः।**
यः स्वेदवत पृथग्भूतः स मज्जेत्यभिधीयते"॥
(७) सप्तमः शुक्रधातुः—**मज्जायाः शुक्रसम्भवः** (सूक्ष्मभाग इत्यर्थः)॥

है । ३—कान का मैल **मांस धातु का मल** है। ४—जीभ, दांत, कांख और लिंग आदि का मैल—ये सब **मेद धातु का मल** है, (आदि ग्रहण से कोई कोई इसमें पसीने को भी शामिल करते हैं पर यह दूसरों का मत है, ग्रन्थकर्त्ता का नहीं। वे तो इसे मेद का उपधातु मानते हैं।) ५—नख और बाल तथा रोएं **हड्डी के मैल** हैं । ६—आंखों का मैल **मज्जा धातु का मल** है । ७—मुख की चिकनाई और मुख के मुहांसे तथा दाढ़ी—मूछ **शुक्र धातु का मल** है। इस प्रकार ये सात धातुमल(१) हैं ॥ १३—१४ ॥

मतान्तरेण **कफः(२) पित्तं मलं खेषु प्रस्वेदो नखरोम च ।**
धातुमलाः—**नेत्रविट् त्वक्षु च स्नेहो धातूनां क्रमशो मलाः ॥ १९ ॥**

कफ, पित्त, कान का मैल, पसीना, नख और लोम, नेत्र का मल और चमड़े की चिकनाई ये सात धातुओं के क्रमतः मल हैं। यानें रस का कफ, रक्त का पित्त, मांस का कर्णमल, मेद का पसीना, अस्थि का नख और रोम, मज्जा का नेत्र का मल और शुक्र का त्वचा की चिकनाई मल है।

विमर्श—यह श्लोक प्रक्षिप्त है क्योंकि यही बातें सब ऊपर कह आये हैं-यहां कहने की आवश्यकता नहीं। फिर आचार्य आगे पसीने को मेद का उपधातु लिखे हैं और यहां मेद का मल लिखा है सो अपना ही मतद्वैध हुआ। इससे यह प्रक्षिप्त है। १—रस का मल मुख—नेत्र—जिह्वा का जल लिखा है और कफ भी। इसमें दो मत नहीं क्योंकि जल कफ का ही स्वरूप है। २—पसीने को शार्ङ्गधर आचार्य मेद का उपधातु मानते हैं और अन्य आचार्य मेद का मल मानते हैं। ३—दूसरे आचार्य शुक्र के अति स्वच्छ होने के कारण से मल का होना नहीं मानते, सूक्ष्म भाग ओज और स्थूल भाग शुक्र मानते हैं, मुख की चिकनाई मुहांसे तथा दाढ़ी—मूछ को मज्जा धातु का मल मानते हैं ॥ १५ ॥

अथोपधातवः—**स्तन्यं रजश्च नारीणां काले भवति गच्छति ।**
शुद्धमांसभव स्नेहः सा वसा परिकीर्त्तिता ॥ १६ ॥
स्वेदो दन्तास्तथा केशास्तथैवौजश्च सप्तमम् ।
इति धातुभवा ज्ञेया एते सप्तोपधातवः ॥ १७ ॥

अब उपधातुओं को कहते हैं—धातु का जो भाग कुछ विकृत होकर उसीका सा एक भिन्न धातु बनता है उसे उपधा(३)तु कहते हैं। स्त्रियों का दूध **रस धातु का** उपधातु है। उनका

---

(१) मलक्रमः—**किट्टमन्नस्य विण्मूत्रं रसस्य तु कफोऽसृजः ।**
पित्तं मांसस्य तु मलं खेषु स्वेदस्तु मेदसः ॥
नखमस्थ्नस्तु लोमाद्या मज्ज्ञः स्नेहोऽक्षिविट्त्वचः ।
प्रसादः किट्टधातूनां पाकादेव विवर्धते ॥
शुक्रस्यातिप्रसन्नत्वान्मलाभाव इति स्मृतिः ॥

(२) प्रक्षिप्तमिदम् ।

(३) उपधातुः—**रसात् स्तन्यं ततो रक्तमसृजः स्नायुकण्डराः ।**

मासिक रज **रक्त धातु का** उपधातु है। ये दोनों तथा रोमराजि ये स्त्रियों के समय (१२ वर्ष बाद) पैदा होते हैं और समय आने पर (५० वर्ष बाद) दूध और रज जाते हैं। रज तो बराबर हर महीना प्रकट होता रहता है पर दूध गर्भ रहने से ही अन्यथा नहीं। इसी तरह केवल मांस से पैदा हुआ स्नेह याने वसा या चर्बी **मांस** उपधातु है। पसीना **मेद धातु का** उपधातु है। दांत **अस्थि के** उपधातु हैं। बाल के उपधातु हैं। **शुक्र धातु का** उपधातु ओज हैं। ये सात धातुओं से उत्पन्न सात तुएं हैं ॥ १६-१७ ॥

अथौजोलक्षणम्—**ओजः सर्वशरीरस्थं शीतं स्निग्धं स्थिरं मतम् ।**
सोमात्मकं शरीरस्य बलपुष्टिकरं मतम् ॥ १८ ॥

अब ओज का लक्षण कहते हैं-ओज सारे शरीर में व्याप्त होकर रहने वाला, शीत, और स्थिर है तथा सोमात्मक याने उत्पादक शक्ति विशिष्ट है। और शरीर के बल तथा कारकों में श्रेष्ठ है याने शरीर की पुष्टि बल-वीर्य पर ही अवलम्बित है। (इसलिये इसकी करना परमावश्यक है) ॥ १८ ॥

अथ सप्त त्वचः—**ज्ञेयाऽवभासिनी पूर्वं सिध्मस्थानं च सा मता ।**
द्वितीया लोहिता ज्ञेया तिलकालकजन्मभूः ॥ १९ ॥
श्वेता तृतीया संख्याता स्थानं चर्मदलस्य सा ।
ताम्रा चतुर्थी विज्ञेया किलासश्वित्रभूमिका ॥ २० ॥
पञ्चमी वेदनी ख्याता सर्वकुष्ठोद्भवस्ततः ।
विख्याता रोहिणी षष्ठी ग्रन्थिगण्डापचीस्थितिः ॥ २१ ॥
स्थूला त्वक्सप्तमी ख्याता विद्रध्यादेः स्थितिश्च सा ।
इति सप्त त्वचः प्रोक्ताः स्थूला व्रीहिद्विमात्रया ॥ २२ ॥

अब सात त्वचाओं का वर्णन करते हैं—(१) पहली त्वचा **अवभासिनी** है। यह याने सेहुंआँ का स्थान है याने सेहुंआँ, पद्मकण्टकादि रोगों का उत्पत्तिस्थल है। यहीं पित्त होता है जिसके तेज से पांच प्रकार की छाया को यह प्रकाश करती है। २— त्वचा **लोहिता** है। यह तिल, न्यच्छ, व्यंग आदि का उत्पत्तिस्थल है। ३—तीसरी

मांसाद्वसा त्वचः स्वेदो मेदसः स्नायुसन्धयः ॥
अस्थ्नो दन्तास्तथा मज्ज्ञः केशा ओजश्च सप्तमात् ।
धातुभ्यश्चोपजायन्ते तस्मात्ते ह्युपधातवः ॥
रसादेव स्त्रिया रक्तं रजःसञ्ज्ञं प्रवर्त्तते ।
तद्वर्षाद् द्वादशादूर्ध्वं याति पञ्चाशतः क्षयम् ॥

(१) अवभासिनी—**अवभासयति पराजयति भ्राजकाग्निना**
सवर्णा पञ्चविधां छायां प्रकाशयतीति ॥

श्वेता है। यह चर्मदल कुष्ठ, अजगल्ली आदि का उत्पत्तिस्थल है। ४—चौथी त्वचा **ताम्रा** है। यह किलास कुष्ठ और श्वित्र प्रभृति का उत्पत्तिस्थल है। ५—पाँचवीं त्वचा **वेदनी** है। यह सब प्रकार के कोढ़ों का स्थान है। ६—छठीं त्वचा **रोहिणी** है। यह गण्डमाला, अर्बुद, अपची प्रभृति का जन्मस्थान है। ७—सातवीं त्वचा **स्थूला** है। यह विद्रधि आदि का स्थान है। इस तरह ये सात त्वचाएं हैं। ये कुल दो व्रीहि या जौ के प्रमाण मोटी हैं।

विमर्श—इनका विवरण इस प्रकार है—पहली जौ का १/१८ दूसरी जौ का १/१६ तीसरी जौ का १/१२ चौथी जौ का १/८ पांचवीं जौ का १/५ छठीं जौ के बराबर मोटी हैं। इस प्रकार सब मिला कर दो जौ भर मोटी हैं। यह मान मांसल स्थानों का है, ललाट और अंगुली आदि अमांसल स्थानों का नहीं ॥ १९—२२ ॥

अथ दोषास्तन्नामानि च—**वायुः पित्तं कफो दोषा धातवश्च मलास्तथा ।**
तत्रापि पञ्चधा ख्याताः प्रत्येकं देहधारणात् ॥ २३ ॥

वायु, पित्त और कफ ये तीन दोष, धातु तथा मल कहलाते हैं। ये तीन होने पर भी शरीर धारण करने के हेतु पांच पांच प्रकार के हो जाते हैं ॥ २३ ॥

दोषाणां नामान्तरे **(शरीरदूषणाद्दोषा धातवो देहधारणात् ।**
कारणनिर्देशः—**वातपित्तकफा ज्ञेया मलिनीकरणान्मलाः ॥ २४ ॥)**

ये वात, पित्त और कफ विगड़ कर शरीर को दूषित करते हैं इसलिये **दोष** कहलाते हैं। अविकृत रहने पर शरीर को ये ही धारण करने से **धातु** कहलाते हैं। तथा विकृत होने पर रसादि धातुओं से मिलकर उनको मलिन करते हैं इसलिये ये **मल** कहलाते हैं। इस प्रकार वात, पित्त, कफ प्रत्येक की दोष, धातु और मल ये तीन संज्ञाएं हुईं ॥ २४ ॥

तत्र वायोः प्राधान्यं **पित्तं पङ्गु कफः पङ्गुः पङ्गवो मलधातवः ।**
तत्कार्यवर्णनञ्च— **वायुना यत्र नीयन्ते तत्र गच्छन्ति मेघवत् ॥ २५ ॥**
पवनस्तेषु बलवान्विभागकरणान्मतः ।
रजोगुणमयः सूक्ष्मः शीतो रूक्षो लघुश्चलः ॥ २६ ॥

पित्त, कफ, देह के अन्य धातुएं तथा मल ये सब पङ्गु हैं याने ये स्वयं शरीर के एक स्थान से दूसरे स्थान को नहीं जा सक्ते। इन्हें वायु जहां ले जाता है वहां मेघ की तरह चले जाते हैं। अर्थ यह है कि इन सब का चालक वायु ही है।

अत एव इन तीनों दोषों में वायु बलवान है क्योंकि वह सब धातु, मल आदि का विभाग करता है। यह वायु रजोगुणवाला, सूक्ष्म याने सब शरीर में सूक्ष्म छिद्रों में भी प्रवेश करने वाला, शीतवीर्य, रूखा, हलका और चञ्चल है ॥ २५—२६ ॥

कार्यभेदेन वायोः पञ्चवि- **मलाशये चरेत्कोष्ठे वह्निस्थाने तथा हृदि ।**
धत्वम्— **कण्ठे सर्वाङ्गदेशेषु वायुः पञ्चप्रकारतः ॥ २७ ॥**

मलाशय, कोठा या आमाशय और अग्निस्थान या पाचकाशय, हृदय, कण्ठ तथा सम्पूर्ण शरीर, इन पाँच स्थानों में वायु पाँच प्रकार का होकर रहता है ॥ २७ ॥

वायोः पञ्चनामानि—अपानः स्यात्समानश्च प्राणोदानौ तथैव च ।
व्यानश्चेति समीरस्य नामान्यु(१)क्तान्यनुक्रमात् ॥ २८॥

अपान, समान, प्राण, उदान और व्यान, ये पाँच उक्त पाँच स्थानों के वायु के नाम क्रमतः हैं ।

विमर्श—(२)पक्वाशय में **अपान वायु**, कोठे में **समान वायु**, हृदय में प्राण वायु, कण्ठ में **उदान वायु**, और सारे शरीर में **व्यान वायु**, रहकर अपना अपना कार्य करते हैं ॥ २८ ॥

अथ पित्तस्य विवरणम्—पित्तमुष्णं द्रवं पीतं नीलं सत्त्वगुणोत्तरम् ।
कटु तिक्तरसं ज्ञेयं विदग्धं चाम्लतां व्रजेत् ॥ २९ ॥

अब पित्त का विवरण करते हैं—**पित्त** गरम, द्रव, पीला, नीला, अधिक सत्त्वगुण वाला, कटु और तिक्त रस वाला है। यह पित्त विदग्ध होने पर अग्निगुण–भूयिष्ठ होने के कारण खट्टा हो जाता है ॥ २९ ॥

तस्य स्थानानि कार्याणि नामानि च— अग्न्याशये भवेत्पित्तमग्निरूपं तिलोन्मितम् ।
त्वचि कान्तिकरं ज्ञेयं लेपाभ्यङ्गादिपाचकम् ॥ ३० ॥

---

(१) प्राणवायुः—योऽनिलो वक्त्रसंचारी स प्राणो नाम देहधृक् ।
सोऽन्नं प्रवेशयेदन्तः प्राणांश्चैवावलम्बते ।
कुपितः कुरुते चापि हिक्काश्वासादिकान् गदान् ॥

अपानवायुः—पक्वाशयाश्रयोऽपानः काले कर्षति चाप्यधः ।
वातमूत्रपुरीषाणि शुक्रगर्भार्त्तवानि च ॥
क्रुद्धश्च कुरुते रोगान् घोरान् बस्तिगुदाश्रयान् ॥

समानवायुः—आमपक्वाशयचरः समानोऽग्निसहायवान् ।
अन्नं पचति तज्जांश्च विकारान् प्रव्यनक्ति सः ॥
गुल्माग्निसादातीसारान् प्रणष्टश्च करोति सः ॥

उदानवायुः—उदानो नाम यस्तूर्ध्वमुपैति पवनोत्तमः ।
तेन भाषितगीतादिविशेषश्चाभिवर्त्तते ॥
ऊर्ध्वजत्रुगतान्रोगान्करोति कुपितश्च सः ॥

व्यानवायुः—सर्वदेहचरो व्यानो रससंवाहनोद्यतः ।
स्वेदासृक्स्रावणश्चायं पञ्चधा चेष्टयत्यपि ।
क्रुद्धश्च कुरुते रोगान् प्रायशः सर्वदेहगान् ॥

वायोरन्यानि नामानि–नागः कूर्मोऽथ कृकलो देवदत्तो धनञ्जयः ।

(२) वायुस्थानानि—हृदि प्राणो गुदेऽपानः समानो नाभिसंस्थितः ।
उदानः कण्ठदेशस्थो व्यानः सर्वशरीरगः ॥

दृश्यं यकृति यत्पित्तं तद्रसं शोणितं नयेत् ।
यत्पित्तं नेत्रयुगले रूपदर्शनकारि तत् ॥ ३१ ॥
यत्पित्तं हृदये तिष्ठेन्मेधाप्रज्ञाकरं च तत् ।
पाचकं भ्राजकं चैव रञ्जकालोचके तथा ॥
साधकं चेति पञ्चैव पित्तनामान्यनुक्रमात् ॥ ३२ ॥

यह भी पाँच प्रकार से पाँच स्थानों में रहता है। अग्न्याशय में पाचक अग्निरूप में तिल प्रमाण में यह पित्त होता है। चमड़े में शरीर की कान्ति को करने वाला तथा उस पर लगाये गये लेप और मालिश किये पदार्थों को परिपक्व करने वाला पित्त होता है। यकृत में जो पित्त होता है वह रस को रञ्जित कर रक्त बनाता है। नेत्रों में जो पित्त होता है वह देखने की शक्ति देता है। हृदय में जो पित्त रहता है वह मेधा और बुद्धि प्रभृति मानसिक गुणों का करने वाला है। इनके नाम क्रमतः (१)पाचक, भ्राजक, रञ्जक, आलोचक और साधक हैं।

विमर्श—(२)पाचक पित्त बड़े शरीर वाले जीवों में जौ बराबर, छोटे जीवों में तिल बराबर और क्रमिकीटादि जीवों में बाल बराबर रहता है ॥ ३०–३२ ॥

कफस्य विवरणं— **कफः स्निग्धो गुरुः श्वेतः पिच्छिलः शीतलस्तथा ।**
कर्माणि च— **तमोगुणाधिकः स्वादुर्विदग्धो लवणो भवेत् ॥ ३३ ॥**

अब कफ का विवरण करते हैं—(३)**कफ** चिकना, भारी, सफेद, पिच्छिल, शीतल, अधिक तमोगुण वाला और मधुर है। यह विदग्ध होकर नमकीन हो जाता है ॥ ३३ ॥

---

(१) पाचकपित्तम्—पित्तं पञ्चात्मकं तत्र पक्वामाशयमध्यगम् ।
पञ्चभूतात्मकत्वेऽपि यत्तैजसगुणोदयात् ॥
त्यक्तद्रवत्वं पाकादिकर्मणाऽनलशब्दितम् ।
पचत्यन्नं विभजते सारकिट्टौ पृथक् तथा ॥
तत्रस्थमेव पित्तानां शेषाणामप्यनुग्रहम् ।
करोति बलदानेन पाचकं नाम तत्स्मृतम् ॥
रञ्जकपित्तम्—आमाशयाश्रयं पित्तं रञ्जकं रसरञ्जनात् ।
साधकालोचक-बुद्धिमेधाऽभिमानाद्यैरभिप्रेतार्थसाधनात् ।
भ्राजकपित्तानि—साधकं हृद्गतं पित्तं रूपालोचनतः स्मृतम् ॥
दृक्स्थमालोचकं त्वक्स्थं भ्राजकं भ्राजनात्त्वचः ॥
(२) पाचकपित्त-स्थूलकायेषु सत्त्वेषु यवमात्रं प्रमाणतः ।
प्रमाणम्—ह्रस्वमात्रेषु सत्त्वेषु तिलमात्रं प्रमाणतः ॥
कृमिकीटपतङ्गेषु बालमात्रं हि तिष्ठति ॥
(३) शुद्धदूषितकफ-प्रकृतिस्थोऽविदग्धश्चाप्रदुष्टो मधुरः कफः ।
योर्लक्षणे—विदग्धो विकृतश्च स्यात् प्रदुष्टो लवणस्तथा ॥

तस्य स्थाननामक-कफश्चामाशये मूर्ध्नि कण्ठे हृदि च संधिषु ।
थनम्—तिष्ठन्करोति देहस्य स्थैर्यं सर्वाङ्गपाटवम् ॥ ३४ ॥
क्लेदनः स्नेहनश्चैव रसनश्चावलम्बनः ।
श्लेष्मकश्चेति नामानि कफस्योक्तान्यनुक्रमात् ॥ ३५ ॥

यह भी कथितानुसार पाँच प्रकार का होकर पाँच स्थान में निवास करता है । आमा शिर, कण्ठ, हृदय, शरीर की जोड़ें, इन स्थानों में रह कर कफ सारे शरीर की स्थिरता, पुष्टि दृढ़ता को करता है । इनके नाम क्रम से क्लेदन, स्नेहन, रसन, अवलम्बन और श्लेष्मक है

विमर्श—(१)क्लेदन कफ आमाशय में रहकर खाए हुए पदार्थों को अपने क्लेदन से शिथिल कर उसे पचने योग्य बनाता है । **(२)स्नेहन कफ—**सिर में रह कर अपने गुण से सब इन्द्रियों का तर्पण करता है । **(३)रसन कफ—**कण्ठ में रहता है, इसी से का बोध होता है । **(४)अवलम्बन कफ—**हृदय में रह कर उसका तथा त्रिक सन्धि अवलम्बन कार्य करता है । **(५)श्लेष्मक कफ—**सब सन्धियों में रह कर उनको दृढ़ रखता है । इस प्रकार कर्मानुसार इनके नाम हैं ॥ ३४–३५ ॥

स्नायोर्विवरणम्—**स्नायवो बन्धनं प्रोक्ता देहे मांसास्थिमेदसाम् ॥ ३६ ॥**

पहले कह आये हैं कि शरीर में नौ सौ स्नायु हैं, अब उसका विवरण और कार्य कहते (६)**स्नायु—**शरीर के मांस, अस्थि और मेद आदि को एकत्र बांध कर रखते हैं ।

विमर्श—ये मोटी, गोल और पोली हैं । इनकी संख्या इस प्रकार है:—**पैरों के प्र अंगुलियों में ६–६** इस प्रकार तीस हुए । कूर्च में दस, **पांव के नीचे १०, गुल्फ में १०, में ३०, जानु में १०, ऊरु में ४०** और **वंक्षण में** १०, इस प्रकार **एक पैर में** १५० ह

---

(१) क्लेदनकफः—**क्लेदनः क्लेदयत्यन्नमात्मशक्त्याऽपराण्यपि ।
अनुगृह्णाति च श्लेष्मस्थानान्युदककर्मणा ॥**

(२) स्नेहनकफः—**स्नेहनः स्नेहदानेन समस्तेन्द्रियतर्पणः ।**

(३) रसनकफः—**उभावपि ततः सौम्यौ तिष्ठतश्चान्तिके यतः ।
यतो रसान्विजानीतो रसनारसनौ समौ ॥**

(४) अवलम्बनकफः–**रसयुक्तात्मवीर्येण हृदयस्यावलम्बनम् ।
त्रिकसन्धारणं चापि विदधात्यवलम्बनः ॥**

(५) श्लेषणकफः—**श्लेषणः सर्वसन्धीनां संश्लेषं विदधात्यसौ ॥**

(६) स्नायु शरीर का बन्धन रूप है जैसे—
**नौर्यथा फलकास्तीर्णा बन्धनैर्बहुभिर्युता ।
भारक्षमा भवेदप्सु नृयुक्ता सुसमाहिता ॥
एवमेव शरीरेऽस्मिन् यावन्तः सन्धयः स्मृताः ।
स्नायुभिर्बहुभिर्बद्धास्तेन भारसहा नराः ॥**

हुए। इसी प्रकार **दूसरे पैर में** तथा **दोनों हाथों में** भी हैं। इस तरह **शाखाओं में** कुल ६०० स्नायु हुए। **कटि में ४०, अण्डकोष, लिङ्ग, वस्ति तथा अन्त्रों में २०, पीठ में ८०, दोनों पसवाड़ों में ६०, अक्ष में ४, छाती में** १८ और **कन्धों में** ८। इस प्रकार **मध्य में** २३० हुए। **मन्या में २, अवटु में २, नेत्रों में २, ओष्ठों में २, तालु में २, ग्रीवा में ३०, जत्रु में ३, हनु में ४, जिह्वा में ५, दन्तमांसों में** १२ और **सिर में** ६। इस प्रकार **गला तथा सिर में** ७० हुए। इस प्रकार **कुल स्नायु** ६००+२३०+७०=९०० हुए ॥ ३६ ॥

सन्धेर्विवरणम्—**सन्धयश्चाङ्गसन्धानाद्देहे प्रोक्ताः कफान्विताः ॥ ३७ ॥**

सन्धियां शरीर के भिन्न भिन्न अङ्गों का सन्धान करती हैं अर्थात् जहां शरीर के दो अलग अलग टुकड़े जुड़े रहते हैं वह **सन्धि** है। यहां श्लेष्मक कफ रहता है। और उनका चालन आदि करता है।

विमर्श—इनका विवरणः—**पर की चार अंगुलियों में प्रत्येक में** ३ इस प्रकार १२। **अंगुष्ठ में २, गुल्फ में १, जानु में** १ और **वंक्षण में** १। **पैर में कुल** १७। इसी प्रकार **दूसरे पैर तथा दोनों भुजाओं में** भी। इस तरह **शाखाओं में** कुल ६८ हुईं। **कटि के कपालास्थियों में** ३, **पृष्ठ में** २४, **पार्श्वोंमें** २४, **वक्ष में** ८। इस प्रकार **कोष्ठ में** ५९ सन्धियां हुईं। **शिरोधरा में** ८, **कण्ठनाडी में** ३, **हृदय, क्लोम और यकृत् की नाडी में** १८, **दन्तमूल में** ३२, **नाक में** १, **काकल में** १, **मूर्धा में** १, **कर्ण, शङ्ख, गण्ड, नेत्र, वर्त्म, हनुसन्धि तथा भौंहों के ऊपर प्रत्येक में** दो दो। कुल १४। **सिर के कपालास्थियों में** ५। इस प्रकार ये ८३ हुईं। **कुल सन्धि** ६८+५९+८३=२१० हुई। सन्धियां आठ प्रकार की होती हैं:—

१—मणिबन्ध, गुल्फ, जानु और अंगुलियों में **'कोर'** सन्धि। २—दन्तमूल, वंक्षण और कक्षा में **'उलूखल'** सन्धि,। ३—कन्धा, पीठ, गुदा, योनि और नितम्ब में **'सामुद्ग'** सन्धि। ४—ग्रीवा और पृष्ठवंश में **'प्रतर'** सन्धि। ५—मूर्द्धा, कटि और कपालों में **'तुन्नसीवनी'** सन्धि। ६—दोनों जावड़ों में **'काकतुण्ड'** सन्धि। ७—कण्ठ में **'पन्नग'** सन्धि। ८—हृदय, क्लोम तथा नेत्र की नाडियों में **'मण्डल'** सन्धि।

इस प्रकार ये आठ तरह के सन्धियों के नाम हैं। ये फिर(१) **'चल'** और **'अचल'** भेद से दो हैं:—हनु, कटि तथा शाखा आदि की सन्धियां **'चल'** हैं और सिर के कपालास्थि आदि की सन्धियां **'अचल'** हैं ॥ ३७ ॥

अस्थ्नो विवरणम्—**आधारश्च तथा सारः कायेऽस्थीनि बुधा विदुः ॥ ३८ ॥**

शरीर के आधार तथा सार (२)हड्डियां ही हैं याने इसी के कारण ही शरीर ठहरा हुआ है।

---

(१) सन्धिभेदद्वयम्—**शाखासु हन्वोः कट्यां च चेष्टावन्तस्तु सन्धयः ।**
शेषास्तु सन्धयः सर्वे विज्ञेया हि स्थिरा बुधैः ॥ ३७ ॥

(२) अस्थि—**मांसान्यत्र निबद्धानि शिराभिः स्नायुभिस्तथा ।**
अस्थीन्यालम्बनं कृत्वा न शीर्यन्ते पतन्ति च ॥

विमर्श—ये संख्या में ३०० हैं। यथा–**पर की प्रत्येक अंगुलि में** ३। इसी प्रकार १५ लाका ५, **प्रतिबन्ध १, कूर्च में** २, **गुल्फ में** २, **जंघा में** २, **पार्ष्णि में** १, **ऊरु में** १, में १। इस प्रकार दोनों **पैर में** ३० हुए। इसी तरह **भुजाओं** में भी हैं, केवल नाम मे है। इसी प्रकार से **शाखाओं में** कुल १२० हड्डियां हुईं। **पसवाड़ों में** २४, **उनके** २४, **उनके अर्बुद** २४, **पीठ में** ३०, **छाती में** ३०, **हृदय में** ८, **त्रिक में** १, **अक्ष अक्षों के फलक** २, **नितम्ब में** २। इस प्रकार **मध्यमभाग** में ११७ अस्थियां हुईं। **कर्ण और शङ्ख में** ३, **नेत्र में** २, **तालु में** १, **जत्रु में** १, **ग्रीवा में** ९, **कण्ठनाडी में हनुबन्ध में** २, **नासा में** ३, **सिर में** ६ और **दांत** ३२। इस प्रकार **गले के ऊपर** भा ६३ हुईं। कुल १२०+११७+६३=३०० हड्डियां हुईं। अन्य कुछ आचार्य कुल अस्थियां माने हैं जिनमें दांत और नख भी सम्मिलित हैं॥ ३८॥

मर्मणो विवरणम्—**मर्माणि जीवाधाराणि प्रायेण मुनयो जगुः ॥ ३९ ॥**

मुनियों ने कहा है कि मर्मस्थान प्रायः जीवन के आधार स्थान हैं। याने प्राण विशेष मर्म स्थानों(१) में रहते हैं।

विमर्श—सिरा, स्नायु, संधि, मांस और अस्थियां जहां एकत्र मिलते हैं, उस को **मर्मस्थान** कहते हैं। ये शरीर में १०७ हैं। मर्म पाँच प्रकार के होते हैं: **१–मांसमर्म** **२–सिरामर्म** ४१। **३–स्नायुमर्म** २७। **४–अस्थिमर्म** ८ और **५–सन्धिमर्म** २०। कुल १ अङ्गप्रत्यङ्गों में मर्मों की संख्या:–**दोनों पांवों** में २२, **दोनों भुजाओं में** २२, **कोठे में** ३ में ९, **पीठ में** १४ और **गर्दन के ऊपर** ३७। कुल १०७। इनमें से **तत्काल प्राणनाशक** १९। **कालान्तर में प्राणनाशक मर्म** ३३। **विकलताउत्पन्न करने वाले मर्म** ४४। पीड़ा **रक मर्म** ८ और **विशल्यनाशक मर्म** ३। कुल १०७ मर्म। इनके नाम तथा स्थान-नि विस्तारभय से यहां नहीं दिया गया, उसे अन्य ग्रन्थों से देख लें॥ ३९॥

शिराविवरणम्—**संधिबन्धनकारिण्यो दोषधातुवहाः शिराः ॥ ४० ॥**

अस्थिभेदनामानि—**१, कपाल, २, रुचक, ३, तरुण, ४, वलय, ५, नलक।**

शरीरे सारः—**आभ्यन्तरगतैः सारैर्यथा तिष्ठन्ति भूरुहाः।**
अस्थिसारैस्तथा देहा ध्रियन्ते देहिनां ध्रुवम्॥
तस्माच्चिरविनष्टेषु त्वङ्मांसेषु शरीरिणाम्।
अस्थीनि न विनश्यन्ति साराण्येतानि देहिनाम्॥

(१) मर्मस्थान की प्रधानता— **सोममारुततेजांसि रजःसत्त्वतमांसि च।**
मर्मसु प्रायशः पुंसां भूतात्मा चावतिष्ठते॥
मर्मस्वभिहतास्तस्मान्न जीवन्ति शरीरिणः॥

(१)शिराएँ शरीर की संधियों को बांधती हैं तथा वातादि दोष एवं रसादि धातुओं को बहाती हैं।

विमर्श—ये कुल ७०० हैं। उनमें से **मूल शिराएं** ४० ही हैं। जो नाभि से निकल कर पत्र के नस जैसे सारे शरीर में फैली हुई हैं। इनमें से १० **वातवहा**, १० **पित्तवहा**, १० **कफवहा** और १० रक्तवहा हैं। इनके फिर विभाग होकर **वातवहा के** १७५ और इसी प्रकार **पित्तवहा, कफवहा** और **रक्तवहा** शिराओं के भी भेद होते हैं। और इस प्रकार ७०० होते हैं।

वातवहा शिरा—पांव और भुजाओं में प्रत्येक में २५। इस प्रकार शाखाओं में १००। गुदा और लिंगमें ८। पसवाड़ों में २–२, पीठ में ६, पेट में ६, वक्ष में १०। इस प्रकार कोष्ठ में ३४। ग्रीवा में १४, कानों में ४, जिह्वामें ९, नाक में ६, नेत्रों में ८। इस प्रकार गले के ऊपर ४७। कुल शरीर में १००+३४+४७=१७५ हुईं। इसी प्रकार पित्त, कफ तथा रक्त बहाने वाली शिराओं का भी फैलाव है॥ ४० ॥

धमनीविवरणम्—**धमन्यो रसवाहिन्यो धमन्ति पवनं तनौ॥ ४१ ॥**

(२) धमनियाँ रस को बहाती हैं और शरीर में पवन को धमाती हैं याने व्यान वायु के बल से ये रस तथा पवन को धमाती हुईं सारे शरीर में पहुंचाती हैं।

विमर्श—ये संख्या में २४ हैं और नाभि से निकली हुई हैं। जिनमें से १० **ऊपर को** १० **नीचे को** और ४ **तिरछी** गई हुई हैं। **ऊपर जाने वाली धमनियां**—हृदय को पहुंच कर प्रत्येक तीन तीन धमनियों में विभक्त हो जाती हैं। जिनमें से दो दो वात, पित्त, कफ, रक्त और रस को बहाती हैं। इस प्रकार १० हुईं। दो दो शब्द, रूप, रस और गन्ध का ग्रहण करती हैं। इस प्रकार ८ हुईं। दो दो से बोलना, घोष करना, सोना और जागना होता है। ये ८ हुईं। दो आँसू बहाती और दो स्तनों में रह कर स्त्री का दूध और पुरुष का वीर्य बहाती हैं। ये ४ हुईं। कुल ३० **ऊपर जाने वाली** हुईं। **नीचे जाने वाली** दस भी पक्वाशय में जाकर तीन तीन हो जाती हैं। जिनमें से दो दो वात, पित्त, कफ, रक्त तथा रस को बहाती हैं। ये १० हुईं। दो अन्न, दो मूत्र, दो जल दो वीर्य को बहाती हैं। दो वीर्य को निकालती हैं। वे ही स्त्रियों के रज को निकालती हैं। दो मल को निकालती हैं। ये १२ हुईं। शेष आठ धमनियां **तिरछी फैली हुई हैं** और पसीना बहाने में सहायक होती हैं। इस प्रकार ये भी ३० हुईं। शेष चार **तिरछी जाने वाली** धमनियाँ विभक्त होती होती अत्यन्त सूक्ष्म होकर सारे शरीर में जाल जैसी बनकर

---

(१) शिराः—**यावत्यस्तु शिराः काये सम्भवन्ति शरीरिणाम् ।**
नाभ्यां सर्वा निबद्धास्ताः प्रतन्वन्ति समन्ततः ॥
यथा द्रुमदले शाखा दृश्यन्ते प्रतताः शिराः ।
तथैव देहिनां देहे वर्त्तन्ते सकले शिराः ॥

(२) धमनीस्थितिः—**यथा स्वभावतः खानि मृणालेषु भवन्ति हि ।**
धमनीनां तथा खानि रसो यैरन्ततश्चरेत् ॥

फैली हुई हैं। उनका मुख या अन्तिम छोर रोमकूपों से बंधे हैं, जिनसे शरीर के बाहर ल लेप, मालिश आदि ग्रहण किये जाते हैं ॥ ४१ ॥

मांसपेशीविवरणम्—**मांसपेश्यो बलाय स्युरवष्टम्भाय देहिनाम् ॥ ४२ ॥**

प्राणियों के शरीर में बल देने तथा उसे रोक रखने के लिये मांसपेशियाँ (१) हैं। कुछ बल लगाते हैं तथा झुकने आदि से गिर न पड़ना ये सब पेशियों के कारण है झुकने आदि पर भी पेशियाँ शरीर को खीचे रखती हैं, इस कारण प्राणी न गिर रह सक्ते हैं।

विमर्श—ये छोटे, बड़े, लम्बे, गोल, चपटे आदि कई तरह की होती हैं। और इन शरीर के शिरा, स्नायु, धमनी, हड्डी आदि सब ढके रहते हैं। मन की प्रेरणा से शरीर के कार्य ये पेशियाँ ही करती हैं। इन भिन्न भिन्न कार्यों के करने के लिये शरीर के मांस के जो अलग अलग टुकड़े बन गये हैं उन्हें ही **पेशी** कहते हैं। ये संख्या में **पुरुषों** में तथा **स्त्रियों** में ५२० होती हैं। उनका विवरण इस प्रकार है:—**पैर के प्रत्येक अङ्गु** तीन, इस प्रकार ये १५। **पादतल में** १०, **गुल्फ में** १०, **पाद के ऊपर** १०, **कूर्च** में **जानु में** ५, **उरूमें** २० तथा **वंक्षण में** १०। इस प्रकार **एक पैरमें** १०० पेशियां हुईं। ही **दूसरे पैर तथा भुजाओं में** हैं। इस तरह **शाखाओं में** ४०० पेशियां हुईं। लिंग **सीवन में** १, **वृषण में** २, **नितम्ब में** १०, **गुदा में** ३, **वस्तिमुख में** २, **कोष्ठ नाभि में** १, **हृदय में** २, **आमाशय में** ६, **यकृत, प्लीहा और उण्डुक में** ४, **पीठ में** **पार्श्व और हृदय में** १० तथा **कन्धों में** ४ इस प्रकार **बीच में** ६० पेशियाँ हुईं। ग्रीवा १०, **गण्ड में** ८, **हनुप्रदेश में** ८, **काकल में** १, **जिह्वा में** १, **मूर्धा में** १, **गले** **ललाट में** २, **तालु में** २, **ओष्ठ में** २, **कर्ण में** २ और **नासा में** २। इस प्रकार **ऊर्ध्वदेश** पेशियाँ हुईं। कुल शरीर में ४००+६०+४०=५०० मांसपेशियाँ हुईं। स्त्रियों के २० पेशियां इस प्रकार हैं—**प्रति स्तन में** ५, ये दोनों में १०, **योनि के अ** **योनिमुख में** २, **गर्भमार्ग में** ३ और **गर्भाशय में** ३। इस प्रकार योनि में १०। पेशियां हुईं ॥ ४२ ॥

कण्डराविवरणम्—**प्रसारणाकुञ्चनयोरङ्गानां कण्डरा मताः ॥ ४३ ॥**

हाथ पांव आदि अङ्गों के सिकुड़ाने तथा फैलाने के लिये कण्डराएँ हैं। बड़े बड़े स्न को ही (२)कण्डरा कहते हैं।

---

(१) मांपेसशी ही वल का कारण है— **शिरास्नाय्वस्थिपर्वाणि सन्धयः स्युः शरीरिणाम्। पेशीभिः संवृतान्यत्र बलवन्ति भवन्त्यतः ॥**

(२) कण्डरा में शस्त्रव्यापारनिषेध— **जालानि कण्डराश्चाङ्गे पृथक् षोडश निर्दिशेत्। षट् कूर्चाः सप्त सीवन्यो मेढ्रजिह्वाशिरोगताः। शस्त्रेण ताः परिहरेच्चतस्रो मांसरज्जवः ॥**

विमर्श—ये गिनती में १६ हैं:—**प्रत्येक हाथ-पांव में** दो दो । ऐसे ये ८। **ग्रीवा में** ४ और **पीठ में** ४ । कुल १६ ॥ ४३ ॥

रन्ध्रविवरणम्—**नासानयनकर्णानां द्वे द्वे रन्ध्रे प्रकीर्त्तिते ॥**
मेहनापानवक्त्राणामेकैकं रन्ध्रमुच्यते ।
दशमं मस्तके प्रोक्तं रन्ध्राणीति नृणां विदुः ॥
स्त्रीणां त्रीण्यधिकानि स्युः स्तनयोर्गर्भवर्त्मनः ।
सूक्ष्मच्छिद्राणि चान्यानि मतानि त्वचि जन्मिनाम् ॥ ४४ ॥

नाक, आँखों और कानों में दो दो छिद्र हैं, मूत्रद्वार, गुदा और मुख में एक एक । ये नौ छिद्र हुए। दसवां छिद्र मस्तक में हैं, यह ढका हुआ है । स्त्रियों के तीन छिद्र अधिक होते हैं दो स्तनों में और एक अपत्यमार्ग (गर्भाशय) में । प्राणियों के शरीर में और भी असंख्य सूक्ष्म छिद्र चमड़े में हैं ॥ ४४ ॥

फुप्फुसप्लीहयकृतां विवरणम्— **तद्वामे फुप्फुसं प्लीहा दक्षिणाङ्गे यकृन्मतम् ।**
उदानवायोराधारः फुप्फुसं प्रोच्यते बुधैः ॥ ४५ ॥
रक्तवाहिशिरामूलं प्लीहा ख्याता महर्षिभिः ।
यकृद्रञ्जकपित्तस्य स्थानं रक्तस्य संश्रयः ॥

हृदय के वाम भाग में फुप्फुस और प्लीहा या तिल्ली है और दाहिने भाग में यकृत् है । (१) **फुप्फुस** रक्त के फेन से उत्पन्न हुआ है और उदान वायु का आधार है । (२)**प्लीहा**—रक्त से पैदा हुआ है और रक्तवाहिनी शिराओं का मूल है । याने ये शिराएँ यहीं से निकल कर शरीर में फैली हुई हैं । (३)**यकृत्** रञ्जक पित्त का स्थान और रक्त का आश्रयस्थल है ॥४५॥

तिल (क्लोम) वर्णनम्—**जलवाहिशिरामूलं तृष्णाऽऽच्छादनकं तिलम् ॥ ४६ ॥**

---

(१) **फुप्फुस**—यह रुधिर के फेन के अंश से प्रकट होकर हृदयनाडी में लगा हुआ है, इसी से श्वासकार्य होता है, जिससे सारे शरीर की चेष्टा (क्रिया) होती है । यह वाम भाग से उत्पन्न होकर दोनों तरफ फैला हुआ रहता है जो देखने में दो की तरह होता है । वाम भाग से दक्षिण का कुछ गम्भीर होता है । पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का फुप्फुस हलका होता है । इसका वर्ण कुछ काला लिये लाल होता है ।

(२) **प्लीहा**—यह रक्त से उत्पन्न एक ग्रन्थि है जो फुप्फुस के नीचे वाम भाग में रहती है । यह रुग्णावस्था में कुछ बढ़ जाती है तब नाभि तक प्रतीत होती है । यह भोजन के पाचन-क्रिया में सहायक होती है ।

(३) **यकृत्**—यह भी रक्त से ही उत्पन्न ग्रन्थि है जो फुप्फुस के नीचे दाहिने तरफ होती है । यह रञ्जक पित्त का स्थान है और रक्त का भी । इसके विकृत् होने से अनेक प्राणहर व्याधियाँ होती है ।

हृदय के दाहिने भाग में तिल्ली के स्थान में (१)क्लोम या तिल होता है। यह [illegible] कीट से उत्पन्न हुआ है और जल बहाने वाली शिराओं का मूल स्थान है। यह तृष्णा [illegible] प्यास को ढाके रखता है। जल की कमी होने से यहीं से प्यास लगती है ॥ ४६ ॥

वृक्कवर्णनम्—**वृक्कौ तुष्टिकरौ प्रोक्तौ जठरस्थस्य मेदसः ॥ ४७ ॥**

वृक्क या कुक्षिगोलक—ये रक्त तथा मेद के सार से उत्पन्न हुए हैं और कमर के दोनों [illegible] रहते हैं। ये उदरस्थ मेद की पुष्टि करते तथा रक्त से मूत्र को अलग करते हैं।

विमर्श—यहीं से दो प्रणालियों द्वारा मूत्र वस्ति में भेजा जाता है ॥ ४७ ॥

वृषणलिङ्गयोर्वर्णनम्—**वीर्यवाहिशिराधारौ वृषणौ पौरुषावहौ ॥**
गर्भाधानकरं लिङ्गमयनं वीर्यमूत्रयोः ॥ ४८ ॥

दोनों वृषण या **अण्डकोश** रक्त, कफ और मेद के सार से बने हुए हैं और वीर्यवा[illegible] शिराओं के मूलस्थान हैं। अत एव पुरुषार्थ देते हैं। (२)इन के निकाल दिये जाने पर पु[illegible] स्त्री की इच्छा नहीं रह जाती याने नपुंसक हो जाता है।

लिंग-ग्रीवा के साथ हृदय को बांधने वाली चार कण्डराओं का मूल है और वीर्य[illegible] मूत्र (३)के निकलने का रास्ता एवं गर्भाधान कराने वाला है ॥ ४८ ॥

हृदयवर्णनम्—**हृदयं चेतनास्थानमोजसश्चाश्रयो मतम् ॥ ४९ ॥**

हृदय नीचे को मुख किये कमल की कली के समान रक्त और कफ के सार से बना [illegible] है। यह चेतना का प्रधान (४)स्थान है। यों तो सारा शरीर ही चेतना का स्थान है पर [illegible] विशेष करके चेतनास्थान है क्योंकि उसके आश्रय से ही सारा वर्त्तता है। यह ओज [illegible] आधारस्थल भी है।

विमर्श—ओज(५) सब धातुओं का सार अष्टबिन्दु मात्र है और हृदय में रहता है। [illegible] क्षय से मृत्यु अनिवार्य है। कोई कोई विद्वान रस धातु को तथा कोई कोई विशुद्ध कफ को [illegible] अन्य जन जीवरक्त को भी ओज कहते हैं ॥ ४९ ॥

---

(१) **क्लोमतिल**—यह रक्त के शेष (सिट्ठी) पदार्थ से उत्पन्न होता है। यकृत् के [illegible] ही इसका भी स्थान है ॥

(२) अण्डकोष से ही पुरुषार्थ है। उसके नहीं रहने से पुंस्त्वहीनता होती है। कहा [illegible]

आकृष्टाण्डस्य पुंसश्च स्त्रीप्रहर्षो न जायते ।

(३) शुक्रमूत्रप्रवृत्तिभागः-**द्व्यङ्गुले दक्षिणे पार्श्वे बस्तिद्वारस्य चाप्यधः ।**
मूत्रं स्रोतः पथाच्छुक्रं पुरुषस्य प्रवर्त्तते ॥

(४)चेतनास्थानानि—**चेतनानामधिष्ठानं मनो देहश्च सेन्द्रियः ।**
केशलोमनखाग्रान्तमलद्रवगुणैर्विना ॥

(५)ओज ही सार है—**रसादीनां शुक्रान्तानां धातूनां यत्परं तेजस्तदेव-**
ओजस्तदेव बलमित्युच्यते ॥

शरीरपोषणव्यापार-निर्देशः— **शिरा धमन्यो नाभिस्थाः सर्वा व्याप्य स्थितास्तनुम्।**
पुष्णन्ति चानिशं वायोः संयोगात्सर्वधातुभिः॥ ५०॥

शिराएं और धमनियां(१) नाभि से निकल कर सर्व शरीर में फैल कर स्थित हैं। एवं वायु के संयोग याने सहायता से रसादिधातुओं को वहाकर शरीर का पोषण करती हैं। याने तरुणों की पुष्टि तथा वृद्धों का पालन करती हैं॥ ५०॥

प्राणवायोः शरीरव्यापार-निर्देशः— **नाभिस्थः प्राणपवनः स्पृष्ट्वा हृत्कमलान्तरम्॥**
कण्ठाद्बहिर्विनिर्याति पातुं विष्णुपदामृतम्।
पीत्वा चाम्बरपीयूषं पुनरायाति वेगतः॥
प्रीणयन्देहमखिलं जीवयञ्जठरानलम्॥ ५१॥

नाभि में स्थित(२) प्राण वायु हृदय कमल को छूती हुई याने प्रबुद्ध या अनुप्राणित करती हुई कण्ठ के रास्ते से बाहर आकाश (विष्णुपद) के अमृत (प्राणप्रद वायु या आक्सीजन) लेने के लिये चली जाती है। वहां **अम्बरपीयूष** याने आकाश के अमृत (आक्सीजन) को लेकर फिर अन्दर वेग के साथ चली जाती है और सारे शरीर को, जीव(३) तथा जठराग्नि

---

(१) शिरा और धमनी की शरीरमें स्थिति— **व्याप्नुवन्त्यभितो देहं नाभितः प्रसृताः शिराः।**
प्रतानपद्मिनीकन्दाद्बिसादीनां यथा जलम्॥

अन्यच्च—**क्रियाणामप्रतीघातममोहो बुद्धिकर्मणाम्।**
करोत्यन्यान् गुणांश्चापि स्वाः शिराः पवनश्चरन्॥

याभिरिदं शरीरमाराम इव जलहारिणीभिः केदार इव च कुल्याभिरुपस्निह्यते, अनुगृह्यते चाकुञ्चनप्रसारणादिभिर्विशेषैः॥

(२) प्राण वायु सर्वव्यापी होने से नाभि में आवृत जो शिरा है उसमें भी स्थित है जैसे—

नाभिस्थाः प्राणिनां प्राणाः प्राणान्नाभिर्व्युपाश्रिता।
शिराभिरावृता नाभिश्चक्रनाभिरिवारकैः॥

अन्यच्च—**ब्रह्मग्रन्थौ नाभिचक्रं द्वादशारमवस्थितम्।**
लूतेव तन्तुजालस्था तत्र जीवो भ्रमत्ययम्॥
सुषुम्नया ब्रह्मरन्ध्रमारोहत्यवरोहति।
जीवः प्राणसमारूढो रञ्जकः स्फटिको यथा॥

अन्यच्च—**तेषामुष्णतमः प्राणो नाभिकन्दादधः स्थितः।**
चरत्यास्ये नासिकायां नाभौ हृदयपङ्कजे॥
शब्दोच्चारणनिश्वासोच्छ्वासकासादिकारणम्॥

प्राणवायु का कार्य—**चक्रं सहस्रपत्रं तु ब्रह्मरन्ध्रे सुधाधरम्।**
तत्सुधासारधाराभिरभिवर्धयते तनुम्॥

(३) शरीर से भिन्न जीव और अग्नि को विशेष जानना चाहिये—

को पुष्ट करती है। यह अम्बरपीयूष रक्त के साथ मिलकर शरीर के सब धातुओं को
करता है ॥ ५१ ॥

आयुषो मृत्योश्च स्वरूपम्-**शरीरप्राणयोरेवं संयोगादायुरुच्यते ।**
कालेन तद्वियोगाच्च पञ्चत्वं कथ्यते बुधैः ॥ ५२ ॥

शरीर और प्राण के संयोग को **आयु** कहते हैं और समयान्तर में उनके वि
मृत्यु कहते हैं।

विमर्श—याने जब तक शरीर और प्राण एकत्र संयुक्त रहते हैं तब तक आयु
और उनके अलग अलग होते ही प्राणी मर जाता है। मरने को **पञ्चत्व** होना
कहते हैं कि शरीर का छठवां चेतना धातु निकल जाता है और सिर्फ पाञ्चभौतिक
रह जाता है ॥ ५२ ॥

तत्र वैद्यानां कृते कर्त्तव्य-**न जन्तुः कश्चिदमरः पृथिव्यां जायते क्व चित् ।**
कर्मोपदेशः— **अतो मृत्युरवार्यः स्यात्किन्तु रोगान्निवारयेत् ॥ ५३ ॥**

इस पृथ्वी पर कोई भी प्राणी अमर नहीं होता जो जन्मता है वह मरता अवश्य है,
मृत्यु अनिवार्य है। कोई किसीको मरने से नहीं बचा सकता, परन्तु इससे चिकि
त्यागना चाहिये रोग के निवारण का उपाय अवश्य करना चाहिये।

विमर्श—वैद्य का काम रोग का (१)परिज्ञान कर व्याधि दूर करने का है, आ
का नहीं ॥ ५३ ॥

रोगनिवारणे साध्यादि-**याप्यत्वं याति साध्यस्तु याप्यो।गच्छत्यसाध्यताम् ।**
भेदनिर्देशः— **जीवितं हन्त्यसाध्यस्तु नरस्याप्रतिकारिणः ॥ ५४ ॥**

जो लोग अपने शरीर में उत्पन्न रोगों का प्रतिकार नहीं करते उनके साध्य रोग या
जाते हैं और याप्य रोग असाध्य हो जाते हैं तथा असाध्य रोग प्राणों का नाश कर दे
इसलिये रोग उत्पन्न होते ही चिकित्सा (२)करनी चाहिये।

अन्यच्च—**ब्रह्मरन्ध्रे स्थितो।जीवः सुधया संप्लुतो यदा ।**
तुष्टिगीतादिकार्याणि सप्रकर्षाणि साधयेत् ॥
आयुर्वर्णो बलं स्वास्थ्यमुत्साहोऽपचयप्रभाः ।
ओजस्तेजोऽग्नयः प्राणाश्चोक्ता देहेऽग्निहेतुकाः ॥
शान्तेऽग्नौ म्रियते युक्ते चिरञ्जीवत्यनामयः ।
रोगी स्याद्विकृते मूलमग्निस्तस्मान्निरुच्यते ॥ ॥

(१) वैद्य केवल रोग–निवारण के लिये है, मृत्यु तो अवश्यम्भावी है। क्योंकि कहा
व्याधेस्तत्त्वपरिज्ञानं वेदनायाश्च निग्रहः ।
एतद्वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रभुरायुषः ॥

(२) किसी रोग को छोटा जान कर नहीं छोड़ना चाहिये—
जातमात्रं चिकित्स्यस्तु नोपेक्ष्योऽल्पतया गदः ।

विमर्श—रोग दो तरह के होते हैं। १-**साध्य** याने जो चिकित्सा करने पर अच्छा हो सके। २-**असाध्य** याने जो चिकित्सा करने पर भी फिर अच्छा न हो। **साध्य** भी दो तरह का होता है। १-**सुसाध्य** याने जो विना किसी दुःख के अच्छा हो जाय। २-**कष्टसाध्य** याने जो क्षार, अग्नि तथा शस्त्र प्रभृति कर्मों से अच्छा हो। ३-**असाध्य** भी दो (१)तरह का होता है (२)**एक-याप्य** याने वह रोग जो औषधादि करते रहने से दवा रहता है पर चिकित्सा बन्द करते ही फिर उठ खड़ा होता है। **दूसरा**-एकदम **असाध्य** जो किसी प्रकार की चिकित्सा से भी नहीं मिटता॥ ५४ ॥

धर्मादिसाधनतनो रक्षा-निर्देशः— **धर्मार्थकाममोक्षाणां शरीरं साधनं यतः ।**
अतो सर्व्यस्तनुं रक्षेन्नरः कर्मविपाकवित् ॥ ५५ ॥

धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष, इस चतुर्वर्ग की प्राप्ति का साधन एक मात्र शरीर ही है याने यदि शरीर न हो तो मन एवं प्राण रहकर भी कुछ कर्म नहीं कर सकते। जिसमे प्राणियों का चरम लक्ष्य यह चतुर्वर्ग नहीं मिल सकता, इस लिये शरीर को निरन्तर रोग आदि से रक्षा करे। एवं (३)पूर्व जन्म के दुष्कर्मादिकों के क्षय के लिये भी दान, जप आदि करे क्यों कि उनका फल भी रोग होता है। अस्वस्थ शरीर से कुछ कर्म नहीं हो सक्ता॥ ५५ ॥

धातूनां साम्यस्य वैषम्य-स्य च फलम्— **धातवस्तन्मला दोषा नाशयन्त्यसमास्तनुम् ।**
समाः सुखाय विज्ञेया बलायोपचयाय च ॥ ५६ ॥

रस-रक्तादि सात धातुयें उनके मल एवं वातादि तीनो दोष ये जब अपने अपने परिमाण से न्यून या अधिक हो जाते हैं तो रोग आदि पैदा कर शरीर का नाश करते हैं और ये ही जब सम याने अपने अपने स्वाभाविक परिमाण में रहते हैं तो शरीर का पालन कर उसको पुष्ट और बलवान् वना सुखी करते हैं।

विमर्श—इनका स्वाभाविक परिमाण इस प्रकार हैः—रस की ९ अञ्जलि, रक्त की ८ अञ्जलि, मल की ७ अञ्जलि, पित्त की ५ अञ्जलि, कफ की ६ अञ्जलि, मूत्र की ४ अञ्जलि, वसा की ३ अञ्जलि, मेद की २ अञ्जली, मज्जा की १ अञ्जलि, वीर्य, मस्तिष्क और ओज-प्रत्येक की आधी अञ्जलि। स्त्रियों के रज की ४ अञ्जलि और प्रसूता स्त्री के दूध की २ अञ्जलि। यही शरीर के धातु, मल एवं दोषों की साम्यावस्था का प्रमाण हैं। इससे यदि कम

वह्निशस्त्रविषैस्तुल्यः स्वल्पोऽपि विकरोत्यसौ ॥

(१) असाध्यभेदौ—**असाध्यो द्विविधो ज्ञेयो याप्यो यश्चाप्रतिक्रियः ।**

(२) याप्यलक्षणम्—**यापनीयं विजानीयात् क्रियां धारयते तु यः ।**
क्रियायां तु निवृत्तायां सद्य एव विनश्यति ॥

(३) **पूर्वजन्मकृतं पापं व्याधिरूपेण तिष्ठति ।**
अतो दानादिकं कुर्यात् प्रसमीक्ष्य विचक्षणः ॥

ज्यादा हुआ तो निश्चय ही शरीर अवस्थ हो जायगा, क्योंकि इनका (१)सम रहना स्वा-
स्थ्य और विषम होना रोग है ॥ ५६ ॥

सृष्टिक्रमः—**जगद्योनेरनिच्छस्य चिदानन्दैकरूपिणः ॥**
पुंसोऽस्ति प्रकृतिर्नित्या प्रतिच्छायेव भास्वतः ॥ ५७ ॥

संसार के उत्पादन का कारण स्वरूप उस (२)चिदानन्द एक रूप परम पुरुष की
प्रकृति नित्या याने अनादिमध्यान्त है। जिस प्रकार सूर्य का प्रतिबिम्ब जब तक सूर्य विद्य-
मान है तब तक वह भी विद्यमान है, उसी तरह परम पुरुष नित्य होने से उसकी प्रकृति
भी नित्या है ॥ ५७ ॥

प्रकृतिपुरुषयोगेन सृष्ट्यु-**अचेतनाऽपि चैतन्ययोगेन परमात्मनः ।**
त्पत्तिनिर्देशः— **अकरोद्विश्वमखिलमनित्यं नाटकाकृति ॥ ५८ ॥**

यह मूल प्रकृति जड़ याने चेतना-रहित होने पर भी परमात्मा के चैतन्य के संयोग से
सारे संसार को पैदा करती है जो कि अनित्य याने नाशवान है अर्थात् जैसे यह पैदा हुआ
वैसे ही एक दिन नष्ट हो जायगा तथा नाटकाकृति है याने जैसे कि इन्द्रजाल करने वाला
तन्त्र के बल से नाना प्रकार के नृत्य दिखाता है। जो कि सत्य मालूम होता है। परन्तु
समाप्त होते ही सब मिथ्या हो जाते हैं, उसी प्रकार यह संसार भी मिथ्या है ॥ ५८ ॥

बुद्धिसत्त्वाहङ्कारयोरुत्प-**प्रकृतिर्विश्वजननी पूर्वं बुद्धिमजीजनत् ॥**
त्तिनिर्देशः— **इच्छामयीं महद्रूपामहङ्कारस्ततोऽभवत् ।**
त्रिविधः सोऽपि संजातो रजःसत्त्वतमोगुणैः ॥ ५९ ॥

इस विश्वजननी प्रकृति ने पहले बुद्धितत्त्व को उत्पन्न किया यह बुद्धि (तत्त्व) इच्छामयी
याने सत्त्व-रजस्-तमोरूपा असंख्य प्रकार की है और महान् रूप वाली याने नाना रूप वाली
या महत्तत्त्व नाम वाली है। इस बुद्धि तत्त्व से अहङ्कार उत्पन्न हुआ, फिर वह भी सत्त्व, रज
और तमोगुण के भेद से पुनः तीन प्रकार का हो गया ॥ ५९ ॥

त्रिगुणात्मकाहङ्कारस्य-**तस्मात्सत्त्वरजोयुक्तादिन्द्रियाणि दशाभवन् ।**
कार्याणि-- **मनश्च जातं तान्याहुः श्रोत्रत्वङ्नयनं तथा ॥**
जिह्वाघ्राणवचोहस्तपादोपस्थगुदानि च ।

---

(१) रोगस्तु दोषवैषम्यं दोषसाम्यमरोगता । विकृताः प्रकृता देहं घ्नन्ति ते वर्द्धयन्ति च ।
अन्यच्च—**विकारो धातुवैषम्यं साम्यं प्रकृतिरुच्यते ।**
सुखसञ्ज्ञकमारोग्यं विकारो दुःखमेव च ॥

(२) चिदानन्दरूपम् ।

अस्ति ब्रह्म चिदानन्दं स्वयंज्योतिर्निरञ्जनम् । ईश्वरो लिङ्गमित्युक्तमद्वितीयमयं विभुः ।
निर्विकारं निराकारं सर्वेश्वरमनीश्वरम् । सर्वशक्ति च सर्वज्ञं तदंशा जीवसंज्ञकाः ।
अनाद्यविद्योपहिता यथाऽग्नेर्विस्फुलिङ्गकाः ॥

पञ्च बुद्धीन्द्रियाण्याहुः प्राक्तनानीतराणि च ॥
कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैव कथ्यन्ते सूक्ष्मबुद्धिभिः ॥ ६० ॥

फिर इस सत्त्व गुण प्रधान रजोगुण युक्त अहंकारों के संयोग से दस इन्द्रियां और मन पैदा हुए। वे ये हैं—१ कान, २ त्वचा, ३ नेत्र, ४ जिह्वा, ५ नाक। १ वाणी, २ हाथ, ३ पाँव, ४ उपस्थ (जननेन्द्रिय) और ५ गुदा। इनमें से पहले पाँच को ज्ञानेन्द्रिय तथा अन्य पाँच को कर्मेन्द्रिय नाम सूक्ष्मबुद्धि वालों ने दिया है। क्योंकि पहले पांचों से हम ज्ञान प्राप्त करते हैं और अन्य पांचों से कर्म करते हैं। मन उभयात्मक है ॥ ६० ॥

तन्मात्रपञ्चकोत्पत्तिनि-**तमःसत्त्वगुणोत्कृष्टादहङ्कारादथाभवत् ।**
र्देशः— **तन्मात्रपञ्चकं तस्य नामान्युक्तानि सूरिभिः ॥ ६१ ॥**
शब्दतन्मात्रकं स्पर्शतन्मात्रं रूपमात्रकम् ।
रसतन्मात्रकं गन्धतन्मात्रं चेति तद्विदुः ॥ ६२ ॥

इसके बाद तमो गुण की प्रधानता लिये हुये सत्त्वगुण के उत्कर्ष से युक्त अहङ्कार से पाँच तन्मात्राएँ उत्पन्न हुईं। विद्वानों ने उनके ये नाम कहे हैं–शब्दतन्मात्रा, स्पर्शतन्मात्रा, रूपतन्मात्रा, रसतन्मात्रा और गन्धतन्मात्रा ॥ ६१–६२ ॥

भूतपञ्चकस्योत्पत्तिना-**तन्मात्रपञ्चकात्तस्मात्संजातं भूतपञ्चकम् ।**
मनिर्देशः— **व्योमानिलानलजलक्षोणीरूपं च तन्मतम् ॥ ६३ ॥**

इन पाँच तन्मात्राओं से फिर पाँच महाभूत उत्पन्न हुए। वे ये हैं–शब्दतन्मात्रा से आकाश, स्पर्शतन्मात्रा से वायु, रूपतन्मात्रा से अग्नि, रसतन्मात्रा से जल और गन्धतन्मात्रा से पृथ्वी उत्पन्न हुई ॥ ६३ ॥

तन्मात्राणां विशेषाः-**शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसगन्धावनुक्रमात् ।**
तन्मात्राणां विशेषाः स्युः स्थूलभावमुपागताः ॥ ६४ ॥

स्थूलभावों को प्राप्त हुए याने भूतों में परिवर्त्तित हुए तन्मात्राओं में ये विशेष भाव से आगये जो इन्द्रियग्राह्य हैं, उनका क्रम यों है—आकाश का शब्द, वायु का स्पर्श, अग्नि का रूप, जल का रस और पृथ्वी का गन्ध ॥ ६४ ॥

इन्द्रियाणां विषयाः—**बुद्धीन्द्रियाणां पञ्चैव शब्दाद्या विषया मताः ॥ ६५ ॥**
कर्मेन्द्रियाणां विषया भाषादानविहारिताः ।
आनन्दोत्सर्गकौ चैवं कथितास्तत्त्वदर्शिभिः ॥ ६६ ॥

ये पांच शब्दादि पांचों बुद्धीन्द्रियों के विषय कहे जाते हैं याने ये इन इन्द्रियों से जाने जाते हैं। कान का विषय शब्द, त्वचा का विषय स्पर्श, नेत्र का विषय रूप, जिह्वा का विषय रस और नाक का विषय गन्ध है। अन्य पांच कर्मेन्द्रियों के विषय हैं—वाणी का बोलना, हाथ का ग्रहण करना, पैर का चलना फिरना, उपस्थ का आनन्द देना और गुदा का मल त्याग करना, ऐसा तत्त्वज्ञों ने कहा है ॥ ६५–६६ ॥

चतुर्विंशतितत्त्ववर्णनम् ।

तत्र प्रथमतत्त्वस्य **प्रधानं प्रकृतिः शक्तिर्नित्या चाविकृतिस्तथा ।**
प्रकृतेर्नामनिर्देशः—**एतानि तस्या नामानि शिवमाश्रित्य या स्थिता ॥ ६७ ॥**

प्रधान, मूलप्रकृति, शक्ति, नित्या, अविकृति, ये सब उस एक प्रकृति के नामान्तर हैं कि उस कल्याणस्वरूप परम पुरुष को सूर्य के समान उसके प्रतिबिम्बवत् आश्रय करके हुई है ॥ ६७ ॥

प्रकृतिविकृतिसंज्ञकस्य-**महानहङ्कृतिः पञ्चतन्मात्राणि पृथक्पृथक् ।**
तत्त्वसप्तकस्य निर्देशः-**प्रकृतिर्विकृतिश्चैव सप्तैतानि बुधा जगुः ॥ ६८ ॥**

महान्, अहंकार और पाँच तन्मात्राएँ पृथक् पृथक् ये सात **प्रकृतिविकृति** हैं याने **प्रकृति**–अन्य भूत आदि के उत्पादक और **विकृति**–मूलप्रकृति से उत्पन्न ऐसा विद्वानों ने कहा है।

विकाराणां निर्देशः—**दशेन्द्रियाणि चित्तं च महाभूतानि पञ्च च ।**
विकाराः षोडश ज्ञेयाः सर्वं व्याप्य जगत्स्थिताः ॥ ६९ ॥

दसों इन्द्रियाँ, मन और पाँच महाभूत ये सोलह विकार कहे जाते हैं याने इनसे कुछ उत्पन्न नहीं होता । ये समस्त संसार में व्याप्त हैं ।

विमर्शः—सांख्यशास्त्र में कहा है:—

"मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त ।
षोडशकस्तु विकारा न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः ॥" इति ॥६९॥

जीवस्वरूपनिर्देशः—**एवं चतुर्विंशतिभिस्तत्त्वैः सिद्धे वपुर्गृहे ।**
जीवात्मा नियतो नित्यो वसति स्वान्तदूतवान् ॥ ७० ॥
स देही कथ्यते पापपुण्यदुःखसुखादिभिः ।
व्याप्तो बद्धश्च मनसा कृत्रिमैः कर्मबन्धनैः ॥ ७१ ॥

इन्हीं चौबीस तत्त्व (प्रधान, सात प्रकृति और सोलह विकार) से बना हुआ इस स्थूल शरीररूपी गृह में नित्य जीवात्मा अपने शुभाशुभ कर्म को साथ लिये वास करता है । उसका दूत मन है याने जीवात्मा मन के द्वारा जो कुछ करना होता है करता है । यह जीवात्मा पच्चीसवाँ तत्त्व कहा जाता है । देह में रहने से इसको **देही** कहते हैं । यह अपने आप–पुण्य, सुख दुःख आदि में लिप्त हुआ रहता है तथा अपने ही किये कर्मों के बन्धनों से बँधा हुआ रहता है ७०-७१

देहिनो बन्धनानि—**कामक्रोधौ लोभमोहावहङ्कारश्च पञ्चमः ।**
दशेन्द्रियाणि बुद्धिश्च तस्य बन्धाय देहिनः ॥ ७२ ॥

काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार–ये पांच, दस इन्द्रियां और बुद्धि ये सोलह हैं याने शरीरस्थित जीवात्मा के बन्धन हैं, इनसे बंधे रहने के कारण ही जीवात्मा को सुख-दुःख आदि भोगना पड़ता है ।

विमर्शः—(१)मनुष्यों का स्त्रियों से अथवा स्त्रियों का पुरुष से जो उपभोगार्थ परस्पर स्नेह होता है उसे **'काम'** कहते हैं।

(२)प्राणी के हृदय में सहसा जो गरमी पैदा होती है और दूसरों की बुराई करना चाहती है उससे उत्पन्न दुःख को **'क्रोध'** कहते हैं।

(३)दूसरे के धन, भोग या सामर्थ्य देखकर या सुनकर मन में जो तृष्णा पैदा होती है उसे **'लोभ'** कहते हैं।

(४)जब प्राणी को भली और बुरी बातों का निश्चय नहीं होता और संशय में पड़ जाता है तथा अहित को हित समझ बैठता है तो उसे मिथ्याज्ञान या **'मोह'** कहते हैं।

(५)कार्य–कारण से युक्त होकर प्राणी जब 'अहं' याने मैं इस भाव को लेकर कार्य करता है तो उसको **'अहंकार'** कहते हैं ॥ ७२ ॥

जीवस्य बन्धमोक्षयो–**आप्नोति बन्धमज्ञानादात्मज्ञानाच्च मुच्यते ।**
दुःखसुखयोर्निर्देशः—**तद्दुःखयोगकृद्व्याधिरारोग्यं तत्सुखावहम् ॥ ७३ ॥**

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायां पूर्वखण्डे कलाऽऽदिकाख्यानं नाम पञ्चमोऽध्यायः ।

अज्ञान याने मोह से जब पुरुष को अहित में हित दीखता है और वह इसी में प्रवृत्त होता है तो इस अज्ञान के कारण वह कर्मबन्धन को प्राप्त होता है और आत्मज्ञान होते ही जीव कर्मबन्धन से छूट जाता है। उसे स्वभाव से ही जो प्रतिकूल जान पड़ता है वह दुःख और जो स्वभाव से ही अनुकूल जान पड़ता है वह सुख है। दुःखदाता ही व्याधि और सुखदाता ही आरोग्य है ॥ ७३ ॥

इति सुबोधिनीनामिकायां श्रीशार्ङ्गधरभाषाटीकायां पञ्चमोऽध्यायः समाप्तः ॥ ५ ॥

---

(१) स्त्रीषु जातो मनुष्याणां स्त्रीणां च पुरुषेषु वा ।
परस्परकृतः स्नेहः काम इत्यभिधीयते ॥

(२) यदूष्मा हृदयाज्जन्तोः समुत्तिष्ठति वै सकृत् ।
परहिंसाऽऽत्मकः क्लेशः क्रोध इत्यभिधीयते ॥

(३) परार्थं परभोगांश्च परसामर्थ्यमेव च ।
दृष्ट्वा श्रुत्वा च या तृष्णा जायते लोभ एव सः ॥

(४) अश्रेयःश्रेयसोर्मध्ये भ्रमणं संशयो भवेत्। मिथ्याज्ञानं तु तं प्राहुरहिते हितदर्शनम् ॥

(५) अहमित्यभिमानेन यः क्रियासु प्रवर्त्तते । कार्यकारणयुक्तस्तु तदहङ्कारलक्षणम् ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः ।

आहारादिगतिरध्यायः ।

आहारस्य पाकक्रम-निर्देशः— यात्यामाशयमाहारः पूर्वं प्राणानिलेरितः ।
माधुर्यं(१) फेनभावं च षड्रसोऽपि लभेत सः ॥ १ ॥

जो कुछ पाञ्चभौतिक(२) आहार भोजन किया जाता है वह पहले प्राणवायु के द्वारा से प्रेरित हो कर आमाशय में जाता है। वहां क्लेदन कफ का स्थान है जो कि आहार क्लिन्न और शिथिल कर देता है। यद्यपि यह आहार छः रस वाला होता है तो भी संयोग से वह मधुररसबाहुल्य को प्राप्त होता है और फेन के तुल्य बन जाता है।

विमर्श—इस फेन सदृश रस को ही **आमरस** कहते हैं। इसके मधुर रस विशि के ही कारण भोजन के करते ही कफ का प्रकोप रहता है ॥ १ ॥

आहारस्याम्लभाव-ग्रहणीनयन-कटुभावानां निर्देशः—

अथ पाचकपित्तेन विदग्धश्चाम्लतां व्रजेत् ।
ततः समानमरुता ग्रहणीमभिनीयते ।
ग्रहण्यां पच्यते कोष्ठवह्निना(३) जायते कटुः ॥ २ ॥

इसके बाद पाचक पित्त के तेज से वह रस विदग्ध होकर खट्टा हो जाता है। यह अ पित्ताशय के पास आने की है। फिर समान वायु उस विदग्ध रस को ग्रहणी में ले जाता ग्रहणी में यह खट्टा रस कोष्ठाग्नि से पकता है और कटुरस युक्त हो जाता है। इस समय रस के बल से शरीर में वायु बलवान रहता है।

विमर्श—पक्वाशय और आमाशय के मध्य में जो छठवीं पित्तधरा कला होती है, उसे (४)ग्रहणी कहते हैं ॥ २ ॥

आहारस्य रसामावस्थयोर्निर्देशः—

रसो भवति संपक्वादपक्वादामसंभवः ॥ ३ ॥

यह कटु रस फिर यदि ठीक तरह से पक गया तो **'रस धातु'** बनता है। और यदि

---

(१) माधुर्यं फेनभावं च लभते, यथा—
आदौ षड्रसमप्यन्नं मधुरीभूतमीरयेत् । फेनभावं रसं जातं विदाहि ह्यम्लतां गतम्

(२) आहारस्य पाञ्चभौतिकता— **चतुर्धा षड्रसोपेतोऽनेकविध्युपयुक्तकः ।**
द्विविधोऽष्टविधो बीजैराहारः पाञ्चभौतिकः ॥

(३) यत् 'कटुकाज्जायते वायुरि'ति तद्विष्टब्धाजीर्णमाहुरित्येके । यदुक्तं—
किंचिद्विपक्वं भृशतोदशूलं विष्टब्धमानद्धविरुद्धवातम् ॥

(४) ग्रहणी—**षष्ठी पित्तधरा नाम या कला परिकीर्त्तिता ।**
पक्वामाशयमध्यस्था ग्रहणीत्यभिधीयते ॥

के मन्द होने से ठीक ठीक पक नहीं सका या आधा या कम पका अथवा न पका तो उससे(१) 'आम' की उत्पत्ति होती है ॥ ३ ॥

परिपक्वस्य रसस्य कार्याणि— **वह्नेर्बलेन माधुर्यं स्निग्धतां याति तद्रसः ।**
पुष्णाति धातूनखिलान्सम्यक्पक्वोऽमृतोपमः ॥ ४ ॥

फिर अग्नि के बल से यह कटुरस परिवर्तित होकर मधुर रस युक्त और स्निग्ध होकर **रसधातु** बन जाता है। यह ठीक ठीक बना हुआ रस अमृत के तुल्य होता है क्योंकि शरीर के सब धातुओं की पुष्टि और पालन यही रस करता है ॥ ४ ॥

आमरसस्य कार्याणि—**मन्दवह्निविदग्धश्च कटुश्चाम्लो भवेद्रसः ।**
विषभावं व्रजेद्वाऽपि कुर्याद्वा रोग(२)संकरम् ॥ ५ ॥

यदि अग्नि के मन्द होने के कारण ठीक ठीक न पक सका तो वह रस कटु और अम्ल बन जाता है और विषभाव को प्राप्त होता है याने मारक होता है। यदि अल्प होने के कारण प्राण नहीं ले सकता तो अनेक प्रकार के रोगसमूहों को उत्पन्न कर देता है।

विमर्श—कहा भी है—**"स आमसंज्ञको ज्ञेयः सर्वदोषप्रकोपकः"** इति।

ठीक से समझ में आने के लिये फिर से हम स्पष्ट करते हैं—अन्न के पकने की चार अवस्थाएँ होती हैं—

१—जब हम भोजन करते हैं तो मुख के लार से चबाते समय एवम् आमाशय में जाकर वहां के आमाशयिक रसों से संयुक्त होता है। पहले कह आये हैं कि—मुख का जल भी कफ ही है और आमाशय में क्लेदन कफ रहता है। इसके संयोग से आहार फेन सा और मधुर हो जाता है। फेन सा होने का कारण यह है कि आहार कठिन या सूखे अवस्था में ग्रहणी में नहीं जा सक्ते क्योंकि वहां का मार्ग संकुचित अधिक है। इस मधुर भाव के कारण तथा अन्न को क्लिन्न करने के लिये कफ उत्तेजित रहता है, इसलिये भोजन करते ही कफ का जोर रहता है। यह **पहली अवस्था** है।

२—इसके बाद **दूसरी अवस्था** प्रारम्भ होती है। यह फेन सा पदार्थ ज्यों ज्यों ग्रहणी निकट आता है त्यों त्यों वह पित्त की गरमी से विदग्ध होकर खट्टा हो जाता है। इस खट्टे रस को समान वायु ग्रहणी में डाल देता है। यहां यह खट्टारस पित्त के तेज से (पित्तरस आदि के संयोग से) पकता है। इस समय अम्ल रस के साधर्म्य से एवम् उसके पचाने के लिये पित्त के प्रवृत्त रहने के कारण से इस पच्यमानावस्था में पित्त का प्रकोप या जोर रहता है। यहां तक **दूसरी अवस्था** है।

३—अब **तीसरी अवस्था** प्रारम्भ होती है। जब खट्टारस पक चुकता है तो वह कटु हो

---

(१) आम—**जठरानलदौर्बल्यादविपक्वस्तु यो रसः। स आमसंज्ञको देहे सर्वदोषप्रकोपकः ॥**

(२) रोगसंकरं कुर्याद् दोषदूषितत्वाद् न तु स्वयमेव, यतः स्नेहदग्धव्यपदेशवत्। तदुक्तं—**रसादिस्थेषु दोषेषु व्याधयः सम्भवन्ति ये। ज्ञायन्त उपचारेण तानाहुर्घृतदग्धवत् ॥**

जाता है। कटुरस के साधर्म्य से तथा पक चुकने के कारण से पाचकसंस्थान की उत्तेजना हो जाने के कारण इस जीर्णावस्था में वायु का प्रकोप या जोर रहता है। यह तीसरी अवस्था है।

४—इसके बाद **चौथी अवस्था** में यह कटु रस मधुर और स्निग्ध बन जाता है। इसमें आहार का सार रहने के कारण यही सारे शरीर के धातुओं को पुष्ट करता, पालन, तृप्त करता और जीवित रखता है। यही **रस धातु** है ॥ ५ ॥

आहारस्य सारमलपदा- **आहारस्य रसः सारः सारहीनो मलद्रवः ।**
र्थयोर्निर्देशादिकम्— **शिराभिस्तज्जलं नीतं बस्तौ मूत्रत्वमाप्नुयात् ॥ ६ ॥**
तत्किट्टं च मलं ज्ञेयं तिष्ठेत्पक्वाशये च तत् ।
वलित्रितयमार्गेण यात्यपानेन नोदितम् ॥
प्रवाहिणी सर्जनी च ग्राहिकेति वलित्रयम् ॥ ७ ॥

आहार का सार यह **रसधातु** है और जो असार पदार्थ बच जाता है वह सारहीन द्रव याने द्रवावस्था में मल रह जाता है। इस मलद्रव में से द्रवांश का शोषण अन्त्रों में होकर द्रव शिराओं द्वारा वस्ति में ले जाया जाता है जो कि **मूत्र** है। शेष घन भाग किट्ट का है जो पक्वाशय या मलाशय में रह जाता है। यही **मल** है। यह मल फिर पक्वाशय स्थित वायु के द्वारा प्रेरित होकर गुदा के तीन वलियों वाले मार्ग से शरीर के बाहर निकल जाता। ये तीन वलियां **प्रवाहिणी** या बाहर भेजने वाली, **सर्जनी** या बाहर निकाल देने वाली, **ग्राहिका** या फिर संवरण करने वाली हैं।

विमर्श—गुदा शरीर का वह छिद्र है जिस रास्ते शरीर का मल बाहर निकलता है। इसमें तीन **बलियां** या आंटें हैं जो शंख के आवर्त्त की सी हैं।

पहिली बलि प्रवाहिणी है—यह मल को बाहर जाने के लिये प्रेरित करती है।

दूसरी सर्जनी है—यह पहली वलि से प्रेरित मल को बाहर कर देती है।

तीसरी बलि जो बाहर की ओर रहती है, **ग्राहिका** है—यह मल निकल जाने के गुदा को फिर से सिकोड़ लेती है।

गुदा का कुल मान साढ़े चार अंगुल का है। **प्रवाहिणी** और **सर्जनी** डेढ़ डेढ़ अंगुल और **ग्राहिका** एक अंगुल की होती है। तथा गुदा का मुख जो सिकुड़ता है आधे अंगुल होता है ॥ ६–७ ॥

रसस्य रक्तत्वनिर्देशः- **रसस्तु हृदयं याति समानमरुतेरितः ।**
रञ्जितः पाचितस्तत्र पित्तेनायाति रक्तताम् ॥ ८ ॥

रस पित्त स्थान में बनकर फिर समान वायु के द्वारा प्रेरित होकर हृदय को है, वहां फिर से उसका पाक होता है याने वह रस यकृत् और प्लीहा जो हृदय के दाहिने

हैं, उनमें जाकर वहां के रञ्जक पित्त से रञ्जित होकर क्रमतः लाल महावर के रङ्गका हो जाता है। यही **रक्त** है। यह फिर हृदय से चौबीस धमनियों द्वारा सारे शरीर में फैलता है।

विमर्श—रस के रंजित होने का क्रम शास्त्र में इस प्रकार हैः—**पहले दिन** रस श्वेत रहता है **दूसरे दिन** कपोत वर्ण का हो जाता है, **तीसरे दिन** हरासा, **चौथे दिन** हलदिया, **पांचवे दिन** कलल के रंग का, **छठे दिन** टेसू के फूल के रंग का और **सातवें दिन** महावर के रंग का होकर रक्त बन जाता है ॥ ८ ॥

रक्तस्य प्राधान्यस्वरूप-**रक्तं(१) सर्वशरीरस्थं जीवस्याधारमुत्तम(२)म् ॥**

योर्निर्देशः— **स्निग्धं गुरु चलं स्वादु विदग्धं पित्तवद्भवे(३)त् ॥ ९ ॥**

रक्त हृदय से धमनियों द्वारा सर्व शरीर में फैल जाता है और सब धातुओं का पोषण करता है, इस लिये यह सर्वशरीरस्थ है और जीव का श्रेष्ठ आधार है याने रक्त के ऊपर ही प्राणियों का जीवन अवस्थित है, यदि रक्तक्षय हो जाय तो जीव मर जाता है। यह स्निग्ध, भारी, चल याने अस्थिर क्योंकि अहरहः शरीरपालनार्थ भ्रमण करता रहता है और स्वादुगुण युक्त है। रक्त जब विदग्ध होता है तो पित्त सा होता है याने अम्ल और कटु हो जाता है। इस अवस्था के लक्षण भी पित्त से मिलते हैं और चिकित्सा क्रम भी प्रायः एक ही सा होता है ॥९॥

रसादिधातूनां पाकक्रमः-**पाचिताः पित्ततापेन रसाद्या धातवः क्रमात् ।**

शुक्रत्वं यान्ति मासेन तथा स्त्रीणां रजो भवेत् ॥ १० ॥

रसादि धातुएँ पित्त के ताप से पकते हुए क्रम से एक दूसरे से बनते हुए एक मास में वीर्य बनते हैं एवम् उसी रस से ही रक्तता प्राप्त होकर स्त्रियों का आर्त्तव बनता है जो एक २ मास पर स्रवा करता है।

विमर्श—सारांश यह है कि आहार पक कर उसी दिन ही रस बनता है फिर पांच पांच दिन में रस से रक्त, रक्त से मांस, मांस से मेद, मेद से अस्थि, अस्थि से मज्जा और मज्जा से वीर्य बनता है। इसी प्रकार वीर्य के स्थान में स्त्रियों का रज बनता है। इस तरह पूरा एक मास का समय लगता है। वीर्य दो तरह का होता है एक शरीर को धारण करने वाला और दूसरा संतानोत्पत्ति कराने वाला। कहा भी है **'शुक्रमूलं तु जीवितम्'**। पहले प्रकार का वीर्य सभी के याने स्त्री पुरुष और नपुंसक के शरीर में होता है। जिससे उनका जीवन टिका रहता है दूसरे प्रकार के वीर्य के अभाव के कारण नपुंसक को हर्ष या संगम की इच्छा नहीं होती। इसी

---

(१) रक्तं सर्वशरीरस्थं भवति पाञ्चभौतिकत्वात्। यतः—

विस्रता द्रवता रागः स्यन्दनं लघुता तथा। भूम्यादीनां गुणा ह्येते दृश्यन्ते चात्र शोणिते॥

(२) जीवस्याधारमुत्तमं देहमूलत्वात्तदुक्तं—

देहस्य रुधिरं मूलं रुधिरेणव धार्यते। तस्माद्रक्षेद्धि रुधिरं रुधिरं जीवमुच्यते॥

(३) यथा पित्तं विदग्धं सदम्लतां व्रजेत् तथेदमपि। उक्तमन्यत्रापि—

अनुष्णशीतं मधुरं स्निग्धं रक्तं च वर्णतः। शोणितं गुरु विस्रं स्याद्विदाहश्चास्य पित्तवत्॥

वीर्य से स्त्री–पुरुष को संगम करने की उत्तेजना होती है। संगम के अन्त में स्त्री–पुरुष दो स्खलित होते हैं परन्तु स्त्री के वीर्य से जीवधातु के अभाव में गर्भ-धारण की शक्ति नहीं उनके रज और पुरुष के वीर्य के संयोग से गर्भ होता है। पुरुष का स्खलित होना तो है, स्त्री के स्खलित होने की पहचान यह है कि कोई-कोई स्त्री स्खलित होने पर अ हर्षित और उत्तेजित हो जाती है, कोई कोई अधिक शर्मा जाती है और कोई कोई भी हो जाती है। भावप्रकाशादि ग्रन्थों में दो स्त्रियों के संयोग से भी अस्थिहीन ग होना लिखा है ॥ १० ॥

गर्भोत्पत्तिनिर्देशः—**कामान्मिथुनसंयोगे शुद्धशोणितशुक्रजः ।**
गर्भः संजायते नार्याः स जातो बाल उच्यते ॥ ११ ॥

जब काम के वशीभूत हो स्त्रीपुरुष दोनोंका संगम होता है तो शुद्ध शुक्र और शुद्ध के संयोग से स्त्री को **गर्भ** रहता है और वही गर्भ पैदा होने पर **बाल** कहा जाता है।

विमर्श—(१)**शुद्ध आर्त्तव** ऋतु काल में तीन दिन तक प्रवृत्त रहता है और रक्त के सदृश या तरल महावर के सदृश रंग वाला होता है। एवम् उससे कपड़े पर कि के चिह्न नहीं पड़ते–धोते ही छूट जाते हैं। (२)**शुद्ध शुक्र** बिल्लौर के समान सफेद, चिकना, मधुर, शहद की सी गन्धयुक्त तथा गाढ़ा होता है। किसी २ के मतसे तेल त के जैसा शुक्र भी शुद्ध और उत्तम माना गया है॥ ११ ॥

स्त्रीपुंनपुंसकोत्पत्तौ हेतु-**आधिक्ये रजसः कन्या पुत्रः शुक्राधिके भवेत् ।**
निर्देशः— **नपुंसकं समत्वेन यथेच्छा(३) पारमेश्वरी ॥ १२ ॥**

गर्भाधान में यदि रज की अधिकता रही तो **कन्या** और वीर्य की अधिकता हुई उत्पन्न होता है। एवम् रज और शुक्र के समान होने से **नपुंसक** संतान पैदा होती है प्रायः एक दफे में एक ही संतान जन्मती है। इसके बाद दो–दो, तीन तीन संतान इसके प्रतिकूल होना सब पूर्वकर्मानुसार जैसी परमेश्वर की इच्छा होती है वैसी इसमें किसी का वश नहीं चलता।

---

(१) शुद्धार्त्तव के लक्षण—

"शशासृक्प्रतिमं यच्च यद्वा लाक्षारसोपमम्। तदार्त्तवं प्रशंसन्ति यद्वासो न विर दिनत्रयं प्रवृत्तिश्च कुरुते शोणितं स्त्रियाः। व्यवायस्नुतशुक्रेण गर्भस्तस्यास्ततो तदेषाऽतिप्रसङ्गेन प्रवृत्तमनृतावपि। असृग्दरं विजानीयादतोऽन्यदुक्तलक्षणात्

(२) शुद्ध शुक्र के लक्षण—

स्फटिकाभं द्रवं स्निग्धं मधुरं मधुगन्धि च। शुक्रमिच्छन्ति केचित्तु तैलक्षौद्रनिभं

अशुद्ध शुक्र के लक्षण—**वातादिदूषितं पूति कुणपं ग्रन्थिरूपि च ।**
क्षीणं मूत्रपुरीषाभ्यां गन्धिशुक्रं तु निष्फलम् ॥

(३) यथेच्छा पारमेश्वरीत्यनेन यमलजातमपि सूचितं, तद्यथा—

विमर्शः—जैसे कहा है:—

भिनत्ति यावद्बहुधा प्रपन्नः शुक्रार्त्तवं वायुरतिप्रवृद्धः।
तावन्त्यपत्यानि यथाविभागं कर्मात्मकान्यस्ववशात् प्रसूते॥
कर्मात्मकत्वाद्विषमांशभेदात् शुक्रासृजोर्वृद्धिमुपैति कुक्षौ।
एकोऽधिको न्यूनतरो द्वितीय एवं यमेऽप्यभ्यधिको विशेषः॥
इत्येवमष्टौ विकृतिप्रकाराः कर्मात्मकानामनुलक्षणीयाः॥ इति॥ १२॥

बालस्यौषधमात्रानिर्देशः— **बालस्य प्रथमे मासि देया भेषजरक्तिका॥ १३॥**
अवलेहीकृतैकव क्षीरक्षौद्रसिताघृतैः।
वर्धयेत्तावदेकैकां यावद्भवति वत्सरः॥ १४॥
माषैर्वृद्धिस्तदूर्ध्वं स्याद्यावत्षोडशवत्सरः।
ततः स्थिरा भवेत्तावद्यावद्वर्षाणि सप्ततिः॥ १५॥
ततो बालकवन्मात्रा ह्रासनीया शनैः शनैः।
मात्रेयं कल्कचूर्णानां कषायाणां चतुर्गुणा॥ १६॥

बालक का जन्म होते ही उसे जो ओषधि आदि दी जाती है उसकी मात्रा (१)एक मास तक एक रत्ती की देवे, फिर प्रतिमास एक एक रत्ती बढ़ाते जावे याने जितने मास का बच्चा हो उतनी रत्ती दवा की मात्रा देवे। दवा को मां का दूध, शहद, चीनी, घी, इनमें से जैसा उपयोगी और योग्य समझे किसी एक में अच्छी तरह मिलाकर बालक को चटावे। एक वर्ष के बालक के लिये मात्रा एक मासे की है। उसके बाद प्रतिवर्ष एक एक मासे के हिसाब से मात्रा बढ़ाते जावे जब तक की उम्र १६ साल की न हो जाय। उसके ऊपर यही सोलह मासे की मात्रा ७० वर्ष के उम्र वालों तक का स्थिर रखे, याने १६ से ७० साल तक के उम्र-वालों के लिये मात्रा सोलह मासे की है। उसके बाद याने ७० साल के बाद बालक की मात्रा

बीजेऽन्तर्वायुना भिन्ने द्वौ जीवौ कुक्षिमागतौ। यमावित्यभिधीयेते धर्मेतरपुरःसरौ॥

(१) उचित मात्रा आधुनिक समय की—

विडङ्गफलमात्रं तु जातमात्रस्य भेषजम्। एतेनैव प्रमाणेन मासि मासि प्रवर्धितम्॥
कोलास्थिमात्रं क्षीरादे दद्याद्भैषज्यकोविदः। क्षीरान्नादे कोलमात्रमन्नादोदुम्बरोपमम्॥

बालकों की बाल अवस्था तीन हैं—**एक** "क्षीराद" यानी केवल दूध पीने वाला। **दूसरा** "क्षीरान्नाद" दूध और अन्न खाने वाला। **तीसरा** "अन्नाद" केवल अन्न खाने वाला। इसका विचार कर औषध की मात्रा देनी चाहिये।

मूल श्लोक में जो मात्रा बताई गई है वह आधुनिक समय के लिये उपयुक्त नहीं है। इस समय यही मात्रा (विडङ्गफलेत्यादि) उचित है।

बालक उत्पन्न होते ही प्रयोग में आने वाली औषधें—

सौवर्णं सुकृतं चूर्णं कुष्टं मधु घृतं वचा। मत्स्याख्यकः शङ्खपुष्पी मधुसर्पिः सकाञ्चनम्॥

जैसी बढ़ाई थी उसी क्रम से धीरे धीरे मात्रा को कम करते लेवे। यह मात्रा का प्रमा और कल्कों का है। कषाय आदि की मात्रा इससे चौगुनी जाने ॥ १३-१६ ॥

आजन्म सात्म्यकर्माणि-**अञ्जनं च तथा लेपः स्नानमभ्यङ्गकर्म च।**
वमनं प्रतिमर्शश्च जन्मप्रभृति शस्यते ॥ १७ ॥

आँखों में सुरमा आदि का **अञ्जन** लगाना, **उबटना** कराना, **स्नान** कराना, तेल **मालिश** कराना, **वमन** कराना और **प्रतिमर्श** यानें बृंहण नस्य एवम् अन्यान्य बृं आदि कराना बालकों के लिये जन्म से ही उत्तम है ॥ १७ ॥

वयोऽनुसारेण कवला-**कवलः पञ्चमाद्वर्षादष्टमान्नस्यकर्म च।**
दियोजनानिर्देशः— **विरेकः षोडशाद्वर्षाद्विंशतेश्चैव मैथुनम् ॥ १८ ॥**

पांच वर्ष के ऊपर **कवल** धारण करावे, आठ वर्ष से ऊपर **'नस्यकर्म'** करे, सोलह के उपरान्त (१)**जुलाब** आदि देवे और बीस साल के बाद (२)**स्त्री-सङ्ग** करने की आ

विमर्श—यह विरेचन सिर्फ तीक्ष्ण जुलाब के लिये ही कहा गया है क्योंकि ध्य रोग होने पर सोलह साल से नीचे वालों को भी मृदुविरेचन दिया जाता है॥ १८

बाल्यादीनां ह्राससमय-**बाल्यं वृद्धिश्छविर्मेधा त्वग्दृष्टिः शुक्रविक्रमौ।**
निर्देशः— **बुद्धिः कर्मेन्द्रियं चेतो जीवितं (३) दशतो ह्रसेत् ॥ १९ ॥**

बालकपन, वृद्धि-शरीर का लम्बा होना, छवि याने शरीर का रौनक, मेधा या दास्त, त्वचा, दृष्टि, वीर्य, पराक्रम, बुद्धि, कर्मेन्द्रिय, मन या स्मरणशक्ति और जीवन से दस दस साल बाद नष्ट होते जाते हैं।

विमर्श—याने जन्म से दस वर्ष बाद बालकपन, बीस वर्ष बाद शरीर का बढ़न वर्ष बाद रौनक, चालीस वर्ष बाद। ग्रन्थ आदि याद रखने की शक्ति, पचास वर्ष बा

अर्कपुष्पी घृतं क्षौद्रं चूर्णितं कनकं वचा। हेमचूर्णानि वैदूर्यः श्वेतदूर्वा घृतं मधु चत्वारोऽभिहिताः प्राशाः श्लोकार्द्धेषु चतुर्ष्वपि। कुमाराणां वपुर्मेधाबलबुद्धिवि
यहां पर घृत से गाय का घी लेना चाहिये, तथा क्षीर से स्त्री का दूध लेना चाहिये

(१) विरेचन में मृदुविरेचनादि दिया जा सकता है, जैसे—
अग्निक्षारविरेकैस्तु बालवृद्धौ विवर्जयेत्। तत् साध्येषु विकारेषु मृद्वीं कुर्याल्लघु

(२) स्त्री समागम के लिये आयु का विधान इस प्रकार है—
पञ्चविंशतितमे वर्षे पुमान् नारी तु षोडशे। समत्वागतवीर्य्यौ तु जानीयात् कुशलो

(३) विंशत्यधिकशतवर्षादुपरि। **जीवितं दशतो** ह्रसेदित्यनेन विंशत्यधिकशत युर्भवति मनुजानामिति सूचितम्। तदुक्तमन्यत्र—
समाः षष्टिद्विघ्ना मनुजकरिणां पञ्च च निशा, हयानां द्वात्रिंशत्खरकरभयोः पञ्च विरूपा सत्यायुर्वृषमहिषयोर्द्वादश शुनः स्मृतं छागादीनां दशकसहितः षट् च प

ा तनकर रहना, साठ वर्ष बाद दृष्टिशक्ति, सत्तर वर्ष बाद वीर्य, अस्सी वर्ष बाद पराक्रम, ब्बे वर्ष बाद बुद्धि, सौ वर्ष बाद हाथ पांव आदि-कर्मेन्द्रिय याने काम करने की शक्ति, एक ो दस वर्ष बाद मन याने कोई भी बात याद रखने की शक्ति और एक सौ बीस वर्ष बाद विन, इनका ह्रास होता है याने ये धीरे धीरे कम होने और नष्ट होने लगते हैं ॥ १९ ॥

ातप्रकृतिलक्षणम्—**अल्पकेशः कृशो रूक्षो वाचालश्चलमानसः ।**
आकाशचारी स्वप्नेषु वातप्रकृतिको नरः ॥ २० ॥

अब शरीर से सम्बन्ध रखने एवं चिकित्सा में भी आवश्यक होने के कारण से प्रकृतियों वर्णन करते हैं-(१)गर्भाधान के समय वीर्य और रज में जो जो दोष उत्कट या प्रबल होते उसी के अनुसार उस भ्रूण का शरीर बनता है और वही उसकी प्रकृति होती है। यह(२) त प्रकार की होती है। **एकदोषज** तीन, **द्विदोषज** तीन और **त्रिदोषज** एक। अब वात ति के लक्षण कहते हैं:—वात प्रकृतिवाला मनुष्य कम बालों वाला होता है क्योंकि वायु ा होने से त्वचा भी रूखी हो जाती है जिससे बालों का अधिक पोषण न होने से ड़े ही बाल उत्पन्न होते हैं, वात के शोषण गुण के कारण शरीर पुष्ट होने नहीं पाता इसलिये ोर पतला रहता है, शरीर रूखा रहता है, वायु के चञ्चल याने अस्थिर होने के कारण वह ष भी अधिक बोलने वाला और चञ्चलचित्त होता है और स्वप्न में आकाश में उड़ता है ंकि वायु भी स्वभावतः आकाश में रहता है ॥ २० ॥

त्तप्रकृतिलक्षणम्—**अकालपलितव्याप्तो धीमान्स्वेदी च रोषणः ।**
स्वप्नेषु ज्योतिषां द्रष्टा पित्तप्रकृतिको नरः ॥ २१ ॥

अब पित्त प्रकृति को कहते हैं पित्तप्रकृति वाला बेसमय में ही पक्ककेश हो जाता है क्योंकि के बाल पित्त की गरमी से शीघ्र ही पक जाते हैं, सत्वगुण के अधिक होने से वह बुद्धिमान् ा है। पित्त की गरमी के कारण अधिक पसीने आते हैं, पित्त के तेज होने से वह पुरुष भी ी होता है और स्वप्न में सूर्य, चन्द्र, तारा, उल्का आदि ज्योतिर्मय पदार्थों को देखता है।

विमर्श—आजकल सिर में तेल की मालिश न करने, मिट्टी के सफेद तेल (white oil) या उससे मिश्रित सुगन्धित तेल वगैरह के लगाने, सट्टा, फाटका आदि व्यापारों की हमेश ता करने, कम उम्र में ही अधिक और नाजायज तौर पर वीर्य की बर्बादी करने, आदि णों से लोगों के बाल बहुत ही कम उम्र में सफेद हो जाया करते हैं क्योंकि इनसे पित्त कुपित र मस्तक में जाकर बालों को पका देता है, कहा भी है:—

क्रोधशोकश्रमकृतः शरीरोष्मा शिरोगतः ।

) प्रकृतिनिर्माण—**शुक्रशोणितसंयोगे यो भवेद्दोष उत्कटः ।**
प्रकृतिर्जायते तेन तस्या मे लक्षणं शृणु ॥

(२) अन्यच्च—**शुक्रासृग्गर्भिणीभोज्यचेष्टागर्भाशयार्त्तिषु ।**
यः स्याद्दोषोऽधिकस्तेन प्रकृतिः सप्तधोदिता ॥

पित्तं च केशान् पचति पलितं तेन जायते ॥ इति ॥ २१ ॥

श्लेष्मप्रकृतिलक्षणम्—**गम्भीरबुद्धिः स्थूलाङ्गः स्निग्धकेशो महाबलः ।**
स्वप्ने जलाशयालोकी श्लेष्मप्रकृतिको नरः ॥ २२ ॥

कफ प्रकृति वाला पुरुष कफ के सान्द्र तथा तमोगुण युक्त होने से गम्भ सब कार्यों को कर सकने वाली बुद्धि वाला होता है, उसकी बुद्धि का पता लगा काम है। कफ के पौष्टिक, स्निग्ध तथा सौम्य होने के कारण वह पुरुष भी मोट, चमकीले बालों वाला, अधिक ताकत वाला और स्वप्न में नदी, तालाब, झील, स का देखने वाला होता है ॥ २२ ॥

द्विदोषजत्रिदोषजप्रकृतिलक्षणे—

ज्ञातव्या मिश्रचिह्नैश्च द्वित्रिदोषोल्वणा नराः ॥ २३ ॥

ऊपर तीनों प्रकृति के लक्षण कह आये हैं। उनमें से यदि दो दोषों के लक्षण तो **द्वन्द्वज** और यदि तीनों के लक्षण दृष्टिगत हों तो **त्रिदोषज** प्रकृति का प्रकार ये मिश्र प्रकृति भी समझें। यही सातों (१)प्रकृतियाँ है।

विमर्श—इन प्रकृतियों का पहचानना सहज काम नहीं है और न आजकल पर इतना ध्यान ही देते हैं, पर चिकित्सा में इससे बड़ा काम निकलता है, इसलि परीक्षा करना जरूर सीखना चाहिये। **चरक** प्रभृति ग्रन्थों से इनके और और याद कर लेने और जहां कहीं अवसर मिले उन्हें लगाकर प्रकृति पहचानने का रहने से यह शीघ्र ही आ जाती है।

जिसप्रकार विष के कीड़े को विष से तकलीफ नहीं होती उसीप्रकार प्रकृति (२) भी कोई विशेष पीड़ा नहीं होती, हां शरीर में फूटन, पसीना आना, नींद अधिक आ छोटे मोटे कष्ट अवश्य हुआ करते हैं, **चरक** में कहा भी है—**"वातलाद्याः सदा** इति। प्रकृतिगत दोषों की क्षय-वृद्धि-प्रकोप आदि नहीं होते, वे मरणपर्यन्त ज्यों रहते हैं ॥ २३ ॥

---

(१) सुश्रुत में इस भांति भी प्रकृति गणना है—

सात्त्विकाः सप्त विख्याता राजसाः षट् प्रकीर्त्तिताः ।
तिस्रस्तु तामसाः प्रोक्तास्तासां लक्षणमुच्यते ॥

वाग्भट के मतसे अन्य—**शुक्रार्त्तवस्य जन्मादौ विशेषेण च विक्रमः ।**

त्रिविधप्रकृति—**ताश्च प्रकृतयस्तिस्रो हीनमध्योत्तमाः पृथक् ॥**

(२) प्रकृतिगत दोष से अनिष्ट न होने का कारण—

विषजातो यथा कीटो न विषेण विपद्यते। तद्वत्प्रकृतयो मर्त्यंश क्नुवन्ति न बा

अन्यच्च—**प्रकोपो वाऽन्यभावो वा क्षयो वा नोपजायते ।**
प्रकृतीनां स्वभावोऽयं जायते गुरुतायुषः ॥

निद्रामूर्च्छाभ्रान्ति-तन्द्रालक्षणानि— तमःकफाभ्यां निद्रा स्यान्मूर्च्छा पित्ततमोभवा ।
रजःपित्तानिलैर्भ्रान्तिस्तन्द्रा श्लेष्मतमोऽनिलैः ॥ २४ ॥

निद्रा—तमोगुण और कफ के संसर्ग से **निद्रा** होती है याने जब शरीर में कफ एवं तमोगुण की अधिकता होती है तब नींद आती है और मनुष्य सोता है ।

मूर्च्छा—पित्त एवं तमोगुण की अधिकता होने से **मूर्च्छा** या बेहोशी होती है ।

भ्रान्ति—रजोगुण, पित्त और वायु के संसर्ग होने से **भ्रान्ति** या भ्रम होता है ।

तन्द्रा—तमोगुण एवं कफ और वायु की अधिकता होने पर **तन्द्रा** होती है ।

विमर्शः—प्रसंगवशात् इनके लक्षण भी जानकारी के लिये लिखते हैं—

मन और इन्द्रियों का अपने अपने कर्मों से विरत रहना **निद्रा** (१)कहाती है ।

संज्ञा का उपघात होना याने सुख-दुःख प्रभृति से ज्ञानशून्य होना **मूर्च्छा** (२)या मोह है।

जब विना कोई परिश्रम के ही स्वास का न फूल कर ही शरीर में थकान मालूम हो और इन्द्रियां विषयों को न ग्रहण करे तथा चक्कर आवे तो उसे (३)**भ्रम** कहते हैं ।

इन्द्रियाँ अपने अपने विषयों का भलीभांति ग्रहण न करें, शरीर भारी हो जाय, बारबार जम्भाई आवे, थकान मालूम हो और सब चेष्टाएं नींद से पीडित की सी हों तो इसे (४)**तन्द्रा** कहते हैं ॥ २४ ॥

ग्लान्यालस्ययोर्लक्षणे-ग्लानिरोजःक्षयाद् दुःखादजीर्णाच्च श्रमाद्भवेत् ।
यः सामर्थ्येऽप्यनुत्साहस्तदालस्यमुदीर्यते ॥ २५ ॥

---

(१) निद्रालक्षण—इन्द्रियाणां च मनसो मोहो निद्राऽभिधीयते ।
अन्यच्च—यदा तु मनसि क्लान्ते सर्वात्मानः क्लमान्विताः ।
विषयेभ्यो निवर्त्तन्ते तदा स्वपिति मानवः ॥ इति चरकः ॥
तथा च—हृदयं चेतनास्थानमुक्तं सुश्रुत ! देहिनाम् ।
तमोऽभिभूते तस्मिंस्तु निद्रा विशति देहिनम् ॥
निद्राहेतुस्तमः सत्त्वं बोधने हेतुरुच्यते । इति सुश्रुतः ।

(२) मूर्च्छा—संज्ञोपघातो मूर्च्छा स्यान्मूर्च्छितं तथा ।
कश्मलं प्रलयो मोहः संन्यासस्तु मृतोपमः ॥

(३) भ्रमः—एतद् भ्रमति विश्वं वा देहं वा भ्रमति स्वकम् ।
ज्ञानमेवंविधं प्रोक्तं भ्रमरोगाभिधानकम् ॥
अन्यच्च—योऽनायासः श्रमो देहे प्रवृद्धः श्वासवर्जितः ।
भ्रमः स इति विज्ञेय इन्द्रियार्थप्रबाधकः ॥

(४) तन्द्रा—इन्द्रियार्थेष्वसंवित्तिर्गौरवं जृम्भणं क्लमः ।
निद्राऽऽर्त्तस्येव यस्येहा तस्य तन्द्रां विनिर्दिशेत् ॥
अन्यच्च—कफोल्बणो वायुनोद्धूतो धमनीः सन्निरुद्धय च ।
कुर्यात्संज्ञाऽपहा तन्द्रा दारुणा मोहकारिणी ॥

ओज के क्षय होने से, दुःख से, अजीर्ण से तथा श्रम या थकावट से (१)ग्लानि है। मुख का मीठा रहना, हृदय में ऐठन, तन्द्रा और क्लम तथा भोजन की इच्छा न ग्लानि कहाता है।

काम करने की शक्ति रहने पर भी जब उत्साह नहीं होता तो उसे (२)आलस्य कहते

जृम्भालक्षणम्—**चैतन्यशिथिलत्वाद्यः पीत्वैकं श्वासमुद्वमेत्।**
विदीर्णवदनः श्वासं जृम्भा सा कथ्यते बुधैः ॥ २६ ॥

शरीर में चेतनता की कुछ कमी हो जाने पर जब मनुष्य एक लंबी साँस खींच फाड़ कर उसे अङ्ग-मरोड़ के साथ बाहर त्याग देता है, तो उसे (३)**जृम्भा** या जम्भाई कहते हैं। जम्भाई लेते वक्त प्रायः आँसू भी निकल पड़ते हैं ॥ २६ ॥

छिक्कालक्षणम्—**उदानप्राणयोरूर्ध्वं योगान्मौलिकफस्रवात्।**
शब्दःसंजायते नस्तः क्षुतं तत्कथ्यते बुधैः ॥ २७ ॥

उदान और प्राण वायु जब ऊपर जाकर सिर के स्रोतो में स्थित रहते हैं तब शिरः के खिसक कर नाक के मार्ग में आने से जो शब्द नाक से 'छिछः' ऐसा निकलता है उ या (४)छींक कहते हैं ॥ २७ ॥

उद्गारलक्षणम्—**उदानकोपादाहारसुस्थिरत्वाच्च यद्भवेत्।**
पवनस्योद्ध्र्वगमनं तमुद्गारं प्रचक्षते ॥ २८ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायां पूर्वखण्डे आहारादिगतिकथनं नाम षष्ठोऽध्यायः

उदान वायु के कुपित होने तथा आहार के जाकर अपने स्थान आमाशय में स्थि से कण्ठ के रास्ते ऊपर को जो वायु पेट से आती है उसे **उद्गार** (डकार) कहते हैं।

विमर्श—जब आहार जाकर आमाशय में स्थित होता है तब तत्रस्थ वायु स्थान कण्ठ के रास्ते बाहर निकल जाता है। इसके और भी कई कारण हैं, स्थानाभाव से दि दिया जा सक्ता ॥ २८ ॥

इति सुबोधिनीनामिकायां श्रीशार्ङ्गधरभाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः समाप्तः॥

उन्मीलितावनिर्भुग्ने परिवर्त्तिततारके। भवतस्तत्र नयने लुलिते चलपक्ष्मणी
अर्वाक् त्रिरात्रात्साध्या सा न साध्या तु ततः परम्॥

(१) ग्लानिः—**वक्रे मधुरता तन्द्रा हृदयोद्वेष्टनं क्लमः।**
न चान्नमभिकाङ्क्षेत ग्लानि तस्य विनिर्दिशेत्॥

(२)आलस्यलक्षणम्—**सुखस्पर्शप्रसङ्गित्वं दुःखद्वेषणलोलता।**
शक्तस्य चाप्यनुत्साहः कर्मण्यालस्यमुच्यते॥

(३) जृम्भालक्षणम्—**पीत्वैकमनिलं श्वासमुद्वेष्टन् विवृताननः।**
यन्मुञ्चति सनेत्राम्भः स जृम्भ इति कीर्त्तितः॥

(४) छिक्कालक्षणम्—**प्राणोदानौ च तौ स्यातां मूर्ध्नि स्रोतःपथस्थितौ।**
नस्तः प्रवर्त्तते शब्दः क्षुतं तदभिनिर्दिशेत॥

अथ सप्तमोऽध्यायः ।

रोगगणनाऽध्यायः—

रोगगणनाप्रतिज्ञा—**रोगाणां गणना पूर्वं मुनिभिर्या प्रकीर्त्तिता ।**
मयाऽत्र प्रोच्यते सैव तद्भेदा बहवो मताः ॥ १ ॥

पूर्वाचार्य ऋषियों ने रोगों की जो गणना निदान तथा चिकित्सा—भेदार्थ किया है, यहां मैं (शार्ङ्गधर आचार्य) उसे ही कहता हूँ । उन रोगों के भेद अनेक हैं ।

विमर्श—यहां आचार्य ग्रन्थविस्तार के भय से रोगों की सिर्फ गणना ही की है क्योंकि यदि रोगों के भेद अच्छी तरह याद हों तो रोगनिर्णय में बहुत सुविधा होती है । एवम् निदानादि भी स्मरण हो आते हैं । इसी उद्देश्य से यह अध्याय कहने से ही इसके रोगभेदों में अन्य निदानादि ग्रन्थों से कुछ विभिन्नता जान पड़ती है । जो कि स्पष्टार्थ किया गया है, एवम् उनसे विरोध बिलकुल नहीं करता ॥ १ ॥

ज्वरभेदाः—**पञ्चविंशतिरुद्दिष्टा (१) ज्वरास्तद्भेद उच्यते ।**
पृथग्दोषैस्तथा द्वन्द्वभेदेन त्रिविधः स्मृतः ॥
एकश्च सन्निपातेन तद्भेदा बहवः स्मृताः ॥ २ ॥

ज्वर पच्चीस प्रकार के होते हैं । आगे उनके भेद कहते हैं:—

अलग अलग दोष से—(२) वातज्वर, (३)पित्तज्वर एवम् (४)कफज्वर । **दो दोषों के**

---

(१) ज्वरस्य प्राधान्यम्—**देहेन्द्रियमनस्तापी सर्वरोगाग्रजो बली ।**
ज्वरः प्रधानो रोगाणामुक्तो भगवता पुरा ॥

ज्वरस्य विप्रकृष्टनिदानपूर्विका सम्प्राप्तिः—**मिथ्याऽऽहारविहाराभ्यां दोषा ह्यामाशयाश्रयाः ।**
बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं ज्वरदाः स्यू रसानुगाः ॥

सामान्यलक्षणमाह—**स्वेदावरोधः संतापः सर्वाङ्गग्रहणं तथा ।**
युगपद्यत्र रोगेषु स ज्वरो व्यपदिश्यते ॥

ज्वरे स्वेदावरोधकारणम्—**रुणद्धि चाप्यपां धातु यस्मात्तस्माज्ज्वरातुरः ।**
भवत्यत्युष्णगात्रश्च स्विद्यते न च सर्वशः ॥

(२) वातज्वरमाह—**वेपथुर्विषमो वेगः कण्ठौष्ठपरिशोषणम् ।**
निद्रानाशः क्षवस्तम्भो गात्राणां रौक्ष्यमेव च ।
शिरोहृद्गात्ररुग्वक्त्रवैरस्यं गाढविट्कता ।
शूलाध्माने जृम्भणं च भवत्यनिलजे ज्वरे ॥

(३) पित्तज्वरमाह—**वेगस्तीक्ष्णोऽतिसारश्च निद्राऽल्पत्वं तथा वमिः ।**
कण्ठौष्ठमुखनासानां पाकः स्वेदश्च जायते ॥
प्रलापो वक्त्रकटुता मूर्च्छा दाहो मदस्तृषा ।
पीतविण्मूत्रनेत्रत्वं पैत्तिके भ्रम एव च ॥

(४) कफज्वरमाह—**स्तैमित्यं स्तिमितो वेग आलस्यं मधुरास्यता ।**

मिलने से-(१) वातपित्तज्वर, (२) वातकफज्वर तथा (३) पित्तकफज्वर । और (४) याने तीनों दोषों के मिलने से एक ज्वर होता है। जिसके अनेक भेद हैं।

विमर्श—भेद उल्वणादि भेद से माने गये हैं, जो मुख्यतः १३ भेद हैं, पर यह लक्षित होने से एवम् **प्रकृतिसमसमवाय** से उत्पन्न होने से ही पठित होते हैं। **विकृति समवाय** अनन्त होने से ग्रन्थों में पढ़े नहीं जाते। कई आचार्य दोषों का तारतम्यानु और कोई आचार्य ६३ विकल्पें करते हैं। इन सबको आचार्य ने एक सन्निपात में ही कर विशेष लक्षण-युक्त विषमज्वरों की गणना अलग की है॥ २॥

विषमागन्तुज्वरयोर्भे- **प्रायशः सन्निपातेन पञ्च स्युर्विषम(५)ज्वराः।**
दाः— **सन्ततः सततश्चैव अन्येद्युष्कस्तृतीयकः॥ ३॥**

शुक्लमूत्रपुरीषत्वं स्तम्भस्तृप्तिरथापि च॥
नात्युष्णगात्रता च्छर्दिरङ्गसादोऽविपाकता॥
गौरवं शीतमुत्क्लेदो रोमहर्षोऽतिनिद्रता।
प्रतिश्यायोऽरुचिः कासः कफजेऽक्ष्णोश्च शुक्लता॥

(१) वातपित्तज्वर-माह— **तृष्णा मूर्च्छा भ्रमो दाहः स्वप्ननाशः शिरोरुजा।**
कण्ठास्यशोषो वमथू रोमहर्षोऽरुचिस्तमः॥
पर्वभेदश्च जृम्भा च वातपित्तज्वराकृतिः॥

(२) वातकफज्वरमाह-**स्तैमित्यं पर्वणां भेदो निद्रा गौरवमेव च।**
शिरोग्रहः प्रतिश्यायः कासः स्वेदाप्रवर्त्तनम्॥
सन्तापो मध्यवेगश्च वातश्लेष्मज्वराकृतिः॥

(३) पित्तकफज्वरमाह-**लिप्ततिक्तास्यता तन्द्रा मोहः कासोऽरुचिस्तृषा।**
मुहुर्दाहो मुहुः शीतं पित्तश्लेष्मज्वराकृतिः॥

(४) सन्निपातज्वरमाह—

क्षणे दाहः क्षणे शीतमस्थिसन्धिशिरोरुजा। सास्रावे कलुषे रक्ते निर्भुग्ने चापि सस्वनौ सरुजौ कर्णौ कण्ठः शूकैरिवावृतः। तन्द्रा मोहः प्रलापश्च कासः श्वासोऽरुचि परिदग्धा खरस्पर्शा जिह्वा स्रस्ताङ्गता परम्। ष्ठीवनं रक्तपित्तस्य कफेनोन्मिश्रित शिरसो लोठनं तृष्णा निद्रानाशो हृदि व्यथा। स्वेदमूत्रपुरीषाणां चिराद्दर्शनम
कृशत्वं नातिगात्राणां प्रततं कण्ठकूजनम्।
(१)कोठानां श्यावरक्तानां मण्डलानां च दर्शनम्॥

मूकत्वं स्रोतसां पाको गुरुत्वमुदरस्य च। चिरात् पाकश्च दोषाणां सन्निपातज्वरा
(५) **ज्वराश्च विषमाः सर्वे सन्निपातसमुद्भवाः।**

---

(१) कोठानां लक्षणं तु—"**वरटीदंशसङ्काशं कोठमित्यभिधीयते**" इति।

चातुर्थिकश्च पञ्चैते कीर्त्तिता विषमज्वराः ।
तथाऽऽगन्तु(१)ज्वरोऽप्येकस्त्रयोदशविधो मतः ॥ ४ ॥
अभिचारग्र(२)हावेशशापैरागन्तुकस्त्रिधा ।
श्रमाच्छेदात्क्षताद्दाहाच्चतुर्द्धा घातजो ज्वरः ॥ ५ ॥
कामाद्भीतेः शुचो रोषाद्विषादौषधगन्धतः ।
अभिषङ्गज्वराः षट् स्युरेवं ज्वरविनिश्चयः ॥ ६ ॥

इसी त्रिदोषमिश्रण से ही प्रायः पाँच(३) तरह के विषमज्वर होते हैं—८—सन्तत, ९—सतत,

---

(१) अभिघाताभिचाराभ्यामभिशापाभिषङ्गतः ।
आगन्तुर्जायते दोषैर्यथास्वं तं विभावयेत् ॥

(२) भूताभिषङ्गागन्तुजमाह—भूताभिषङ्गादुद्वेगो हास्यरोदनकम्पनम् ।
दोषपरत्वेनागन्तुजमाह—कामशोकभयाद् वायुः क्रोधात्पित्तं त्रयो मलाः ।
भूताभिष(१)ङ्गात्कुप्यन्ति भूतसामान्यलक्षणाः ॥

श्रमज्वरलक्षणम्—श्रम इति शरीरायासजननव्यापारलक्षणं कर्म तद् व्यायामशब्देन वाच्यम् , तेन कारणेन ज्वरः ।

छेदज्वरलक्षणम्—छेदोऽस्त्रप्रभृतिभिः । तेन कारणेन ज्वरः ।

क्षतज्वरलक्षणम्—क्षतः=प्रहारः, स च लोष्ठशस्त्रलगुडादिजनितः,तेन कारणेन ज्वरः ।

दाहज्वरलक्षणम्—दाहोऽग्न्यादिसम्भवस्तेन कारणेन ज्वरः ॥

कामजागन्तुजमाह—कामजे चित्तविभ्रंशस्तन्द्राऽलस्यमभोजनम् ।
हृदये वेदना चास्य गात्रं च परिशुष्यति ॥

स्त्रीणां कामज्वरमाह—मूर्च्छाऽङ्गमर्दो तृण्नेत्रचापल्यं कुचवक्रयोः ।
स्वेदः स्याद्धृदि दाहश्च स्त्रीणां कामज्वरे भवेत् ॥

भयशोककोपाभिचारा-भयात्प्रलापः शोकाच्च भवेत्कोपाच्च वेपथुः ।
भिशापागन्तुजज्वरानाह—अभिचाराभिशापाभ्यां मोहस्तृष्णा च जायते ॥

विषजागन्तुजमाह—श्यावास्यता विषकृते तथाऽतीसार एव च ।
भक्तारुचिः पिपासा च तोदश्च सह मूर्च्छया ॥

ओषधिगन्धजागन्तुजमाह—ओषधिगन्धजे मूर्च्छा शिरोरुग् वमथुस्तथा ।

(३) सन्निपातज्वरान्तर्गतविषमसन्ततादिज्वरस्य तथाऽप्यन्यज्वरस्य लक्षणम्—

सन्ततमाह—१—सप्ताहं वा दशाहं वा द्वादशाहमथापि वा ।
सन्तत्या योऽविसर्गी स्यात् सन्ततः स निगद्यते ॥

सततमाह—२—अहोरात्रेण सततो द्वौ कालावनुवर्त्तते ।

---

(१)अभिषङ्गस्य कामशोकभयक्रोधैरभिषिक्तस्य यो ज्वरः ।
परिभाषा—सोऽभिषङ्गज्वरो ज्ञेयो यश्च भूताभिषङ्गजः ।

१०—अन्येद्युष्क, ११—तृतीयक और १२—चतुर्थक। ये पांच विषमज्वर कहलाते हैं।
आगन्तुज ज्वर याने जो ज्वर बाह्य कारणों से उत्पन्न होता है वह एक ही तरह का
विमर्श— चिकित्सा करने की सुभीते के लिये आचार्य उसे १३ तरह का मान
इस तरह हैं—१३—अभिचार याने तान्त्रिक प्रयोग या जादू टोना जो किसी शत्रु के
अनुष्ठित हो, तज्जनित ज्वर। १४—**ग्रहावेश** याने भूतप्रेत आदि लगना, उस से उत्पन्न
एवम् १५—**शाप**-जो गुरुजन, सिद्ध पुरुष अप्रसन्न होकर शापते हैं, उससे उत्पन्न
ये तीन विशुद्ध **आगन्तुज ज्वर** हैं।

१६—अधिक परिश्रम से उत्पन्न ज्वर। १७—**छेद** यानेकोई अंग कट जाना, उस
ज्वर। १८—**क्षत**-घाव लगना उससे उत्पन्न ज्वर। १९—**दाह** याने जल
उससे उत्पन्न ज्वर। ये चार **आघातजज्वर** कहलाते हैं, क्योंकि ये शरीर में बाहर
आघात लगने से ही उत्पन्न होते हैं।

२०—**कामज्वर** याने अभिलषित स्त्री आदि की अप्राप्ति से उत्पन्न ज्वर। २१—
से उत्पन्न ज्वर। २२—शोक करने से उत्पन्न ज्वर। २३-क्रोध करने से उत्पन्न ज्वर।
दूषीविषादि या मूषिकविष, उससे उत्पन्न ज्वर। २५—तीव्र ओषधि के गन्ध से
ज्वर। ये छः **अभिषङ्गजज्वर** कहलाते हैं, क्योंकि ये उपर्युक्त कारणों के अभिषङ्ग से
होते हैं। ये तेरह याने **आगन्तुक** तीन, **आघातज** चार और **अभिषङ्गज** छः,
आगन्तुज ज्वर हैं। इस तरह ज्वर का २५ भेद निदानार्थ कहा गया है।

विमर्श—यद्यपि तन्त्रों में **एकदोषज** तीन, **द्वन्द्वज** तीन, **सन्निपातज** एक तथा आग-
न्तुक एक, इस तरह कुल आठ भेद कहे गये हैं एवम् अन्य भेद इन्हीं के ही अवान्तर
गये हैं, तो भी आचार्य ने यहां सर्व साधारण की समझ में आसानी से आने के लिये
मिलाकर २५ भेद कह दिया॥ ३-६॥

अतीसारग्रहणीप्रवाहिकाणां भेदाः—

पृथक्त्रिदोषः सर्वैश्च शोकादामाद्भयादपि।
अतीसारः सप्तधा स्याद् ग्रहणी पञ्चधा मता॥ ७॥
पृथग्दोषैः सन्निपातात्तथा चामेन पञ्चमी।
प्रवाहिका चतुर्द्धा स्यात्पृथग्दोषैस्तथाऽस्रतः॥ ८॥

पृथग्दोषज ३ याने १-वातज, २-पित्तज और ३-कफज, ४-सन्निपातज, ५-
६-आमज तथा ७-भयज। इस तरह अतिसार (१)सात तरह के होते हैं। **भयज** और

तृतीयकं चतुर्थकं ज्वरमाह-**४-५-तृतीयकस्तृतीयेऽह्नि चतुर्थेऽह्नि चतुर्थकः॥**

अन्येद्युष्कमाह—**३-अन्येद्युष्कस्त्वहोरात्रमेककालं प्रवर्त्तते।**

(१) अतीसारनिदानम्—

**गुर्वतिस्निग्धरूक्षोष्णद्रवस्थूलातिशीतलैः। विरुद्धाध्यशनाजीर्णैर्विषमैश्चातिभोजनैः।
स्नेहाद्यैरतियुक्तैश्च मिथ्यायुक्तैर्विषभयैः। शोकदुष्टाम्बुमद्यातिपानैः सात्म्यर्तुपर्ययैः।
जलाभिरमणैर्वेगविघातैः कृमिदोषतः। नृणां भवत्यतीसारो लक्षणं तस्य वक्ष्यते।**

...य से वात कुपित होने से ही होता है, अतः निदानादि ग्रन्थों में छः ही भेद कहे गये हैं, पर ...त्काल उत्पन्न हो जाने के कारण (चयादि क्रम बिना) स्पष्ट दिखाने को आचार्यजी ने यहां ...तिसार को सात प्रकार का कहा है ।

ग्रहणी(१) रोग पांच तरह का होता है १–वातज, २–पित्तज, ३–कफज, ४–सन्निपातज

१—वातातिसारमाह—

...रुणं फेनिलं रूक्षमल्पमल्पं मुहुर्मुहुः । शकृदामं सरुक्शब्दं मारुतेनातिसार्यते ॥

२–पित्तजमाह—**पित्तात्पीतं नीलमालोहितं वा तृष्णामूर्च्छादाहपाकोपपन्नम् ।**

३–कफजमाह—**शुक्लं सान्द्रं श्लेष्मणा श्लेष्मयुक्तं विस्रं शीतं हृष्टरोमा मनुष्यः ॥**

४–सन्निपातजमाह—**वाराहस्नेहमांसाम्बुसदृशं सर्वरूपिणम् ।**
कृच्छ्रसाध्यमतीसारं विद्याद् दोषत्रयोद्भवम् ॥

५—शोकजमाह—

तस्तैर्भावैः शोचतोऽल्पाशनस्य बाष्पोष्मा वै वह्निमाविश्य जन्तोः ।
कोष्ठं गत्वा क्षोभयेत्तस्य रक्तं तच्चाधस्तात् काकणन्तीप्रकाशम् ॥
निर्गच्छेद्वै विड्विमिश्रं ह्यविड् वा–निर्गन्धं वा गन्धवद् वाऽतिसारः ।
शोकोत्पन्नो दुश्चिकित्स्योऽतिमात्रं रोगो वैद्यैः कष्ट एष प्रदिष्टः ॥

६–आमातिसारमाह—**अन्नाजीर्णात्प्रद्रुताः क्षोभयन्तः कोष्ठं दोषा धातुसंघान्मलांश्च ।**
नानावर्णं नैकशः सारयन्ति शूलोपेतं षष्ठमेनं वदन्ति ॥

७–भयजमाह—**भयेन क्षोभिता दोषा दूषयन्ति मलं यदा ।**
तदाऽतिसार्यते जन्तुः क्षिप्रमुष्णं जलप्लवम् ॥
वातपित्तातिसारस्य प्रायो लिङ्गैः समन्वितम् ।
अभयोपशमाच्छर्म यस्मिन्स्यात् स भयात्स्मृतः ॥

पित्तातिसारस्यावस्थाविशेषो रक्तातिसारो यथा—

पैत्तकृन्ति यदाऽत्यर्थं द्रव्याण्यश्नाति पैत्तिके । तदोपजायतेऽभीक्ष्णं रक्तातीसार उल्वणः ॥

आमपक्वलक्षणम्—

संसृष्टमेभिर्दोषैस्तु न्यस्तमप्स्ववसीदति । पुरीषं भृशदुर्गन्धि पिच्छिलं चामसञ्ज्ञितम् ॥
एतान्येव तु लिङ्गानि विपरीतानि यस्य वै । लाघवं च विशेषेण तस्य पक्वं विनिर्दिशेत् ॥

निवृत्तमाह—**यस्योच्चारं विना मूत्रं सम्यग्वायुश्च गच्छति ।**
दीप्ताग्नेर्लघुकोष्ठस्य स्थितस्तस्योदरामयः ॥

(१) ग्रहणीसम्प्राप्तिः—

अतीसारे निवृत्तेऽपि मन्दाग्नेरहिताशिनः । भूयः सन्दूषितो वह्निर्ग्रहणीमभिदूषयेत् ॥

सम्प्राप्तिपूर्वकं सामान्यलक्षणम्—

एकैकशः सर्वशश्च दोषैरत्यर्थमूर्च्छितैः । सा दुष्टा बहुशो भुक्तमाममेव विमुञ्चति ॥
पक्वं वा सरुजं पूति मुहुर्बद्धं मुहुर्द्रवम् । ग्रहणीरोगमाहुस्तमायुर्वेदविदो जनाः ॥

तथा ५–आमज । निदान में आमज को छोड़कर चार ही प्रकार की ग्रहणी कही गई है, आमज आमवातजन्य होने से ही आमयुक्त वातज में ही अन्तर्भुक्त हो जाता है । यहां स्प... के लिये पांच प्रकार कहा गया है ।

वातजग्रहणीमाह—

कटुतिक्तकषायातिरूक्षशीतादिभोजनैः । प्रमितानशनात्यध्ववेगनिग्रहमैथुनैः ॥ मारुतः कुपितो वह्निमाच्छाद्य कुरुते गदान् । तस्यान्नं पच्यते दुःखं शुक्तपाकं खरा... कण्ठास्यशोषो क्षुत्तृष्णा तिमिरं कर्णयोः स्वनः। पार्श्वोरुवङ्क्षणग्रीवारुगभीक्ष्णं वि... हृत्पीडाकार्श्यदौर्बल्यवैरस्यं परिकर्त्तिका । गृद्धिः सर्वरसानां च मनसः सदनं त...

जीर्णे जीर्यति चाध्मानं भुक्ते स्वास्थ्यमुपैति च ।
स वातगुल्महृद्रोगी प्लीहाशङ्की च मानवः ॥
चिराद् दुःखं द्रवं शुष्कं तन्वामं शब्दफेनवत् ।
पुनः पुनः सृजेद् वर्चः कासश्वासार्दितोऽनिलात् ॥

पित्तजग्रहणीमाह—

कट्वजीर्णविदाह्यम्लक्षाराद्यैः पित्तमुल्वणम् । आप्लावयद्धन्त्यनलं जलं तप्तमिवा... सोऽजीर्णं नीलपीताभः पीताभः सार्यते द्रवम् । पूत्यम्लोद्गारहृत्कण्ठदाहारुचितृ...

कफजग्रहणीमाह—गुर्वतिस्निग्धशीतादिभोजनादतिभोजनात् ।
भुक्तमात्रस्य च स्वप्नाद्धन्त्यग्निं कुपितः कफः ॥

तस्यान्नं पच्यते दुःखं हृल्लासच्छर्द्यरोचकाः । आस्योपदेहमाधुर्यकासष्ठीवनपी... हृदयं मन्यते स्त्यानमुदरं स्तिमितं गुरु । दुष्टो मधुर उद्गारः सदनं स्त्रीष्वहर्षण... भिन्नामश्लेष्मसंसृष्टगुरुवर्चःप्रवर्त्तनम् । अकृशस्यापि दौर्बल्यमालस्यं च कफात्म...

त्रिदोषजग्रहणीमाह—पृथग्वातादिनिर्दिष्टहेतुलिङ्गसमागमे ।
त्रिदोषं निर्दिशेदेवं तेषां बुद्ध्या विचक्षणः ॥

प्रसङ्गात् सङ्ग्रहग्रहणीमाह—

द्रवं घनं सितं स्निग्धं सकटीवेदनं शकृत् । आमं बहु सपैच्छिल्यं सशब्दं मन्दवे... पक्षान्मासाद्दशाहाद्वा नित्यं वाऽपि विमुञ्चति। अन्त्रकूजनमालस्यं दौर्बल्यं सदनं...

दिवा प्रकोपो भवति रात्रौ शान्तिं च गच्छति ।

दुर्विज्ञेया दुश्चिकित्स्या चिरकालानुबन्धिनी । सा भवेदामवातेन सङ्ग्रहग्रहणी...

घटीयन्त्राख्यग्रहणी- प्रसुप्तिः पार्श्वयोः शूलं गलज्जलघटीध्वनिः ।
माह— तं वदन्ति घटीयन्त्रमसाध्यं ग्रहणीगदम् ।

साध्यासाध्यमाह—यैर्लक्षणैः सिद्ध्यति नातिसारस्तैः स्यादसाध्यो ग्रहणीगदोऽ...
वृद्धस्य जायेत यदा गदोऽयं देहस्तदा तस्य हि नाशमेति ॥

साम निराममाह—दोषं सामं निरामं च विद्यादत्रातिसारवत् ।

प्रवाहिका(१) चार प्रकार की होती है—वातज, पित्तज, कफज तथा रक्तज ।

विमर्श—अतिसार, ग्रहणी और प्रवाहिका ये तीनों ही शरीर के सुदीर्घ अन्ननाडी के रोग हैं। पर स्थान-संश्रय से तथा भिन्न लक्षण होने के कारण इनमें भेद है । **अतिसार** अन्त्रों का रोग है एवम् इसमें मल और दोष गुदमार्ग से निकलते हैं । **ग्रहणीरोग** छठी अग्निधरा कलाके दुर्बल हो जाने से उत्पन्न होता है एवम् इसमें अपक्व अन्न द्रवरूप से गुदामार्ग से निकलता है। **प्रवाहिका** मलधरा कला याने पक्काशय का रोग है इसमें प्रवृद्ध वायु कुपित होकर सञ्चित कफ को दोषों से संसृष्ट कर धक्के के साथ गुदा के बाहर निकाला करता है । जिससे पेट में मरोड़ी चलती है तथा निकालने के लिये मनुष्य काँख उठता है ॥ ७–८ ॥

अजीर्णालसयोर्भेदाः—**अजीर्णं त्रिविधं प्रोक्तं विष्टब्धं वायुना मतम् ॥ ९ ॥**
पित्ताद्विदग्धं विज्ञेयं कफेनामं तदुच्यते । विषाजीर्णं रसादेकं दोषैः स्यादलसस्त्रिधा १०

अजीर्ण(२) **रोग** वातादि दोषानुसार तीन तरह का होता है । **वातदोष** से विष्टब्धाजीर्ण,

---

(१) प्रवाहिकायाः सं-प्राप्तिपूर्वकं लक्षणम्—**वायुः प्रवृद्धो निचितं बलासं नुदत्यधस्तादहिताशनस्य । प्रवाहतोऽल्पं बहुशो मलाक्तं प्रवाहिकां तां प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥**
प्रवाहिकाया दोषभेदेन-रूपम्—**प्रवाहिका वातकृता सशूला, पित्तात्सदाहा सकफा कफाच्च । सशोणिता शोणितसम्भवा च ताः स्नेहरूक्षप्रभवा मतास्तु ॥ तासामतीसारवदादिशेच्च लिङ्गं क्रमं चामविपक्वतां च ॥**

(२) अजीर्णनिदानम्—
कायिकनिदानमाह—**अत्यम्बुपानाद्विषमाशनाच्च-सन्धारणात् स्वप्नविपर्ययाद् वा । कालेऽपि सात्म्यं लघु चापि भुक्तमन्नं न पाकं भजते नरस्य ॥**
मानसिकनिदानमाह—**ईर्ष्याभयक्रोधपरिप्लुतेन लुब्धेन रुग्दैन्यनिपीडितेन । प्रद्वेषयुक्तेन च सेव्यमानमन्नं न सम्यक् परिपाकमेति ॥**
वातेन विष्टब्धाजीर्णमाह-**विष्टब्धे शूलमाध्मानं विविधा वातवेदनाः । मलवाताप्रवृत्तिश्च स्तम्भो मोहाङ्गपीडनम् ॥**
पित्तेन विदग्धाजीर्णमाह—**विदग्धे भ्रमतृण्मूर्च्छाः पित्ताच्च विविधा रुजः । उद्गारश्च सधूमाम्लः स्वेदो दाहश्च जायते ॥**
कफेनामाजीर्ण(विषाजीर्ण)माह—**तत्रामे गुरुतोत्क्लेदः शोफो गण्डाक्षिकूटगः । उद्गारश्च यथाभुक्तमविदग्धः प्रवर्त्तते ॥**
रसशेषाजीर्णमाह—**रसशेषेऽन्नविद्वेषो हृदयाशुद्धिगौरवे ।**
सामान्यलक्षणम्—**ग्लानिगौरवविष्टम्भभ्रममारुतमूढताः । विबन्धश्च प्रवृत्तिश्च सामान्याजीर्णलक्षणम् ॥**

अजीर्णमिति, अपरिपक्वान्नजनितं त्रिविधं वातादिभेदेन । माधवमतेन षड्विधं यथा—आमं विदग्धं विष्टब्धं कफपित्तानिलैस्त्रिभिः । अजीर्णं केचिदिच्छन्ति चतुर्थं रसशेषतः । अजीर्णं पञ्चमं केचिन्निर्दोषं दिनपाकि च । वदन्ति षष्ठञ्चाजीर्णं प्राकृतं प्रतिवासरम् ॥

पित्तदोष से विदग्धाजीर्ण तथा **श्लेष्मदोष** से आमाजीर्ण। एक **चौथा अजीर्ण** भी होता है जो विषाजीर्ण कहाता है क्योंकि यह विष जैसा मारक होता है। एवम् तद्द्रव भी होता है। आचार्य ने इसे साधारण अजीर्ण से इसलिये अलग पाठ किया कि यह अन्न से न होकर अन्नरस से होता है।

वात, पित्त और कफ दोष से **अल(१)सक** तीन तरह का होता है।

विमर्श—अलसक अजीर्ण में भोजन आमाशय में ही स्थिर रहता है, न ऊपर के और न नीचे के मार्ग से ही निकलता है, वरन् आमाशय में ही लिहसा रहता है अतः 'अलसक' कहते हैं ॥ ९-१० ॥

विषूचीदण्डकालसकवि-**विषूची त्रिविधा प्रोक्ता दोषैःसा स्यात्पृथक्पृथक्।**
लम्बिकानां भेदाः—**दण्डकालसकश्चैव एकैव स्याद्विलम्बिका ॥ ११ ॥**

पृथक् पृथक् दोष से (२)**विषूचिका** (हैजा) तीन तरह की होती है। याने १-वातज

यद्रसादेकमजीर्णं तद्विषाजीर्णमत्र प्रतिपादितम्-विषवन्मारणात्मकत्वात्। आमाजीर्णादिभ्यो रसशेषस्य को भेदः ? आमादित्रयमन्नजं रसशेषस्तु आहार...

अजीर्णस्योत्पत्तिर्भोजनेन—

अनात्मवन्तः पशुवद् भुञ्जते येऽप्रमाणतः। रोगानीकस्य ते मूलमजीर्णं प्राप्नुवन्ति

(१) अलसकमाह—**दोषैः स्यादलसस्त्रिधा।** दोषैर्वातादिभिरलसक इति वि... जीर्णाद्भवति, स च दोषस्थिरत्वनिमित्तादलसकसंज्ञां लभते।

यदुक्तं—प्रयाति नोर्ध्वं नाधस्तादाहारो न विपच्यते।
कोष्ठे स्थितोऽलसीभूतस्तेन चालसकः स्मृतः ॥

अपि च-कुक्षिरानह्यतेऽत्यर्थं प्रताम्येत्परिकूजति। निरुद्धो मारुतश्चैव कुक्षावुपरि धा... वातवर्चोनिरोधश्च यस्यात्यर्थं भवेदपि। तस्यालसकमाचष्टे तृष्णोद्गारौ तु यस्य...

विष्टब्धाजीर्णादलसकोत्पत्तिः, विष्टब्धस्तु वातेनैव सम्भवति। यदुक्तं—
अजीर्णमामं विष्टब्धं विदग्धं च यदीरितम्। विषूच्यलसकौ तस्माद्भवेच्चापि विलम्बिका...

कथमलसको वातादिभिस्त्रिभिर्दोषैः स्यात् ? नैष दोषः-दोषकार्ये दोषान्तरा... एव यथा सामान्यज्वरप्रकोपात् श्वासाद्युपद्रवाः।

अथवा—एकः प्रकुपितो दोषः सर्वाण्येव प्रकोपयेत्'-इत्यादिवचनात्।

(२) विषूची त्रिविधा प्रोक्तेति—दोषैर्वातपित्तकफैः पृथक् पृथगिति व्यस्तानां दो... षाणां त्रयो भेदा इत्यभिप्रायः। सा आमाजीर्णाद्भवति। विशेषेण 'सूचीभिरिव म... र्माणि पीडयती'ति विषूची, तदुक्तं—विषूचीनिरुक्तिः—

सूचीभिरिव गात्राणि तुदन्सन्तिष्ठतेऽनिलः। यत्राजीर्णेन सा वैद्यैर्विषूचीति निगद्यते ॥

विशेषकारणं तु भोजनाधिक्यं यथा—

न तां परिमिताहारा लभन्ते विदितागमाः। मूढास्तामजितात्मानो लभन्तेऽशनलोलुपाः ॥

चिका, २–पित्तजविषूचिका एवम् ३–कफजविषूचिका। इसमें अजीर्ण–भोजन से दोष कुपित हो शरीर मे सुई से कोचने की सी पीड़ा उत्पन्न करते हैं तथा और भी अनेक उपद्रव खड़े होते हैं।

(१)**दण्डकालसक**—एक ही तरह का होता है। यह अलसक का ही भेद है। इसमें दोष शरीर को दण्ड जैसा सीधा अकड़ा रखते हैं।

(२)**बिलम्बिका** रोग भी एक ही होता है। बिलम्बिका रोग में दोष से भोजन न ऊपर और न नीचे चलता है, वल्कि बीच में ही रह जाता है। यह वड़ा दारुण होता है।

विमर्श—विषूचिका, अलसक और विलम्बिका ये तीनों अजीर्ण से ही उत्पन्न होते हैं। **आमाजीर्ण** से विषूचिका, **विष्टब्धाजीर्ण** से अलसक तथा उसी का भेद दण्डालसक एवम् **विदग्धाजीर्ण** से विलम्बिका रोग उत्पन्न होते हैं।

आजकल जो जनपदोद्ध्वंसकारी विषूचिका सर्वत्र भारतवासियों को कवलित कर रही है वह इस विषूचिका से भिन्न है। यह अजीर्ण से उत्पन्न होती है तथा उतनी संहारकारिणी नहीं होती पर इस नये विषूचिका के उत्पन्न होने में अजीर्ण की जरूरत नहीं होती। यद्यपि कभी कभी यह अजीर्णजनित विषूचिका भी सांघातिक विषूचिका में बदल जाया करती है। यह नयी विषूचिका आगन्तुज विषूचिका है जो भोजन–पान द्वारा शरीर के अन्दर एक प्रकार के खास जीवाणु (Comma basilli) के प्रवेश करने से होती है। इस जीवाणु के शरीर से उत्पन्न विष ही रोग का कारण है। इसमें वातोल्वण सन्निपात के अधिक लक्षण मिलते हैं। इसमें भी युगपत् भेद दस्त और वमन होते हैं। **भेद में** सड़े कुम्हड़े के जल सा मल तथा **वमन में** चावलों के धोवन का सा पानी निकलता है। एक दो वेग के बाद ही रोगी बलहीन, कोटरगत–चक्षु तथा अधोऽङ्ग में पीड़ा एवम् शिथिलतायुक्त हो जाता है। शरीर की गरमी घट जाती है एवम् अधिक शारीरिक उदकभाग के क्षय होने से जोर की प्यास होती है। शीघ्र ही हाथ-पैर ठंडे हो जाते हैं, अकड़ते हैं तथा नाड़ी भी मन्द हो जाती है। नेत्र, ओष्ठ, दन्त, नख आदि नीले हो जाते हैं। मूत्ररोध हो जाता है तथा बेहोशी होकर पञ्चत्व की प्राप्ति हो जाती है।

विषूचीलक्षणमाह––**मूर्च्छाऽतिसारो वमथुः पिपासा शूलभ्रमोद्वेष्टनजृम्भदाहाः।**
वैवर्ण्यकम्पौ हृदये रुजश्च भवन्ति तस्यां शिरसश्च भेदः॥

उपद्रवाः––**निद्रानाशोऽरतिः कम्पो मूत्राघातो विसंज्ञता।**
अमी उपद्रवाः ख्याता विषूच्याः पञ्च दारुणाः॥

विषूच्यलसकयोरसाध्यलक्षणम्––**यः श्यावदन्तोष्ठनखोऽल्पसंज्ञो वम्यर्दितोऽभ्यन्तरयातनेत्रः।**
क्षामस्वरः सर्वविमुक्तसन्धिर्यायान्नरः सोऽपुनरागमाय॥

१) दण्डालसकमाह–**तिर्यग्गतास्तनुं दोषा दण्डवत् स्तम्भयन्ति ये।**
स दण्डालसकस्त्याज्यः शीघ्रं देहविनाशकृत्॥

२) विलम्बिकामाह–**दुष्टं तु भुक्तं कफमारुताभ्यां प्रवर्त्तते नोर्ध्वमधश्च यस्याम्।**
बिलम्बिकां तां भृशदुश्चिकित्स्यामाचक्षते शास्त्रविदः पुराणाः॥

इसका उपक्रम (चिकित्सा) शीघ्र ही एवम् तत्परता से करना चाहिये। यह प्रायः प्र... या रात्रि के शेष भाग में आक्रमण करती है। शेषरात्रि का आक्रमण सांघातिकतम है... मूत्ररोध भी इसके असाध्य-लक्षणों में प्रधान है ॥ ११ ॥

अर्शश्चर्मकीलयोर्भेदाः—**अर्शांसि षड्विधान्याहुर्वातपित्तकफास्त्रतः।**
सन्निपाताच्च संसर्गात्तेषां भेदो द्विधा स्मृतः ॥१२॥

अर्श (१)याने बवासीर रोग छः प्रकार का होता है। वातज अर्श, पित्तज अर्श,

---

(१) अर्शसां सम्प्राप्तिपूर्वकं रूपम्—

दोषास्त्वङ्मांसमेदांसि सन्दूष्य विविधाकृतीन्।
मांसाङ्कुरानपानादौ कुर्वन्त्यर्शांसि ताञ्जगुः॥

अर्शःशब्दप्रयोगस्य कारणम्— **अरिवत्प्राणिनो मांसकीलने निविशन्ति यत्।**
अर्शांसि तस्मादुच्यन्ते गुदमार्गनिरोधतः ॥

वातिकस्य निदानमाह—

कषायकटुतिक्तानि रूक्षशीतलघूनि यः। प्रमिताल्पाशनं तीक्ष्णं मद्यं मैथुनसेवनं... लङ्घनं देशकालौ च शीतौ व्यायामकर्म च। शोको वातातपस्पर्शौ हेतुर्वातार्शसां...

वातिकस्य लक्षणम्—**गुदाङ्कुरा बह्वनिलाः शुष्काश्चिमचिमान्विताः।**
म्लानाः श्यावारुणाः स्तब्धा विशदाः परुषाः खराः॥
मिथोविसदृशा वक्रास्तीक्ष्णा विस्फुटिताननाः।
बिम्बीखर्जूरकर्कन्धुकार्पासीफलसन्निभाः ॥
केचित्कदम्बपुष्पाभाः केचित्सिद्धार्थकोपमाः।
शिरःपार्श्वांसकट्यूरुवङ्क्षणाभ्यधिकव्यथाः ॥

क्षवथूद्गारविष्टम्भहृद्ग्रहारोचकप्रदाः। कासश्वासाग्निवैषम्यकर्णनादभ्रमाव... तैरार्त्तो ग्रथितं स्तोकं सशब्दं सप्रवाहिकम्। रुक्फेनपिच्छानुगतं विबद्धमुपवे... कृष्णत्वङ्नखविण्मूत्रनेत्रवक्त्रश्च जायते। गुल्मप्लीहोदराष्ठीलासम्भवस्तत ए...

पैत्तिकनिदानम्—**कट्वम्ललवणोष्णानि व्यायामाग्न्यातपप्रभाः।**
देशकालावशिशिरौ क्रोधो मद्यमसूयनम् ॥
विदाहि तीक्ष्णमुष्णं च सर्वं पानान्नभेषजम्।
पित्तोल्वणानां विज्ञेयः प्रकोपे हेतुरर्शसाम् ॥

पैत्तिकलक्षणम्—**पित्तोत्तरा नीलमुखा रक्तपीतासितप्रभाः।**
तन्वस्रस्राविणो विस्रास्तनवो मृदवः श्लथाः ॥
शुकजिह्वायकृत्खण्डजलौकावक्त्रसन्निभाः।
दाहपाकज्वरस्वेदतृण्मूर्च्छाऽरुचिमोहदाः ॥

सोष्माणो द्रवनीलोष्णपीतरक्तामवर्चसः। यवमध्या हरित्पीतहारिद्रत्वङ्नखा...

र्श, रक्तज अर्श, सन्निपातज अर्श तथा द्विदोषज अर्श इनके दो भेद **सहज** याने जन्मके साथ उत्पन्न और **जन्मोत्तर उत्पन्न** तथा **सूखे** और **आर्द्र**।

विमर्श—कई वंशों में पुश्तैनी स्वरूप यह बीमारी चली आती है। गर्भाधानमें यदि गर्भारम्भक बीज का गुदा बनने का भाग दूषित रहता है, तो गर्भ से ही बालक बवासीर-युक्त होकर पैदा होता है। इसे ही **सहजार्श** कहते हैं। जो बीजदोष से होता है। **जन्मोत्तर** होने

कफजनिदानम्—**मधुरस्निग्धशीतानि लवणाम्लगुरूणि च ।**
अव्यायामो दिवास्वप्नः शय्याऽऽसनसुखे रतिः ॥
प्राग्वातसेवाशीतौ च देशकालावचिन्तनम् । श्लैष्मिकाणां समुद्दिष्टमेतत्कारणमर्शसाम् ॥

कफजलक्षणम्—**श्लेष्मोल्वणा महामूला घना मन्दरुजः सिताः ।**
उत्सन्नोपचिताः स्निग्धाः स्तब्धा वृत्तगुरुस्थिराः ।
पिच्छिलाः स्तिमिताः श्लक्ष्णाः कण्ड्वाढ्याः स्पर्शनप्रियाः ।
करीरपनसास्थ्याभास्तथा गोस्तनसन्निभाः ।
वङ्क्षणानाहिनः पायुबस्तिनाभ्यवकर्षिणः । सकासश्वासहृल्लासप्रसेकारुचिपीनसाः ॥
मेहकृच्छ्रशिरोजाड्यशिशिरज्वरकारिणः। क्लैब्याग्निमार्दवच्छर्दिरामप्रायविकारदाः॥
वसाभसकफप्रायपुरीषाः सप्रवाहिकाः। न स्रवन्ति न भिद्यन्ते पाण्डुस्निग्धत्वगादयः ॥

द्वन्द्वसन्निपातजयोर्निदाने— **हेतुलक्षणसंसर्गाद्विद्याद्द्वन्द्वोल्वणानि च ।**
सर्वो हेतुस्त्रिदोषाणां सहजैर्लक्षणैः समम् ॥

द्वन्द्वसन्निपातजयोर्लक्षणे— **संसर्गलिङ्गः संसर्गाद्भवन्ति हि द्विदोषजाः ।**
सर्वैः सर्वात्मकान्याहुर्लक्षणैः सहजानि च ॥

रक्तार्शोलक्षणम्—**रक्तोल्वणा गुदे कीलाः पित्ताकृतिसमन्विताः ।**
वटप्ररोहसदृशा गुञ्जाविद्रुमसन्निभाः ॥
तेऽत्यर्थं दुष्टमुष्णं च गाढविट्कप्रपीडिताः। स्रवन्ति सहसा रक्तं तस्य चातिप्रवृत्तितः ॥
भेकाभः पीड्यते दुःखैः शोणितक्षयसम्भवैः। हीनवर्णबलोत्साहो हतौजाः कलुषेन्द्रियः॥
विट्श्यावं कठिनं रूक्षमधोवायुर्न गच्छति ।

रक्तार्शसो वातकफानुबन्धभेदेन लक्षणम्—**तनु चारुणवर्णं च फेनिलं चासृगर्शसाम् ।**
कट्यूरुगुदशूलं च दौर्बल्यं यदि चाधिकम् ॥
तत्रानुबन्धो वातस्य हेतुर्यदि च रूक्षणम् । शिथिलं श्वेतपीतं च विट्स्निग्धं गुरु शीतलम्॥
यद्यर्शसां घनं चासृक् तन्तुमत्पाण्डु पिच्छिलम् ॥
गुदं सपिच्छं स्तिमितं गुरु स्निग्धं च कारणम् ।
श्लेष्मानुबन्धो विज्ञेयस्तत्र रक्तार्शसां बुधैः ॥

मेढ्रादीनामर्शसां लक्षणम्—**मेढ्रादिष्वपि वक्ष्यन्ते यथास्वं नाभिजानि तु ।**
गण्डूपदास्यरूपाणि पिच्छिलानि मृदूनि च ॥

वाला मिथ्याऽऽहार-विहार से उत्पन्न होता है। **वातार्श**-शुष्क तथा **रक्तार्श**—आर्द्र है। यह गुदा की बलियों पर ही होता है। नासा, नाभि तथा लिङ्ग में भी होना पाया जाता है।

सहजोत्तरजन्मभ्यां तथा शुष्कार्द्रभेदतः ।
त्रिधैव चर्मकीलानि वातात्पित्तात्कफादपि ॥ १३ ॥

अर्श का दूसरा भेद जो शरीर के बाहर चमड़े पर होता है, उसे (१)**चर्मकील** कहते हैं। वह भी वातादिभेद से तीन तरह का होता है। यह चमड़े पर कड़ा, खर तथा केंचुवे के मुख के रूप का होता है ॥ १३ ॥

कृमिभेदाः—**एकविंशतिभेदेन कृमयः स्युर्द्विधा च ते ।**
बाह्यास्तथाऽऽभ्यन्तराः स्युस्तेषु यूका बहिश्चराः ॥ १४॥

लिक्षाश्चान्येऽन्तरचराः कफात्ते हृदयोदकाः। अन्त्रादा उदरावेष्टाश्चुरवश्च महागुदाः। सुगन्धा दर्भकुसुमास्तथा रक्ताच्च मातरः। सौरसा लोमविध्वंसा रोमद्वीपा उदुम्बराः। केशादाश्च तथैवान्ये शकृज्जाता मकेरुकाः। लेलिहाश्च सशूलाश्च सौसुरादाः ककेरुकाः। तथाऽन्यः कफरक्ताभ्यां संजातः स्नायुकः स्मृतः।व्रणस्य कृमयश्चान्ये विषमा बाह्य...

इसी तरह से (२)**कृमिरोग** भी कृमिभेद से २० प्रकार का होता है। ये क्रिमि दो प्रकार के होते हैं--**शरीर के बाहर होने वाले** तथा **अन्दर होने वाले**। उनमें से बाहर होने **वाले** यूका (जूँ) तथा लिक्षा (लीख) भेद से दो प्रकार के होते हैं। बाकी शरीर के अन्दर

---

(१) चर्मकीलसम्प्राप्तिः—**व्यानो गृहीत्वा श्लेष्माणं करोत्यर्शस्त्वचो बहिः।**
कीलोपमं स्थिरखरं चर्मकीलं तु तं विदुः ॥

चर्मकीलस्य वातादिभेदेन लक्षणम्— **वातेन तोदपारुष्यं पित्तादसितरक्तता ।**
श्लेष्मणा स्निग्धता तस्य ग्रथितत्वं सवर्णता ॥

(२) कृमीणां कारणम्—**अजीर्णभोजी मधुराम्लनित्यो द्रवप्रियः पिष्टगुडोपभोक्ता।**
व्यायामवर्जी च दिवाशयानो विरुद्धभुक् संलभते कृमींस्तु॥

बाह्यकृमीणां द्वैविध्यं लक्षणं कार्यञ्चाह— **तिलप्रमाणसंस्थानवर्णाः केशाम्बराश्रयाः ।**
बहुपादाश्च सूक्ष्माश्च १यूका २लिक्षाश्च नामतः ।
द्विधा ते कोठपिडकाकण्डूगण्डान्प्रकुर्वते ।

कफजन्यकृमिविशेषाणां निदानं लक्षणं संख्या नामानि कर्माणि च—

मांसमत्स्यगुडक्षीरदधिशुक्तैः कफोद्भवाः ।
कफादामाशये जाता वृद्धाः सर्पन्ति सर्वतः ।।
पृथुब्रध्ननिभाः के चित् के चिद् गण्डूपदोपमाः ।
रूढधान्याङ्कुराकारास्तनुदीर्घास्तथाऽणवः ॥
श्वेतास्ताम्रावभासाश्च नामतः सप्तधा तु ते ।
३अन्त्रादा ४उदरावेष्टा ५हृदयादा ६महागुदाः ॥

होते हैं। उनमें से **कफ से उत्पन्न** कृमि हृदयाद, अन्त्राद, उदरावेष्ट, चुरु, महागुद, सुगन्ध और दर्भकुसुम, ये सात प्रकार के हैं। **रक्त से उत्पन्न** कृमि, मातृ, सौरस, लोमविध्वंस, रोमद्वीप उदुम्बर और केशाद ये छः प्रकार के होते हैं तथा **पुरीष याने मल में उत्पन्न होने वाले** कृमि मकेरुक, लेलिह, सशूल ग्रन्थान्तर में (सलून), सौसुराद और ककेरुक ये पांच प्रकार के होते हैं। इनसे भिन्न एक और कृमि **कफरक्त से** पेशियों के अन्दर उत्पन्न होता है, उसे '**स्नायुक**' कहते हैं तथा दूसरे भी कृमि जो **व्रण पर उत्पन्न होते हैं** वे भी बाहरी उत्पत्ति वाले होते हैं। इस तरह आचार्य ने २२ भेद गिनाये हैं।

विमर्श—इनमें से **कफोत्पन्न कृमि** आमाशय में, **पुरीषोत्पन्न कृमि** मलाशय में,

---

७चुरवो ८दर्भकुसुमाः ९सुगन्धास्ते च कुर्वते ।
हृल्लासमास्यस्रवणमविपाकमरोचकम् ।
मूर्च्छाच्छर्दिज्वरानाहकार्श्यक्षवथुपीनसान् ॥

रक्तजक्रिमिविशेषाणां निदानं लक्षणं संख्या नामानि कर्माणि च—

विरुद्धाजीर्णशाकाद्यैः शोणितोत्था भवन्ति हि ।
रक्तवाहिशिरास्थानाद्रक्तजा जन्तवोऽणवः ॥
अपादा वृत्तताम्राश्च सौक्ष्म्यात्के चिददर्शनाः ।
१०केशादा ११लोमविध्वंसा १२रोमद्वीपा १३उदुम्बराः ॥
षट् ते कुष्ठैककर्माणः सह१४सौरस१५मातरः ।

पुरीषजन्यक्रिमिविशेषाणां निदानं लक्षणं संख्या नामानि कर्माणि च—

माषपिष्टाम्ललवणगुडशाकैः पुरीषजाः । पक्वाशये पुरीषोत्था जायन्तेऽधोविसर्पिणः ।
प्रवृद्धाः स्युर्भवेयुश्च ते यदाऽऽमाशयोन्मुखाः ॥
तदाऽस्योद्गारनिःश्वासा विड्गन्धानुविधायिनः ।
पृथुवृत्ततनुस्थूलाः श्यावपीतासितासिताः ।
ते पञ्च नाम्ना कृमयः १६ककेरुक१७मकेरुकाः ॥
१८सौसुरादाः १९सशूलाख्या २०लेलिहा जनयन्ति हि ।
विड्भेदशूलविष्टम्भकार्श्यपारुष्यपाण्डुताः ॥
रोमहर्षाग्निसदनं गुदकण्डूर्विमार्गगाः ॥

स्नायुकमाह—अन्यः स्नायुकसंज्ञः क्रिमिरेव स तु कफरक्ताभ्यां संजातः । अयमपि कफजेषु सप्तसु कृमिषु ये दीर्घास्तेषां भेद एव, अत एव "कफरक्ताभ्यां जायत" इत्युक्तम् ।

व्रणक्रिमिकारणम्—असावधानतया व्रणे कृमिसमुत्पत्तिः ।

अन्तःसंजातकृमिलक्षणम्—ज्वरो विवर्णता शूलं हृद्रोगः सदनं भ्रमः ।
भक्तद्वेषोऽतिसारश्च सञ्जातक्रिमिलक्षणम् ॥

रक्तज कृमि रक्तवाही शिराओं में, **स्नायुक** मांसपेशी के अन्दर तथा **व्रणकृमि** व्रणों में हैं। **आयुर्वेदीय मत से** अन्तःकृमि शरीर के अन्दर ही पैदा होते हैं। पर **पाश्चात्य** इन्हें भी अण्डावस्था में खानपान के साथ शरीर के अन्दर प्रवेश होना बताते हैं। आज रोगों के जीवाणुओं का आविष्कार हुआ है, वे कृमियों में नहीं गिने जाते हैं॥ १४-१

पाण्डुरोगकामलयोर्भेदाः–**पाण्डुरोगाश्च पञ्च स्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा।**
त्रिदोषैर्मृत्तिकाभिश्च तथैका कामला स्मृता।
स्यात्कुम्भकामला चैका तथैकं च हलीमकम्॥ १९॥

(१)**पाण्डुरोग** या पीलिया पांच तरह का होता है—१-वातज, २-पित्तज,

---

(१) पाण्डुरोगस्य विप्रकृष्टनिदानपूर्विका सम्प्राप्तिः—

व्यवायमम्लं लवणानि मद्यं मृदं दिवास्वप्नमतीव तीक्ष्णम्।
निषेव्यमाणस्य प्रदूष्य रक्तं कुर्वन्ति दोषास्त्वचि पाण्डुभावम्॥

१—वातिकमाह—

त्वङ्मूत्रनयनादीनां रूक्षकृष्णारुणाभता। वातपाण्ड्वामये तोदकम्पानाहभ्रमा

२–पैत्तिकमाह—**पीतत्वङ्नखविण्मूत्रो दाहतृष्णाज्वरान्वितः।**
भिन्नविट्कोऽतिपीताभः पित्तपाण्ड्वामयी नरः॥

३–श्लैष्मिकमाह—**कफप्रसेकश्वयथुतन्द्राऽऽलस्यातिगौरवैः।**
पाण्डुरोगी कफाच्छुक्लैस्त्वङ्मूत्रनयनाननैः॥

४–सान्निपातिकमाह—**ज्वरारोचकहृल्लासच्छर्दितृष्णाक्लमान्वितः।**
पाण्डुरोगी त्रिभिर्दोषैस्त्याज्यः क्षीणो हतेन्द्रियः॥

५–मृज्जस्य सम्प्राप्तिः—**मृत्तिकाऽदनशीलस्य कुप्यत्यन्यतमो मलः।**
कषाया मारुतं पित्तमूषरा मधुरा कफम्॥

कोपयेन्मृद्रसादींश्च रौक्ष्याद् भुक्तञ्च रूक्षयेत्। पूरयत्यविपक्वैव स्रोतांसि निरु
इन्द्रियाणां बलं हत्वा तेजो वीर्य्यौजसी तथा। पाण्डुरोगं करोत्याशु बलवर्णाग्नि

लक्षणम्—**मृद्भक्षणाद् भवेत् पाण्डुस्तन्द्राऽऽलस्यनिपीडितः।**
स कासश्वासशूलार्त्तो दाहारुचिसमन्वितः॥
शूनाक्षिकूटगण्डभ्रूः शूनपान्नाभिमेहनः।
क्रिमिकोष्ठोऽतिसार्य्येत मलं सासृक्कफान्वितम्॥

।कामलाकुम्भकामलयोर्निदानपूर्विका सम्प्राप्तिर्लक्षणञ्च—

पाण्डुरोगी तु योऽत्यर्थं पित्तलानि निषेवते।
तस्य पित्तमसृङ्मांसं दग्ध्वा रोगाय कल्पते॥

हारिद्रनेत्रः स भृशं हारिद्रत्वङ्नखाननः। पीतरक्तशकृन्मूत्रो भेकवर्णो हतेन्द्रि
दाहाविपाकदौर्बल्यसदनारुचिकर्षितः। कामला बहुपित्तैषा कोष्ठशाखाऽऽश्रया
कालान्तरात् खरीभूता कृच्छ्रा स्यात् कुम्भकामला॥

त्रिदोषज तथा ५ मिट्टी खाने से उत्पन्न। **कामला** एक ही होता है। **कुम्भ कामला** तथा **हलीमक** भी एक एक ही होता है।

विमर्श—अम्ल, कटु आदि अपथ्य से कुपित दोष रक्त को दूषित करके शरीर के रंग को पीला सा कर देते हैं। उसे **पाण्डुरोग** कहते हैं। इसी पाण्डुरोग में ही अधिक पित्तकारक अपथ्य-सेवन करने से पित्त अतिवृद्ध होकर रक्त एवम् मांस को विदग्ध करके **कामला** रोग उपस्थित करता है। यही कामला अधिक दिन होने से खर होकर **कुम्भकामला** हो जाती है। तथा यदि पाण्डुरोगी हरा, श्याव एवम् पीला सा रङ्ग का या पक्वपत्र का सा रङ्ग का हो जाता है तो उसे **हलीमक रोग** कहते हैं। इस तरह ये सब पाण्डुरोग के ही अवस्थाभेद हैं, पर चिकित्साभेदार्थ इनका भी अलग पाठ किया जाता है॥ १९॥

रक्तपित्तभेदाः—**रक्तपित्तं त्रिधा प्रोक्तमूर्ध्वगं कफसंभवम्।**
अधोगं मारुतं ज्ञेयं तद्द्वयेन द्विमार्गगम्॥ २०॥

(१)**रक्तपित्त** तीन तरह का होता है—

हलीमकस्य लक्षणम्—

ा तु पाण्डोर्वर्णः स्याद्धरितश्यावपीतकः। बलोत्साहक्षयस्तन्द्रा मन्दाग्नित्वं मृदुज्वरः
ीष्वहर्षोऽङ्गमर्दश्च श्वासतृष्णाऽरुचिभ्रमाः।हलीमकं तदा तस्य विद्यादनिलपित्ततः॥

विशेषकारणमाह—**रोगाः पाण्ड्वादयो ज्ञेया यकृद्दोषसमुद्भवाः।**
यकृतः स्वस्थतां प्राप्ते शाम्यन्ति व्याधयश्च ते॥

(१) रक्तपित्तस्य नि- **घर्मव्यायामशोकाध्वव्यवायैरतिसेवितैः।**
ानपूर्विका सम्प्राप्तिः—**तीक्ष्णोष्णक्षारलवणैरम्लैः कटुभिरेव च।**
पित्तं विदग्धं स्वगुणैर्विदहत्याशु शोणितम्।
ततः प्रवर्त्तते रक्तमूर्ध्वञ्चाधो द्विधाऽपि वा॥
आमाशयाद् व्रजेदूर्ध्वमधः पक्वाशयाद् व्रजेत्।
विदग्धयोर्द्वयोश्चापि द्विधा मार्गं प्रवर्त्तते॥
ूर्ध्वं नासाऽक्षिकर्णास्यैर्मेढ्योनिगुदैरधः। कुपितं रोमकूपैश्च समस्तैस्तत् प्रवर्त्तते।

स्य विशिष्टं रूपम्—**सान्द्रं सपाण्डु सस्नेहं पिच्छिलञ्च कफान्वितम्।**
श्यावारुणं सफेनञ्च तनु रूक्षञ्च वातिकम्॥
रक्तपित्तं कषायाभं कृष्णं गोमूत्रसन्निभम्॥
मेचकागारधूमाभमञ्जनाभञ्च पैत्तिकम्।
संसृष्टलिङ्गं संसर्गात् त्रिलिङ्गं सान्निपातिकम्।

र्गभेदेन मार्गभेदः—**ऊर्ध्वगं कफसंसृष्टमधोगं पवनानुगम्।**
द्विमार्गं कफवाताभ्यामुभाभ्यामनुवर्त्तते॥

क्तपित्तस्योपद्रवाः—**दौर्बल्यश्वासकासज्वरवमथुमदाः पाण्डुतादाहमूर्च्छा-**
भुक्ते घोरो विदाहस्त्वधृतिरपि सदा हृद्यतुल्या च पीडा॥

१—**ऊर्ध्वमार्ग** याने नाक, आंख, मुख एवम् कर्ण प्रभृति से निकलने वाला र यह **कफदोष** से संसृष्ट रहता है।

२—**अधोमार्ग** याने लिङ्ग, योनि एवम् गुदा मार्ग से निकलने वाला **रक्तपि** **वातदोष** से संसृष्ट रहता है।

३—दोनों दोष **कफ** तथा **वात** से संसृष्ट एवम् ऊर्ध्व तथा **अधोमार्ग** से वाला **रक्तपित्त**।

विमर्श—चरक में **रक्तपित्त** की एक **रोमान्तिका** दशा भी कही गयी है कि शरीर के प्रत्येक रोमकूप से निकलता है। यह सिर्फ अवस्थान्तर ही है प्रकार-भेद नहीं कुपित होने से उपर्युक्त कोई भी रक्तपित्त इस दशा में उपस्थित हो सकता है। र **पित्त** ही प्रधान होता है **कफ** एवम् **वात** अनुबन्ध होते हैं ॥ २० ॥

कासभेदाः—**कासाः पञ्च समुद्दिष्टास्ते त्रयः स्युस्त्रिभिर्मलैः।**
उरःक्षताच्चतुर्थः स्यात्क्षयाद्धातोश्च पञ्चमः ॥ २१ ॥

कास(१) रोग पांच तरह का होता है उसमें तीन तो १–वात से, २–पित्त से,

---

तृष्णा कोष्ठस्य भेदः शिरसि च तपनं पूतिनिष्ठीवनञ्च
भक्तद्वेषाविपाकौ विकृतिरपि भवेद्रक्तपित्तोपसर्गात् ॥

(१) कासस्य निदान-**धूमोपघाताद्रजसस्तथैव व्यायामरूक्षान्ननिषेषणाच्च।**
सम्प्राप्तिपूर्वकं सामान्य **विमार्गगत्वाच्च हि भोजनस्य वेगावरोधात् क्षवथोस्तथैव**
लक्षणम्— **प्राणो ह्युदानानुगतः प्रदुष्टः सम्भिन्नकांस्यस्वनतुल्यघोषः**
निरेति वक्त्रात् सहसा स दोषो मनीषिभिः कास इति
वातिककासस्य लक्षणम्–**हृच्छङ्खपार्श्वोदरमूर्द्धशूली क्षामाननः क्षीणबलस्वरौजाः।**
प्रसक्तवेगस्तु समीरणेन भिन्नस्वरः कासति शुष्कमेव ॥
पैत्तिककासस्य लक्षणम्–**उरोविदाहज्वरवक्त्रशोषैरभ्यर्दितस्तिक्तमुखस्तृषाऽऽर्त्तः।**
पित्तेन पीतानि वमेत कटूनि कासेत् स पाण्डुः परिदह्य
श्लैष्मिककासस्य लक्ष-**प्रलिप्यमानेन मुखेन सीदन् शिरोरुजार्त्तः कफपूर्णदेहः।**
णम्— **अभक्तरुग्गौरवकण्डुयुक्तः कासेद् भृशं सान्द्रकफः कफेन**
क्षतजस्य कासस्य निदा-**अतिव्यवायभाराध्वयुद्धाश्वगजनिग्रहैः।**
नपूर्विका सम्प्राप्तिर्ल-**रूक्षस्योरःक्षतं वायुर्गृहीत्वा कासमावहेत् ॥**
क्षणञ्च— **स पूर्वं कासते शुष्कं ततः ष्ठीवेत् सशोणितम्।**
कण्ठेन रुजताऽत्यर्थं विभग्नेनेव चोरसा ॥
सूचीभिरिव तीक्ष्णाभिस्तुद्यमानेन शूलिना॥ दुःखस्पर्शेन शूलेन भेदपीडाऽभि
पर्वभेदज्वरश्वासतृष्णावैस्वर्यपीडितः। पारावत इवाकूजन् कासवेगात् क्षतो

ौर ४–उरःक्षत याने फेफड़े में घाव होने से तथा पांचवा ५ धातुक्षय से होता है।

विमर्श—जब मल **फुफ्फुस** में जमा होते हैं तो उनसे दूषित होकर प्राणवायु उदानवायु ा अनुगत होकर फूटी काँसी की सी आवाज के साथ गले से फेफड़े में स्थित दोष को लेकर ख–मार्ग से निकलता है यही **खांसी** चाहे किसी कारण से हो बिना फुफ्फुस दूषित हुए हीं होती तथा उसमें **श्लेष्मा** का अनुबन्ध रहता ही है ॥ २१ ॥

क्षयभेदाः—**क्षयाः पञ्चैव विज्ञेयास्त्रिभिर्दोषैस्त्रयश्च ते ।**
चतुर्थः सन्निपातेन पञ्चमः स्यादुरःक्षतात् ॥ २२ ॥

(१)**क्षय**रोग पाँच तरह का होता है। उसमें तीन दोषों से तीन प्रकार का १–वातजक्षय,

---

यजकासस्य निदान- **विषमासात्म्यभोज्यातिव्यवायाद् वेगनिग्रहात् ।**
पूर्विका सम्प्राप्तिर्ल- **घृणिनां शोचतां नृणां व्यापन्नेऽग्नौ त्रयो मलाः ॥**
क्षणञ्च— **कुपिताः क्षयजं कासं कुर्युर्देहक्षयप्रदम् ।**
दुर्गन्धं हरितं श्यावं प्रततं कफमस्यति ॥
थानादुत्कसमानश्च हृदयं मन्यते च्युतम् । अकस्मादुष्णशीतार्त्तो बह्वाशी दुर्बलः कृशः ॥
न्नग्धाच्छमुखवर्णत्वक् श्रीमद्दशनलोचनैः । पाणिपादतलैः शुक्लैः सततासूयको घृणी ॥
ज्वरो मिश्राकृतिस्तस्य पार्श्वे रुक् पीनसोऽरुचिः ।
स गात्रशूलज्वरदाहमोहान् प्राणक्षयञ्चोपलभेत कासी ।
शुष्यन् विनिष्ठीवति दुर्बलस्तु प्रक्षीणमांसो रुधिरं सपूयम् ॥
तं सर्वलिङ्गं भृशदुश्चिकित्स्यं चिकित्सितज्ञाः क्षयजं वदन्ति ।
(१) क्षयशोषविवरणम्, तस्य विप्रकृष्टनिदानम्—
वेगरोधात् क्षयाच्चैव साहसाद्विषमाशनात् ।
त्रिदोषो जायते यक्ष्मा गदो हेतुचतुष्टयात् ॥
यक्ष्म–राजयक्ष्म–क्षय–**वैद्यो व्याधिमता यस्माद् व्याधिर्यत्नेन यक्ष्यते ।**
षशब्दानां निरुक्तयः–**स यक्ष्मा प्रोच्यते लोके शब्दशास्त्रविशारदैः ॥**
ज्ञश्चन्द्रमसो यस्मादभूदेष किलामयः । तस्मात्तं राजयक्ष्मेति प्रवदन्ति मनीषिणः ॥
क्रियाक्षयकरत्वात्तु क्षय इत्युच्यते बुधैः । संशोषणाद्रसादीनां शोष इत्यभिधीयते ॥
षसम्प्राप्तिः— **कफप्रधानैर्दोषैस्तु रुद्धेषु रसवर्त्मसु ।**
तिव्यवायिनो वाऽपि क्षीणे रेतस्यनन्तराः । क्षीयन्ते धातवः सर्वे ततः शुष्यति मानवः ॥
रूपयक्ष्मणो लक्ष–**अंसपार्श्वाभितापश्च सन्तापः करपादयोः ।**
णम्— **ज्वरः सर्वाङ्गगश्चैव लक्षणं राजयक्ष्मणः ॥**
अन्यच्च—**त्रिभिर्वा पीडितं लिङ्गैर्ज्वरकासासृगामयैः ।**

२–पित्तज क्षय, ३–श्लेष्मज क्षय और संनिपात से चौथा सन्निपातज क्षय तथा उरःक्षत से होने वाला क्षय होता है ॥ २२ ॥

सुश्रुतोक्तानि षड् लक्षणानि—

भक्तद्वेषो ज्वरः श्वासः कासः शोणितदर्शनम्। स्वरभेदश्च जायेत षड्रूपे राज

अन्यच्च—**कासातिसारपार्श्वार्त्तिस्वरभेदारुचिज्वरैः।**

वातादिदोषभेदेन क्षय–**स्वरभेदोऽनिलाच्छूलं सङ्कोचश्चांसपार्श्वयोः।**

स्यैकादशरूपाणि— **ज्वरो दाहोऽतिसारश्च पित्ताद्रक्तस्य चागमः॥**

शिरसः परिपूर्णत्वमभक्तच्छन्द एव च। कासः कण्ठस्य चोद्ध्वंसो विज्ञेयः क

एक एव मतः शोषः सन्निपातात्मको गदः। उद्रेकात्तत्र लिङ्गानि दोषाणां नि

निदानविशेषे शोषविशे-**व्यवायशोकवार्द्धक्य-व्यायामाध्वप्रशोषितान्।**

षविवरणम्— **व्रणोरःक्षतसंज्ञौ च शोषिणौ लक्षणः शृणु॥**

व्यवायशोषी शुक्रस्य क्षयलिङ्गैरुपद्रुतः। पाण्डुदेहो यथापूर्वं क्षीयन्ते चास्य ध

प्रध्यानशीलः स्रस्ताङ्गः शोकशोष्यपि तादृशः। विना शुक्रक्षयकृतैर्विकारैरुप

जराशोषी कृशो मन्दवीर्यबुद्धिबलेन्द्रियः। कम्पनोऽरुचिमान्भिन्नकांस्यपात्रह

ष्ठीवति श्लेष्मणा हीनं गौरवारुचिपीडितः। सम्प्रस्रुतास्यनासाक्षः शुष्करूक्ष

प्रसुप्तगात्रावयवः शुष्कक्लोमगलाननः। अध्वशोषी च स्रस्ताङ्गः सम्भृष्टपरुष

व्यायामशोषी भूयिष्ठमेभिरेव समन्वितः। लिङ्गैरुरःक्षतकृतैः संयुक्तश्च क्षतं वि

रक्तक्षयाद्वेदनाभिस्तथैवाहारयन्त्रणात्। व्रणिनश्च भवेच्छोषः स चासाध्यतमः

उरःक्षतस्य निदानम्—

धनुषाऽऽयस्यतोऽत्यर्थं भारमुद्वहतो गुरुम्। युद्ध्यमानस्य बलिभिः पततो वि

वृषं हयं वा धावन्तं दम्यं चान्यं निगृह्णतः। शिलाकाष्ठाश्मनिर्घातान्क्षिपतो निघ्न

अधीयानस्य वाऽत्युच्चैर्दूरं वा व्रजतो द्रुतम्॥

महानदीर्वा तरतो हयैर्वा सह धावतः। सहसोत्पततो दूरात्तूर्णं वाऽतिप्रनृत्य

तथाऽन्यैः कर्मभिः क्रूरैर्भृशमभ्याहतस्य च। ताडिते वक्षसि व्याधिर्बलवान् स

स्त्रीषु चातिप्रसक्तस्य रूक्षाल्पप्रमिताशिनः। विक्षते वक्षसि व्याधिर्बलवान् स

उरःक्षतस्य लक्षणम्—

उरो विरुज्यतेऽत्यर्थं भिद्यतेऽथ विभज्यते। प्रपीड्यते ततः पार्श्वे शुष्यत्यङ्गं प्रवे

क्रमाद् वीर्य्यं बलं वर्णो रुचिरग्निश्च हीयते। ज्वरो व्यथा मनोदैन्यं विड्भेदोऽग्निव

दुष्टः श्यावः सुदुर्गन्धः पीतो विग्रथितो बहुः। कासमानस्य चाभीक्ष्णं कफः साख

सक्षतः क्षीयतेऽत्यर्थं तथा शुक्रौजसोः क्षयात्। अव्यक्तं लक्षणं तस्य पूर्वरूपमिति

अन्यद् विशिष्टं लक्षणम्–**उरोरुक् शोणितच्छर्दिः कासो वैशेषिकः क्षते।**

क्षीणे सरक्तमूत्रत्वं पार्श्वपृष्ठकटिग्रहः॥

शोषभेदाः—**शोषाः स्युः षट्प्रकारेण स्त्रीप्रसङ्गाच्छुचो व्रणात्।**
अध्वश्रमाच्च व्यायामाद् वार्धक्यादपि जायते ॥ २३ ॥

शोष रोग छः प्रकार का होता है। १–स्त्रीसङ्ग अधिक करने से, २–अधिक शोक करनेसे, व्रण से, ४ अधिक रास्ता चलने से, ५ अधिक परिश्रम करने से तथा ६–बुढ़ापा से।

विमर्श—शोष और क्षय एवम् राजयक्ष्मा एक ही रोग है, सिर्फ अवस्थाभेद मात्र है। ोजन आदि के अभाव में यदि रसादि धातुओं का क्षय होता है तो शरीर सूखता है। इसे **ोष** या अनुलोम क्षय कहते हैं।

अतिरिक्त मैथुन आदि से अधिक शुक्रक्षय होने से पहले बल का अधिक क्षय होकर र अपरापर धातुओं का भी क्षय होता है। इसे **प्रतिलोमक्षय** या क्षय कहते हैं।

ये सब राजयक्ष्मा ही हैं। कई आचार्य धातुभेद से १८ प्रकार का क्षय मानते हैं, पर यहां ापभेद से कहने के कारण उससे कोई विरोध नहीं आता। यह एक महाभयंकर एवम् असाध्य ग है। इसकी चिकित्सा कितना भी बड़ा चिकित्सक हो प्रतिज्ञा करके कर नहीं सकता। ह **प्रथमावस्था** में यदि बल एवम् मांस का क्षय न हुआ हो तो साध्य हो सकता है। बुढ़ापा स्वभावतः ही शरीर की धातुएँ क्षीण होती हैं। इससे क्षय में यह भी गिना गया है ॥ २३ ॥

श्वासभेदाः—**श्वासाश्च पञ्च विज्ञेयाः क्षुद्रः स्यात्तमकस्तथा।**
ऊर्ध्वश्वासो महाश्वासश्छिन्नश्वासश्च पञ्चमः ॥ २४ ॥

(१)**श्वास** रोग पांच तरह का होता है १–क्षुद्रश्वास, २–तमक श्वास ३–ऊर्द्ध्वश्वास, –महाश्वास तथा ५–छिन्नश्वास।

विमर्श—यह **फुप्फुस** और **श्वासनली** का रोग है। स्वाभाविक श्वास–प्रश्वास में व्य-तिक्रम घटना ही श्वास रोग है ॥ २४ ॥

निदानविशेषे लक्षणवि-शेषः— **व्रणरोधात् क्षयाच्चैव कोष्ठात्प्रतिमलात्तथा।**
क्षतोरस्कस्यान्नपाके निःश्वासो वाति पूतिकः ॥

क्षतस्य साध्ययाप्या-साध्यलक्षणानि— **अल्पलिङ्गस्य दीप्ताग्नेः साध्यो बलवतो नवः।**
परिसंवत्सरो याप्यः सर्वलिङ्गन्तु बर्जयेत् ॥

यक्ष्मणोऽसाध्यता—**सर्वैरर्द्धैस्त्रिभिर्वाऽपि लिङ्गैर्मांसबलक्षये।**
युक्तो बर्ज्यश्चिकित्स्यस्तु सर्वरूपोऽप्यतोऽन्यथा ॥

(१) श्वाससम्प्राप्तिः–**यदा स्रोतांसि संरुद्ध्य मारुतः कफपूर्वकः।**
विष्वग् व्रजति संरुद्धस्तदा श्वासान्करोति सः ॥
श्लेष्मोपरुद्धगमनः पवनोऽतिदुष्टः सन्दूषयन्ननु जलान्नवहाश्च नाडीः।
आमाशयोद्भवमिदं विदधात्युरःस्थं, श्वासे च वक्रगमनो हि शरीरभाजाम् ॥

श्वासविप्रकृष्टनिदानम्—
विदाहिगुरुविष्टम्भिरूक्षाभिष्यन्दिभोजनैः। शीतपानाशनस्नानरजोधूमातपानिलैः।

हिक्काभेदाः—कथिताः पञ्च हिक्कास्तु तास्तु क्षुद्राऽन्नजा तथा।
गम्भीरा यमला चैव महती पञ्चमी तथा॥ २९॥

हिक्का या हिचकी भी पांच तरह की होती है। १–क्षुद्रा याने जो मन्दवेग

व्यायामकर्मभाराध्ववेगाघातापतर्पणैः। हिक्का श्वासश्च कासश्च नृणां समुप

१–महाश्वासस्य लक्षणम्—

उद्धूयमानवातो यः शब्दवद्दुःखितो नरः। उच्चैः श्वसिति संरुद्धो मत्तर्षभ इ
प्रणष्टज्ञानविज्ञानस्तथा विभ्रान्तलोचनः। विष्टब्धाक्ष्याननो बद्धमूत्रवर्चा वि
दीनः प्रश्वसितं चास्य दूराद्विज्ञायते भृशम्। महाश्वासोपसृष्टस्तु क्षिप्रमेव वि

२–ऊर्ध्वश्वासस्य लक्षणम्—

ऊर्ध्वं श्वसिति यो दीर्घं न च प्रत्याहरत्यधः। श्लेष्मावृतमुखस्रोताः क्रुद्धगन्ध
ऊर्ध्वदृष्टिर्विपश्यंश्च विभ्रान्ताक्ष इतस्ततः। प्रमुह्यन्वेदनाऽऽर्त्तश्च शुष्कास्योऽर

ऊर्ध्वश्वासस्यासाध्यता— ऊर्ध्वश्वासे प्रकुपिते ह्यधः श्वासो निरुद्ध्यते।
मुह्यतस्ताम्यतश्चोर्ध्वश्वासस्तस्यैव हन्त्यसून्॥

३–छिन्नश्वासस्य लक्षणम्—यस्तु श्वसिति विच्छिन्नं सर्वप्राणेन पीडितः।
न वा श्वसिति दुःखार्त्तो मर्मच्छेदरुगर्दितः॥
आनाहस्वेदमूर्च्छाऽऽर्त्तो दह्यमानेन बस्तिना।
विप्लुताक्षः परिक्षीणः श्वसन्रक्तैकलोचनः॥
विचेताः परिशुष्कास्यो विवर्णः प्रलपन्नरः।
छिन्नश्वासेन विच्छिन्नः स शीघ्रं विजहात्यसून्॥

४–तमकश्वासस्य लक्षणम्—

प्रतिलोमं यदा वायुः स्रोतांसि प्रतिपद्यते। ग्रीवां शिरश्च संगृह्य श्लेष्माणं समु
करोति पीनसं तेन रुद्धो घुर्घुरकं तथा। अतीव तीव्रवेगेन श्वासं प्राणप्रपीडकम्
प्रताम्यति स वेगेन त्रस्यते सन्निरुध्यते। प्रमोहं कासमानश्च स गच्छति मुहु
श्लेष्मणा मुच्यमानेन भृशं भवति दुःखितः। तस्यैव च विमोक्षान्ते मुहूर्त्तं लभते
तथाऽस्योद्ध्वंसते कण्ठः कृच्छ्राच्छक्नोति भाषितुम्॥
न चापि निद्रां लभते शयानः श्वासपीडितः॥
पार्श्वे तस्यावगृह्णाति शयानस्य समीरणः।
आसीनो लभते सौख्यमुष्णं चवाभिनन्दति॥
उच्छ्रिताक्षो ललाटेन स्विद्यता भृशमार्त्तिमान्।
विशुष्कास्यो मुहुः श्वासो मुहुश्चैवावधम्यते॥
मेघाम्बुशीतप्राग्वातैः श्लेष्मलश्च विवर्द्धते।
स याप्यस्तमकश्वासः साध्यो वा स्यान्नवोत्थितः।

ी उठती हो। वह सुखसाध्य और कम कष्ट देने वाली होती है। २–अन्नजा (१)हिक्का
। अधिक भोजन पान या बेकायदे भोजन–पानसे पीड़ित होकर वायु जो हिक्का करती है।
भोजनजनित पीड़ा कम होते ही बन्द हो जाती है। यह हिक्का दीर्घकालानुबन्धिनी नहीं
। ३–**गम्भीरा** नाभि स्थान से उठती है एवम् ऊंची आवाज के साथ आती और कठिन
ी है। ४–**यमला हिक्का** देरमें एक साथ दो दो दफा उठती है। ५–**महती हिक्का**

प्रतमकश्वासस्य लक्षणम्—

रमूर्च्छापरीतस्य विद्यात्प्रतमकं तु तम्। उदावर्त्तरजोजीर्णक्लिन्नकायनिरोधजः॥
सा वर्द्धतेऽत्यर्थं शीतश्चाशु प्रशाम्यति। मज्जतस्तमसीवास्य विद्यात्प्रतमकं तु तम्॥

क्षुद्रश्वासस्य लक्षणम्—

ायासोद्भवः कोष्ठे क्षुद्रो वातमुदीरयेत्। क्षुद्रश्वासो न सोऽत्यर्थं दुःखेनाङ्गप्रबाधकः॥
स्ति न स गात्राणि न च दुःखो यथेतरे। न च भोजनपानानां निरुणद्ध्युचितां गतिम्॥
नेन्द्रियाणां व्यथां चापि कांचिदापादयेद्रुजम्।
स साध्य उक्तो बलिनः सर्वे चाव्यक्तलक्षणाः॥

(१) हिक्काया विप्रकृष्टनिदानम्—

दाहिगुरुविष्टम्भिरूक्षाभिष्यन्दिभोजनैः। शीतपानाशनस्नानरजोधूमातपानिलैः॥
यामकर्मभाराध्ववेगघातापतर्पणैः। हिक्का श्वासश्च कासश्च नृणां समुपजायते॥

क्कायाः सम्प्राप्तिः **वायुः कफेनानुगतः पञ्च हिक्काः करोति हि।**
रूपं निरुक्तिश्च— **अन्नजां यमलां क्षुद्रां गम्भीरां महतीं तथा॥**
मुहुर्मुहुर्वायुरुदेति सस्वनो यकृत्प्लिहान्त्राणि मुखादिवाक्षिपन्।
स घोषवानाशु हिनस्त्यसून्यतस्ततस्तु हिक्केत्यभिधीयते बुधैः॥

अन्नजाया लक्षणम्–**पानान्नैरतिसम्भुक्तैः सहसा पीडितोऽनिलः।**
हिक्कयत्यूर्ध्वगो भूत्वा तां विद्यादन्नजां भिषक॥

यमलाया लक्षणम्–**चिरेण यमलैर्वेगैर्या हिक्का सम्प्रवर्त्तते।**
कम्पयन्ती शिरोग्रीवां यमलां तां विनिर्दिशेत्॥

क्षुद्राया लक्षणम्—**प्रकृष्टकालैर्या वेगैर्मन्दैः समभिवर्त्तते।**
क्षुद्रिका नाम सा हिक्का जत्रुमूलात्प्रधावति॥

म्भीराया लक्षणम्–**नाभिप्रवृत्ता या हिक्का घोरा गम्भीरनादिनी।**
अनेकोपद्रववती गम्भीरा नाम सा स्मृता॥

महत्या लक्षणम्—**मर्माण्युत्पीडयन्तीव सततं या प्रवर्त्तते।**
महाहिक्केति सा ज्ञेया सर्वगात्रप्रकम्पिनी॥

असाध्यलक्षणम्—**आयम्यतो हिक्कतो यस्य देहो दृष्टिश्चोर्ध्वं ताम्यते यस्य नित्यम्।**
क्षीणोऽन्नद्विट् क्षौति यश्चातिमात्रं तौ द्वौ चान्त्यौ वर्जयेद्धिक्कमानौ॥

हमेशा चलती रहती है तथा मर्मों को पीड़ा देती हुई सब शरीर को कंपा कर उठती है। आमाशयस्थ वायु के विगड़ने से उत्पन्न होती है॥ २५॥

अग्निविकारभेदाः—**चत्वारोऽग्नेर्विकाराः स्युर्विषमो वातसम्भवः।**
तीक्ष्णः पित्तात्कफान्मन्दो भस्मको वातपित्तयोः॥२६॥

अग्नि(१) याने पाचकाग्नि के चार तरह के विकार होते हैं। १—**वात से** दूषित **विषमाग्नि,** २—**पित्त से** दूषित होने से **तीक्ष्णाग्नि,** ३—**कफ से** दूषित होने से ४—एवम् **वातपित्त से** दूषित होने से **भस्मक** नामक अग्नि का विकार होता है।

विमर्श—अन्यत्र समाग्नि के साथ पांच प्रकार का अग्नि कहा गया है। परन्तु विकार नहीं है, वह तो स्वाभाविक है, अतः उसका ग्रहण यहां विकार-गणना में किया १—वायु चञ्चल होने के कारण से अग्नि को कभी मन्द तथा कभी तीक्ष्ण कर देता है कभी तो हल्का भोजन भी नहीं पचता एवम् कभी भारी भोजन भी आसानी से पच २–**पित्त** स्वयम् तीक्ष्ण और अग्निस्वरूपी होने के कारण **पाचक-संस्थान** को अधिक

---

(१) सन्निकृष्टनिदानपूर्वकमग्निविवरणं- **मन्दस्तीक्ष्णोऽथ विषमः समश्चेति चतुर्विधः।**
कफपित्तानिलाधिक्यात्तत्साम्याज्जाठरोऽनलः॥
निदानमतेन— **शार्ङ्गधरमतेन चतुर्थो भस्मको वातपित्तप्रकोपात्।**
समाग्निस्तु स्वाभाविकाग्निः॥

१–मन्दाग्निलक्षणम्—**स्वल्पाऽपि नैव मन्दाग्नेर्मात्रा भुक्ता विपच्यते।**
छर्दिः सादः प्रसेकः स्याच्छिरोजठरगौरवम्॥

२–तीक्ष्णाग्निलक्षणम्–**मात्राऽतिमात्राऽप्यशिता तीक्ष्णाग्नेः पच्यते सुखम्।**
अत एव हि केनापि मतस्तीक्ष्णाग्निरुत्तमः॥

३–विषमाग्निलक्षणम्–**अशिता खलु मात्राऽपि विषमाग्नेस्तु देहिनः।**
कदा चित्पच्यते सम्यक्कदा चिन्न विपच्यते।
तस्याध्मानमुदावर्त्तं शूलं जठरगौरवम्। प्रवाहणमतीसारस्तथा स्यादन्त्र

४–समाग्निलक्षणम्—**समा समाग्नेरशिता मात्रा सम्यग्विपच्यते।**
सोऽग्निरुत्तम एतेषु न तीक्ष्णस्तूत्तमो मतः॥
तीक्ष्णः पित्तसमुत्थानान्विषमो वातहेतुकान्।
तथा करोति मन्दाग्निर्विकारान् कफसम्भवान्॥

४–भस्मकस्य निदान–**कट्वादिरूक्षान्नभुजां नराणां क्षीणे कफे मारुतपित्तवृद्धौ।**
सन्प्राप्तिपूर्वकं- **अतिप्रवृद्धः पवनान्वितोऽग्निर्भुक्तं क्षणाद् भस्मकरोति**
लक्षणम्— **तस्मादसौ भस्मकसंज्ञकोऽभूदुपेक्षितोऽयं पचते च धातून्।**

भस्मकोपद्रवाः—**तृट्स्वेददाहमूर्च्छाऽऽदीन् कृत्वैषोऽत्यग्निसम्भवान्।**
पक्त्वाऽन्नमाशु धात्वादीन् स क्षिप्रं नाशयेद् ध्रुवम्॥

करता है, जिससे गुरु भोजन भी हमेशा सुखपूर्वक पच जाया करता है एवम् भूख बनी ही रहती है। ३—**कफ** मन्द एवम् जड़ तथा स्यन्दात्मक होने के कारण **पाचक-संस्थान** को भी मन्दक्रिय बना देता है, अतः हलका भोजन खाने पर भी हजम नहीं होता। ४—यदि **वात** तथा **पित्त** दोनों ही **पाचक-संस्थान** को विकृत करें तो **पित्त** का तीक्ष्ण एवम् **वात** का सन्धुक्षण स्वभाव होने से तथा दोनों शोषक होने से अग्नि को इतना तेज़ कर देते हैं कि लकड़ी और पत्थर भी यदि खा लिये जायँ तो हज़म हो जायेंगे। इसे **भस्मक** रोग कहते हैं। यह शरीर के रस धातु को सुखा डालता है, अतः इस रोग वाले को सर्वदा ही भूख और प्यास बनी रहती है। यदि क्षण भर भी भोजन न मिला तो जान निकलने पर आ जाती है॥ २६'॥

अरोचकभेदाः—**पञ्चैवारोचका ज्ञेया वातपित्तकफैस्त्रिधा ।**
सन्निपातान्मनस्तापात् ……॥ २७ ॥

(१)**अरोचक** या अरुचि पांच तरह का होता है। १—वात से, २—पित्त से, ३—कफ से, ४—सन्निपात से और ५—मनस्ताप से।

विमर्श—भूख होने पर भी खाने की इच्छा का न होना ही **अरोचक** है। **वात अरोचक** में मुख खट्टा, तीता तथा पूतिगन्ध-युक्त होता है। **पित्त अरोचक** में मुख मीठा तथा नमकीन स्वादवाला और **कफ** से लिपा हुआ सा होता है। **त्रिदोषज अरोचक** में मुख का स्वाद कभी एकसा नहीं रहता, कभी कसैला, कभी खट्टा, कभी मीठा, कभी निमकीन रहता है। जो **अरोचक मनस्ताप** यानी क्रोध, घृणा, शोक, भय, लोभ प्रभृति मानसिक दोष से उत्पन्न

---

(१) अरुचिरोगस्य निदा-**वातादिभिः शोकभयातिलोभक्रोधैर्मनोघ्नाशनरूपगन्धैः ।**
नपूर्वकं लक्षणम्— **अरोचकाः स्युः परिहृष्टदन्तकषायवक्त्रस्य मतोऽनिलेन ।**
कट्वम्लमुष्णं विरसञ्च पूति पित्तेन विद्याल्लवणं च वक्त्रम् ।
माधुर्यपैच्छिल्यगुरुत्वशैत्यविबुद्धसम्बद्धयुतं कफेन ॥

४-५-मनोऽभिघात (शोकभयलोभादि) ज-सन्निपातजयोर्लक्षणे—

अरोचके शोकभयातिलोभक्रोधाद्यहृद्याशुचिगन्धजे स्यात् ।
स्वाभाविकं चास्यमथारुचिश्च त्रिदोषजे नैकरसं भवेत्तु ॥
हृच्छूलपीडनयुतं पवनेन पित्तात्तृड्दाहचोषबहुलं सकफप्रसेकम् ॥
श्लेष्मात्मकं बहुरुजं बहुभिश्च विद्याद्वैगुण्यमोहजडताभिरथापरं च ॥

वृद्धभोजमतेन—**प्रक्षिप्तं च मुखे चान्नं यत्र नास्वदते नरः ।**
अरोचकः स विज्ञेयो भक्तद्वेषमथो शृणु ॥
चिन्तयित्वा तु मनसा दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा तु भोजनम् ।
द्वेषमायाति यो जन्तुर्भक्तद्वेषः स उच्यते ॥
कुपितस्य भयार्त्तस्य तथा भक्तविरोधिनः ।
यत्र नान्ने भवेच्छ्रद्धा स भक्तच्छन्द उच्यते ॥

होता है, उसमें मुख का स्वाद मामूली सा रहता है, पर खाने की इच्छा नहीं होती। अ कथित **भक्तद्वेष** और **भक्तच्छन्द** प्रभृति अरोचक के भेद भी इसी के अन्दर आ जाते हैं, उनकी पृथक् गणना यहाँ नहीं की गई है ॥ २७ ॥

छर्दिभेदाः—…………छर्दयः सप्तधा मताः ।

त्रिभिर्दोषैः पृथक्तिस्त्रः क्रमिभिः सन्निपाततः ।

घृणया च तथा स्त्रीणां गर्भाधानाच्च जायते ॥ २८ ॥

(१)**छर्दि** या वमन रोग सात प्रकार का होता है। १—वात से २—पित्त से, ३—कफ से, ४—सन्निपात से, ५—क्रिमिदोष से, ६—घृणा से तथा ७—स्त्रियों को गर्भाधान से।

---

(१) छर्देर्विप्रकृष्टस-अतिद्रवैरतिस्निग्धैरहृद्यैर्लवणैरपि ।

न्निकृष्टनिदानपूर्विका- अकाले चातिमात्रैश्च तथाऽसात्म्यैश्च भोजनैः ॥

सम्प्राप्तिः— आमाद् भयात्तथोद्वेगादजीर्णात् क्रिमिदोषतः ।

नार्याश्चापन्नसत्त्वायास्तथाऽतिद्रुतमश्नतः ॥

बीभत्सैर्हेतुभिश्चान्यैर्भुक्तमुत्क्लिश्यते बलात् ।

दुष्टैर्दोषैः पृथक् सर्वैर्बीभत्सालोकनादिभिः ॥

छर्दयः पञ्च विज्ञेयास्तासां लक्षणमुच्यते ॥

सामान्यलक्षणम्— छादयन्नाननं वेगैरर्दयन्नङ्गभञ्जनैः ।

निरुच्यते च्छर्दिरिति दोषो वक्त्रं प्रधावितः ॥

१–वातिकलक्षणम्—हृत्पार्श्वपीडामुखशोषशीर्षनाभ्यर्त्तिकासस्वरभेदतोदः ।

उद्गारशब्दं प्रबलं सफेनं विच्छिन्नकृष्णं तनुकं कषायम् ॥

कृच्छ्रेण चाल्पं महता च वेगेनार्त्तोऽनिलाच्छर्दयतीह दुःखम् ॥

२–पैत्तिकलक्षणम्—मूर्च्छापिपासामुखशोषशीर्षताल्वक्षिसन्तापतमोभ्रमार्त्तः ।

पीतं भृशोष्णं हरितं सतिक्तं धूमं च पित्तेन वमेत् सदाहम् ॥

३–कफजलक्षणम्—तन्द्राऽऽस्यमाधुर्यकफप्रसेकसन्तोषनिद्राऽरुचिगौरवार्त्तः ।

स्निग्धं घनं स्वादु कफाद् विशुद्धं स रोमहर्षोऽल्परुजं वमेत् ॥

४–त्रिदोषजलक्षणम्—शूलाविपाकारुचिदाहतृष्णाश्वासप्रमोहप्रबलाप्रसक्तम् ।

छर्दिस्त्रिदोषाल्लवणाम्लनीलसान्द्रोष्णरक्तं वमतां नृणां स्यात् ॥

५–६–७–मनोऽभिघात–क्रिमि–दौहृदज–च्छर्दिविशेषलक्षणम्—

असात्म्यजा च क्रिमिजाऽऽमजा च बीभत्सजा दौहृदजा च या हि ।

सा पञ्चमी तां च विभावयेच्च दोषोच्छ्रयेणैव यथोक्तमादौ ॥

शूलहृल्लासबहुला क्रिमिजा च विशेषतः । क्रिमिहृद्रोगतुल्येन लक्षणेन च लक्षिता ॥

तस्योपद्रवाः—कासः श्वासो ज्वरस्तृष्णा हिक्का वैचित्यमेव च ।

हृद्रोगस्तमकश्चैव ज्ञेयाश्छर्देरुपद्रवाः ॥

विमर्श—वातज वमन में वमन कसैला सा खूब जोर से और थोड़ा थोड़ा होता है। **पित्तज** में खट्टा सा, पीला सा और तीक्ष्ण द्रव्य वमन होता है एवम् मुख से धूआँ सा निकलता मालूम होता है। **कफज वमन** में मीठा सा होता है तथा कफ के अन्य लक्षण होते हैं। **त्रिदोषज वमन** में नमकीन, खट्टा, नीला, लाल, सान्द्र तथा उष्ण वमन होता है। और उपद्रव-युक्त होता है। कभी कभी मल-मूत्र जैसा भी दुर्गन्धित वमन होता है। यह असाध्य लक्षण है। क्रिमि के दोष से उत्पन्न वमन रोग में जी का मिचलाना, आमाशय में तोद तथा शूल और कृमिज-हृद्रोग के लक्षण होते हैं। आमाशय में कृमि होने से ही यह होता हैं। घृणित रूप-रस-गन्ध आदि के कारण भी वमन हो जाया करता है। कभी कभी तो उनके स्मरण मात्र से ही वमन हो जाता है। कई लोग ऐसे भी होते देखे गये हैं कि किसी को कय करते देखा और उनको कय आने लगी। ये सबही असात्म्य-रूपरसादि के कारण होते हैं तथा मन से भी सम्बन्ध रखते हैं।

गर्भावस्था में स्त्रियों को वमन आया करते हैं। इसमें कोई विकृत स्वाद या अन्य लक्षण नहीं होते। सिर्फ वमन ही आया करते हैं। जो भुक्त द्रव्यों के रसगन्धादि से युक्त होते हैं। यह प्रायः प्रारम्भ के कुछ मासों में होता है, पर किसी किसी को प्रसवपर्य्यन्त भी वमन होते रहते हैं। यद्यपि कृमिज-प्रभृति में भी दोषों का संबन्ध रहता ही है, फिर भी चिकित्सा में भेद होने के कारण से इनको अलग गिना गया है ॥ २८ ॥

स्वरभेदभेदाः—**स्वरभेदाः षडेव स्युर्वातपित्तकफैस्त्रयः ।**

मेदसा सन्निपातेन क्षयात्षष्ठः प्रकीर्त्तितः ॥ २९ ॥

(१)**स्वरभेद** रोग छः प्रकार का होता है। १—वात से, २—पित्त से ३—कफ से, ४-सन्निपात से, ५-मेद से ६-और क्षय से।

---

(१) स्वरभेदस्य निदानसम्प्राप्तिपूर्वकं लक्षणम्—

अत्युच्चभाषणविषाध्ययनाभिघातसन्दूषणैः प्रकुपिताः पवनादयस्तु ।
स्रोतःसु ते स्वरवहेषु गताः प्रतिष्ठां हन्युः स्वरं भवति चापि हि षड्विधः सः ॥

१-वातजलक्षणम्—**वातेन कृष्णनयनाननमूत्रवर्चा भिन्नं स्वरं वदति गर्द्दभवत्खरं च ।**

२-पित्तजलक्षणम्—**पित्तेन पीतनयनाननमूत्रवर्चा ब्रूयाद् गलेन स च दाहसमन्वितेन ।**

३-कफजलक्षणम्—**ब्रूयात् कफेन सततं कफरुद्धकण्ठः—**
स्वल्पं शनैर्वदति चापि दिवा विशेषात् ॥

४-सन्निपातजलक्षणम्—

सर्वात्मके भवति सर्वविकारसम्पत्तं चात्यसाध्यमृषयः स्वरभेदमाहुः ।

५-क्षयजलक्षणम्—

धूम्येत वाक् क्षयकृते क्षयमाप्नुयाच्च वागेष चापि हतवाक् परिवर्जनीयः ॥

६-मेदोजलक्षणम्-**अन्तर्गतस्वरमलक्ष्यपदं चिरेण मेदोऽन्वयाद्वदति दिग्धगलस्तृषाऽऽर्त्तः॥**

विमर्श—स्वर यानी गले का बैठ जाना या बिगड़ जाना ही **स्वरभेद** है। वा स्वरभेद में मनुष्य धीरे २ तथा गधे के जैसा उद्वेजक स्वर में बोलता है। **पित्तज** स्व बोलते वक्त गले में जलन होती है। तथा **कफज** स्वरभेद में बोलते बोलते गले में कफ जाने से मनुष्य रुक जाता है। **सन्निपातज** स्वरभेद में सर्वविध विकार होते हैं। मेद जाने से मनुष्य गले में लिहसा हुआ सा देर में तथा गले के अन्दर ही बोलता है। एवम् से व्याकुल रहता है।

धातुक्षय होने से उत्पन्न स्वरभेद में आदमी बहुत ही धीरे तथा धूएँ से गला हुआ सा बोलता है। गले में स्वरवाहिनी नाडियों के तथा स्वरयंत्र के बिगड़ने से स्व भेद होता है ॥ २९ ॥

तृष्णाभेदाः—**तृष्णा च षड्विधा प्रोक्ता वातात्पित्तात्कफादपि ।**
त्रिदोषैरुपसर्गेण क्षयाद्धातोश्च षष्ठिका ॥ ३० ॥

(१)**तृष्णा** रोग छः प्रकार का होता है। १–वातज, २–पित्तज, ३–कफज, ४–त्रि

असाध्यलक्षणम्—**क्षीणस्य बृद्धस्य कृशस्य चापि चिरोत्थितो यस्य सहोपजातः।**
मेदस्विनः सर्वसमुद्भवश्च स्वरामयो यो न स सिद्धिमेति ॥

(१) **तृष्णा शार्ङ्गमतेन षट् किन्तु माधवमतेन सप्त।शार्ङ्गधरो भुक्तोद्भवां न विकारजां** तस्या निदानपूर्विकास-**भयश्रमाभ्यां बलसंक्षयाद्वाऽप्यूर्ध्वाचितं पित्तविवर्द्धनैश्च।**
म्प्राप्तिः— **पित्तं सवातं कुपितं नराणां तालुप्रपन्नं जनयेत् पिपासाम्।**
स्रोतःस्वपां वाहिषु दूषितेषु दोषैश्च तृट् सम्भवतीह जन्तोः।
तिस्रः स्मृतास्ताः क्षतजा चतुर्थी क्षयात्तथाऽन्याऽऽमसमुद्भ
भक्तोद्भवा सप्तमिकेति तासां निबोध लिङ्गान्यनुपूर्वशस्तु।
सामान्यलक्षणम्—**ताल्वोष्ठकण्ठास्यविशोषदाहसन्तापमोहभ्रमविप्रलापाः।**
सर्वाणि रूपाणि भवन्ति तस्यामुत्पत्तिकाले तु विशेषतो हि
१–वातजतृष्णालक्ष-**क्षामास्यता मारुतसम्भवायां तोदस्तथा शङ्खशिरःसु चापि**
णम्— **स्रोतोनिरोधो विरसं च वक्त्रं शीताभिरद्भिश्च विवृद्धिमेति।**
२–पित्तजतृष्णालक्ष-**मूर्च्छाऽन्नविद्वेषविलापदाहा रक्तेक्षणत्वं प्रततश्च शोषः।**
णम्— **शीताभिनन्दा मुखतिक्तता च पित्तात्मिकायां परिधूपनं च।**
३–श्लेष्मजतृष्णालक्ष-**बाष्पावरोधात् कफसंवृतेऽग्नौ तृष्णा बलासेन भवेत्तथा तु।**
णम्— **निद्रा गुरुत्वं मधुरास्यता च तृष्णाऽर्दितः शुष्यति चातिम**
४–५–क्षयजतृष्णालक्ष-**रसक्षयाद् या क्षयसम्भवा सा तयाऽभिभूतस्तु निशादिनेषु**
णम्, आमजसन्निपात-**पेपीयतेऽम्भः स सुखं न याति तां सन्निपातादिति के चि**
जयोरपि— **रसक्षयोक्तानि च लक्षणानि तस्यामशेषेण भिषग्व्यवस्येत्।**
त्रिदोषलिङ्गामसमुद्भवा तु हृच्छूलनिष्ठीवनसादकर्त्री।

५–उपसर्गज यानी आगन्तुक और ६–धातुक्षयजनित ।

विमर्श—जलवाहिनी नाडियों के दूषित होने से ही तृष्णा उत्पन्न होती है । प्रायः सब तृष्णा में ही **वात** और **पित्त** का प्रकोप रहता है, क्योंकि ये ही दो दोष शोषण करने वाले हैं । **आगन्तुक तृष्णा** चोट आदि के लगने, मार–पीट तथा भय आदि से होती है । **क्षयज तृष्णा** रस धातु के क्षय से अथवा अधिक रक्तस्राव से होती है । प्यास तो साधारणतः सब प्राणियों को होती है, पर जब साधारण से ज्यादा प्यास हो एवम् बारबार पानी पीने पर भी न जाय तो वह रोग है । अतितीक्ष्ण, नमकीन, अम्ल और भारी भोजन से तथा आमदोष से जो तृष्णा होती है वह दोषों को ही कुपित करके होती है, अतः उनकी गणना पृथक् नहीं की गयी । वैद्य **निदान** से ही उसे जाने ॥ ३० ॥

मूर्च्छाभ्रमनिद्रातन्द्रा- **मूर्च्छा चतुर्विधा ज्ञेया वातपित्तकफैः पृथक् ॥ ३१ ॥**
संन्यासग्लानि- **चतुर्थी सन्निपातेन तथैकश्च भ्रमः स्मृतः ।**
भेदाः— **निद्रा तन्द्रा च संन्यासो ग्लानिश्चैकैकशः स्मृताः ॥ ३२ ॥**

(१) **मूर्च्छा** रोग चार प्रकार का होता है । १—वातज, २—पित्तज, ३—कफज एवम् ४—सन्निपातज ।

६–उपसर्गज (आगन्तु- **दीनस्वरः प्रताम्यन् दीनाननशुष्कहृदयगलतालुः ।**
क) तृष्णालक्षणम्— **भवति खलु सोपसर्गा तृष्णा सा शोषिणी कष्टा ॥**
क्षतजागन्तुजयोर्लक्षणे- **क्षतस्य रुक्शोणितनिर्गमाभ्यां तृष्णा चतुर्थी क्षतजा मता तु ॥**
७–अन्नजतृष्णालक्षणम्- **स्निग्धं तथाऽम्लं लवणं च भुक्तं गुर्वन्नमेवाशु तृषां करोति ॥**
उपद्रवयुक्ततृष्णालक्ष- **ज्वरमोहक्षयकासश्वासाद्युपसृष्टदेहानाम् ॥**
णम्— **सर्वास्त्वतिप्रसक्ता रोगकृशानां वमिप्रसक्तानाम् ।**
घोरोपद्रवयुक्तास्तृष्णा मरणाय विज्ञेया ॥

(१) मूर्च्छाया निदानपूर्विका सम्प्राप्तिः—

क्षीणस्य बहुदोषस्य विरुद्धाहारसेविनः । वेगाघातादभीघाताद्धीनसत्त्वस्य वा पुनः ॥
करणायतनेषूग्रा बाह्येष्वाभ्यन्तरेषु च । निवसन्ति यदा दोषास्तदा मूर्च्छन्ति मानवाः॥

सामान्यलक्षणम्—

संज्ञावहासु नाडीषु पिहितास्वनिलादिभिः । तमोऽभ्युपैति सहसा सुखदुःखव्यपोहकृत्॥
सुखदुःखव्यपोहाच्च नरः पतति काष्ठवत्। मोहो मूर्च्छेति तामाहुः षड्विधा सा प्रकीर्त्तिता॥

वातजामाह—

नीलं वा यदि वा कृष्णमाकाशमथवाऽरुणम्। पश्यंस्तमः प्रविशति शीघ्रं च प्रतिबुद्ध्यते॥
वेपथुश्चाङ्गमर्दश्च प्रपीडा हृदयस्य च । कार्श्यं श्यावारुणच्छाया मूर्च्छाये वातसम्भवे ॥

पित्तजामाह—

रक्तं हरितवर्णं वा वियत्पीतमथापि वा । पश्यंस्तमः प्रविशति सस्वेदश्च प्रबुद्ध्यते ॥

विमर्श—जब दोष प्रबल होकर इन्द्रिय एवम् मनोवह स्रोतों को रोक देते हैं तब मु एकदम अन्धकार छा जाता है और मनुष्य बेहोश होकर गिर पड़ता है। यही मूर्च्छा मोह है। अन्यत्र वातादि से तीन, रक्त से, मद्य तथा विष से, इस प्रकार छः प्रकार की मू कथित है ; पर रक्त वातादि से ही दूषित होकर मूर्च्छा उत्पन्न करता है एवम् मद्य और वि अपने प्रभाव से दोषों का ही उद्रेक करके मूर्च्छा उत्पन्न करते हैं अतः उनका यहां चतुर्विध में ही अन्तर्भाव हो जाता है। विषजन्य मूर्च्छा त्रिदोषज होती है। अन्यत्र हेतुप्रत्यनीक **चिकित्सा** के लिये भेद दर्शाया गया है। सब तरह की मूर्च्छा में पि प्रबल होता है तथा तमोगुण के साथ मिलकर मूर्च्छा उत्पन्न करती है।

भ्रमरोग एक ही तरह का होता है।

विमर्श—इसमें रजोगुण, पित्त एवम् वायु के कारण से सिर में चक्कर आते हैं मनुष्य गिर पड़ता है। भ्रम होते समय ऐसा मालूम होता है मानो शरीर चक्रारूढ सा रहा हो। इसका **अन्यभ्रम** यानी इन्द्रियभ्रम (जिसमें इन्द्रियों से यथायथ ज्ञान नहीं हो भेद करना चाहिये।

निद्रा, तन्द्रा, संन्यास एवम् ग्लानि भी प्रत्येक एक २ प्रकार के होते हैं।

विमर्श—निद्रारोग में प्राणी मामूली से अधिक सोता है। आजकल जो **कुम्भक निद्रा** की बात कहीं कहीं अखबारों में सुनी जाती है, वह यही रोग है। यह श्लेष्मा **तमोगुण** की अधिकता से होती है ; अतः कफप्रकृति वाला तथा तामसिक गुण वाला सोता है। **स्वाभाविक निद्रा** मन के क्लान्त होकर विषयों से निवृत्त हो **मेध्यानाड़ी** लीन होने से होती है। यह सब प्राणियों के लिये परमावश्यक है। पर **अस्वाभाविक** तमोगुणयुक्त श्लेष्मा के मनोवह-स्रोतों के रास्ते को रोक देने के कारण से उत्पन्न होती **तन्द्रा** भी निद्रा का ही एक भेद है, पर यह सिर्फ इन्द्रियों पर ही होती है। इन्द्रियार्थों अप्राप्ति, शरीर में भारीपन, जम्भाई और थकान तथा निद्रार्त्त पुरुष जैसी चेष्टाएँ इसके हैं। यह तमोगुण और वातकफ से होती है।

संन्यास एक प्रबल रोग है। दोष जब अधिक प्रबल होकर शरीर के सब संज्ञावह को दूषित कर शरीर, वाणी और मन को चेष्टाशून्य कर देते हैं तब मनुष्य कटे पेड़ जैसा

सपिपासः ससन्तापो रक्तपीताकुलेक्षणः। जातमात्रे च पतति शीघ्रं च प्रतिबुध्यते।
सम्भिन्नवर्चाः पीताभो मूर्च्छाये पित्तसम्भवे॥

कफजामाह—

मेघसङ्काशमाकाशमावृतं वा तमोघनैः। पश्यंस्तमः प्रविशति चिराच्च प्रतिबुध्यते।
गुरुभिः प्रावृतैरङ्गैर्यथैवार्द्रेण चर्मणा। सप्रसेकः सहृल्लासो मूर्च्छाये कफसम्भवे॥

सान्निपातिकीमाह—

सर्वाकृतिः सन्निपातादपस्मार इवागतः। सा जन्तुं पातयत्याशु विना बीभत्सचेष्टितैः।

पड़ता है एवम् यदि सद्यःफल प्रद कोई चिकित्सा तुरन्त न की गई तो मर जाता है। यही **संन्यास** है। इसमें मनुष्य सर्वविध शारीर एवम् मानस कर्म का त्याग कर मृतवत् हो जाता है, अतः इसका नाम **संन्यास** रखा गया है।

जब आदमी को बिना परिश्रम थकान हो, हृदय में उद्वेष्टन हो, आलस मालूम हो तथा खाने की इच्छा न हो तो उसको **ग्लानि** कहते हैं। यह ओजःक्षय, रसाजीर्ण तथा दुःख आदि के कारण से होता है॥ ३१–३२॥

मदरोगभेदाः—**मदाः सप्त समाख्याता वातपित्तकफैस्त्रयः।**
त्रिदोषैरसृजा मद्याद्विषादपि च सप्तमः॥ ३३॥

रक्तजामाह—

पृथिव्यम्भस्तमोरूपं रक्तगन्धस्तदन्वयः। तस्माद्रक्तस्य गन्धेन मूर्च्छन्ति भुवि मानवाः॥
द्रव्यस्वभाव इत्येके दृष्ट्वा यदभिमूर्च्छति। दर्शनादसृजस्तस्माद् गन्धाच्चैव प्रमुह्यति॥
स्तब्धाङ्गदृष्टिस्त्वसृजा गूढोच्छ्वासश्च मूर्च्छितः॥

विषजां मद्यजां चाह—**गुणास्तीव्रतरत्वेन स्थितास्तु विषमद्ययोः।**
त एव तस्मात्ताभ्यां तु मोहौ स्यातां यथेरितौ॥
मद्येन विलपञ् शेते नष्टविभ्रान्तमानसः।
गात्राणि विक्षिपन् भूमौ जरां यावन्न याति तत्॥

वेपथुस्वप्नतृष्णाः स्युस्तमश्च विषमूर्च्छिते। वेदितव्यं तीव्रतरं यथास्वविषलक्षणैः॥

च्छातन्द्राऽऽदीनां भेदाः—**मूर्च्छा पित्ततमःप्राया रजःपित्तानिलाद् भ्रमः।**
तमोवातकफात्तन्द्रा निद्रा श्लेष्मतमोभवा॥

न्द्राऽऽदोनां लक्षणानि—**इन्द्रियार्थेष्वसम्प्राप्तिर्गौरवं जृम्भणं क्लमः।**
निद्राऽऽर्त्तस्येव यस्येहा तस्य तन्द्रां विनिर्दिशेत्॥

निद्रालक्षणम्—**यदा तु मनसि क्लान्ते कर्मात्मानः क्लमान्विताः।**
विषयेभ्यो निवर्त्तन्ते तदा स्वपिति मानवः॥

संन्यासस्य लक्षणं स-**वाग्देहमनसां चेष्टामाक्षिपन्ति बलान्मलाः।**
म्प्राप्तिश्च—**संन्यस्यन्त्यबलं जन्तुं प्राणायतनमाश्रिताः॥**
स ना संन्याससंन्यस्तः काष्ठीभूतो मृतोपमः।
प्राणैर्विमुच्यते शीघ्रं मुक्त्वा सद्यःफलां क्रियाम्॥

ंन्यासमूर्च्छयोर्भेदः—**दोषेषु मदमूर्च्छायाः कृतवेगेषु देहिनाम्।**
स्वयमेवोपशाम्यन्ति संन्यासो नौषधैर्विना॥

ानि (क्लम) लक्षणम्—**योऽनायासश्रमो देहे हृदयोद्वेष्टनं क्लमः।**
न चान्नमभिकाङ्क्षेद् ग्लानिं तस्य विनिर्दिशेत्॥

(१)**मदराग** सात प्रकार का होता है। १-वातज मद, २-पित्तज मद, ३-कफज ४-सन्निपातज मद, ५-रक्तज मद, ६-मद्यजनित मद, तथा ७ विषजनित मद।

विमर्श—इस रोग में रोगी को नशा सा बना रहता है। **वातादि दोषों से** **मद** यथादोष-लक्षण सहित होते हैं। **रक्तज मद** में पित्तलिङ्ग होते हैं तथा नेत्र-रहते हैं। शराब के पीने से **मद्यमद** होता है जो सर्वविदित है। इसमें रोगी के मुख से गन्ध आती रहती है। **विषजनित मद** में विष के लक्षण प्रकट होते हैं॥ ३३॥

मदात्ययभेदास्तद—**मदात्ययश्चतुर्द्धा स्याद्वातपित्तकफादपि।**

वान्तरभेदाश्च—**त्रिदोषैरपि विज्ञेय एकः परमदस्तथा॥ ३४॥**

पानाजीर्णं तथा चैकं तथैकः पानविभ्रमः। पानात्ययस्तथा चैकः……॥

(२)**मदात्यय** रोग चार प्रकार का होता है। १-वातज, पित्तज, कफज और त्रि

---

(१) मद्यस्वभावः— **मद्यं स्वभावतः प्राज्ञैर्यथैवान्नं तथा स्मृतम्।**
अयुक्तियुक्तं रोगाय युक्तियुक्तं रसायनम्॥

मदभेदानाह लक्षणञ्च—**मदस्तु त्रिविधः प्रोक्तः सात्त्विकादिविभेदतः।**
आचार्याः के चिदिच्छन्ति चतुर्थमपि तामसम्॥
सात्त्विके गीतहास्याद्यं तामसे साहसादिकम्।
राजसे पुरुषे मद्यं निद्राऽऽलस्यादिकारकम्॥
मृततुल्यं करोत्येव मद्यं चैवातितामसम्।
नातिमाद्यन्ति,बलिनः कृताहारा महाशनाः।
स्निग्धाः सत्त्ववयोयुक्ता मद्यनित्यास्तदन्वयाः॥
मेदःकफाधिका मन्दवातपित्ता दृढाग्नयः।
विपर्ययेऽति माद्यन्ति विश्रब्धाः कुपिताश्रये॥
मद्येन चाम्लरूक्षेण साजीर्णे बहुनाऽपि च॥

(२) मदात्ययनिदानम्—
विषस्य ये गुणा दृष्टाः सन्निपातप्रकोपणाः। त एव मद्ये दृश्यन्ते विषे तु बल
तस्मादविधिपीतेन तथा मात्राऽधिकेन च। युक्तेन चाहितैरन्नैरकाले सेवित
मद्येन खलु जायन्ते मदात्ययमुखा गदाः।
निर्भुग्नमेकान्तत एव मद्यं-निषेव्यमाणं मनुजेन नित्यम्।
उत्पादयेत्कष्टतमान्विकारानापादयेच्चापि शरीरभेदम्।
क्रुद्धेन भीतेन पिपासितेन शोकाभितप्तेन बुभुक्षितेन॥
व्यायामभाराध्वपरिक्षतेन-वेगावरोधाभिहतेन चापि।
अत्यम्लभक्ष्यावततोदरेण साजीर्णभुक्तेन तथाऽबलेन॥
उष्णाभितप्तेन च सेव्यमानं करोति मद्यं विविधान्विका

विमर्श—मद्य के बेकायदे उपयोग से यह उत्पन्न होता है। पुरुष की प्रकृति और मद्य का स्वभाव आदि कारण में जिस दोष का कोप होता है **मदात्यय** भी उसी दोष से उत्पन्न होता है। एक **परमद,** एक **पानाजीर्ण,** एक **पानविभ्रम** और एक **पानात्यय** भी मद्य के दुरुपयोग से ही होते हैं।

मद्यविकाराः—**पानात्ययं परमदं पानाजीर्णमथापि वा।**
पानविभ्रममत्युग्रं तेषां वक्ष्यामि लक्षणम्॥

सामान्यलक्षणम्—

शरीरदुःखं बलवत्प्रमोहो हृदयव्यथा। अरुचिः प्रततं तृष्णा ज्वरः शीतोष्णलक्षणः॥
शिरःपार्श्वास्थिसन्धीनां वेदना वीक्षते यथा। जायतेऽतिबला जृम्भा स्फुरणं वेपनं श्रमः॥
उरो विबन्धं कासश्च हिक्का श्वासः प्रजागरः। शरीरकम्पः कर्णाक्षिमुखरोगास्त्रिकग्रहः॥
छर्दिर्विड्भेद उत्क्लेशो वातपित्तकफात्मकः। भ्रमः प्रलापो रूपाणामसतां चैव दर्शनम्॥
तृणभस्मलतापर्णपांशुभिश्चावपूरणम्। प्रधर्षणं विहङ्गैश्च भ्रान्तचेताः स मन्यते॥
व्याकुलानामशस्तानां स्वप्नानां दर्शनानि च।
मदात्ययस्य रूपाणि सर्वाण्येतानि लक्षयेत्॥

वातजस्य निदानं लक्षणं च—**स्त्रीशोकभयभाराध्वकर्मभिर्योऽतिकर्षितः।**
रूक्षाल्पप्रमिताशी च यः पिबत्यतिमात्रया॥
रूक्षं परिणतं मद्यं निशि निद्रां निहत्य च। करोति तस्य तच्छीघ्रं वातप्रायं मदात्ययम्॥
हिक्काश्वासशिरःकम्पपार्श्वशूलप्रजागरैः।
विद्याद् बहुप्रलापस्य वातप्रायं मदात्ययम्॥

पैत्तिकस्य निदानं लक्षणं च—**तीक्ष्णोष्णमद्यमम्लं च योऽतिमात्रं निषेवते।**
अम्लोष्णतीक्ष्णभोजी च क्रोधनोऽग्न्यातपप्रियः॥
तस्योपजायते तीव्रः पित्तप्रायो मदात्ययः। तृष्णादाहज्वरस्वेदमोहातीसारविभ्रमैः॥
विद्याद्धरितवर्णस्य पित्तप्रायम्मदात्ययम्।

कफजस्य निदानं लक्षणञ्च—

मधुरः स्निग्धगुर्वाशी यः पिबत्यतिमात्रया। अव्यायामदिवास्वप्नशय्याऽऽसनसुखे रतः॥
मदात्ययं कफप्रायं स नरो लभते ध्रुवम्। छर्द्यरोचकहृल्लासतन्द्रास्तमित्यगौरवैः॥
विद्याच्छीतपरीतस्य कफप्रायम्मदात्ययम्।

सन्निपातजस्य लक्षणम्—**ज्ञेयस्त्रिदोषजश्चापि सर्वलिङ्गैर्मदात्ययः॥**

परमदलक्षणम्—

श्लेष्मोच्छ्रयोऽङ्गगुरुता मधुरास्यता च। विण्मूत्रशक्तिरथ तन्द्रिररोचकश्च॥
लिङ्गं परस्य तु मदस्य वदन्ति तज्ज्ञास्तृष्णा रुजा शिरसि सन्धिषु चातिभेदः॥

विमर्श—ये भी **मदात्यय** के ही भेद हैं। एक साथ ही अधिक और तेज शराब से **परमद**, शराब के हजम न होने से **पानाजीर्ण**, विकृत शराब तथा विकृत अन्न के सेवन से **पानविभ्रम**, और लगातार अधिक शराब पीने की आदत से **पानात्यय** रोग होते हैं॥३५॥

दाहभेदाः—······**दाहाः सप्त मतास्तथा। रक्तपित्तात्तथा रक्तात्तृष्णायाः पित्ततस्तथा।**
धातुक्षयान्मर्मघाताद्रक्तपूर्णोदरादपि ॥ ३६ ॥

(१)**दाहरोग** सातप्रकार का होता है। १ रक्तपित्त से, २ रक्त से, ३ तृष्णा से, ४ पित्त से, ५ धातुक्षय से, ६ मर्मघात से, तथा ७ कोठे में रक्त भर जाने से **दाहरोग** होता है।

विमर्श—दाह पित्तमूर्च्छित रक्त से उत्पन्न होता है। यह त्वचा पर ही होता है।

पानाजीर्णलक्षणम्—

आध्मानमुग्रमथवोद्गिरणं विदाहः। पाने त्वजीर्णमुपगच्छति लक्षणानि।
ज्ञेयानि तत्र भिषजा सुविनिश्चितानि। पित्तप्रकोपजनितानि च कारणानि॥

पानविभ्रमलक्षणम्—

हृद्गात्रतोदकफसंस्रवकण्ठधूममूर्च्छावमिज्वरशिरोरुजनप्रदेहाः।
द्वेषः सुरान्नविकृतेषु च तेषु तेषु तं पानविभ्रममुशन्त्यखिलेन धीराः॥

पानात्ययलक्षणम्—

हीनोत्तरौष्ठमतिशीतममन्ददाहतैलप्रभास्यमतिपानहतं त्यजेत्तु।
जिह्वौष्ठदन्तमसितं त्वथवाऽपि नीलं पीते च यस्य नयने रुधिरप्रभे वा॥

मदात्ययस्योपद्रवाः—

हिक्काज्वरौ वमथुवेथुपार्श्वशूलाः कासभ्रमवापि च पानहतं भजन्ते।

(१) रक्तपित्तजदाहस्य निदानं लक्षणञ्च—

कृत्स्नदेहानुगं रक्तमुद्रिक्तं दहति ध्रुवम्। शुष्यते तृष्यते चैव ताम्राभस्ताम्रलोचनः।
लोहगन्धाङ्गवदनो वह्निनेवावकीर्यते॥

रक्तपूर्णकोष्ठजमाह—**अस्रजा पूर्णकोष्ठस्य दाहोऽङ्गे स्यात्सुदुःसहः।**

तृषानिरोधजमाह—**तृषानिरोधादब्धातौ क्षीणे तेजः समुत्थितम्।**
स बाह्याभ्यन्तरं देहं प्रदहेन्मन्दचेतसः। स शुष्कगलताल्वोष्ठो जिह्वां निष्कास्य वेपते॥

पित्तजमाह—**पित्तज्वरसमः पित्तदाहः स्यात्तस्य संक्रमः।**

धातुक्षयजमाह—**धातुक्षयोत्थो यो दाहस्तेन मूर्च्छातृषाऽन्वितः।**
क्षामस्वरः क्रियाहीनः स सीदेद् भृशपीडितः॥

मर्माभिघातजमाह—**मर्माभिघातजोऽप्यस्ति स चासाध्यतमो मतः।**
सर्वं एव च बर्ज्याः स्युः शीतगात्रेषु देहिषु॥

मद्यजमाह—**त्वचं प्राप्तः स पानोष्मा पित्तरक्ताभिमूर्च्छितः।**
दाहं प्रकुरुते घोरं पित्तवत्तत्र भेषजम्॥

कभी कभी अन्दर कोष्ठ, हृदय आदि में भी होता है। यह अन्य रोगों में लक्षण या उपद्रव के रूप में तथा स्वतन्त्र भी होता है। इसकी चिकित्सा पित्तवत् जानें ॥ ३६ ॥

उन्मादभेदाः-**उन्मादाः षट् समाख्यातास्त्रिभिर्दोषैस्त्रयश्च ते ।**
सन्निपाताद्विषाज्ज्ञेयः षष्ठो दुःखेन चेतसः ॥ ३७ ॥

उन्माद(१) **रोग** या पागलपन का रोग छः प्रकार का होता है। १–वातज, २–पित्तज, ३–कफज, ४–त्रिदोषज, ५–विषज तथा ६–छठा मन के दुःख यानी अभिघात से **उन्माद रोग** उत्पन्न होता है।

विमर्श—दोष जब निदानानुसार कुपित होकर बुद्धिस्थान हृदय को दूषित करते हैं एवं **मनोवह स्रोतों** पर अधिष्ठित हो जाते हैं, तब मनुष्य के चित्त को मोहग्रस्त कर देते हैं। इससे बाह्यज्ञान ठीक ठीक नहीं होता, विचार शक्ति नष्ट हो जाती है तथा मन में विचित्र ख्यालात

---

(१) उन्मादस्य सम्प्राप्तिः—**मदयन्त्युद्धता दोषा यस्मादुन्मार्गमागताः ।**
मानसोऽयमतो व्याधिरुन्माद इति कीर्त्यते ॥

वातिकमाह—**रूक्षाल्पशीतान्नविरेकधातु-क्षयोपवासैरनिलोऽतिवृद्धः ।**
चिन्ताऽऽदिदुष्टं हृदयं प्रविश्य बुद्धिं स्मृतिं चाप्युपहन्ति शीघ्रम् ॥
अस्थानहास्यस्मितनृत्यगीतवागङ्गविक्षेपणरोदनानि ।
पारुष्यकार्श्यारुणवर्णता च जीर्णे बलं चानिलजस्य रूपम् ।

पित्तजमाह—**अजीर्णकट्वम्लविदाह्यशीतैर्भोज्यैश्चितं पित्तमुदीर्णवेगम् ।**
उन्मादमत्युग्रमनात्मकस्य हृदि स्थितं पूर्ववदाशु कुर्यात् ॥
अमर्षसंरम्भविनग्नभाव-सन्तर्जनाभिद्रवणौष्ण्यरोषाः ।
प्रच्छायशीतान्नजलाभिलाषाः पीता च भाः पित्तकृतस्य लिङ्गम् ॥

कफजमाह—**सम्पूरणैर्मन्दविचेष्टितस्य सोष्मा कफो मर्मणि सम्प्रवृद्धः ।**
बुद्धिं स्मृतिं चाप्युपहन्ति चित्तं प्रमोहयन्सञ्जनयेद्विकारम् ।
वाक्चेष्टितम् मन्दमरोचकश्च नारीविविक्तप्रियता च निद्रा ।
छर्दिश्च लाला च बलं च भुङ्क्ते नखादिशौक्ल्यं च कफात्मके स्यात् ॥

सन्निपातजमाह—**यः सन्निपातप्रभवो हि घोरः सर्वैः समस्तैः स तु हेतुभिः स्यात् ।**
सर्वाणि रूपाणि बिभर्त्ति तादृग्विरुद्धभैषज्यविधिर्विवर्ज्यः ॥

विषजमाह—**रक्तेक्षणो हतबलेन्द्रियभाः स दीनः-**
श्यावाननो विषकृतेन भवेद्विसंज्ञः ॥

मनोदुःखजमाह—

चौरैर्नरेन्द्रपुरुषररिभिस्तथाऽन्यैर्वित्रासितस्य धनबान्धवसङ्क्षयाद्वा ।
गाढं क्षते मनसि च प्रियया रिरंसोर्जायेत चोत्कटतरो मनसो विकारः ॥
चित्रं ब्रवीति च मनोऽनुगतं विसञ्ज्ञो गायत्यथो हसति रोदिति चापि मूढः ॥

उत्पन्न होते हैं, जिनके करने को वह तुला रहता है। अतः इसकी सब चेष्टाएँ विकृत हो अतिदुःख, अतिहर्ष, भय, शोक, ईप्सित पदार्थ की अप्राप्ति आदि से या किसी धुन में लग जाने से भी मन दूषित होकर मनुष्य पागल हो जाता है। इनके लक्षण भी कारण ही होते हैं ॥ ३७ ॥

भूतोन्मादभेदाः-**भूतोन्मादा विंशतिः स्युस्ते देवाद्दानवादपि ।**
गन्धर्वात्किन्नराद्यक्षात्पितृभ्यो गुरुशापतः ॥ ३८ ॥
प्रेताच्च गुह्यकाद् वृद्धात्सिद्धाद्भूतात्पिशाचतः ।
जलाधिदेवतायाश्च नागाच्च ब्रह्मराक्षसात् ।
राक्षसादपि कूष्माण्डात्कृत्यावेतालयोरपि ॥ ३९ ॥

भूतोन्माद(१) यानी भूत चढ़ने का उन्माद बीस तरह का होता है। १-देवोन्माद,

---

(१) देवादिकृतोन्मादस्य **अमर्त्यवाग्विक्रमवीर्यचेष्टो ज्ञानादिविज्ञानबलादियुक्तः।**
सामान्यलक्षणम्— **प्रकोपकालोऽनियतश्च यस्य देवादिजन्मा मनसो विकारः।**
देवोन्मादमाह—**सन्तुष्टः शुचिरतिदिव्यमाल्यगन्धो निस्तन्द्रो ह्यवितथसंस्कृतप्र**
तेजस्वी स्थिरनयनो वरप्रदाता ब्रह्मण्यो भवति नरः स देवजुष्टः॥
असुरोन्मादमाह—**संस्वेदी द्विजगुरुदेवदोषवक्ता जिह्माक्षो विगतभयो विमार्गदृष्टिः।**
सन्तुष्टो न भवति चान्नपानजातैर्दुष्टात्मा भवति स देवशत्रुजुष्टः।
गन्धर्वोन्मादमाह—**हृष्टात्मा पुलिनवनान्तरोपसेवी स्वाचारः प्रियपरिगीतगन्धमा**
नृत्यन्वै प्रहसति चारु चाल्पशब्दं गन्धर्वग्रहपरिपीडितो मनु
यक्षोन्मादमाह—**ताम्राक्षः प्रियतनुरक्तवस्त्रधारी गम्भीरो द्रुतगतिरल्पवाक् सहि**
तेजस्वी वदति च किं ददामि कस्मै यो यक्षग्रहपरिपीडितो मनु

पितृग्रहोन्मादमाह—

प्रेतानां स दिशति संस्तरेषु पिण्डाञ् शान्तात्मा जलमपि चापसव्यवस्त्रः।
मांसेप्सुस्तिलगुडपायसाभिलाषी तद्भक्तो भवति पितृग्रहाऽभिजुष्टः ॥

सर्पोन्मादमाह—

यस्तूर्व्यां प्रसरति सर्पवत्कदा चित् सृक्किण्यौ विलिहति जिह्वया तथैव।
क्रोधालुर्घृतमधुदुग्धपायसेप्सुर्विज्ञेयो भवति भुजङ्गमेन जुष्टः ॥
राक्षसोन्मादमाह—**मांसासृक्विविधसुराविकारलिप्सुर्निर्लज्जो भृशमतिनिष्ठुरोऽति**
क्रोधालुर्विविधबलो निशाविहारी शौचद्विड् भवति स राक्षसैर्गृ
ब्रह्मराक्षसोन्मादमाह—**देवविप्रगुरुद्वेषी वेदवेदाङ्गनिन्दकः ।**
आत्मपीडाकरोऽहिंस्रो ब्रह्मराक्षससेवितः ॥
पिशाचोन्मादमाह—**उद्वस्त्रः कृशपरुषो विरुद्धलापी दुर्गन्धो भृशमशुचिस्तथाऽति**
बह्वाशी विजनवनान्तरोपसेवी व्याचेष्टन् भ्रमति रुदन् पिशाच

नवोन्माद, ३–गन्धर्वोन्माद, ४–किन्नरोन्माद, ५–यक्षोन्माद, ६–पितृग्रहोन्माद, ७–गुरुशापज-नितोन्माद, ८–प्रेतोन्माद, ९–गुह्यकोन्माद, १० वृद्धपुरुषों के क्रोध से, ११–सिद्ध पुरुषों के रोष से, १२–भूतोन्माद १३–पिशाचोन्माद, १४–जलदेवोन्माद, १५ सर्पोन्माद, १६–ब्रह्मराक्षसो-न्माद, १७–राक्षसोन्माद, १८–कुष्माण्डोन्माद, १९–कृत्योन्माद यानी अभिचार–जादू , टोना आदि से उत्पन्न, २०–वेतालोन्म.द, ये बीस हैं।

विमर्श—ये उपर्युक्त उन्माद ग्रहों के आवेश याने चित्त पर कब्जा करने से उत्पन्न होते हैं। जिस ग्रह से पुरुष उन्मत्त रहता है उसी स्वभाववाला हो जाता है तथा उसकी तरह चेष्टाएँ करता है। इनकी चिकित्सा मणि, मन्त्र, शान्ति, स्वस्त्ययन, होम, जप, बलि, मङ्गल, प्रणिपातादि है।

आधुनिक विज्ञानवादियों का मत है कि–मनुष्य के मन में जो असंख्य भाव भरे रहते हैं, उनमें से जो भाव किसी कारणवश प्रबल हो जाता है मनुष्य तद्रूप हो जाता है। दूसरे ढङ्ग से यह कहा जाता है कि मस्तिष्क के विभिन्नज्ञान-केन्द्रों में से किसी केन्द्र का अधिक उत्ते-जित होना इस तरह के उन्मादों का कारण है। पर आधुनिक **पाश्चात्त्य भूतवादी** (Spiriltualis) भी भूतों की अस्तित्व, तथा मनुष्य शरीर में उनके आवेश को मानते हैं। कुछ भी हो यह सर्वसम्मत है कि ये विकार मानसिक हैं एवं मन को प्राकृतिक स्थिति पर लाने से ही शान्त होते हैं ॥ ३८–३९ ॥

अपस्मारभेदाः—**अपस्मारश्चतुर्द्धा स्यात्समीरात्पित्ततस्तथा ।**
श्लेष्मणोऽपि तृतीयः स्याच्चतुर्थः सन्निपाततः ॥ ४० ॥

अप (१)स्मार रोग चार प्रकार का होता है। १–वातिक २–पैत्तिक, ३–श्लैष्मिक एवं ४–सान्निपातिक।

असाध्यलक्षणम्—

स्थूलाक्षो द्रुतमटनः सफेनलेही निद्रालुः पतति च कम्पते च योऽति ।
यश्चाद्रिद्विरदनगादिविच्युतः स्यात् सोऽसाध्यो भवति तथा त्रयोदशेऽब्दे ॥

देवादीनां ग्रहणकालाः-**देवग्रहाः पौर्णमास्यामसुराः सन्ध्ययोरपि ।**
गन्धर्वाः प्रायशोऽष्टम्या यक्षाश्च प्रतिपद्यथ ॥
पितरः कृष्णपक्षे(१) च पञ्चम्यामपि चोरगाः ।
रक्षः पिशाचा (२)रात्रौ च चतुर्दश्यां विशन्ति हि ॥

ग्रहाः प्रविशन्तो न दृ-**दर्पणादीन् यथा छाया शीतोष्णं प्राणिनो यथा ।**
श्यन्ते, तत्र युक्तिः— **स्वमणिं भास्करांशुश्च यथा देहं च देहधृक् ॥**
विशन्ति च न दृश्यन्ते ग्रहास्तद्वच्छरीरिणाम् ॥

(१)अपस्मारस्य निदा-**चिन्ताशोकादिभिर्दोषाः क्रुद्धा हृत्स्रोतसि स्थिताः ।**
नपूर्विका सम्प्राप्तिः—**कृत्वा स्मृतेरपध्वंसमपस्मारं प्रकुर्वते ॥**

---

(१) **पाठान्तरे—'पितृग्रहास्त्वमावास्याम्'** ।
(२) **'रक्षांसि रात्रौ पैशाचाश्चतुर्दश्यां विशन्ति हि'** ।

विमर्श—इसमें मनुष्य की स्मृति नष्ट हो जाती है और उसे अन्धकार में प्रवेश का तथा नाना प्रकार के प्राणियों का अपनी ओर दौड़ने का मिथ्या ज्ञान होता है जिससे घबड़ाकर गिर जाता है तथा मुख से फेन निकला करता है। बारह दिन, एक पक्ष या एक मास में।अथवा कम अधिक दिन में निश्चित समय पर ही इसका आक्रमण होता है दोषों की प्रबलता के अनुसार समय कभी कभी अनिश्चित भी होता है। दौरे के चले जाने पर मनुष्य प्रायः स्वस्थ हो जाता है, एवम् अपना सब काम धन्धा भी करता रहता है, जब तक दूसरा दौरा न आ जाय। यह दौरा कुछ मिनटों में ही चला जाता है ॥ ४० ॥

आमवातभेदाः—**चत्वारश्चामवाताः स्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा। चतुर्थः सन्निपातेन……**

आम(१)वात रोग चार तरह का होता है। १–वातिक २–पैत्तिक ३–श्लैष्मिक एवं ४–सन्निपातिक।

सामान्यं लक्षणम्—**तमःप्रवेशः संरम्भो दोषोद्रेकहतस्मृतेः।**
अपस्मार इति ज्ञेयो गदो घोरश्चतुर्विधः ॥

वातापस्मारमाह—**कम्पते सन्दशेद्दन्तान् फेनोद्वामी श्वसित्यपि।**
परुषारुणकृष्णानि पश्येद्रूपाणि चानिलात् ॥

पित्तापस्मारमाह—**पीतफेनाङ्गवक्त्राक्षः पीतासृग्रूपदर्शनः।**
सतृष्णोष्णानलव्याप्त-लोकदर्शी च पैत्तिकः ॥

कफजमाह—**शुक्लफेनाङ्गवक्त्राक्षः शीतहृष्टाङ्गजो गुरुः।**
पश्यञ् शुक्लानि रूपाणि श्लैष्मिको मुच्यतेऽचिरात् ॥

सन्निपातजमाह—**सर्वरेतैः समस्तैश्च लिङ्गैर्ज्ञेयस्त्रिदोषजः।**
अपस्मारः स चासाध्यो यः क्षीणस्यानवश्च यः ॥

असाध्यलक्षणम्—**प्रस्फुरन्तं च बहुशः क्षीणं प्रचलितभ्रुवम्।**
नेत्राभ्यां च विकुर्वाणमपस्मारो विनाशयेत् ॥

अपस्मारवेगदिनानि-यमानाह—**पक्षाद्वा द्वादशाहाद्वा मासाद्वा कुपिता मलाः।**
अपस्माराय कुर्वन्ति वेगं किञ्चिदथान्तरम् ॥
देवे वर्षत्यपि यथा भूमौ बीजानि कानि चित्।
शरदि प्रतिप्ररोहन्ति तथा व्याधिसमुद्भवः ॥

(१) आमवातनिदानम्-**विरुद्धाहारचेष्टस्य मन्दाग्नेर्निश्चलस्य च।**
स्निग्धं भुक्तवतो ह्यन्नं व्यायामं कुर्वतस्तथा ॥
वायुना प्रेरितो ह्यामः श्लेष्मस्थानं प्रधावति।
तेनात्यर्थमपक्वोऽसौ धमनीः प्रतिपद्यते ॥
वातपित्तकफैर्भूयो दूषितः सोऽन्नजो रसः।
स्रोतांस्यभिस्पन्दयन्ति नानावर्णोऽतिपिच्छिलः ॥

विमर्श—आमदोष जब कफ के स्थान में वात प्रेरित होकर चला जाता है, तो वह धमनियों से सारे शरीर में फैल कर त्रिकस्थान तथा सन्धियों में शोथ उत्पन्न कर देता है अथवा शरीर को जकड़ देता है, उसे **आमवात** कहते हैं। अंगमर्द, अरुचि, प्यास, आलस्य, शरीर का भारीपन, ज्वर, अविपाक तथा शरीर में सूजन इसके **समान्य लक्षण** हैं। यह रोग आमदोष एवं वात से ही उत्पन्न होने से **आमवात** कहाजाता है, पर अन्य दोषों के संसर्ग भी इसमें होते हैं। अतः उल्बण के अनुसार वातादिज भेद किया गया है॥ ४१॥

शूलभेदाः—······**शूलान्यष्टौ बुधा जगुः। पृथग्दोषैस्त्रिधा द्वन्द्वभेदेन त्रिविधान्यपि ।**
आमेन सप्तमं प्रोक्तं सन्निपातेन चाष्टमम् ॥ ४२ ॥

शू(१)**ल रोग** आठ प्रकार का होता है। १–वातिक, २–पैत्तिक, ३–श्लैष्मिक, ४–वातपैत्तिक, ५–वातश्लैष्मिक तथा ६–पित्तश्लैष्मिक, ७–आमशूल एवं ८–सान्निपातिक शूल।

जनयत्यग्निदौर्बल्यं हृदयस्य च गौरवम् ।
व्याधीनामाश्रयो ह्येष आमसञ्ज्ञोऽतिदारुणः ॥
आमलक्षणम्—**अजीर्णाद्यो रसो जातः सञ्चितो हि क्रमेण वै ।**
आमसञ्ज्ञां स लभते शिरोगात्ररुजाकरः ॥
सामान्यं लक्षणम्—**युगपत्कुपितावेतौ त्रिकसन्धिप्रवेशकौ ।**
स्तब्धं च कुरुतो गात्रमामवातः स उच्यते ॥
विशेषलक्षणम्—**अङ्गमर्दोऽरुचिस्तृष्णा चालस्यं गौरवं ज्वरः ।**
अपाकः शून्यताङ्गानामामवातस्य लक्षणम् ॥
रूपमाह—**स कष्टः सर्वरोगाणां यदा प्रकुपितो भवेत् ।**
हस्तपादशिरोगुल्फ-त्रिकजानूरुसन्धिषु ॥
करोति सरुजं शोथं यत्र दोषः प्रपद्यते । स देशो रुज्यतेऽत्यर्थं व्याविद्ध इव वृश्चिकैः ॥
जनयेत्सोऽग्निदौर्बल्यं प्रसेकारुचि गौरवम् । उत्साहहानिर्वैरस्यं दाहं च बहुमूत्रताम् ॥
कुक्षौ कठिनतां शूलं तथा निद्राविपर्ययम् । तृट्छर्दिज्वरमूर्च्छाश्च हृद्ग्रहं विड्विबन्धताम् ॥
जाड्यान्त्रकूजनानाहकष्टांश्चान्यानुपद्रवान् ॥
पित्तादियुक्तस्य लक्षणम्—**पित्तात्सदाहरागं च सशूलं पवनानुगम् ।**
स्तिमितं गुरुकण्डूं च कफजुष्टं तमादिशेत् ॥
सर्वलक्षणसम्पन्नं सन्निपातं तमादिशेत् ॥
साध्यासाध्यमाह—**एकदोषानुगः साध्यो द्विदोषो याप्य उच्यते ।**
सर्वदेहचरः शोथः स कृच्छ्रः सान्निपातिकः ॥

(१)शूलशब्दस्य निरुक्तिः-**शूलनिर्घातवेदनाजनकत्वाच्छूलसञ्ज्ञा, यतः-**
शङ्कुस्फोटनवत्तस्य यस्मात्तीव्रा च वेदना । शूलासक्तस्य भवति तस्माच्छूलमिहोच्यते ॥

विमर्श—इस रोग में शूल से विद्धवत् वेदना होती है, अतः शूल नाम दिया ग। **वातजशूल का स्थान**-हृदय, पसवाड़े, पीठ, त्रिकसंधि तथा पेडू है। **पित्तजशूल का स्था** नाभि है तथा **कफजशूल** का स्थान आमाशय है। **सान्निपातिक शूल** सब दोषों के लक्षण होता है। **आमशूल** भी आमाशय में ही होता है तथा कफज शूल के समान लक्षणवाला है, पर इसमें **आमदोष** के लक्षण अधिक होते हैं। **द्विदोषजशूल**-दो दोषों के लक्षण होते हैं विशेष यह है-**कफवातिक शूल**-वस्ति, हृदय, पृष्ठ और पार्श्व में। **कफपै** शूल-हृदय और नाभि के मध्य देश में होते हैं तथा **वातपैत्तिक** शूल में ज्वर और दाह रूप से होते हैं ॥ ४२ ॥

वातजशूलमाह—

व्यायामयानादतिमैथुनाच्च-प्रजागराच्छीतजलातिपानात् ।
कलायमुद्गाढकिकोरदूषादत्यर्थरूक्षाध्यशनाभिघातात् ॥
कषायतिक्तातिविरूढजान्नविरुद्धवल्लूरकशुष्कशाकैः ।
(१)विट्च्छुक्रमूत्रानिलसन्निरोधाच्छोकोपवासादतिहास्यभाषात् ॥
वायुः प्रवृद्धो जनयेद्धि शूलं हृत्पृष्ठपार्श्वत्रिकबस्तिदेशे ।
जीर्णे प्रदोषे च घनागमे च शीते च कोपं समुपैति गाढम् ॥
मुहुर्मुहुश्चोपशमप्रकोपौ विण्मूत्रसंस्तम्भनतोदभेदैः ।
संस्वेदनाभ्यञ्जनमर्दनाद्यैः स्निग्धोष्णभोज्यैश्च शमं प्रयाति ॥

पित्तजमाह—क्षारातितीक्ष्णोष्णविदाहितैलनिष्पावपिण्याककुलत्थयूषैः ।
कट्वम्लसौवीरसुराविकारैः क्रोधानलायासरविप्रतापैः ॥
ग्राम्यातियोगादशनैर्विदग्धैः पित्तं प्रकुप्याथ करोति शूलम् ।
तृण्मोहदाहार्त्तिकरं हि नाभ्यां संस्वेदमूर्च्छाभ्रमशोषयुक्तम् ।
मध्यंदिने कुप्यति चार्धरात्रे निदाघकाले जलदात्यये च ॥
शीते च शीतैः समुपैति शान्ति सुस्वादुशीतैरतिभोजनैश्च ॥

श्लैष्मिकमाह—आनूपवारिजकिलाटपयोविकारैर्मांसेक्षुपिष्टकृशरातिलशष्कुली
अन्यैर्बलासजनकैरपि भोजनैश्च श्लेष्मा प्रकोपमुपगम्य करोति शूलम् ।
हृल्लासकाससदनारुचिसम्प्रसेकैरामाशये स्तिमितकोष्ठशिरोगुरुत्वः ॥
भुक्ते सदैव हि रुजं कुरुतेऽतिमात्रं सूर्योदये च शिशिरे कुसुमागमे च ।

द्वन्द्वजमाह—द्विदोषलक्षणैरेतैर्विद्याच्छूलं द्विदोषजम् ।

सान्निपातिकमाह—सर्वेषु दोषेषु च सर्वलिङ्गं विद्याद् भिषक् सर्वभवं हि शूलम् ।
सुकष्टमेनं विषवज्रकल्पं विवर्जनीयं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥

---

(१) विड्वातेति पाठान्तरं वर्त्तते ।

परिणामशूलभेदाः—**परिणामभवं शूलमष्टधा परिकीर्त्तितम् ।**
मलैयः।शूलसंख्या स्यात्तैरेव परिणामजम् ॥ ४३ ॥

परिणा(१)मशूल भी आठ प्रकार का होता है। यह शूल का ही भेद मात्र है, अतः इसके वातादिक भेद भी शूल जैसा ही होता है।

विमर्श—पर इसमें विशेष भेद यह है कि–यह शूल भोजन के जीर्ण होने के समय में ही होता है। भोजन करने के पूर्व या जीर्ण होने के बाद नहीं होता ॥ ४३ ॥

अन्नद्रवजरत्पित्तशूले—**अन्नद्रवभवं शूलं जरत्पित्तभवं तथा । एकैकं गणितं सुज्ञैः…॥४४॥**

अन्न(२)द्रवशूल तथा **जरत्पित्तज** शूल को भी विज्ञ चिकित्सक गण अलग गिने हैं।

आमजशूलमाह—**आटोपहृल्लासवमीगुरुत्वस्तैमित्यकानाहकफप्रसेकैः ।**
कफस्य लिङ्गेन समानलिङ्गमामोद्भवं शूलमुदाहरन्ति ॥

दोषविशेषे देशविशेषमाह—**वातात्मकं वस्तिगतं वदन्ति पित्तात्मकं चापि वदन्ति नाभ्याम् ।**
हृत्पार्श्वकुक्षौ कफसन्निविष्टसर्वेषु देशेषु च सन्निपातात् ॥
बस्तौ,हृत्कटिपार्श्वेषु,स शूलः कफवातिकः ।
कुक्षौ हृन्नाभिमध्ये तु स शूलः कफपैत्तिकः । दाहज्वरकरो घोरो।विज्ञेयो वातपत्तिकः॥

(१) परिणामशूलनिदानम्—**स्वैर्निदानैः प्रकुपितो वायुः सन्निहितो यदा ।**
कफपित्ते समावृत्य शूलकारी भवेद् बली ॥

परिणामशूलस्य लक्षणम्—**भुक्ते जीर्यति यच्छूलं तदेव परिणामजम् ।**
तस्य लक्षणमप्येतत्समासेनाभिधीयते ।

वातिकमाह—**आध्मानाटोपविण्मूत्र-विबन्धारतिवेपनैः ।**
स्निग्धोष्णोपशमप्रायं वातिकं तद् वदेद्भिषक् ॥

पैत्तिकमाह—**तृष्णादाहारुचिस्वेद-कट्वम्ललवणोत्तरम् ।**
शूलं शीतशमप्रायं पैत्तिकं लक्षयेद् बुधः ॥

कफजमाह—**छर्दिहृल्लाससम्मोह-स्वल्परुग्दीर्घसन्तति ।**
कटुतिक्तोपशान्तं च ज्ञेयं तच्च कफात्मकम् ॥

द्वन्द्वजं सन्निपातजञ्चाह—**संसृष्टं लक्षणं बुद्ध्वा द्विदोषं परिकल्पयेत् ।**
त्रिदोषजमसाध्यं स्यात्क्षीणमांसबलानलम् ।
कफजसमानमामजपरिणामशूललिङ्गं ज्ञेयम् ॥

(२) अन्नद्रवशूललक्षणम्—**जीर्णे जीर्यत्यजीर्णे वा यच्छूलमुपजायते ।**
पथ्यापथ्यप्रयोगेण भोजनाभोजनेन च ॥
न।शमं याति नियमात सोऽन्नद्रव उदाहृतः ।

जरत्पित्तलक्षणम्—**अन्नद्रवाख्यशूलेषु न तावत्स्वास्थ्यमश्नुते ।**
वान्तमात्रे जरत्पित्तं शूलमाशु व्यपोहति ॥

विमर्श—अन्नद्रवशूल का कोई नियम नहीं होता; खाने पर, जीर्य्यमाण अवस्था में जीर्ण होने पर होता ही रहता है तथा पथ्यापथ्य से भी कोई फर्क नहीं आता। यह शूल बेकायदे होता है, उसी तरह बेकायदे से शान्त भी होता रहता है। पित्त के विदग्ध होने से **जरत्पित्तजशूल** होता है; इसका दूसरा नाम **अम्लशूल** है ॥ ४४ ॥

उदावर्त्तभेदाः—······**उदावर्त्तास्त्रयोदश। एकः क्षुन्निग्रहात्प्रोक्तस्तृष्णारोधाद् द्वितीयकः।**
निद्राघातात्तृतीयः स्याच्चतुर्थः श्वासनिग्रहात्।
छर्दिरोधात्पञ्चमः स्यात्षष्ठः क्षवथुनिग्रहात् ॥ ४६ ॥
जृम्भारोधात्सप्तमः स्यादुद्गारग्रहतोऽष्टमः।
नवमः स्यादश्रुरोधाद्दशमः शुक्रधारणात् ॥ ४७ ॥
मूत्ररोधान्मलस्यापि रोधाद्वातविनिग्रहात्।
उदावर्त्तास्त्रयश्चैते घोरोपद्रवकारकाः ॥ ४८ ॥

उदा(१)वर्त्त रोग तेरह प्रकार का होता है। **प्रथम—**भूख को रोकने से, द्वि

---

(१) उदावर्त्तनिदानम्—**वातविण्मूत्रजृम्भाऽश्रुक्षवोद्गारवमीन्द्रियैः।**
क्षुत्तृष्णोच्छ्वासनिद्राणां धृत्योदावर्त्तसम्भवः ॥
सामान्यलक्षणम्—**यत्रोर्ध्वं जायते वायोरावर्त्तः स चिकित्सकैः।**
उदावर्त्त इति प्रोक्तो व्याधिस्तत्रानिलः प्रभुः ॥
वातनिरोधजमाह—**वातमूत्रपुरीषाणां सङ्गाध्मानं क्लमो रुजा।**
जठरे वातजाश्चान्ये रोगाः स्युर्वातनिग्रहात् ॥
मलावरोधजमाह—**आटोपशूलौ परिकर्त्तिका च सङ्गः पुरीषस्य तथोर्ध्ववातः।**
पुरीषमास्यादथवा निरेति पुरीषवेगेऽभिहते नरस्य ॥
मूत्रावरोधजमाह—**वस्तिमेहनयोः शूलं मूत्रकृच्छ्रं शिरोरुजा।**
विनामो वङ्क्षणानाहः स्याल्लिङ्गं मूत्रनिग्रहे ॥
जृम्भाऽवरोधजमाह—**मन्यागलस्तम्भशिरोविकारा जृम्भोपघातात् पवनात्मकाः।**
तथाऽक्षिनासावदनामयाश्च भवन्ति तीव्राः सह कर्णरोगैः।
अश्रुरोधजमाह—**आनन्दजं वाऽप्यथ शोकजं वा नेत्रोदकं प्राप्तममुञ्चतो हि।**
शिरोगुरुत्वं नयनामयाश्च भवन्ति तीव्राः सह पीनसेन ॥
छिक्कानिरोधजमाह—**मन्यास्तम्भः शिरःशूलमर्दितार्द्धावभेदकौ।**
इन्द्रियाणां च दौर्बल्यं क्षवथोः स्याद्विधारणात् ॥
उद्गारनिरोधजमाह—**कण्ठास्यपूर्णत्वमतीव तोदः कूजश्च वायोरथवा प्रवृत्तिः।**
उद्गारवेगेऽभिहते भवन्ति घोरा विकाराः पवनप्रसूताः ॥
छर्दिरोधजमाह—**कण्डूकोठारुचिव्यङ्गशोफपाण्ड्वामयज्वराः।**
कुष्ठहृल्लासवीसर्पाश्छर्दिनिग्रहजा रुजः ॥

प्यास के रोकने से, **तृतीय**—निद्रा के रोकने से, **चतुर्थ**—सांस के रोकने से, **पञ्चम**—वमन के रोकने से, **छठा**—छींक के रोकने से, **सातवां**—जम्भाई के रोकनेसे, **आठवां**—डकार के रोकने से, **नवम**—आंसू के रोकने से, **दशम**—वीर्य्य के रोकने से, **ग्यारहवां**—मूत्र के रोकने से, **बारहवां**—मल के रोकने से और **तेरहवां**-अधोवायु के रोकने से, इसभांति तेरह तरह के **उदावर्त्त रोग** उत्पन्न होते हैं। जिनमें से अन्तिम तीन यानी मूत्र, मल और अधोवायु के रोकने से उत्पन्न उदावर्त्त तो घोर उपद्रव करने वाले होते हैं।

विमर्श—सार यह है कि उपर्युक्त क्षुधा आदि तेरह वेगों को नहीं रोकना चाहिये। यदि, प्रवर्त्तमान वेग को रोका जाय तो वायु उलट कर स्रोतों के मार्ग को भी दूषित कर देता है जिससे पुनः वेग प्रवर्त्तित नहीं होकर उसका वेग उलटा चलता है। इसी कारण इसका नाम भी **उदावर्त्त** है। इसमें सदा वात का शमन कर ठीक मार्ग पर चलना चाहिये ॥ ४५-४८ ॥

आनाहभेदौ—**आनाहो द्विविधो ज्ञेय एकः पक्वाशयोद्भवः ।**
आमाशयोद्भवश्चान्यः प्रत्यानाहः स कथ्यते ॥ ४९ ॥

आना(१)ह रोग दो प्रकार का होता है। **एक**—पक्वाशय में होता है जिसे **'आनाह'** कहते हैं **दूसरा**—आमाशय में होता है जिसे **'प्रत्यानाह'** कहते हैं। १-पक्वाशय में मल के जमा हो जाने से तथा प्रवर्त्तित न होने से पेट फूल जाता है, उसे **आनाह** कहते हैं। २-उसी तरह आम दोष के आमाशय में जमा हो जाने से तथा वमन-द्वारा या विरेचन द्वारा न निकलने से पेट फूल जाता है, इसे **प्रत्यानाह** कहते हैं। मल या आमदोष संचित होकर न निकल सकने के कारण मार्ग का रोध करने से वायु पेट को फुला कर **आनाह** या **प्रत्यानाह** उत्पन्न करता है। इनका आध्मान और प्रत्याध्मान से यही भेद है कि ये मल या आम के संचय से

शुक्रावरोधजमाह—**मूत्राशये वै गुदमुष्कयोश्च शोथो रुजा मूत्रविनिग्रहश्च ।**
शुक्राश्मरी तत्स्रवणं भवेच्च ते ते विकारा विहते च शुक्रे ॥

क्षुधानिरोधजमाह—**तन्द्राऽङ्गमर्दावरुचिः श्रमश्च क्षुधाऽभिघातात्कृशता च दृष्टेः ।**

तृषानिरोधजमाह—**कण्ठास्यशोषः श्रवणावरोधस्तृष्णाऽभिघाताद्धृदये व्यथा च ।**

श्वासनिरोधजमाह—**श्रान्तस्य निःश्वासविनिग्रहेण हृद्रोगमोहावथवाऽपि गुल्मः ।**

निद्रावरोधजमाह—
जृम्भाऽङ्गमर्दोऽक्षिशिरोऽभिजाड्यं निद्राऽभिघातादथवाऽपि तन्द्रा ।

(१) आनाहलक्षणम्—**आमं शकृद्वा निचितं क्रमेण भूयो विबद्धं विगुणानिलेन ।**
प्रवर्त्तमानं न यथास्वमेनं विकारमानाहमुदाहरन्ति ॥

पक्वाशयोद्भवमाह—**स्तम्भः कटीपृष्ठपुरीषमूत्रैः शूलोऽथ मूर्च्छा शकृतश्च वान्तिः ॥**
शोथश्च पक्वाशयजे भवन्ति तथाऽलसोक्तानि च लक्षणानि ॥

आमाशयोद्भव (प्रत्यानाह) माह—**तस्मिन्भवन्त्यामसमुद्भवे तु तृष्णाप्रतिश्यायशिरोविदाहाः ।**
आमाशये शूलमथो गुरुत्वं हृत्स्तम्भ उद्गारविघातनं च ॥

पेट फुलाते हैं।पर आध्मान और प्रत्याध्मान पक्वाशय अथवा आमाशय के वैगुण्य से सि
को ही रोक कर होते हैं। इसके सिवाय आनाहों में अनेक उपद्रव होते हैं जो आध्मान
होते। अतः पहचानने में वैद्य भूल न करें॥ ४९॥

उरोग्रहहृद्रोगयोर्भेदाः–**उरोग्रहस्तथा चैको हृद्रोगाः पञ्च कीर्त्तिताः।**
वातादिभिस्त्रयःप्रोक्ताश्चतुर्थः सन्निपाततः।पञ्चमः क्रिमिसञ्ज्ञ

उरो(१)**ग्रह** रोग एक ही प्रकार का होता है।

विमर्श—यह वातकफ से होता है। इसमें छाती जकड़ जाती है॥

(२)**हृद्रोग** पांच प्रकार का होता है। १–वातज, २–पित्तज, ३–कफज, ४–सन्नि
एवं ५–पांचवां कृमि से होता है।

विमर्श—वातादि दोष **रस** धातु को दूषित कर उसके साथ जब हृदय में पहुंचते हैं
हृद्रोग उत्पन्न करते हैं। **कृमिज हृद्रोग** आमाशय में उत्पन्न **हृदयाद** नामक कृमि से
है। इसके लक्षण कृमि रोग जैसे जानें। विशेष कर इसमें हृदय में भक्षण करने के
पीड़ा होती है, क्योंकि ये क्रिमि हृदय को भक्षण करते हैं॥ ५०॥

उदररोगभेदाः—···**तथाऽष्टावुदराणि चावातात्पित्तात्कफात्त्रीणि त्रिदोषेभ्यो जला**
प्लीह्नः क्षताद्बद्धगुदादष्टमं परिकीर्त्तितम्॥ ५१॥

उदर(३) **रोग** आठ प्रकार का होता है। १–वातोदर, २–पित्तोदर, ३–कफोदर, ४–

---

(१) उरोग्रहलक्षणम्—**सास्त्रं मांसं यकृत्प्लीह्नोः सद्योवृद्धिं यदा गतौ।**
उरोग्रहं तदा कुक्षौ कुरुतः कफमारुतौ॥

(२) हृद्रोगनिदानम्—**अत्युष्णगुर्वम्लकषायतिक्तश्रमाभिघाताध्यशनप्रसङ्गैः।**
सञ्चिन्तनैर्वेगविधारणैश्च हृदामयः पञ्चविधः प्रदिष्टः॥

सम्प्राप्तिपूर्वकं लक्षणम्—**दूषयित्वा रसं दोषा विगुणा हृदयं गताः।**
हृदि बाधां प्रकुर्वन्ति हृद्रोगं तं प्रचक्षते॥

वातिकमाह—**आयम्यते मारुतजे हृदयं तुद्यते तथा।**
निर्मथ्यते दीर्यते च स्फोट्यते पाट्यतेऽपि च॥

पैत्तिकमाह—**तृष्णोष्मादाहचोषाः स्युः पैत्तिके हृदयक्लमः।**
धूमायनं च मूर्च्छा च स्वेदः शोषो मुखस्य च॥

कफजमाह—**गौरवं कफसंस्रावोऽरुचिः स्तम्भोऽग्निमार्दवम्।**
माधुर्यमपि चास्यस्य बलासावतते हृदि॥

सन्निपातजमाह—**विद्यात्त्रिदोषमप्येवं सर्वलिङ्गं हृदामयम्।**

क्रिमिजमाह—**उत्क्लेदः ष्ठीवनं तोदः शूलं हृल्लासकस्तमः।**
अरुचिः श्यावनेत्रत्वं शोथश्च क्रिमिजे भवेत्॥

(३) उदरनिदानम्—**रोगाः सर्वेऽपि मन्देऽग्नौ सुतरामुदराणि च।**

वातोदर, ५–जलोदर, ६–प्लीहोदर, ७–क्षतोदर और ८–बद्धगुदोदर।

अजीर्णान्मलिनैश्चान्नैर्जायन्ते मलसञ्चयात्॥

सम्प्राप्तिमाह—रुद्ध्वा स्वेदाम्बुवाहीनि दोषाः स्रोतांसि सञ्चिताः।
प्राणाग्न्यपानान् सन्दूष्य जनयन्त्युदरं नृणाम्॥

सामान्यलक्षणम्—आध्मानं गमनेऽशक्तिर्दौर्बल्यं दुर्बलाग्निता।
शोथः सदनमङ्गानां सङ्गो वातपुरीषयोः॥
दाहस्तन्द्रा च सर्वेषु जठरेषु भवन्ति हि।

वातोदरमाह—तत्र वातोदरे शोथः पाणिपान्नाभिकुक्षिषु।
कुक्षिपार्श्वोदरकटिपृष्ठरुक्पर्वभेदनम्॥
शुष्ककासोऽङ्गमर्दोऽधोगुरुता मलसङ्ग्रहः॥

श्यावारुणत्वगादित्वमकस्माद् वृद्धिह्रासवत्। सतोदभेदमुदरं तनुकृष्णशिराततम्। आध्मातदृतिवच्छब्दमाहतं प्रकरोति च। वायुश्चातिसरुक् शब्दो विचरेत्सर्वतो गतिः॥

पित्तोदरमाह—पित्तोदरे ज्वरो मूर्च्छा दाहस्तृट् कटुकास्यता।
भ्रमोऽतिसारः पीतत्वं त्वगादावुदरं हरित्॥

पीतताम्रशिरानद्धं सस्वेदं सोष्म दह्यते। धूमायते मृदुस्पर्शं क्षिप्रपाकं प्रदूयते॥

कफोदरमाह—श्लेष्मोदरेऽङ्गसदनं स्वापश्वयथुगौरवम्।
निद्रोत्क्लेशोऽरुचिः श्वासः कासः शुक्लत्वगादिता॥
उदरं स्तिमितं स्निग्धं शुक्लराजीततं महत्।
चिराभिवृद्धं कठिनं शीतस्पर्शं गुरु स्थिरम्॥

सन्निपातजमाह—स्त्रियोऽन्नपानं नखलोममूत्रविडार्त्तवैर्युक्तमसाधुवृत्ताः।
यस्मै प्रयच्छन्त्यरयो गरांश्च दुष्टाम्बुदूषीविषसेवनाद्वा॥
तेनाशु रक्तं कुपिताश्च दोषाः कुर्युः सुघोरं जठरं त्रिलिङ्गम्।
तच्छीतवाते भृशदुर्दिने च विशेषतः कुप्यति दह्यते च॥
स चातुरो मुह्यति हि प्रसक्तं पाण्डुः कृशः शुष्यति तृष्णया च।
दूष्योदरं कीर्त्तितमेतदेव प्लीहोदरं कीर्त्तयतो निबोध।

प्लीहोदरलक्षणम्—विदाह्यभिष्यन्दिरतस्य जन्तोः प्रदुष्टमत्यर्थमसृक्कफश्च।
प्लीहाभिवृद्धिं कुरुतः प्रवृद्धौ प्लीहोत्थमेतज्जठरं वदन्ति।
तद्वामपार्श्वे परिवृद्धिमेति विशेषतः सीदति चातुरोऽत्र।
मन्दज्वराग्निः कफपित्तलिङ्गैरुपद्रुतः क्षीणबलोऽतिपाण्डुः॥

प्लीहोदरस्यैव भेदं यकृ-सव्यान्यपार्श्वे यकृति प्रदुष्टे ज्ञेयं यकृद्दाल्युदरं तदेव।

दाल्युदरमाह— उदावर्त्तरुजानाहैस्तृण्मोहदहनज्वरैः।
गौरवारुचिकाठिन्यैर्विद्यात्तत्र मलान् क्रमात्॥

विमर्श—यह रोग उदर को आश्रय करके ही होता है, अतः उसकी **उदर रोग** सं
सन्निपातोदर को अन्यत्र **दूष्योदर** कहा गया है, क्योंकि यह आगन्तुक विष आदि
तुओं को दूषित कर उत्पन्न होता है यानी **दूषीविष** से उत्पन्न होता है। अतः **दूष्योदर** सं

जलोदर–दुष्ट–जलादि–पान से या स्नेहपान या अनुवासन, वमन, विरेचनादि के बाद
शीतल जल के पीने से उत्पन्न होता है। इसमें उदरस्थ शिराओं में जल का सञ्चय है
अतः **जलोदर** संज्ञा ठीक ही है। यह यद्यपि स्वतन्त्र भी होता है, पर अन्यान्य उदर
प्रतीकार के अभाव में **जलोदर** में परिणत हो जाते हैं। जलोदर भेषजसाध्य व्याधि न
इसके लिये शस्त्रक्रिया ही एक मात्र साधन है।

प्लीहोदर प्लीहा के बढ़ने से होता है। **प्लीहा**–वाम पार्श्व में है अतः प्लीहो
वामपार्श्व में ही वृद्धि को प्राप्त होता है। यहां **यकृद्दाल्युदर** को **श्रीशार्ङ्गधराचार्य** ने
होदर के ही अन्तर्गत कर दिया है, अतः पृथक् पाठ नहीं किया। कारण यह कि
लक्षण प्रायः एक से ही होते हैं, एवं चिकित्सा भी प्रायः एक ही सी है। फर्क सिर्फ इतना
यकृत् की वृद्धि प्रायः दक्षिण भाग में होती है, यद्यपि वाम भाग में भी यकृत् की वृद्धि है

क्षतोदर—अन्त्रों में अन्दर से अन्न-शल्यादि से या बाहर से प्रहार आदि से क्षत
होता है। इसे **परिस्राव्युदर** भी कहते हैं।

बद्धगुदोदर—गुदा के बद्ध या सङ्कुचित हो जाने से उत्पन्न होता है। गुदा के बद्ध
मल की प्रवृत्ति नहीं होती या होने पर भी कष्ट से और अत्यल्प। अतः पुरीष का सञ्च
से पेट, हृदय और नाभि के बीच में वृद्धि को प्राप्त होता है॥ ५१॥

बद्धगुदोदरमाह—**यस्यान्त्रमन्नैरुपलेपिभिर्वा बालाश्मभिर्वा पिहितं यथावत्**
सञ्चीयते तस्य मलः सदोषः शनैः शनैः सङ्करवच्च नाड्यां
निरुद्ध्यते तस्य गुदे पुरीषं निरेति कृच्छ्रादपि चाल्पमल्पं
हृन्नाभिमध्ये परिवृद्धिमेति तस्योदरं बद्धगुदं वदन्ति॥

क्षतोदरमाह—**शल्यं तथाऽन्नोपहितं यदन्त्रं भुक्तं भिनत्त्यागतमन्यथा वा**
तस्मात् क्षतान्त्रात्सलिलप्रकाशः स्रावः स्रवेद् वै गुदतस्तु
नाभेरधश्चोदरमेति वृद्धिं निस्तुद्यते दाल्यति चातिमात्रं
एतत्परिस्राव्युदरं प्रदिष्टं दकोदरं कीर्त्तयतो निबोध॥

जलोदरमाह—**यः स्नेहपीतोऽप्यनुवासितो वा वान्तो विरिक्तोऽप्यथवा नि**
पिबेज्जलं शीतलमाशु तस्य स्रोतांसि दूष्यन्ति हि तद्वहा
स्नेहोपलिप्तेष्वथवाऽपि तेषु दकोदरं पूर्ववदभ्युपैति।
स्निग्धं महत्तत्परिवृद्धनाभि समाततं पूर्ण मिवाम्बुना च।
यथा दृतिः क्षुभ्यति कम्पते च शब्दायते चापि दकोदरं तत्

गुल्मभेदाः—गुल्मास्त्वष्टौ समाख्याता वातपित्तकफैस्त्रयः ॥ ६२ ॥
द्वन्द्वभेदास्त्रयः प्रोक्ताः सप्तमः सन्निपाततः। रक्तादष्टमकः ख्यातः ... ६३

गुल्मरोग(१) आठ प्रकार का होता है। १–वातिक गुल्म, २–पैत्तिक गुल्म, ३–श्लैष्मिक गुल्म, ४–वातपैत्तिक गुल्म, ५–वातश्लैष्मिक गुल्म, ६–पित्तश्लैष्मिक गुल्म, ७–सान्निपातिक गुल्म और ८–रक्तगुल्म।

---

(१) गुल्मनिदानम्—दुष्टा वातादयोऽत्यर्थं मिथ्याऽऽहारविहारतः।
कुर्वन्ति ह्यष्टधा गुल्मं कोष्ठान्तर्ग्रन्थिरूपिणम् ॥

सामान्यलक्षणम्—हृन्नाभ्योरन्तरे ग्रन्थिः सञ्चारी यदि वाऽचलः।
वृत्तश्चयापचयवान् स गुल्म इति कीर्त्तितः ॥

निदानपूर्वकं वातिकलक्षणम्—रूक्षान्नपानं विषमातिमात्रं विचेष्टनं वेगविनिग्रहश्च।
शोकोऽभिघातोऽतिमलक्षयश्च निरन्नता चानिलगुल्महेतुः ॥
यः स्थानसंस्थानरुजाविकल्पं विड्वातसङ्गं गलवक्त्रशोषम्।
श्यावारुणत्वं शिशिरज्वरं च हृत्कुक्षिपार्श्वांसशिरोरुजं च ॥
करोति जीर्णेऽत्यधिकं प्रकोपं भुक्ते मृदुत्वं समुपैति यश्च।
वातात्स गुल्मो न च तत्र रूक्षं कषायतिक्तं कटु चोपशेते ॥

निदानपूर्वकं पैत्तिकलक्षणम्—कट्वम्ललतीक्ष्णोष्णविदाहिरूक्षक्रोधातिमद्यार्कहुताशसेवा।
आमे विघातो रुधिरं च दुष्टं पैत्तस्य गुल्मस्य निमित्तमुक्तम् ॥
ज्वरः पिपासा सदनाङ्गरागः शूलं महज्जीर्यति भोजने च ॥
स्वेदो विदाहो व्रणवच्च गुल्मः स्पर्शासहः पैत्तिकगुल्मरूपम्।

श्लैष्मिक-द्वन्द्वज-सान्निपातिकलक्षणानि—शीतं गुरु स्निग्धमचेष्टनं च सम्पूरणं प्रस्वपनं दिवा च।
गुल्मस्य हेतुः कफसम्भवस्य सर्वस्तु दुष्टो निचयात्मकस्य ॥
स्तैमित्यशीतज्वरगात्रसादहृल्लासकासारुचिगौरवाणि।
शैत्यं रुगल्पा कठिनोन्नतत्वं गुल्मस्य रूपाणि कफात्मकस्य ॥
निमित्तरूपाण्युपलक्ष्य गुल्मे द्विदोषजे दोषबलाबलं च।
व्यामिश्रलिङ्गानपरांश्च गुल्मांस्त्रीनादिशेदौषधकल्पनार्थम् ॥
महारुजं दाहपरीतमश्मवद् घनोन्नतं शीघ्रविदाहि दारुणम्।
मनःशरीराग्निबलापहारिणं त्रिदोषजं गुल्ममसाध्यमादिशेत्।

रक्तगुल्मस्य लक्षणम्—नवप्रसूताऽहितभोजना या या चामगर्भं विसृजेदृतौ वा।
वायुर्हि तस्याः परिगृह्य रक्तं करोति गुल्मं सरुजं सदाहम्।
पैत्तस्य लिङ्गेन समानलिङ्गं विशेषणं चाप्यपरं निबोध ॥
यः स्पन्दते पिण्डित एव नाङ्गैश्चिरात्सशूलः समगर्भलिङ्गः।
स रौधिरः स्त्रीभव एव गुल्मो मासे व्यतीते दशमे चिकित्स्यः ॥

विमर्श—वातादि दोष दूषित होकर हृदय और नाभि के बीच भाग में गोल ग्रं उत्पन्न करते हैं। यह गाँठ सञ्चरण शील या स्थिर तथा चय और अपचय वाली होती है को **गुल्म** कहते हैं। इसके **आश्रय स्थान** पांच हैं–हृदय, नाभि, दोनों पसवाड़े तथा **वस्ति** कहने से बस्तिगह्वरस्थ गर्भाशय का भी ग्रहण होता है जिसमें रक्तगुल्म उत्पन्न है। अन्यत्र निदान—ग्रन्थों में द्वन्द्वभेदों को छोड़ कर सिर्फ पांच गुल्म ही कहे गये यहां आचार्य ने **चिकित्सा ग्रन्थ** के अनुरोध से ही चिकित्सा–भेदार्थ द्विदोषज गुल्मों पृथक् पाठ दिया है।

रक्तगुल्म सिर्फ स्त्रियों को ही होता है जो **प्रदुष्ट आर्त्तव** से उत्पन्न होता है। कु चार्यों का मत है कि अन्य धातुरूप रक्त से भी **रक्तगुल्म** उत्पन्न होता है जो स्त्री-पुरु को ही होता है। बाह्य या आभ्यन्तर आघात से किसी आशय के अन्दर यदि रक्तस्राव हो और वह ऊर्ध्व मार्ग से या अधोमार्ग से न निकाला जाय।तो जम कर।वातकर्तृत्व होने से गुल्म में परिणत हो जाता है। यदि **पित्त से** पाचित होता है तो पूयोत्पत्ति हो यह कदाचित् ही होता है। रक्तगुल्म स्त्रियों का ही देखने को मिलता है। उसके लक्ष लक्षण से प्रायः समान होने से उसके निर्णय में सावधान होना चाहिये ॥ ५२–५३॥

मूत्राघातभेदाः—···**मूत्राघातास्त्रयोदश। वातकुण्डलिका पूर्वा वाताष्ठीला त**
वातबस्तिस्तृतीयः स्यान्मूत्रातीतश्चतुर्थकः ॥ ५४ ॥
पञ्चमं मूत्रजठरं षष्ठो मूत्रक्षयः स्मृतः। मूत्रोत्सर्गः सप्तमः स्यान्मूत्रग्रन्थिस्तथाऽ
मूत्रशुक्रं तु नवमं विड्घातो दशमः स्मृतः। मूत्रसादश्चोष्णवातो बस्तिकुण्डलिका
त्रयोऽप्येते मूत्रघाताः पृथग्घोराः प्रकीर्त्तिताः ॥ ५६ ॥

मूत्राघात(१) रोग तेरह प्रकार का होता है। १–वातकुण्डलिका, २–वाताष्ठीला, ३ वस्ति, ४–मूत्रातीत, ५–मूत्रजठर, ६–मूत्रक्षय, ७–मूत्रोत्सर्ग, ८–मूत्रग्रन्थि, ९–मूत्रशुक्र, १ ड्विघात, ११–मूत्रसाद, १२ उष्णवात तथा १३–वस्तिकुण्डलिका। इन तेरहों मूत्राघातों सादा, उष्णवात और बस्तिकुण्डलिका अत्यन्त कष्टदायक होते हैं।

आर्त्तवजन्य गुल्म लक्षणम्-**आर्त्तवादपि गुल्मः स्यात् स तु स्त्रीणां प्रजायते।**
अन्यस्त्वसृग्भवः पुंसां तथा स्त्रीणां प्रजायते ॥
गुल्मस्थानम्—**तस्य पञ्चविधं स्थानं पार्श्वे हृन्नाभिवस्तयः।**
(१)मूत्राघातानाह—**जायन्ते कुपितैर्दोषैर्मूत्राघातास्त्रयोदश।**
प्रायो मूत्रविघाताद्यैर्वातकुण्डलिकाऽऽदयः ॥
वातकुण्डलिकालक्षणम्-**रौक्ष्याद् वेगविघाताद् वा वायुर्वस्तौ सवेदनः।**
मूत्रमाविश्य चरति विगुणः कुण्डलीकृतः ॥
मूत्रमल्पाल्पमथवा सरुजं सम्प्रवर्त्तते।
वातकुण्डलिकां तां तु व्याधिं विद्यात सुदारुणम् ॥

विमर्श—इनके लक्षण प्रायः नाम से ही जाने जा सकते हैं, अतः यहां विस्तार भय से नहीं लिखा गया। आजकल के कितने आयुर्वेद को जबरदस्ती अमार्ग से ही आधुनिकता में खींच लाने वाले वैद्य **उष्णवात** को **सुजाक** में अवतारित करते हैं। यह मत सुज्ञसम्मत न होने से अशुद्ध और प्रामादिक है। असल में **सुजाक** का मूत्र के साथ कोई सम्बन्ध नहीं होता। यह आगन्तुज ही होता है ॥ ५४–५६ ॥

अष्ठीलालक्षणम्—**आध्मापयन् बस्तिगुदं रुद्ध्वा वायुश्चलोन्नताम् ।**
कुर्यात्तीव्रार्त्तिमष्ठीलां मूत्रविण्मार्गरोधिनीम् ॥

वातबस्तिलक्षणम्—**वेगं विधारयेद् यस्तु मूत्रस्याकुशलो नरः ।**
निरुणद्धि मुखं तस्य बस्तेर्बस्तिगतोऽनिलः ॥
मूत्रसङ्गो भवेत्तेन बस्तिकुक्षिनिपीडितः ।
वातबस्तिः स विज्ञेयो व्याधिः कृच्छ्रप्रसाधनः ॥

मूत्रातीतलक्षणम्—**चिरं धारयतो मूत्रं त्वरया न प्रवर्त्तते ।**
मेहमानस्य मन्दं वा मूत्रातीतः स उच्यते ॥

मूत्रजठरमाह—**मूत्रस्य वेगेऽभिहते तदुदावर्त्तहेतुतः ।**
अपानः कुपितो वायुरुदरं पूरयेद् भृशम् ॥
नाभेरधस्तादाध्मानं जनयेत्तीव्रवेदनम् । तन्मूत्रजठरं विद्यादधोबस्तिनिरोधनम् ॥

मूत्रक्षयमाह—**रूक्षस्य क्लान्तदेहस्य बस्तिस्थौ पित्तमारुतौ ।**
मूत्रक्षयं सरुग्दाहं जनयेत्तां तदाह्वयम् ॥

मूत्रोत्सङ्गमाह—**बस्तौ वाऽप्यथवा नाले मणौ वा यस्य देहिनः ।**
मूत्रं प्रवृत्तं सज्जेत सरक्तं वा प्रवाहतः ॥
स्रवेच्छनरल्पमल्पं सरुजं वाऽथ नीरुजम् ।
विगुणानिलजो व्याधिः स मूत्रोत्सङ्गसंज्ञितः ॥

मूत्रग्रन्थिमाह—**अन्तर्बस्तिमुखे वृत्तः स्थिरोऽल्पः सहसा भवेत् ।**
अश्मरीतुल्यरुग्ग्रन्थिर्मूत्रग्रन्थिः स उच्यते ॥

मूत्रशुक्रमाह—**मूत्रितस्य स्त्रियं यातो वायुना शुक्रमुद्धतम् ।**
स्थानाच्च्युतं मूत्रयतः प्राक् पश्चाद् वा प्रवर्त्तते ॥
भस्मोदकप्रतीकाशं मूत्रशुक्रं तदुच्यते ।

विड्विघातमाह—**रूक्षान्नभुग्दुर्बलयोर्वातेनाधोकृतं शकृत् ।**
मूत्रस्रोतोऽनुपद्येत विट्संसृष्टं तदा नरः ।
विड्गन्धं मूत्रयेत् कृच्छ्राद्विड्विघातं तमादिशेत् ॥

मूत्रसादमाह—**पित्तं कफो वा द्वौ वाऽपि संहन्येतेऽनिलेन चेत् ।**
कृच्छ्रान्मूत्रं तदा पीतं रक्तं श्वेतं घनं सृजेत् ॥

मूत्रकृच्छ्रभेदाः—मूत्रकृच्छ्राणि चाष्टौ स्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा ॥ ५७ ॥
सन्निपाताच्चतुर्थं स्याच्छुक्रकृच्छ्रं च पञ्चमम् ।
विट्कृच्छ्रं षष्ठमाख्यातं घातकृच्छ्रं च सप्तमम् ।
अष्टमं चाश्मरीकृच्छ्रम्………… ॥ ५८ ॥

(१)मूत्रकृच्छ्र रोग आठ प्रकार का होता है। १–वातज, २–पित्तज, ३ कफज, ४–सन्नि-पातज, ५–शुक्रकृच्छ्र, ६–विट्कृच्छ्र ७–घातकृच्छ्र और ८–अश्मरीकृच्छ्र।

सदाहं रोचनाशङ्खचूर्णवर्णं भवेच्च तत् ।
शुष्कं समस्तवर्णं वा मूत्रसादं वदन्ति तम् ॥

उष्णवातमाह—व्यायामाध्वातपैः पित्तं बस्तिं प्राप्यानिलान्वितम् ।
बस्तिं मेढ्रं गुदं चैव प्रदहत् स्रावयेदधः ॥

मूत्रं हारिद्रमथवा सरक्तं रक्तमेव वा । कृच्छ्रात्पुनः पुनर्जन्तोरुष्णवातं तमादिशे

वस्तिकुण्डलमाह—द्रुताध्वलङ्घनायासैरभिघातात्प्रपीडनात् ।
स्वस्थानाद् वस्तिरुद्वृत्तः स्थूलस्तिष्ठति गर्भवत् ॥

शूलस्पन्दनदाहार्त्तो बिन्दुं बिन्दुं स्रवत्यपि । पीडितस्तु सृजेद्धारां संस्तम्भोद्वेष्टना
बस्तिकुण्डलमाहुस्तं घोरं शस्त्रविषोपमम् । पवनप्रबलं प्रायो दुर्निवारोऽल्पबुद्धि

इतरदोषानुवन्धेन लक्ष-तस्मिन् पित्तान्विते दाहः शूलं मूत्रविवर्णता ।
णम्—श्लेष्मणा गौरवं शोथः स्निग्धं मूत्रं घनं सितम् ॥
श्लेष्मरुद्धविलो बस्तिः पित्तोदीर्णो न सिद्ध्यति ।
अविभ्रान्तबिलः साध्यो न च यः कुण्डलीकृतः ॥
स्याद् बस्तौ कुण्डलीभूते तृण्मोहः श्वास एव च ॥

(१) मूत्रकृच्छ्रनिदा-व्यायामतीक्ष्णौषधरूक्षमद्यप्रसङ्गनृत्यद्रुतपृष्ठयानात् ।
नम्— आनूपमत्स्याध्यशनादजीर्णात्स्युर्मूत्रकृच्छ्राणि नृणां तथा
सम्प्राप्तिपूर्वकं वातजा-पृथङ्मलाः स्वैः कुपिता निदानैः सर्वेऽथवा कोपमुपेत्य
दिभेदेन लक्षणम्— मूत्रस्य मार्गं परिपीडयन्ति यदा तदा मूत्रयतीह कृच्छ्रा
तीव्रार्त्तिरुग्वङ्क्षणबस्तिमेढ्रे स्वल्पं मुहुर्मूत्रयतीह वाता
पीतं सरक्तं सरुजं सदाहं कृच्छ्रं मुहुर्मूत्रयतीह पित्तात् ॥
बस्तेः सलिङ्गस्य गुरुत्वशोथौ मूत्र सकृच्छ्रं कफमूत्रकृच्छ्रे
सर्वाणि रूपाणि च सन्निपाताद्भवन्ति तत्कृच्छ्रतमं हि

शल्यजमाह—मूत्रवाहिषु शल्येन क्षतेष्वभिहतेषु वा ।
मूत्रकृच्छ्रं तदाघाताज्जायते भृशदारुणम् । वातकृच्छ्रेण तुल्यानि तस्य लिङ्गानि

पुरीषजमाह—शकृतस्तु प्रतीघाताद्वायुर्विगुणतां गतः ।
आध्मानं वातशूलं च मूत्रसङ्गं करोति च ॥

विमर्श—ये आठ प्रकार के **मूत्रकृच्छ्** स्वतन्त्र तथा उपसर्ग रूप में भी होते हैं, यथा—**सुजाक** और **निरुद्धप्रकश** रोगों में। "मूत्राघात और "**मूत्रकृच्छ्**" दोनों ही **मूत्रसंस्थान** के रोग हैं। तथा उनके कारणादि भी प्रायः एक से हैं, यथा—मूत्रशुक्र, शुक्रकृच्छ्र, विड्घात-विट्कृच्छ्र आदि, अतः इन दोनों का भेद करना व्यर्थ है" ऐसी शङ्का प्रायः की जाती है। पर इनका भेद स्थानादि-भेद से तथा चिकित्साभेदार्थ करना नितान्त आवश्यक है। इनका भेद तो नाम से ही स्पष्ट हो जाता है। **मूत्राघात**—मूत्र की अभिनिर्वृत्ति में **घात** याने बाधा होना है तथा **मूत्रकृच्छ्** सिर्फ मूत्र के निकलने में कष्ट होना है। **मूत्राघात रोग**—मूत्र निर्माण करने वाले यन्त्र वृक्कद्वय, मूत्रवहप्रणालीद्वय तथा वस्ति के विकृत होने से यानी अपनी क्रिया में आघात होने से उत्पन्न होते हैं। पर मूत्रकृच्छ्र रोग सिर्फ मूत्र-प्रसेक मार्ग का रोग है। दोषों या आगन्तुक कारणों से मूत्रमार्ग का अवरोध या सङ्कोच होने से मूत्र के निकलने में कठिनाई होती है। यही **मूत्रकृच्छ्** है। **मूत्राघात** रोग में प्रायः मूत्र की प्रवृत्ति नहीं होती, पर मूत्रकृच्छ्र में प्रवृत्ति तो होती है किन्तु निकलने में कष्ट होता है। **सुजाक** में मूत्रमार्ग के घाव में पूय के जम जाने से मूत्रमार्ग रुक जाता है अतः मूत्र के निकलने में भयङ्कर पीडा होती है। यह भी **मूत्रकृच्छ्** ही है, पर इसे हम उपर्युक्त आठ मूत्रकृच्छ्रों में नहीं गिन सकते अथवा इसे नवम **मूत्रकृच्छ्** भी नहीं कह सकते। यह **सुजाक** का एक लक्षण या उपद्रव ही हो सकता है पृथक् रोग नहीं। क्योंकि यह गौण और सुजाक का अनुबन्ध है। उपद्रव लक्षण यथा—

"**व्याधेरुपरि यो व्याधिः भवत्युत्तरकालजः। उपक्रमाविरोधी च स उपद्रवसंज्ञितः॥**" इति।

अतः यह उपद्रव ही है। इसी तरह **निरुद्धप्रकश** में भी मणि के अति पीडित होने से प्रसेकद्वार सङ्कुचित होकर **मूत्रकृच्छ्** होता है। यह भी उपद्रव या लक्षण ही है, पृथक् रोग नहीं॥ ५७-५८॥

अश्मरीभेदाः—"'**चतुर्द्धा चाश्मरी मता। वातात्पित्तात्कफाच्छुक्रात्**"' ॥ ५९॥

अश्मरी(१) यानी पथरी रोग चार प्रकार का होता है। १-वातज, २-पित्तज, ३-कफज और ४-शुक्राश्मरी।

शुक्रजमाह—**शुक्रदोषैरुपहते मूत्रमार्गे विधाविते।**
स शुक्रं मेहयेत्कृच्छ्राद्वस्तिमेहनशूलवान्॥

अश्मरीजन्यमाह—**अश्मरीहेतुकं चापि मूत्रकृच्छ्रमुदाहृतम्॥**

(१) अश्मरीनिदानम्—**वातपित्तकफैस्तिस्रश्चतुर्थी शुक्रजा परा।**
प्रायः श्लेष्माश्रयाः सर्वा अश्मर्यः स्युर्यमोपमाः।

सम्प्राप्तिमाह—**विशोषयेद् बस्तिगतं सशुक्रं मूत्रं सपित्तं पवनः कफं वा।**
यदा तदाऽश्मर्युपजायते च क्रमेण पित्तेष्विव रोचना गोः॥

अनेकदोषाश्रयत्वम्—**नैकदोषाश्रयाः सर्वा अश्मर्यः पूर्वलक्षणम्॥**
बस्त्याध्मानं तदासन्नदेशेषु परितोऽतिरुक्।
मूत्रे बस्तसगन्धत्वं मूत्रकृच्छ्रं ज्वरोऽरुचिः॥

विमर्श—इसमें सान्निपातिक अश्मरी नहीं कही गई क्योंकि सब अश्मरी ही सान्नि होती है। दोषों के उल्वण अनुसार व्यपदेश है; पूर्वोक्त तीन अश्मरी स्त्री और पुरुष दोनों है तथा प्रायः लड़कों में ही होती है। यदि ये बड़ों को होती है तो निकालने में होती है। शुक्राश्मरी बालक और स्त्री को नहीं होती। यह बड़े लोगों में ही शुक्रवेग को धारण करने से उत्पन्न होती है ॥ ५९ ॥

कफजमेहभेदाः— **इक्षुमेहः सुरामेहः पिष्टमेहश्च सान्द्रकः ।**
शुक्रमेहोदकाख्यौ च लालामेहश्च शीतकः ॥
सिकताख्यः शनैर्मेहो दशैते कफसम्भवाः ॥ ६० ॥

प्रमेह(१) बीस प्रकार का होता है। १–इक्षुमेह, २–सुरामेह, ३–पिष्टमेह, ४–

सामान्यलक्षणम्—**सामान्यलिङ्गं रुङ् नाभिसेवनीबस्तिमूर्द्धसु ।**
विशीर्णधारं मूत्रं स्यात्तया मार्गे निरोधिते ॥
तद्व्यपायात्सुखं मेहेदच्छगोमेदकोपमम् ।
तत्संक्षोभात्क्षते सास्रमायासाच्चातिरुग्भवेत् ॥

वाताश्मरीलक्षणम्—**तत्र वाताद् भृशं चार्त्तो दन्तान् खादति वेपते ।**
मेहनं नाभिं पीडयत्यनिशं क्वणन् ॥
सानिलं मुञ्चति शकृन्मुहुर्मेहति बिन्दुशः ।
श्यावारुणाऽश्मरी चास्या स्याच्चिता कण्टकैरिव ॥

पित्ताश्मरीलक्षणम्—**पित्तेन दह्यते बस्तिः पच्यमान इवोष्मवान् ।**
भल्लातकास्थिसंस्थाना रक्ता पीताऽसिताऽश्मरी ॥

कफजामाह—**बस्तिर्निस्तुद्यत इव श्लेष्मणा शीतलो गुरुः ।**
अश्मरी महती श्लक्ष्णा मधुवर्णाऽथवा सिता ॥
एता भवन्ति बालानां तेषामेव च भूयसा ।
आश्रयोपचयाल्पत्वाद् ग्रहणाहरणे सुखाः ॥

शुक्राश्मरीमाह—**शुक्राश्मरी तु महतां जायते शुक्रधारणात् ।**
स्थानाच्च्युतममुक्तं हि मुष्कयोरन्तरेऽनिलः ॥
शोषयत्युपसङ्गृह्य शुक्रं तच्छुक्रमश्मरी । बस्तिरुक्कृच्छ्रमूत्रत्वमुष्कश्वयथुकारि
तस्यामुत्पन्नमात्रायां शुक्रमेति विलीयते ॥
पीडिते त्ववकाशेऽस्मिन्नश्मर्येव च शर्करा ।
अणुशो वायुना भिन्ना सा त्वस्मिन्ननुलोमगे ॥
निरेति सह मूत्रेण प्रतिलोमे विबध्यते । मूत्रस्रोतः प्रवृत्ता सा सक्ता कुर्यादुपद्रवा
दौर्बल्यं सदनं कार्श्यं कुक्षिमूलमथारुचिम् ।
पाण्डुत्वमुष्णवातं च तृष्णां हृत्पीडनं वमिम् ॥

(१) प्रमेहनिदानम्—**आस्यासुखं स्वप्नसुखं दधीनि ग्राम्यौदकानूपरसाः पयांसि**

५-शुक्रमेह, ५-उदकमेह, ७-लालामेह, ८-शीतमेह, ९-सिकतामेह और १०-शनैर्मेह। ये १० प्रमेह कफज होते हैं ।

नवान्नपानं गुडवैकृतं च प्रमेहहेतुः कफकृच्च सर्वम् ॥

सम्प्राप्तिमाह—साध्य- मेदश्च मांसं च शरीरजं च क्लेदं कफो वस्तिगतं प्रदूष्य ।

त्वादिकमपि— करोति मेहान्समुदीर्णमुष्णैस्तानेव पित्तं परिदूष्य चापि ॥

क्षीणेषु दोषेष्ववकृष्य धातून् सन्दूष्य मेहान्कुरुतेऽनिलश्च ।

साध्याः कफोत्था दश पित्तजाः षड् याप्या न साध्याः पवनाच्चतुष्काः ॥

समक्रियत्वाद्विषमक्रियत्वान्महात्ययत्वाच्च यथाक्रमं ते ॥

पूर्वरूपमाह—दन्तादीनां मलाढ्यत्वं प्राग्रूपं पाणिपादयोः ।

दाहश्चिक्कणता देहे तृट्स्वाद्वास्ये च जायते ॥

सामान्यलक्षणम्—सामान्यं लक्षणं तेषां प्रभूताविलमूत्रता ।

दोषदूष्यविशेषेऽपि तत्संयोगविशेषतः ॥

मूत्रवर्णादिभेदेन भेदो मेहेषु कल्प्यते ॥

श्लेष्मजानां लक्षणानि-अच्छं बहुसितं शीतं निर्गन्धमुदकोपमम् ॥

मेहत्युदकमेहेन किञ्चिदाविलपिच्छिलम् ॥

इक्षोरसमिवात्यर्थं मधुरं चेक्षुमेहतः । सान्द्रीभवेत्पर्युषितं सान्द्रमेहेन मेहति ॥

सुरामेही सुरातुल्यमुपर्यच्छमधो घनम् । संहृष्टरोमाः पिष्टेन पिष्टवद् बहुलं सितम् ॥

शुक्राभं शुक्रमिश्रं वा शुक्रमेही प्रमेहति। मूत्राणून्सिकतामेही सिकतारूपिणो मलान् ॥

शीतमेही सुबहुशो मधुरं भृशशीतलम् । शनैः शनैः शनैर्मेही मन्दं मन्दं प्रमेहति ॥

लालातन्तुयुतं मूत्रं लालामेहेन पिच्छिलम् ॥

पित्तजानाह—गन्धवर्णरसस्पर्शैः क्षारेण क्षारतोवत् ।

नीलमेहेन नीलाभं कालमेही मषीनिभम् ॥

हारिद्रमेही कटुकं हरिद्रासन्निभं दहत् । विस्रं माञ्जिष्ठमेहेन मञ्जिष्ठासलिलोपमम् ॥

विस्रमुष्णं सलवणं रक्ताभं रक्तमेहतः ।

वातजानाह—वसामेही वसामिश्रं वसाभं मूत्रयेन्मुहुः ।

मज्जाभं मज्जमिश्रं वा मज्जामेही मुहुर्मुहुः ॥

कषायं मधुरं रूक्षं क्षौद्रं मेहेन मेहति । हस्ती मत्त इवाजस्रं मूत्रं वेगविवर्जितम् ॥

सलसीकं विबद्धं च हस्तिमेही प्रमेहति ॥

कफजानामुपद्रवाः—अविपाकोऽरुचिश्छर्दिर्निद्रा कासः सपीनसः ।

उपद्रवाः प्रजायन्ते मेहानां कफजन्मनाम् ॥

पित्तजानामुपद्रवाः—बस्तिमेहनयोः शूलं मुष्कावदरणं ज्वरः ।

दाहस्तृष्णाऽम्लिका मूर्च्छा विड्भेदः पित्तजन्मनाम् ॥

विमर्श—इसमें **इक्षुमेह** में पेशाव गन्धवर्णादि में ईख के रस के तुल्य होता है। सुरामेह में मूत्र, सुरा यानी विना चुवाया मद्य जैसा होता है। मूत्र को स्थिर करने से नीचे सा भाग **किण्व** जैसा बैठ जाता है और ऊपर **सुरामण्ड** सा स्वच्छभाग होता है। पिष्टमेह में पेशाव के साथ चावलों की पिष्टी सी आती है। **सान्द्रमेह** में पेशाव को रात में रख सुवह सान्द्र यानीघन हो जाता है। शुक्रमेह में मूत्र के साथ शुक्र मिला हुवा रहता है। उदक मेह में मूत्र स्वच्छ जल जैसा स्वच्छ व निर्गन्ध होता है। **लालामेह** में मूत्र तन्तुल होता है। **शीतमेह** में मूत्र शीत और अधिक परिमाण में आता है, पेशाव करते रोगी शीत से कांप जाता है। **सिकतामेह** में पेशाव के साथ बालू आती है। **शनैर्मेह** में मूत्र धीरे एवम् अल्प मात्रा में आता है। ये दस प्रमेह कफ दोष से होते हैं तथा सुखसाध्य भी हैं।

पित्तजहभेदाः—**मञ्जिष्ठाख्यो हरिद्राख्यो नीलमेहश्च रक्तकः।**
कृष्णमेहः क्षारमेहः षडेते पित्तसम्भवाः॥ ६१॥

१–मञ्जिष्ठामेह, १–हरिद्रामेह, ३–नीलमेह, ४–रक्तमेह, ५–कृष्णमेह और ६–क्षारमेह ये ६ प्रमेह पित्तज हैं।

विमर्श—इनके लक्षण भी नामानुसार वर्णवाले मूत्र होते हैं। ये छः प्रमेह पित्त से उत्पन्न होते हैं एवं कष्टसाध्य या याप्य हैं॥ ६१॥

वातकमेहभेदाः—**हस्तिमेहो वसामेहो मज्जामेहो मधुप्रभः॥**
चत्वारो वातजा मेहा इति मेहाश्च विंशतिः॥ ६२॥

१–हस्तिमेह, २–वसामेह, ३–मज्जामेह और ४–मधुमेह। ये ४ प्रमेह वातज हैं। इस भांति ये २० प्रकार के प्रमेह हुये।

विमर्श—हस्तिमेह में पुरुष मस्त हाथी के जैसा वेगरहित मूतता है। **वसामेह** में वसा मिश्रित रहती है या मूत्र वसा जैसा गन्ध–वर्णवाला होता है। **मज्जामेह** ... अधिक कषाय और रूक्ष होता है जैसा कि मधु। इसमें शक्कर का अधिक अंश होने से वजन में भी भारी होता है। ये चार मेह वातजनित हैं तथा असाध्य हैं। **प्रमेहरोग** में रक्त, जलधातु, रस, शुक्र, वसा, लसीका, मज्जा, ओज प्रभृति सौम्य धातुयें दूषित होती हैं अतः इनका प्रतीकार भी श्लेष्मा जैसा होता है। इस तरह समान क्रिया होने से कफज साध्य होते हैं, विषमक्रिय होने से **पित्तज मेह** याप्य होते हैं तथा गम्भीर धातुओं के ...

वातिकानामुपद्रवाः—**वातजानामुदावर्त्तकम्पहृद्ग्रहलोलताः।**
शूलमुन्निद्रता शोषः कासः श्वासश्च जायते॥

प्रमेहदोषदूष्यवर्गमाह—**कफः सपित्तः पवनश्च दोषा मेदोऽस्रशुक्राम्बुवसालसीका।**
मज्जारसौजः पिशितं च दूष्याः प्रमेहिणां विंशतिरेव मेहाः॥

उपेक्षाकृतो मधुमेहत्वं यान्ति—**सर्व एव प्रमेहास्तु कालेनाप्रतिकारिणः।**
मधुमेहत्वमायान्ति तदाऽसाध्या भवन्ति हि॥

मधुमेहे मधुसमं जायते स किल द्विधा। क्रुद्धे धातुक्षयाद्वायौ दोषावृतपथेऽथवा।

करने एवम् महात्ययिक होने के कारण **वातज मेह** असाध्य ही होते हैं। मूत्र का किसी तरह गँदला और अधिक मात्रा में होना ही सामान्यतः प्रमेह का लक्षण है। पर इसमें पूर्वरूप पर भी ध्यान देना चाहिये ॥ ६२ ॥

सोमरोगप्रमेहपिटिकयोर्भेदाः—

सोमरोगस्तथा चैकः प्रमेहपिटिका दश ।
शराविका कच्छपिका पुत्रिणी विनताऽलजी ॥ ६३ ॥
मसूरिका सर्षपिका जालिनी च विदारिका ॥
विद्रधिश्च दशैताः स्युः पिटिका मेहसम्भवाः ॥ ६४ ॥

सोम (१)रोग एक ही प्रकार का होता है।

विमर्श—इसमें सर्वशरीरगत जल धातु क्षुभित होकर निर्मल जल जैसा अधिक मात्रा में बाम्बार मूत्र-मार्ग से जाता है। इसमें इतना वेग होता है कि संभाल नहीं जाता। यह सिर्फ स्त्रियों को ही होता है। यद्यपि इसके लक्षणादि उदकमेह के तुल्य ही हैं तथापि इसे अलग रोग माना गया है, क्योंकि प्रमेह स्त्रियों को नहीं होता। **अब्धातु** के क्षय से इस रोग में प्यास, मुख का सूखना, गात्रसाद, बलहानि आदि हो जाते हैं।

प्रमेह(२)पिडका दस प्रकार की होती हैं १–शराविका, २–कच्छपिका, ३–पुत्रिणी, ४–विनता, ५–अलजी, ६–मसूरिका, ७–सर्षपिका, ८–जाहिनी, ९–विदारिका और १०विद्रधि।

---

(१) सोमरोगमाह—**स्त्रीणामतिप्रसङ्गेन शोकाच्चापि श्रमादपि ।**
अतिसारकयोगाद्वा गरयोगात्तथैव च ॥
आपः सर्वशरीरस्थाः क्षुभ्यन्ति च स्रवन्ति च ।
तस्यास्ताः प्रच्युताः स्थानान्मूत्रमार्गं व्रजन्ति हि ॥
प्रसन्ना विमलाः शीता निर्गन्धा नीरुजाः सिताः ।
स्रवन्ति चातिमात्रं ताः सा न शक्नोति दुर्बला ॥
वेगं धारयितुं तासां न सुखं बिन्दते क्व चित् ।
शिरःशिथिलता तस्या मुखं तालु च शुष्यति ॥
मूर्च्छा जृम्भा प्रलापश्च त्वग्रूक्षा चातिमात्रतः ।
भक्ष्यैर्भोज्यैश्च पेयैश्च न तृप्तिं लभते सदा ॥
सन्धारणाच्छरीरस्य ता आपः सोमसंज्ञिताः ।
ततः सोमक्षयात्स्त्रीणां सोमरोग इति स्मृतः ॥

(२) प्रमेहपिडिकाया **ये यन्मयाः स्मृता मेहास्तेषामेतास्तु तन्मयाः ।**
लक्षणानि–कारणञ्च—**विना प्रमेहमप्येता जायन्ते दुष्टमेदसः ॥**
तावच्चैता न लक्ष्यन्ते यावद्वास्तुपरिग्रहाः ॥
अन्तोन्नता च तद्रूपा निम्नमध्या शराविका ।
सदाहा कूर्मसंस्थाना ज्ञेया कच्छपिका बुधैः ॥

विमर्श—१–**शराविका**–शराव जैसी बीच में नीची और चारों ओर ऊँची होती। २–**कच्छपिका**–कछुए की जैसी बीच में ऊची तथा चारों ओर उतार वाली दाहयुक्त होती। ३–**पुत्रिणी**–पिडका के चारों ओर छोटी छोटी पिडकायें होती हैं। ४–**विनता**–यह पिडका पीड़ा और क्लेद वाली, नीले रङ्ग की पेट या पीठ में होती है। ५–**अलजी** पिडका एकत्र छोटे छोटे फुन्सियों के समूह को कहते हैं। ६–**मसूरिका**–मसूर जैसी फुंसियों को कहते। ७–**सर्षपिका**–सफेद सरसो जैसी फुंसियों को कहते हैं। ८–**जालिनी**–पिडका मांसजाल घिरी हुई अत्यन्त दाहवती होती है। ९–**विदारिका**–विदारीकन्द जैसी गोल उभरी हुई होती। **विद्रधिका**–विद्रधि जैसी होती है। प्रमेह की उपेक्षा से मेद के अत्यन्त दूषित हो जा ही ये पिडकायें उत्पन्न होती हैं। विना प्रमेह के भी मेदोदुष्टि से ये पिडकायें हो जा इनकी चिकित्सा व्रणवत् जानें ॥६३–६४॥

मेदोदोषशोथरोगभेदाः–**मेदोदोषस्तथा चैकः शोथरोगा नव स्मृताः।**
दोषैः पृथग्द्वयैः सवरभिघाताद्विषादपि ॥ ६९ ॥

मेदोरोग(१) एक ही तरह का होता है।

विमर्श—जो कफकारक मधुरप्राय और स्निग्ध भोजन करते एवं व्यायाम नहीं उन्हींको चरबीके अधिक बढ़ जानेसे यह रोग होता है। हलुवा पूरी खाकर गद्दे तकिये

जालनी तीव्रदाहा तु मांसजालसमावृता। अवगाढरुजोत्क्लेदा पृष्ठे वाऽप्युदरेऽपि।
महती पिडिका नीला सा बुधैर्विनता स्मृता।
रक्ता सिता स्फोटवती दारुणा त्वलजी भवेत् ॥
मसूरदलसंस्थाना विज्ञेया तु मसूरिका। गौरसर्षपसंस्थाना तत्प्रमाणा च सर्षपी।
महत्यल्पचिता ज्ञेया पिडिका चापि पुत्रिणी।
विदारिकन्दवद् वृत्ता कठिना च विदारिका ॥
विद्रधेर्लक्षणैर्युक्ता ज्ञेया विद्रधिका तु सा ॥
असाध्यलक्षणादि—**गुदे हृदि शिरस्यंसे पृष्ठे मर्मसु चोत्थिताः।**
सोपद्रवा दुर्बलाग्नेः पिडिकाः परिवर्जयेत् ॥
उपद्रवानाह—**तृट्कासमांससङ्कोचमोहहिक्कामदज्वराः।**
विसर्पमर्मसंरोधाः पिडिकानामुपद्रवाः ॥
(१) मेदोनिदानम्—**अव्यायामदिवास्वप्नश्लेष्मलाहारसेविनः।**
मधुरोऽन्नरसः प्रायः स्नेहान्मेदः प्रवर्द्धयेत् ॥
मेदसावृतमार्गत्वात्पुष्यन्त्यन्येन धातवः। मेदस्तु चीयते तस्मादशक्तः सर्वकर्मसु।
मेदसः स्थितिः—**मेदस्तु सर्वभूतानामुदरेऽणवस्थिसंस्थितम्।**
अत एवोदरे वृद्धिः प्रायो मेदस्विनो भवेत् ॥
मेदस्विलक्षणम्—**क्षुद्रश्वासतृषामोहस्वप्नक्रथनसादनैः।**
युक्तः क्षुत्स्वेददौर्गन्ध्यैरल्पप्राणोऽल्पमैथुनः ॥

हमेशा बैठे रहने वाले सेठों को इसीलिये यह रोग अधिक होता है। मेद की स्थिति उदरके अण्वस्थियों में होनेसे इस रोगमें तोंद निकल आता है। इसमें क्षुद्रश्वास, प्यास, मोह, नींद, कथन, अवसाद, भूख अधिक लगना, पसीना ज्यादा निकलना तथा शरीरसे दुर्गन्ध आना आदि उपद्रव अधिक होते हैं। मेदस्वी अधिक परिश्रम और मैथुन नहीं कर सकता।

शोथ-(१) रोग नौ प्रकार के होते हैं। १ वातज २ पित्तज, ३ कफज, ४ वातकफज ५ वातपित्तज, ६ पित्तकफज। इस तरह एक दोषज तीन और द्विदोषज तीन, कुल ६ हुये और सन्निपातज एक अभिघातज एक और विषज एक, इस प्रकार यह नौ तरह का होता है।

तदतिवृद्धत्वेन वह्नेर्दीप्त-मेदसावृतमार्गत्वाद्वायुः कोष्ठे विशेषतः।

तामाह— चरन् सन्धुक्षयत्यग्निमाहारं शोषयत्यपि॥
तस्मात्स शीघ्रं जरयत्याहारं चापि काङ्क्षति।
विकारांश्चाश्नुते घोरान् कांश्चित्कालव्यतिक्रमात्॥

एतावुपद्रवकरौ विशेषादग्निमारुतौ। एतौ हि दहतः स्थूलं वनं दावानलो यथा॥

अतीवसंवृद्धे दोषाः—मेदस्यतीवसंवृद्धे सहसवानिलादयः।
विकारान् दारुणान् कृत्वा नाशयन्त्याशु जीवितम्॥

अतिस्थूललक्षणम्—मेदोमांसातिवृद्धत्वाच्चलस्फिगुदरस्तनः।
अयथोपचयोत्साहो नरोऽतिस्थूल उच्यते॥

(१) शोथनिदानं ल-रक्तपित्तकफान्वायुर्दुष्टो दुष्टान्बहिःसिराः।
क्षणञ्च— नीत्वा रुद्धगतिस्तैर्हि कुर्यात् त्वङ्मांससंश्रयम्॥
उत्सेधं संहतं शोथं तमाहुर्निचयादतः।
शुद्ध्यामयाभुक्तकृशाबलानां क्षाराम्लतीक्ष्णोष्णगुरूपसेवा।
दध्यामसृच्छाकविरोधिदुष्टगरोपसृष्टान्ननिषेवणं च॥
अर्शांस्यचेष्टा वपुषो ह्यशुद्धिर्मर्मोपघातो विषमा प्रसूतिः।
मिथ्योपचारः परिकर्मणा च निजस्य हेतुः श्वयथोः प्रदिष्टः॥
सगौरवं स्यादनवस्थितत्वं सोत्सेधमूष्माऽथ शिरातनुत्वम्।
सलोमहर्षश्च विवर्णता च सामान्यलिङ्गं श्वयथोः प्रदिष्टम्॥

वातजमाह—चलस्तनुत्वक् परुषोऽरुणोऽसितः प्रसुप्तिहर्षार्तियुतो निमित्ततः।
प्रशाम्यति प्रोन्नमति प्रपीडितो दिवाबली च श्वयथुः समीरणात्॥

पित्तजमाह—मृदुः सगन्धोऽसितपीतरागवान् भ्रमस्वरस्वेदतृषामदान्वितः।
य उष्यते स्पर्शरुगक्षिरोगकृत् पित्तस्य शोफो भृशदाहपाकवान्॥
गुरुः स्थिरः पाण्डुररोचकान्वितः प्रसेकनिद्रावमिवह्निमान्द्यकृत्।
स कृच्छ्रजन्मप्रशमो निपीडितो न चान्नमेद्रात्रिबली कफात्मकः॥

संसर्गजं त्रिदोषजं चाह—निदानाकृतिसंसर्गाच्छ्वयथुः स्याद् द्विदोषजः।

विमर्श--अभिघातज शोथ चोट आदिके लगनेसे तथा **विषज** विषसंस्पर्शसे होते हैं। वायु दूषित होकर रक्त, पित्त और कफ को बाह्य शिराओं में ले जाकर रु होनेसे त्वक् और मांसमें रह कर शोथ यानी सूजन उत्पन्न करता है। यह **व्रण शोथ** से ही है। **व्रणशोथ** के त्वक्, मांस, शिरा स्नायु आदि आठ आश्रय होते हैं पर शोथके त्वक् और मांस ही हैं। **व्रणशोथ** सिर्फ एक ही अङ्गमें होता है पर **शोथ** सर्वगात्रमें भी है। अतः **शोथ** पृथक् रोग है ॥ ६५ ॥

वृद्धिरोगभेदाः—**वृद्धयः सप्त गदिता वातात्पित्तात्कफेन च ।**
रक्तेन मेदसा मूत्रादन्त्रवृद्धिश्च सप्तमी ॥ ६६ ॥

वृद्धि—(१) यानी अण्डकोषके बढ़ने का रोग सात प्रकार का होता है। १ वात २ पित्तज, ३ कफज, ४ रक्तज, ५ मेदोज, ६ मूत्रज तथा ७ अन्त्रवृद्धि।

सर्वाकृतिः सन्निपाताच्छोफो व्यामिश्रलक्षणः ॥
अभिघातजमाह—**अभिघातेन शस्त्रादिच्छेदभेदक्षतादिभिः ।**
हिमानिलोदध्यनिलैर्भल्लातकपिकच्छुजैः ॥
रसैः शूकैश्च संस्पर्शात् श्वयथुः स्याद्विसर्पवान् ।
भृशोष्मा लोहिताभासः प्रायशः पित्तलक्षणः ॥

विषजमाह—

विषजः सविषप्राणिपरिसर्पणमूत्रणात् । दंष्ट्रादन्तनखाघातादविषप्राणिनामपि ।
विण्मूत्रशुक्रोपहतमलवद्वस्त्रसङ्करात् । विषवृक्षानिलस्पर्शाद् गरयोगावचूर्णनात् ।
मृदुश्चलोऽवलम्बी च शीघ्रो दाहरुजाकरः ॥

यत्र स्थिता दोषा यत्र-**दोषाः श्वयथुमूर्ध्वं हि कुर्वन्त्यामाशयस्थिताः ।**
शोथं कुर्वन्ति तदाह—**पक्वाशयस्था मध्ये तु वर्चःस्थानगतास्त्वधः ॥**
कृत्स्नदेहमनुप्राप्ताः कुर्युः सर्वसरं तथा ।
श्वयथोरुपद्रवाः—**श्वासः पिपासा दौर्बल्यं छर्दिश्च ज्वर एव च ।**
यस्य चान्ने रुचिर्नास्ति शोथिनं तं विवर्जयेत् ॥
छर्दिस्तृष्णाऽरुचिः श्वासो ज्वरोऽतीसार एव च ।
सप्तकोऽयं सदौर्बल्यः शोथोपद्रवसंग्रहः ॥

यो मध्यदेशे श्वयथुः स कष्टः सर्वगश्च यः । अर्द्धाङ्गेऽरिष्टभूतः स्याद् यश्चोर्ध्वं परि
अनन्योपद्रवकृतः शोथः पादसमुत्थितः । पुरुषं हन्ति नारीं तु मुखजो गुह्यजो द्व
नवोऽनुपद्रवः शोथः साध्योऽसाध्यः पुरेरितः ।
विवर्जयेत् कुक्ष्युदराश्रितं च तथा गले मर्मणि संश्रितं च ।
स्थूलः खरश्चापि भवेद् विवर्ज्यो यश्चापि बालस्थविराबलाना

(१) वृद्धिनिदानम्—**क्रुद्धोऽनूर्ध्वगतर्वायुः शोथशूलकरश्चरन् ।**

विमर्श—अपान वायु कुपित होकर जब दोषोंको वङ्क्षण सन्धिसे शोथ और शूल के साथ **अण्डकोष** में पहुंचाता है तब अण्डोंमें बहने वाली धमनियों को पीड़ित करके बड़ा कर देता है, सो दोषों से धमनी को पूर्ण करने से **दोषज,** रक्त से भर देने से **रक्तज,** मेद और मूत्र से पूर्ण करने से **मेदोज** और **मूत्रज** बृद्धियां होती हैं। कुपित वायु यदि क्षुद्रान्त्रों को पीडित कर वंक्षण में और फिर वंक्षण से फलकोष में ले जाता है तो **अन्त्रबृद्धि** होती है। यह सिर्फ शस्त्रकर्म से ही अच्छी होती है॥ ६६॥

अण्डवृद्धिगण्डमालिकागण्डालजीरोगाः—

अण्डवृद्धिस्तथा चैका तथैका गण्डमालिका। गण्डालजीति चैका स्याद्··· ॥ ६७॥

अण्डबृद्धि रोग (१) एक ही प्रकार का होता है।

विमर्श—इसे साधारण में **कुरण्ड** कहते हैं। उपर्युक्त रोग में **धमनी** की बृद्धि होती है, पर इसमें **अण्ड** की बृद्धि होती है। यह भेद है।

सुष्कौ वङ्क्षणतः प्रायः फलकोषाभिवाहिनीः॥
प्रपीडय धमनीर्बृद्धिं करोति फलकोषयोः। दोषास्रमेदोमूत्रान्त्रैः स बृद्धिः सप्तधा गदः॥
मूत्रान्त्रजावप्यनिलाद्धेतुभूतश्च केवलः।
तादिभेदेन लक्षणानि—वातपूर्णदृतिस्पर्शो रूक्षो वातादिहेतुरुक्।
पक्वोदुम्बरसंकाशः पित्ताद्दाहोष्मपाकवान्॥
कफाच्छीतो गुरुः स्निग्धः कण्डूमान् कठिनोऽल्परुक्।
कृष्णस्फोटावृतः पित्तबृद्धिलिङ्गश्च रक्तजः॥
कफवन्मेदसो बृद्धिर्मृदुस्तालफलोपमः॥
मूत्रजमाह—मूत्रधारणशीलस्य मूत्रजः स तु गच्छतः।
अम्भोभिः पूर्णदृतिवत् क्षोभं याति सुरुङ्मृदुः॥
मूत्रकृच्छ्रमधस्तात्तु चालयन् फलकोशयोः।
अन्त्रबृद्धिमाह—वातकोपिभिराहारैः शीततोयावगाहनैः।
धारणेरणभाराध्वविषमाङ्गप्रवर्त्तनैः॥
क्षोभणैः क्षुभितोऽन्यश्च क्षुद्रान्त्रावयवं यदा।
पवनो विगुणीकृत्य स्वनिवेशादधो नयेत्।
कुर्याद्वङ्क्षणसन्धिस्थो ग्रन्थ्याभं श्वयथुं तदा॥
(१) अण्डबृद्धिः—उपेक्षमाणस्य च मुष्कबृद्धिमाध्मानरुक्स्तम्भवतीं स वायुः।
प्रपीडितोऽन्तः स्वनवान् प्रयाति प्रध्मापयन्नेति पुनश्च मुक्तः॥
बृद्धेरसाध्यता—यस्यान्त्रावयवाश्लेषान्मुष्कयोर्वातसञ्चयात्।
अन्त्रबृद्धिरसाध्योऽसौ वातबृद्धिसमाकृतिः॥

गण्डमाला रोग—(१) एक ही प्रकार का होता है।

विमर्श—वात, पित्त, कफ तथा मेद एकत्र ग्रथित होकर जंघास्थित कण्डरा में होने से मछली के अण्डतुल्य गोल गांठ सी उत्पन्न करते हैं। वायुकर्त्तृक ऊपर को प्रे... से दोष कक्षा, मन्या, अंस तथा गलदेशों में भी ऐसे ही गण्ड उत्पन्न करते हैं। ये ग... बेर या आमले जैसी बड़ी होती हैं। माला जैसी एक पंक्ति में कई गण्ड उत्पन्न होने... **गण्डमाला** कहते हैं। इसमें वात, कफ तथा मेद ही अधिक प्रबल होते हैं, अतः ... नहीं है। जिसमें पित्त की अधिकता होती है वह पक भी जाती है। यही गण्ड यदि... विरल हो तो उसको अपची कहते हैं॥ ६७॥

विमर्श—गण्डालजी—(२) या **गलगण्ड** रोग एक ही है। यह भी वात, ...

---

(१) गण्डमालानिदा-नम्— **कर्कन्धुकोलामलकप्रमाणैः कक्षांसमन्यागलवङ्क्षणेषु। मेदःकफाभ्यां चिरमन्दपाकैः स्याद् गण्डमाला बहुभिश्च...**

अपची— **ते ग्रन्थयः केचिदवाप्तपाकाः स्रवन्ति नश्यन्ति भवन्ति च... कालानुबन्धं चिरमादधाति सैवापचीति प्रवदन्ति तज्ज्ञाः**

साध्यासाध्ये— **साध्याः स्मृताः पीनसपार्श्वशूलकासज्वरच्छर्दियुतास्त्वसा...**

भोजोक्तं गण्डमालाऽप-च्योर्लक्षणे— **वातपित्तकफा वृद्धा मेदश्चापि समाचितम्। जङ्घयोः कण्डरां प्राप्य मत्स्याण्डसदृशान् बहून्॥ कुर्वन्ति ग्रथितास्तेभ्यः पुनः प्रकुपितोऽनिलः। तान्दोषानूर्ध्वगो वक्षः कक्षमन्यागलाश्रितः॥**

नानाप्रकारान् कुरुते ग्रन्थीन्सा त्वपची मता। अपची कण्ठमन्यासु कक्षावङ्क्ष... गण्डमालां विजानीयादपचीतुल्यलक्षणाम्।

(२) गण्डालजी (गलगण्ड) निदानम्— **निबद्धः श्वयथुर्यस्य मुष्कवल्लम्बते गले। महान्वा यदि वा ह्रस्वो गलगण्डं तमादिशेत्॥**

सम्प्राप्तिः सामान्यलक्षणञ्च— **वातः कफश्चापि गले प्रदुष्टो मन्ये तु संश्रित्य तथैव मेदः। कुर्वन्ति गण्डं क्रमतः स्वलिङ्गैः समन्वितं तं गलगण्डमाहुः॥**

भोजेनाप्युक्तम्— **महान्तं शोथमल्पं वा हनुमन्यागलाश्रयम्। लम्बन्तं मुष्कवद्दृष्टं गलगण्डं विनिर्दिशेत्॥**

तत्र वातप्राधान्यमाह— **तोदान्वितः कृष्णशिराऽवनद्धः श्यावारुणो वा पवनात्मकस्तु। पारुष्ययुक्तश्चिरवृद्धिपाको यदृच्छया पाकमियात्कदाचित्। वैरस्यमास्यस्य च तस्य जन्तोर्भवेत्तथा तालुगलप्रशोषः॥**

कफप्राधान्यमाह— **स्थिरः सवर्णो गुरुरुग्रकण्डूः शीतो महांश्चापि कफात्मकस्तु। चिराभिवृद्धिं भजते चिराद् वा प्रपच्यते मन्दरुजः कदाचित्। माधुर्यमास्यस्य च तस्य जन्तोर्भवेत्तथा तालुगलप्रलेपः॥**

मेद से ही उत्पन्न होता । हनु, मन्या तथा गल देश इसके स्थान हैं। यह बकरे के गले की लुड़की जैसा रूप का होता है ॥ ६७ ॥

ग्रन्थिभेदाः–···ग्रन्थयो नवधा मताः त्रिभिर्दोषैस्त्रयो रक्ताच्छिराभिर्मेदसो व्रणात्।
अस्थ्ना मांसेन नवमः······॥ ६८ ॥

(१)**ग्रन्थि रोग**—नौ प्रकार का होता है। १ वातज ग्रन्थि, २ पित्तजग्रन्थि, ३ श्लेष्मज ग्रन्थि, ४ रक्तज ग्रन्थि, ५ शिराज ग्रन्थि, ६ मेदोजग्रन्थि, ७ व्रणजग्रन्थि, ८ अस्थिजग्रन्थि और ९ मांसजग्रन्थि।

विमर्श—वातादि दोष, रक्त, मांस, मेद, शिरा आदि को दूषित करके गोल और ऊपर को उभरी हुई गांठ सा शोथ तत्तत्स्थानों में उत्पन्न करते हैं, अतः आकृति की समानता से उन्हें भी **ग्रन्थि** कहते हैं ॥ ६८ ॥

अर्बुदभेदाः—······षड्विधं स्यात्तथाऽर्बुदम् ।
वातात्पित्तात्कफाद्रक्तान्मांसादपि च मेदसः ॥ ६९ ॥

अर्बुदरोग—(२) छः प्रकार का होता है। १ वातार्बुद, २ पित्तार्बुद, ३ श्लेष्मार्बुद, ४ रक्तार्बुद, ५ मांसार्बुद, और ६ मेदोऽर्बुद।

मेदः प्राधान्यमाह—**स्निग्धो गुरुः पाण्डुरनिष्टगन्धो मेदोभवः स्वल्परुजोऽतिकण्डूः ।**
प्रलम्बतेऽलाबुवदल्पमूलो देहानुरूपक्षयवृद्धियुक्तः ।
स्निग्धास्यता तस्य भवेच्च जन्तोर्गलेऽनुशब्दं कुरुते च नित्यम् ।

(१) ग्रन्थिनिदानम्—**वातादयो मांसमसृक्प्रदुष्टाः सन्दूष्य मेदश्च तथा शिराश्च ।**
वृत्तोन्नतं विग्रथितं तु शोथं कुर्वन्त्यतो ग्रन्थिरिति प्रदिष्टः ॥

वातजमाह—**आयम्यते वृश्चयति तुद्यते च प्रत्यस्यते मथ्यति भिद्यते च ।**
कृष्णो मृदुर्बस्तिरिवाततश्च भिन्नः स्रवेच्चानिलजोऽस्रमच्छम् ॥

पित्तजमाह—**दन्दह्यते धूप्यति चूष्यते च प्रपच्यते प्रज्वलतीव चापि ।**
रक्तः सपीतोऽप्यथवाऽपि पित्ताद्भिन्नः स्रवेद् दुष्टमतीव चास्रम् ॥

कफजमाह—**शीतोऽविवर्णोऽल्परुजोऽतिकण्डूः पाषाणवत्संहननोपपन्नः ॥**
चिराभिवृद्धिश्च कफप्रकोपाद्भिन्नः स्रवेच्छुक्लघनं च पूयम् ॥

मेदोजमाह—**शरीरवृद्धिक्षयवृद्धिहानिः स्निग्धो महान् कण्डुयुतोऽल्परुक् च ।**
मेदःकृतो गच्छति चात्र भिन्ने पिण्याकसर्पिष्प्रतिमं च मेदः ॥

शिराजमाह—**व्यायामजातैरबलस्य तैस्तैराक्षिप्य वायुर्हि शिराप्रतानम् ।**
सङ्कुच्य सम्पीडय विशोष्य चापि ग्रन्थिं करोत्युन्नतमाशु वृत्तम् ॥

(२) अर्बुदस्य सम्प्राप्ति-**गात्रप्रदेशे क्वचिदेव दोषाः समुत्थिता मांसमसृक् प्रदूष्य ।**
लक्षणञ्च— **वृत्तं स्थिरं मन्दरुजं महान्तमनल्पमूलं चिरवृद्ध्यपाकम् ॥**
कुर्वन्ति मांसोच्छ्रयमत्यगाध तदर्बुदं शास्त्रविदो वदन्ति ॥
वातेन पित्तेन कफेन चापि मांसेन रक्तेन च मेदसा च ।
यज्जायते तस्य च लक्षणानि ग्रन्थेः समानानि तदा भवन्ति ॥

विमर्श—अर्बुद को साधारण भाषा में **रसौली** कहते हैं। वे शरीर में कहीं पर सकते हैं। दोष मांस और रक्त को दूषित करके गोल, बड़े आकार में, गम्भीर मूल और अत्यल्प पीडादायक शोथ उत्पन्न करते हैं। यही अर्बुद है। ये अर्बुद धीरे धीरे रहते हैं और कभी भी नहीं पकते। **माधवनिदान** में दो प्रकार का अर्बुद—**अध्यर्बुद** **द्विरर्बुद** अधिक कहा है। यदि एक अर्बुद के ऊपर और एक अर्बुद उत्पन्न हो जाय **अध्यर्बुद** और एक साथ अथवा क्रमसे एकत्र दो अर्बुद हो तो उसे **द्विरर्बुद** कहते ये उपर्युक्त छः प्रकार में से किसी भी **अर्बुद** के हो सकते हैं, अतः यह प्रकार भेद नहीं अवस्थान्तर ही है। इसलिये यहाँ उनका पृथक् पाठ नहीं है ॥ ६९ ॥

श्लीपदभेदाः - **श्लीपदं च त्रिधा प्रोक्तं वातात्पित्तात्कफादपि ॥ ७० ॥**

श्लीपद रोग—(१) तीन प्रकार का होता है। १ वातिक, २ पैत्तिक और ३ श्लैष्मिक

रक्तार्बुदमाह—**दोषः प्रदुष्टो रुधिरं शिराश्च सङ्कुच्य सम्पीडय ततस्त्वपाक्यम्।**
सास्रावमुन्नह्यति मांसपिण्डं मांसाङ्कुरराचितमाशु वृद्धम्।
करोत्यजस्रं रुधिरप्रवृत्तिमसाध्यमेतद्रुधिरात्मकं तु।
रक्तक्षयोपद्रवपीडितत्वात्पाण्डुर्भवेत्सोऽर्बुदपीडितस्तु ॥

मांसार्बुदमाह—**मुष्टिप्रहारादिभिरर्दितेऽङ्गे मांसं प्रदुष्टं जनयेद्धि शोथम्।**
अवेदनं स्निग्धमनन्यवर्णमपाकमश्मोपसमप्रचाल्यम् ॥
प्रदुष्टमांसस्य नरस्य गाढमेतद् भवेन्मांसपरायणस्य।
मांसार्बुदं त्वेतदसाध्यमुक्तं साध्येष्वपीमानि विवर्जयेत्तु ॥
सम्प्रस्रुतं मर्मसु यच्च जातं स्रोतःसु वा यच्च भवेदचाल्यम्।

अध्यर्बुद-द्विरर्बुदयोर्लक्षणम्—**यज्जायतेऽन्यत् खलु पूर्वजाते ज्ञेयं तदध्यर्बुदमर्बुदज्ञैः।**
यद् द्वन्द्वजातं युगपत् क्रमाद्वा द्विरर्बुदं तच्च भवेदसाध्यम्।

अर्बुदानां पाकाभावे हेतुमाह—**न पाकमायान्ति कफाधिकत्वान्मेदोबहुत्वाच्च विशेषतस्तु।**
दोषस्थिरत्वाद् ग्रथनाच्च तेषां सर्वार्बुदान्येव निसर्गतस्तु।

(१) अथ श्लीपदनिदानम्—**मेदोमांसाश्रयं शोफं पादयोः श्लीपदं भवेत्।**
स्वलिङ्गदर्शिभिर्दोषैस्त्रिधा स्याच्च कफोत्तरम् ॥

सम्प्राप्तिमाह—**यः सज्वरो वङ्क्षणजो भृशार्त्तिः शोथो नृणां पादगतः क्रमेण।**
तच्छ्लीपदं स्यात्करकर्णनेत्रशिश्नौष्ठनासास्वपि केचिदाहुः।

वातजमाह—**वातजं कृष्णरूक्षं च स्फुटितं तीव्रवेदनम्।**
अनिमित्तरुजं तस्य बहुशो ज्वर एव च ॥

पित्तजमाह—**पित्तजं पीतसङ्काशं दाहज्वरयुतं मृदु।**

कफजमाह—**श्लैष्मिकं स्निग्धवर्णं च श्वेतं पाण्डु गुरु स्थिरम् ॥**

असाध्यमाह—**वल्मीकमिव सञ्जातं कण्टकैरुपचीयते।**
अब्दात्मकं महत्तच्च वर्जनीयं विशेषतः ॥

विमर्श—इस रोग में रुग्ण अङ्ग शिलावत् भारी हो जाता है, अतः **श्लीपद** संज्ञा है। प्रायः पाद में ही यह रोग होता है। पर हाथ, कान, नाक, नेत्र के पलक, शिश्न और ओष्ठ में भी हो सकता है। रोग वृद्धि को प्राप्त होने से पाँव हाथी के जैसा मोटा हो जाता है, अतः साधारण में यह **फीलपाँव** के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें प्रथम ज्वर होकर वङ्क्षण सन्धि में कुछ शोथ होता है, फिर शोथ पावों में चला जाता है। यह पुराना पानी और सीड अधिक वाले **अनूप** देश में ही अधिक होता है। **पाश्चात्त्य मत** से यह रोग रस एवं रक्तज **सर्पिल** कृमि विशेष के लसीका मार्गों को रोकने से लसीका संचित होकर होता है। यह रोग प्रायः असाध्य होता है। एक साल बीतने पर तो यह सर्वथा असाध्य हो जाता है। इसके अन्यान्य लक्षणादि निदान में देखें ॥ ७० ॥

व्रणभेदाः—**विद्रधिः षड्विधः ख्यातो वातपित्तकफैस्त्रयः ।**
रक्तात् क्षतात् त्रिदोषैश्च……॥ ७१ ॥

विद्रधि रोग—छः प्रकार का होता है। १–वातिक विद्रधि, २–पैत्तिक विद्रधि, ३–श्लैष्मिक विद्रधि, ४–रक्तज विद्रधि, ५–क्षतज विद्रधि और ६–सान्निपातिक विद्रधि।

विमर्श—त्वक्, रक्त, मांस और मेद को दूषित कर, हड्डियों के आश्रय पर दोष शनैः शनैः अत्युच्च और भयंकर शोथ को उत्पन्न करते हैं। इसे (१) **विद्रधि** कहते हैं। यह गोल

कफस्य व्यभिचारेण प्राधान्यम्—**त्रीण्यप्येतानि जानीयाच्छ्लीपदानि कफोच्छ्रयात् ।**
गुरुत्वं च महत्त्वं च यस्मान्नास्ति कफाद्विना ॥

श्लीपदसम्भवे हेतुभूतान् देशानाह—**पुराणोदकभूयिष्ठाः सर्वर्त्तुषु च शीतलाः ।**
ये देशास्तेषु जायन्ते श्लीपदानि विशेषतः ॥

परमसाध्यलक्षणम्—**यच्छ्लेष्मलाहारविहारजातं पुंसः प्रकृत्याऽपि कफात्मकस्य ।**
सास्रावमत्युन्नतसर्वलिङ्गं सकण्डुरं श्लेष्मयुतं विवर्ज्यम् ॥

(१) विद्रधीनां सम्प्राप्तिः—**त्वग्रक्तमांसमेदांसि प्रदूष्यास्थिसमाश्रिताः ।**
दोषाः शोथं शनैर्घोरं जनयन्त्युच्छ्रिता भृशम् ॥

सामान्यं लक्षणम्—**महामूलं रुजावन्तं वृत्तं वाऽप्यथवाऽऽयतम् ।**
स विद्रधिरिति ख्यातो विज्ञेयः षड्विधश्च सः ॥

वातपित्तकफसन्निपातजानां क्रमेण लक्षणानि—

कृष्णोऽरुणो वा विषमो भृशमत्यर्थवेदनः । चित्रोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिर्वातसम्भवः ।
पक्वोदुम्बरसङ्काशः श्यावो वा ज्वरदाहवान् । क्षिप्रोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिः पित्तसम्भवः॥
शरावसदृशः पाण्डुः शीतः स्निग्धोऽल्पवेदनः। चिरोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिः कफसम्भवः॥
तनुपीतसिताश्चैषामास्रावाः क्रमतः स्मृताः ॥
नानावर्णरुजास्रावो घाटालो विषमो महान् ।
विषमं पच्यते चापि विद्रधिः सान्निपातिकः ॥

या लम्बा, चौड़ा, गम्भीर और भयङ्कर पीडायुक्त होता है। यह **बाह्य** और आभ्य- से दो तरह का होता है। **बाह्य विद्रधि** शरीर के ऊपर कहे अनुसार होता है। आ- **विद्रधि** शरीर के अन्दर आशयों में गुदा, वस्तिमुख, नाभि, कुक्षि, वङ्क्षण, वृक्क, यकृत्, क्लोम तथा हृदय में होता है। **बाह्य विद्रधि** वातादि दोषानुसार लक्षण वा- **सांनिपातिक विद्रधि** सर्व दोषों के लक्षण वाला होता है। बाहर से कोई भारी शोथ या क्षत हो जाने पर यदि उपेक्षा अथवा अपथ्यसेवा हो तो वायु क्षत की गर्मी से

क्षतजमाह (आगन्तुजमाह)—

तैस्तर्भावैरभिहते क्षते चापथ्यकारिणः। क्षतोष्मा वायुविसृतः सरक्तं पित्तमी- ज्वरस्तृष्णा च दाहश्च जायन्ते तस्य देहिनः। आगन्तुर्विद्रधिह्येषपित्तविद्रधिल-

रक्तजमाह—**कृष्णस्फोटावृतः श्यावस्तीव्रदाहरुजाज्वरः।**
पित्तविद्रधिलिङ्गस्तु रक्तविद्रधिरुच्यते॥

अन्तर्विद्रधीनाह—**पृथक् सम्भूय वा दोषाः कुपिता गुल्मरूपिणम्।**
वल्मीकवत्समुन्नद्धमन्तः कुर्वन्ति विद्रधिम्॥
आभ्यन्तरानतस्तूर्ध्वं विद्रधीन्परिचक्षते।
गुर्वसात्म्यविरुद्धान्न-शुष्कशाकाम्लभोजनात्॥
अतिव्यवायव्यायामवेगाघातविदाहिभिः।

आभ्यन्तरविद्रधीनां स्थानं लक्षणञ्च— **गुदे वस्तिमुखे नाभ्यां कुक्षौ वङ्क्षणयोस्तथा।**
वृक्कयोः प्लीह्नि यकृति हृदि वा क्लोम्नि वाऽप्यथ॥
गुदे वातनिरोधश्च बस्तौ कृच्छ्राल्पमूत्रता।
नाभ्यां हिक्का तथाऽटोपः कुक्षौ मारुतकोपनम्॥
कटिपृष्ठग्रहस्तीव्रो वङ्क्षणोत्थे च विद्रधौ।
वृक्कयोः पार्श्वसङ्कोचः प्लीह्न्युच्छ्वासावरोधनम्॥
सर्वाङ्गप्रग्रहस्तीव्रो हृदि कासश्च जायते।
श्वासो यकृति हिक्का च क्लोम्नि पेपीयते पयः॥

स्रावनिर्गममाह—**नाभेरुपरिजाः पक्वा यान्त्यूर्ध्वमितरे त्वधः।**

स्रावानुसारेण साध्यासाध्ये—**अधः स्रुतेषु जीवेत्तु स्रुतेषूर्ध्वं न जीवति॥**

साध्यासाध्यत्वे—**हृन्नाभिवस्तिवर्ज्या ये तेषु भिन्नेषु बाह्यतः।**
जीवेत् कदा चित् पुरुषो नेतरेषु कदा चन॥
साध्या विद्रधयः पञ्च विवर्ज्यः सान्निपातिकः।
आमपक्वविदग्धत्वं तेषां शोफवदादिशेत्॥
आध्मातं बद्धनिष्यन्दं छर्दिहिक्कातृषाऽन्वितम्।
रुजाश्वाससमायुक्तं विद्रधिर्नाशयेन्नरम्॥

कर रक्त एवं पित्त को भी उभाड़ कर, ज्वर, तृष्णा और दाह के साथ विद्रधि में परिणत कर देता है। इसके लक्षण प्रायः पित्त विद्रधिवत् होते हैं। यही **क्षतज** या **आगन्तु विद्रधि** है। **आभ्यन्तर विद्रधियों** के विशेष लक्षण ये हैं—**गुदा में** होने से अधोवायु का निरोध होता है। **बस्तिमुख** में होने से मुश्किल से और थोड़ा सा पेशाब आता है। **नाभि में** होने से हिचकी और आटोप होता है। **कोख में** होने के वात का कोप होता है। **वङ्क्षण सन्धि में** होने से कमर और पृष्ठ का जकड़ना होता है। **वृक्कों में** होने से पसवाड़े सिकुड़ जाते हैं। **प्लीहा में** होने से उच्छ्वास का अवरोध होता है। **हृदय में** होने से प्रत्येक अङ्ग में व्यथा तथा का[illegible] होता है। **यकृत् में होने** से श्वास और हिचकी होती है तथा **क्लोम में** होने से बहुत प्यास मालूम होता है। **हारीत मुनि** कहते हैं कि **नाभि के ऊपर के विद्रधि** पक कर फूटने पर रक्त-मिश्रित पूय मुख से निकलता है तथा **नाभि के नीचे के विद्रधि** फूटने से उभय मार्ग से स्राव होता है। यदि **नीचे को स्राव** हो तो रोगी अच्छा हो सकता है, पर ऊर्ध्वस्राव होने से जीने की आशा नहीं होती। यदि आध्मान हो, बद्ध हो, स्राव न हो, कै, हिक्का, प्यास, पीड़ा तथा श्वास आदि उपद्रव हो तो भी यह रोग असाध्य ही होता है। इनके आम पक्व आदि अवस्था व्रणशोथवत् जानें। **गर्भिणी** या **प्रसूत** स्त्रियों के स्तन में भी दोष शोथ उत्पन्न कर विद्रधि उत्पन्न करते हैं। उसे **स्तनविद्रधि** कहते हैं॥ ७१॥

व्रणभेदाः— **···व्रणाः पञ्चदशोदिताः। तेषां चतुर्द्धा भेदाः स्युरागन्तुर्देहजस्तथा।**

शुद्धो दुष्टश्च विज्ञेयस्तत्संख्या कथ्यते पृथक्।

वातव्रणः पित्तजश्च कफजो रक्तजो व्रणः॥ ७२॥

वातपित्तभवश्चान्यो वातश्लेष्मभवस्तथा।

तथा पित्तकफाभ्यां च सन्निपातेन चाष्टमः॥ ७३॥

नवमो वातरक्तेन दशमो रक्तपित्ततः। श्लेष्मरक्तभवश्चान्यो वातपित्तासृगुद्भवः॥ ७४॥

वातश्लेष्मासृगुत्पन्नः पित्तश्लेष्मास्रसंभवः। सन्निपातासृगुद्भूत इति पञ्चदश व्रणाः॥७५॥

व्रण (१) पन्द्रह प्रकार के होते हैं। **सामान्यतः** वे चार प्रकार के होते हैं। **१–आगन्तु** यानी बाह्य प्रहारादि से उत्पन्न। २–**देहज** यानी शारीरिक दोष से उत्पन्न। ३–शुद्ध यानी दोषों

---

(१) व्रणपूर्वलक्षणम्—**एकदेशोत्थितः शोथो व्रणानां पूर्वलक्षणम्।**

पक्वापक्वविनिश्चयः—**विषमं पच्यते वातात् पित्तोत्थश्चाचिराच्चिरम्।**

कफजः पित्तवच्छोथो रक्तागन्तुसमुद्भवः॥

आमपच्यमानयोर्लक्षणे—**मन्दोष्मताऽल्पशोथत्वं काठिन्यं त्वक्सवर्णता।**

मन्दवेदनता चैव शोफानामामलक्षणम्॥

दह्यते दहनेनेव क्षारेणेव च पच्यते। पिपीलिकागणेनेव दश्यते छिद्यते तथा॥

भिद्यते चैव शस्त्रेण दण्डेनेव च ताडयते।

पीडयते पाणिनेवान्तः सूचीभिरिव तुद्यते॥

के प्रसर से रहित और ४–दुष्ट यानी दोषों से आक्रान्त। पुनः वात, पित्त, कफ और

सोषाचोषो विवर्णः स्यादङ्गुल्येवावपीड्यते।
आसने शयने स्थाने शान्ति वृश्चिकविद्धवत्॥
न गच्छेदाततः शोथो भवेदाध्मातवस्तिवत्।
ज्वरस्तृष्णाऽरुचिश्चैव पच्यमानस्य लक्षणम्॥

पक्वलक्षणम्—वेदनोपशमः शोथो लोहितोऽल्पो न चोन्नतः।
प्रादुर्भावो वलीनां च तोदः कण्डूर्मुहुर्मुहुः॥
उपद्रवाणां प्रशमो निम्नता स्फुटनं त्वचाम्।
वस्ताविवाम्बुसञ्चारः स्याच्छोथेऽङ्गुलिपीडिते॥
पूयस्य पीडयत्येकमन्तमन्ते च पीडिते।
भक्ताकाङ्क्षा भवेच्चतच्छोथानां पक्वलक्षणम्॥

एकदोषारब्धेऽपि शोथपाककाले त्रिदोषसम्बन्धमाह—

नर्त्तेऽनिलाद् रुग् न विना च पित्तं पाकः कफाच्चापि विना
तस्माद्धि सर्वे परिपाककाले पचन्ति शोफांस्त्रिभिरेव दोषैः

अनिर्हृतपूयस्य दोषत्वम्–कक्षं समासाद्य यथैव वह्निर्वाय्वीरितः सन्दहति प्रसह्य।
तथैव पूयोऽप्यविनिस्सृतो हि मांसं सिरास्नायुमपीह खादेत्

आमपक्वादिज्ञानाज्ञाने आमं विदह्यमानं च सम्यक् पक्वं च लक्षणैः।
भिषजां गुणदोषानाह– जानीयात्स भवेद्वैद्यः शेषास्तस्करवृत्तयः॥
यश्छिनत्त्याममज्ञानाद्यश्च पक्वमुपेक्षते।
श्वपचाविव मन्तव्यौ तावनिश्चितकारिणौ॥

व्रणनिदानम्—दोषजो दुष्टदोषः स्यादन्यः शस्त्रादिसम्भवः।

शुद्धव्रणलक्षणम्–जिह्वातलाभोऽतिमृदुः श्लक्ष्णः स्निग्धोऽल्पवेदनः।
सुव्यवस्थो निरास्रावः शुद्धो व्रण इति स्मृतः॥

शुद्धव्रणलक्षणम्—पूतिः पूयातिदुष्टासृक्स्राव्युत्सङ्गी चिरस्थितिः।
दुष्टव्रणोऽतिगन्धादिः शुद्धलिङ्गविपर्ययः॥

वातादिजव्रणलक्षणम्–स्तब्धः कठिनसंस्पर्शो मन्दस्रावो महारुजः।
तुद्यते स्फुरति श्यावो व्रणो मारुतसम्भवः॥
तृष्णामोहज्वरक्लेददाहदुष्ट्यवदारणैः।
व्रणं पित्तकृतं विद्याद्गन्धः स्रावश्च पूतिकैः॥
बहुपिच्छो गुरुः स्निग्धः स्तिमितो मन्दवेदनः।
पाण्डुवर्णोऽल्पसंक्लेदश्चिरपाकी कफव्रणः॥

रक्तजद्विदोषजत्रिदोषजव्रणानाह—रक्तो रक्तस्रुती रक्ताद् द्वित्रिजः स्यात्तदन्वयैः॥

संसर्ग से दूषित व्रण प्रसरानुसार पन्द्रह प्रकार का होता है। १-वातजव्रण, २-पित्तजव्रण, ३-कफज व्रण, ४-रक्तज व्रण, ५-वातपित्तज व्रण, ६-वातश्लेष्मज व्रण, ७-पित्तश्लेष्मज व्रण, ८-सन्निपातज व्रण, ९-वातरक्तज व्रण, १०-रक्तपित्तज व्रण, ११-श्लेष्मरक्तज व्रण, १२-वातपित्तरक्तज व्रण, १३-वातकफरक्तज व्रण, १४-पित्तकफरक्तज व्रण एवं १५-वातपित्तकफरक्तज व्रण।

विमर्श—शरीर में निज या आगन्तुक कारण से शोथ होकर पकने से तथा भिन्न होने से उसे **'व्रण'** कहते हैं। जो व्रण जिह्वातल सा, कोमल, चिकना, स्निग्ध, कम दर्द वाला, सुव्यवस्थित यानी ऊंचा नीचा रहित और विना स्राव वाला हो उसे **'शुद्ध व्रण'** कहते हैं। इसमें दोषों का प्रसर नहीं होता। जो व्रण **शुद्ध व्रण** के लक्षणों से विपरीत लक्षण वाला, सड़ा हुआ, विविध गन्ध युक्त, पूय और रक्त अधिक मात्रा में स्राव करने वाला, शोथयुक्त और जल्दी आराम न हो रहा हो उसे **'दुष्टव्रण'** कहते हैं। इसमें दोषों का प्रसर अधिक होता है। अन्य दोषयुक्त पंद्रह प्रकार के व्रणों में दोषानुसार वर्ण, गन्ध, पीड़ा और स्राव आदि होते हैं जो विस्तार भय से यहां नहीं कहा गया ॥७२-७५॥

सद्योव्रणभेदाः—**सद्योव्रणस्त्वष्टधा स्यादविक्लृप्तविलम्बितौ।**
छिन्नभिन्नप्रचलिता घृष्टविद्धनिपातिताः ॥ ७६ ॥

सद्योव्रण(१) यानी बाहरी शस्त्र आदि के लगने से तत्काल उत्पन्न व्रण आठ प्रकार का होता है। ये व्रण धारवाले शस्त्र, खुण्डाशस्त्र तथा वजनी लाठी, पत्थर आदि के द्वारा प्रहार

---

(१) आगन्तुजानाह—**नानाधारमुखैः शस्त्रैर्नानास्थाननिपातितैः।**
भवन्ति नानाऽऽकृतयो व्रणास्तांस्तान्निबोध मे ॥

अविक्लृप्तलक्षणम्—**अविक्लृप्तमित्यपकर्त्तनम्।**

विलम्बितलक्षणम्—**विलम्बितो लम्बनशीलः, मांसावलम्बनेनेत्यभिप्रायः।**

छिन्नलक्षणम्—**तिर्यक्छिन्न ऋजुर्वाऽपि यो व्रणस्त्वायतो भवेत्।**
गात्रस्य पातनं चापि छिन्नमित्यभिधीयते ॥

भिन्नलक्षणम्—**शक्तिकुन्तेषुखड्गाग्रविषाणैराशयो हतः।**
यत् किञ्चित् प्रस्रवेत्तद्धि भिन्नलक्षणमुच्यते ॥

निपातितक्षतजयोर्लक्षणे-**नातिच्छिन्नं नातिभिन्नमुभयोर्लक्षणान्वितम्।**
विषमं व्रणमङ्गेषु तत्क्षतं त्वभिनिर्दिशेत् ॥

घृष्टलक्षणम्—**घर्षणादभिघाताद्वा यदङ्गं विगतत्वचम्।**
ऊषास्रावान्वितं तत्तु घृष्टमित्यभिधीयते ॥

विद्धलक्षणम्—**सूक्ष्मास्यशल्याभिहतं यदङ्गं त्वाशयं विना।**
उत्तुण्डितं निर्गतं च तद्विद्धमिति निर्दिशेत् ॥

प्रचलित (पिचित) लक्षणम्— **प्रहारपीडनाभ्यां तु यदङ्गं पृथुतां गतम्।**
सास्थि तत् पिच्चितं विद्यान्मज्जारक्तपरिप्लुतम् ॥

करने से एवम् अङ्ग को किस प्रकार कितनी क्षति पहुँची है, इस भेद से व्रण का आठ भेद चिकित्सार्थ कहा गया है। १–अविक्लृप्त, २–विलम्बित, ३–छिन्न, ४–भिन्न, ५–प्रचलित, ६–घृष्ट, ७–विद्ध और ८–निपातित।

विमर्श–जो व्रण चीरा सा लगा हुआ हो उसे **अविक्लृप्त** कहते हैं। जिस व्रण में मांस लटके पड़ते हैं उसे **विलम्बित** कहते हैं। जो व्रण सीधा या टेढ़ा प्रहार से जनित हो और अंग की कोई शाखा कट कर अलग हो गयी हो तो उसे **छिन्न व्रण** कहते हैं। नोकदार भाला आदि के किसी आशय में लगने से फट कर भीतर के पदार्थ बहने लगते हैं, उसे भिन्न या फटा व्रण कहते हैं। **प्रचलित व्रण** उसे कहते हैं जो वजनदार खुण्डे शस्त्र या मुगदर आदि के लगने से हड्डी तक फट कर मज्जा और रक्त निकल पड़ते हैं। बाहर से रगड़ खाने से चमड़ा निकल जाने पर जलन और पानी सा स्राव होने वाले व्रण को **घृष्ट व्रण** कहते हैं। सूक्ष्म शस्त्र के द्वारा आशयहीन स्थान यानी पेशी आदि पर छिद जाने से जो व्रण होता है वह विद्ध **व्रण** है। जो व्रण न अधिक छिन्न और न अधिक भिन्न ही हो वरन उभय लक्षण मिले हों उसे **निपातित** या साधारण **क्षत व्रण** कहते हैं। **सुश्रुत** में छिन्न, भिन्न, विद्ध, क्षत, पिच्चित और घृष्ट ये छः प्रकार के ही व्रण कहे गये हैं। अन्य सब प्रकार के व्रण इन्हीं के अन्तर्गत हो जाते हैं। **शार्ङ्गधरजी** ने आकृति अनुसार आठ भेद कह दिया ॥ ७६॥

कोष्ठभेदभेदौ—**कोष्ठभेदो द्विधा प्रोक्तश्छिन्नान्त्रो निःसृतान्त्रकः ॥ ७७॥**

कोष्ठ(१) भेद दो प्रकार का होता है। छिन्नान्त्र और निःसृतान्त्र।

---

(१) कोष्ठलक्षणम्—**स्थानान्यामाग्निपक्कानां मूत्रस्य रुधिरस्य च।**
हृदुण्डुकः फुफ्फुसश्च कोष्ठ इत्यभिधीयते॥
तत्र भेदः—**तस्मिन् भिन्ने रक्तपूर्णे ज्वरो दाहश्च जायते।**
मूत्रमार्गगुदास्येभ्यो रक्तं घ्राणाच्च गच्छति॥
मूर्च्छाश्वासतृषाऽऽध्मानमभक्तच्छन्द एव च।
विण्मूत्रवातसङ्गश्च स्वेदास्रावोऽक्षिरक्तता॥
लोहगन्धित्वमास्यस्य गात्रदौर्गन्ध्यमेव च। हृच्छूलं पार्श्वयोश्चापि विशेषं चात्र
आमाशयपक्वाशयस्थि-**आमाशयस्थे रुधिरे रुधिरं छर्दयत्यपि।**
तरक्तयोर्लक्षणे— **आध्मानमतिमात्रं च शूलं च भृशदारुणम्॥**
पक्वाशयगते चापि रुजा गौरवमेव च। अधः काये विशेषेण शीतता च भवेदिह
कोष्ठभेदमाह—**त्वचोऽतीत्य शिरादीनि भित्त्वा वा परिहृत्य वा।**
कोष्ठे प्रतिष्ठितं शल्यं कुर्यादुक्तानुपद्रवान्॥
व्रणानामुपद्रवानाह—**विसर्पः पक्षघातश्च शिरास्तम्भोऽपतानकः।**
मोहोन्मादव्रणरुजो ज्वरस्तृष्णा हनुग्रहः॥
कासश्छर्दिरतीसारो हिक्का श्वासः सवेपथुः। षोडशोपद्रवाः प्रोक्ता व्रणानां व्रणचि

विमर्श—जिस भिन्नव्रण में अन्दर ही या बाहर आंतें कट जायँ वह **छिन्नान्त्र** और जिसमें सिर्फ उदर प्राचीर के फटने से आँतें केवल बाहर निकल पड़ें वह **निःसृतान्त्र** कोष्ठभेद है। **कोष्ठ** शब्द से यद्यपि आमाशय, पक्वाशय, अग्न्याशय, मूत्राशय, रक्ताशय, हृदय, उण्डुक और फुफ्फुस का ग्रहण होता हैं। जिनका सामान्य लक्षण ऊपर भिन्न लक्षण में कह आये हैं, तथापि यह **कोष्ठ** शब्द सिर्फ उदर मात्र का बोधक है जिसमें अँतड़ियाँ रहती हैं। यहां यह विशिष्ट लक्षण कहा गया, अतः कोई दोष नहीं ॥ ७७ ॥

अस्थिभङ्गभेदाः–**अस्थिभङ्गोऽष्टधा प्रोक्तो भग्नपृष्ठविदारितौ ।**
विवर्त्तितश्च विश्लिष्टस्तिर्यक् क्षिप्तस्त्वधो गतः।ऊर्ध्वगः संधिभग्नश्च…७८

अस्थि भङ्ग (१)रोग आठ प्रकार का होता है। १–भग्नपृष्ठ, २–विदारित, ३–विवर्त्तित, ४–विश्लिष्ट, ५–तिर्यक्क्षिप्त, ६–अधोगत, ७–ऊर्ध्वग और ८–सन्धिभग्न।

(१) भग्नाधिकारः—अस्थिभङ्गपर्यायवाचको भग्न इत्यत्र कथितः, न तु भग्नशब्दोऽष्टसंख्यायामिह गणितः, ते तु 'पिष्टविदारितादयोऽष्टौ गणिताः, अग्निवेशेन तु भग्नं द्विविधं काण्डसन्धिभेदात्। यदुक्तं—

भग्नं समासाद् द्विविधं हुताश! काण्डे च सन्धावपि तत्र सन्धौ।
सन्धिभग्नलक्षणम्—**उत्पिष्टविश्लिष्टविवर्त्तितञ्च तिर्यग्गतं क्षिप्तमधश्च षोढा ॥**
सन्धिभग्नस्य विशेषसा-**प्रसारणाकुञ्चनवर्त्तनोग्रा रुक् स्पर्शविद्वेषणमेतदुक्तम् ।**
मान्यभेदौ—**सामान्यतः सन्धिगतस्य लिङ्गमुत्पिष्टसन्धेः श्वयथुः समन्तात् ।**
विशेषतो रात्रिभवा रुजश्च विश्लिष्टजे तौ च रुजा च नित्यम् ॥
विवर्त्तिते पार्श्वरुजश्च तीव्रास्तिर्यग्गते तीव्ररुजो भवन्ति ।
क्षिप्तेऽतिशूलं विषमत्वमस्थ्नोः क्षिप्ते त्वधो रुग्विघटश्च सन्धेः ॥
काण्डभग्नभेदाः—**काण्डे त्वतः कर्कटकाश्वकर्णविचूर्णितं पिच्चितमस्थिछल्लिका ।**
काण्डेषु भग्नं ह्यतिपातितं च मज्जागतं च स्फुटितं च वक्रम् ॥
छिन्नं द्विधा द्वादशधाऽपि काण्डे ।
लक्षणम्—**स्रस्ताङ्गता शोफरुजाऽतिवृद्धिः ।**
सम्पीडयमाने भवतीह शब्दः स्पर्शासहस्पन्दनतोदशूलाः ।
सर्वास्ववस्थासु न शर्मलाभो भग्नस्य काण्डे खलु चिह्नमेतत् ॥
काण्डभग्नस्य द्वादशप्रकारादप्यधिकत्वम्—
भग्नं तु काण्डे बहुधा प्रयाति समासतो नामभिरेव तुल्यम् ।
कष्टसाध्यता—**अल्पाशिनोऽनात्मवतो जन्तोर्वातात्मकस्य च ।**
उपद्रवैर्वा जुष्टस्य भग्नं कृच्छ्रेण सिद्ध्यति ॥
असाध्यतामाह—**भिन्नं कपालं कट्यां तु सन्धिमुक्तं तथा च्युतम् ।**
जघनं प्रतिपिष्टं च वर्जयेत्त विचक्षणः ॥

विमर्श—भग्नपृष्ठ में हड्डी के ऊपरी हिस्से से छिलका सा चटकता है। **विदारित** में हड्डी फट जाती है। **विवर्त्तित** में हड्डी झुककर उलट जाती है। **विश्लिष्ट** में संधि से अलग हो जाती है। **तिर्य्यक्क्षिप्त** में हड्डियाँ संधि से अलग हो कर तिरछी चली जाती हैं। **अधोगत** में एक हड्डी दूसरी हड्डी के नीचे चली जाती है। उसी प्रकार **उद्ध्वग** में ऊपर चली जाती है। **संधिभग्न** में संधि वियुक्त हो जाती है। यहां भग्न का बिलकुल संक्षिप्त विवरण दिया गया है, क्योंकि **संहिता** कायचिकित्सा प्रधान है। अन्यत्र **भग्न** को दो विभाग में बाँटा गया है। १-**काण्डभग्न** और २-**संधिभग्न**। **काण्डभग्न** बारह प्रकार का होता है। १-कर्कट, २-अश्वकर्ण, ३-विचूर्णित, ४-पिच्चित, ५-अस्थिछल्लिका, ६-काण्डभग्न, ७-अति-पातित, ८-मज्जागत, ९-स्फुटित, १०-वक्र, ११-ईषच्छिन्न और १२-संपूर्णच्छिन्न। **संधिभग्न** छः प्रकार का होता है, यथा-१-उत्पिष्ट, २-विश्लिष्ट, ३-विवर्त्तित, ४-तिर्य्यग्गत, ५-... और ६-अधोगत ॥ ७८ ॥

वह्निदग्धभेदाः—······**वह्निदग्धश्चतुर्विधः।**

प्लुष्टो विदग्धो दुर्दग्धः सम्यग्दग्धः प्रकीर्त्तितः ॥ ७९ ॥

वह्निदग्ध(१) यानी आग से जलना चार प्रकार का होता है। १-प्लुष्ट, २-विदग्ध, ३-दुर्दग्ध और ४-सम्यग्दग्ध।

अस्थिविशेषेण भग्नवि-**तरुणास्थीनि नम्यन्ते भिद्यन्ते नलकानि तु।**
शेषमाह—**कपालानि विभज्यन्ते स्फुटन्ति रुचकानि च ॥**

अथोक्तपिष्टविदारितादीनां विवरणमाह—

सन्धावुभयतः शोथो वेदनादिकश्च १पिष्टसंज्ञः। २विदारित इति द्वयोः सन्ध्योरतिक्रान्तता वेदना च ॥ ३विवर्त्तित इत्येकसन्धिपार्श्वगमनं विषमाङ्गता वेदना च। ४विश्लिष्ट इति मनाक् सन्धिविश्लेषः शिथिलतामात्रं रात्रिरुजाशोथौ च। ५तिर्यक्क्षिप्त इत्येकं सन्ध्यस्थिस्थानं त्यक्त्वा तिर्यग् याति तदा तीव्रपीडा। ६अधोगत इति। वक्ष्यमाणोर्ध्वगलक्षणः। किञ्चिदधोगमनमिति शेषः। ७ऊर्ध्वग इति विषमा रुगप्यस्थ्नोरतिक्षिप्तत्वात्, तेन द्वयोरप्यस्थ्नोः परस्परातिक्रमणं दृश्यत इत्यर्थः। ८सन्धिभग्न इति द्वयोः सन्धानं सन्धेस्तु विश्लेषः सन्धिभग्नः कथ्यते।

(१) अग्निदग्धनि-**तत्राग्निर्द्विविधो ज्ञेयः स्नेहरूक्षसमाश्रितः।**
दानम्—**स्नेहदग्धं तु तैलादि रूक्षं लौहादि कथ्यते ॥**
तस्य भेदो लक्षणञ्च—**अग्निदग्धं चतुर्द्धा स्यात्प्लुष्टं दुर्दग्धमेव च।**
सम्यग्दग्धं तथा तीव्रदग्धं च परिकीर्त्तितम् ॥

यद् विवर्णमतिप्लुष्टं तत्प्लुष्टमभिधीयते। तीव्रदाहव्यथावन्तो यत्र स्फोटा भवन्ति चिरेण ते प्रशाम्यन्ति ते दुर्दग्धमुदाहृतम्। ताम्रवर्णमगम्भीरं दाहपीडासमन्वितम् सुसंस्थितं च कथितं सम्यग्दग्धं भिषग्वरः। त्वग्मांसं यत्र दग्धं स्याद् विश्लेषो वा

विमर्श—अङ्ग के झुलस जाने को **प्लुष्ट** कहते हैं। इसमें त्वक् में राग, ईषत् दाह और थ होते हैं। **अवभासिनी** त्वचा पीछे से उचट जाती है। **विदग्ध** में स्थान इतना जल ता है कि–त्वक्, मांस, मेद, शिरा, स्नायु और हड्डियाँ तक जल जाती हैं। इसमें वर, दाह, तृषा, मूर्च्छा आदि उपद्रव होते हैं। **दुर्दग्ध** में दग्धस्थान में फोड़े पड़ ते हैं, दाह और वेदना अधिक होती है और शीघ्र अच्छा नहीं होता। **सम्यग्** ग्ध में चिकित्सक आवश्यकतानुसार स्थान को दग्ध करता है। यह गहरा नहीं होता तथा लफल जैसा वर्णका होता है। यह अधिक कष्ट नहीं देता तथा शीघ्र अच्छा हो जाता है। ये ग्धरोग चिकित्सक की गलती से या दैवयोग से होते हैं॥ ७९॥

डीव्रणभेदाः—**नाड्यः पञ्च समाख्याता वातपित्तकफैस्त्रिधा। त्रिदोषैरपि शल्येन···॥८०॥**

नाडीव्रण (१) या नासूर पाँच प्रकार का होता है १–वातिक, २–पैत्तिक, ३–श्लैष्मिक, ४–सान्निपातिक तथा ५–शल्यनिमित्तज।

विमर्श—जो पुरुष पक्व शोथ को अपक्व कह कर तथा पूयपूर्ण व्रण की भय आदि से पेक्षा करता है–शोधन नहीं करता, उसके शरीर के अन्दर पूय मांसादि को गलाकर नाली सा बना देता है और उसी में से बहने लगता है। इसीसे इसे नालीवाव, नाडीव्रण या **नासूर** कहते हैं। **वातिक नासूर** का मुख सूक्ष्म होता है तथा शूल होता रहता है। इसमें से प्रायः रात को फेनिल पूय निकला करता है। **पित्तज नासूर** ज्वर, दाह और तृषा उत्पन्न करता है। इसमें प्रायः दिन को पीला, गर्म और तीक्ष्ण स्राव होता है। **कफज नासूर** से रातको प्रायः अधि-

---

रास्नाय्वस्थिसन्धीनां वधस्तदतिदग्धकम्। अत्यर्थं वेदना दाहो ज्वरस्तृण्मूर्च्छया सह।
स्याद् व्रणस्तु चिराद् रोहेद् रूढो याति विवर्णताम्॥

(१) नाडीव्रणनिदानम्—

यः शोथमाममतिपक्वमुपेक्षतेऽज्ञो यो वा व्रणं प्रचुरपूयमसाधुवृत्तः।
अभ्यन्तरं प्रविशति प्रविदार्य तस्य स्थानानि पूर्वविहितानि ततः सपूयः॥
तस्यातिमात्रगमनाद्गतिरिष्यते तु नाडीव यद् वहति तेन मता तु नाडी॥

तत्र वातादिभेदेन लक्षणानि—

तत्रानिलात्परुषसूक्ष्ममुखी सशूला फेनानुविद्धमधिकं वहति क्षपासु।
पित्तात्तृषाज्वरकरी परिदाहयुक्ता पीतं स्रवत्यधिकमुष्णमहःसु चापि॥
ेया कफाद् बहुघनार्जुनपिच्छिलास्रा स्तब्धा सकण्डुररुजा रजनीप्रवृद्धा।
ोषद्वयाभिहितलक्षणदर्शनेन तिस्रो गतीर्व्यतिकरप्रभवास्तु विद्यात्॥
दाहज्वरश्वसनमूर्च्छनवक्त्रशोषा यस्यां भवन्त्यभिहितानि च लक्षणानि।
तामादिशेत् पवनपित्तकफप्रकोपाद् घोरामसुक्षयकरीमिव कालरात्रिम्॥
नष्टं कथं चिदनुमार्गनिपीडितेषु स्थानेषु शल्यमचिरेण गतिं करोति।
सा फेनिलं मथितमुष्णमसृग्विमिश्रं स्रावं करोति सहसा सरुजं च नित्यम्॥
नाडी त्रिदोषप्रभवा न सिद्ध्येच्छेषाश्चतस्रः खलुः यत्नसाध्याः।

क श्वेत और पिच्छिल स्राव होता है, यह स्तब्ध, कण्डुर और मन्द दर्द वाला होता है। ... में इसकी पीड़ा बढ़ जाती है। **त्रिदोषज नाडी** में उपर्युक्त सब लक्षण होते हैं तथा दाह, ... श्वास, मूर्च्छा, मुखशोष आदि भयङ्कर उपद्रव होते हैं। यह प्राणनाशक है। नोकदार पतले ... के शरीर के अन्दर गुम हो जाने से भी **नासूर** हो जाता है। इसमें अङ्ग संचालन के समय ... होती है तथा अकस्मात् ही इससे मथा हुआ सा, उष्ण और रक्तमिश्रित घाव होता है॥ ...

भगन्दरभेदाः—·········**तथाऽष्टौ स्युर्भगन्दराः।**

शतपोनस्तु पवनादुष्ट्रग्रीवश्च पित्ततः। परिस्रावी कफाज्ज्ञेय ऋजुर्वातकफोद्भवः। परिक्षेपी मरुत्पित्तादर्शोजः कफपित्ततः। आगन्तुजातश्चोन्मार्गी शङ्खावर्तस्त्रिदोषतः॥

भगन्दर (१)रोग आठ प्रकार का होता है १–वात से **शतपोनक** भगन्दर, २–पित्त से **उष्ट्रग्रीव**, ३–कफ से **परिस्रावी** भगन्दर, ४–वातकफ से **ऋजु** भगन्दर, ५–वातपित्त से **परिक्षेपी** भगन्दर, ६–कफपित्त से **अर्शोज** भगन्दर, ७–आगन्तुशल्य से **आगन्तुक** भगन्दर, ८–त्रिदोष से शङ्खावर्त्त भगन्दर होता है। गुदा और अण्डकोष के मध्य भाग में शोथ होकर ...

---

(१) भगन्दरस्य पूर्वरूपसहितं रूपम्—

कटीकपालनिस्तोददाहकण्डूरुजाऽऽदयः। भवन्ति पूर्वरूपाणि भविष्यति भगन्दरे। गुदस्य द्व्यङ्गुले क्षेत्रे पार्श्वतः पिडिकाऽऽर्त्तिकृत्। भिन्ना भगन्दरो ज्ञेयः स च पञ्चविधो ... भगं परिसमन्ताच्च गुदं बस्तिं तथैव च। भगवद्दारयेद् यस्मात् तस्माज्ज्ञेयो भगन्दरः॥

वातिकशतपोनकलक्षणम्—**कषायरूक्षैरतिकोपितोऽनिलस्त्वपानदेशे पिडकां करोति याम्। उपेक्षणात्पाकमुपैति दारुणां रुजां च भिन्नाऽरुणफेनवाहिनी। तत्रागमो मूत्रपुरीषरेतसां व्रणैरनेकैः शतपोनकं वदेत्॥**

पैत्तिकमुष्ट्रग्रीवकमाह—**प्रकोपणैः पित्तमतीव कोपितं करोति रक्तां पिडिकां गुदाश्रिताम्। तदाशुपाकाऽहिमपूयवाहिनीं भगन्दरं तूष्ट्रशिरोधरं वदेत्॥**

कफजं परिस्राविणमाह—**कण्डूयनो घनस्रावी कठिनो मन्दवेदनः। श्वेतावभासः कफजः परिस्रावी भगन्दरः॥**

ऋजुः—**ऋजुर्वातकफोद्भव इति वातकफलक्षणाभ्यां युक्त ऋजुः॥**

परिक्षेपी—**मरुत्पित्तादिति वातपित्तलक्षणाभ्यां युक्तः परिक्षेपीति॥**

अर्शोजः—**अर्शोजः कफपित्तत इति कफपित्तचिह्नाभ्यां मिलितोऽर्शोज इत्यर्शोभगन्दरः। कफपित्ते सपूर्वोत्थे दुर्नामासृजकोपतः। अर्शोमूले ततः शोथं कण्डूदाहादिमान् भवेत्। स शीघ्रपक्वभिन्नास्यः क्लेदयन् मूलमर्शसः। स्रवन्त्यजस्रं च पूतिरयमर्शोभगन्दरः॥**

क्षतजमुन्मार्गिलक्षणम्—**क्षताद्गतिः पायुगता विवर्द्धते ह्युपेक्षणात्स्युः कृमयो विदार्य ते। प्रकुर्वते मार्गमनेकधामुखव्रणैस्तदुन्मार्गिभगन्दरं वदेत्॥**

सन्निपातजं शम्बूकाव-र्त्तमाह—**बहुवर्णरुजास्रावा पिडिका गोस्तनोपमा। शम्बूकावर्त्तवन्नाडी शम्बूकावर्त्तको मतः॥**

कर फूट जाता है। **भग** यानी योनि की तरह फटने के कारण इसे **भगन्दर** कहते हैं। **वातिक भगन्दर** चलनी सा अनेक छिद्र वाला होने से उसे **शतपोनक** कहते हैं। **पित्तज भगन्दर** ऊँट के गले के जैसा टेढ़ा मार्ग वाला होने से **उष्ट्रग्रीव** कहते हैं। **कफज भगन्दर** अधिक स्राव वाला होने से **परिस्रावी** कहते हैं। **वातकफज** भगन्दर सीधा मार्ग का होता है अतः **ऋजु** कहते हैं। **वातपित्तज भगन्दर** स्राव को परिक्षिप्त करता है, अतः **परिक्षेपी** कहा जाता है। **कफपित्तज भगन्दर** अर्शोरोग से उत्पन्न होता है अतः उसे **अर्शोज** कहते हैं। शल्यकर्तृक उन्मार्ग प्रवृत्त होने से आगन्तुक भगन्दर को **उन्मार्गी** कहते हैं तथा शंख के आवर्त्त के समान स्रावमार्ग होने के कारण त्रिदोषज भगन्दर को **शङ्खावर्त्त** नाम दिया गया है ॥ ८१ ॥

उपदंशभेदाः—**मेढ्रे पञ्चोपदंशाः स्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा। सन्निपातेन रक्ताच्च**···॥८२॥

मेढ्र यानी **लिङ्गेन्द्रिय** पर उपदंश(१) रोग पांच प्रकार का होता है। १–वातिक, २–पैत्तिक, ३–श्लैष्मिक ४–सान्निपातिक और ५–रक्तज।

विमर्श— हाथ के अभिघात से, नख–दांत आदि के लगने से, अधिक और बेकायदे मैथुन करने से तथा दुष्टयोनि, पशु, अयोनि आदि गमन से शिश्न पर घाव हो जाते हैं, उन्हें **उपदंश** कहते हैं। उपेक्षा करने से इसमें कृमि उत्पन्न हो जाते हैं तथा शिश्न भी गलजाता है। कोई कोई उपदंश का **योनि में** होना भी मानते हैं पर साधारणतया शिश्न पर के व्रण की ही उपदंश संज्ञा रूढ हो गई है। आज कल कोई कोई **उपदंश से** प्रचलित फिरंग रोग का ही ग्रहण करते हैं, यह प्रामादिक है। उपदंश उपर्युक्त कारणों से होता है पर फिरंग विषजन्य होता है। उपदंश प्रायः शारीर दोष से ही होता है पर **फिरंग** आगन्तुक है। उपदंश संक्रामक नहीं है पर फिरंग संक्रामक है। यह फिरंग वाली स्त्री के सहवास से, फिरंग वाले के मूत्र के ऊपर पेशाब करने से तथा उसके कपड़े आदि के संसर्ग से ही उत्पन्न होता है। उपदंश केवल शिश्न मात्र में ही सीमित रहता है, पर फिरंगविष सारे शरीर में फूट निकलता है। उपदंश से फिरंग का परिणाम भयंकर होता है। इससे आक्रान्त पुरुष को अनेक रोग–**नासाभङ्ग, दृष्टिमान्द्य** आदि हो जाते हैं तथा सन्तान में भी यह संक्रमित हो जाता है। फिरंग का चिकित्साक्रम भी उपदंश से भिन्न है। अतः कारण, रूप, संप्राप्ति, चिकित्साक्रम तथा भावी परिणामों की भिन्नता होने से उत्पत्ति स्थल एक होने पर भी ये दो रोग सर्वथा भिन्न हैं ॥ ८२ ॥

शूकामयभेदाः—······**मेढ्रे शूकामयास्तथा।**
चतुर्विंशतिराख्याता लिङ्गार्शो ग्रथितं तथा ॥ ८३ ॥

---

(१) उपदंशनिदानम्—**हस्ताभिघातान्नखदन्तपाताद्धावनाद्दत्यतिसेवनाद्वा।**
योनिप्रदोषाच्च भवन्ति शिश्ने पञ्चोपदंशा विविधापचारैः ॥
वातादिभेदेन लक्षणानि—**सतोदभेदैः स्फुरणैः सकृष्णैः स्फोटैर्व्यवस्येत्पवनोपदंशम्।**
पीतैर्बहुक्लेदयुतैः सदाहैः पित्तेन रक्तात् पिशितावभासैः ॥
सकण्डुरैः शोफयुतैर्महद्भिः शुक्लैर्घनैः स्रावयुतैः कफेन।
नानाविधस्रावरुजोपपन्नमसाध्यमाहुस्त्रिमलोपदंशम् ॥

निवृत्तमवमन्थश्च मृदितं शतपोनकः । अष्ठीलिका सर्षपिका त्वक्पाकश्चावपाटिका ।
मांसपाकः स्पर्शहानिर्निरुद्धमणिरुत्तमा । मांसार्बुदं पुष्करिका संमूढपिटिकाऽलजी ।
रक्तार्बुदं विद्रधिश्च कुम्भिका तिलकालकः । निरुद्धप्रकशः प्रोक्तस्तथैव परिवर्त्तिका ।

मेढ्र यानी लिङ्गेन्द्रिय में चौबीस प्रकार के **शूक रोग** (१)होते हैं। १-लिङ्गार्श, २-...

---

(१) शूकदोषनिदानम्—अक्रमाच्छेफसो वृद्धिं योऽभिवाञ्छति मूढधीः ।
व्याधयस्तस्य जायन्ते दश चाष्टौ च शूकजाः ॥

लिङ्गवर्त्ति (लिङ्गार्शो) लक्षणम्—
अङ्कुरैरिव सञ्जातैरुपर्युपरि संस्थितैः । क्रमेण जायते वर्त्तिस्ताम्रचूडशिखोपमा ॥
कोशस्याभ्यन्तरे सन्धौ पर्वसन्धिगताऽपि वा । कुलत्थाकृतयः के चित्के चित्पद्मदलो...
मेढ्रसन्धौ नृणां के चित्के चित्सर्वाश्रयाः स्मृताः ।
रुजादाहार्त्तिबहुलास्तृष्णातोदसमन्विताः ॥
स्त्रीणां पुंसां च जायन्ते ह्युपदंशाः सुदारुणाः ।
लिङ्गवर्त्तिरिति ख्याता लिङ्गार्श इति चापरे ॥
सवेदना पिच्छिला च दुश्चिकित्स्या त्रिदोषजा ॥

ग्रथितस्य लक्षणम्—शूकैर्यत् पूरितं शश्वद् ग्रथितं नाम तत्कफात् ।
निवृत्तलक्षणम्—विमर्दनादिदुष्टेन वायुना चर्ममेढ्रजम् ।
निवर्त्तते सरुग्दाहं त्वचि पाकं च गच्छति ॥
पिण्डितं ग्रथितं चर्म तत्प्रलम्बमथो मणेः । निवृत्तसंज्ञः स भवेत् कण्डूकाठिन्यवर्जि...
अवमन्थलक्षणम्—दीर्घा बह्वयश्च पिडका दीर्यन्ते मध्यतस्तथा ।
सोऽवमन्थः कफासृग्भ्यां वेदनारोमहर्षकृत् ॥
मृदितलक्षणम्—मृदितं पीडितं यत्तु संरब्धं वातकोपतः ।
शतपोनकलक्षणम्—छिद्रैरणुमुखैर्लिङ्गं चितं यत्तु समन्ततः ।
वातशोणितजो व्याधिः स ज्ञेयः शतपोनकः ॥
अष्ठीलालक्षणम्—कठिना विषमैर्भुग्नैर्वायुनाऽष्ठीलिका भवेत् ।
सर्षपिकालक्षणम्—गौरसर्षपसंस्थाना शूकदुर्भुग्नहेतुका ।
पिडका श्लेष्मवाताभ्यां ज्ञेया सर्षपिका तु सा ॥
अवपाटिकालक्षणम्—वातपित्तकृतो ज्ञेयस्त्वक्पाको ज्वरदाहकृत् ।
त्वक्पाकलक्षणम्—अल्पीयःखां यदा हर्षाद्बलाद्गच्छेत् स्त्रियं नरः ।
हस्ताभिघातादपि वा चर्मण्युद्वर्त्तिते बलात् ॥
यस्यावपाट्यते चर्म तां विद्यादवपाटिकाम् । सकण्डूः कठिना चापि सैव श्लेष्मसमु...
मांसपाकलक्षणम्—शीर्यन्ते यस्य मांसानि यस्य सर्वाश्च वेदनाः ।
विद्यात्तं मांसपाकं तु सर्वदोषकृतं भिषक् ॥

३–निवृत्त, ४–अवमन्थ, ५–मृदित, ६–शतपोनक, ७–अष्ठीलिका, ८–सर्षपिका, ९–त्वक्पाक, १०–अवपाटिका ११–मांसपाक, १२–स्पर्शहानि, १३–निरुद्धमणि, १४–उत्तमा, १५–मांसार्बुद, १६–पुष्करिका, १७ संमूढपिडिका, १८–अलजी, १९–रक्तार्बुद, २०–विद्रधि, २१–कुम्भिका, २२ तिलकालक, २३ निरुद्धप्रकश एवं २४–परिवर्त्तिका ।

विमर्श–पूर्वकाल में लिङ्गवृद्धि के लिये जलशूकों का प्रयोग किया जाता था। वात्सायनादि

स्पर्शहानिलक्षणम्—स्पर्शहानिं तु जनयेच्छोणितं शूकदूषितम् ।

निरुद्धमणिलक्षणम्—वातेन दूषितं चर्म मणौ सक्तं रुणद्धि चेत् ।
स्रोतो मूत्रं ततो भेत्ति मन्दधारं सवेदनम् ॥
मणेर्विकाराद्रोधश्च निरुद्धमणिरुच्यते ।

मांसार्बुदलक्षणम्—मांसदोषेण जानीयादर्बुदं मांससम्भवम् ।

उत्तमालक्षणम्—मुद्गमाषोपमा रक्ता रक्तपित्तोद्भवा च या ।
व्याधिरेषोत्तमा नाम शूकाजीर्णनिमित्तजा ॥

पुष्करिकालक्षणम्—पिडिका पिडकायुक्ता पित्तशोणितसम्भवा ।
पद्मकर्णिकसंस्थाना ज्ञेया पुष्करिका तु सा ॥

संमूढपिडकालक्षणम्–पाणिभ्यां भृशसम्मूढे सम्मूढपिडिका भवेत् ।

अलजीलक्षणम्—तुल्यजां त्वलजीं विद्याद्यथाप्रोक्तां विचक्षणः ।

रक्तार्बुदलक्षणम्—कृष्णैः स्फोटैः सरक्ताभिः पिडकाभिर्निपीडितम् ।
यस्य वातरुजश्चोग्रा ज्ञेयं तच्छोणितार्बुदम् ॥

विद्रधिलक्षणम्—विद्रधिं सन्निपातेन यथोक्तमिति निर्दिशेत् ॥

कुम्भिकालक्षणम्—कुम्भिका रक्तपित्तोत्था जाम्बवास्थिनिभाऽशुभा ॥

तिलकालकलक्षणम्—कृष्णानि चित्राण्यथवा शूकानि सविषाणि वा ।
यानि तानि पचन्त्याशु मेढ्रं निरवशेषतः ॥
कालानि भूत्वा मांसानि शीर्यन्ते यस्य देहिनः ।
सन्निपातसमुत्थांस्तु तान् विद्यात्तिलकालकान् ॥

निरुद्धप्रकशलक्षणम्–वातोपसृष्टे मेढ्रे तु चर्म संश्रयते मणिम् ।
मणिश्चर्मोपनद्धस्तु मूत्रस्रोतो रुणद्धि च ॥
निरुद्धप्रकशे तस्मिन् मन्दधारमवेदनम् । मूत्रं प्रवर्त्तते जन्तोर्मणिर्विव्रियते न च ॥
निरुद्धप्रकशं विद्यात् सरुजं वातसम्भवम् ।

परिवर्त्तिकालक्षणम्—मणेरधस्तात् कोशस्तु ग्रन्थिरूपेण लम्बते ।
परिवर्त्तिकां तु तां विद्यात् सरुजं वातसम्भवाम् ॥

असाध्यानाह—तत्र मांसार्बुदं यच्च मांसपाकश्च यः स्मृतः ।
विद्रधिश्च न सिद्ध्यन्ति ये च स्युस्तिलकालकाः ॥

कामशास्त्रों में इनका प्रयोग दिया गया है। ये शूक कई प्रकार के होते हैं। उनमें से कई सविष एवं कई **निर्विष** होते हैं। **सविष शूकों** के प्रयोग से ही **शूकरोग** उत्पन्न होता है, पर आजकल लोक में इन शास्त्रों का अधिक अध्ययनादि न होने से तथा अनेक प्रकार के तिला आदि निकलने से कोई शूकों को ढूढने की तकलीफ नहीं करता। अतः आजकल **शूकदोष** का लोप हो गया है। ये **शूकरोग** अन्य ग्रन्थों में अष्टादश प्रकार के ही पढ़े गये हैं। यहां पर **लिङ्गार्श, निवृत्त, अवपाटिका, निरुद्धमणि, निरुद्धप्रकश** और **परिवर्त्तिका** अधिक दिया गया है। **लिङ्गार्श** अन्यत्र प्रायः **अर्शरोग** में और शेष पांच **क्षुद्ररोगों** में गणित होते हैं। शूकरोग के लुप्त होने से यहां उनका वर्णन करना भी व्यर्थ ही है। अवशेष के लक्षण संक्षेप में कहते हैं। **लिङ्गार्श**–मणि के मूल में चारो ओर मुर्गे की शिखा जैसी शुष्क अंकुर से एक दूसरे पर निकल आते हैं, इनको **लिङ्गवर्त्ति** या **लिङ्गार्श** कहते हैं। **निवृत्त**–मर्दनादि से कुपित वायु लिङ्ग के चर्म को रुजा दाह के साथ निवर्त्तित कर देता है। मणि का चर्म पिण्डित और ग्रथित होकर ग्रन्थियुक्त होता है तथा पक जाता है। इसे **निवृत्त** कहते हैं। **अवपाटिका**–जब पुरुष कामातुर होकर अल्पवयस्का कन्या या छोटी छिद्र वाली योनि में बलपूर्वक रमण करता है अथवा हस्त आघात आदि प्राप्त होता है तो मणि का चर्म अन्दर से फट सा जाता है और क्लेश होते हैं। यदि सूजकर कठिन और कण्डुयुक्त हो जाय तो कफ का कोप होता है। इसे **अवपाटिका** कहते हैं। **निरुद्धमणि**–वातदूषित मणिचर्म अतिसंकुचित होकर मणि को इतना ढांक करता है कि मूत्र मार्ग प्रायः रुक जाता है। जोर लगाने पर मन्दधार से दर्द सहित मूत्र निकलता है इसको **निरुद्धमणि** रोग कहते हैं। **निरुद्धप्रकश**– वातदूषित मणिचर्म मणि को ढांक कर ही संकुचित होता है अतः मणि नहीं खुलता शेषलक्षण निरुद्धमणि तुल्य होते हैं। इसे **निरुद्धप्रकश** कहते हैं। **परिवर्त्तिका**–मणिचर्म मणि नीचे गांठ सा हो कर बढ़ जाता है। और उसमें दर्द होता रहता है। इसे **परिवर्त्तिका** कहते हैं। ये रोग विना शूक के भी होते हैं॥ ८३–८६ ॥

कुष्ठभेदाः—**कुष्ठान्यष्टादशोक्तानि वातात् कापालिकं भवेत् ।**
पित्तेनोदुम्बरं प्रोक्तं कफान्मण्डलचर्चिके ॥ ८७ ॥
मरुत्पित्ताहृष्यजिह्वं श्लेष्मवाताद्विपादिका ।
तथा सिध्मैककुष्ठं च किटिभं चालसं तथा ॥ ८८ ॥
कफपित्तात्पुनर्द्द्रुः पामा विस्फोटकं तथा ।
महाकुष्ठं चर्मदलं पुण्डरीकं शतारुकम् ॥ ८९ ॥
त्रिदोषः काकणं ज्ञेयं तथाऽन्यच्छिवत्रसंज्ञितम् ।
तथा वातेन पित्तेन श्लेष्मणा च त्रिधा भवेत् ॥ ९० ॥

कुष्ठरोग—(१) अट्ठारह प्रकार के होते हैं। १–**वायु से** कापालिक कुष्ठ, २–पित्त

(१) कुष्ठनिदानम्—**विरोधीन्यन्नपानानि द्रवस्निग्धगुरूणि च ।**
भजतामागतां छर्दिं वेगांश्चान्यान्प्रतिघ्नताम् ॥

उदुम्बर कुष्ठ, ३-कफ से मण्डल तथा ४-विचर्चिका कुष्ठ, ५-वातपित्त से ऋष्यजिह्व, ६-कफवात से विपादिका, ७-सिध्म, ८-एक कुष्ठ, ९-किटिभ कुष्ठ, तथा १०-अलस-कुष्ठ होता है। और ११-दद्रुकुष्ठ, १२-पामा और १३-विस्फोटक कुष्ठ ये कफपित्त से होते हैं। १४-महाकुष्ठ, १५-चर्मदल, १६-पुण्डरीक, १७-शतारु और १८-काकण कुष्ठ त्रिदोष से उत्पन्न होते हैं।

व्यायामतिसन्तापमतिभुक्त्वा निषेविणाम्।
शीतोष्णलङ्घनाहारान् क्रमं मुक्त्वा निषेविणाम्॥
घर्मश्रमभयार्त्तानां द्रुतं शीताम्बुसेविनाम्। अजीर्णाध्याशिनां चैव पञ्चकर्मापचारिणाम्॥
नवान्नदधिमत्स्यानि लवणाम्लनिषेविणाम्। माषमूलकपिष्टान्नतिलक्षीरगुडाशिनाम्॥
व्यवायं चाप्यजीर्णेऽन्ने निद्रां च भजतां दिवा। विप्रान् गुरून् धर्षयतां पापं कर्म च कुर्वताम्॥
वातादयस्त्रयो दुष्टास्त्वग्रक्तं मांसमम्बु च। दूषयन्ति स कुष्ठानां सप्तको द्रव्यसङ्ग्रहः॥
अतः कुष्ठानि जायन्ते सप्त चैकादशैव तु॥

वातिककपालकुष्ठलक्षणम्— कृष्णारुणं कपालाभं यद्रूक्षं परुषं तनु।
कपालं तोदबहुलं तत्कुष्ठं विषमं स्मृतम्॥

पैत्तिकमौदुम्बरमाह— त्वग्दाहरागकण्डूभिः परीतं रोमपिञ्जरम्।
उदुम्बरफलाभासं कुष्ठमौदुम्बरं वदेत्॥

कफान्मण्डलं विचर्चिका च— श्वेतं रक्तं स्थिरं स्त्यानं स्निग्धमुत्सन्नमण्डलम्।
कृच्छ्रमन्योऽन्यसंयुक्तं कुष्ठं मण्डलमुच्यते॥
सकण्डूः पिडिका श्यावा बहुस्रावा विचर्चिका।

मरुत्पित्तादृष्यजिह्वम्— कर्कशं रक्तपर्य्यन्तमन्तः श्यावं सवेदनम्।
यद् ऋष्यजिह्वासंस्थानमृष्यजिह्वं तदुच्यते॥

श्लेष्मवाताद्विपादिका— दोषाः प्रदूष्य त्वङ्मांसपाणिपादसमाश्रिताः।
पिडिका जनयन्त्याशु दाहकण्डूसमन्विताः॥
दह्यते त्वक् खरा रूक्षा पाण्योर्ज्ञेया विचर्चिका।
पादे विपादिका ज्ञेया स्थानान्यत्वाद्विचर्चिका॥

कफपित्तात् सिध्म-किटिभा-लस-दद्रु-पामा-विस्फोटकानि— श्वेतं ताम्रं तनु च यद्रजोघृष्टं विमुञ्चति।
प्रायश्चोरसि तत्सिध्ममलाबुकुसुमोपमम्॥
श्यावं किणखरस्पर्शं परुषं किटिभं स्मृतम्।
कण्डूमद्भिः सरागैश्च गण्डैरलसकं चितम्॥
सकण्डूरागपिडिकं दद्रुमण्डलमुच्यते।
सूक्ष्मा बह्वयः पिडिकाः स्राववत्यः पामेत्युक्ताः कण्डुमत्यः सदाहाः॥
स्फोटाः श्वेतारुणाभासा विस्फोटाः स्युस्तनुत्वचः।

विमर्श—यद्यपि सब प्रकार के कुष्ठ ही **त्रिदोष** तथा **क्रिमिजनित** होते हैं, तथापि दोषों के प्राबल्यानुसार ही व्यपदेश किया गया है। कुष्ठ का ही एक भेद **श्वित्र**-सफेदी **फुलबहरी** होता है। यह भी **त्रिदोषज** ही है पर दोष के उल्वणानुसार वातिक, पैत्तिक और श्लैष्मिक भेद चिकित्सार्थ किया गया है।

विमर्श—यह भी कारण भेद से **दोषज** और **व्रणज** दो प्रकार का होता है। दोषज शारीरिक दोष से होता है तथा **व्रणज**–व्रण के ठीक रोहण न होने से होता है। व्रणज, श्वे

त्रिदोषजाः—महाकुष्ठ–चर्मदल–पुण्डरीक–शतारु–काकणानि—

शीघ्रोत्तरोत्तरधात्ववगाहनबहलदोषजन्यत्वक्रियाभूयस्त्वयोगान्महाकुष्ठमित्युच्यते।
रक्तं सशूलं कण्डूमत्सस्फोटं यद् गलत्यपि। तच्चर्मदलमाख्यातमस्पर्शासहमुच्यते।
सश्वेतं रक्तपर्यन्तं पुण्डरीकदलोपमम्। सोत्सेधं च सरागं च पुण्डरीकं प्रचक्षते॥
रक्तं श्यावं सदाहार्त्ति शतारुः स्याद् बहुव्रणम्। यत्काकणन्तिकावर्णं सपाकं तीव्रवे
त्रिदोषलिङ्गं तत्कुष्ठं काकणं नैव सिध्यति॥

श्वित्रकिलासयोर्निदानम्—कुष्ठैकसम्भवं श्वित्रं किलासं चारुणं भवेत्।
निर्दिष्टमपरिस्रावि त्रिधा तूद्भवसंश्रयम्॥

अनयोर्वातादिलक्षणम्—वाताद्रूक्षारुणं पित्तात्ताम्रं कमलपत्रवत्।
सदाहं रोमविध्वंसि कफाच्छ्वेतं घनं गुरु॥
सकण्डुरं क्रमाद्रक्तमांसमेदःसु चादिशेत्। वर्णेनैवेदृगुभयं कृच्छ्रं तच्चोत्तरोत्तरम्।

अन्यच्च—अरुणं तत्तु विज्ञेयं मांसधातुसमाश्रितम्।
मेदःश्रितं भवेच्छ्वित्रं दारुणं रक्तसंश्रयम्॥
तच्छ्वित्रं द्विविधमित्याचक्षते। व्रणजं दोषजं च।
श्वित्रं तु द्विविधं विद्याद्दोषजं व्रणजं तथा॥
तत्र मिथ्योपचाराद्धि व्रणस्य व्रणजं स्मृतम्। दोषजं द्विविधं प्रोक्तमात्मजं परजं त
परसंस्कारसंस्पर्शाद् यत्तत् परजमुच्यते। तदात्मजं विजानीयाद् यद्देहेष्वनिलात्म

साध्यासाध्यलक्षणे—अशुक्लरोमबहुलमसंश्लिष्टमथो नवम्।
अनग्निदग्धजं साध्यं श्वित्रं वर्ज्यमतोऽन्यथा।
गुह्यपाणितलौष्ठेषु जातमप्यचिरन्तनम्। वर्जनीयं विशेषेण किलासं सिद्धिमिच्छ

अथैककुष्ठचर्मकुष्ठयोर्लक्षणे—अस्वेदनं महावास्तु यन्मत्स्यशकलोपमम्।
तदेककुष्ठं चर्माख्यं बहलं हस्तिचर्मवत्॥

कुष्ठस्य संसर्गजत्वप्रसङ्गेनान्यानपि संसर्गजान् रोगानाह—प्रसङ्गाद् गात्रसंस्पर्शान्निःश्वासात्सहभोजनात्।
एकशय्याऽऽसनाच्चापि वस्त्रमाल्यानुलेपनात्॥
कुष्ठं ज्वरश्च शोषश्च नेत्राभिष्यन्द एव च।
औपसर्गिकरोगाश्च संक्रामन्ति नरान्नरम्॥

दग्ध से उत्पन्न, ओठ तथा हाथ और पाँव के तलुवों में उत्पन्न **श्वित्र असाध्य** है। **भोजने** शरीरज श्वित्र को भी **आत्मज** और **परज** भेद से दो प्रकार का माना है। **आत्मज** जो खुद शरीर में ही उत्पन्न हो और **परज** दूसरे से जो संक्रमित हो, ऐसा माना है। पर **पाश्चात्त्य चिकित्सकों** ने परीक्षा करके यह मत स्थिर किया है कि **श्वित्र रोग** अन्य कुष्ठों की तरह स्पर्शादि से संक्रमित नहीं होता ॥८७–९०॥

क्षुद्ररोगभेदाः—**क्षुद्ररोगाः षष्टिसंख्यास्तेष्वादौ शर्करार्बुदम् ।**
इन्द्रवृद्धा पनसिका विवृताऽन्धालजी तथा ॥ ९१ ॥
वराहदंष्ट्रो वल्मीकं कच्छपी तिलकालकः।गर्दभी रकसा चैव यवप्रख्या विदारिका॥९२॥
कदरं मषकश्चैव नीलिका जालगर्दभः । इरिवेल्ली जतुमणिर्गुदभ्रंशोऽग्निरोहिणी॥९३॥
सन्निरुद्धगुदः कोठः कुनखोऽनुशयी तथा । पद्मिनीकण्टकश्चिप्पमलसो मुखदूषिका॥९४॥
कक्षा वृषणकच्छूश्च गन्धः पाषाणगर्दभः ।
राजिका च तथा व्यङ्गश्चतुर्द्धा परिकीर्त्तितः ॥ ९५ ॥
वातात्पित्तात्कफाद्रक्तादित्युक्तं व्यङ्गलक्षणम् ।
विस्फोटाः क्षुद्ररोगेषु तेऽष्टधा परिकीर्त्तिताः ॥ ९६ ॥
पृथग्दोषैस्त्रयो पृथग्स्त्रिविधः सप्तद्वन्द्वैमोऽस्रजः । अष्टमः सन्निपातेन क्षुद्ररुक्षु मसूरिका॥९७॥
चतुर्दशप्रकारेण त्रिभिर्दोषैस्त्रिधा च सा ।
द्वन्द्वजा त्रिविधा प्रोक्ता सन्निपातेन सप्तमी ॥ ९८ ॥
अष्टमी त्वग्गता ज्ञेया नवमी रक्तजा स्मृता ।
दशमी मांससंजाता चतस्रोऽन्याश्च दुस्तराः ॥
मेदोऽस्थिमज्जाशुक्रस्थाः क्षुद्ररोगा इतीरिताः ॥ ९९ ॥

क्षुद्ररोग साठ प्रकार के होते हैं—१–शर्करार्बुद, २–इन्द्रवृद्धा, ३–पनसिका, ४–विवृता, ५–अन्धालजी, ६–वराहदंष्ट्रा, ७–वल्मीक, ८–कच्छपी, ९–तिलकालक, १०–गर्दभी, ११–रकसा, १२–यवप्रख्या, १३–विदारिका, १४–कदर, १५–मषक, १६–नीलिका, १७–जालगर्दभ, १८–इरिवेल्ली, १९–जतुमणि, २०–गुदभ्रंश, २१–अग्निरोहिणी, २२–सन्निरुद्धगुद, २३–कोठ, २४–कुनख, २५–अनुशयी, २६–पद्मिनीकण्टक, २७–चिप्प, २८–अलस, २९–मुखदूषिका, ३०–कक्षा, ३१–वृषणकच्छु, ३२–गन्ध, ३३–पाषाणगर्दभ, ३४–राजिका, **चार प्रकार के व्यङ्ग** यानी ३५—वातिक व्यङ्ग, ३६–पैत्तिक व्यङ्ग, ३७–श्लैष्मिक व्यङ्ग, ३८–रक्तज व्यङ्ग, और **विस्फोट आठ प्रकार का** यथा–३९–वातिक विस्फोट, ४०–पैत्तिक विस्फोट, ४१–श्लैष्मिक विस्फोट, ४२–वातपैत्तिक विस्फोट, ४३–वातश्लैष्मिक विस्फोट, ४४–पित्तश्लैष्मिक विस्फोट, ४५–रक्तज विस्फोट और ४६–सान्निपातिक विस्फोट, **मसूरिका रोग चौदह प्रकार का** यथा—४७–वातिक मसूरिका, ४८–पैत्तिक मसूरिका, ४९–श्लैष्मिक मसूरिका, ५०–वातपैत्तिक मसूरिका, ५१–वातश्लैष्मिक मसूरिका, ५२–पित्तश्लैष्मिक मसूरिका, ५३–सान्निपातिक मसूरिका, ५४–त्वग्गता मसूरिका, ५५–रक्तजा मसूरिका, ५६–मांसजा

मसूरिका, ५७-मेदोजा मसूरिका और ५८-अस्थिजा मसूरिका, ५९-मज्जस्था मसूरिका ६०-शुक्रस्था मसूरिका। **अन्त के चार मसूरिका दुस्साध्य हैं।** इस प्रकार क्षुद्र रोग साठ भेद हुए।

विमर्श—जो रोग स्वल्प कारण से उत्पन्न होते हैं, जिनका लक्षण भी स्वल्प ही होता जो स्वल्प कष्टदायक होते हैं, जिनका भेद भी स्वल्प होता है तथा स्वल्प उपक्रम से जो हैं, उनको **क्षुद्र रोग** कहा जाता है। पर यहां अधिक कष्टदायक और प्राणनाशक अग्नि**णी** आदि का तथा अधिक भेद वाले **विस्फोट और मसूरिका** का भी पाठ है। अतः प रिक क्रम से आयी हुई इस क्षुद्ररोग संज्ञा को रूढि संज्ञा ही समझना चाहिये। अन्य ग्र कारों ने विस्फोट और मसूरिका का स्वतन्त्र पाठ किया है, पर **शार्ङ्गधरजी** ने इनको रोग में ही दे दिया है। इस समग्र अध्याय की आलोचना से यही जँचता है कि शा **आचार्य** ने रोगों की गणना एक अपने ही नये ढङ्ग से किया है। अस्तु इनके लक्षण यार्थ संक्षेप में कहते हैं।

(१)**शर्करार्बुद**—यह किसी कदर अर्बुद जैसा होता है, उसमें वायु मांस को सुख कठिन रवा सा बना देता है जिसके निकलने से सिरा से सहसा दुर्गन्ध क्लेदयुक्त अ वर्ण का रक्तस्राव होता है। इसे **शर्करार्बुद** कहते हैं। (२)**इन्द्रवृद्धा** (इन्द्रविद्धा एक वातपित्तज पिडका विशेष है जिसके मध्य में पद्मपुष्करवत् अनेक पिडकाएँ होत (३)**पनिसका**—यह वातकफजनित पनस सी पिडका है जो कान के स्रोत में अ वाली होती है। (४)**विवृता**-यह भी एक प्रकार की पिडका है, इसमें पित्तका प्राबल्य हो यह चौड़े मुख वाली, भयंकर दाहयुक्त, पके गूलर सी लाल तथा गोल होती है। मुख होने से **विवृता** नाम है। (५)**अन्त्रालजी (अन्धालजी)**-कफवातज अल्प पूय और

---

(१) शर्करार्बुदलक्षणम्— **दुर्गन्धि क्लिन्नमत्यर्थं नानावर्णं ततः शिराः।**
सृजन्ति सहसा रक्तं तं विद्याच्छर्करार्बुदम्॥

अन्यलक्षणम्—**प्राप्य मांसशिरास्नायु श्लेष्मा मेदस्तथाऽनिलः।**
ग्रन्थिं कुर्वन्त्यसौ भिन्नो मधुसर्पिर्वसानिभम्॥
स्रवत्यास्रावमनिलस्तत्र वृद्धिं गतः पुनः। मांसं विशोष्य ग्रथितां शर्करां जनयेत्

(२) इन्द्रवृद्धालक्षणम्—**पद्मकर्णिकवन्मध्ये पिडिकाभिः समाचिताम्।**
इन्द्रवृद्धां तु तां विद्याद् वातपित्तोत्थितां भिषक्॥

(३) पनसिकालक्षणम्—**कर्णस्याभ्यन्तरे जातां पिडिकामुग्रवेदनाम्।**
स्थिरां पनसिकां तां तु विद्याद् वातकफोत्थिताम्॥

(४) विवृतालक्षणम्—**विवृतास्यां महादाहां पक्वोदुम्बरसन्निभाम्।**
विवृतामिति तां विद्यात्पित्तोत्थां परिमण्डलाम्॥

(५) अन्त्रालजीलक्षणम्— **घनामवक्त्रां पिडिकामुन्नतां परिमण्डलाम्।**
अन्त्रालजीमल्पपूयां तां विद्यात्कफवातजाम्॥

कण्डु वाली, कच्चे गूलर जैसी मुखहीन पिडका को कहते हैं। (१)**वराहदंष्ट्रा—**यह दाहकारी रक्त तक व्यापी, ज्वरकारी, कण्डुर और तीव्र वेदनायुक्त वराह–दाढ़ जैसा लम्बा शोथ है, जो पक जाता है। यह वङ्क्षण–संधि के नीचे दोनों में होता है। (२)**वल्मीक-**यह ग्रीवा, स्कन्ध, मन्या, कक्षा, हाथ, पांव अथवा संधिस्थल में होताहै। इसमें विमवट जैसी ऊँची पिडिकाएँ एक दूसरे पर होती हैं। उपेक्षा से पककर हर एक शिखर से स्राव होता है तथा तोदवत् पीड़ा होती रहती है। यह विसर्प जैसा फैलता भी है। यह गूढमूल होता है और पुराना होने से असाध्य हो जाता है। (३)**कच्छपी–**इसमें कफवात से कछुए जैसी मध्यमें ऊँची पांच छः पिडकाएँ एकत्र निकल आती हैं। (४)**तिलकालक–**वायु प्रेरित पित्त द्वारा शरीर में **अवभासिनी** त्वक् के नीचे कफ और रक्त के दग्ध हो जाने से काले या नीले तिल से चिह्न बन जाते हैं। इसे साधारण में **तिल** कहते हैं। (५)**गर्दभी—**वातपित्त–कर्तृक रक्तज पिडका है। यह मण्डलाकार गोल, उठी हुई तथा पिडकाओं से व्याप्त रुजा करने वाली होती है। (६) **रकसा—**शरीर में जो पिडिका स्रावरहित तथा कण्डू (खुजली) से युक्त होती है उसे **रकसा** कहते हैं। यह यद्यपि अन्यत्र कुष्ठभेदों में वर्णित है। तथापि क्षुद्र होने से यहां पर इस का वर्णन किया गया है। (७)**यवप्रख्या–**वातशोषित कफयुक्त मांस से उत्पन्न यवाकार, कठिन, क्षुद्र ग्रन्थि सी होती है।

अन्धालजीलक्षणम्—**कफानिलौ श्रितौ स्नायुं पिडिकां परिमण्डलाम् ।**
दुष्टौ जनयतश्चैकामल्पपूयाल्पकण्डुराम् ॥
आमोदुम्बरसङ्काशां विद्यादन्धालजीं तु ताम् ॥

(१) वराहदंष्ट्रलक्षणम्–**सदाहो रक्तपर्यन्तस्त्वपाको तीव्रवेदनः ।**
कण्डूमाज् ज्वरकारी च स स्याच्छूकरदंष्ट्रकः ॥

(२) वल्मीकलक्षणम्–**ग्रीवांऽसकक्षाकरपाददेशे सन्धौ गले वा त्रिभिरेव दोषैः ।**
ग्रन्थिः स वल्मीकवदक्रियाणां जातः क्रमेणैव गतः प्रवृद्धिम् ॥
मुखैरनेकैः स्रुतितोदवद्भिर्विसर्पवत्सर्पति चोन्नताग्रैः ।
वल्मीकमाहुर्भिषजो विकारं निष्प्रत्यनीकं चिरजं विशेषात् ॥

(३) कच्छपीलक्षणम्—**ग्रन्थयः पञ्च वा षड् वा दारुणाः कच्छपोन्नताः ।**
कफानिलाभ्यां पिडिका ज्ञेया कच्छपिका बुधैः ॥

(४) तिलकालकलक्षणम्— **कृष्णानि तिलमात्राणि नीरुजानि समानि च ।**
वातपित्तकफोद्रेकात्तान् विद्यात्तिलकालकान् ॥

(५) गर्दभिकालक्षणम्–**मण्डलं वृत्तमुत्सन्नं सरक्तं पिडिकाचितम् ।**
रुजाकरीं गर्दभिकां तां विद्याद्वातपित्तजाम् ॥

(६) रकसालक्षणम्—**कण्डून्विता या पिडिका शरीरे संस्रावहीना रकसोच्यते सा ।**

(७) यवप्रख्यालक्षणम्–**यवाकारा तु कठिना ग्रथिता मांससंश्रिता ।**
पिडिका श्लेष्मवाताभ्यां यवप्रख्येति सोच्यते ॥

(१)**विदारिका**-सन्निपात-जनित, रक्त, विदारीकन्दवत् गोल पिडका जो कक्षासंधि और वङ्क्षण संधि में होती है। (२)**कदर**—कंकर या काँटे के क्षत से पांव के तलुए में गोल कठिन ग्रन्थि बन जाती है। (३)**मषक**—वातकर्तृक माष जैसा चर्म के ऊपर उठा हुआ प्रसिद्ध क्षुद्र रोग होता है। (४)**नीलिका**—जिस स्थल में चमड़े का रङ्ग नीला हो जाता है। यह विशेष कर मुख पर होता है। (५)**जालगर्दभ**—पित्तज, दाह और ज्वर करने वाला, न पकने वाला शोथ जो विसर्प सदृश फैलता है। (६)**इरिवेल्लिका**—शिरोभाग में होने वाली, तीव्रवेदना वाली ज्वरकारिणी, त्रिदोषज पिडका जिसमें तीनों दोषों के लक्षण प्रकट हों। (७)**जतुमणि**—ईषदुत्सन्न, वेदनाहीन, ताम्रकृष्ण सा कफरक्तज मण्डल जो गर्भ से ही विद्यमान हो। (८)**गुदभ्रंश**—रूक्ष और दुर्बल शरीर मनुष्य के अधिक अतिसार से या काँखने से गुदा बाहर निकल आती है। (९)**अग्निरोहिणी**—पित्त और रक्त से कक्षा भाग में उत्पन्न, ...

---

(१) विदारिकालक्षणम्—**विदारीकन्दवद् वृत्ता कक्षावङ्क्षणसन्धिषु।**
विदारिका भवेद्रक्ता सर्वजा सर्वलक्षणा॥

(२) कदरलक्षणम्—**शर्करोन्मथिते पादे क्षते वा कण्टकादिभिः।**
ग्रन्थिः कोलवदुत्सन्नो जायते कदरं हि तत्॥

हस्तयोः पादयोश्चापि गम्भीरानुगतं खरम्। मांसकीलं जनयतः कुपितौ कफमारुतौ।
सशल्यमिव तं देशं मन्यते तेन पीडितः। शर्कराकदरं केचिन्मन्यन्ते वातश्लेष्मजम्॥

(३) मषकलक्षणम्—**अवेदनं स्थिरं चैव यस्मिन् गात्रे प्रदृश्यते।**
माषवत्कृष्णमुत्सन्नमनिलान्मषकं तु तत्॥

(४) नीलिकालक्षणम्—**कृष्णमेव त्वचं गात्रे नीलिकां तां विनिर्दिशेत्।**

(५) जालगर्दभलक्षणम्—**विसर्पवत्सर्पति यः शोथस्तनुरपाकवान्।**
दाहज्वरकरः पित्तात् स ज्ञेयो जालगर्दभः॥

(६) इरिवेल्लिकालक्षणम्— **पिडिकामुत्तमाङ्गस्थां वृत्तामुग्ररुजाज्वराम्।**
सर्वात्मिकां सर्वलिङ्गां जानीयादिरिवेल्लिकाम्॥

(७) जतुमणिलक्षणम्—**सममुत्सन्नमरुजं मण्डलं कफरक्तजम्।**
सहजं लक्ष्म चैकेषां लक्ष्यो जतुमणिस्तु सः॥

(८) गुदभ्रंशलक्षणम्—**प्रवाहणातिसाराभ्यां निर्गच्छति गुदो बहिः।**
रूक्षदुर्बलदेहस्य गुदभ्रंशं तमादिशेत्॥

(९) अग्निरोहिणीलक्षणम्—**कक्षभागेषु ये स्फोटा जायन्ते मांसदारणाः।**
अन्तर्दाहज्वरकरा दीप्तपावकसन्निभाः॥
सप्ताहाद्वा दशाहाद्वा पक्षाद्वा हन्ति मानवम्।
तामग्निरोहिणीं विद्यादसाध्यां सर्वदोषजाम्॥

जैसा दाह और ज्वरकारी स्फोट, जिसमें मांस विदीर्ण हो जाता है। उपेक्षा से एक सप्ताह में, दस दिन में या पन्द्रह दिन में या इनसे पहले ही प्राणनाशक होता है। यह सन्निपात-जन्य है।(१)**सन्निरुद्धगुद**—पुरीष के वेग को रोकने से वायु उद्वृत्त होकर गुदामार्ग को संकुचित कर देता है, अतः काँखने से भी मल कठिनता से अल्प निकलता है। यह **सन्निरुद्धगुद** व्याधि दारुण है। (२)**कोठ**—शीतपित्तान्तर्गत रोग है। रक्त, कफ और पित्तजन्य रक्तवर्ण वर्रे के दंश जैसा क्षुद्र शोथ होता है। इसमें खुजली होती है और यह शीघ्र ही उत्पन्न होकर शीघ्र ही लीन भी हो जाया करता है। (३)**कुनख**—यह आगे कथित **चिप्प** का ही भेद है। चिप्प यदि अल्पदोषोत्पन्न हो तो **कुनख** कहते हैं। (४)**अनुशयी**—पादतलोपरि ठेस आदि लगने से या नंगे पांव अधिक चलने से स्थूल चर्म के नीचे गम्भीर भाग में अल्प शोथयुक्त होता है। तलचर्म के अधिक कठिन होने से ऊपर से सवर्ण ही रहता है पर भीतर वेदना होती है। यह अन्दर ही पकता है पर स्थूलचर्म को भेद नहीं सकता अतः शस्त्रक्रिया करनी पड़ती है। (५)**पद्मिनीकण्टक**—कफवातज, पाण्डु और कण्डुर मण्डल, जिसमें कमल की डण्डी जैसे क्षुद्र कण्टक रहते हैं। (६)**चिप्प**—वायु और पित्त नख-मांस को दूषित कर दाह और पाक उत्पन्न करते हैं। इसे **चिप्प** या **चिप्य** कहते हैं। (७)**अलस**—दुष्ट कीचड़ में नङ्गे पांव फिरा करने से पांवों की अंगुलिसन्धियों में कण्डू, दाह, रुजा और क्लेदयुक्त घाव हो जाते हैं। इसे **अलस** कहते हैं (८)**मुखदूषिका**—कफ, वायु और रक्त से उत्पन्न, सेमल के कांटों जैसी पिडकाएं जो

---

(१) सन्निरुद्धगुदलक्षणम्—**वेगसंधारणाद्वायुर्विहतो गुदसंस्थितः।**
निरुणद्धि महास्रोतः सूक्ष्मद्वारं करोति च॥
मार्गस्य सौक्ष्म्यात् कृच्छ्रेण पुरीषं तस्य गच्छति।
सन्निरुद्धगुदं व्याधिमेनं विद्यात् सुदारुणम्॥

(२) कोठलक्षणम्—**वरटीदष्टसंकाशः कण्डूमाँल्लोहितोऽस्रकफपित्तात्।**
क्षणिकोत्पादविनाशः कोठ इति निगद्यते तज्ज्ञः॥

(३) कुनखलक्षणम्—**तदेवाल्पतरैर्दोषैः पुरुषः कुनखो भवेत्।**

(४) अनुशयीलक्षणम्—**गम्भीरामल्पसंरम्भां सवर्णामुपरिस्थिताम्।**
पादस्यानुशयीं तां तु विद्यादन्तः प्रपाकिनीम्॥

(५) पद्मिनीकण्टकलक्षणम्—**कण्टकैराचितं वृत्तं मण्डलं पाण्डु कण्डुरम्।**
पद्मिनीकण्टकप्रख्यैस्तदाख्यं कफवातजम्॥

(६) चिप्पलक्षणम्—**नखमांसमधिष्ठाय वातः पित्तं च देहिनाम्।**
कुर्वाते दाहपाकौ च तं व्याधिं चिप्पमादिशेत्॥

(७) अलसलक्षणम्—**क्लिन्नाङ्गुल्यन्तरौ पादौ कण्डूदाहरुजाऽन्वितौ।**
दुष्टकर्दमसंस्पर्शादलसं तं विभावयेत्॥

(८) मुखदूषिकालक्षणम्—**शाल्मलीकण्टकप्रख्या कफमारुतरक्तजा।**
युवानपिडिका यूनां विज्ञेया मुखदूषिका॥

युवकों के मुख पर होती हैं। इन्हें **मुखदूषिका** या साधारण भाषा में **मुंहासे** कहते
(१)**कक्षा**—बाहु, पार्श्व, अंस और कक्षा सन्धि में उत्पन्न, वेदनायुक्त कृष्णवर्ण, पित्त
स्फोट को **कक्षा** कहते हैं। (२)**वृषणकच्छू**—स्नान और सफाई हीन लोगों के अण्ड
मल जम जाता है। सन्धि में स्वेद होने से मल फूल कर कण्डू होती है। खुजलाने से
क्षुद्र पिडकाएँ हो जाती हैं तथा खुजली जारी रहती है अतः उनके फूटने से लसीका
होता है। इसे **वृषणकच्छू** कहते हैं। (३)**गन्धनाम्नी**—यह कक्षा का ही भेद है। किन्तु
यह कि यह त्वचा पर ही होती है। एवं संख्या में एक ही स्फोट होता है। (४)**पाषाण
गर्दभ**—हनुसन्धि में उत्पन्न वातकफज कठिन और अल्प वेदनायुक्त स्निग्धवर्ण शोथ को
हैं। (५)**राजिका**—कफवात से शरीर में राई के दाने के समान जो फुन्सियाँ होती हैं
राजिका कहते हैं। इसे लोग **"कोद्रव"** भी कहते हैं। देखने में यह मालूम पड़ती है, कि
गई है, किन्तु उसका पाक नहीं होता है। (६)**व्यङ्ग**—क्रोध तथा परिश्रम से कुपित पित्त

---

(१) कक्षालक्षणम्—**बाहुपार्श्वांसकक्षेषु कृष्णस्फोटां सवेदनाम्।
पित्तप्रकोपसम्भूतां कक्षामित्यभिनिर्दिशेत्॥**

(२) वृषणकच्छूलक्षणम्—**स्नानोत्सादनहीनस्य मलो वृषणसंस्थितः।
प्रक्लिद्यते यदा स्वेदात् कण्डूं जनयते तदा॥
ततः कण्डूयनात्क्षिप्रं स्फोटः स्रावश्च जायते। प्राहुर्वृषणकच्छूं तां श्लेष्मरक्तप्रकोपजाम्॥**

(३) गन्धनाम्नी-लक्षणम्—**एकामेतादृशीं दृष्ट्वा पिडिकां स्फोटसन्निभाम्।
त्वग्गतां पित्तकोपेन गन्धनाम्नीं प्रचक्षते॥**

(४) पाषाणगर्दभलक्षणम्—**वातश्लेष्मसमुद्भूतः श्वयथुर्हनुसन्धिजः।
स्थिरो मन्दरुजः स्निग्धो ज्ञेयः पाषाणगर्दभः॥**

(५) राजिकालक्षणम्—**राजिकाऽऽकारपिडिकानां सम्भवत्वेन राजिकाः।
मसूरिकारोगे अस्य नाम कोद्रवः—**

तस्य लक्षणमिदम्—**कफवातादिसम्भूतः कोद्रवो नाम नामतः।
लोको वदति पक्वाभः स च पाकं न गच्छति॥**

(६) व्यङ्गलक्षणं भेदश्च—**क्रोधायासप्रकुपितो वायुः पित्तेन संयुतः।
मुखमागत्य सहसा मण्डलं विसृजत्यतः॥
नीरुजं तनुकं श्यावं मुखे व्यङ्गं तमादिशेत्।**

अत्र सरक्तेन वातादिदोषेण चतुष्प्रकारो व्यङ्गः कथितः। यद्यपि सपित्तेन वायुना व्यङ्गो निर्दिष्टस्तथाऽप्यत्र कफरक्तानुबन्धो द्रष्टव्यः। यतो नीरुजत्वं कफेन विना न सम्भवति श्यावत्वं च शुक्लानुविद्धरक्तवर्णं तेन सरक्तदोषकारणं, तेन सर्वदोषजो व्यङ्ग इति तात्पर्यार्थः।

में आकर त्वचा में वेदनाहीन फीका श्याव रङ्ग का मण्डल उत्पन्न करता है। यह वातादिभेद से वर्णविशेषयुक्त होता है। चार प्रकार का होता है। (१)**विस्फोट—**दोष रक्त मांस तथा अस्थि को दूषित कर त्वचा पर ज्वर के साथ आग से जले जैसे बवाल फफोले उत्पन्न कर देते हैं। उन्हें **विस्फोट** कहते हैं। ये एकदोषज, द्विदोषज, रक्तज और सन्निपातज भेद से आठ प्रकार के होते हैं, जो तत्तल्लक्षणयुक्त होते हैं।

(२)**मसूरिका—**रक्त से जब पित्त संसृष्ट होता है तब वह शरीर में प्रायः मसूर जैसी

---

(१) विस्फोटसम्प्राप्तिः—**त्वचमाश्रित्य ते रक्तं मांसास्थीनि प्रदूष्य च।**
घोरान्कुर्वन्ति विस्फोटान् सर्वाञ् ज्वरपुरःसरान्॥
अन्यच्च—**यदा रक्तं च पित्तञ्च वातेनानुगतं त्वचि।**
अग्निदग्धनिभान् स्फोटान् कुरुते सर्वदेहगान्॥
निदानम्—**कट्वम्लतीक्ष्णोष्णविदाहिरूक्षक्षारैरजीर्णाध्यशनातपैश्च।**
तथर्तुदोषेण विपर्ययेण कुप्यन्ति दोषाः पवनादयस्तु॥
वातजलक्षणम्—**शिरोरुक्शूलभूयिष्ठं ज्वरतृड्पर्वभेदनम्।**
सकृष्णवर्णता चेति वातविस्फोटलक्षणम्॥
पैत्तिकलक्षणम्—**ज्वरदाहरुजास्रावपाकतृष्णाभिरन्वितम्।**
पीतलोहितवर्णं च पित्तविस्फोटलक्षणम्॥
कफजलक्षणम्—**छर्द्यरोचकजाड्यानि कण्डूकाठिन्यपाण्डुताः।**
अवेदनश्चिरात् पाकी स विस्फोटः कफात्मकः॥
द्वन्द्वजलक्षणम्—**वातपित्तकृतो यस्तु कुरुते तीव्रवेदनाम्।**
कण्डूर्दाहो ज्वरश्छर्दिरेतैस्तु कफपैत्तिकः। कण्डूस्तैमित्यगुरुभिर्जानीयात्कफवातजम्॥
त्रिदोषजलक्षणम्—**मध्ये निम्नोन्नतोऽन्ते च कठिनोऽल्पप्रपाकवान्।**
दाहरागतृषामोहच्छर्दिमूर्च्छारुजो ज्वरः। प्रलापो वेपथुस्तन्द्रा स त्वसाध्यस्त्रिदोषजः॥
रक्तजलक्षणम्—**रक्ता रक्तसमुत्थाना गुञ्जाविद्रुमसन्निभाः।**
वेदितव्यास्तु रक्तेन पैत्तिकेन च हेतुना। न ते सिद्धिं समायान्ति सिद्धैर्योगवरैरपि।
विस्फोटकोपद्रवाः—**हिक्काश्वासोऽरुचिस्तृष्णा अङ्गसादो हृदि व्यथा।**
विसर्पज्वरहृल्लासा विस्फोटानामुपद्रवाः॥
(२) मसूरिकानिदानम्—**कट्वम्ललवणक्षारविरुद्धाध्यशनाशनैः।**
दुष्टनिष्पावशाकाद्यैः प्रदुष्टपवनोदकैः॥
क्रूरग्रहेक्षणाद्वाऽपि देशे दोषाः समुद्धताः। जनयन्ति शरीरेऽस्मिन् दुष्टरक्तेन सङ्गताः॥
मसूराकृतिसंस्थानाः पिडिकाः स्युर्मसूरिकाः॥
रूपम्—**मसूरकुसुमानां च तुल्या तत् फलकोपमा।**
गात्रेषु वदने वाऽपि पित्ताज्ज्ञेया मसूरिका॥

आकृति की पिडकाएं उत्पन्न करता है। यह आगन्तुविष से ही उत्पन्न होता है और जनपदव्यापी होता है। यद्यपि यह एक भयङ्कर रोग है, तथापि आचार्य जी ने इसे ... सहित क्षुद्र रोगों में ही दे दिया है। यह आजकल प्रबल रूप से देश में आविर्भूत ... अतः इनके भेदों का भी कुछ वर्णन यहाँ कर देते हैं।

अन्यच्च—पित्तं शोणितसंसृष्टं यदा दूषयति त्वचम्।
तदा करोति पिडिकाः सर्वगात्रेषु देहिनाम्॥
मसूरमाषमुद्गेभ्यस्तुल्याः कोलोपमाः क्वचित्।
प्रवालसदृशाः काश्चित्काश्चिज्जम्बुफलोपमाः॥
लोहजालनिभाः काश्चिदलसीफलसन्निभाः।
मसूरिकास्तु तज्ज्ञेयाः पित्ताधिक्याद् बुधैरिति॥

वातजलक्षणम्—स्फोटाः कृष्णारुणा रूक्षास्तीव्रवेदनयाऽन्विताः।
कठिनाश्चिरपाकाश्च भवन्त्यनिलसम्भवाः॥
सन्ध्यस्थिपर्वणां भेदः कासः कम्पोऽरतिः क्लमः।
शोषस्ताल्वोष्ठजिह्वानां तृष्णा चारुचिसंयुता॥

पित्तजमाह—रक्ताः पीताः सिताः स्फोटास्तृष्णादाहसमन्विताः।
मृदवोऽचिरपाकाश्च पित्तकोपसमुद्भवाः॥
विड्भेदश्चाङ्गमर्दश्च तृषादाहोऽरुचिस्तथा। मुखपाकोऽक्षिरागश्च ज्वरस्तीव्रः सु...

रक्तजलक्षणम्—विड्भेदश्चाङ्गमर्दश्च दाहस्तृष्णाऽरुचिस्तथा।
मुखपाकोऽक्षिरागश्च ज्वरस्तीव्रः सुदारुणः। रक्तजायां भवन्त्येते विकाराः पित्त...

श्लैष्मिकलक्षणम्—कफप्रसेकः स्तैमित्यं शिरोरुग्गात्रगौरवम्।
हृल्लासः सारुचिस्तन्द्रा निद्राऽऽलस्यसमन्विता॥
श्वेताः स्निग्धा भृशं स्थूलाः कण्डुरा मन्दवेदनाः।
मसूरिकाः कफोत्थाश्च चिरपाकाः प्रकीर्त्तिताः॥

द्वन्द्वजमाह—द्विदोषलक्षणैरेतैर्जानीयात्तु द्विदोषजाम्॥

त्रिदोषजलक्षणम्—नीलाश्चिपिटविस्तीर्णा मध्ये निम्ना महारुजाः।
चिरपाकाः पूतिस्रावाः प्रभूताः सर्वदोषजाः॥

अन्यत्र-चर्मपिडिका—कण्ठरोधोऽरुचिस्तम्भप्रलापारतिसंयुताः।
दुश्चिकित्स्याः समुद्दिष्टाः पिडिकाश्चर्मसञ्ज्ञिताः॥

त्वग्गतानां (रसगतानां) लक्षणम्—तोयबुद्बुदसङ्काशास्त्वग्गतास्तु मसूरिकाः।
स्वल्पदोषाः प्रजायन्ते भिन्नास्तोयं स्रवन्ति च॥

रक्तगतानां लक्षणम्—रक्तस्था लोहिताकाराः शीघ्रपाकास्तनुत्वचः।
साध्या नात्यर्थदुष्टाश्च भिन्ना रक्तं स्रवन्ति च॥

इनके उत्पन्न होने के पूर्व ज्वर, गात्र-भङ्ग, अरति, भ्रम, शरीर में कण्डू, छोटे छोटे दाने से शोथ और आँखों में ललाई होती है।

१–**वातिक मसूरिका**—इसमें पिडकाएं श्याव या अरुणवर्ण, रूक्ष, कठिन, तीव्र वेदना-युक्त और चिरकाल में पकने वाली होती हैं। इसमें सन्धि और अस्थिपर्वों में भेदवत् पीड़ा, कास, कम्प, अरति, थकान, तालु, ओठ तथा जीभ का सूखना, प्यास और अरुचि, ये उपद्रव होते हैं। २–**पैत्तिक मसूरिका**—इसमें पिडकाएं रक्त, पीत या पाण्डु रङ्ग के दाहयुक्त, तीव्र वेदना युक्त और शीघ्र पकने वाली होती हैं। पतले दस्त आना, अङ्गमर्द, दाह, प्यास, अरुचि, मुखपाक, आँखों का लाल होना तथा तेज ज्वर ये उपद्रव होते हैं। ३–**श्लैष्मिक मसूरिका**—इसमें पिडकाएं श्वेत, बड़ी, स्निग्ध, कण्डुर, मन्द वेदना वाली तथा देर में पकने वाली होती हैं। कफप्रसेक, स्तैमित्य, सिरदर्द, शरीर में भारीपन, हृल्लास, अरुचि, निद्रा, तन्द्रा और आलस्य इसके उपद्रव हैं। ४–**वातपैत्तिक मसूरिका**, ५–**वातश्लैष्मिक मसूरिका**, एवं ६–**पित्तश्लैष्मिक मसूरिका** के लक्षण उक्त लक्षणों के से दोषानुसार मिलित होते हैं। ७–**सान्निपातिक मसूरिका**—नीले रङ्ग की चिउड़ा सी लम्बी, बीच में गहरी,

---

मांसगतानां लक्षणम्—**मांसस्थाः कठिनाः स्निग्धाश्चिरपाका घनत्वचः।**
गात्रशूलतृषाकण्डूज्वरारतिसमन्विताः॥

मेदोगतानां लक्षणम्—**मेदोजा मण्डलाकारा मृदवः किञ्चिदुन्नताः।**
घोरज्वरपरीताश्च स्थूलाः स्निग्धाः सवेदनाः॥
सम्मोहारतिसन्तापाः कश्चित्ताभ्यो विनिस्तरेत्।

अस्थिगतानां लक्षणम्—**छिन्दन्ति मर्मधामानि प्राणानाशु हरन्ति च।**
भ्रमरेणेव विद्धानि कुर्वन्त्यस्थीनि सर्वतः॥

मज्जगतानां लक्षणम्—**क्षुद्रा गात्रसमा रूक्षाश्चिपिटाः किञ्चिदुन्नताः।**
मज्जोत्था भृशसंमोहवेदनाऽरतिसंयुताः॥

शुक्रगतानां लक्षणम्—**पक्वाभाः पिडिकाः स्निग्धाः सूक्ष्माश्चात्यर्थवेदनाः।**
स्तैमित्यारतिसंमोहदाहोन्मादसमन्विताः॥

शुक्रजायां मसूर्यां तु लक्षणानि भवन्ति हि। निर्दिष्टं केवलं चिह्नं दृश्यते न तु जीवितम्॥
दोषमिश्राश्च सप्तैता द्रष्टव्या दोषशान्तये॥

रोमान्तिकालक्षणम्—**रोमकूपोन्नतिसमा रागिण्यः कफपित्तजाः।**
कासारोचकसंयुक्ता रोमान्त्यो ज्वरपूर्विकाः॥

उपद्रवानाह—**मसूरिकाऽन्ते शोफः स्यात्कूर्परे मणिबन्धके।**
तथांऽसफलके वाऽपि दुश्चिकित्स्यः सुदारुणः॥

अजगल्लिकालक्षणम्—**स्निग्धा सवर्णा ग्रथिता नीरुजा मुद्गसन्निभा।**
कफवातोत्थिता ज्ञेया बालानामजगल्लिका॥

बहुत वेदना वाली, देर में पकने वाली तथा अधिक मात्रा में दुष्ट स्राव करने वाली हो कण्ठरोध, अरुचि, जकड़ना, प्रलाप, अरति, इसके उपद्रव होते हैं। यह दुश्चिकित्स्य है। ८-**त्वग्गता मसूरिका**—ये पिडकाएं पानी के बुलबुले सी होती हैं और फूटने पर पानी सा स्राव होता है। ९-**रक्तगता मसूरिका**—ये पिडकाएं लाल रङ्ग की, ऊपर के आवरण की तथा शीघ्र पकने वाली और फूटने पर रक्तस्राव करने वाली होती हैं। **मांसगता मसूरिका**—ये पिडकाएं कठिन, स्निग्ध, स्थूल आवरण वाली, देर में पकने और गात्रशूल, प्यास, खुजली, ज्वर और अरति करने वाली होती हैं। ११-**मेदोग रिका**—ये पिडकाएं स्थूल, गोल, मृदु, किञ्चिदुन्नत और स्निग्ध वर्ण होती हैं। ये ज्वर करती हैं। १२-**अस्थिगता, मसूरिका**—ये पिडकाएं होने से मर्मस्थानों में की सी पीड़ा होती है, अस्थियों में भ्रमर के दंश जैसी पीड़ा मालूम होती है तथा प्रा ही चले जाते हैं। १३-**मज्जगता मसूरिका**—ये पिडकाएं छोटी शरीर के रङ्ग किंचित् उठी हुई, संमोह, अरति और सन्ताप को देने वाली होती हैं। कोई विरला बचता है। १४-**शुक्रजा मसूरिका**—ये पिडकाएं सूक्ष्म, पकसी और स्निग्ध होती जड़ता, अरति, सम्मोह, दाह और उन्माद आदि उपद्रव-युक्त होती हैं। असल में इन से कोई नहीं जीता। इस तरह ये **क्षुद्र रोग** साठ प्रकार के कहे गये हैं॥९१-९९॥

विसर्पभेदाः—**विसर्परोगो नवधा वातपित्तकफैस्त्रिधा ॥ १०० ॥**
त्रिधा स द्वन्द्वभेदेन सन्निपातेन सप्तमः। अष्टमो वह्निदाहेन नवमश्चाभिघातजः।

(१)**विसर्प रोग**—नौ प्रकार का होता है। १-वातिक विसर्प, २-पैत्तिक

---

(१) विसर्पनिदानम्—**लवणाम्लकटूष्णादिसेवनाद्दोषकोपतः।**
विसर्पनिरुक्तिः—**विविधं सर्पति यतो विसर्पस्तेन स स्मृतः।**
परिसर्पोऽथवा नाम्ना सर्वतः परिसर्पणात् ॥
वातिकमाह—**तत्र वातात् स वीसर्पो वातज्वरसमव्यथः।**
शोफस्फुरणनिस्तोदभेदायासार्त्तिहर्षवान् ॥
पैत्तिकमाह—**पित्ताद् द्रुतगतिः पित्तज्वरलिङ्गोऽतिलोहितः।**
कफजमाह—**कफात्कण्डूयुतः स्निग्धः कफज्वरसमानरुक्।**
त्रिदोषजमाह—**सन्निपातसमुत्थश्च सर्वरूपसमन्वितः।**
द्वन्द्वजविसर्पनामान्याह—**वातपित्ताग्निवीसर्पः कथितो ग्रन्थिसंज्ञकः।**
कफवातात् पित्तकफात् कर्दमाख्यो भिषग्वरैः ॥
वातपित्तजाग्नेयाख्य—**वातपित्तज्वरच्छर्दिमूर्च्छाऽतीसारतृड्भ्रमैः।**
लक्षणम्— **ग्रन्थिभेदाग्निसदनतमकारोचकैर्युतः ॥**
करोति सर्वमङ्गं च दीप्ताङ्गारावकीर्णवत्। यं यं देशं विसर्पश्च विसर्पति भवेत्
शान्ताङ्गारासितो नीलो रक्तो वाऽऽशु च चीयते।
अग्निदग्धनिभैः स्फोटैः शीघ्रगत्वाद् द्रुतं च सः ॥

३–श्लैष्मिक विसर्प, ४–वातपैत्तिक विसर्प, ५–वातश्लैष्मिक विसर्प, ६–पित्तश्लैष्मिक विसर्प, ७–सान्निपातिक विसर्प, ८–अग्निदाह-जन्य विसर्प और ९–क्षतज विसर्प ।

मर्मानुसारी वीसर्पः स्याद् वातोऽतिबलस्ततः ।
व्यथतेऽङ्गं हरेत्संज्ञां निद्रां च श्वासमीरयेत् ॥
हिक्कां च स गतोऽवस्थामीदृशीं लभते नरः ।
क्व चिच्छर्मारतिग्रस्तो भूमिशय्याऽऽसनादिषु ॥
चेष्टमानस्ततः क्लिष्टो मनोदेहप्रमोहवान् ।
दुष्प्रबोधोऽश्नुते निद्रां सोऽग्निवीसर्प उच्यते ॥

कफवातज (ग्रन्थि)–कफेन रुद्धः पवनो भित्त्वा तं बहुधा कफम् ।
लक्षणम्— रक्तं वा वृद्धरक्तस्य त्वक्सिरास्नायुमांसगम् ॥
दूषयित्वा च दीर्घाणुवृत्तस्थूलखरात्मनाम् । ग्रन्थीनां कुरुते मालां रक्तानां तीव्ररुग्ज्वराम् ॥
कासश्वासातिसारस्य शोषहिक्कावमिभ्रमैः ।
मोहवैवर्ण्यमूर्च्छाऽङ्गभङ्गाग्निसदनैर्युताम् ॥
इत्ययं ग्रन्थिवीसर्पः कफमारुतकोपजः ।

कफपित्तज (कर्दम)–कफपित्ताज्ज्वरः स्तम्भो निद्रा तन्द्रा शिरोरुजा ।
लक्षणम्— अङ्गावसादविक्षेपौ प्रलापारोचकभ्रमाः ॥
मूर्च्छाऽग्निहानिर्भेदोऽस्थ्नां पिपासेन्द्रियगौरवम् ।
आमोपवेशनं लेपः स्रोतसां स विसर्पति ॥
प्रायेणामाशयं गृह्णन्नेकदेशं न चातिरुक् । पिडकैरवकीर्णोऽतिपीतलोहितपाण्डुरैः ॥
स्निग्धोऽसितो मेचकाभो मलिनः शोफवान् गुरुः ।
गम्भीरपाकः प्राज्योष्मा स्पष्टक्लिन्नोऽवदीर्यते ॥
पङ्कवच्छीर्णमांसश्च स्पष्टस्नायुशिरागणः ।
शवगन्धी च वीसर्पः कर्दमाख्यमुशन्ति तम् ॥

अपि च–अग्निदाहे वि-अग्निना कोपितं रक्तं भृशं जन्तोः प्रकुप्यति ।
शेषः— ततस्तेनैव वेगेन पित्तमस्याप्युदीर्यते ॥

अभिघात (क्षत)जमाह–बाह्यहेतोः क्षतात् क्रुद्धः सरक्तं पित्तमीरयन् ।
विसर्पं मारुतः कुर्यात् कुलत्थसदृशैश्चितम् ॥
स्फोटैः शोफज्वररुजादाहाढ्यं श्यावशोणितम् । शस्त्रप्रहारैस्तस्तस्तु व्यालदन्तनखैरपि ॥
क्षते वाऽप्यथवा भग्ने बहुदोषस्य देहिनः । रक्तं पित्तं च कुपितं व्रणमाशु प्रकुप्यति ॥
कुरुतस्ते समेते तु व्रणशोथं सुदारुणम् । आचितं व्रणविस्फोटैः कृष्णैः पिडकसन्निभैः ॥
पित्तवीसर्पवल्लिङ्गं तस्य शेषं विनिर्दिशेत् । मर्मोपघातात् सम्मोहादयनानां विघट्टनात् ॥
तृष्णाऽतियोगाद् वेगानां विषमं च प्रवर्त्तनात् ।
विद्याद्विसर्पमन्तर्जमाशु चाग्निबलक्षयात् । अतो विसर्पं यद्बाह्यमन्यद्विद्यात् स्वलक्षणम् ॥

विमर्श—यह रोग शीघ्र ही शरीर में फैल जाता है, अतः **विसर्प** नाम है। **वातिक विसर्प**-वात ज्वर जैसा ही व्यथा करता है तथा वातशोथ सा शोथ, स्फुरण, तोद, हर्ष और आदि से युक्त होता है। **पत्तिक विसर्प**—अतिरक्तवर्ण, शीघ्र फैलने वाला और पित्त लक्षण युक्त होता है। **श्लैष्मिक विसर्प**—स्निग्धवर्ण, कण्डुर और कफज्वर जैसा युक्त होता है। **सान्निपातिक विसर्प**—सन्निपात याने तीनों दोषों के लक्षण से युक्त होता है। वातपित्त से **अग्निविसर्प**, वातकफ से **ग्रन्थिविसर्प**, तथा **पित्तकफ** से **कर्दमक** होता है। **अग्निदग्ध** से तथा **क्षत** से भी पित्त और रक्त कुपित होकर **विसर्प** करते हैं ॥१००–१०१॥

उदर्दशीतपित्तामयौ–**तथैकः श्लेष्मपित्ताभ्यामुदर्दः परिकीर्त्तितः ।**
वातपित्तेन चैकस्तु शीतपित्तामयः स्मृतः ॥ १०२ ॥

(१)श्लेष्मपित्त जनित **उदर्द रोग** एक ही प्रकार का होता है। तथा वातपित्त से **शीतपित्त रोग** भी एक ही प्रकार का होता है।

विमर्श—ठण्ढी हवा के लगने से कफ और वात कुपित होकर, बाह्य शीत स्पर्श से संरुद्ध पित्त के साथ सम्मूर्छित होकर शरीर के बाह्य और अन्तः भाग में फैल कर शीत और **उदर्द** को उत्पन्न करते हैं। दोनों का निदान एक ही है तथा दोनों में ही पित्त अधिक रहता है, पर **शीतपित्त** में **वात** प्रवल रहता है तथा **उदर्द** मे **कफ** प्रवल रहता है। भेद किया गया है। बर्रे के दंश जैसे चकत्ते शरीर के त्वचा पर हो जाते हैं तथा उनमें और तोद होता है। साथ ही वमन, ज्वर और विदाह भी होता है ॥१०२॥

अम्लपित्तभेदाः—
अम्लपित्तं त्रिधा प्रोक्तं वातेन श्लेष्मणा तथा । तृतीयं श्लेष्मवाताभ्याम्

---

(१) शीतपित्तोदर्दकोठौ-**शीतमारुतसंस्पर्शात्प्रदुष्टौ कफमारुतौ ।**
त्कोठानां निदानानि—**पित्तेन सह सम्भूय बहिरन्तर्विसर्पतः ॥**
पूर्वरूपाण्याह—**पिपासाऽरुचिहृल्लासदेहसादाङ्गगौरवम् ।**
रक्तलोचनता तेषां पूर्वरूपस्य लक्षणम् ॥
शीतपित्तलक्षणम्—**वरटीदष्टसंस्थानः शोथः सञ्जायते बहिः ।**
सकण्डूस्तोदबहुलश्छर्दिज्वरविदाहवान् ॥
वाताधिकतमं विद्याच्छीतपित्तमिमं भिषक् ।
शीतपित्तोदर्दयोर्भेदकथनम्—**वाताधिकं शीतपित्तमुदर्दस्तु कफाधिकः ।**
उदर्दलक्षणम्—**सोत्सङ्गैश्च सरागैश्च कण्डूमद्भिश्च मण्डलैः ।**
शैशिरः श्लेष्मबहुल उदर्द इति कीर्त्तितः ॥
कोठोत्कोठयोर्लक्षणे—**असम्यग्वमनोदीर्णपित्तश्लेष्मान्ननिग्रहैः ।**
मण्डलानि सकण्डूनि रागवन्ति बहूनि च ॥
उत्कोठः सानुबन्धश्च कोठ इत्यभिधीयते ।

(१)**अम्लपित्त** रोग तीन प्रकार का होता है। १–वातसंसृष्ट अम्लपित्त, २–कफसंसृष्ट अम्लपित्त और ३–कफवातसंसृष्ट अम्लपित्त।

विमर्श—विरुद्ध, दुष्ट, अम्ल, विदाही तथा अन्यान्य पित्तकोपकारक आहार और पान आदि के करने से पूर्व से ही सञ्चित पित्त और अधिक बढ़कर **विदग्ध** हो जाता है। विदग्ध होने से वह **अम्ल** हो जाता है। अतः इससे होने वाले विकार को **अम्लपित्त** कहते हैं। यह होता तो पित्त से ही है, पर वात, कफ या दोनों का मेल भी इसमें हो जाता है। अतः चिकित्सार्थ भेद किया गया है। भोजन का न पचना, थकान सी मालूम होना, कै का मालूम होना, तिक्त और खट्टी डकारें आना, अङ्ग का भारी होना तथा हृदय और गले में जलन होना **अम्लपित्त** का सामान्य लक्षण है। यह अनेक उपद्रव करता है। उसके भेदों के सामान्य पहचान ये हैं—**वातसंसृष्ट अम्लपित्त** में कँपकँपी, प्रलाप, मूर्च्छा, शरीर में चिमचिमाहट, अवसाद, शूल, अन्धेरा दीखना, भ्रम, मोह और रोमहर्ष होते हैं। **कफसंसृष्ट अम्लपित्त** में कफ निकला, शरीर का भारी मालूम होना, जड़ता, ठण्ढ मालूम होना, अवसाद, वमन, मुख का लिपा सा बोध होना, मन्दाग्नि, खुजली तथा नींद का अधिक आना ये सब होते हैं। **उभयसंसृष्ट अम्लपित्त** में उभय लिङ्ग मिले हुए नजर आते हैं। यह **अम्लपित्त** रोग नया ही अच्छा होता है, पुराना होने से **याप्य** हो जाता है॥१०३॥

वातरक्तभेदाः—···**वातरक्तं तथाऽष्टधा। वाताधिक्येन पित्ताच्च कफाद्दोषत्रयेण च।**
रक्ताधिक्येन दोषाणां द्वन्द्वेन त्रिविधः स्मृतः॥ १०४॥

(२)**वातरक्त** आठ प्रकार का होता है। १–वाताधिक्य से, २–पित्त से, ३–कफ से,

---

(१) अम्लपित्तनिदानम्— **विरुद्धदुष्टाम्लविदाहिपित्तप्रकोपिपानान्नभुजो विदग्धम्।**
पित्तं स्वहेतूपचितं पुरा यत्तदम्लपित्तं प्रवदन्ति सन्तः॥
सामान्यलक्षणम्—**अविपाकक्लमोत्क्लेशतिक्ताम्लोद्गारगौरवैः।**
हृत्कण्ठदाहारुचिभिश्चाम्लपित्तं वदेद्भिषक्॥
वातजलक्षणम्—**तृड्दाहमूर्च्छाभ्रममोहकारि प्रयात्यधो वा विविधप्रकारम्।**
हृल्लासकोठानलसादहर्षस्वेदाङ्गपीतत्वकरं कदा चित्॥
कफजलक्षणम्—**करचरणदाहमौष्ण्यं महतीमरुचिं ज्वरं च कफपित्तम्।**
जनयति कण्डूमण्डल-पिडिकाशतनिचितगात्ररोगचयम्॥
कफवातजलक्षणम्—**वान्तं हरित्पीतकनीलकृष्णमारक्तरक्ताभमतीव चाम्लम्।**
मांसोदकाभं त्वतिपिच्छिलाच्छं श्लेष्मानुजातं विविधं रसेन॥
भुक्ते विदग्धे त्वथवाऽप्यभुक्ते करोति तिक्ताम्लवमिं कदा चित्।
उद्गारमेवंविधमेव कण्ठहृत्कुक्षिदाहं शिरसो रुजं च॥
(२) वातरक्तनिदानम्—**लवणाम्लकटुक्षारस्निग्धोष्णाजीर्णभोजनैः।**
क्लिन्नशुष्काम्बुजानूपमांसपिण्याकमूलकैः॥

४–सन्निपात से, ५–रक्ताधिक्य से, ६–वातपित्त से, ७–वातकफ से, तथा ८–पित्तकफ से

विमर्श—इस रोग में रक्त द्वारा वात कुपित होकर पसरता है, पर पुनः रक्तावरोध होने से रक्त को दूषित कर वातरक्त उत्पन्न करता है। यह पैर के मूल से या कभी हाथ के मूल से आरम्भ होकर फिर धीरे धीरे सारे शरीर में फैलता है। यह होता और रक्त से ही, पर पुनः अन्य दोषों की सम्मूर्च्छना से कथितानुसार आठ भेद जाता है। **चरक** ने इसे दो ही भेद में वर्णन किया है। त्वचा और मांस को आश्रय वाले को **उत्तान** और मेद, अस्थि आदि गम्भीर धातुओं को आश्रय करने वाले को नाम दिया है। यहां चिकित्सा में सुविधा के लिये **शार्ङ्गधर जी** ने दोष-भेद से आठ कह दिया है ॥१०४॥

वातरोगभेदाः—**अशीतिर्वातजा रोगाः कथ्यन्ते मुनिभाषिताः ।**
आक्षेपको हनुस्तम्भ ऊरुस्तम्भः शिरोग्रहः ॥ १०५ ॥
बाह्यायामोऽन्तरायामः पार्श्वशूलं कटिग्रहः ।
दण्डापतानकः खल्ली जिह्वास्तम्भस्तथाऽर्दितम् ॥१०६॥
पक्षाघातः क्रोष्टुशीर्षो मन्यास्तम्भश्च पङ्गुता ।
कलायखञ्जता तूनी प्रतितूनी च खञ्जता ॥ १०७ ॥

कुलत्थमाषनिष्पावशाकादिपललेक्षुभिः । दध्यारनालसौवीरशुक्ततक्रसुराऽऽसवैः।
विरुद्धाध्यशनक्रोधदिवास्वप्नातिजागरैः।प्रायशः सुकुमाराणां मिथ्याऽऽहारविहा
स्थूलानां सुखिनां चापि वातरक्तं प्रकुप्यति ।
सामान्यविवेचनम्—**वायुः प्रवृद्धो वृद्धेन रक्तेनावारितः पथि ।**
क्रुद्धः सन्दूषयेद्रक्तं तज्ज्ञेयं वातशोणितम् ॥
भेदश्च—**उत्तानमथ गम्भीरं द्विविधं वातशोणितम् ।**
त्वङ्मांसाश्रयमुत्तानं गम्भीरं त्वन्तराश्रयम् ॥
वातप्रधानलक्षणम्—**वाताधिकेऽधिकं तत्र शूलस्फुरणतोदनम् ।**
शोथस्य रौक्ष्यं कृष्णत्वं श्यावतावृद्धिहानयः ॥
धमन्यङ्गुलिसन्धीनां सङ्कोचोऽङ्गग्रहोऽतिरुक् । शीतद्वेषानुपशयौ स्तम्भवेपथुसु
पित्ताधिकलक्षणम्—**पित्ते विदाहः सम्मोहः स्वेदो मूर्च्छा मदस्तृषा ।**
स्पर्शासहत्वं रुग्दाहः शोथः पाको भृशोष्णता ॥
कफाधिक्यं–द्वन्द्वजं स-**कफे स्तैमित्यगुरुतासुप्तिस्निग्धत्वशीतताः ।**
न्निपातजमप्याह— **कण्डूर्मन्दा च रुग् द्वन्द्वं सर्वलिङ्गं च सङ्करात् ॥**
रक्तप्रधानलक्षणम्—**रक्ते शोथोऽतिरुक् तोदस्ताम्रश्चिमचिमायते ।**
स्निग्धै रूक्षैः शमं नैति कण्डूक्लेदसमन्वितः ॥
अप्रतिक्रियमाणे दोषः—**पादयोर्मूलमास्थाय कदा चिद्धस्तयोरपि ।**
आखोर्विषमिव क्रुद्धं तद्देहमनुसर्पति ॥

पादहर्षो गृध्रसी च विश्वाची चापबाहुकः ।
अपतानो व्रणायामो वातकण्टोऽपतन्त्रकः ॥ १०८ ॥
अङ्गभेदोऽङ्गशोषश्च मिन्मिनत्वं च गद्गदः ।
प्रत्यष्ठीलाऽष्ठीलिका च वामनत्वं च कुब्जता ॥ १०९ ॥
(अङ्गपीडाऽङ्गशूलं च संकोचस्तम्भरूक्षता ।)
अङ्गभङ्गोऽङ्गविभ्रंशो विड्ग्रहो बद्धविट्कता ॥ ११० ॥
मूकत्वमतिजृम्भा स्यादत्युद्गारोऽन्त्रकूजनम् ।
वातप्रवृत्तिः स्फुरणं शिराणां पूरणं तथा ॥ १११ ॥
कम्पः कार्श्यं श्यावता च प्रलापः क्षिप्रमूत्रता ।
निद्रानाशः स्वेदनाशो दुर्बलत्वं बलक्षयः ॥ ११२ ॥
अतिप्रवृत्तिः शुक्रस्य कार्श्यं नाशश्च रेतसः ।
अनवस्थितचित्तत्वं काठिन्यं विरसास्यता ॥ ११३ ॥
(कषायवक्त्रताऽऽध्मानं प्रत्याध्मानं च शीतता ।
रोमहर्षश्च भीरुत्वं तोदः कण्डू रसाज्ञता ॥)
शब्दाज्ञता प्रसुप्तिश्च गन्धाज्ञत्वं दृशः क्षयः ॥ ११४ ॥

आयुर्वेद के प्रवर्त्तक मुनियों के द्वारा कथित (१)वातरोग के ८० भेद कहे जाते हैं। विस्तार भय से हम नीचे नाम के साथ ही लक्षण संक्षेप में कहते हैं।

(२) १–आक्षेपक । **विमर्श**—जब कुपित वायु सर्व शरीर–गत धमनियों में व्याप्त हो जाता है तब शरीर को वारम्बार आक्षिप्त करता है, अतः इसे **आक्षेपक** वात कहते हैं।

(३) २–हनुस्तम्भ । **विमर्श**–शुष्क–रूक्षादि भोजन से या आघात प्राप्त होने से हनुमूलस्थ वायु

---

(१) वातव्याधिनिदानम्—रूक्षशीताल्पलघ्वन्न–व्यवायातिप्रजागरैः ।
विषमादुपचाराच्च दोषासृक्स्रावणादपि ॥
लङ्घनप्लवनात्यध्वव्यायामातिविचेष्टितैः ।
धातूनां सङ्क्षयाच्चिन्ताशोकरोगातिकर्षणात् ॥
वेगसन्धारणादामादभिघातादभोजनात् । मर्मबाधाद् गजोष्ट्राश्वशीघ्रयानातिसेवनात् ॥
देहे स्रोतांसि रिक्तानि पूरयित्वाऽनिलो बली ।
करोति विविधान् व्याधीन् सर्वाङ्गैकाङ्गसंश्रयान् ॥

(२) आक्षेपकलक्षणम्—यदा तु धमनीः सर्वाः कुपितोऽभ्येति मारुतः ।
तदा क्षिपत्याशु मुहुर्मुहुर्देहं मुहुश्चरः । मुहुर्मुहुश्चाक्षेपणादाक्षेपक इति स्मृतः ।

(३) हनुस्तम्भलक्षणम्–जिह्वानिर्लेखनाच्छुष्कभक्षणादभिघाततः ।
कुपितो हनुमूलस्थः स्रंसयित्वाऽनिलो हनुम् ॥
करोति विवृतास्यत्वमथवा संवृतास्यताम् ।
हनुग्रहः स तेन स्यात्कृच्छ्राच्चर्वणभाषणम् ॥

कुपित होकर, हनुसंधि को स्थानच्युत कर देता है, अतः हनु जहां का तहां रह जाता है यानी स्रंस होते समय जिस अवस्था में रहता है, उसी अवस्था में रह जाता है। यदि बन्द अवस्था में स्तम्भ हो तो **'संवृतास्य'** और खुली अवस्था में हो तो **'विवृतास्य'** कहते हैं।

(१) ३-ऊरुस्तम्भ। **विमर्श**—वायु कफ, मेद और आम को ऊर्वस्थियों में पूरित कर ऊरु को जकड़ देता है। ऊरु शीत, स्पर्शहीन, भारी, व्यथायुक्त और दूसरे की सी मालूम होती है। (२) ४-शिरोग्रह। **विमर्श**—वायु रक्ताश्रित होकर कण्ठगत शिराओं को रूक्ष, कृष्ण और व्यथायुक्त करता है। तीव्र वेदना होती है। यह **शिरोग्रह** कहलाता है। (३) ५-बाह्यायाम। **विमर्श**—वायु पीठ के स्नायुजाल में अवस्थित होकर जब शरीर को पीठ की ओर धनुष जैसा टेढ़ा कर देता है तब उसे **बाह्यायाम** कहते हैं। (४) ६-अन्तरायाम। **विमर्श**—जब वायु भीतर के स्नायुजालों में अवस्थित होकर शरीर को अन्दर यानी सामने की ओर धनुष जैसा टेढ़ा कर देता है तब उसे **अन्तरायाम** कहते हैं। (५) ७-पार्श्वशूल। **विमर्श**—कोष्ठाश्रित वायु श्लेष्मकर्तृक मार्गरोध होने से पसवाड़ों में शूल उत्पन्न कर देता है। इसे **पार्श्वशूल** कहते हैं। (६) ८-कटिग्रह। **विमर्श**—गुदास्थित वायु आमान्वित होने से त्रिकसंधि में स्तम्भ, तोद और

---

(१) ऊरुस्तम्भलक्षणम्—**तदा स्तभ्नाति तेनोरू स्तब्धौ शीतावचेतनौ।**
परकीयाविव गुरू स्यातामिति भृशव्यथौ॥

(२) शिरोग्रहलक्षणम्—**रक्तमाश्रित्य पवनः कुर्यान्मूर्द्धधराः शिराः।**
रूक्षाः सवेदनाः कृष्णाः सोऽसाध्यः स्याच्छिरोग्रहः॥

(३) बाह्यायामलक्षणम्—**बाह्यस्नायुप्रतानस्थो बाह्यायामं करोति च।**
तमसाध्यं बुधाः प्राहुर्वक्षःकट्यूरुभञ्जनम्॥

(४) अन्तरायामलक्षणम्—**अङ्गुलीगुल्फजठरहृद्वक्षोगलसंश्रितः।**
स्नायुप्रतानमनिलो यदा क्षिपति वेगवान्॥
विष्टब्धाक्षः स्तब्धहनुर्भग्नपार्श्वः कफं वमन्।
आभ्यन्तरं धनुरिव यदा नमति मानवम्॥
तदाऽस्याभ्यन्तरायामं कुरुते मारुतो बली॥

(५) पार्श्वशूललक्षणम्—**रुणद्धि मारुतं श्लेष्मा कुक्षिपार्श्वव्यवस्थितः।**
स संरुद्धः करोत्याश्वाध्मानं गुडगुडायनम्॥
सूचीभिरिव निस्तोदः कृच्छ्रोच्छ्वासी तदा नरः।
नान्नं वाञ्छति नो निद्रामुपैत्यर्त्तिनिपीडितः॥
पार्श्वशूलः स विज्ञेयः कफानिलसमुद्भवः।

(६) कटिग्रहलक्षणम्—**कटीस्तम्भत्वेन वेदनाविशेषः। अत्रापि—**
हेतुस्थानविशेषाच्च भवेद्रोगविशेषकृत्॥

उत्पन्न करता है। उसे **कटिग्रह** कहते हैं। (१) ९–दण्डापतानक। **विमर्श**—वायु अत्यन्त कफान्वित होकर सर्व शरीर में व्याप्त होने से शरीर को आपाद—मस्तक दण्ड सा सीधा स्तम्भित कर देता है। इसे **दण्डापतानक** कहते हैं। यह अपतानक का ही भेद है। (२) १०–खल्ली। **विमर्श**—वायु स्नायु एवं कण्डरा को खींच कर हाथ, पांव, जानु, जंघा आदि को मूलसे ऐंठता है। इसमें शूलवत् वेदना भी होती है। इसको **खल्ली** कहते हैं। सन्निपात और विषूचिका में प्रायः यह उपद्रव रूप में देखा जाता है। (३) ११–जिह्वास्तम्भ। **विमर्श**—जिह्वा को संचालन करने वाले स्नायु में अधिष्ठित होकर वायु जिह्वा को स्तम्भित कर देता है. अतः पुरुष खा, पी या बोल नहीं सकता इसको **जिह्वास्तम्भ** कहते हैं। (४) १२–अर्दित। **विमर्श**—मुख **एवं** गले के अर्ध भाग स्थित दुष्ट वायु ग्रीवा, मुख, नासिका आदि को बाईं या दाहिनी ओर को मोड़ देता है। इसको **अर्दित** कहते हैं। (५) १३–पक्षाघात। **विमर्श**—कुपित वायु शरीर के अर्ध भाग में व्याप्त हो शिरा और स्नायु का शोषण कर संधिवन्धनों को ढीला कर शरीर के उस आधे भाग को अकर्मण्य और संज्ञाहीन कर देता है। यह रोग आपादमस्तक के वाम या दक्षिण भाग में होता है अथवा कमर से नीचे या ऊपर के अङ्गों में होता है। अर्ध शरीर में होने के कारण इसे **एकाङ्गरोग, अर्धाङ्गवात** या **पक्षवध** भी कहते हैं। साधारण में यह **अर्धाङ्ग** या **फालिज** के नाम से

---

(१) दण्डापतानक- **पाणिपादशिरःपृष्ठश्रोणीः स्तभ्नाति मारुतः।**
लक्षणम्— **दण्डवत् स्तब्धगात्रस्य दण्डकः सोऽनुपक्रमः॥**
कफान्वितो भृशं वायुस्तावेव यदि तिष्ठति।
दण्डवत् स्तम्भयेद् देहं स तु दण्डापतानकः॥
अस्यैव भेदं धनुःस्तम्भमाह–**धनुस्तुल्यं नमेद् यस्तु स धनुःस्तम्भसंज्ञकः।**
(२) खल्लीलक्षणम्— **खल्ली तु पादजङ्घोरुकरमूलावमोटनी।**
(३) जिह्वास्तम्भमाह— **वाग्वाहिनीशिरासंस्थो जिह्वां स्तम्भयतेऽनिलः।**
जिह्वास्तम्भः स तेनान्नपानवाक्येष्वनीशता॥
(४) अर्दितरोगमाह— **उच्चैर्व्याहरतोऽत्यर्थं खादतः कठिनानि च।**
हसतो जृम्भमाणस्य भाराद् विषमशायिनः॥
शिरोनासौष्ठचिबुकललाटेक्षणसन्धिगः। अर्दयत्यनिलो वक्त्रमर्दितं जनयत्यतः॥
वक्रीभवति वक्त्रार्द्धं ग्रीवां व्याप्य प्रवर्त्तते। शिरश्चलति वाक्सङ्गो नेत्रादीनां च वैकृतम्॥
ग्रीवाचिबुकदन्तानां तस्मिन्पार्श्वे च वेदना।
तमर्दितमिति प्राहुर्व्याधिं व्याधिविशारदाः॥
(५)पक्षवधमाह सर्वाङ्गञ्च–**गृहीत्वाऽर्द्धं तनोर्वायुः शिरास्नायू विशोष्य च।**
पक्षमन्यतमं हन्ति सन्धिबन्धान् विमोक्षयन्॥
कृत्स्नोऽर्द्धकायस्तस्य स्यादकर्मण्यो विचेतनः। एकाङ्गरोगं तं केचिदन्ये पक्षवधं विदुः।
सर्वाङ्गरोगं तद्वच्च सर्वकायाश्रितेऽनिले।

परिचित है। (१) १४-क्रोष्टुशीर्ष। **विमर्श**-वातरक्त-कर्तृक यह शोथ घुटने पर गीदड़ के शिर के जैसा आकार वाला बड़ा और स्थूल होता है। यह बड़ा कष्टदायक और कष्टसाध्य रोग है। (२) १५-मन्यास्तम्भ। **विमर्श**—दिवास्वप्नादि से दूषित वायु श्लेष्मावृत हो गले की मन्या नाडी में अवस्थित होकर गले को स्तम्भित कर देता है। इसमें गले को दाहिने, बाएँ, या ऊपर नीचे नहीं फिरा सकते। इसे **मन्यास्तम्भ** कहते हैं। (३) १६-पङ्गुता। **विमर्श**-कुपित वायु से दोनों टांगों के मारे जाने को **पङ्गुता** कहते हैं। (४) १७-कलायखञ्ज। **विमर्श**-वायु के संधिवन्धनों को मुक्त करने से आदमी लंगड़ाता हुआ चलता है। इसको **कलायखञ्ज** कहते हैं। (५) १८-तूनी। **विमर्श—**पक्वाशय या बस्ति से उठकर जो वेदना गुदा या मूत्रमार्ग को चीरती हुई सी जाती है, उसे **तूनी** कहते हैं। (६) १९-प्रतितूनी। **विमर्श**-गुदा या मेढ़ से उत्पन्न होकर तूनी सी जो वेदना पक्वाशय तक जाती है, उसे **प्रतितूनी** कहते हैं। (७) २०-खञ्जता। **विमर्श**-कटिस्थित वायु कण्डरा को संकुचित कर एक पैर को बेकाम कर देता है, उसे **खञ्जता** कहते हैं। (८) २१-पादहर्ष। **विमर्श**-कफवात के प्रकोप से पाद झुनझुनाहट व स्पर्शज्ञानहीन हो जाने को **पादहर्ष** कहते हैं। (९) २२-गृध्रसी। **विमर्श**-पहले स्फिक् से

---

(१) क्रोष्टुशीर्षमाह—**वातशोणितजः शोफो जानुमध्ये महारुजः।**
ज्ञेयः क्रोष्टुकशीर्षस्तु स्थूलः क्रोष्टुकशीर्षवत्॥

(२) मन्यास्तम्भमाह—**दिवास्वप्नासनस्थानविकृतोर्ध्वनिरीक्षणैः।**
मन्यास्तम्भं प्रकुरुते स एव श्लेष्मणाऽवृतः॥

(३) पङ्गुलक्षणम्—**'पङ्गुः सक्थ्नोर्द्वयोर्वधात्'।**

(४) कलायखञ्जलक्षणम्-**प्रक्रामन् वेपते यस्तु खञ्जन्निव च गच्छति।**
कलायखञ्जं तं विद्यान्मुक्तसन्धिप्रबन्धनम्॥

(५) तूनीलक्षणम्—**अधो या वेदना याति वर्चोमूत्राशयोत्थिता।**
भिन्दतीव गुदोपस्थं सा तूनी नाम नामतः॥

(६) प्रतितूनीलक्षणम्-**गुदोपस्थोत्थिता चैव प्रतिलोमं प्रधाविता।**
वेगैः पक्वाशयं याति प्रतितूनीति सोच्यते॥

(७) खञ्जतालक्षणम्—**वायुः कट्याश्रितः सक्थ्नः कण्डरामाक्षिपेद् यदा।**
खञ्जस्तदा भवेज्जन्तुः······॥

(८) पादहर्षलक्षणम्-**हृष्येते चरणौ यस्य भवेतां चापि सुप्तकौ।**
पादहर्षः स विज्ञेयः कफवातप्रकोपतः॥

(९) गृध्रसीलक्षणम्—**स्फिक्पूर्वा कटिपृष्ठोरुजानुजङ्घापदं क्रमात्।**
गृध्रसी स्तम्भरुक्तोदैर्गृह्णाति स्पन्दते मुहुः॥
वाताद्वातकफात्तन्द्रा गौरवारोचकान्विता। वातजायां भवेत्तोदो देहस्यापि प्रवक्रता।
जानुजङ्घोरुसन्धीनां स्फुरणं स्तब्धता भृशम्। वातश्लेष्मोद्भवायां तु गौरवं वह्निमार्दवम्।
तन्द्रा मुखप्रसेकश्च भक्तद्वेषस्तथैव च।

आरम्भ होकर वायु क्रम से कटि, पृष्ठ, ऊरु, जानु, जंघा और पाद को स्तम्भ, पीड़ा, टोंचने की सी वेदना आदि के साथ व्याप्त हो जाता है और बारम्बार कंपाते रहता है। इसको **गृध्रसी** कहते हैं। यह केवल वातजनित या वातकफजनित भेद से दो प्रकार का होता है। (१) २३–विश्वाची। **विमर्श—**अङ्गुली, हथेली और बाहु–गत कण्डरा में अवस्थित वायु बाहु को अकर्मण्य बना देता है। इसे **विश्वाची** कहते हैं। (२) २४–अपबाहुक। **विमर्श**–अंसदेश स्थित वायु बाहु के अंसबन्धन को सुखा कर शिराओं का संकोचन कर हाथ को सुखा देता है। इसे **अपबाहुक** कहते हैं। (३) २५-अपतानक। **विमर्श—**यह भी आक्षेपक का एक भेद है। इसमें वायु का दौरा होते समय आंखे स्तम्भित हो जाती हैं, कण्ठ से कबूतर सा कूजता है तथा संज्ञा लोप हो जाती है। हृदय से वायु के हट जाने से पुनः होश हो जाता है। इसे **अपतानक** कहते हैं। (४) २६–व्रणायाम। **विमर्श**–यह भी आक्षेपक का ही भेद है, पर यह चोट लगने के कारण से होता है। (५) २७–वातकण्टक। **विमर्श**–पाद का विषमन्यास या अधिक परिश्रम से वायु गुल्फ संधि में वेदना उत्पन्न करता है। इसमें मनुष्य पांव में कांटे चुभे सा जानता है, अतः इसे **वातकण्टक** कहते हैं। (६) २८–अपतन्त्रक। **विमर्श**–कुपित वायु अपने स्थान से चलता हुआ ऊपर को जाकर हृदय, सिर और शंख को पीडित करता हुआ शरीर को धनुष

---

(१) विश्वाचीलक्षणम्–**तलं प्रत्यङ्गुलीनां याः कण्डरा बाहुपृष्ठतः ।**
बाह्वोः कर्मक्षयकरी विश्वाचीति निगद्यते ॥

(२) अपबाहुक (अंस-शोष) लक्षणम्— **अंसदेशस्थितो वायुः शोषयित्वांऽसबन्धनम् ।**
शिराश्चाकुञ्च्य तत्रस्थो जनयत्यपबाहुकम् ॥

(३) अपतानकमाह—**दृष्टिं संस्तभ्य संज्ञां च हत्वा कण्ठेन कूजति ।**
हृदि मुक्ते नरः स्वास्थ्यं याति मोहं वृते पुनः ॥
वायुना दारुणं प्राहुरेके तदपतानकम् ॥

(४) व्रणायामलक्षणम्–**मर्माश्रितं व्रणं प्राप्य वायुर्यः सर्वदेहगः ।**
वेगैरानमयेद् देहं व्रणायामं तु तं त्यजेत् ॥

अस्य कफपित्तानुबन्धमाह-**कफपित्तान्वितो वायुर्वायुरेव च केवलः ।**
कुर्यादाक्षेपकं त्वन्यं चतुर्थमभिघातजम् ॥

(५) वातकण्टकमाह–**रुक् पादे विषमे न्यस्ते श्रमाद्वा जायते यदा ।**
वातेन गुल्फमाश्रित्य तमाहुर्वातकण्टकम् ॥

(६) अपतन्त्रकमाह–**क्रुद्धः स्वैः कोपनर्वायुः स्थानादूर्ध्वं प्रपद्यते ।**
पीडयन् हृदयं गत्वा शिरःशङ्खौ च पीडयन् ॥
धनुर्वन्नमयेद् गात्राण्याक्षिपेन्मोहयेत्तदा ।
स कृच्छ्रादुच्छ्वसेच्चापि स्तब्धाक्षोऽथ निमीलकः ॥
कपोत इव कूजेच्च निःसंज्ञः सोऽपतन्त्रकः ।

तुल्य सामने को नमा देता है। शरीरमें आक्षेप आते हैं, मोह हो जाता है, आँखें स्तब्ध हो जाती हैं, श्वास मुश्किल से चलता है तथा कण्ठ से कबूतर सी आवाज निकलती है और मनुष्य बेहोश हो जाता है। इसे **अपतन्त्रक** कहते हैं। (१) २९-अङ्गभेद। **विमर्श**—शरीर में किसी अङ्ग पर द्विधाकरणवत् पीड़ा को अङ्गभेद कहते हैं। (२) ३०-अङ्गशोष। **विमर्श**-शिरास्नायु आदि में अधिष्ठित वायु कुपित होकर उस अङ्ग को सुखा देता है, उसे **अङ्गशोष** कहते हैं। (३) ३१—मिन्मिनत्व। **विमर्श**—शब्दवाही स्रोत में कुपित वायु से मनुष्य मिनमिनाकर याने नाक से बोलता है। इसे **मिन्मिनत्व** कहते हैं। (४) ३२—कल्लता। **विमर्श**—यह रोग भी शब्दवाही स्रोत के वायु दूषित होने से होता है। इसमें मनुष्य।रूंधे गले से बोलता है। (५) ३३-३४-प्रत्यष्ठीला और अष्ठीला। **विमर्श**—नाभि के नीचे स्थिर या सञ्चरणशील ग्रन्थि उठ आती है एवं बाहिरी मार्गों को रोक देती है। इसे **अष्ठीला** या **वाताष्ठीला** कहते हैं। यही ग्रन्थि यदि तिरछी हो तथा वायु और मलमूत्र को रोक दे तो उसे **प्रत्यष्ठीला** कहते हैं। (६) ३५-वामनत्व। **विमर्श**-वातदूषित शुक्रार्त्तव से उत्पन्न होने से शरीर की बाढ़ मारी जाती है और मनुष्य उम्र अधिक होने पर भी बालक जितना बड़ा ही रह जाता है। (७) ३६-कुब्जत्व। **विमर्श**-वातकर्तृक पीठ की ओर रीढ कूबड़ सी निकल आती है और सिर छाती में घुसा सा जाता है। इसे **कुब्जत्व** या **कुबड़ापन** कहते हैं। (८) ३७—अङ्गपीडा। **विमर्श**—किसी अङ्गमें स्था...

---

(१) अङ्गभेदमाह-**अङ्गभेदो वेदनाविशेषत्वेन दर्शितः। यतः—**

हेतुस्थानविशेषाच्च भवेद्रोगविशेषकृत्।

यथा—**स्थाननामानुरूपैश्च लिङ्गैः शेषान् विनिर्दिशेत्॥**

(२) अङ्गशोषमाह—**अङ्गादीनां बाहुमुखादीनां शोषोऽङ्गशोषः।**

(३-४) मूकत्वं मिन्मिनत्वं गद्गदत्वं (कल्लतां) चाह-

आवृत्य वायुः सकफो धमनीः शब्दवाहिनीः।
नरान् करोत्यक्रियकान्मूकमिन्मिनगद्गदान्॥

(५) प्रत्यष्ठीलामाह—**नाभेरधस्तात् सञ्जातः सञ्चारी यदि वाऽचलः।**
अष्ठीलावद् घनो ग्रन्थिरूर्ध्वमायत।उन्नतः॥
वाताष्ठीलां विजानीयाद् बहिर्मार्गविरोधिनीम्॥
एतामेव रुजायुक्तां वातविण्मूत्ररोधिनीम्।
प्रत्यष्ठीलामिति वदेज्जठरे तिर्यगुत्थिताम्॥

(६) वामनत्वमाह-**दुष्टशुक्रारब्धत्वाद् गर्भावर्त्ते यथा युगलैकाङ्गुली-**
बह्वङ्गुलादिकं भवति तथाऽयमपि वामनयोगः॥

(७) कुब्जत्वमाह-**कुर्याच्छिरागतः शूलशिराकुञ्चनपूरणम्।**
स बाह्याभ्यन्तरायामं खल्लीं कुब्जत्वमेव च॥

(८) अङ्गपीडामाह—**अङ्गपीडा ह्यङ्गविभ्रंशताऽऽमयः,**
मेदोहेतुस्थानविशेषत्वेन तदनुरूपाद्बोद्धव्या।

दर्द होना । (१) ३८–अङ्गशूल । **विमर्श**–किसी अङ्ग में बींधने की सी पीड़ा होना । (२) ३९–अङ्गसङ्कोच । **विमर्श**–किसी अङ्ग का सिकुड़ जाना । (३) ४०–अङ्गस्तम्भ । **विमर्श**–किसी अङ्ग का जकड़ जाना । (४) ४१–अङ्गरूक्षता । **विमर्श**–शरीर या किसी अङ्ग का रूखा हो जाना । (५) ४२–अङ्गभङ्ग । **विमर्श**–किसी अङ्ग में तोड़ने की सी पीड़ा होना । (६) ४३–अङ्गविभ्रंश । **विमर्श**–किसी अङ्ग के सन्धि का ढीला पड़ जाना । (७)४४–विड्ग्रह । **विमर्श**–मल की अप्रवृत्ति । (८) ४५–विद्धविट्कता । **विमर्श**–मलाशय में मल का सूख कर कड़े हो जाना । (९) ४६–मूकत्व । **विमर्श**–गूंगा हो जाना । (१०) ४७–जृम्भाधिक्य । **विमर्श**–जम्भाइयों की अधिकप्रवृत्ति । (११)४९–अत्युद्गार । **विमर्श**–आमाशयस्थ वायु के बिगड़ने से डकारों का अधिक आना । (१२) ४९–अन्त्रकूजन । **विमर्श**–अधः प्रतिहत अपान वायु का अन्त्रों में गुड़गुड़ शब्द करना । (१३) ५०–वातप्रवृत्ति । **विमर्श**–अधोवायु का बारम्बार निकलना । (१४) ५१–स्फुरण । **विमर्श**–वातरोध से पेशियों का फड़कना । (१५) ५२–शिरापूरण । **विमर्श**–शिराओं का भरा हुआ सा स्थूल हो जाना ।(१६) ५३–कम्प । **विमर्श**–शरीर का काँपना । (१७) ५४–कार्श्य

अन्तरायामं खल्लीं कुब्जत्वमेव मन्यन्ते । अङ्गपीडाऽव्यङ्गविभ्रंशम् । तस्य सप्तभेदाः स्थानविशेषत्वेन तदनुरूपा बोद्धव्याः ।

(१) अङ्गशूलम्–**अङ्गविशेषे शूलमङ्गशूलम् ।** (२) अङ्गसङ्कोचः–**अङ्गविशेषे सङ्कोचः ।**

(३) अङ्गस्तम्भः–**अङ्गस्य स्तम्भः ।** (४) अङ्गरूक्षता–**अङ्गस्य रूक्षता ।**

(५) अङ्गभङ्गः–**अङ्गे भग्नवत् पीडा ।**(६) अङ्गविभ्रंशः–**कस्य चिदङ्गस्य सन्धिबन्धशैथिल्यम् ।**

(७) विड्ग्रहः–**पुरीषस्यानिर्गमः ।** (८) बद्धविट्कता–**पुरीषस्य कर्कशता । पक्काशयकुपितवातगुणत्वाद्–यतः "ग्रहो विण्मूत्रवातानां शूलाध्मानाश्मशर्करा" इत्यादि ।**

(९) मूकत्वम्–**मूकत्वं च मिन्मिनत्वे कथितम् ।** (१०) जृम्भाऽऽधिक्यम्–**अतिजृम्भता वातदुष्टत्वात् । यथा 'जृम्भाऽत्यर्थं समीरणात्' ।**

(११) अत्युद्गारः–**अत्युद्गारोऽपि वातविकारजनितत्वादत्र लिखितः । आमाशयस्थो वातः कुपितोऽत्युद्गारं करोतीत्यर्थः । "हृक्पार्श्वोदरहन्नाभितृष्णोद्गारविषूचिकाः । कासः कण्ठास्यशोषश्च वातश्चामाशये स्थितः" इत्यर्थः ।**

(१२) अन्त्रकूजनम्–**पक्काशयगतवायुना भवति 'पक्काशयस्थोऽन्त्रकूजनमि'तिवचनात् ।** (१३) वातप्रवृत्तिः–**वातस्यातिनिर्गमः ।**

(१४) स्फुरणम्–**अङ्गानां स्फुरणम्, अङ्गस्पन्दनमित्यर्थः ।**

(१५) शिरापूरणम्–**शिरागतो वायुः शिराणां पूरणं करोति–अत एव ।**

'कुर्याच्छिरागतः शूलं शिराकुञ्चनपूरणमि'तिवचनात् पूरणं स्थूलत्वम् ।

(१६) कम्पः–**सर्वाङ्गस्य शिरसश्च कम्पत्वेन वेपथुसञ्ज्ञकः । यदुक्तं–सर्वाङ्गकम्पः शिरसो वायुर्वेपथुसञ्ज्ञकः । 'शिरसः' इत्यवयवोपलक्षणम् । तेन हस्तपादयोरपि कम्पः स्यात् ।** (१७) कार्श्यम्–**कृशता शरीरस्य वातप्रकृतिकत्वात् ।**

विमर्श–शरीर का पतला होना। (१) ५५–श्यावता। **विमर्श**–शरीर का वर्ण श्याव हो जाना। (२) ५६–प्रलाप। **विमर्श**–बेमतलब ही आनतान बकते रहना। (३) ५७–क्षिप्र मूत्रता। **विमर्श**–बारम्बार मूत्र की प्रवृत्ति। (४) ५८–निद्रानाश। **विमर्श**–नींद न आना। (५) ५९–स्वेदनाश। **विमर्श**–पसीने का न निकलना। (६) ६०–दुर्बलत्व। **विमर्श**–जन्म से ही कमजोर रहना। (७) ६१–बलक्षय। **विमर्श**–शरीर की शक्ति का क्षय। (८) ६२–शुक्र की अतिप्रवृत्ति। **विमर्श**–शुक्र का अधिक मात्रा में स्खलित होना। (९) ६३–शुक्रकार्श्य। **विमर्श**–वीर्य का कम होना या सूख जाना। (१०) ६४–रेतोनाश। **विमर्श**–वीर्य का नष्ट होना यानी शुक्राशय में शुक्र का न बनना।

(११) ६५–अनवस्थितचित्तत्व। **विमर्श**–किसी बात पर स्थिर न रहना, सदा मत बदलते रहना। (१२)६६–काठिन्य। **विमर्श**–अंगों का पथरा जाना। (१३)६७–विरसास्यता। **विमर्श**–मुख में स्वाद का न होना। (१४)६८–कषायवक्त्रता। **विमर्श**–मुख का हमेशा कसैला बना होना। (१५) ६९–आध्मान। **विमर्श**–वायु के रुकने से पेट का मशक के समान फूल जाना।

---

(१) श्यावता—**शुक्लानुविद्धकृष्णवर्णत्वं श्यावताशब्दवाच्यम्। पित्तानुबद्धवातविकृतत्वात्।** (२) प्रलापः—**असम्बद्धभाषणं यथोन्मादे प्रबलवातकार्यत्वात्।**

(३) क्षिप्रमूत्रता—**क्षिप्रमूत्रता = शीघ्रमूत्रता—"मारुते विगुणे बस्तौ मूत्रं सम्यक् प्रवर्त्तते। विकारा विविधाश्चात्र प्रतिलोमे भवन्ति हि" विविधग्रहणात् क्षिप्रमूत्रताग्रहणार्थम्।**

(४) निद्रानाशः—**अनिद्रता तेनाल्पनिद्रा बोद्धव्या। निद्रानाशेऽनिलो हेतुः।** (५) स्वेदनाशः—**स्वेदस्याप्यनिर्गमः, वायोः शोषकत्वात्।**

(६–७) दुर्बलत्वं–बलक्षयश्चेति—**रसादीनां शुक्रान्तानां यत् परं तेजस्तत् खल्वोजस्तदेव बलमित्युच्यते। तस्य बलस्य अल्पत्वं दुर्बलत्वं, तस्यापि क्षयो बलक्षयः। अत्र वातहेतुरिति प्रयोजकत्वात्।**

(८–१०) शुक्रातिप्रवृत्ति–शुक्रकार्श्य–शुक्रनाशाः–**शुक्रस्यातिप्रवृत्तिः, शुक्रस्य कार्श्यं च क्षीणत्वं स्वमानादित्यर्थः। नाशश्चेति स्वमानादित्यर्थः। अत्रापि शुक्रगतवायोर्विकृतत्वाद् यदुक्तं—**

> **क्षिप्रं मुञ्चति बध्नाति शुक्रं गर्भमथापि वा।**
> **विकृतिं जनयेच्चापि शुक्रस्थः कुपितोऽनिलः॥**

(११) अनवस्थितचित्तत्वम्—**इत्यत्रापि वातकारणत्वं सिद्धम्।** (१२) काठिन्यम्—**कठिनत्वमङ्गादीनामिति भावः।**

(१३) विरसास्यता—**मुखवैरस्यम्।** (१४) कषायवक्त्रता—**मुखस्य कषायत्वम्।**
(१५) आध्मानम्—**साटोपमत्युग्ररुजमाध्मातमुदरं भृशम्।**

> **आध्मानमिति तं विद्याद्घोरं वातनिरोधजम्॥**

(१) ७०–प्रत्याध्मान। **विमर्श**–वायु के रुकने से आमाशय का फूलना। (२) ७१–शीतता। **विमर्श**–हमेशा जाड़ा लगते रहना। (३) ७२–रोमहर्ष। **विमर्श**–घृणा या हर्ष से त्वग्गत वायु द्वारा रोम मूलों पर दबाव पड़ने से रोंगटों का खड़ा होना। (४) ७३–भीरुता। **विमर्श**–वातकर्तृक ओज के क्षय होने से हमेशा भयभीत रहना। (५) ७४–तोद। **विमर्श**–शरीर में सुई टोंचने की सी पीड़ा होना। (६) ७५–कण्डू। **विमर्श**–त्वचा या खुजल चलना। (७) ७६–रसाज्ञता। **विमर्श**–मधुरादि रसों को चख कर न जान सकना।

(८) ७७–शब्दाज्ञता। **विमर्श**–शब्दों को सुन न सकना। (९) ७८–प्रसुप्ति। **विमर्श**–किसी अंग के त्वचाका सो जाना यानी स्पर्शज्ञान-शून्य हो जाना। (१०) ७९–गन्धाज्ञता। **विमर्श**–सुरभि और असुरभि गन्धों का ज्ञान न होना। (११) ८०–दृष्टिक्षय। **विमर्श**–देख न सकना या कम दीखना। ये अस्सी प्रकार के रोग मुनियों ने वात से होने वाले बतलाए हैं। यों तो वात के शरीर का नियन्त्रक, प्रवर्त्तक और धारक होने से तथा शरीर का मालिक होने से किसी भी तरह की पीड़ा उत्पन्न कर सकता है, फिर भी ये अस्सी रोग जो आज तक जाने गये हैं बतलाये गये। अतः इनसे भिन्न यदि कोई रोग उत्पन्न हो जाय तो उसमें वायु के शीत-रूक्षतादि आत्मरूप को देखकर उसकी चिकित्सा करे ॥१०५–११४॥

पित्तरोगभेदाः—**अथ पित्तभवा रोगाश्चत्वारिंशदिहोदिताः ॥ ११५ ॥**

धूमोद्गारो विदाहः स्यादुष्णाङ्गत्वं मतिभ्रमः।
कान्तिहानिः कण्ठशोषो मुखशोषोऽल्पशुक्रता ॥ ११६ ॥
तिक्तास्यताऽम्लवक्त्रत्वं स्वेदस्रावोऽङ्गपाकता।
क्लमो हरितवर्णत्वमतृप्तिः पीतगात्रता ॥ ११७ ॥

---

(१) प्रत्याध्मानम्—**विमुक्तपार्श्वहृदयं तदेवामाशयोत्थितम्।**
प्रत्याध्मानं विजानीयात्कफव्याकुलितानिलम् ॥

(२) शीतता—**(शीतवातः)।**

हिमवन्ति हि गात्राणि रोमाञ्चज्वरितानि च।
शिरोऽक्षिवेदनाऽऽलस्यशीतवातस्य लक्षणम् ॥

(३) रोमहर्षः—**रोमाञ्चम्, अत्रापि वायुप्राधान्यम्।** (४) भीरुता—**सर्वदा भयभीतिः, हृदयदुर्बलत्वेन अत्रापि वायुप्राधान्यम्।**

(५) तोदः–**शरीरे सूचीवेधवत् पीडा।** (६) कण्डूः—**सम्पूर्णाङ्गे कण्डूः।** (७) रसाज्ञता–**स्वाद्वभावः।**

(८) शब्दाज्ञता—**बधिरत्वम्।** (९) प्रसुप्तिः—**त्वग्विषये स्पर्शाज्ञता।**

(१०) गन्धाज्ञता—**नासाविषयाज्ञता।** (११) दृशः क्षयः—**दृष्टेर्नाशः।**

अत्रापि श्रोत्रादिगतवातकारणं बोद्धव्यम्। यथा—

'श्रोत्रादिष्विन्द्रियवधं कुर्यात्क्रुद्धः समीरणः' ॥

रक्तस्रावोऽङ्गदरणं लोहगन्धास्यता तथा । दौर्गन्ध्यं पीतमूत्रत्वमरतिः पीतविट्कता ।
पीतावलोकनं पीतनेत्रता पीतदन्तता । शीतेच्छा पीतनखता तेजोद्वेषोऽल्पनिद्रता ॥११९॥
कोपश्च गात्रसादश्च भिन्नविट्कत्वमन्धता ।
उष्णोच्छ्वासत्वमुष्णत्वं मूत्रस्य च मलस्य च ॥१२०॥
तमसो दर्शनं पीतमण्डलानां च दर्शनम् ।
निःसहत्वं च पित्तस्य चत्वारिंशद्रुजः स्मृताः ॥१२१॥

अब **पित्त से उत्पन्न होने वाले रोग** (१) ४० प्रकार के होते हैं, उन्हें यहाँ कहते हैं। १-धूमोद्गार, २-विदाह, ३-उष्णाङ्गत्व, ४-मतिभ्रम, ५-कान्तिहानि, ६-कण्ठशोष, ७-मुखशोष, ८-अल्पशुक्रता, ९-तिक्तास्यता, १०-अम्लवक्रत्व (अम्लास्यता), ११-स्वेदस्राव, १२-अङ्गपाकता, १३-क्लम, १४-हरितवर्णत्व, १५-अतृप्ति, १६-पीतगात्रता, १७-रक्तस्राव, १८-अङ्गदरण, १९-लोहगन्धास्यता, २०-दौर्गन्ध्य २१-पीतमूत्रत्व, २२-अरति, २३-पीतविट्कता, २४-पीतावलोकन २५-पीतनेत्रता, २६-पीतदन्तता, २७-शीतेच्छा २८ पीतनखता, २९-तेजोद्वेष, ३०-अल्पनिद्रता, ३१-कोप, ३२-गात्रसाद, ३३-भिन्नविट्कता, ३४-अन्धता, ३५-उष्णोच्छ्वासता, ३६-उष्णमूत्रता। ३७-उष्णमलता, ३८-तमोदर्शन, ३९-पीतमण्डलदर्शन, ४०-निःसहत्व ये ४० पित्तके रोग कहे हुये हैं।

१-**विमर्श**—धूमोद्गार-डकारों का आना और उसके साथ तीक्ष्ण धूम का मुख से निकलना सा प्रतीत होना। २-विदाह-शरीर के बाहर त्वचा आदि में या अन्तः कोष्ठ आदि में जलन का होना। ३-उष्णाङ्गत्व-शरीर के अंगों का उष्ण मालूम होना याने स्वाभाविक उष्णता से शरीर का अधिक गरम रहना। ४-मतिभ्रम-वृद्ध पित्त का बुद्धिस्थान में जाने से

---

(१)पित्तरोगाः-धूमोद्गारः-धूमायनं ध्वाइधीति शब्दवाच्यः, मुखाद्धूमोद्गिरणमिव भवति।
१-धूमोद्गारः— शिरोग्रीवामुखतालुभ्यो धूमस्योद्गिरणं निःसरणम् ॥
२-विदाहः—विशेषादुषो दाहः। अत्र विदाहशब्देन उषादिदाहः। यथा-
उषादिदाहलक्षणं—दाहः सर्वाङ्गसन्तापः उषः सस्वेदताऽरतिः।
यः क्वापि देहावयवे चोषः स्यादग्निनेव सः ॥
पाणिपादांसमूलेषु विदाहो विविधो मतः। दाहस्तु मुखताल्वोष्ठ दवथुश्चक्षुरादिषु।
कोष्ठदाहोऽन्त्रदाहः स्याद्देहदाह उषो मतः ॥
३-उष्णाङ्गत्वम्—अङ्गे उष्णत्वम्, ते सर्वेऽपि पित्तोष्मजाः। उक्तं च—
उष्मा पित्तादृते नास्ति ज्वरो नात्यूष्मणा विना।
तस्मात् पित्तविरुद्धानि त्यजेत् पित्ताधिकेऽधिकम् ॥
अत एव उष्णाङ्गत्वम् पित्तजमेव।
४-मतिभ्रमः—अत्र बुद्धिनाशः पित्तभव एव न तु वातमद्यादिजो बुद्धिनाशः।
"ऊष्मणो जन्मनो यस्य तत एव स सीदति। उपघातस्तु तेनैव तथा नेत्रस्य तेजसः।
इति न्यायात् पित्ताधिक्याद् बुद्धिनाशः।

बुद्धि में भ्रम हो जाना । ५–कान्तिहानि–शरीर के वर्ण की कान्ति यानी सुन्दरता का नष्ट हो जाना । ६–कण्ठशोष–गले का सूखना । ७–मुखशोष–मुख का सूखना । ये दोनों पिपासा-स्थानगत पित्त से होते हैं । ८–अल्पशुक्रता–वीर्य का कम होना । ९–तिक्तास्यता–मुख के स्वाद का कडुआ सा मालूम होना । १०–अम्लास्यता–मुख के स्वाद का अम्ल मालूम होना । ११–स्वेदस्राव—शरीर से पसीने का अधिक निकलना । १२–अङ्गपाक—किसी अङ्ग का पक जाना । १३–क्लम—बिना मेहनत किये ही थकावट का बोध होना । १४–हरितवर्णत्व—शरीर के वर्ण का हरा सा हो जाना । १५–अतृप्ति—पित्तकर्तृक अग्नि के तीक्ष्ण होने से भोजन-पान से तृप्ति न होना । १६–पीतगात्रता—शरीर के वर्ण का पीला दिखाई देना । १७–रक्त-स्राव—शरीर के छिद्रों से रक्तका निकलना (रक्तपित्तादि में) । १८–अंगदरण—अङ्गों का फट जाना । १९–लोहगन्धास्यता–मुख से उच्छ्वास के समय लोहे का गन्ध मालूम होना (रक्तपित्तमें यह होता है) । २०–दौर्गन्ध्य—शरीर से बुरी बास का आना । २१–पीतमूत्रता-मूत्र का पीले रंग का होना । २२–अरति—किसी बात में भी चित्त का न लगना । २३–पीत-विट्कता—मल के रंग का पीत वर्ण होना । २४–पीतावलोकन–सब वस्तुओं को पीला ही पीला देखना (पाण्डु और कामला में यह होता है) । २५–पीतनेत्रता–आँखों का पीला होना । २६–पीतदन्तता–दाँतों का पीला होना । २७–शीतेच्छा–ठण्डी चीजों की इच्छा होना । २८–पीतनखता–नखों का पीला होना । २९–तेजोद्वेष–धूप, आग, दिया प्रभृति चमकीले

५–कान्तिहानिः—**पित्तदग्धशरीरत्वाद् न तु वातादिवत् कार्श्यादि ।**
६–७–कण्ठशोषो मुखशोषश्च—**तयोः शुष्कत्वं तदुष्मणः शुष्कद्रवत्वम् ।**
८–अल्पशुक्रता—**पित्तादेव ।** ९–१०–तिक्तास्यता, अम्लास्यता च—**तिक्तो निम्बादि तद्वदास्यं तथा अम्लास्यता अम्लमुखता ।** ११–स्वेदस्रावः—**स्वेदो घर्मः, तस्य स्रावः** स्रुतिः । १२–अङ्गपाकः—**पित्ताधिक्यादङ्गपाकत्वम् ।**
१३–क्लमः—**योऽनायासः श्रमो देहे प्रवृद्धः श्वासवर्जितः ।**
क्लम इति स विज्ञेय इन्द्रियार्थप्रबाधकः ।
१४–हरितवर्णत्वम्—**शरीरस्य हरितवर्णता ('देहो हरितहारिद्र' इति वचनात् ।**
१५–अतृप्तिः—**तृप्तिर्न भवति भोजनादिके ।** १६–पीतगात्रता—**पीतशरीरत्वम् ।**
१७–रक्तस्रावः—**रक्तस्य स्रवणम् ।** १८–अङ्गदरणम्—**अङ्गस्य दरणं विदरणम् ।**
१९–लोहगन्धास्यता—**लोहं कालायसं तद्वन्मुखगन्धो भवति ।**
२०–दौर्गन्ध्यम्—**अङ्गानां दौर्गन्ध्यम् ।** २१–पीतमूत्रत्वम्—**हरिद्राभमूत्रत्वम् ।**
२२–अरतिः—**सर्वत्राप्रीतिः ।** २३–पीतविट्कता—**पीतपुरीषता ।**
२४–पीतावलोकनम्—**वस्तुषु पीततादर्शनम् ।** २५–पीतनेत्रता–**नेत्रादिषु च पीतता ।**
२६–पीतदन्तता—**दन्तेषु पीतत्वम् ।** २७–शीतेच्छा—**शीतवस्तुनोऽभिलाषः ।**
२८–पीतनखता—**पीतनखत्वम् ।** २९–तेजोद्वेषः—**तैजसवस्तुद्वेषः ।**

पदार्थों को देखने से बुरा मालूम होना। ३०-अल्पनिद्रता-नींद का कम आना। ३१-कोप—अधिक क्रोध का आना। ३२-गात्रसाद—अङ्गों में अवसाद का होना। ३३-भिन्नविटकता—पतले दस्तों का आना। ३४-अन्धता—दिखाई न देना या कम दीखना। ३५-उष्णोच्छ्वास—श्वास से बाहर आने वाली वायु का गरम होना। ३६-उष्णमूत्रता—मूत्र का गरम होकर आना। ३७-उष्णमलता—मल का उष्ण होकर निकलना। ३८-तमोदर्शन—आँखों के आगे अंधेरा छा जाना। ३९-पीतमण्डलदर्शन—आँखों के आगे पीले मण्डलों का दीखना। ४०-निःसहत्व—सहनशील न होना यानी जरा जरा सी बातों से चिढ़ जाना। पित्त के चालीस रोग भी प्रधानतः आविष्कृत हैं। इनके सिवाय यह भी वायु की तरह असंख्य रोगों को उत्पन्न करता है। उन्हें पित्त के आत्मरूप से ही पहचान कर चिकित्सा करना चाहिये ॥११५-१२१॥

कफरोगभेदाः—**कफस्य विंशतिः प्रोक्ता रोगास्तन्द्राऽतिनिद्रता।**
गौरवं मुखमाधुर्यं मुखलेपः प्रसेकता॥ १२२॥
श्वेतावलोकनं श्वेतविट्कत्वं श्वेतमूत्रता। श्वेताङ्गवर्णता शैत्यमुष्णेच्छा तिक्तकामिता।
मलाधिक्यं च शुक्रस्य बाहुल्यं बहुमूत्रता। आलस्यं मन्दबुद्धित्वं तृप्तिर्घर्घरवाक्यता।
अचैतन्यं च गदिता विंशतिः श्लेष्मजा गदाः ॥१२४॥

(१)कफ के रोग बीस प्रकार के कहे गये हैं—

१-तन्द्रा, २-अतिनिद्रता, ३-गौरव, ४-मुखमाधुर्य, ५-मुखलेप, ६-प्रसेकता, ७-श्वेतावलोकन, ८-श्वेतविट्कता, ९-श्वेतमूत्रता १०-श्वेताङ्गवर्णता, ११-शैत्य, १२-उष्णेच्छा, १३-तिक्तकामिता, १४-मलाधिक्य, १५-शुक्रबाहुल्य, १६-बहुमूत्रता, १७-आलस्य, १८-मन्दबुद्धित्व, १९-तृप्ति, २०-घर्घरवाक्यता, अचैतन्य। ये २० रोग कफ के कहे हुये हैं।

१-विमर्श—तन्द्रा-इन्द्रियार्थों का ग्रहण न करना, शरीर का भारी होना, थकान होना, जम्भाइयों का आना तथा नींद से पीडित सा नेत्रों का आधी बन्द आधी खुली होना

३०-अल्पनिद्रता-**निद्राऽल्पत्वम्**। ३१-कोपः-**पित्तस्यैव रक्तकोपता रक्तजेपूक्तत्वा**
३२-गात्रसादः-**अङ्गानां सादनम्**। ३३-भिन्नविट्कत्वं-**भिन्नपुरीषता**।
३४-अन्धता-**नेत्रस्य ज्योतिर्नाशः**। ३५-उष्णोच्छ्वासः-**उष्णश्वासः**।
३६-३७-मलमूत्रोष्णत्वम्-**द्वयोरपि औष्ण्यं पित्तभवत्वात्**।
३८-तमसो दर्शनम्-**अन्धकारदर्शनम्**।
३९-पीतमण्डलदर्शनम्—**पीतानि मण्डलानि तेषां दृष्टिः**।
४०-निःसहत्वम्। **निःसहता**।

(१) कफरोगवर्णनम्—

१—तत्रादौ तन्द्रालक्षणम्— **इन्द्रियार्थेष्वसम्प्राप्तिर्गौरवं जृम्भणं क्लमः।**
निद्राऽऽर्त्तस्येव यस्येहा तस्य तन्द्रां विनिर्दिशेत्॥

तन्द्रा के लक्षण हैं। यह कफाधिक्य से सन्निपातादि में तथा नींद के वेग को रोकने से होती है। २-अतिनिद्रता—स्वाभाविक नींद के अतिरिक्त देर तक सोना। ३-गौरव—शरीर का ऐसा मालूम होना मानो शरीर पर कोई गीला चमडा मढा हो। सिर का कफपूर्ण होकर भारी मालूम होने को भी **गौरव** कहते हैं। ४-मुखमाधुर्य—मुख के स्वाद का मधुर होना। ५-मुखलेप—कफ से मुख का लिहसा सा रहना। ६-प्रसेकता—मुख के लाला-ग्रन्थियों से प्रचुर लालास्राव होना। ७-श्वेतावलोकन—सब पदार्थों का सफेद सा दिखलाई पड़ना। ८-श्वेतविट्कता—मलका श्वेत रंगका होना। ९-श्वेतमूत्रता—मूत्र का श्वेत रंग का होना। १०-श्वेताङ्ग-वर्णता-अङ्गों के वर्ण का श्वेत होना। ११-शैत्यता—जाड़ा सा बोध होना। १२-उष्णेच्छा—गरम चीजों की इच्छा होना। १३-तिक्तकामिता—तिक्त भोजन-पान की इच्छा होना। १४-मलाधिक्य—मल का अधिक परिमाण में होना। १५-शुक्रबाहुल्य—वीर्य का अधिक मात्रा में होना। १६-बहुमूत्रता—मूत्र का अधिक परिमाण में आना। १७-आलस्य—ताकत रहते हुए भी काम करने का उत्साह न होना। १८-मन्दबुद्धित्व—बुद्धि का मन्द होना यानी सोचने विचारने की शक्ति का कम होना। १९-तृप्ति—खाने की इच्छा का न होना। २०-घर्घरवाक्यता—कण्ठ में घरघर करते हुए बोलना तथा जडता। कफ से उत्पन्न होने वाले ये बीस रोग हैं। इनमें से कई स्वतन्त्र एवं कई अन्य रोगों में लक्षण-स्वरूप भी होते हैं ॥१२२-१२४॥

२—अतिनिद्रा—**यदा तु मनसि क्लान्तिः कर्मात्मा च क्लमान्वितः ।**
आलस्यं मन्दबुद्धित्वं तृप्तिर्घर्घरवाक्यता ॥
विषयेभ्यो निवर्त्तेत तस्य निद्रां विनिर्दिशेत् ॥

३—गौरवम्—**आर्द्रचर्मावनद्धं च यो गात्रं मन्यते नरः ।**
तथा गुरु शिरोऽत्यर्थं गौरवं तद् विनिर्दिशेत ॥

४—मुखमाधुर्यम्—**मधुरास्यता ।** ५—मुखलेपः—**कफेन लिप्तता ।**
६—प्रसेकता—**लालास्रावता ।** ७—श्वेतावलोकनम्—**श्वेतस्य वस्तुनो दर्शनम् ।**
८—श्वेतविट्कत्वम्—**शुभ्रपुरीषता ।** ९—श्वेतमूत्रता—**शुभ्रमूत्रता ।**
१०—श्वेताङ्गवर्णता—**अङ्गस्य श्वेतत्वम् ।** ११—शैत्यम्—**अङ्गे शीतताबोधः ।**
१२—उष्णेच्छा—**उष्णवस्तुनोऽभिलाषः ।** १३—तिक्तकामिता—**तिक्तस्य कटुवस्तुनः काङ्क्षा ।** १४—मलाधिक्यम्—**मलस्याधिक्यता ।**
१५—शुक्र बाहुल्यम्—**अतिशुक्रता ।** १६—बहुमूत्रता—**मूत्रस्य बहुप्रवृत्तिः ।**
१७—आलस्यम्—**समर्थस्याप्यनुत्साहः कर्मण्यालस्यमुच्यते ।**
१८—मन्दबुद्धित्वम्—**बुद्धेर्मन्दता ।** १९—तृप्तिः—**भोजनानभिलाषः ।**
२०—घर्घरवाक्यता—**घर्घरशब्दत्वम् ।** अचैतन्यम्—**चैतन्यं ज्ञानं तद्रहितम् जडता कफरुद्धस्रोतसां रोधात् ।**

रक्तरोगभेदाः—**रक्तस्य च दश प्रोक्ता व्याधयस्तेषु गौरवम् ॥ १२५ ॥**
रक्तमण्डलता रक्तनेत्रत्वं रक्तमूत्रता । रक्तनिष्ठीवनं रक्तपिटिकानां च दर्शनम् ॥
औष्ण्यं च पूतिगन्धित्वं पीडा पाकश्च जायते ॥ १२६ ॥

रक्तसे उत्पन्न(१) होने वाले रोग दस प्रकार के होते हैं।

१–गौरव, २–रक्तमण्डलता, ३–रक्तनेत्रत्व, ४–रक्तमूत्रता, ५–रक्तनिष्ठीवन ६–रक्त पिटिकादर्शन, ७–उष्णता, ८–पूतिगन्धित्व, ९–पीडा, १०–पाक।

१–गौरव—शरीर का भारी मालूम होना। २–रक्तमण्डलता—शरीर पर लाल लाल मण्डल या चकत्तों का उत्पन्न होना। ३–रक्तनेत्रत्व–आंखों का लाल वर्ण युक्त होना। ४–रक्त मूत्रता–पेशाब में रक्त का आना। ५–रक्तनिष्ठीवन–थूक और खखार के साथ रक्त का निकलना ६–रक्तपिटिकादर्शन–शरीर पर रक्त वर्ण के फोड़े फुंसियों का होना। ७–उष्णता–शरीर का गरम मालूम होना। ८–पूतिगन्धता–रक्त से पूतिगन्ध का आना यानी रक्त के गन्ध का पू सदृश होना। ९–पीड़ा–दूषित रक्त के कारण शरीर पर पीड़ाओं का होना। १०–पाक–किसी भी अङ्ग का रक्त के विदाह से पक जाना। ये दस रोग रक्त से उत्पन्न होते हैं। रक्त में यह औपचारिक व्यपदेश है, क्योंकि रक्त दोषों से दूषित होकर ही रोगों को उत्पन्न करता है पर चिकित्साभेद के कारण से पृथक् निर्देश किया गया है॥ १२५–१२६ ॥

मुखरोगभेदाः—**चतुःसप्ततिसंख्याका मुखरोगास्तथोदिताः ॥ १२७ ॥**

मुखरोग (२)यानी मुख के अन्दर होने वाले रोग ७४ प्रकार के होते हैं।

विमर्श—स्थान भेद के कारण इनका वर्णन पृथक् २ किया जाता है। ये मुखमें सात स्थानों में होते हैं। १–दाँत, २–ओंठ, ३–दन्तमूल, ४–जीभ, ५–कण्ठ, ६–तालु और ७–सर्व मुखव्यापी ॥ १२७ ॥

ओष्ठरोगभेदाः—**तेष्वोष्ठरोगा गणिता एकादशमिता बुधैः ।**
वातपित्तकफैस्त्रेधा त्रिदोषरक्तजा तथा ॥ १२८ ॥

---

(१) रक्तरोगवर्णनम्—१–गौरवम्—**कफजमिव रक्तस्यानुरूपतया भवति ।**
२—रक्तमण्डलता—**आरक्तमण्डलोत्पत्तिः ।** ३—रक्तनेत्रत्वम्—**आरक्तलोचनता ।**
४—रक्तमूत्रता—**रक्तमूत्रत्वं तस्य रक्तजन्यत्वात् ।**
५—रक्तनिष्ठीवनम्—**रक्तमिश्रितनिष्ठीवनं रक्तस्यैव वा ।**
६—रक्तपिटिकादर्शनम्—**रक्तजा आरक्ता वा पिडिकाः क्षुद्रस्फोटा अङ्गे भवन्ति तेषां दर्शनम् ।** ७—औष्ण्यम्—**उष्णत्वं रक्तस्यापि तैजसत्वात् ।**
८—पूतिगन्धत्वम्—**दुर्गन्धता सा तु रक्तजैव भवति ।** ९—पीडा–**रक्तजा पीडा ।**
१०—पाकः—**मांसादीनां रक्तस्य वा पाकः ।**

(२) मुखरोगवर्णनम्—**मुखरोगाः समाख्याताः सप्तस्वायतनेषु च ।**
आयतनानि स्थानानि यथा—
दन्तौष्ठदन्तमूलजिह्वाकण्ठतालुसर्वगतानीति ॥

क्षतान्मांसार्बुदं चैव खण्डोष्ठं च जलार्बुदम्।
मेदोऽर्बुदं चार्बुदं च रोगा एकादशौष्ठजाः ॥ १२९ ॥

उन मुखरोगों में ओष्ठ (१)रोग ११ होते हैं। १-वातिक ओष्ठरोग, २-पैत्तिक ओष्ठरोग, ३-श्लैष्मिक ओष्ठरोग, ४-सान्निपातिक ओष्ठरोग, ५-रक्तज ओष्ठरोग, ६-क्षतज ओष्ठरोग, ७-ओष्ठका मांसार्बुद, ८-खण्डोष्ठ, ९-जलार्बुद, १०-मेदोऽर्बुद और ११-अर्बुद।

विमर्श—वातिक ओष्ठरोग—इसमें ओष्ठ कठिन, खरदरे और स्तब्ध होते हैं तथा मसलने की सी चीरने की सी एवं तोद आदि वातवेदनाएँ होती हैं। **पैत्तिक ओष्ठरोग**—इसमें ओष्ठ पर सर्वत्र छोटी छोटी चुलबुलाती फुंसियाँ हो जाती हैं तथा उनमें जलन होती है और जल्द पक जाती हैं। ओष्ठ पीले से दिखाई देते हैं। **श्लैष्मिक ओष्ठरोग**—इसमें ओष्ठ पर ओष्ठ के ही वर्ण की फुंसियाँ हो जाती हैं, उनमें दर्द नहीं होता। ओष्ठ ठंढे, पिच्छिल एवं भारी होते हैं। **सान्निपातिक ओष्ठरोग**—इसमें ओष्ठों पर अनेक प्रकार की फुंसियाँ हो जाती हैं तथा

---

(१) तत्रादौ ओष्ठरोगाः—**कर्कशौ परुषौ स्तब्धौ प्राप्तावनिलवेदनौ।**

१-वातिकमोष्ठरोगमाह-**दाल्येते परिपाट्येते ओष्ठौ मारुतकोपतः ॥**

२—पैत्तिकमाह—**चीयते पिडकाभिश्च सरुजाभिः समन्ततः।**
सदाहपाकपिडकौ पीताभासौ च पित्ततः ॥

३—कफजमाह—**सवर्णाभिस्तु चीयेते पिडिकाभिरवेदनौ।**
भवतस्तु कफादोष्ठौ पिच्छिलौ शीतलौ गुरू ॥

४—सन्निपातजमाह—**सकृत्कृष्णौ सकृत्पीतौ सकृच्छ्वेतौ तथैव च।**
सन्निपातेन विज्ञेयावनेकपिडकान्वितौ ॥

५—रक्तजमाह—**खर्जूरफलवर्णाभिः पिडिकाभिर्निपीडितौ।**
रक्तोपसृष्टौ रुधिरं स्रवतः शोणितप्रभौ ॥

६—क्षतजमाह—**क्षतावभिहितौ वाऽपि रक्तावोष्ठौ सवेदनौ।**
भवतः सपरिस्रावौ कफरक्तप्रदूषितौ ॥

७—मांसार्बुदमाह—**गुरू स्थूलौ मांसदुष्टौ मांसपिण्डवदुद्गतौ।**
जन्तवश्चात्र मूर्च्छन्ति नरस्योभयतो मुखात् ॥

८—मेदोऽर्बुदमाह—**सर्पिर्मण्डप्रतीकाशौ मेदसा कण्डुरौ गुरू।**
अच्छं स्फटिकसङ्काशमास्रावं स्रवतो भृशम् ॥
तयोर्व्रणो न संरोहेन्मृदुत्वं नैव गच्छति।

९—खण्डोष्ठमाह—**ओष्ठौ पर्यवदीर्येते पीड्यते चाभिघाततः।**
ग्रथितौ च तदा स्यातां कण्डूक्लेदसमन्वितौ ॥

१०—जलार्बुदमाह—**जलवदुद्गतो वातः कफादोष्ठे जलार्बुदम्।**

११—अर्बुदमाह—**अर्बुदतुल्यमोष्ठोपरि भवति।**

ओष्ठके वर्ण कभी काला, कभी पीला तथा कभी सफेद होते हैं। **रक्तज ओष्ठरोग**—खजूर के फल जैसी रक्त-कृष्णरंग की पिडकाएँ हो जाती हैं तथा उनके फटने से रक्तस्राव होता है। **क्षतज ओष्ठरोग**—ओष्ठ पर घाव होने से या चोट के लगने से ओष्ठ लाल, वेदनायुक्त एवं स्रवण शील होते हैं। यह कफरक्तज होता है। **मांसार्बुद**—ओष्ठ भारी और स्थूल हो जाते हैं एवम् अर्बुद से मांसपिण्ड निकल आते हैं। असावधान होने से इसमें कृमि हो जाते हैं। **जलार्बुद**—ओष्ठ पर वातकफ से जलवत् अर्बुद-गुटिकाएँ होती हैं। **मेदोऽर्बुद**—मेदोऽर्बुद युक्त ओष्ठ घृत-मण्ड तुल्य वर्णवाले होते हैं एवं कण्डुयुक्त और भारी होते हैं। इनके फटने से स्वच्छ स्फटिक सा स्राव निकलता है, यह घाव न तो भरता है और न मृदु ही होता है। **अर्बुद**—यह अर्बुद तुल्य ही होता है। **खण्डोष्ठ**—पतन, अभिघात आदि से ओष्ठ का खण्डित हो जाने को **खण्डोष्ठ** माना जाता है, जो **सुश्रुतोक्त** विधि से सन्धानीय है। पर एक प्रकार का और भी **खण्डोष्ठ** देखा जाता है। यह गर्भावस्था में ही वातकर्तृक होता है और प्रायः **ऊर्ध्वौष्ठ** में ही होता है। उस सन्तान की बोली अस्पष्ट होती है। यह अचिकित्स्य है। इसमें कोई पीडा नहीं होती न कोई व्रण ही रहता है। कहीं कहीं स्त्रियों में यह अन्धविश्वास प्रचलित है कि गर्भावस्था में माता के सूर्य या चन्द्र ग्रहण का दर्शन करने से भ्रूण का ओष्ठ खण्डित हो जाता है। कई बृद्धा स्त्रियों ने इसके प्रमाण भी दिये। खण्डित चन्द्र या सूर्य के देखने से मानसिक प्रभाव से वातकोप-वशतः यह हो भी सकता है, पर इसका अभी कोई निश्चित प्रमाण नहीं हैं। हमारी समझ में शार्ङ्गधर जी का **खण्डोष्ठ** से यही खण्डोष्ठ ही अभिप्रेत है। अभिघातादि-जनित तो क्षतज में ही अन्तर्भूत हो जाते हैं॥ १२८-१२९॥

दन्तरोगभेदाः—**दन्तरोगा दशाख्याता दालनः कृमिदन्तकः।**
दन्तहर्षः करालश्च दन्तचालश्च शर्करा।
अधिदन्तः श्यावदन्तो दन्तभेदः कपालिका॥ १३०॥

दांत पर(१) होने वाले रोग १० प्रकार के होते हैं। १-दालन २-कृमिदन्त, ३-दन्तहर्ष,

(१) दन्तरोगाः १-दालनमाह—**दीर्यमाणेष्विव रुजा यस्य दन्तेषु जायते।**
दालनो नाम स व्याधिः सदागतिनिमित्तजः॥
२-कृमिदन्तमाह—**कृष्णच्छिद्रश्चलः स्रावी ससंरम्भो महारुजः।**
अनिमित्तरुजो वातात् स ज्ञेयः कृमिदन्तकः॥
३-दन्तहर्षमाह—**शीतरूक्षप्रवाताम्लस्पर्शानामसहा द्विजाः।**
पित्तमारुतकोपेन दन्तहर्षः स नामतः॥
४-करालमाह—**शनैः शनैः प्रकुरुते वायुर्दन्तसमाश्रितः।**
करालान् विकटान् दन्तान् करालः स न सिद्ध्यति॥
५-दन्तचाल (हनुमोक्ष) माह—**वातेन तस्तैर्भावैस्तु हनुसन्धिर्विसंहतः।**
हनुमोक्ष इति ज्ञेयो व्याधिरर्दितलक्षणः॥

४-कराल, ५-दन्तचाल, ६-दन्तशर्करा, ७-अधिदन्त, ८-श्यावदन्त, ९-दन्तभेद, और १०-कपालिका।

विमर्श—दालन—इसमें दांतों में फाड़ने की सी पीडा होती है। यह वातकर्त्तृक होता है। **कृमिदन्त**—दांतों में कीड़े होने से होता है। इसमें दांत में कृष्ण छिद्र दीखता है तथा स्राव और वेदना होते हैं। **दन्तमूल** में शोथ भी होता है तथा अकस्मात् दर्द हो उठता है। **दन्तहर्ष**—ठण्ढ से, रूखे पदार्थ के चबाने से तथा खट्टे पदार्थ खाने से दांतो में सिरसिराहट पैदा होता है। इसे **दन्तहर्ष** कहते हैं। **कराल**—कुपित वायु धीरे धीरे दांतों को लम्बा, टेढ़ा और बाहर को निकला हुआ विकटाकार कर देता है। इसको **करालदन्त** कहते हैं। यह प्रायः बृद्धावस्था में होता हैं। **दन्तचाल**—दांत टेढ़े मेढे होकर हिलने लगते हैं तथा उखड़ जाते हैं। इसे **दन्तचाल** कहते हैं। यह कफवातज है। **शर्करा**—दांतों की सफाई न करने से दन्तमल पित्त तथा वायु से सूखकर दांतों पर बालु जैसे खरदरा होकर जम जाता है। स्पर्श करने से रेतमलकागज (Sand paper) सा मालूम पड़ता है। इसे **दन्तशर्करा** कहते हैं। **अधिदन्त**-वातकर्तृक दांत के पार्श्व में ही और दांत निकलते हैं। निकलते समय विशेष पीडा होती है। तथा निकल चुकने पर सब पीडा शान्त हो जाती है। इसे **अधिदन्त** या **खल्लीबर्धन** कहते हैं। **श्यावदन्त**—दन्तान्तर्गत रक्त पित्त से दग्ध हो जाने पर दांत बाहर से नीले या श्याम रङ्ग के दिखाई देते हैं। इसे **श्यावदन्त** कहते हैं। **दन्तभेद**—दांत टेढ़े होकर हिलने लगते हैं तथा तीव्र वेदना होती है एवं दन्त उखड़ जाते हैं। इसे **दन्तभेद** कहते हैं। यह कफवातज है। **कपालिका**—दन्तशर्करा वातकर्त्तृक चिटख चिटख कर गिरते हैं। इस तरह सम्पूर्ण दांत का क्षय हो जाता है। यह कपालिका रोग है॥ १३० ॥

दन्तमूलरोगभेदाः-**तथा त्रयोदशमिता दन्तशूलामयाः स्मृताः ॥ १३१ ॥**
शीतादोपकुशौ द्वौ तु दन्तविद्रधिपुप्पुटौ। अधिमांसो विदर्भश्च महासौषिरसौषिरौ ॥

दन्तचालः-दन्तानां चालनम्। माधवेन तु हनुमोक्ष इति पठितः।

६-दन्तशर्करामाह—**मलो दन्तगतो यस्तु पित्तमारुतशोषितः।**
शर्करेव खरस्पर्शा सा ज्ञेया दन्तशर्करा ॥

७-अधिदन्त (खल्लीव-**मारुतेनाधिको दन्तो जायते तीव्रवेदनः।**
र्द्धन) माह— **खल्लीवर्द्धनसञ्ज्ञोऽसौ जाते रुक् च प्रशाम्यति ॥**

८-श्यावदन्तमाह—**असृङ्मिश्रेण पित्तेन दग्धो दन्तस्त्वशेषतः।**
श्यावतां नीलतां वाऽपि गतः सः श्यावदन्तकः ॥

९-दन्तभञ्जनमाह—**वक्त्रं वक्रं भवेद् यस्य दन्तभङ्गश्च तीव्ररुक्।**
कफवातकृतो व्याधिः स भञ्जनकसञ्ज्ञितः ॥

१०-कपालिकामाह—**कपालेष्विव दीर्यत्सु दन्तानां सैव शर्करा।**
कपालिकेति पठिता सदा दन्तविनाशिनी ॥

तेष्वेव गतयः पञ्च वातात्पित्तात्कफादपि । सन्निपाताद्गतिश्चान्या रक्तनाडी च पञ्चमी

दन्तमूलगत(१)**रोग**—१३ प्रकार के होते हैं । १–शीताद, २–उपकुश, ३–दन्तविद्रधि, ४–दन्तपुप्पुट, ५–अधिमांस, ६–विदर्भ, ७–महासौषिर, ८–सौषिर, ९–वातिक दन्तनाडी, १०–पैत्तिक दन्तनाडी, ११–श्लैष्मिक दन्तनाडी, १२–सान्निपातिक दन्तनाडी तथा १३-रक्तज दन्तनाडी।

विमर्श–शीताद–अकस्मात् ही दन्तमूल से रक्तस्राव होता है । दन्तमांस दुर्गन्धयुक्त, काले क्लेदयुक्त तथा मोमी हो जाते हैं एवं सड़ जाते हैं । और परस्पर पकते हैं यानी एक दन्तमू

---

(१)दन्तमूलगता रोगाः–**शोणितं दन्तवेष्टेभ्यो यस्याकस्मात्प्रवर्त्तते ।**
दुर्गन्धीनि सकृष्णानि प्रक्लेदीनि मृदूनि च ॥
दन्तमांसानि शीर्यन्ते पचन्ति च परस्परम् ।
शीतादो नाम स व्याधिः कफशोणितसम्भवः ॥

२–उपकुशमाह—**वेष्टेषु दाहः पाकश्च ताभ्यां दन्ताश्चलन्ति च ।**
आघट्टिताः प्रस्रवन्ति शोणितं मन्दवेदनम् ॥
आध्मायन्ते स्रवद्रक्ते मुखे पूतिश्च जायते ।
यस्मिन्नुपकुशो नाम पित्तरक्तकृतो गदः ॥

३–दन्तविद्रधिमाह—**दन्तमांसैर्मलस्रावैर्बाह्यान्तःश्वयथुर्गुरुः ।**
सदाहरुक् स्रवेद्भिन्नं पूयास्रं दन्तविद्रधिः ॥

४–दन्तपुप्पुटमाह—**दन्तयोस्त्रिषु वा यस्य श्वयथुर्जायते महान् ।**
दन्तपुप्पुटको नाम स व्याधिः कफरक्तजः ॥

५–वैदर्भमाह—**घृष्टेषु दन्तमांसेषु संरम्भो जायते महान् ।**
भवन्ति चपला दन्ताः स वैदर्भोऽभिघातजः ॥

६–अधिमांसमाह—**हानव्ये पश्चिमे दन्ते महाञ् शोथो महारुजः ।**
लालास्रावी कफकृतो विज्ञेयः सोऽधिमांसकः ॥

७–महाशौषिरमाह—**दन्ताश्चलन्ति वेष्टेभ्यस्तालु चाप्यवदीर्यते ।**
यस्मिन् स सर्वजो व्याधिर्महासौषिरनामतः ॥

भोजोक्तं च लक्षणम्–**सदाहो दन्तमूलेऽपि शोथः पित्तकफानिलात् ।**
जातः क्षपयति कफं क्षीणे तस्मिंस्तु शोणितम् ॥
प्रवृद्धमनिशं दन्तांस्ताल्वोष्ठमपि दालयेत् । महासौषिर इत्येष सप्तरात्रान्निहन्त्यसून् ।

८–सौषिरलक्षणम्—**श्वयथुर्दन्तमूलेषु रुजावान् कफरक्ततः ।**
लालास्रावी स विज्ञेयः सौषिरो नाम नामतः ॥

९–१३ दन्तनाडीलक्षणम्—**दन्तमूलगता नाड्यः पञ्च ज्ञेया यथेरिताः ।**
नाडीव्रणनिदानोक्ता दन्तगतत्वात्तल्लक्षणैर्ज्ञेया नाड्यः ॥
अत्र वातपित्तकफसन्निपातागन्तुकाभिघातनिमित्ताश्च ।

पकने से उसके पास के भी संक्रमित होकर पक जाते हैं। यह **शीताद रोग** है। यह कफरक्तज है। **उपकुश**--दन्तवेष्टों में दाह तथा पाक होता है और परिणाम में दांत हिल जाते हैं। यह **उपकुश** रोग है। यह पित्तरक्तज है। **दन्तविद्रधि**--दन्तमांसों में बाहर तथा भीतर को विद्रधिवत् भारी शोथ होता है तथा दाह और पीड़ा के साथ पकता है। फटने पर रक्तमिश्रित पूय निकलता है। यह **दन्तविद्रधि** है। **दन्तपुप्पुट**--दो या तीन दांतों के मूल में महान् शोथ होता है। इसे **दन्तपुप्पुट** कहते हैं यह कफरक्तज है। **अधिमांस**--हनुमूल के पास के दांत की जड़ में महान् शोथ अधिक दर्द वाला होता है तथा उससे लार बहुत टपकता है। इसे **अधिमांस** कहते हैं। यह कफज रोग है। **विदर्भ**--दन्तमांसों के अभिघात आदि से रगड़ जाने पर पीडायुक्त शोथ हो जाता है तथा दाँत भी हिल जाते हैं। इसे **विदर्भ** रोग कहते हैं। **महासौषिर**--दन्तवेष्ट में शोथ, दाह होते हैं तथा दांत हिलते हैं। रोग बढ़ने से तालु भी फट पड़ता है। यह महासौषिर रोग है। यह सन्निपातज है। **भोजदेव** का कहना है कि एक सप्ताह में यह मारक होता है। **सौषिर**—दन्तमूल में शोथ होकर दर्द होता है तथा प्रचुर लालास्राव होता है। यह **सौषिर** नामक रोग है यह कफरक्तज है। **दन्तनाडी**—वर्णित नाडीव्रण की तरह दन्तमांस में भी ५ तरह के नाडीव्रण होते हैं ॥१३१-१३३॥

जिह्वारोगभेदाः—**तथा जिह्वाऽऽमयाः षट् स्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा ।**

अलासश्च चतुर्थः स्यादधिजिह्वश्च पञ्चमः। षष्ठश्चैवोपजिह्वः स्यात्···॥१३४॥

(१)जिह्वापर होने वाले रोग छः प्रकार के होते हैं। १-वातिक जिह्वारोग, २-पैत्तिक जिह्वारोग, ३-श्लैष्मिक जिह्वारोग, ४-अलास, ५-अधिजिह्वा और ६-उपजिह्वा।

विमर्श—वातिक जिह्वारोग—इसमें जीभ फटी हुई, प्रसुप्त यानी स्पर्शहीन और हरी सी होती है। **पैत्तिक जिह्वारोग**—इसमें जीभ पीली सी, दाहयुक्त और लाल लाल अंकुरों से युक्त होती है। **श्लैष्मिक जिह्वारोग**—इसमें जिह्वा कुछ बड़ी सी दीखती, भारी तथा सेमल के काँटों जैसे मांसांकुरों से व्याप्त रहती है। **अलास**–कफरक्त के कोप से जिह्वा के नीचे दारुण शोथ उत्पन्न होता है। यह शोथ बढ़ कर जिह्वा को स्तम्भित कर देता है।

---

(१) जिह्वागता रोगाः—**१-जिह्वाऽनिलेन स्फुटिता प्रसुप्ता भवेच्च शाकच्छदनप्रकाशा ।**
२-पित्तेन पीता परिदह्यते च दीर्घैः सरक्तैरपि कण्टकैश्च ॥
३-कफेन गुर्वी बहुला चिता च मांसोच्छ्रयैः शाल्मलिकण्टकाभैः।
४-अलासमाह--**जिह्वातले यः श्वयथुः प्रगाढः सोऽलाससञ्ज्ञः कफरक्तमूर्त्तिः ।**
जिह्वां स तु स्तम्भयति प्रवृद्धो मूले च जिह्वा भृशमेति पाकम् ॥
५-अधिजिह्वामाह--**जिह्वाऽग्ररूपः श्वयथुः कफात्तु जिह्वोपरिष्टादपि रक्तमिश्रात्।**
ज्ञेयोऽधिजिह्वः खलु रोग एष विवर्जयेदागतपाकमेतम् ॥
६-उपजिह्वामाह—**जिह्वाऽग्ररूपः श्वयथुर्हि जिह्वामुन्नम्य जातः कफरक्तमूलः ।**
लालाकरः कण्डुयुतः सचोषः सा तूपजिह्वा पठिता भिषग्भिः ॥

तथा मूल में जीभ पक जाती है। इसको **अलास** कहते हैं। **अधिजिह्वा**—जीभ के ऊपर मूलों में जिह्वा के अग्रभाग जैसा शोथ उत्पन्न होता है। यह भी रक्तमिश्रित कफ से होता है। इसे **अधिजिह्वा** कहते हैं। पाक उपस्थित होने पर यह असाध्य हो जाता है। **उपजिह्वा**—जीभ के नीचे जिह्वाग्र सदृश शोथ जिह्वा को ऊपर उठा देकर होता है। जिससे प्रचुर लालास्राव तथा शोथ पर कण्डू और अङ्गारे से जलता सा दाह होता है। यह कफरक्तज है। इसे उपजिह्वा कहते हैं ॥१३४॥

तालुरोगभेदाः—"'तथाऽष्टौ तालुजा गदाः। **अर्बुदं तालुपिटिका कच्छपी तालुसंहतिः। गलशुण्डी तालुशोषस्तालुपाकश्च पुप्पुटः ॥१३५॥**

(१)**तालु** पर होने वाले रोग आठ प्रकार के होते हैं। १-अर्बुद, २-तालुपिटिका, ३-कच्छपी, ४-तालुसंहति, ५-गलशुण्डी, ६-तालुशोष, ७-तालुपाक और ८-पुप्पुट।

विमर्श—ताल्वर्बुद—तालु पर पद्मकर्णिका के आकार का शोथ उत्पन्न होता है। यह रक्त से उत्पन्न होता है। **भोज** ने इसे कफरक्तज कहा है एवं शोथ के आस-पास दीर्घ अंकुरों का होना और नासावसाद का होना भी कहा है। **तालुपिटिका**—तालुदेश में स्तब्ध लाल शोथ होता है। उसमें वेदना होती है तथा ज्वर होता है। यह व्याधि रक्तज है। इसे अन्य **अध्रुष** कहा है। **कच्छपी**—कफ से तालुदेश में शनैःशनैःपीडारहित, कछुए का जैसा उन्नत शोथ उत्पन्न होता है। इसे **कच्छपी** कहते हैं। **तालुसंहति**—तालु पर दुष्ट मांस जमा होकर कठोर हो जाता है। उसमें कोई दर्द नहीं होता। इसे **तालुसंहति** या **मांससंघात** कहते हैं।

---

(१) तालुरोगाः—

१-ताल्वर्बुदः— **पद्माकारं तालुमध्ये तु शोथं विद्याद्रक्तादर्बुदं प्रोक्तलिङ्गम्।**
भोजोक्तमाह—**उपर्येव भवेद् व्याधिर्यथा पद्मस्य कर्णिका।**
पार्श्वतश्चाङ्कुरैर्दीर्घैर्नासा चाप्यवसीदति ॥
श्लेष्मरक्तसमुत्थानं तत्ताल्वर्बुदसञ्ज्ञितम्।

२-तालुपिटिका (अध्रुष) माह—
शोथः स्तब्धो लोहितस्तालुदेशे रक्ताज्ज्ञेयः सोऽध्रुषो रुग् ज्वराढ्यः।

३-कच्छपीमाह—**कूर्मोत्सन्नोऽवेदनोऽशीघ्रजन्मा रोगो ज्ञेयः कच्छपः श्लेष्मणा स्यात्।**

४-मांससंहतिमाह—**दुष्टं मांसं नीरुजं तालुमध्ये कफात्स्थूलं मांससङ्घातमाहुः।**

५-गलशुण्डीमाह—**श्लेष्मासृग्भ्यां तालुमूले प्रवृद्धो दीर्घः शोथो ध्मातबस्तिप्रकाशः। तृष्णाकासश्वासकृत्तं वदन्ति व्याधिं वैद्याः कण्ठशुण्डीति नाम्ना।**

६—तालुशोषमाह—**शोषोऽत्यर्थं दीर्यते वाऽपि तालु श्वासश्चोग्रस्तालुशोषोऽनिलात्स्यात्।**

७—तालुपाकमाह—**पित्तं कुर्यात् पाकमत्यर्थघोरं तालुन्येवं तालुपाकं वदन्ति।**

८—तालुपुप्पुटमाह—
नीरुक् स्थायी कोलमात्रः कफात् स्यान्मेदोयुक्तात् पुप्पुटस्तालुदेशे।

गलशुण्डी–तालु के मूल भागमें वायुपूर्ण मशक जैसा दीर्घ शोथ उत्पन्न होकर प्यास, श्वास तथा कास उत्पन्न करता है। इसे **गलशुण्डी (कण्ठशुण्डी)** कहते हैं। यह कफरक्तज है। **तालुशोष**–वायु से तालु सूखता रहता है एवं अति शुष्क होने से तालु फट जाता है। इसमें उग्र श्वास हो जाता है। यही तालुशोष रोग है। **तालुपाक**–तालुदेश में दुष्ट पित्त दारुण पाक उत्पन्न करता है। इसे **तालुपाक** कहते हैं। **पुप्पुट**–कफभेद से छोटी बेर बराबर गांठ सा शोथ तालुदेश में होता है। यह प्रायः वेदनारहित होता है तथा स्थायी होता है॥ १३५॥

गलरोगभेदाः–**गलरोगास्तथा ख्याता अष्टादशमिता बुधैः॥ १३६॥**
वातरोहिणिका पूर्वं द्वितीया पित्तरोहिणी।
कफरोहिणिका प्रोक्ता त्रिदोषैरपि रोहिणी॥ १३७॥
मेदोरोहिणिका बृन्दो गलौघो गलविद्रधिः।
स्वरहा तुण्डिकेरी च शतघ्नी शालुकोऽर्बुदम्॥ १३८॥
गलायुर्वलयश्चापि वाताद्गण्डः कफात्तथा।
मेदोगण्डस्तथैव स्यादित्यष्टादश कण्ठजाः॥ १३९॥

गले में (१) (भीतर तथा बाहर) होने वाले रोग विद्वानों ने १८ प्रकार के कहे हैं।

---

(१) गलरोगाः १९

१–वातिकरोहिणीमाह–**जिह्वां समन्तादभृशवेदना ये मांसाङ्कुराः कण्ठनिरोधनाः स्युः।**
सा रोहिणी वातकृता प्रदिष्टा वातात्मकोपद्रवगाढजुष्टाः॥
२–पैत्तिकरोहिणीमाह–**क्षिप्रोद्गमा क्षिप्रविदाहपाका तीव्रज्वरा पित्तनिमित्तजा तु।**
३–कफजरोहिणीमाह–**स्रोतोनिरोधिन्यपि मन्दपाका गुर्वी स्थिरा सा कफसम्भवा च॥**
४–त्रिदोषजरोहिणीमाह **गम्भीरपाकिन्यनिवार्यवीर्या त्रिदोषलिङ्गा त्रितयोत्थिता च।**
५–रक्तजरोहिणीमाह–**स्फोटैश्चिता पित्तसमानलिङ्गा साध्या प्रदिष्टा रुधिरात्मिका तु।**
६–बृन्दमाह–**समुन्नतं वृत्तममन्ददाहं तीव्रज्वरं बृन्दमुदाहरन्ति।**
तं चापि पित्तक्षतजप्रकोपाज्ज्ञेयं सतोदं पवनात्मकं च॥
७–गलौघमाह–**शोथो महानन्नजलावरोधी तीव्रज्वरो वायुगतेर्निहन्ता।**
कफेन जातो रुधिरान्वितेन गले गलौघः परिकीर्त्तितोऽसौ॥
८–गलविद्रधिमाह–**सर्वं गलं व्याप्य समुत्थितो यः शोथो रुजो यत्र च सन्ति सर्वाः।**
स सर्वदोषो गलविद्रधिस्तु तस्यैव तुल्यः खलु सर्वजस्य॥
९–स्वरघ्नमाह–**यस्ताम्यमानः श्वसिति प्रसक्तं भिन्नस्वरः शुष्कविमुक्तकण्ठः।**
कफोपदिग्धेष्वनिलायनेषु ज्ञेयः स रोगः श्वसनात् स्वरघ्नः॥
१०–तुण्डिकेरीमाह–**शोथः स्थूलस्तोददाहप्रपाकी प्रागुक्ताभ्यां तुण्डिकेरी मता तु।**
११–शतघ्नीमाह–**वर्त्तिर्घना कण्ठनिरोधिनी या चिताऽतिमात्रं पिशितप्ररोहैः।**
नानारुजोच्छ्रायकरी त्रिदोषाज्ज्ञेया शतघ्नी च शतघ्निरूपा॥

१-वातिक रोहिणी,२-पैत्तिक रोहिणी,३-श्लैष्मिक रोहिणी, ४-सान्निपातिकरोहिणी, ५-(मे रोहिणी), ६-वृन्द, ७-गलौघ, ८-गलविद्रधि, ९-स्वरहा, १०-तुण्डिकेरी, ११-शतघ्नी, १२-शालूक, १३-अर्बुद, १४-गलायु, १५-वलय, १६-वातिक गलगण्ड, १७-श्लैष्मिक गलगण्ड तथा १८-मेदोज गलगण्ड।

विमर्श--इनमें से अन्तिम तीन गलगण्ड गले के बाहर तथा शेष १५ प्रकार के रोग गले के अन्दर होते हैं। इनके लक्षण यथा-**रोहिणी**-गले में वातादि दोष मांस और रक्त को दूषित कर गलरोधकारक मांसाङ्कुरों को उत्पन्न कराते हैं। यह रोग बड़ा ही भयङ्कर और प्राणघातक होता है। यह वातादि भेदसे, सन्निपात से तथा मेदोदोष से चार प्रकार का होता है। अन्यत्र **मेदोज** के स्थान पर **रक्तज रोहिणी** परिगणित होती है। **वातिक रोहिणी**-में जिह्वा में अत्यर्थ वेदनासहित गले में मार्गरोधकारी अंकुर उत्पन्न होते हैं तथा वातनिमित्तक अनेक उपद्रव होते हैं। यह **वातिक रोहिणी** है। **पित्तज रोहिणी**-यह रोहिणी शीघ्र

१२-शालूक(कण्ठशालूक)-माह— **कोलास्थिमात्रः कफसम्भवो यो ग्रन्थिर्गले कण्टकशूकभूतः।**
खरः स्थिरः शस्त्रनिपातसाध्यस्तं कण्ठशालूकमिति ब्रुवन्ति॥

१३-अर्बुद (मांसतान) माह— **प्रतानवान् यः श्वयथुः सुकष्टो जलोपरोधं कुरुते क्रमेण।**
स मांसतानः कथितोऽवलम्बी प्राणप्रणुत् सर्वकृतो विकारः॥

१४—गलायुमाह—**ग्रन्थिर्गले त्वामलकास्थिमात्रः स्थिरोऽल्परुक् स्यात्कफरक्तमूर्तिः।**
संलक्ष्यते सक्तमिवाशनं च स शस्त्रसाध्यस्तु गिलायुसंज्ञः॥

१५—वलयमाह—**वलास एवायतमुन्नतं च शोथः करोत्यन्नगतिं निवार्य।**
तं सर्वथैवाप्रतिवार्यवीर्यं विवर्जनीयं वलयं वदन्ति॥

१६-वातिक गलगण्डमाह—**तोदान्वितः कृष्णशिराऽवनद्धः श्यावोऽरुणो वा पवनात्मकस्तु।**
पारुष्ययुक्तश्चिरवृद्धपाको यदृच्छया पाकमियात्कदा चित्॥
वैरस्यमास्यस्य च तस्य जन्तोर्भवेत्तथा तालुगलप्रशोषः॥

१७—कफजगलगण्ड-माह— **स्थिरः सवर्णो गुरुरुग्रकण्डूः शीतो महांश्चापि कफात्मकस्तु।**
चिराभिवृद्धिं भजते चिराद्वा प्रपच्यते मन्दरुजः कदा चित्।
माधुर्यमास्यस्य च तस्य जन्तोर्भवेत्तथा तालुगलप्रलेपः॥

१८—मेदोजगलगण्ड-माह— **स्निग्धो गुरुः पाण्डुरनिष्टगन्धो मेदोभवः कण्डुयुतोऽल्परुक् च।**
प्रलम्बतेऽलाबुवदल्पमूलो देहानुरूपक्षयवृद्धियुक्तः॥
स्निग्धास्यता तस्य भवेच्च जन्तोर्गलेऽनुशब्दं कुरुते च नित्यम्॥

गलगण्डमाह—**निबद्धः श्वयथुर्यस्य मुष्कवल्लम्बते गले।**
महान्वा यदि वा ह्रस्वो गलगण्डं तमादिशेत्॥

विदारीमाह—**सदाहतोदं श्वयथुं सुतीव्रमन्तर्गले पूतिविशीर्णमांसम्।**
पित्तेन विद्याद्वदने विदारीं पार्श्वे विशेषात्स तु येन शेते॥

उत्पन्न होती तथा शीघ्र ही विदग्ध होकर पक जाती है। तीव्र ज्वर प्रभृति उपद्रव होते हैं। **कफज रोहिणी**—यह रोहिणी स्थूल होकर मार्गका निरोध करती है तथा भारी और अचल होती है। यह रोहिणी धीरे धीरे पकती है। **सन्निपातज रोहिणी**—शीघ्र उत्पन्न होकर गम्भीर पकवाली होती है। इसको रोकना प्रायः असम्भव है। **मेदोज रोहिणी—श्लेष्मज रोहिणी** सदृश लक्षण वाली कोमल तथा स्निग्ध होती है एवं बहुत ही धीरे धीरे पकती है या नहीं पकती। **रक्तज रोहिणी**—यह रोहिणी स्फोटयुक्त तथा **पित्तज रोहिणी** तुल्य लक्षणवाली होती है। यह रोहिणी साध्य है। **वृन्द**—गले के अन्दर उन्नत गोल शोथ दाह एवं तीव्र ज्वर युक्त होता है। इसे **वृन्द** कहते हैं। यह रक्तपित्तज है। यदि तोद भी हो तो पवन का संसर्ग जाने। **गलौघ**—कफरक्त से महान शोथ गले के अन्दर तीव्र ज्वर के साथ उत्पन्न होकर अन्न जल और पायु के मार्ग को अवरुद्ध कर देता है। उसे गलौघ कहते हैं। **गलविद्रधि**—समग्र गलनलिका को व्याप्त कर त्रिदोष लक्षण युक्त विद्रधिवत् **गलविद्रधि** होता है। **स्वरहा**—वायु के मार्ग में कफ लिप्त होने से पुरुष अंधेरा देखता हुआ सर्वदा श्वास लेने की कोशिश करता है। गला सूखा रहता है तथा स्वर बिगड़ जाता है निगलने में असमर्थ होता है। इसको **स्वरहा** या **स्वरघ्न** कहते हैं। यह रोग वातज है। **तुण्डिकेरी**—गले के अंदर जंगली कपास के फल सदृश स्थूल शोथ उत्पन्न होता एवं तोद, दाह तथा पाकयुक्त होता है। इसको **तुण्डिकेरी** कहते हैं। **शतघ्नी**—कण्ठ में मार्गनिरोधकारी अनेक मांसांकुर से युक्त घन वर्त्ति उत्पन्न होती है तथा अनेक तरह की वेदना से युक्त होती है। यह त्रिदोष से उत्पन्न होती है एवं असाध्य है। इसे **शतघ्नी** कहते हैं। **शालूक**—कण्ठ के अंदर बेरकी **गुठली** सी क्षुद्र कण्टक युक्त स्थिर एवं खर गांठ सी हो जाती है, जो शस्त्रसाध्य होती है। इसे **शालूक (कण्ठशालूक)** कहते हैं। **अर्बुद**—गले के अन्दर अर्बुद तुल्य पिडका होती है जो धीरे धीरे बढ़ कर गले-मार्ग का रोध कर देती है। यह सर्वज है। **गलायु**—गले के अन्दर आमले की गुठली जितनी बड़ी गांठ अचल एवं अल्प वेदनायुक्त होती है। मुख खोल कर देखने से अटका हुआ अन्न का कौर सी दीखती है। इसे **गलायु** या **गिलायु** कहते हैं। यह कफरक्तज है तथा शस्त्र-प्रयोग से ही साध्य है। **वलय**—गले में कफ कुपित होकर अन्नमार्ग में गोल वलय तुल्य शोथ उत्पन्न करता है, जो चारों ओर से बढ़कर अन्नमार्ग को बन्द कर देता है। इसको रोकना मुश्किल है। यह त्याज्य है। इसको वलयाकार में होने के कारण 'वलय' कहते हैं।

वातिक गलगण्ड—गले में श्याम या अरुणवर्ण का मुष्कवत् शोथ होता है, जो काली शिराओं से घिरा हुआ, तोदयुक्त तथा कर्कश होता है एवं बहुत धीरे धीरे बढ़ता रहता है। यह नहीं पकता या कभी पक भी जाता है। रोगी के मुख में विरसता होती है तथा तालु और गला सूखते रहते हैं। यह **गलगण्ड** वातिक होता है।

श्लैष्मिक गलगण्ड—यह स्थिर, शरीर के ही वर्ण से युक्त, अधिक खुजली वाला, आकार में बड़ा तथा शीतल होता है। यह भी धीरे २ बढ़ता है तथा चिरकाल में कभी पक जाता है। रोगी का मुख मीठा सा होता है तथा तालु और गला कफ से लिपे हुए मालूम होते हैं।

मेदोज गलगण्ड—यह स्निग्ध, भारी, कण्डूयुक्त, पाण्डुर तथा दुर्गन्धयुक्त होता है गले में लौकी सा लटक जाता है तथा देहानुसार क्षय-वृद्धि को प्राप्त होता है। रोगी का मुख चिकनाई से लिप्त मालूम होता है तथा गले में हमेशा वायु गुरगुराते रहता है ॥ १३६-१३९ ॥

मुखान्तर्गतरोगभेदाः—**मुखान्तःसंभवा रोगा अष्टौ ख्याता महर्षिभिः।**
मुखपाको भवेद्वातात्पित्तात्तद्वत्कफादपि ॥ १४० ॥
रक्ताच्च सन्निपाताच्च पूत्यास्योर्ध्वगुदावपि। अर्बुदं चेति मुखजाश्चतुःसप्ततिरामयाः।

मुख के समग्र (१)अन्तः प्रदेश को व्याप कर होने वाले रोग महर्षियों ने ८ प्रकार के कहा है १-वातिक मुखपाक, २-पैत्तिक मुखपाक, ३-श्लैष्मिक मुखपाक, ४-रक्तज मुखपाक ५-सान्निपातिक मुखपाक, ६-पूत्यास्य, ७-ऊद्ध्र्वगुद, और ८-अर्बुद। इस भांति से मुख के रोग ७४ कहे हुये हैं।

विमर्श—वातिक मुखपाक—समस्त मुख में पिडकाएँ होकर सूई टोंचने की सी पीड़ा होती है तथा मुख पक जाता है। यह **वातिक मुखपाक** है। **पैत्तिक मुखपाक**—समग्र मुख में छोटी छोटी लाल पीली फुंसियां होकर दाहयुक्त होकर मुख पक जाता है। यह पैत्तिक **मुखपाक** है। **श्लैष्मिक मुखपाक**—प्रायः वेदनारहित और कण्डूयुक्त सवर्ण पिडकाओं से व्याप्त होकर मुख पकने से उसको **श्लैष्मिक मुखपाक** कहते हैं। **रक्तज मुखपाक**—रक्तवर्ण पिडकाओं से मुख व्याप्त होकर पित्तज पाक के लक्षण से युक्त होकर पकता है। उसको **रक्तज मुखपाक** कहते हैं। **सान्निपातिक मुखपाक**—इसमें उपर्युक्त सब दोषों के लक्षण होते हैं। **पूत्यास्य**—सर्वदा मुख से दुर्गन्ध आने को **पूत्यास्य** कहते हैं।

ऊद्ध्र्वगुद—मुख-गह्वर में मांसबाहुल्य होने से मुख का आकार गुद तुल्य दीखता है अतः इसको उद्ध्र्वगुद कहते। **अर्बुद**—यह रोग अर्बुद ही है जो सर्वमुखगह्वरव्यापी होता है।

---

(१) मुखरोगाः (सर्वगताः) ८

१-वातजमाह—**स्फोटैः सतोदैर्वदनं समन्ताद्यस्याचितं सर्वसरः स वातात्॥**

२-पित्तजमाह—**रक्तैः सदाहैः पिडकैः सपीतैर्यस्याचितं स्यात्स तु पित्तकोपात्॥**

३-कफजमाह—**अवेदनैः कण्डुयुतैः सवर्णैर्यस्याचितं चापि स वै कफेन॥**

४-रक्तजमाह—**रक्तेन पित्तोदित एक एव कैश्चित् प्रदिष्टो मुखपाकसंज्ञः॥**

५-सन्निपातजमाह—**मिलितदोषत्रयेण पञ्चमो मुखपाकभेदः। यथा-**
वातादृते नास्ति रुजा न पाकः पित्तादृते नास्ति कफाच्च पूयः।
तस्माद्धि सर्वं परिपाककाले पचन्ति शोफांस्त्रिभिरेव दोषैः॥

६-पूत्यास्यमाह—**दुर्गन्धास्यः प्रसिद्धः।**

७-ऊर्ध्वगुदमाह—**सर्वत्राशीर्णमांसत्वेनाभ्यन्तरगुदाकारवत्।**
अन्यत्र पित्तजान्तर्गत एव।

८-अर्बुदमाह—**अर्बुदवन्मुखरोगः। तन्त्रान्तरे कफजान्तर्गतो दर्शितः।**
इति मुखजा रोगाश्चतुःसप्ततिः।

इस तरह से **मुखके रोग**–ओष्ठ रोग ११ + दन्तरोग १० + दन्तमूलगत रोग १३ + जिह्वा रोग ६ + तालुरोग ८ + गलरोग १८ + एवं सर्वगत रोग ८=कुल ७४ रोग कहे गये॥१४०-१४१॥

कर्णरोगभेदाः–**कर्णरोगाः समाख्याता अष्टादशमिता बुधैः ।**
वातात्पित्तात्कफाद्रक्तात्सन्निपाताच्च विद्रधिः ॥ १४२ ॥
शोथोऽर्बुदं पूतिकर्णः कर्णार्शः कर्णहल्लिका ।
बाधिर्यं तन्त्रिका कण्डूः शष्कुली क्रमिकर्णकः ॥
कर्णनादः प्रतीनाह इत्यष्टादश कर्णजाः ॥ १४३ ॥

कान के अन्दर (१)होने वाले रोग विद्वानों ने १८ प्रकार का कहा है । १–वातज कर्णरोग, २–पित्तज कर्णरोग, ३–श्लेष्मज कर्णरोग, ४–रक्तज कर्णरोग, ५–सन्निपातज कर्णरोग,

---

(१) कर्णरोगविवरणम्—

१–वातिकमाह—**नादोऽतिरुक् कर्णमलस्य शोथः स्रावस्तनुश्चास्रवणं च वातात् ।**

२–पैत्तिकमाह—**शोथः सरागो दरणं विदाहः सपीतपूतिस्रवणं च पित्तात् ।**

३–कफजमाह—**वंश्रुत्यकण्डूस्थिरशोथशुक्लस्निग्धस्रुतिः श्लेष्मभवोऽतिरुक् च ।**

४–रक्तजमाह—**रक्तस्य पित्तजेऽन्तर्भावः ।**

५–सन्निपातजमाह—**सर्वाणि रूपाणि च सन्निपातात् स्रावश्च तत्राधिकदोषवर्णः ।**

६–कर्णविद्रधिमाह—**क्षताभिघातप्रभवस्तु विद्रधिर्भवेत्तथा दोषकृतोऽपरः पुनः ।**
सरक्तपीतारुणमस्रमास्रवेत् प्रतोदधूमायनदाहचोषवान् ॥

७–९—कर्णशोथार्बुदार्शांस्याह—**कर्णशोथार्बुदार्शांसि जानीयादुक्तलक्षणैः ।**

१०–पूतिकर्णमाह—**पूयं स्रवति वा पूति स ज्ञेयः पूतिकर्णकः ।**

११–कर्णहल्लिकामाह—**(पतङ्गादिप्रविष्टेषु)**
पतङ्गाः शतपद्यश्च कर्णस्रोतः प्रविश्य हि । अरतिं व्याकुलत्वं च भृशं कुर्वन्ति वेदनाम्॥
कर्णो निस्तुद्यते तस्य तथा फरफरायते । कीटे चरति रुक् तीव्रा निष्पन्दे मन्दवेदना ॥

१२–बाधिर्यलक्षणम्—**यदा शब्दवहं स्रोतो वायुरावृत्य तिष्ठति ।**
शुद्धः श्लेष्मान्वितो वाऽपि बाधिर्यं तेन जायते ॥

१३–तन्त्रिका (कर्णक्ष्वेड) लक्षणम्—
वायुः पित्तादिभिर्युक्तो वेणुघोषसमं स्वनम् । करोति कर्णयोः क्ष्वेडं कर्णक्ष्वेडः स उच्यते ॥

१४–कर्णकण्डूलक्षणम्—**मारुतः कफसंयुक्तः कर्णे कण्डूं करोति च ॥**

१५–कर्णशष्कुली (कर्णसंस्राव) लक्षणम्— **शिरोऽभिघातादथवा निमज्जतो जले प्रपाकादथवाऽपि विद्रधेः ।**
स्रवेद्धि पूयं श्रवणोऽनिलार्दितः स कर्णसंस्राव इति प्रकीर्त्तितः ॥

१६–क्रमिकर्णलक्षणम्—
यदा तु मूर्च्छन्त्यथवाऽपि जन्तवः सृजन्त्यपत्यान्यथवाऽपि मक्षिकाः ।
तद्व्यञ्जनत्वात् स्रवणो निरुच्यते भिषग्भिराद्यः क्रिमिकर्णको गदः ॥

६-कर्णविद्रधि, ७-कर्णशोथ, ८-कर्णार्बुद, ९-पूतिकर्ण, १०-कर्णार्शः, ११-कर्णहल्लि १२-बाधिर्य, १३-तन्त्रिका, १४-कर्णकण्डू, १५-कर्णशष्कुली, १६-कृमिकर्ण, १७-कर्ण और १८-कर्णप्रतीनाह ।

विमर्श—वातज कर्णरोग—इसमें कान के अन्दर बहुत दर्द होता है, कान में अ प्रकार के आवाज होते हैं, कान का मैल सूख जाता है तथा कान से लाल काला सा पानी सा स्राव होता है। **पित्तज कर्णरोग**—कान के अन्दर शोथ, लाल वर्ण का होना, शोथ पकना तथा फूटना और उसमें से पूतिगन्ध युक्त पीले स्राव का होना होता है। **श्लेष्म कर्णरोग**—इसमें कान के अन्दर खुजली चलती है, कठिन शोथ हो जाता है, सुनाई न पड़ता, बहुत दर्द होता है एवं कान से स्निग्ध और सफेद रङ्ग का स्राव होता है। **रक्त कर्णरोग**—इसके लक्षण प्रायः **पित्तज कर्णरोग** के तुल्य होते हैं। स्राव अधिक लाल रक्तमिश्रित होता है। **सन्निपातज कर्णरोग**—इसमें ऊपर कहे तीनों प्रकार के कर्णरोगों लक्षण मिलते हैं तथा स्राव भी अधिक दोष और वर्णयुक्त होता है। **कर्णविद्रधि**—यह तरह का होता है, **क्षत** या **अभिघात** से उत्पन्न और **दोषजनित** कान से रक्तमिश्रि पीत, अरुण रक्तस्राव होता है तथा टोंचने की सी पीड़ा, कान से धूआँ निकलता सा मा होना, जलन और चोष आदि पीड़ा होती है।

कर्णशोथ—कान के अन्दर शोथ होता है जो बाह्य शोथ के लक्षण से जाना जाता है।

कर्णार्बुद—यह भी अर्बुद के ही लक्षणयुक्त होता है पर कान के अन्दर होता है।

पूतिकर्ण—इसमें कर्णस्थित श्लेष्मा पित्त के संसर्ग से विलीन होकर कान से वेदना हित या वेदनारहित पूतिगन्ध युक्त होकर बहता है।

भोजोक्तक्रिमिकर्ण-**कृमिः पित्तजलोन्मिश्रे (१)कोथे शोणितमांसजे ।**
लक्षणम्— **जायन्ते जन्तवस्तत्र कृष्णास्ताम्राः सितारुणाः ॥**
भक्षयन्तीव ते कर्णं कुर्वन्ति विविधा रुजाः ।
क्रिमिकर्णं विजानीयात् सन्निपातप्रकोपजम् ॥

१७—कर्णनादलक्षणम्-**कर्णस्रोतः स्थिते वाते शृणोति विविधान् स्वरान् ।**
भेरीमृदङ्गशङ्खानां कर्णनादः स उच्यते ॥

१८—कर्णप्रतिनाहमाह-**स कर्णगूथो द्रवतां यदा गतो विलापितो घ्राणमुखं प्रपद्यते ।**
तदा स कर्णप्रतिनाहसंज्ञको भवेद्विकारः शिरसोऽर्द्धभेदकृत् ।

कर्णगूथलक्षणम्—**पित्तोष्मशोषितः श्लेष्मा कुरुते कर्णगूथकम् ।**

कर्णशूलपूतिकर्णयो-**समीरणः श्रोत्रगतोऽन्यथा चरन् समन्ततः शूलमतीव कर्णयोः ।**
र्लक्षणे- **करोति दोषैश्च यथास्वमावृतः स कर्णशूलः कथितो दुराचरः ॥**

कर्णविद्रधिपाकाद् वा कर्णे वा वारिपूरणात् । पूयं स्रवति यः पूति स ज्ञेयः पूतिकर्णकः ।

---

(१) पूतिभावे ।

कर्णार्शः—कान के अन्दर का अर्श। इसके लक्षण अर्शतुल्य जाने। **कर्णहल्लिका**—कान के अन्दर मक्खी आदि तथा कनखजूरे प्रवेश करने से अरति और व्याकुलता होती है तथा कानमें दर्द होता है। कान में चुभने की सी पीडा होती है तथा फरफराहट होती है। कीड़े के चलायमान होने से ये पीड़ाएँ अधिक होती हैं तथा निश्चल रहने से कम होती हैं। इसी को **क्रिमिकर्णक** या **कर्णहल्लिका** कहते हैं। **बाधिर्य**-शब्दवह स्रोत को वायु आवृत कर देने से अथवा सिर्फ श्लेष्मा ही मार्ग का अवरोध करने से कान से कुछ सुनाई नहीं पड़ता। इसे ही **बाधिर्य** या **बहिरापन** कहते हैं। **तन्त्रिका**—वायु अन्य दोषों से युक्त होकर कर्णस्रोत में रहने से तन्त्री या वीणा के तुल्य शब्द सुनाई पड़ते हैं। उसे **तन्त्रिका** कहते हैं। **कण्डू**—कान के अन्दर वायु कफ से युक्त होने से खुजली चलती है। **कर्णशष्कुली**—सिर में चोट लगने से, कान के अन्दर जल प्रवेश करने से, कान के पकने से या विद्रधि आदि कारणों से कान के अन्दर से वेदनासहित पूय का स्राव होता है। इसे **कर्णस्राव** या शष्कुली के अन्दर होने से **कर्णशष्कुली** भी कहते हैं। **क्रिमिकर्ण**—कान में घाव आदि होने से यदि उसमें कीड़े पड़ जायँ तो उसे **कृमिकर्णक** कहते हैं इसमें कान में काटने की सी पीड़ा होती है तथा रक्त का भी स्राव होता है, क्योंकि कीड़े कान को चरते रहते हैं। **कर्णनाद**—कर्णस्रोत में वायु के रुद्ध हो जाने से कान में अनेक प्रकार के शब्द मृदङ्ग, भेरी, शंख, वीणा, सीटी, बांसुरी आदि के शब्द, नाना पशु पक्षी के शब्द, घरघराहट, झरझराहट, साँय साँय आदि अनेक प्रकार के शब्द सुनाई पड़ते हैं। इसे **कर्णनाद** कहते हैं। **कर्णप्रतीनाह**—कर्णगूथक जब स्विन्न होकर द्रव रूप को प्राप्त होता है एवं अन्दर की ओर मुख करके मुख या नाक के रास्ते से निकलता है, तो उसे **कर्णप्रतीनाह** कहते हैं। इसमें **आधासीसी** का रोग हो जाता है। इस तरह कान के १८ प्रकार के रोगों का लक्षण कहा गया॥ १४२-१४३॥

कर्णपालीरोगभेदाः—**कर्णपालीसमुद्भूता रोगाः सप्त इहोदिताः॥ १४४॥**
उत्पातः पालिशोषश्च विदारी दुःखवर्द्धनः।
परिपोटश्च लेही च पिप्पली चेति संस्मृताः॥ १४५॥

कर्णपाली(१) पर होने वाले रोग सात प्रकार के होते हैं। १-उत्पात, २-पालीशोष, ३-विदारी, ४-दुःखवर्द्धन, ५-परिपोट, ६-परिलेही और ७-पिप्पली।

---

(१) **कर्णपाल्याः ७ रोगाः।**
१-उत्पातस्य लक्षणम्-**गुर्वाभरणसंयोगात् ताडनाद् घर्षणादपि।**
शोथः पाल्यां भवेच्छ्यावो दाहपाकरुजाऽन्वितः।
रक्तो वा रक्तपित्ताभ्यामुत्पातः स गदः स्मृतः॥
२-पालिशोष(उन्मथक)-**कर्णं बलाद् बर्धयतः पाल्यां वायुः प्रकुप्यति।**
माह— **कफं संगृह्य कुरुते शोथं स्तब्धमवेदनम्॥**

विमर्श—उत्पात—कान में बहुत भारी कुण्डल आदि धारण करने से, घर्षण से चोट लगने से कर्णपाली में शोथ होकर दाह पाक तथा वेदना का प्रादुर्भाव होता है। इसे **उत्पात** कहते हैं। इसमें रक्त या रक्तपित्त का कोप रहता है। **पालीशोष**—पाली को बलपूर्वक बढ़ाने की कोशिश करने से पाली में वात-कफ कुपित होकर वेदनारहित, स्तब्ध तथा कण्डू युक्त शोथ उत्पन्न करते हैं। उसको **उन्मन्थक** या पाली के शुष्क होने से **पालीशोष** कहते हैं। **विदारी**-इसमें कर्णपाली विदारीकन्दवत् गोल और कर्कश शोथ युक्त हो जाती है। **दुःखबर्धन**—कान के ठीक जगह पर न बींधने से तथा छिद्रको बड़ा करने की कोशिश करने से दर्द, खुजली तथा पाक होता है। इसे **दुःखबर्द्धन** कहते हैं। **परिपोट**-सुकुमारता के कारण चिरकाल तक छोड़े हुए छिद्रों को शीघ्र ही अधिक बड़ा करने से पाली में पोटलीवत् शोथ कृष्ण या अरुण वर्ण का होता है। यह वातज है। **परिलेही**—कर्णवेध तथा बर्धन ठीक से न होने से कफ, रक्त और क्रिमिजन्य यह विकार होता है। यह विसर्प सा घाव होकर पाली तथा कर्णशष्कुली को भी चाट जाता है। अतः इसको **परिलेही** कहते हैं। **पिप्पली**-कर्ण को बलपूर्वक बढ़ाने की चेष्टा करने से कुपित वायु कफ को साथ लेकर छिद्र के पास स्तब्ध, वेदनारहित तथा कण्डू युक्त शोथ करता है। यह शोथ गोल एवं मध्य में छिद्र होने से पीपल के फल तुल्य दीखता है, अतः इसकी **पिप्पली** संज्ञा है॥ १४४-१४५॥

कर्णमूलरोगभेदाः—**कर्णमूलामयाः पञ्च वातात्पित्तात्कफादपि।**
सन्निपाताच्च रक्ताच्च······॥ १४६ ॥

कर्णमूल(१) में होने वाले रोग ५-प्रकार के होते हैं। १-वातज कर्णमूल, २-पित्तज कर्णमूल, ३-कफज कर्णमूल, ४-सन्निपातज कर्णमूल तथा ५-रक्तज कर्णमूल।

उन्मन्थकः सकण्डूको विकारः कफवातजः॥

३-विदारीमाह—**कर्णपाल्यां विदारीकन्द इव भवति सा विदारी।**
संबर्ध्यमाने दुर्विद्धे कण्डूदाहरुजाऽन्वितः॥
शोथो भवति पाकश्च त्रिदोषो दुःखबर्द्धनः॥

५—परिपोटकमाह—**सौकुमार्याच्चिरोत्सृष्टे साहसातिप्रबर्धिते।**
कर्णे शोथो भवेत्पाल्यां सरुजः परिपोटवान्॥
कृष्णारुणनिभः स्तब्धः स वातात् परिपोटकः॥

६-लेही (परिलेही) माह—- **कफासृक्क्रिमयः क्रुद्धाः सर्षपाभा विसर्पिणः।**
कुर्वन्ति पाल्यां पिडकाः कण्डूदाहरुजाऽन्विताः॥
कफासृक्क्रिमिसम्भूतः स विसर्पन्नितस्ततः।
लिहेत् स शष्कुलीं पालीं परिलेहीति सा स्मृता॥

७-पिप्पलीमाह—**कर्णपाल्यां कफवातप्रकोपात् शोथो भवति स पिप्पलीशब्दवाच्यः**

(१) कर्णमूलरोगाः—**सन्निपातज्वरे उपद्रवरूपत्वेन वातज-पित्तज-कफज-सन्निपातज-**

विमर्श—ये कर्णमूल रोग कान की जड़ पर होते हैं तथा प्रायः शोथ या पिडका के रूप में होते हैं। सन्निपात ज्वर होने के पूर्व, मध्य में या उसके अन्त में ये उपद्रव रूप में होते हैं। ज्वर के पूर्व होने से ये **साध्य,** मध्य में **कष्टसाध्य** तथा अन्त में होने से **असाध्य** होते हैं। सन्निपात ज्वर के अन्त में यदि ये कर्णमूल रोग हो जायं तो कोई बिरला भाग्यवान ही छुटकारा पा जावे, अन्यथा इन्हें मृत्यु की अग्रदूत ही समझना चाहिये ॥१४६॥

नासारोगभेदाः-···**तथा नासाभवा गदाः । अष्टादशैव संख्याताः प्रतिश्यायास्तु तेष्वपि ।**
वातात्पित्तात्कफाद्रक्तात्सन्निपातेन पञ्चमः ॥१४७॥
अपीनसः पूतिनासो नासाऽर्शो भ्रंशथुः क्षवः ।
नासाऽऽनाहः **पूतिरक्तमर्बुदं दुष्टपीनसम् । नासाशोषो घ्राणपाकः पूयस्रावश्च दीप्तकः १४८**

(१)**नाक** में होने वाले रोग १८–प्रकार के होते हैं। १–वातिक प्रतिश्याय, २–पैत्तिक

रक्तजाः-**पिडकाकृतयः कर्णमूले ग्रन्थिशोथा भवन्ति ते कर्णमूलामयाः ।**
यथा—**सन्निपातज्वरस्यान्ते कर्णमूले सुदारुणः ।**
शोथः सञ्जायते तेन कश्चिदेव प्रमुच्यते ॥

(१) **नासारोगाः ।**

तत्र प्रथमं प्रतिश्यायनिदानम्—

सन्धारणाजीर्णरजोऽतिभाष्यक्रोधर्त्तुवैषम्यशिरोऽभितापैः ।
सञ्जागरातिस्वपनाम्बुशीतावश्यायकैर्मैथुनवाष्पसेकैः ॥
संस्त्यानदोषे शिरसि प्रवृद्धो वायुः प्रतिश्यायमुदीरयेत्तु ॥

१–वातिकप्रतिश्यायमाह–**आनद्धा पिहिता नासा तनुस्रावप्रसेकिनी ।**
गलताल्वोष्ठशोषश्च निस्तोदः शङ्खयोस्तथा ॥
क्षवप्रवृत्तिरत्यर्थं वक्त्रवैरस्यमेव च । भवेत् स्वरोपघातश्च प्रतिश्यायेऽनिलात्मके ॥

२–पैत्तिकमाह—**उष्णः स पीतकः स्रावो घ्राणात् स्रवति पैत्तिके ।**
कृशोऽतिपाण्डुः सन्तप्तो भवेत्तृष्णाऽभिपीडितः ।
नासया तु सधूमाग्निं वमतीव स मानवः ॥

३–कफजमाह—**घ्राणात् कफकृते श्वेतः कफः शीतः स्रवेद् बहुः ।**
शुक्लावभासः शूनाक्षो भवेद् गुरुशिरा नरः ॥
कण्ठताल्वोष्ठशिरसां कण्डूभिरभिपीडितः ॥

४–रक्तजमाह—**रक्तजे तु प्रतिश्याये रक्तस्रावः प्रवर्त्तते ।**
पित्तप्रतिश्यायकृतैर्लिङ्गैश्चापि समन्वितः ॥
ताम्राक्षश्च भवेज्जन्तुरुरोघातप्रपीडितः । दुर्गन्धोच्छ्वासवदनो गन्धानपि न वेत्ति सः ॥

५–सन्निपातजमाह—**भूत्वा भूत्वा प्रतिश्यायो यस्याकस्मान्निवर्त्तते ।**
सम्पक्वो वाऽप्यपक्वो वा स सर्वप्रभवः स्मृतः ॥

प्रतिश्याय, ३-श्लैष्मिक प्रतिश्याय, ४-रक्तज प्रतिश्याय, ५-सन्निपातज प्रतिश्याय, ६-

६-पीनसमाह—आनह्यते शुष्यति यस्य नासा प्रक्लेदमायाति च धूप्यते च।
न वेत्ति यो गन्धरसांश्च जन्तुर्जुष्टं व्यवस्येत् स तु पीनसेन॥
तं चानिलश्लेष्मभवं विकारं ब्रूयात् प्रतिश्यायसमानलिङ्गम्॥

७-पूतिनस्यलक्षणम्—दोषैर्विदग्धैर्गलतालुमूलात् सन्दूषितो यस्य समीरणस्तु।
निरेति पूतिर्मुखनासिकाभ्यां तं पूतिनस्यं प्रवदन्ति रोगम्॥

८-नासाऽर्श आह—अर्बुदमपि—

नासिकाऽऽदिजातानामर्शसां चाधिमांसत्वं तेन मांसाङ्कुरत्वसाधर्म्यादर्शःप्रयोगः कृतः। यदुक्तम्—

मांसाङ्कुरानपानादौ कुर्वन्त्यर्शांसि ताञ् जगुः।

इत्यत्रादिशब्देन नासिका--श्रवणचक्षुर्मेढ्रनाभिप्रभृतयो गृह्यन्ते यथा—
अर्बुदं सप्तधा शोथाश्चत्वारोऽर्शश्चतुर्विधम्। चतुर्विधं रक्तपित्तमुक्तं घ्राणेऽपि तद्विदुः॥

९-भ्रंशथोर्लक्षणम्—प्रभ्रंशते नासिकया तु यस्य सान्द्रो विदग्धो लवणः कफस्तु।
प्राक्सञ्चितो मूर्धनि सूर्यतप्तस्तं भ्रंशथुं रोगमुदाहरन्ति॥

१०-क्षवथोर्लक्षणम्—घ्राणाश्रिते मर्मणि सम्प्रदुष्टो यस्यानिलो नासिकया निरेति।
कफानुयातो बहुशः सशब्दस्तं रोगमाहुः क्षवथुं गदज्ञाः॥

११-नासाऽऽनाह (प्रतीनाह) माह--
उच्छ्वासमागन्तु कफः सवातो रुन्ध्यात् प्रतीनाहमुदाहरेत्तम्॥

१२-पूतिरक्त (पूयरक्त)दोषैर्विदग्धैरथवाऽपि जन्तोर्ललाटदेशेऽभिहतस्य तैस्तैः।
माह-- नासा स्रवेत् पूयमसृग्विमिश्रं तं पूयरक्तं प्रवदन्ति रोगम्॥

१३-नासाऽर्बुदमाह--नासाऽऽभ्यन्तरेऽर्बुदलक्षणयुक्तो व्याधिः।

१४-दुष्टपीनस (दुष्टप्रतिश्याय) माह—प्रक्लिद्यते मुहुर्नासा मुहुश्च परिशुष्यति।
पुनरानह्यते चापि पुनर्विव्रियते तथा॥
निःश्वासश्चातिदुर्गन्धो नरो गन्धान्न वेत्ति च।
एवं दुष्टप्रतिश्यायं जानीयात् कृच्छ्रसाधनम्॥

१५-नासाशोषमाह--घ्राणाश्रिते श्लेष्मणि मारुतेन पित्तेन गाढं परिशोषिते च।
कृच्छ्रं श्वसित्यूर्ध्वमधश्च जन्तुर्यस्मिन् स नासापरिशोष उक्तः॥

१६-नासापाकमाह--घ्राणाश्रिते पित्तमरूंषि कुर्याद् यस्मिन् विकारे बलवांश्च पाकः।
तं नासिकापाक इति व्यवस्येद् विक्लेदकोथावथवाऽपि यत्र॥

१७-नासास्रावमाह--घ्राणाद् घनः पीतसितस्तनुर्वा दोषः स्रवेत् स्रावमुदाहरेत्तम्॥
दोषोऽत्र कफः।

१८-दीप्तमाह--घ्राणे भृशं दाहसमन्विते तु विनिःसरेद् धूम इवेह वायुः।
नासाप्रदीप्तेव च यस्य जन्तोर्व्याधिं तु तं दीप्तमुदाहरन्ति॥

नस, ७–पूतिनस्य, ८–नासार्श, ९–भ्रंशथु, १०–क्षव, ११–नासाऽऽनाह, १२–पूतिरक्त, १३–नासाऽर्बुद, १४–दुष्टपीनस, १५–नासाशोष, १६–घ्राणपाक, १७–पूयस्राव और १८–दीप्तक।

विमर्श—१–वातिक प्रतिश्याय—इसमें नाक बन्द हो जाता है और अन्दर से आनद्ध रहता है। नाक से पतला स्राव होता है। गला, तालु और ओष्ठ सूखते हैं तथा शङ्ख देश में तोद होता है। मुख में विरसता होती है एवं बहुत छींकें आती हैं तथा स्वर बिगड़ जाता है। **२–पित्तज प्रतिश्याय—**इसमें नाक से पीला सा उष्ण स्राव होता है। रोगी कृश, पाण्डु और संतप्त रहता है तथा तृष्णा से पीडित रहता है। सहसा नाक से सधूम अग्नि निकलता सा मालूम होता है। **३–श्लेष्मज प्रतिश्याय—**इसमें नाक से अधिक परिमाण में शीत और पाण्डुर वर्ण कफ का स्राव होता है। रोगी का शरीर सफेद सा दीखता है, आँखें कुछ सूजन सहित तथा सिर भारी रहता है। कण्ठ, तालु, ओष्ठ और सिर में खुजली होती है। **४–रक्तज प्रतिश्याय—**इसमें नाक से रक्तस्राव होता है, आंखें ताम्रवर्ण हो जाती हैं, छाती में आघात सी पीडा होती है, मुख तथा नाक से दुर्गन्ध आता है तथा गन्धज्ञान नहीं होता। **५–सन्निपातज प्रतिश्याय—**इसमें प्रतिश्याय बारम्बार होता रहता है तथा कभी पक कर और कभी अपक ही शान्त होता रहता है। **६–अपीनस या पीनस—**इसमें नाक के छिद्र बन्द से हो जाते हैं यानी श्वास लेने पर मालूम होता है कि छिद्र बन्द हैं, नाक कभी सूखती है तथा कभी फिर क्लिन्न हो जाती है, नाक से गरम धूएं सा निकलता है तथा गन्ध और रसों का ज्ञान नहीं होता। इसके अन्यान्य सब लक्षण प्रतिश्याय जैसे होते हैं। यह **वातश्लेष्मज** है। **७–पूतिनस्य—**गले में तथा तालुमूल में दोषों के विदग्ध होने से नाक से तथा मुख से उच्छ्वास अति दुर्गन्ध निकलता है। इसे **पूतिनस्य** कहते हैं। **८–नासार्श—**इसमें नासारन्ध्र में अर्श के ही तुल्य मांसांकुर उत्पन्न होते हैं। **९–भ्रंशथु—**पहले से ही सिर में सञ्चित कफ सूर्य के संताप से विलीन होकर विदग्ध होते हुए लवणरस युक्त गाढ़ा गाढ़ा नाक से स्रवता है उसको **भ्रंशथु** कहते हैं। **१०–क्षव** या **छींक**–घ्राणाश्रित मर्म में से कफ से दुष्ट वायु के नाक से शब्द करते हुए तथा कफ को लेकर निकलने को **छींक** कहते हैं। कोई तेज पदार्थ को सूंघने से सूत्र आदि से नाक की तरुणास्थि का उद्घाटन करने से, घृणित पदार्थ या सूर्य की ओर देखने आदि करणों से भी दोष कुपित होकर छींक होती है। **११–नासाऽनाह—**वायु कफयुक्त होकर नाक में रहने से उच्छ्वासमार्ग का रोध कर देता है। उसे **नासानाह** या **प्रतिनाह** कहते हैं। **१२–पूयरक्त–**दोषों के विदग्ध होने से पूयमिश्रित रक्त के स्राव होने को **पूयरक्त** कहते हैं। **१३–अर्बुद–**नाक के अन्दर अर्बुदलक्षणयुक्त व्याधि को नासार्बुद कहते हैं। **१४–दुष्टपीनस–**नाक कभी क्लिन्न होता है, कभी सूख जाता है, कभी बन्द हो जाता है। तथा पुनः खुल जाता है। इस तरह बारम्बार होता रहता है। निश्वास अत्यन्त दुर्गन्ध होता है तथा गन्धज्ञान नहीं होता। इसे **दुष्ट पीनस** या **दुष्ट प्रतिश्याय** कहते हैं। **१५–नासाशोष—**वायु घ्राणमिश्रित होकर नासारन्ध्र को संतप्त करके सुखा देता है। जिससे श्वास के लेने व छोड़ने में कठिनाई होती है। इसे **नासाशोष** कहते हैं। **१६–नासापाक—**नाक

में पित्त कुपित होने से नाक के अन्दर फुन्सियाँ हो जाती हैं तथा समग्र नासानली पक जाती है। उसको **नासापाक** कहते हैं। १७-**पूयस्राव** या **नासास्राव**—शृङ्गाटक में संचित कफ स्विन्न होकर विशेषतः रात में अधिक स्रवता है। इसको **नासास्राव** कहते हैं। १८-**दीप्त**-नाक में अधिक दाह होकर गरम धूएँ की तरह सांस निकलती है तथा नाक के अन्दर आग की लौ जलती सी मालूम होती है। इस रोग को **दीप्त** कहते हैं।

इस तरह १८ प्रकार नासा रोग होते हैं ॥१४७—१४८॥

शिरोरोगभेदाः—**तथा दश शिरोरोगा वातेनार्द्धावभेदकः ।**
शिरस्तापश्च वातेन पित्तपीडा तृतीयका ॥ १४९ ॥
चतुर्थी कफजा पीडा रक्तजा सन्निपातजा ।
सूर्यावर्त्ताच्छिरःकम्पात्क्रिमिभिः शङ्खकेन च ॥ १५० ॥

(१)**शिरोरोग**—यानी सिर में होने वाले रोग १० प्रकार के होते हैं। १-वातकर्तृक

---

(१) **शिरोरोगाः**—

१-वातिकमाह—**यस्यानिमित्तं शिरसो रुजश्च भवन्ति तीव्रा निशि चातिमात्रम् ।**
बन्धोपतापैः प्रशमो भवेच्च शिरोऽभितापः स समीरणेन ॥

२-पैत्तिकमाह—**यस्योष्णमङ्गारचितं यथैव भवेच्छिरो दह्यति चाक्षिनासम् ।**
शीतेन रात्रौ च भवेत्प्रशान्तिः शिरोऽभितापः स तु पित्तकोपात् ॥

३-श्लैष्मिकमाह—**शिरो भवेद्यस्य कफोपदिग्धं गुरु प्रतिष्टब्धमतो हिमं च ।**
शूनाक्षिनासावदनं च यस्य शिरोऽभितापः स कफप्रकोपात् ॥

४-रक्तजमाह—**रक्तात्मकः पित्तसमानलिङ्गः स्पर्शासहत्वं शिरसो भवेच्च ।**

५-त्रिदोषजमाह—**शिरोऽभितापे त्रितयप्रवृत्ते सर्वाणि लिङ्गानि समुद्भवन्ति ॥**

६—सूर्यावर्त्तमाह—**सूर्योदयं वा प्रति मन्दमन्दमक्षिभ्रुवं रुक् समुपैति गाढम् ॥**
विवर्द्धते चांशुमता सहैव सूर्यापवर्त्तं तमुदाहरन्ति ॥
शीतेन शान्तिं लभते कदा चिदुष्णेन जन्तुः सुखमाप्नुयाच्च ।
तं भास्करावर्त्तमुदाहरन्ति सर्वात्मकं कष्टतमं विकारम् ॥

७—क्रिमिजातजमाह—**निस्तुद्यते यस्य शिरोऽतिमात्रं सम्भक्ष्यमाणं स्फुरतीव चान्तः ।**
घ्राणाच्च गच्छेद्रुधिरं सपूयं शिरोऽभितापः कृमिभिः स घोरः ॥

८—शङ्खकमाह—**रक्तपित्तानिला दुष्टाः शङ्खदेशे विमूर्च्छिताः ।**
तीव्ररुग्दाहरागं वा शोथं कुर्वन्ति दारुणम् ॥
स शिरो विषवद् वेगी निरुद्ध्याशु गलं तथा ।
त्रिरात्राज्जीवितं हन्ति शङ्खको नाम नामतः ॥

९-अर्द्धावभेदकमाह—**रूक्षाशनाध्यशनावश्यप्राग्वातमैथुनैः ।**
वेगसन्धारणायासव्यायामैः कुपितोऽनिलः ॥

अर्द्धावभेदक, २–वातिक शिरोऽभिताप, ३–पैत्तिक शिरोऽभिताप, ४–श्लैष्मिक शिरोऽभिताप, ५–रक्तज शिरोऽभिताप, ६–सन्निपातज शिरोऽभिताप, ७–सूर्यावर्त्त, ८–शिरःकम्प, ९–क्रिमिज शिरोरोग तथा १०–शङ्खक ।

विमर्श—अर्द्धावभेदक या **आधासीसी—**केवल वायु या कफयुक्त वायु सिर के आधे–दाहिने या बायें–भाग में मज्या, भ्रू, शंख, कान, नेत्र तथा ललाट में तीव्र वेदना उत्पन्न करता है, मानो शस्त्र से काटा जाता हो या छेदा जाता हो। यह सिर के आधे ही भाग में होता है, अतः अर्धावभेदक कहते हैं। रोग बढ़ जाने पर यह पीडित भाग के नेत्र या कर्ण का नाश कर देता है। **वातिक शिरोऽभिताप—**इसमें बिना कारण सिर में तीव्र वेदना होती है तथा खासकर रात को पीड़ा अधिक होती है। सिर में कसकर पट्टा बांधने से या सेंकने से पीडा कम होती है। **पैत्तिक शिरोऽभिताप—**इसमें सिर पर अंगार रखा हुआ सा सिर गरम हो जाता है, नाक एवं आखों से धूआँ निकलता सा मालूम होता है। शीतल क्रिया से तथा रात में पीडा शान्त हो जाती है। **श्लैष्मिक शिरोऽभिताप—**इसमें सिर के सब स्रोत तथा आभ्यन्तर भाग कफ से लिहसे हुए से होते हैं, सिर भारी, भरा हुआ सा और ठण्डा होता है एवं आँख के खड्डों में तथा चेहरे पर सूजन होता है। **रक्तज शिरोऽभिताप—**इसके सब लक्षण **पित्तज शिरोऽभिताप** के जैसे होते हैं। विशेष लक्षण यह है कि सिर छूआ नहीं जाता। छूने से वेदना तीव्र हो जाती है। **सन्निपातज शिरोऽभिताप—**इसमें ऊपर कहे सब

केवलः सकफो वाऽर्धं गृहीत्वा शिरसोऽनिलः ।
मन्याभ्रूशङ्खकर्णाक्षिललाटार्धेऽतिवेदनाम् ॥
शस्त्राशनिनिभां कुर्यात् तीव्रां सोऽर्धावभेदकः ।
नयनं चाथवा श्रोत्रमतिवृद्धो विनाशयेत् ॥

१०–शिरःपाकमाह—**शिरःपाकादेवासृग्वसादीनां सङ्क्षयेण शिरसि पीडा भवतीत्य-भिप्रायः। अत एव क्षयजो विकार इति पठितः। यतः—**
असृग्वसाश्लेष्मसमीरणानां शिरोगतानामिह सङ्क्षयेण ।
क्षयः प्रवृत्तः शिरसोऽभितापः कष्टो भवेदुग्ररुजाऽतिमात्रम् ॥
संस्वेदनच्छर्दनधूमनस्यैरसृग्विमोक्षैश्च विवृद्धिमेति ।

अन्यच्च—**शून्यं भ्रमति तुद्येत शिरो विभ्रान्तनेत्रता ।**
मूर्च्छा गात्रावसादश्च शिरोरोगे क्षयात्मके ॥
माधवाचार्येण तु अनन्तवातोऽधिकः कथितः ।

अनन्तवातमाह—**दोषास्तु दुष्टास्त्रय एव मन्यां सम्पीडय घाटासु रुजां सुतीव्राम् ।**
कुर्वन्ति योऽक्षिण भ्रुवि शङ्खदेशे स्थितिं करोत्याशु विशेषतश्च ॥
गण्डस्य पार्श्वे तु करोति कम्पं हनुग्रहं लोचनजांश्च रोगान् ।
अनन्तवातं तमुदाहरन्ति दोषत्रयोत्थं शिरसो विकारम् ॥

दोषों के लक्षण होते हैं। **सूर्यावर्त्त**—इसमें सूर्योदय के साथ ही नेत्र और भ्रूदेश में दर्द शुरू हो जाता है। पहले तो मन्द होता है पर ज्यों ज्यों सूर्य चलता जाता है वेदना बढ़ती जाती हैं। दोपहर को वेदना अत्यन्त तीव्र होकर सूर्य ढलते ही वेदना भी क्रमतः कम होते होते सूर्यास्त के बाद शान्त हो जाती है। यह त्रिदोषज होता है। **क्रिमिज शिरोरोग**—यह रोग सिर के अन्दर कीड़े पड़ने से होता है। सिर के अन्दर सूई चुभाने की सी पीडा होती है (कीड़े काटते हैं और खाते हैं) सिर के अन्दर कीड़ों का स्फुरण मालूम होता है तथा नाक से पानी सा पतला खून और पूय निकलते हैं। यह **क्रिमिज शिरोरोग** है। **शिरःकम्प**—शिरोधरा में वायु अधिष्ठित हो कर सिर को अस्थिर कर देता है जिससे हमेशा सिर कम्पमान होता रहता है। (हमने एक विद्वान् वृद्ध वैद्य को इस रोग से युक्त देखा है। उन्होंने बताया था कि उन्हें यह रोग २० वर्ष से था। सिर हमेशा हिलता रहता था। अन्य कोई किस्म की पीडा नहीं थी। यह कोई १० साल की बात है)। **शंखक**—पित्त और रक्त से युक्त वायु उदीर्ण होकर शङ्खदेश में तीव्र वेदना के साथ ही रक्तवर्ण का शोथ उत्पन्न कर देता है। यह जल्दी ही फैलकर गले को रूंध देता है। ज्वर, मूर्च्छा, भ्रम तथा तृषा आदि उपसर्ग होते हैं। यह भयङ्कर तीव्र रोग रात में ही रोगी को ले बसता है। यदि चतुष्पाद सम्पूर्ण हो तो भी तीन रात बीतने पर ही जीवन की आशा रखनी चाहिये ॥ १४९-१५० ॥

कपालरोगभेदाः—**तथा कपालरोगाः स्युर्नव तेषूपशीर्षकम् ॥ १५१ ॥**
अरुंषिका विद्रधिश्च दारुणं पिटिकाऽर्बुदम् ।
इन्द्रलुप्तं च खलितं पलितं चेति ते नव ॥ १५२ ॥

कपाल रोग (१)यानी खोपडी के ऊपर होने वाले रोग ९ प्रकार के होते हैं। १-उपशीर्षक, २-अरुंषिका, ३-विद्रधि, ४-दारुण, ५-पिटिका, ६-अर्बुद, ७-इन्द्रलुप्त, ८-खलित और ९-पलित।

---

(१) कपालरोगाः ९—

१-उपशीर्षकमाह—**कपाले पवने दुष्टे गर्भस्थस्यापि जायते ।**
सवर्णो नीरुजः शोफस्तं विद्यादुपशीर्षकम् ॥

२-अरुंषिकामाह—**अरूंषि बहुवक्त्राणि बहुक्लेदीनि मूर्धनि ।**
कफाऽसृक्कृमिकोपेन नृणां विद्यादरूंषिकाम् ॥

३-विद्रधिमाह—**शिर उपरि बहिर्गतमर्माश्रितत्वाद् विद्रधिर्भवति ।**
विद्रधिवत् तस्य निदानादिकम् ॥

४-दारुणम्—**दारुणा कण्डुरा रूक्षा केशभूमिः प्रपाट्यते ।**
कफवातप्रकोपेण विद्याद्दारुणकं तु तम् ॥

५-पिडिका (इरिवेल्लि-**पिडिकामुत्तमाङ्गस्थां वृत्तामुग्ररुजाज्वराम् ॥**
का) माह— **सर्वात्मिकां सर्वलिङ्गां जानीयादिरिवेल्लिकाम् ।**

विमर्श—१-उपशीर्षक—यह गर्भ से ही होता है। सिर पर एक अन्य सिर के जैसा ही गोल शोथ होता है। इसमें कोई वेदना नहीं होती। **२-अरुंषिका**—कफ, रक्त और क्रिमि के कोप से सिर पर पास पास ही बहुत सी फुन्सियाँ होती हैं तथा उनसे अधिक क्लेद निकलता है। इसे **अरुंषिका** कहते हैं। **३-विद्रधि**—यह विद्रधि ही है जो सिर पर होता है। **४-दारुण**—यह कफ-वात से होता है तथा जहां बाल होते हैं वहीं होता है। बाल झड़ जाते हैं तथा वह स्थान रूखा, खरदरा और कण्डूयुक्त होता है। **५-पिटिका**—त्रिदोष से सिर पर तीव्र वेदना और ज्वर के साथ वृत्त शोथ होता है। इसे **इरिवेल्लिका** भी कहते हैं। **६-अर्बुद**—यह भी कथित अर्बुद रोग ही है जो खोपड़ी पर होता है। **७-इन्द्रलुप्त**—रोमकूपस्थित पित्त वात से मूर्च्छित होने पर रोम को गिरा देता है। इसके बाद वातप्रेरित कफ रोमकूपों को बन्द कर देता है। अतः फिर केश नहीं उगते। यह सिर पर कहीं भी तथा दाढ़ी मूंछ आदि रोमयुक्त स्थानों में भी हो जाता है। पाई, पैसा या रुपये के आकार के गोल गोल स्थान प्रायः रोमशून्य पाये जाते हैं। चमड़ा चिकना होता है। **८-खलित**—इसे साधारण में **चान्दा** कहते हैं। इसकी सम्प्राप्ति भी **इन्द्रलुप्त** जैसा ही है। पर यह बहुस्थानव्यापक और सिर पर ही होता है। विशेष कर सिर के ऊद्ध्र्व देश में खलतियुक्त स्थान का चमड़ा तनु और चिक्कण होता है। कोई पीडा नहीं होती। **९-पलित**-इसे बालों का पकना कहते हैं। पलित से वृद्धवयस के बालों का पकना नहीं बल्कि अकाल में बालों का पकना अभिप्रेत है। क्रोध, शोक या अधिक श्रम के कारण शरीर की गरमीं सिर पर चढ़ जाने से पित्त कुपित होकर बालों को सफेद कर देता है। इसे ही **पलित** कहते हैं। **चरक** महाराज कहते हैं कि यदि पित्त सम्पूर्ण दग्ध करे तो खलित होता है। और किञ्चित् दग्ध करने पर बाल सफेद होते हैं याने **पलित** करता है तथा और भी कम दग्ध करने से बाल हरे पीले या ताम्रवर्ण के हो जाते हैं ॥ १५१-१५२ ॥

नेत्ररोगभेदास्तत्रादौ वर्त्मरोगभेदाः—

तथा नेत्रभवाः ख्याताश्चतुर्नवतिरामयाः ।
तेषु वर्त्मगदाः प्रोक्ताश्चतुर्विंशतिसंज्ञकाः ॥ १९३ ॥

६–अर्बुदमाह—
गात्रप्रदेशे क्व चिदेव इतिनियमाच्छिर उपरि अर्बुदवदर्बुदव्रणविशेषो भवति ।
७-८-इन्द्रलुप्तमाह—**रोमकूपानुगं पित्तं वातेन सह मूर्च्छितम् ।**
खालित्यमपि—**प्रच्यावयति रोमाणि ततः श्लेष्मा सशोणितः ॥**
रुणद्धि रोमकूपांस्तु ततोऽन्येषामसम्भवः । तदिन्द्रलुप्तं खालित्यं रुह्येति च विभाव्यते ॥
९-पलितमाह—**क्रोधशोकश्रमकृतः शरीरोष्मा शिरोगतः ।**
पित्तं च केशान् पचति पलितं तेन जायते ॥
चरकीयविवरणम्—**तेजोऽनिलाद्यैः सह केशभूमिं लब्ध्वा तु कुर्यात् पलितं नरस्य ।**
किं चित्तु दग्ध्वा पलितानि कुर्याद्धरित्प्रभावं च शिरोरुहाणाम् ॥

कृच्छ्रोन्मीलः पक्ष्मपातः कफोत्क्लिष्टश्च लोहितः ।
अरुङ्निमेषः कथितो रक्तोत्क्लिष्टः कुकूणकः ॥ १९४ ॥
पक्ष्मार्शः पक्ष्मरोधश्च पित्तोत्क्लिष्टश्च पोथकी ।
क्लिष्टवर्त्मा च बहलः पक्ष्मोत्सङ्गस्तथाऽर्बुदम् ॥ १९५ ॥
कुम्भिका सिकतावर्त्म लगणोऽञ्जननामिका ।
कर्दमः श्याववर्त्मा च विसवर्त्मा तथाऽलजी ॥
उत्क्लिष्टवर्त्मेति गदाः प्रोक्ता वर्त्मसमुद्भवाः ॥ १९६ ॥

नेत्र में (१)होने वाले रोग ९४ प्रकार के होते हैं। उनमें से वर्त्म याने पलकों पर होने वाले रोग २४ हैं। १–कृच्छ्रोन्मील, २–पक्ष्मपात, ३–कफोत्क्लिष्ट वर्त्म, ४–लोहितवर्त्म, ५–...

---

(१) नेत्ररोगाः ९४ तेषु वर्त्मरोगाः–२४

तत्र १–कृच्छ्रोन्मीलन **वाताद्या वर्त्मसङ्कोचं जनयन्ति मला यदा ।**
(कुञ्चन) माह— **तदा द्रष्टुं न शक्नोति कुञ्चनं नाम तद् विदुः ॥**

२–पक्ष्मशातमाह—**वर्त्मपक्ष्माशयगतं पित्तं रोमाणि शातयेत् ।**
कण्डूं दाहं च कुरुते पक्ष्मशातं तमादिशेत् ॥

३–कफोत्क्लिष्टम् (प्रक्लि- **अरुजं बाह्यतः शूनं वर्त्म यस्य नरस्य हि ।**
न्नवर्त्म) आह— **प्रक्लिन्नवर्त्म तं विद्यात् क्लिन्नमत्यर्थमन्ततः ॥**

४–लोहितवर्त्म (शु- **दीर्घाङ्कुरः खरः स्तब्धो दारुणो ह्यन्तरोद्भवः ।**
ष्कार्श) आह— **व्याधिरेषोऽतिविख्यातः शुष्कार्शो नाम नामतः ॥**

५–अरुङ्निमेष (निमे- **निमेषिणी शिरा वायुः प्रविष्टो वर्त्मसंश्रयः ।**
ष) माह— **सञ्चालयति वर्त्मानि निमेष इति तं विदुः ॥**

६–रक्तोत्क्लिष्टम् (रक्तार्श) **वर्त्मस्थो यो विवर्द्धेत लोहितो मृदुरङ्कुरः ।**
आह— **तद्रक्तजं शोणितार्शश्छिन्नं भिन्नं विवर्द्धते ॥**

७–कुकूणकमाह—**कुकूणकः क्षीरदोषाच्छिशूनामक्षिवर्त्मनि ।**
जायते तेन तन्नेत्रं कण्डुरं च स्रवेन्मुहुः ॥
शिशुः कुर्याल्ललाटाक्षिकूटनासावघर्षणम् । शक्तो नार्कप्रभां द्रष्टुं न वर्त्मोन्मीलने क्षमः

८–पक्ष्मार्श आह—**एर्वारुबीजप्रतिमाः पिडिकाः मन्दवेदनाः ।**
श्लक्ष्णाः खराश्च वर्त्मस्थास्तदर्शोवर्त्म कीर्त्यते ॥

९–पक्ष्मरोध (वर्त्मब- **कण्डूमताऽल्पतोदेन वर्त्मशोथेन मानवः ।**
न्ध) माह— **न स सञ्छादयेदक्षि भवेद् बन्धः स वर्त्मनि ॥**

१०–पित्तोत्क्लिष्ट (पक्ष्म- **प्रचलितानि वातेन पक्ष्माण्यक्षि विशन्ति हि ।**
कोप) माह— **घृष्यन्त्यक्षि मुहुस्तानि संरम्भं जनयन्ति च ॥**
असिते सितभागे च मूलकोषात्पतन्ति हि । पक्ष्मकोपः स विज्ञेयो व्याधिः परमदारुणः

हृ‌निमेष, ६–रक्तोत्क्लिष्ट, ७–कुकूणक, ८–पक्ष्मार्श, ९–पक्ष्मरोध, १०–पित्तोक्लिष्ट, ११–पोथकी, १२–क्लिष्टवर्त्म, १३–बहलवर्त्म, १४–पक्ष्मोत्सङ्ग १५–पक्ष्मार्बुद, १६–कुम्भिका, १७-

---

११–पोथकीमाह—स्राविण्यः कण्डुरा गुर्व्यो रक्तसर्षपसन्निभाः ।
पिडिकाश्च रुजावत्यः पोथिक्य इति ताः स्मृताः ॥

१२–क्लिष्टवर्त्म (अक्लि-मृद्वल्पवेदनं ताम्रं यद्वर्त्म सममेव च ।
न्नवर्त्म) आह— अकस्माच्च स्रवेद्रक्तं क्लिष्टवर्त्मेति तद्विदुः ॥
यस्य धौतान्यधौतानि सम्बद्धयन्ते पुनः पुनः ।
वर्त्मान्यपरिपक्वानि विद्यादक्लिन्नवर्त्म तत् ॥

१३–बहलवर्त्माह— वर्त्मोपचीयते यस्य पिडिकाभिः समन्ततः ।
सवर्णाभिः स्थिराभिश्च विद्याद्बहलवर्त्म तत् ॥

१४–पक्ष्मोत्सङ्गमाह—अभ्यन्तरमुखी ताम्रा बाह्यतो वर्त्मसंश्रया ।
सोत्सङ्गोत्सङ्गपिडिका सर्वजा स्थूलकण्डुरा ॥

१५–पक्ष्मार्बुदमाह—वर्त्मान्तरस्थं विषमं ग्रन्थिभूतमवेदनम् ।
आचक्षतेऽर्बुदमिति सरक्तमविलम्बितम् ॥

१६–कुम्भिकामाह—वर्त्मान्ते पिडिका ध्माता भिद्यन्ते च स्रवन्ति च ।
कुम्भिकाबीजसदृशाः कुम्भीकाः सन्निपातजाः ॥

१७–सिकतावर्त्म (वर्त्म-पिडिकाभिः सुसूक्ष्माभिर्घनाभिरभिसंवृता ।
शर्कराम्) आह— पिडिका या खरा स्थूला सा ज्ञेया वर्त्मशर्करा ॥

१८–लगणमाह—अपाकी कठिनः स्थूलो ग्रन्थिर्वर्त्मभवोऽरुजः ।
सकण्डुः पिच्छिलः कोलप्रमाणो लगणः स्मृतः ॥

१९–अञ्जननामिका- दाहतोदवती ताम्रा पिडिका या तु वर्त्मजा ।
माह— मृद्वी मन्दरुजा सूक्ष्मा ज्ञेया साऽञ्जननामिका ॥

२०–कर्दममाह—क्लिष्टं पुनः पित्तयुतं शोणितं विदहेद् यदा ।
ततः क्लिन्नत्वमापन्नमुच्यते वर्त्मकर्दमः ॥

२१–श्याववर्त्माह—यद् वर्त्म बाह्यतोऽन्तश्च श्यावं शूनं सवेदनम् ।
दाहकण्डूपरिक्लेदि श्याववर्त्मेति तन्मतम् ॥

२२–विसवर्त्माह—त्रयो दोषा बहिः शोथं कुर्युश्छिद्राणि वर्त्मनोः ।
प्रस्रवन्त्यन्तरुदकं विसवद् विसवर्त्म तत् ॥

२३–अलजीमाह—वर्त्तुलाकारपिडका सूक्ष्मा ताम्रा च वर्त्मनि ।
सरुजा शोणितोत्क्लिष्टा दारुणा त्वलजी स्मृता ॥

२४–उत्क्लिष्टवर्त्म (वा–विमुक्तसन्धि निश्चेष्टं वर्त्म यस्य निमील्यते ।
तहतवर्त्म) आह—एतद्वातहतं विद्यात् सरुजं यदि वाऽरुजम् ॥

सिकतावर्त्म, १८-लगण, १९-अञ्जननामिका, २०-कर्दम, २१-श्याववर्त्म, २२-बिसवर्त्म, २३-अलजी और २४-उत्क्लिष्टवर्त्म ।

विमर्श—१-कृच्छ्रोन्मील-वातादि दोष पलकों को प्राप्त होकर उनको संकुचित कर देते हैं। जिससे पलक खोलने में कठिनाई होती है। इसे **कुञ्चन** या **कृच्छ्रोन्मील** रोग कहते हैं। २-**पक्ष्मपात** या **पक्ष्मशात**—पलकों में कुपित पित्त बरौनियों में जाकर बालों को गिरा देता है तथा खुजली और दाह उत्पन्न करता है। इसको **पक्ष्मशात** या साधारण भाषा में **पड़बाल** कहते हैं। ३-**कफोत्क्लिष्टवर्त्म**—इसमें पलकें बाहर से वेदनाहीन शोथयुक्त होती हैं एवं अन्दर से बहुत क्लेदयुक्त होती हैं। इसे **कफोत्क्लिष्ट** या **प्रक्लिन्नवर्त्म** कहते हैं। ४-**लोहितवर्त्म**—इसमें पलकों के अन्दर दीर्घ खर और स्तब्ध लाल अंकुर होते हैं। इसे **लोहितवर्त्म** या कहीं शुष्कार्श नाम से कहते हैं। ५-**अरुङ्निमेष**—इसमें वायु पलकों को उठाने और गिराने वाली शिरा को प्राप्त होकर पलकों का अधिक चालन करता है। जिससे पलकें बारम्बार उठती और गिरती रहती हैं। इसमें रुजा नहीं होती, अतः इसे **अरुङ्निमेष** कहते हैं। ६-**रक्तोत्क्लिष्ट**—इसमें वर्त्मगत रक्त के उत्क्लिष्ट होने से पलकों के भीतरी भाग में रक्तवर्ण कोमल अंकुर उत्पन्न होते हैं जो काट दिये जाने पर पुनः पुनः बढ़ते रहते हैं। इन्हें अन्यत्र **रक्तार्श** कहा है। ७-**कुकूणक**—यह रोग सिर्फ बालकों को प्रायः माता के क्षीरदोष से होता है। इसमें पलकों के अंदर खुजली होती है तथा नेत्र से बारम्बार स्राव होता रहता है। बालक हाथ से ललाट, आँखों के गढ़े तथा नाक को रगड़ा करता है और सूर्य के किरण को या तेज उजेले को देख नहीं सकता और पलकों को खोल भी नहीं सकता। ८-**पक्ष्मार्श**—इसमें पलकों के अन्दर ककड़ी के बीज जैसे चिकने और खर अङ्कुर उत्पन्न होते हैं। ९-**पक्ष्मरोध**—इसमें पलकें कण्डूयुक्त तथा कुछ तोदयुक्त होकर इतनी सूज जाती है कि पलक खोली नहीं जाती। इसे **पक्ष्मरोध** या **वर्त्मबन्ध** कहते हैं। १०-**पित्तोत्क्लिष्ट**—पलकों में पित्त के उत्क्लिष्ट होने से पलकें दाह, तोद तथा क्लेदयुक्त होकर कुछ लाल सी हो जाती हैं तथा स्पर्श करने से अधिक दाह-पीडा आदि होती है। उसे **पित्तोत्क्लिष्टवर्त्म** कहते हैं। ११-**पोथकी**-इसमें पलकों के अन्दर सरसों जितनी बड़ी श्वेत और घन पिडकाएँ होती हैं एवं उनमें स्राव, कण्डू और वेदना होते हैं। उसको **पोथकी** कहते हैं। १२-**क्लिष्टवर्त्म**—इसमें पलकें सम यानी स्वाभाविक अवस्था में रहने पर भी मृदु और अल्प वेदना युक्त ताम्रवर्ण होती हैं तथा अकस्मात् रक्तवर्ण हो जाया करती हैं। १३-**बहलवर्त्म**—इसमें पलकों के अन्दर सर्वत्र सवर्ण और स्थिर मांसवृद्धि होती है जिससे पलकें मोटी हो जाती हैं। १४-**पक्ष्मोत्सङ्ग**—इसमें पलकों के भीतरी भागमें भीतर की ओर मुखवाली ताम्रवर्ण पिडका हो जाती है। यह कण्डूयुक्त तथा इतनी बड़ी होती है कि पलकों के ऊपर भी उठी हुई स्पष्ट मालूम होती है। इसके चारो ओर तद्रूप अन्य पिडकाएं भी रहती हैं। १५-**पक्ष्मार्बुद**—इसमें पलकों के अन्दर ईषत् रक्तवर्ण वेदनाहीन गांठ उत्पन्न होती है। १६-**कुम्भिका**—पलकों के अन्त भाग में अनारदाने के जैसे आकार की रक्तवर्ण पिडकाएँ होती हैं। जो फूटी ...

सी होती हैं तथा फूट कर स्राव करती हैं । १७–**सिकतावर्त्म**—इसमें पलकों के अन्दर रेत के कण जैसी छोटी खरस्पर्श पिडकाएँ घन होकर हो जाती हैं । १८–**लगण**–पलकों में पाकहीन, कठिन कण्डूयुक्त और पिच्छिल छोटी बेर जितनी बड़ी गांठ उत्पन्न होती है। उसको 'लगण' कहते हैं। १९–**अञ्जननामिका**—इसमें पलकों के अंदर मृदु, अल्प वेदना-वाली, सूक्ष्म, दाह तथा तोदयुक्त ताम्रवर्ण की पिडका होती है। २०–**वर्त्मकर्दम**—कथित **क्लिष्टवर्त्म** में यदि पित्त उद्रिक्त होकर रक्त को विदग्ध करदे तो वर्त्म के अधिक क्लिन्न यानी कीच से युक्त होने से इसे **वर्त्मकर्दम** कहते हैं। २१–**श्याववर्त्म**—इसमें पलक भीतर-बाहर से सूजनयुक्त, श्याववर्ण, वेदनायुक्त, दाह और कण्डूयुक्त तथा क्लेद युक्त होती है। २२–**विसवर्त्म**—इसमें पलकों में शोथ उत्पन्न होता है तथा अन्दर से विस यानी कमल की डंडी के जैसे सूक्ष्म छिद्र होते हैं, जिनमें से स्राव होता रहता है। इसे **विसवर्त्म** कहते हैं। २३–**अलजी**—इसमें पलक पर कठिन ताम्रवर्ण की पिडका होती है। वेदना होती है तथा पक होने से पूय और रक्त का स्राव होता है। २४–**उत्क्लिष्टवर्त्म**—इसमें पलकें रक्त तथा त्रिदोष के उत्क्लेश से बारम्बार उत्क्लिष्ट होती हैं तथा पुनः कारण विना ही म्लानता को प्राप्त होती रहती हैं। इन्हें **उत्क्लिष्टवर्त्म** कहते हैं। इस तरह २४ प्रकार वर्त्मरोगों के लक्षण संक्षेप में कहे गये ॥ १५३–१५६ ॥

नेत्रसन्धिरोगभेदाः—**नेत्रसन्धिसमुद्भूता नव रोगाः प्रकीर्त्तिताः ।**
जलस्रावः कफस्रावो रक्तस्रावश्च पर्वणी ॥ १५७ ॥
पूयस्रावः क्रिमिग्रन्थिरुपनाहस्तथाऽलजी। पूयालस इति प्रोक्ता रोगा नयनसन्धिजाः॥१५८

नेत्र की (१)सन्धियों में होने वाले रोग ९ प्रकार के होते हैं। १–जलस्राव, २–कफस्राव,

(१) नेत्रसन्धिगतरोगाः ९

जलस्रावमाह–तत्र-**गत्वा सन्धीनश्रुमार्गेण दोषाः कुर्युः स्रावांल्लक्षणः स्वैरुपेतान् ।**
सम्प्राप्तिः—**तं हि स्रावं नेत्रनाडीमथैके तस्या लिङ्गं कीर्त्तयिष्ये चतुर्धा ॥**
१-पित्तस्रावलक्षणम्—**पीताभासं नीलमुष्णं जलाभं पित्तात्स्रावः संस्रवेत् सन्धिमध्यात्।**
२-कफस्रावमाह—**श्वेतं सान्द्रं पिच्छिलं यः स्रवेत्तु श्लेष्मस्रावोऽसौ विकारः प्रदिष्टः ।**
३-रक्तस्रावमाह—**रक्तस्रावः शोणितोत्थो विकारः कोष्णं नाल्पं संस्रवेन्नातिसान्द्रम् ।**
४-पर्वणीमाह—**ताम्रा तन्वी दाहशूलोपपन्ना ज्ञेया रक्तात् पर्वणी वृत्तशोथा ।**
५-पूयस्रावमाह—**पाकात् सन्धौ संस्रवेद् यस्तु पूयं पूयस्रावो नैकरूपः प्रदिष्टः ।**
६-क्रिमिग्रन्थिमाह—**क्रिमिग्रन्थिर्वर्त्मनः पक्ष्मणश्च कण्डूं कुर्युः क्रिमयः सन्धिजाताः ।**
नानारूपा वर्त्मशुक्लान्तसन्धौ चरन्त्यन्तर्लोचनं दूषयन्तः ॥
७-उपनाहमाह—**ग्रन्थिर्नाल्पो दृष्टिसन्धावपाकी कण्डूप्रायो नीरुजस्तूपनाहः ।**
८-अलजीमाह—
जाता सन्धौ कृष्णशुक्लेऽलजी स्यात् तस्मिन्नेषा ख्यापिता पूर्वलिङ्गैः ।
९-पूयालसमाह—**पक्वः शोथः सन्धिजातः सतोदः पूयस्रावी सोऽत्र पूयालसाख्यः ।**

३-रक्तस्राव, ४-पर्वणी, ५-पूयस्राव, ६-क्रिमिग्रन्थि, ७-उपनाह, ८-अलजी तथा ९-पूयालस

विमर्श—नेत्रमण्डल के अन्तर्गत चार सन्धियाँ होती हैं, यथा—१-पद्म और वर्त्म की सन्धि, २-वर्त्म और शुक्लमण्डल की सन्धि, ३-शुक्ल और कृष्णमण्डल की सन्धि ४-कृष्णमण्डल और दृष्टिमण्डल की सन्धि। इन्हीं सन्धियों पर होने वाले रोग ९ प्रकार के होते हैं। १-**जलस्राव**—अश्रुमार्ग में सन्धियों में जाकर दोष कनीनिका से स्राव करते हैं, कनीनसन्धि से पंक्ति से पीला सा या नीला सा जल का स्राव पित्त से होता है। उसे जलस्राव कहते हैं। २-**कफस्राव**—ऊपर कथित सम्प्राप्ति के अनुसार कफदोष से कनीनसन्धि से श्वेत, सान्द्र और पिच्छिल स्राव होता है। यह **कफस्राव** है। ३-**रक्तस्राव**—कथितानुसार रक्तदोष से कनीनसन्धि से उष्ण और ईषत् सान्द्र रक्त का प्रभूत स्राव होता है। यह रक्तस्राव है। ४-**पर्वणी**—यह कृष्ण और शुक्लमण्डल की सन्धि में रक्तदोष से ताम्रवर्ण की छोटी गाँठ सी गोल शोथ होता है तथा उसमें दाह और शूल होते हैं। यह **पर्वणी** है। ५-**पूयस्राव**—यह भी कथित स्रावों सा कनीनसन्धि के पक जाने से पूय का स्राव होता है। यह स्राव अनेक वर्णयुक्त होता है। यह त्रिदोषज है। ६-**क्रिमिग्रन्थि**—यह वर्त्म और शुक्लमण्डल की सन्धि में होता है। सन्धि में ग्रन्थि सी होती है, जिसके अन्दर नानारूप के क्रिमि रहते हैं। ये क्रिमि वर्त्म और पद्मदेश में जाकर कण्डू उत्पन्न करते हैं तथा नेत्र के भागों का भक्षण कर नेत्र को दूषित करते हैं। ७-**उपनाह**—यह दृष्टिसन्धि में होता है। यह एक बड़ी गांठ सा होता है एवं पाकहीन या ईषत् पाकयुक्त होता है। इसमें प्रायः खुजली चलती रहती है। इसे **उपनाह** कहते हैं। इसमें दर्द नहीं होता। इस तरह सन्धिगत नौ रोग कहे गये हैं॥ १५७-१५८॥

नेत्रशुक्लगतरोगभेदाः-**तथा शुक्लगता रोगा बुधैः प्रोक्तास्त्रयोदश ॥ १५९ ॥**

शिरोत्पातः शिराहर्षः शिराजालं च शुक्तिका ।
शुक्लार्म चाधिमांसार्म प्रस्तार्यर्म च पिष्टकः ॥ १६० ॥
शिराजपिटिका चैव कफग्रथितकोऽर्जुनः ।
स्नाय्वर्म शोणितार्म स्यादिति शुक्लगता गदाः ॥ १६१ ॥

नेत्र के शुक्ल (१)**भाग** में होने वाले रोग १३ प्रकार के होते हैं। १-शिरोत्पात

---

(१) **नेत्रस्य शुक्लभागस्य रोगाः १३**

१-शिरोत्पातमाह—**अवेदना वाऽपि सवेदना वा यस्याक्षिराज्यो हि भवन्ति ताम्राः।**
मुहुर्विरज्यन्ति च याः स तादृग् व्याधिः शिरोत्पात इति प्रदिष्टः॥

२-शिराहर्षमाह—**मोहाच्छिरोत्पात उपेक्षितस्तु जायेत रोगः स शिराप्रहर्षः।**
ताम्राभमस्रं स्रवति प्रगाढं तथा न शक्नोत्यभिवीक्षितुं च।

३-शिराजालमाह—

जालाभः कठिनशिरो महान् सरक्तः सन्तानः स्मृत इह जालसंज्ञितस्तु ॥

२-शिराहर्ष, ३-शिराजाल, ४-शुक्तिका, ५-शुक्लार्म, ६-अधिमांसार्म, ७-प्रस्तार्यर्म, ८-पिष्टक, ९-शिराजपिटिका, १०-कफग्रन्थि, ११-अर्जुन, १२-स्नायु-अर्म और १३-शोणित-अर्म ।

विमर्श—१-शिरोत्पात—नेत्रगत शिरा वेदनारहित या वेदना के साथ बारंबार ताम्रवर्ण की हो जाती है तथा पुनः जैसी की तैसी हो जाती है । रक्त के दौरे होने से रक्तवर्ण की हो जाती है पर दौरे के चले जाते ही अपनी स्वाभाविक रंग पर आ जाती है । इसे **शिरोत्पात** कहते हैं । २-**शिराहर्ष**-शिरोत्पात की उपेक्षा करने से आँख से ताम्रवर्ण का रक्तस्राव होता है तथा मनुष्य देख नहीं सकता । इस हालत में उसे **शिराहर्ष** कहते हैं । ३-**शिराजाल**-नेत्र के शिराओं में रक्त के भर जाने से शिरायें उठी हुईं कठिन तथा सर्व नेत्र में बिछी हुई जाल सी दीखती हैं, अतः उसे **शिराजाल** कहते हैं । ४-**शुक्तिका**—नेत्र के शुक्लभाग में सीप के आकार के मांस से श्याव रंग के बिन्दु होते हैं । इन्हें **शुक्तिका** कहते हैं । ५-**शुक्लार्म**—अर्मरोग कनीनिका के मांस के बढ़कर श्वेतभाग में आ जाने से होता है । जो शुक्ल, मृदु और देर में बढ़ता है, उसे **शुक्लार्म** कहते हैं । ६-**अधिमांसार्म**—जो अर्म पृथु, विस्तीर्ण और यकृत् के रंग का होता है उसे **अधिमांसार्म** कहते हैं । ७-**प्रस्तार्यर्म**-जो अर्म शुक्लभाग भर में फैला हुआ, पतला तथा श्याव, रक्तवर्ण का होता है उसे **प्रस्तार्यर्म** कहते हैं । ८-**पिष्टक**—शुक्ल भाग में जलबिन्दु तुल्य उठा हुआ गोल बिन्दु होता है । यह चावल

४-शुक्तिकामाह—

श्यावाः स्युः पिशितनिभाश्च बिन्दवो ये शुक्त्याभाः सितनियताः स शुक्तिसंज्ञः ॥

५-शुक्लार्माह—**सश्वेतं मृदु शुक्लार्म शुक्ले तद् बर्धते चिरात् ।**

६-अधिमांसार्माह—**पृथु मृद्वधिमांसार्म बहुलं वा यकृन्निभम् ।**

७-प्रस्तार्यर्माह—**प्रस्तार्यर्म तनु स्तीर्णं श्यावं रक्तनिभं सिते ।**

८-पिष्टकमाह—**श्लेष्ममारुतकोपेन शुक्ले मांसं समुन्नतम् ।**
पिष्टवत् पिष्टकं विद्धि मलाक्तादर्शसन्निभम् ॥

९-शिराजपिडिकामाह—

शुक्लस्थाः सितपिडिकाः शिरावृता यास्ता विद्यादसितसमीपजाः सिराजाः ।

१०-बलासग्रथितमाह—**मारुतोत्पीडितः श्लेष्मा शुक्लभागे व्यवस्थितः ।**
जलबिन्दुरिवोच्छूनोऽमृदुः शोफः समुद्भवेत् ॥
बलासग्रथितं नाम नीरुजं वृत्तमण्डलम् ॥

११-अर्जुनमाह—**एको यः शशरुधिरोपमश्च बिन्दुः शुक्लस्थो भवति तमर्जुनं वदन्ति ॥**

१२-स्नाय्वर्माह—**स्थिरं प्रस्तारि मांसाढ्यं शुष्कं स्नाय्वर्म पञ्चमम् ।**

अन्यच्च—**प्रस्तारिणोऽर्मणः स्रावं निरुणद्धि यदाऽनिलः ॥**
विना स्रावं विशुष्कं तत् स्नाय्वर्मेति च तद्विदुः ॥

१३-शोणितार्माह—**पद्माभं मृदु रक्तार्म यन्मांसं चीयते सिते ।**

की पीठी सा सफेद होता है, अतः **पिष्टक** कहते हैं। ९–**शिराजपिटिका**—कृष्ण भाग के समीप शुक्ल भाग में शिराओं से घिरी हुई पिडका होती है। उसे **शिराजपिटिका** कहते हैं। १०–**कफग्रन्थि**–शुक्ल भाग में जलबिन्दु तुल्य गोला शोथ होता है। यह मृदु और कांसे जैसा दीखता है तथा वेदनारहित होता है। इसे 'कफग्रथित' या 'कफग्रन्थि' कहते हैं। ११–**अर्जुन**—शुक्ल भाग में खरगोश के रक्त तुल्य एक लाल विन्दु होता है। इसे अर्जुन कहते हैं। १२–**स्नाय्वर्म**—जो अर्म विस्तृत, शुष्क, खर, पाण्डु वर्ण होता है उसे **स्नाय्वर्म** कहते हैं। १३–**रक्तार्म**—जो अर्म मृदु और पद्मवर्ण का होता है उसे **रक्तार्म** कहते हैं ॥१५९-१६१॥

नेत्रकृष्णगतरोगभेदाः–**तथा कृष्णसमुद्भूताः पञ्च रोगाः प्रकीर्त्तिताः ।**
शुद्धशुक्रं शिराशुक्रं क्षतशुक्रं तथाऽजका ॥
शिरासङ्गश्च सर्वेऽपि प्रोक्ताः कृष्णगता गदाः ॥ १६२ ॥

नेत्र के (१)**कृष्णमण्डल** में होने वाले रोग ५ प्रकार के होते हैं। १–शुद्धशुक्र, २–शिराशुक्र, ३–क्षतशुक्र, ४–अजका तथा ५–शिरासङ्ग।

विमर्श—१–शुद्धशुक्र—शुक्र फूला को कहते हैं। जो फूला चोषयुक्त तथा शंख, कुन्द पुष्प, आकाश या सफेद बादल के रंग का होता है, उसे शुद्ध शुक्र या **अव्रण शुक्र** कहते हैं। २–**शिराशुक्र**—जो फूला बीच में छिन्न हो, मांसावृत हो, हिलता हो या सिरा में फंसा हुआ हो उसे **शिराशुक्र** कहते हैं। ३–**क्षतशुक्र**—जो फूला कृष्ण भाग में डूबा हुआ सा हो यानी ईषत् दीखता हो और वह स्थान सूई टोचा हुआ सा प्रतीत होता हो, नेत्र में अत्यन्त पीडा हो तथा उष्ण आँसू गिरते हों, उसे **क्षतशुक्र** कहते हैं। ४–**अजका**–कृष्णभाग में बकरी की लेडी जैसे आकार का रक्तवर्ण शोथ उत्पन्न होता है। उससे दर्द होता है तथा नेत्र से रक्त वर्ण पिच्छिल अश्रुपात होता है। उसे **अजकाजात** या संक्षेप में **अजका** कहते हैं। ५–शि

---

(१) नेत्रस्य कृष्णभागगतरोगाः ५
१–अव्रण (शुद्ध) **सितं यदा भात्यसितप्रदेशे स्यन्दात्मकं नातिरुगश्रुयुक्तम् ।**
शुक्रमाह—(फूली) **विहायसीवाभ्रदलानुकारि तदव्रणं साध्यतमं वदन्ति ॥**
गम्भीरजातं बहुलञ्च शुक्रं चिरोत्थितञ्चापि वदन्ति कृच्छ्रम् ।
२–शिराशुक्रमाह—**विच्छिन्नमध्यं पिशितावृतं वा चलं शिरासक्तमदृष्टिकृच्च ।**
द्वित्वग्गतं लोहितमन्ततश्च चिरोत्थितञ्चापि विवर्जनीयम् ॥
३–क्षत (सव्रण) शु-**निमग्नरूपन्तु भवेद्धि कृष्णे सूच्येव विद्धं प्रतिभाति यद्वै ।**
क्रमाह—**स्रावं स्रवेदुष्णमतीव यच्च तत् सव्रणं शुक्रमुदाहरन्ति ॥**
४–अजकाजातमाह—**अजापुरीषप्रतिमो रुजावान् सलोहितो लोहितपिच्छिलास्रः ।**
विगृह्य कृष्णं प्रचयोऽभ्युपैति तच्चाजकाजातमिति व्यवस्येत् ।
५–सिरासङ्ग (अक्षिपा- **संछाद्यते श्वेतनिभेन सर्वदोषेण यस्यासितमण्डलन्तु ।**
कात्यय) माह—**तमक्षिपाकात्ययमक्षिकोपसमुत्थितं तीव्ररुजं वदन्ति ॥**

सङ्ग—अक्षिपाक की चिकित्सा न करने से नेत्रगत सिराओं का संग यानी अप्रवृत्ति हो जाती है, जिससे कृष्ण भाग क्रमतः श्वेत हो जाता है। इसको **अक्षिपाकात्यय** या **शिरासङ्ग** कहते हैं। यह असाध्य है ॥ १६२ ॥

काचरोगभेदाः—**काचं तु षड्विधं ज्ञेयं वातात्पित्तात्कफादपि ।**
सन्निपाताच्च रक्ताच्च षष्ठं संसर्गसम्भवम् ॥ १६३ ॥

काच (१)या **मोतियाबिन्द** का रोग छः प्रकार का होता है। १–वातिक काच, २–पैत्तिक काच, ३–श्लैष्मिक काच, ४–सान्निपातिक काच, ५–रक्तज काच और ६–संसर्गज काच।

विमर्श—वातक काच–यह अरुण वर्ण का होता है। **पत्तिक काच**—यह म्लान या नील वर्ण का होता है। **श्लैष्मिक काच**—यह श्वेत वर्ण का होता है। **सान्निपातिक काच**—यह विचित्र वर्ण का होता है। **रक्तज काच**—यह रक्तवर्ण का होता है। **संसर्गज काच**—यह संसृष्ट वर्ण का होता है। इस तरह वर्णभेद से दोषभेद का वितर्क होकर **काच रोग** छ प्रकार का होता है ॥१६३॥

तिमिररोगभेदाः—**तिमिराणि षडेव स्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा ।**
संसर्गेण च रक्तेन षष्ठं स्यात्सन्निपाततः ॥ १६४ ॥

तिमिर रोग—(२)छः प्रकार का होता है। १–वातिक, २–पैत्तिक, ३–श्लैष्मिक, ४–संसर्गज, ५–रक्तज तथा ६–सन्निपातज ।

---

(१) काचरोगमाह—**रागोऽरुणो मारुततः प्रदिष्टो म्लायी च नीलश्च तथैव पित्तात् ।**
कफात् सितः शोणितजः सरक्तः समस्तदोषप्रभवो विचित्रः ॥

(२) तिमिररोगमाह—**मूलं दृष्टिविनाशस्य तिमिरं समुदाहृतम् ।**
ऋषिभिस्त्वरितं तस्मात् तस्य कुर्याच्चिकित्सितम् ॥

१-वातिकमाह—**वातेन खलु रूपाणि भ्रमन्तीव च पश्यति ।**
अरुणाभानि कृष्णानि व्याविद्धानीव मानवः ॥

२-पैत्तिकमाह—**पित्तेनादित्यखद्योतशक्रचापतडिद्गुणान् ।**
नृत्यतश्चैव शिखिनः सर्वं नीलं च पश्यति ॥

३-कफजमाह—**कफेन पश्येद्रूपाणि स्निग्धानि च सितानि च ।**
पश्येदसूक्ष्माण्यत्यर्थं व्यभ्रमेवाभ्रसंप्लवम् ॥
सलिलप्लावितानीव परिजाड्यानि मानवः ।

४-संसर्गज (परिम्लायिन) माह—**रक्तेन मूर्च्छितं पित्तं परिम्लायिनमाचरेत् ।**
तेन पीता दिशः पश्येदुद्यन्तमिव भास्करम् ॥
विकीर्यमाणान् खद्योतैर्वृक्षांस्तेजोभिरेव वा ॥

५-रक्तजमाह—**पश्येद्रक्तेन रक्तानि तमांसि विविधानि च ।**
हरितान्यथ कृष्णानि पीतान्यपि च मानवः ॥

विमर्श—मोतियाबिन्द के ही दोष नेत्र के चतुर्थ पटल में आने से **तिमिर रोग** होता है। १-**वातिक तिमिर**—इससे मनुष्य घूमता हुआ, अरुणाभ, कृष्णाभ तथा एक दूसरे में फंसा हुआ रूप देखता है। २-**पैत्तिक तिमिर**—इससे मनुष्य को सदा सूर्य, जुगनू, इन्द्रधनुष, बिजली, मोर के पुच्छ आदि रूप तथा नीले रूप दीखते हैं। ३-**श्लैष्मिक तिमिर**—इससे मनुष्य चीजों को श्वेतवर्ण तथा स्निग्ध सा देखता है। बड़ी चीजों को ही देख सकता है। स्वच्छ आकाश भी बादल छाया सा दीखता है तथा हर चीज को जल में डूबी हुई सी देखता है। ४-**संसर्गज तिमिर**—इसमें पित्त का रक्त के साथ संसर्ग होने से मनुष्य दिशाओं को पीले रंग का देखता है। जुगनू और सूर्य दीखते हैं तथा पेड़ आदि जुगनुओं से छिटे हुए या धूप में चमकते हुए से दीखते हैं। ५-**रक्तज तिमिर**—इसमें मनुष्य हर चीज को लाल देखता है। विविध प्रकार अन्धकार, हरे, पीले और कृष्ण रूप दीखते हैं। ६-**सन्निपातज तिमिर**—इसमें विचित्र सा देखता है। छिटका हुआ सा खण्ड खण्ड हुआ सा अथवा हीनाङ्ग या अधिकाङ्ग देखता है। ये छ प्रकार के **तिमिर रोग** कहे गये हैं॥ १६४॥

लिङ्गनाशरोगभेदाः—**लिङ्गनाशः सप्तधा स्याद्वातात्पित्तात्कफेन च।**
त्रिदोषैरुपसर्गेण संसर्गेणास्रजा तथा॥ १६५॥

लिङ्गनाश—(१)रोग सात प्रकार का होता है। १-वातिक। २-पैत्तिक, ३-श्लैष्मिक, ४-त्रिदोषज, ५-उपसर्गज, ६-संसर्गज तथा ७-रक्तज।

६-सन्निपातजमाह—**सन्निपातेन चित्राणि विप्लुतानीव पश्यति।**
बहुधा वा द्विधा वाऽपि सर्वाण्येव समन्ततः॥
हीनाधिकाङ्गान्यथवा ज्योतींष्यपि च पश्यति।

(१) लिङ्गनाशमाह—**तिमिराख्यः स वै दोषः चतुर्थं पटलं गतः।**
रुणद्धि सर्वतो दृष्टिं लिङ्गनाशः स उच्यते॥
अस्मिन्नपि तमोभूते नातिरूढे महागदे। चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रावन्तरिक्षे च विद्युतः।
निर्मलानि च तेजांसि भ्राजिष्णूनि च पश्यति॥

१-२-३ वातज-पित्तज-कफजानां लक्षणानि—
अरुणं मण्डलं वाताच्चञ्चलं परुषं तथा। पित्ततो मण्डलं नीलं कांस्याभं पीतमेव वा।
श्लेष्मणा बहुलं स्निग्धं शङ्खकुन्देन्दुपाण्डुरम्।
चलत्पद्मपलाशस्थः शुक्लो बिन्दुरिवाम्भसः॥
संकुचत्यातपेऽत्यर्थं छायायां विकसत्यपि। मृज्यमाने च नयने मण्डलं तद्विसर्पति।

४-त्रिदोषजमाह—**मण्डलन्तु भवेच्चित्रं लिङ्गनाशे त्रिदोषजे।**

५-उपसर्गजमाह—**निमित्ततस्तत्र शिरोऽभितापाज् ज्ञेयस्त्वभिष्यन्दनिदर्शनैः स।**
विदीर्यते सीदति हीयते वा नृणामभीघातहता च दृष्टिः॥

६-संसर्गजमाह—**सुरर्षिगन्धर्वमहोरगाणां सन्दर्शनेनापि च भास्करस्य।**
हन्येत दृष्टिर्मनुजस्य यस्य स लिङ्गनाशस्त्वनिमित्तसंज्ञः॥

विमर्श—तिमिर रोग—दोष जब समग्र दृष्टिमण्डल को ढाक लेते हैं तब **लिङ्गनाश** हो जाता है यानी मनुष्य देखने में असमर्थ हो जाता है। इसमें भी यदि दोष अल्प हो एवं रोग पुराना न हो तो आकाश में चन्द्र, सूर्य, तारे, बिजली तथा अन्यान्य प्रकाशमान पदार्थों को भी घूमते हुए देखता है। इस अवस्था में जब कुछ नहीं दीखता तब दृष्टिमण्डल के रोग देखकर ही निदान करना होता है। १—**वातिक लिङ्गनाश**—इसमें दृष्टिमण्डल अरुण वर्ण का चञ्चल तथा परुष होता है। २—**पैत्तिक लिङ्गनाश**—इसमें दृष्टिमण्डल नीला, काँसा के जैसा या पीला दीखता है। ३—**श्लैष्मिक लिङ्गनाश**—इसमें दृष्टिमण्डल बड़ा, स्निग्ध, शङ्ख, कुन्द अथवा चन्द्र जैसा पाण्डुर और पद्मपत्र पर स्थित चञ्चल जलबिन्दु जैसा दीखता है। धूप में आने से मण्डल संकुचित तथा छाया में विस्तृत होता है एवं अगूठे से रगड़ने पर दृष्टिमण्डल चलता हुआ मालूम होता है। ४-**त्रिदोषज लिङ्गनाश**—इसमें दृष्टिमण्डल चित्र-विचित्र रागयुक्त होता है। ५—**उपसर्गज लिङ्गनाश**—यह किसी अन्य रोग के कारण से उपसर्ग रूप होता है। यह दो भेद से होता है एक **उपसर्गज शिरोऽभितापजन्य** जिसके लक्षण **अभिष्यन्द** के से होते हैं तथा दूसरा **आघातजन्य**। **अभिघात** से मनुष्य की दृष्टि फट जाती है, अवसन्न हो जाती है अथवा कम शक्ति की हो जाती है। ६—**संसर्गज लिङ्ग-नाश**—देव, गन्धर्व, सिद्ध पुरुष, महासर्प अथवा सूर्य के देखने से भी उनके तेज से दृष्टि शक्तिहीन हो जाती है। यह भी **लिङ्गनाश** ही है। इसमें दृष्टिमण्डल पर कोई खराबी नहीं दीखती, दृष्टिमण्डल स्वच्छ रहता है। ७—**रक्तज लिङ्गनाश**—इसमें दृष्टिमण्डल प्रवाल या पद्म के पंखुड़ी सा लालवर्ण युक्त रहता है। इस तरह लिङ्गनाश छः प्रकार का होता है॥१६५॥

दृष्टिमण्डलरोगभेदाः—**अष्टधा दृष्टिरोगाः स्युस्तेषु पित्तविदग्धकम् ।**
अम्लपित्तविदग्धं च तथैवोष्णविदग्धकम् ॥ १६६ ॥
नकुलान्ध्यं धूसरान्ध्यं रात्र्यान्ध्यं ह्रस्वदृष्टिकः ।
गम्भीरदृष्टिरित्येते रोगा दृष्टिगता मताः ॥ १६७ ॥

दृष्टिमण्डल (१)में होने वाले रोग आठ प्रकार के होते हैं। १—पित्तविदग्धदृष्टि, २—अम्ल-

---

७-रक्तजमाह—**प्रवालपद्मपत्राभं मण्डलं शोणितात्मकम् ।**
रक्तजं मण्डलं दृष्टौ स्थूलकाचारुणप्रभम् ॥

(१) **दृष्टिरोगाः ८**

तत्र दृष्टिप्रमाणं—**मसूरदलमात्रं तु पञ्चभूतप्रसादजम् ।**
अन्यच्च—**पञ्चभूतात्मिका दृष्टिर्मसूरार्धदलोन्मिता ।**

१-पित्तविदग्धमाह—**पित्तेन दुष्टेन सदा तु दृष्टिः पीता भवेद् यस्य नरस्य किंचित् ।**
पीतानि रूपाणि च मन्यते यः स मानवः पित्तविदग्धदृष्टिः ॥

२-अम्लपित्तविदग्ध (दिवान्ध) माह—
प्राप्ते तृतीयं पटलं तु दोषे दिवा न पश्येन्निशि वीक्षते च ।
रात्रौ च शीतानुगृहीतदृष्टिः पित्ताल्पभावादपि तानि पश्येत् ॥

पित्तविदग्धदृष्टि, ३-उष्णविदग्धदृष्टि, ४-नकुलान्ध्य, ५-धूसरान्ध्य, ६-रात्र्यान्ध्य, ७-ह्रस्व-दृष्टि और ८-गम्भीरदृष्टि या गम्भीरिका।

विमर्श—कृष्णमण्डल के मध्य में मसूर के दाल जितना बड़ा दृष्टिमण्डल होता है उसी में ये रोग होते हैं। १-**पित्तविदग्धदृष्टि—**पित्त के कुपित होकर दृष्टिमण्डल को विकृत करने से दृष्टिमण्डल में किञ्चित् पीला दीखता है तथा उस मनुष्य को सब पदार्थ पीले ही पीले दीखते हैं। उसे **पित्तविदग्धदृष्टि** कहते हैं। २-**अम्लपित्तविदग्धदृष्टि—**अम्लपित्त रोग से उदीर्ण पित्त दृष्टिमण्डल में जाकर दृष्टि को दूषित करता है। इसमें मनुष्य श्वेत पीला सा देखता है। ३-**उष्णविदग्धदृष्टि—**धूप में रहने या परिश्रम करने से अत्यग्निसेवन से तथा उष्ण पदार्थों के अति सेवन से भी दृष्टि दग्ध हो जाती है। ऐसे रोगी को छाया में तथा रात में अच्छा दीखता है पर तेज रोशनी या सूर्यप्रभा के सामने आंखें झिलमिला जाती हैं देख नहीं सकता। ४-**नकुलान्ध्य—**जिस की दृष्टि दोषों से व्याप्त हो कर नेवले की दृष्टि जैसी चमकती हो तथा जो दिन में चित्रविचित्र रूप देखता हो उसे **नकुलान्ध्य—**कहते हैं। ५-**धूसरान्ध्य** या **धूसरदर्शी**—अधिक शोक करने से, अधिक परिश्रम करने से या शिरोऽभिताप से दृष्टि दूषित होने पर मनुष्य सब पदार्थ को धूसर या धूम से व्याप्त देखता है यानी उसे हर चीज धुमेली दीखती हैं। उसे **धूसरान्ध्य** या (धूमदर्शी) **धूसरदर्शी** कहते हैं। ६-**रात्र्यान्ध्य-**यदि श्लेष्मा अल्प प्रमाण में तृतीय पटल को ढांक देता है तो **रतौन्धी** हो जाती है। रात के शीत होने से कफ प्रबल रहता है, अतः रात को नहीं सूझता, पर दिन को सूर्य के प्रभाव से श्लेष्मा हीनबल रहता है, अतः देख सकता है। ७-**ह्रस्वदृष्टि** या **ह्रस्वजाड्य**—इसमें मनुष्य सिर्फ दिन को ही मुश्किल से देखता है पर हर पदार्थ को छोटा देखता है। **रात्र्यान्ध्य** से यही भेद है। ८-**गम्भीरिका**—वातोपसृष्ट दृष्टिमण्डल संकुचित हो कर अन्दर को घुस जाता है तथा उसमें प्रबल पीडा होती हैं। इसे **गम्भीरिका** कहते हैं॥ १६६-१६७॥

३-उष्णविदग्धमाह-**उष्णं घर्मादिकं तेन विदग्धदृष्टिर्भवति तन्त्रान्तरे दिवान्धः कथितः।**

४-नकुलान्धमाह—**विद्योतते यस्य नरस्य दृष्टिर्दोषाभिपन्ना नकुलस्य यद्वत्।**
चित्राणि रूपाणि दिवा स पश्येत् स वै विकारो नकुलान्ध्यसंज्ञः॥

५ धूसरान्ध्य (धूम-दर्शिन) माह –**शोकज्वरायासशिरोऽभितापैरभ्याहता यस्य नरस्य दृष्टिः।**
धूम्रांस्तु यः पश्यति सर्वभावान् स धूम्रदर्शीति नरः प्रदिष्टः॥

६-श्लेष्मविदग्ध (रात्र्यान्ध्य) माह—**तथा नरः श्लेष्मविदग्धदृष्टिस्तान्येव शुक्लानि हि मन्यते तु।**
त्रिषु स्थितो यः पटलेषु दोषो नक्तान्ध्यमापादयति प्रसह्य।
दिवा स सूर्यानुगृहीतदृष्टिः पश्येत्तु रूपाणि कफाल्पभावात्॥

७-ह्रस्वदृष्टिमाह—**यो वासरे पश्यति कष्टतोऽथ रूपं महच्चापि निरीक्षतेऽल्पम्।**
रात्रौ पुनर्यः प्रकृतानि पश्येत् स ह्रस्वजात्यो मुनिभिः प्रदिष्टः॥

८-गम्भीरिकामाह—**दृष्टिर्विरूपा श्वसनोपसृष्टा संकुच्यतेऽभ्यन्तरतः प्रयाति।**
रुजाऽवगाढा च तमक्षिरोगं गम्भीरिकेति प्रवदन्ति तज्ज्ञाः॥

अभिष्यन्दरोगभेदाः—**अभिष्यन्दाश्च चत्वारो रक्ताद्दोषैस्त्रिभिस्तथा ॥ १६८ ॥**

अभिष्यन्द (१)या आंख आने का रोग ४ प्रकार का होता है। १–रक्तज अभिष्यन्द, २–वातज अभिष्यन्द, ३–पित्तज अभिष्यन्द तथा ४–श्लेष्मज अभिष्यन्द।

विमर्श—नेत्ररोगों में यह रोग सर्वप्रधान तथा सर्वसाधारण है। यही सर्व नेत्ररोगों का मूल है। इसके लक्षण यथा—१ **रक्तज अभिष्यन्द**—इसमें आंखें लाल हो जाती हैं, विशेष कर आंख की नाड़ियां अति रक्तवर्ण होती हैं तथा ताम्रवर्ण का अश्रुपात होता है। अन्य लक्षण **पित्तज अभिष्यन्द** के तुल्य होते हैं। २–**वातज अभिष्यन्द**—इसमें आंखों में तोद, स्तम्भ, रोमहर्ष, संघर्ष तथा परुषता होते हैं। सिर में अभिताप होता है। आंख सूखी सी दीखती है एवं शीतल आंसू बहते हैं। ३–**पैत्तिक अभिष्यन्द**—इसमें आंखों में दाह और पाक होते हैं, आंखों से धूए सा और भाफ निकलता मालूम होता है, आंखों से गरम आंसू निकलते हैं, आंख का वर्ण पीला होता है तथा ठण्ड लगने से अच्छा मालूम होता है। ४–**श्लैष्मिक अभिष्यन्द**—आंखें भारी होती हैं, आंखों में सूजन होता है, खुजली चलती है, आंखें सदा कफ से लिहसी रहती हैं एवं आंखें ठण्डी होती हैं। आंखों से पिच्छिल आंसू बहता है तथा गरमी लगने से आंखों को आराम मालूम होता है ॥ १६८ ॥

अधिमन्थरोगभेदाः—**चत्वारश्चाधिमन्थाः स्युर्वातपित्तकफास्रतः ॥ १६९ ॥**

अधिमन्थ (२)रोग चार प्रकार के होते हैं। १–वातिक अधिमन्थ, २–पैत्तिक अधिमन्थ ३–श्लैष्मिक अधिमन्थ और ४–रक्तज अधिमन्थ।

---

(१) अभिष्यन्दरोगाः ४

१-२-३ वातजादीनां लक्षणानि—**१ निस्तोदनस्तम्भनरोमहर्षसङ्घर्षपारुष्यशिरोऽभितापाः ।**
विशुष्कभावः शिशिराश्रुता च वाताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥
२ दाहप्रपाकौ शिशिराभिनन्दा धूमायनं बाष्पसमुच्छ्रयश्च ।
उष्णाश्रुता पीतकनेत्रता च पित्ताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥
३ उष्णाभिनन्दा गुरुताऽक्षिशोफः कण्डूपदेहावतिशीतता च ।
स्रावो मुहुः पिच्छिल एव चापि कफाभिपन्ने नयने भवन्ति ॥
४–रक्तजमाह—**ताम्राश्रुता लोहितनेत्रता च नाड्यः समन्तादतिलोहिता च ।**
पित्तस्य लिङ्गानि च यानि तानि रक्ताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥

(२) अधिमन्थरोगाः ४

तस्य निदानं लक्षणं च-**वृद्धैरेतैरभिष्यन्दैर्नराणामक्रियावताम् ।**
तावन्तस्त्वधिमन्थाः स्युर्नयने तीव्रवेदनाः ॥
उत्पाट्यत इवात्यर्थं नेत्रं निर्मथ्यते तथा । शिरसोऽर्धं च तं विद्यादधिमन्थं स्वलक्षणैः ॥

१–३ वातजादीनाह—

नेत्रमुत्पाट्यत इव मथ्यतेऽरणिवच्च यत् । संघर्षतोदनिर्भेदसंयुतं स्तब्धमाविलम् ॥
कुञ्चनास्फोटनाध्मानवेपथुव्यथनैर्युतम् । शिरसोऽर्धञ्च येन स्यादधिमन्थः स मारुतात् ॥

विमर्श—अभिष्यन्द रोग की चिकित्सा न होने से आगे चलकर **अधिमन्थ** हो जाता है। **अभिष्यन्द** जिस दोष का होता है, उसी दोष का **अधिमन्थ** हो जाता है। इसके सामान्य लक्षण, यथा—आंखों में उखाड़ने की सी और मथने की सी तीव्र वेदना होती है तथा **आधासीसी** का रोग हो जाता है। अन्यान्य लक्षण दोषानुसार **अभिष्यन्द** के ही होते हैं पर तीव्र होते हैं॥ १६९॥

सर्वाक्षिरोगभेदाः—**सर्वाक्षिरोगाश्चाष्टौ स्युस्तेषु वातविपर्ययः।**
अल्पशोफोऽन्यतोवातस्तथा पाकात्ययः स्मृतः।
शुष्काक्षिपाकश्च तथा शोफोऽध्युषित एव च।
हताधिमन्थ इत्येते रोगाः सर्वाक्षिसम्भवाः॥ १७०॥

समग्र नेत्र (१)को व्याप कर होने वाले रोग ८ होते हैं। १—वातविपर्यय, २—अल्पशोफ, ३—अन्यतोवात, ४—पाकात्यय, ५—शुष्काक्षिपाक, ६—शोफ, ७—अध्युषित, और ८—हताधिमन्थ।

यकृत्पिण्डोपमं चक्षुर्ज्वलदङ्गारकीर्णवत्। अधिमन्थे भवेत् पैत्ते शिरसो दहनं तथा।
शैत्यगौरवपैच्छिल्यदूषिकाशोथसंयुतम्। स्रावकण्डूयुतं नेत्रं नासाऽऽध्मानं शिरोरुक्
आविला पांशुपूर्णेव दृष्टिः कफसमुद्भवे। अधिमन्थे नतं कृष्णमुन्नतं शुक्लमण्डलम्

४—रक्तजमाह—**मन्थे रक्तभवे नेत्रमुत्पाटनसमानरुक्।**
रागेण बन्धूकनिभं ताम्यति स्पर्शनाक्षमम्॥
लोहितान्तं सनिस्तोदं पश्यत्यग्निनिभा दिशः।
ज्वलद्भिश्च शिरोऽङ्गारैराकीर्णमिव जायते॥

(१)सर्वाक्षिरोगाः ८।

१—वातविपर्ययमाह—**वारं वारं च पर्येति भ्रुवौ नेत्रे च मारुतः।**
रुजश्च विविधास्तीव्रा ज्ञेयो वातविपर्ययः॥

२—अल्पशोथमाह—**कण्डूपदेहाश्रुयुतः पक्वोदुम्बरसन्निभः।**
संरम्भी पच्यते यस्तु नेत्रपाकः सशोथकः॥
शोथहीनानि लिङ्गानि नेत्रपाके त्वशोथके॥

३—अन्यतोवातमाह—**यस्यावटूकर्णशिरोहनुस्थो मन्यागतो वाऽप्यनिलोऽन्यतो वा।**
कुर्याद्रुजं वै भ्रुवि लोचने च तमन्यतोवातमुदाहरन्ति॥

४—पाकात्ययमाह—**श्वेतः समाक्रामति सर्वतो हि दोषेण यस्यासितमण्डलं तु।**
तमक्षिपाकात्ययमक्षिपाकं सर्वात्मकं वर्जयितव्यमाहुः॥

५—शुष्काक्षिपाकमाह—**यत्कूणितं दारुणरूक्षवर्त्म संदह्यते चाविलदर्शनं च।**
सुदारुणं यत्प्रतिबोधने च शुष्काक्षिपाकोपहतं तदक्षि॥

६—शोफमाह—**शोफश्चात्र पाकभेदः स शोथजनेत्रपाक इत्यर्थः। यथा सुश्रुते—**
स्यन्दास्तु चत्वार इहोपदिष्टास्तावन्त एवेह तथाऽधिमन्थाः।
शोफान्वितः शोफयुतश्च पाकावित्येव नेत्रे दश सम्प्रदिष्टाः॥

विमर्श—१-**वातविपर्यय**-इस रोग में वायु क्रम से कभी भौंहों में और कभी नेत्रों में जाकर नाना प्रकार के तीव्र पीड़ा उत्पन्न करता है । २-**अल्पशोफ**—इसमें नेत्र पके गूलर के रङ्ग का हो जाता है, किञ्चित् शोथ होता है, कण्डू, उपदेह और अश्रु आंखों में होते हैं तथा नेत्र पक जाते हैं । इसे **अल्पशोथ** या **शोथहीन नेत्रपाक** कहते हैं । ३-**अन्यतोवात**—अवटु, कर्ण, सिर, हनु, मन्या या पृष्ठ आदि अन्यत्र कुपित होकर भी वायु भौंह और नेत्रों में पीड़ा उत्पन्न करता है । उसको **अन्यतोवात** कहते हैं, क्योंकि पीड़ा करने वाले वायु का अवस्थान असल में नेत्र में न होकर अन्यत्र होता है । ४-**अक्षिपाकात्यय**—यह रोग नेत्र पाक की उपेक्षा से होता है । इसमें समग्र नेत्र श्वेत हो जाते हैं और तीव्र रुजा होती है । ५-**शुष्काक्षिपाक**—इसमें आंख कूणित होती है, पलकें कठिन और रूखी हो जाती हैं, आंखों से मटमैला दिखाई देता है तथा पलकों को खोलने में कठिनता होती है एवं नेत्रों में दाह होता है । ६-**शोफ**—यह **नेत्रपाक** का ही भेद है । इसके लक्षण **अल्पशोफ** के से होते हैं, पर इसमें शोथ अधिक होता है । ७-**अध्युषित**—अधिक अम्ल पदार्थों के उपयोग से यह रोग हो जाता है । इस में नेत्र का वर्ण श्याव होता है, नेत्रों में दाह शोथ और स्राव होते हैं तथा समग्र नेत्र रक्तपर्यन्त पक जाते हैं । ८-**हताधिमन्थ**—**वाताधिमन्थ** की उपेक्षा से नेत्रों में अवसाद तथा अनेक प्रकार की तीव्र वेदनाएं होती हैं । यह **हताधिमन्थ** असाध्य है । इस तरह सब मिलाकर नेत्र में होने वाले रोग ९४ प्रकार के कहे गये । अन्यान्य तन्त्रों में नेत्ररोग ७४ ही माना गया है, पर **शार्ङ्गधराचार्य** ने चिकित्सा करने की सुविधा के वास्ते दोषादिभेद से स्पष्टतया ९४ नेत्ररोग कह दिया ॥ १७० ॥

पुंस्त्वरोगभेदाः—**पंस्त्वदोषास्तु पञ्चैव प्रोक्तास्तत्रेर्ष्यकः स्मृतः ।**
आसेक्यश्चैव कुम्भीकः सुगन्धिः षण्ढसंज्ञकः ॥ १७१ ॥

पुंस्त्वदोष (१)यानी पुरुष में वीर्य के अभाव या अल्पता के कारण से होने वाले दोष ५ प्रकार के होते हैं । १-ईर्ष्यक, २-आसेक्य, ३-कुम्भीक, ४-सुगन्धि और ५-षण्ढ ।

७-अध्युषित (अम्ला-**श्यावं लोहितपर्यन्तं सर्वं चाक्षि प्रपच्यते ।**
ध्युषित) माह— **सदाहशोथं सास्रावमम्लाध्युषितमम्लतः ॥**
८-हताधिमन्थमाह—**उपेक्षणादक्षि यदाऽधिमन्थो वातात्मकः सादयति प्रसह्य ।**
रुजाभिरुग्राभिरसाध्य एष हताधिमन्थः खलु नेत्ररोगः ॥
अन्यच्च—**अथवा शोषयेदक्षि क्षीणतेजोबलादयम् ।**
तत्पद्ममिव संशुष्कमवसीदति लोचनम् ॥
हताधिमन्थं तं विद्यादसाध्यं वातकोपजम् ॥

(१) पण्ढरोगाः ५-**दृष्ट्वा व्यवायमन्येषां व्यवाये यः प्रवर्त्तते ।**
१-ईर्ष्यकमाह-**ईर्ष्यकः स हि विज्ञेयो दृष्टियोनिश्च स स्मृतः ॥**
२-आसेक्य(सुख-**पित्रोस्तु स्वल्पवीर्यत्वादासेक्यः पुरुषो भवेत् ।**
योनि) माह- **स शुक्रं प्राश्य लभते ध्वजोन्नतिमसंशयम् ॥**

विमर्श—ये दोष माता पिता के दोष से गर्भाधान के समय से ही गर्भ में होते हैं, जन्मोत्तर–काल में प्रकट होते हैं। १–**ईर्ष्यक**—जो पुरुष अन्य पुरुष को या प्राणी को मैथुन करते देखकर स्वयं मैथुन में प्रवृत्त होता है उसे **ईर्ष्यक** कहते हैं यानी **ईर्ष्यक** स्वयं जब इच्छा हो तब मैथुन नहीं कर सक्ता उसके लिङ्ग में चेतनता नहीं आती। जब वह किसी दूसरे को मैथुन करते देख लेता है, तब उसके भी लिङ्ग में चेतनता आती है और वह मैथुन कर सकता है। इसीलिये इसको **दृग्योनि** भी कहते हैं। २–**आसेक्य**—माता–पिता के अल्पवीर्य होने पर भी यदि गर्भाधान हो जाय तो उससे पैदा होनेवाला बालक मन्दवीर्य होता है। वह मैथुन कर नहीं सकता क्योंकि उसके लिङ्ग में चेतनता नहीं आती। जब वह किसी दूसरे पुरुष से अपने मुख में मैथुन कराता है और स्खलित वीर्य को उदरस्थ कर लेता है तब उसको मैथुन करने की सामर्थ्य हो जाता है और वह मैथुन करता है। इस तरह जब उसे मैथुन करना होता है तब ऐसा ही करने पर सामर्थ्य लाभ होता है। इसी कारण से इसे **मुखयोनि** भी कहते हैं। ३–**कुम्भीक**—मैथुन काल में यदि पुरुष स्त्री से पहले छूट जाय तो स्त्री की कामशांति नहीं होती। उस समय यदि गर्भ रह जाय तो पुरुष से मैथुन कराने की वासना सन्तान में रह जाती है। वह बालक अपने समय में नपुंसक होता है यानी स्वयं मैथुन अपनी इच्छा पर कर नहीं सकता। जब वह किसी दूसरे पुरुष के द्वारा अपनी गुदा में मैथुन कराता है, तब उसके लिङ्ग में चेतनता आती है और वह मैथुन कर सकता है। **काश्यप** ने कहा है कि ऋतुकाल में यदि अल्परजवाली स्त्री से श्लेष्माधिक्य वाला पुरुष संगम करे तो स्त्री की कामशांति नहीं होती, अतः **कुम्भीक** पैदा होता है। अन्य मत यह है कि जो पुरुष प्रायः गुदामैथुन किया करते हैं उनको स्त्री के पास चेतनता नहीं होती, अतः पहले उस स्त्री की गुदा में मैथुन करते हैं। अभ्यस्त होने के कारण ध्वजोत्थान होने पर फिर योनि में मैथुन करते हैं। इनको **गुदयोनि** भी कहते हैं। ४–**सुगन्धि**—जो पुरुष पूतियोनि में उत्पन्न होता है वह **सुगन्धि** या **सौगन्धिक** होता है। वह भी अपनी इच्छा से मैथुन नहीं कर सकता। जब वह दूसरे का लिंग और योनि सूंघ लेता है तब उसको मैथुन का सामर्थ्य होता है। इसे **नासायोनि** भी कहते हैं।

३–कुम्भीकमाह—**स्वे गुदेऽब्रह्मचर्याद् यः स्त्रीषु पुंवत्प्रवर्त्तते।**
स कुम्भीक इति ज्ञेयो गुदयोनिश्च स स्मृतः॥

कुम्भीकोत्पत्तिः—**मातुर्व्यवायप्रतिमेन वक्त्री स्याद् बीजदौर्बल्यतया पितुश्च।**

अन्यच्च—**अरजस्कां यदा नारीं श्लेष्मलस्तु व्रजेदृतौ।**
अन्यसक्ता भवेत् प्रीतिर्जायते कुम्भिकस्तदा॥

४–सुगन्धि (नासायोनि)–**यः पूतियोनौ जायेत स हि सौगन्धिको मतः।**
माह— **स योनिशेफसोर्गन्धमाघ्राय लभते बलम्॥**

५–षण्ढमाह—**यो भार्यायामृतौ मोहादङ्गनेव प्रवर्त्तते॥**
तत्र स्त्रीचेष्टिताकारो जायते षण्ढसंज्ञकः॥

५-षण्ढ—यह दो प्रकार के होते हैं। **नरषण्ढ** और **नारीषण्ढ** । यदि ऋतुकाल में मूर्खतावश मातापिता क्षणिक सुख के लिये पुरुष नीचे और स्त्री ऊपर होकर मैथुन करें और गर्भ रह जाय तो उससे उत्पन्न होने वाली सन्तान **षण्ढ** होती है। यदि पुत्र हुआ तो वह नारी चेष्टित होता है यानी मूंछ-दाढीहीन होता है। उसकी सारी चेष्टाएँ स्त्री की सी होती हैं वह दूसरे पुरुष को अपने ऊपर सुलाकर अपने लिङ्ग में उसका वीर्य गिराता है। यदि लड़की हुई तो वह पुरुषचेष्टित होती है यानी स्तन आदि से हीन दाढ़ी मूंछ से युक्त तथा दूसरे स्त्री,को नीचे सुलाकर उसकी योनि में अपनी योनि को घर्षण करती है। ऊपर कहे ५ प्रकार के नपुंसकों में से चार को वीर्य होता है, अतः।कथितानुसार विकृत कर्म से उनमें मैथुन करने की शक्ति आती है। इस विकृत कर्म करने की प्रवृत्ति उनमें स्वभाव से ही होती है। **षण्ढ** नपुंसक में वीर्य नहीं होता अतः वह मैथुन नहीं कर सकता। आजकल के जमाने में स्त्रीपुरुषों के अल्पबल होने से, प्रायः जननेन्द्रिय के रोगों से युक्त रहने से, दुष्ट रजवीर्य होने से तथा कामशास्त्र के नियमों का पालन न करने से ऊपर कथित सब प्रकार के नपुंसकों की संख्या दिन बदिन बढ़ रही है, खास कर **कुम्भीक** नपुंसकों की। कुछ स्थान तो भारत में इसके लिये प्रसिद्ध हैं। यह देश के लिये नितान्त शोक और लज्जा की बात है॥ १७१॥

शुक्रदोषभेदाः—**शुक्रदोषास्तथाऽष्टौ स्युर्वातात्पित्तात्कफेन च ।**
कुणपं श्लेष्मवाताभ्यां पूयाभं श्लेष्मपित्ततः ॥ १७२ ॥
क्षीणं च वातपित्ताभ्यां ग्रन्थिलं श्लेष्मवाततः ।
मलाभं सन्निपाताच्च शुक्रदोषा इतीरिताः ॥ १७३ ॥

शुक्रदोष (१)यानी दूषित वीर्य का रोग आठ प्रकार का होता है। १-वातिक शुक्रदोष,

---

(१)शुक्रदोषा ८ । १-३ वातजादीनाह—

१-शुक्रं यदाऽरुणकृष्णवर्णं भवति तोदभेदेन विशेषान्वितं च भवति तद् वातदुष्टम् ।
२-पित्तदुष्टं तु पीतनीलादिवर्णान्वितं सोषचोषवेदनाविशेषयुक्तं च ।
३-श्लेष्मदुष्टं च श्वेतवर्णं कण्ड्वादिवेदनाऽन्वितं च ।

४-कुणपं चास्रपित्ताभ्यामिति । कुणपः शवः । तस्येव गन्धो यस्य शुक्रस्य भवति स रक्तेन पित्तेन भवति । अनल्पं च भवति । चकाराच्छोणितवर्णं पित्तवेदनं च । सुश्रुते त्वयं रक्तज इत्युक्तः । यतः कुणपगन्ध्यनल्पं च रक्तेनेति । अत्र रक्तेनेति-व्यपदेशो घृततैलदग्धवद् , यतो रक्तस्यापि दोषा एव दूषयितारः । तेनात्र अस्रपित्ताभ्यामिति ग्रहणं न दोषः ।

५-पूयाभं-श्लेष्मपित्तयोरेवेति । पित्तश्लेष्मभ्यां यद् दूषितं तद्धटितं पूयसदृशं शुक्रं भवति । वर्णवेदनाश्चात्र मिलितश्लेष्मपित्तयोरेव बोद्धव्याः ॥

६-क्षीणं च वातपित्ताभ्यामिति । कारणैः स्वमानादल्पीभूतम्-यथा—
दौर्बल्यं मुखशोषश्च पाण्डुत्वं सदनं श्रमः ।
क्लैब्यं शुक्राविसर्गश्च क्षीणशुक्रस्य लक्षणम् ॥

२-पैत्तिक शुक्रदोष, ३-श्लैष्मिक शुक्रदोष, ४-रक्तपित्तज शुक्रदोष, ५-श्लेष्मपित्तज शुक्रदोष, ६-वातपित्तज शुक्रदोष, ७-श्लेष्मवातज शुक्रदोष, ८-सान्निपातिक शुक्रदोष।

विमर्श—दोष के शुक्राशय में जाकर वीर्य को दूषित करने से **शुक्रदोष** होता है। दूषित वीर्य गर्भधारण के योग्य नहीं होता। **१-वातिक शुक्रदोष**—वातदूषित शुक्र फेनिल, रूखा, किञ्चित् अरुण या कृष्णवर्ण का होता है। वीर्यस्थान में कुछ तोद और भेद युक्त पीड़ा होती है तथा मैथुन में कष्ट से और अल्प परिमाण में निकलता है। **२-पैत्तिक शुक्रदोष**—पित्तदूषित शुक्र किञ्चित् नीला या पीले रंग का होता है। यह तीक्ष्ण, गरम और पूतिगन्धयुक्त होता है। मैथुन में स्खलित होने के समय लिङ्ग की नली में दाह करता हुआ निकलता है। **३-श्लैष्मिक शुक्रदोष**—श्वेत वर्ण का होता है। कफ से वीर्यवाहिनी नाड़ियों के रुद्ध होने की वजह से वीर्य गाढ़ा, पिच्छिल और कुछ गांठदार होता है तथा मैथुन में अधिक परिमाण में गिरता है। **४-रक्तपित्तज-शुक्रदोष**—रक्तपित्त से दूषित वीर्य रक्त का तथा सड़े मुर्दे के गन्ध से युक्त होता है। **५-श्लेष्मपित्तज शुक्रदोष**—कफपित्त से दूषित वीर्य पूय के सदृश होता है। **६-वातपित्तज शुक्रदोष**—वातपित्त से दूषित वीर्य क्षीण होता है यानी परिमाण में वीर्य अल्प गिरता है और शुक्रक्षय के लक्षण होते हैं। **७-श्लेष्मवातज शुक्रदोष**—श्लेष्मवात से दूषित वीर्य गांठदार होता है जिससे निकलते समय लिङ्गनली में कुछ कष्ट होता है। **८-सान्निपातिक शुक्रदोष**—सब दोषों से दूषित वीर्य अनेक वर्ण का तथा मलमूत्र के जैसा और वैसा ही गन्धयुक्त होता है। इसके सिवाय अधिक स्त्रीप्रसंग से, वीर्यस्थान में चोट लगने से या क्षत हो जाने से वीर्य खून से मिला हुआ होता है॥ १७२-१७३॥

अथ स्त्रीरोगनामानि।

तत्रार्त्तवदोषभेदाः—**अथ स्त्रीरोगनामानि प्रोच्यन्ते पूर्वशास्त्रतः॥ १७४॥**
अष्टावार्त्तवदोषाः स्युर्वातपित्तकफस्त्रिधा। पूयाभं कुणपं ग्रन्थि क्षीणं मलसमं तथा॥

स्त्री-पुरुष को साधारणतः होने वाले तथा पुरुषों को होने वाले रोगों को कहने के बाद अब पूर्वशास्त्र के अनुसार स्त्रीरोगों के नाम कहते हैं:—स्त्रियों के आर्त्तव (१)यानी

७-ग्रन्थिलं श्लेष्मवातत इति। ग्रन्थिलसदृशं ग्रन्थिलं तत् श्लेष्मवातजनितं भवति। अत्रापि द्विदोषवर्णवेदना बोद्धव्या।

८-मलाभं सन्निपाताच्चेति मलं मूत्रपुरीषम्, तदाभं तद्गन्धि च यत् शुक्रं भवति तत् सन्निपातदूषितम्। सुश्रुतेऽपि। "मूत्रपुरीषगन्धि सन्निपातेन"॥

(१) आर्त्तवदोषाः ८-

यदुक्तं सुश्रुते-आर्त्तवमपि त्रिभिर्दोषैः शोणितचतुर्थैः पृथग्द्वन्द्वैः समस्तैश्चोपसृष्टमबीजं भवतीति। दोषैर्दुष्टमार्त्तवं च वीर्यवद्भवतीतिप्रयोजनश्चकारः। एतेषां दोषवर्णनाऽऽदिभिर्विज्ञानोपायः कथित इष्टशुक्रदोषे ज्ञातव्यः॥

सिक खून के दोष आठ प्रकार के होते हैं। इनके लक्षण आदि भी शुक्रदोषों के तुल्य होते हैं।

विमर्श—१ वातज आर्त्तवदोष—इसमें रज तनु, रूक्ष अल्प और श्याव वर्ण का होता है। २-**पित्तज आर्त्तवदोष**—इसमें रज नील या पीत वर्ण का पूति गन्ध युक्त तथा योनि में जलन करके निकलने वाला होता है। ३-**श्लेष्मज आर्त्तवदोष**—इसमें रज पाण्डु वर्ण का, कुछ ग्रन्थित और पिच्छिल होता है। ४-**रक्तपित्तज आर्त्तवदोष**—इसमें रज कुणप या शव के गन्ध का होता है। ५-**श्लेष्मज आर्त्तवदोष**—इसमें रज पूय के जैसा वर्ण-गन्ध का होता है। ६-**श्लेष्मवातज आर्त्तवदोष**—इसमें रज गाँठदार अधिक होता है। ७-**वातपित्तज आर्त्तवदोष**—इसमें आर्त्तव मल-मूत्र के तुल्य गन्ध वर्ण विशिष्ट होता है ॥१७४-१७५॥

रक्तप्रदरभेदाः—**तथा च रक्तप्रदरं चतुर्विधमुदाहृतम् ।**
वातपित्तकफैस्त्रेधा चतुर्थं सन्निपाततः ॥ १७६ ॥

रक्तप्रदर—(१)यानी स्त्रियों के मासिक खून के अधिक निकलने का रोग चार प्रकार का होता है। १-वातज प्रदर, २-पित्तज प्रदर, ३-कफज प्रदर, और ४-सन्निपातज प्रदर।

विमर्श—१ वातज प्रदर—इसमें ऋतुकाल में कटि, वंक्षण, हृदय, पार्श्व, पृष्ठ और नितम्ब में तीव्र पीडा होती है तथा आर्त्तव कभी दर्द के साथ और कभी विना दर्द का निकलता है। **रज** फेनयुक्त, पतला, रूखा, किञ्चित् श्याव या अरुणवर्ण अथवा टेसू के फूल के काढ़े का वर्ण वाला होता है। २-**पित्तज प्रदर**—इसमें आर्त्तव नीला या पीला रङ्ग का, अत्यन्त गरम होता है। यह योनि में दाह और राग करता हुआ प्रायः निरन्तर निकलता रहता है। इसमें प्यास, मोह, ज्वर और भ्रम उपद्रव स्वरूप होते हैं। ३-**कफज प्रदर**—इसमें आर्त्तव पाण्डुवर्ण, पिच्छिल, भारी, स्निग्ध और शीतल होकर तथा मन्द वेदना के साथ

---

(१) प्रदररोगाः ४

तदेवातिप्रसङ्गेन प्रवृत्तमनृतावपि । असृग्दरं विजानीयादतोऽन्यद्रक्तलक्षणात् ॥
तस्यातिप्रवृत्तौ दौर्बल्यं भ्रमो मूर्च्छा मदस्तृषा ।
दाहः प्रलापः पाण्डुत्वं तन्द्रा रोगाश्च वातजाः ॥

तस्य विप्रकृष्टनिदानम्-**विरुद्धमद्याध्यशनादजीर्णाद् गर्भप्रणाशादतिमैथुनाच्च ।**
यानाध्वशोकादतिकर्षणाच्च भाराभिघाताच्छयनाद्दिवा च ॥
असृग्दरं भवेत् सर्वं साङ्गमर्दं सवेदनम् ।

१-४ वातजादीनां लक्षणानि सान्निपातिकञ्च—

१-रूक्षारुणं फेनिलमल्पमल्पं वातात्सतोदं पिशितोदकाभम् ।
२-सपीतनीलासितरक्तमुष्णं पित्तार्त्तियुक्तं भृशवेगि पित्तात् ।
३-आमं सपिच्छाप्रतिमं सपाण्डु पुलाकतोयप्रतिमं कफात्तु ।
४-सक्षौद्रसर्पिर्हरितालवर्णं मज्जप्रकाशं कुणपं त्रिदोषात् ॥

निकलता है। वमन, अरुचि, जी मिचलाना, कास तथा श्वास इसके उपद्रव हैं। ४-सन्निपातज प्रदर--इसमें आर्त्तव घृत, मधु, वसा या मज्जा के तरह का, पीला, पिच्छिल और दुर्गन्धयुक्त होता है। और निरन्तर स्राव होता रहता है। इसके उपद्रव भी अनेक होते हैं॥१७६॥

योनिरोगभेदाः—विंशतिर्योनिरोगाः स्युर्वातात्पित्तात्कफादपि।
सन्निपाताच्च रक्ताच्च लोहितक्षयतस्तथा॥ १७७॥
शुष्का च वामिनी चैव षण्डिताऽन्तर्मुखी तथा।
सूचीमुखी विप्लुता च जातघ्नी च परिप्लुता॥ १७८॥
उपप्लुता प्राक्चरणा महायोनिश्च कर्णिनी।
स्यान्नन्दा चातिचरणा योनिरोगा इतीरिताः॥ १७९॥

(१)स्त्रियों के योनिरोग—२० प्रकार के होते हैं। १-वातिक योनिरोग, २-पैत्तिक योनिरोग, ३-श्लैष्मिक योनिरोग, ४-सान्निपातिक योनिरोग, ५-रक्तज योनिरोग, ६-लोहि

---

(१) योनिरोगाः २०

१-वातला—वातला कर्कशा स्तब्धा शूलनिस्तोदपीडिता।
२-पित्तला—अत्यर्थं पित्तला योनिर्दाहपाकज्वरान्विता।
३-श्लेष्मला—श्लेष्मला पिच्छिला योनिः कण्डूयुक्ताऽतिशीतला।
४-सन्निपातजा—सर्वलिङ्गसमुत्थाना सर्वदोषप्रकोपजा।
५-रक्तजा—प्रस्रंसिनी स्रंसते च क्षोभिता दुष्प्रजायिनी।
६-लोहितक्षया—सदाहं क्षरते रक्तं यस्याः सा लोहितक्षया॥
७-८ शुष्का, विप्लुता-शुष्का (बन्ध्या) विप्लुता च। शुष्का नष्टार्त्तवा कथिता-अथवा-
बन्ध्या नष्टार्त्तवा ज्ञेया विप्लुता नित्यवेदना।
९-वामिनी—सवातमुद्गिरेद्बीजं वामिनी रजसा युतम्।
१०-षण्ढी—अनार्त्तवाऽस्तनी षण्ढी खरस्पर्शा च मैथुने।
११-अन्तर्मुखी (अण्डली)-महामेढ्रगृहीताया बालाया अण्डली भवेत्।
१२-१३—महायोनिसूचीवक्त्रयोर्लक्षणम्—
विवृताऽति महायोनिः सूचीवक्त्राऽतिसंवृता॥
१४-जातघ्नी (पुत्रघ्नी)-स्थितं स्थितं हन्ति गर्भं पुत्रघ्नी रक्तसंक्षयात्।
१५-परिप्लुता—परिप्लुतायां भवति ग्राम्यधर्मेण रुग् भृशम्।
१६-उपप्लुता (उदावृत्ता)-सा फेनिलमुदावृत्ता रजः कृच्छ्रेण मुञ्चति।
१७-प्राक्चरणा—मैथुनेऽचरणापूर्वं पुरुषादतिरिच्यते।
१८-कर्णिनी—कर्णिन्याः कर्णिका योनौ श्लेष्मासृग्भ्यां च जायते।
१९-नन्दा (अत्यानन्दा)—अत्यानन्दा न सन्तोषं ग्राम्यधर्मेण गच्छति।
२०-अतिचरणा— बहुशश्चरणाऽतिचरणा तयोर्बीजं न तिष्ठति॥

क्षयजा योनिरोग, ७–शुष्का योनि, ८–वामिनी योनि, ९–षण्डिता योनि, १०–अन्तर्मुखी योनि ११–सूचीमुखी योनि, १२–विप्लुता योनि, १३–परिप्लुता योनि, १४–जातघ्नी योनि, १५–उपप्लुता योनि, १६–प्राक्चरणा योनि, १७–महायोनि, १८–कर्णिनी योनि, १९–नन्दा योनि और २०–अतिचरणा योनि ।

विमर्श—यहां **योनि** शब्द से समग्र जननसंस्थान ही अभिप्रेत है नकि केवल मात्र योनिमार्ग । अतः गर्भाशय आदि के भी रोगों को एकत्र संग्रह कर योनिरोग नाम दिया गया है । इनके लक्षण यथा—

वातला योनि—कर्कश, स्तब्ध और शूल तथा तोद से पीडित रहती है । **पित्तला योनि**—दाह, पाक और ज्वर से पीडित रहती है । **श्लेष्मला योनि**—पिच्छिल, कण्डूयुक्त तथा शीतल रहती है । **सन्निपातजा योनि**—सब दोषों के लक्षणों से युक्त रहती है । **रक्तजा योनि**–इसमें रक्त की अति प्रवृत्ति होती है । **लोहितक्षयजा योनि**—इसमें दाह के साथ आर्त्तव का क्षय होता है । **शुष्का योनि**—आर्त्तव बन्द हो जाने पर योनि को शुष्का कहते हैं । **वामिनी योनि**—गृहीत बीज को भी जो योनि रज के साथ तथा वात के साथ बाहर निकाल देती है उसे **वामिनी** कहते हैं । **षण्डिता योनि**–इस योनि वाली स्त्री के स्तन नहीं होते न आर्त्तव होता है । मैथुन में रूखा और खरदरा मालूम होता है । इसका कारण पुरुष–दोष में कह आये हैं । **अन्तर्मुखी**—जो स्त्री अधिक भोजन करके विषम शयन में स्थित होकर मैथुन कराती हैं, उसकी योनि में स्थित वायु कुपित होकर गर्भाशय के मुख को टेढ़ा कर देता है । ऐसी योनि में सदा वात–वेदना होती रहती है तथा मैथुन करने में समर्थ नहीं होती । इसको अन्तर्मुखी कहते हैं । **सूचीमुखी**—माता के रूक्षादि वायुकोप–कारक पदार्थ के सेवन करने से वायु कुपित हो गर्भस्थ कन्या की योनि को संकुचित करके अति सूक्ष्म रन्ध्र की बना देता है । इसे **सूचीमुखी** कहते हैं । **विप्लुता योनि**—विप्लुता योनि में सर्वदा वात–कर्त्तृक तोद–वेदनाएँ होती रहती हैं । **जातघ्नी**—रक्त यानी आर्त्तव के क्षीण होने से सन्तान पैदा हो हो कर मर जाती है । ऐसी योनि को **जातघ्नी कहते हैं । परिप्लुता योनि**—वातपित्त से दूषित होकर योनि सूजी हुई, स्पर्शज्ञानशून्य और वेदनायुक्त होती है तथा नीले और पीले स्राव होते हैं । इसमें नितम्ब वङ्क्षण और पीठ में दर्द होता है तथा ज्वर भी होता है । इसे **परिप्लुता योनि** कहते हैं । **उपप्लुता योनि**—वातकफ से दूषित होकर योनि वेदनायुक्त और पाण्डुवर्ण होती है, योनि से श्वेत स्राव या कफ निकलता है और कफवात की अन्य पीडाएँ भी होती हैं । मैथुन में इस योनि में अत्यन्त कष्ट होता है । **प्राक्चरणा**–अत्यन्त बाला यानी कम उम्र की स्त्री के साथ मैथुन करने से पीठ, जंघा, वङ्क्षण में दर्द करता हुआ वायु योनि को दूषित करता है । उसे **प्राक्चरणा** कहते हैं । **महायोनि**—यह योनि हमेशा विवृत रहती है एवं बृहद् भगोष्ठ उत्सन्न रहते हैं । योनि में पीड़ा होती है और रूक्ष तथा फेनयुक्त रक्तस्राव होता है । गांठों में तथा वंक्षण में शूल होता है । **कर्णिनी योनि**—अकाल में गर्भ का वहन करने से वायु गर्भ से रुद्ध होकर श्लेष्म और रक्त से

मिलकर आर्त्तव के मार्ग को रोकने वाली कर्णिका उत्पन्न करती है। उस योनि को कर्णिनी कहते हैं। **नन्दा योनि**—योनि को न धोने से या स्वच्छ न रखने से कृमि उत्पन्न होकर योनि में चुलबुलाहट उत्पन्न करते हैं। जिससे बारम्बार मैथुन कराने की इच्छा होती है, कभी तृप्ति नहीं होती। कभी कभी पक्वाशय के धान्याङ्कुर तुल्य कृमि भी योनि में आकर ऐसी ही चुलबुलाहट उत्पन्न करते हैं। ऐसी योनि को **अत्यानन्दा** या संक्षेप में **नन्दा** कहते हैं। **अतिचरणा योनि**—अति मैथुन से वायु कुपित होकर योनि में शोथ, सुप्ति और दर्द करता है। उस योनि को **अतिचरणा** कहते हैं॥ १७७–१७९॥

योनिकन्दभेदाः—**चतुर्विधं योनिकन्दं वातपित्तकफैस्त्रिधा। चतुर्थं सन्निपातेन**…॥१८०॥

योनिकन्द (१)रोग चार प्रकार का होता है। १–वातिक योनिकन्द, २–पैत्तिक योनिकन्द, ३–श्लैष्मिक योनिकन्द और ४–सान्निपातिक योनिकन्द।

विमर्श—योनिमार्ग में लकुच यानी बड़हल के फल जैसा मांसपिण्ड उत्पन्न होता है उसको योनिकन्द कहते हैं। उसके भेद दोषानुसार चार प्रकार के होते हैं। यथा—

१–**वातिक योनिकन्द**—वातिक योनिकन्द रूक्ष, विवर्ण और फटा हुआ होता है। २–**पैत्तिक योनिकन्द**—पैत्तिक योनिकन्द दाह, राग और ज्वर उत्पन्न करता है। ३–**श्लैष्मिक योनिकन्द**—श्लैष्मिक योनिकन्द नीलपुष्प जैसे दीखता है तथा कण्डूयुक्त होता है। ४–**सान्निपातिक योनिकन्द**—उपर्युक्त सब लक्षणों से युक्त रहता है। इन योनिरोगों के सिवाय सोजाक अर्बुद आदि रोग भी योनिमार्ग में हुआ करते हैं॥ १८०॥

उदावृत्ताबन्ध्याविप्लुतासु वातानुबन्धित्वम्।
चतसृष्वपि चाद्यासु भवन्त्यनिलवेदनाः।
एवं रक्तक्षया वामिनी प्रस्रंसिनी पुत्रघ्नी चेति पित्तानुबन्धित्वम्।
चतसृष्वपि चाद्यासु पित्तलिङ्गोच्छ्रयो भवेत्॥
एवम्–अत्यानन्दा कर्णिनी चरणाऽतिचरणा चेति–श्लेष्मानुबन्धित्वम्।
चतसृष्वपि चाद्यासु श्लेष्मलिङ्गोच्छ्रयो भवेत्॥
एवं सन्निपातजाश्च विज्ञेयाः–षण्डी अण्डली विवृता सूचीवक्त्रा चेति।

(१) योनिकन्दाः ४–**दिवास्वप्नादतिक्रोधाद् व्यायामादतिमैथुनात्।**
क्षताच्च नखदन्ताद्यैर्वाताद्याः कुपिता यथा॥
पूयशोणितसङ्काशं लकुचाकृतिसन्निभम्।
जनयन्ति यदा योनौ नाम्ना कन्दः स योनिजः॥

१–४–वातजादिभेदेन लक्षणम्— **१ रूक्षं विवर्णं स्फुटितं वातिकं तं विनिर्दिशेत्।**
२ दाहरागज्वरयुतं विद्यात् पित्तात्मकं तु तम्॥
३ नीलपुष्पप्रतीकाशं कण्डुमन्तं कफात्मकम्।
४ सर्वलिङ्गसमायुक्तं सन्निपातात्मकं विदुः॥

गर्भरोगभेदाः—···तथाऽष्टौ गर्भजा गदाः। उपविष्टकगर्भः स्यात्तथा नागोदरः स्मृतः।
मक्कल्लो मूढगर्भश्च विष्कम्भो गूढगर्भकः।
जरायुदोषो गर्भस्य पातश्चाष्टमकः स्मृतः॥ १८१ ॥

गर्भरोग (१)आठ प्रकार के होते हैं। १–उपविष्टक, २–नागोदर, ३–मक्कल्ल, ४–मूढगर्भ, ५–विष्कम्भ, ६–गूढगर्भ, ७–जरायुदोष, ८–गर्भपात।

---

(१) गर्भरोगाः ८

१–उपविष्टकः—रक्तपरिश्रुतिनिमित्तोपविष्टकसंज्ञया गर्भविकृतिः कथिता। यथा चरके—'यस्याः पुनरुष्णतीक्ष्णोपयोगाद् गर्भिण्या महति गर्भे पुष्पदर्शनं योनिस्रावात् तस्या गर्भो वृद्धिं न प्राप्नोति, कालान्तरमुपतिष्ठते, सस्पन्दनश्च भवति तमुपविष्टकम्'। इति।

२–नागोदरः—नागबन्ध इव स्थितिर्यस्य गर्भस्य भवतीति सः। यथा सुश्रुते—'शुक्रशोणितं वायुनाऽभिपन्नमवक्रान्तजीवमाध्मापयत्युदरं तत् कदा, चिद् यदृच्छयोपशान्तं नैगमेयापहृतमिति भाषन्ते, तमेव कदा चित् प्रविलीयमानं नागोदरमि'त्याहुः।

३–मक्कल्लः—मक्कल्लो मारुतजशूलविशेषो द्विविधो भवति, एको गर्भावस्थायामपरः सूतिकावस्थायाम्—

मानसागन्तुभिरुपतापैः प्रपीडितो यो गर्भः कुक्षौ वेदनां जनयति स गर्भमक्कल्लः॥

यत्र प्रकुपितो वायुः प्रसूताया रुधिरमत्यन्तं संरुध्य हृच्छिरोबस्तिशूलं करोति स प्रसूतिमक्कल्लः॥

तन्त्रान्तरे योनिसंवरणोऽयं रोगविशेषः कथितः। यथा—

वातलान्यन्नपानानि ग्राम्यधर्मप्रजागरम्।
अत्यर्थं सेवमानायां गर्भिण्यां योनिमार्गगः॥
मातरिश्वा प्रकुपितो योनिद्वारस्य संवृतिम्। कुरुते रुद्धमार्गत्वात् पुनरन्तर्गतोऽनिलः॥
निरुणद्ध्याशयद्वारं पीडयन् (नाभि) गर्भसंस्थितः।
निरुद्धवचनोच्छ्वासो गर्भश्चाशु विपद्यते॥
रुजासंरुद्धहृदयां नाशयत्याशु गर्भिणीम्। योनिसंवरणं विद्याद् व्याधिमेतं सुदारुणम्॥

४–मूढगर्भः–मूढो व्यासक्तगतिः पवनो मूढगर्भं करोति योनिजठरादिषु शूलं करोतीत्यभिप्रायः।

"मूढः करोति पवनः खलु मूढगर्भं शूलं च योनिजठरादिषु मूत्रसङ्गम्"॥

५–विष्कम्भः–विष्कम्भ इव विष्कम्भः, मार्गावरोधात् तिष्ठतीत्यभिप्रायः। स तु वाताभिपन्नगर्भस्य शोषणान्मातुः कुक्षिं न पूरयति मन्दं स्पन्दते च। शुष्कलक्षणं यथा—

गर्भनाड्यास्तु वहनादप्लवत्वाद्रसस्य च। चिरेणाप्यायते गर्भस्तथैवाकालयोजनात्॥

विमर्श—शुक्र-शोणित संयोग से लेकर भ्रूण के भूमिष्ठ होने तक के समय को काल कहते हैं। उस समय गर्भ में होने वाले रोग को **गर्भरोग** कहते हैं। इनके लक्ष **उपविष्टक**—यदि गर्भ के स्थिर होने पर तथा जातसार होने पर भी किसी कारण रक्त हो या अन्य प्रकार स्राव हो तो रक्त के निकल जाने से गर्भ पुष्ट नहीं होता। अतः पर जन्म न होकर अधिक समय तक अवस्थान करता है। उसको **उपविष्टक** कहते हैं। **गोदर**—गर्भिणी के शोक, उपवास, रूक्ष-सेवनादि से वायु गर्भ को शुष्क कर देता है, देर में हिलता है एवं छोटा हो जाता है। यह भी अतिकाल तक अवस्थान करता है। **नागोदर** कहते हैं। **मक्कल्ल**-यह दो प्रकार का होता है-**गर्भमक्कल्ल**—और प्रसू **क्कल्ल**। गर्भावस्था में वायु गर्भ से पीड़ित होकर हृदय, बस्ति तथा सिर में शूल

अकुक्षिपूरणो गर्भो मन्दस्पन्दन एव च।

६-गूढगर्भः-लीनगर्भः कथितः। तथा च-वातोपद्रवगृहीतत्वात् स्रोतसां गर्भः सोऽतिकालमवतिष्ठमानो व्यापद्यते।

मूढगर्भः—विगुणानिलयोगादहस्यासंख्येयत्वमाहुरेके, तस्मादत्र एक ष्ठितः। यथा—

"भुग्नोऽनिलेन विगुणेन ततः स गर्भः संख्यामतीत्य बहुधा समुपति योनि केषां चिन्मते तत्र व्यवहारयोग्या अष्टौ प्रकाराः कथिताः। यथा—

द्वारं निरुद्धय शिरसा जठरेण कश्चित् कश्चिच्छरीरपरि (वर्धित) वर्त्तन कुब्ज
एकेन कश्चिदपरस्तु भुजद्वयेन तिर्यक्कृतो भवति कश्चिदवाङ्मुखोऽन्यः॥
पार्श्वापवृत्तगतिरेति तथैव कश्चिदित्यष्टधागतिरियं ह्यपरा चतुर्धा।

संकीलकादिभेदेन चतुःप्रकाराः॥ यथा—

संकीलकः प्रतिखुरः परिघोऽथ वीजस्ते ऊर्ध्वबाहुचरणैः शिरसा च योनौ।
सङ्गी च यो भवति कीलकवत् सकीलो दृश्यैः खुरैः प्रतिखुरः स हि काय
गच्छेद्भुजद्वयशिराः स च बीजकाख्यो योनौ स्थितः स परिघः परिघेण तु

७-जरायुदोषः-विकृतजरायुणाच्छादनं जरायुदोषः॥ (जरायुगर्भस्यावेष्टन विशेषः) अर्थात् गर्भशय्यायां स्थितो यो बालस्तस्योपरि वेष्टितोऽल्पविका जरायुदोष इत्यभिप्रायः।

८-गर्भस्य पातः—स द्विविधः, एकः स्रावरूपः, अपरः पातरूपः। तथाहि-आचतुर्थात्ततो मासात् प्रस्रवेद् गर्भविद्रवः। ततः स्थिरशरीरस्य पातः पञ्चमष

अतिघनावयवत्वेन विशेषेण द्रवरूपतया गर्भविद्रवः कथ्यते।

आतृतीयाद्यतो मासाद् गर्भः स्रवति शोणितम्।
ऊर्ध्वं संयावभूतस्तु गर्भः पतति योषिताम्॥
विगुणपवने तु सप्तमादिमासेष्वपि पात इति।

के चिद्—गर्भोऽभिघातविषमाशनपीडनाद्यैः पक्कं द्रुमादिव फलं पतति क्षणे

करता है उसे **गर्भमक्कल्ल** कहते हैं। प्रसूति के समय कुपित वायु रक्त को रोककर उसी प्रकार शूल करने से उसे **प्रसूतिमक्कल्ल** कहते हैं। **मूढगर्भ**—गर्भिणी के अपचार से या प्रसूति के समय असमय में कांखने से वायु गर्भ को टेढ़ा तिरछा कर देता है, जिससे भ्रूण योनि मार्ग में अटक जाता है। इसे **मूढगर्भ** कहते हैं। इसकी गति यानी अटकने के ढंग के अनुसार इसे आठ प्रकार का मानते हैं तथा कोई कोई चार ही गतियां मानते हैं। उनके लक्षण अन्यत्र विस्तार से जानें। **विष्कम्भ**—गर्भिणी के पोषणाभाव से तथा गर्भ के नाभिनाड़ी के वात से शुष्क होने से रस धातु का वहन ठीक नहीं होता। इससे गर्भ सूखता है, कोख खाली सा मालूम होता है तथा गर्भ का स्पन्दन बहुत ही मन्द होता है। इसे **विष्कम्भक** कहते हैं। **गूढगर्भ**—गर्भ वात से सूख कर तथा जीवहीन होकर कभी कभी स्रोतों में ही लीन हो जाता है। उस गर्भ को **गूढगर्भ** कहते हैं। **जरायुदोष**—वातादि दोष से दूषित होकर जरायु दूषित होने से जरायु दोष होता है। इससे भी गर्भ दूषित होता है। **गर्भपात**—यह **स्राव** और **पात** भेद से दो तरह का होता है। चार मास के पहले गर्भ का **स्राव** होता है तथा उसके ऊपर गर्भ घन और स्थिर होने से उसका **पात** होता है। उचित प्रसव काल से पहले गर्भ के गिरने को **गर्भपात** कहते हैं ॥ १८१ ॥

स्तनरोगभेदाः—

पञ्चैव स्तनरोगाः स्युर्वातात्पित्तात्कफादपि। सन्निपातात्क्षताच्चैव···॥ १८२ ॥

स्तन रोग(१) पांच प्रकार के होते हैं। १–वातिक स्तनरोग, २–पैत्तिक स्तनरोग, ३–श्लैष्मिक स्तनरोग, ४–सान्निपातिक स्तनरोग और ५–क्षतज स्तनरोग।

विमर्श—दूध के दूषित होने से तथा क्षत होने से स्तन में शोथ, विद्रधि आदि होते हैं। उसे ही **स्तनरोग** कहते हैं। यह स्तन रोग सिर्फ प्रसूता या बच्चे वाली स्त्रियों को ही होते हैं। कन्याओं को या जब स्तन से दूध न आता हो उस समय ये रोग नहीं होते; क्योंकि धमनियों के द्वार संवृत रहने से दोष उनमें प्रवेश नहीं करते पर **रक्त** या **मांस** में अधिष्ठान करने वाले या **क्षतज** रोग उनके भी हो सकते हैं। यहां **स्तनरोग** से **स्तनविद्रधि** ही अभिप्रेत है ॥ १८२ ॥

स्तन्यरोगभेदाः—**···तथा स्तन्योद्भवा गदाः। बालरोगेषु कथिताः···॥ १८३ ॥**

---

(१) स्तनरोगाः ५

स्तनयोर्भवा रोगास्ते च शोथादिरूपा इत्यर्थः। तस्य सम्प्राप्तिः—

सक्षीरौ वाऽप्यक्षीरौ वा दोषः प्राप्य स्तनौ स्त्रियाः।
रक्तं मांसञ्च सन्दूष्य स्तनरोगाय कल्पते ॥

लक्षणम्—**पञ्चानामपि तेषां हि रक्तजं विद्रधिं विना।**
लक्षणानि समानानि बाह्यविद्रधिलक्षणैः ॥
पञ्चानां वातपित्तसन्निपातागन्तुजानाम्।

उक्त प्रकार दोष से स्तन्य (१)यानी दूध के भी पांच दोष होते हैं जो क्षीरालसादि बाल... में कहे जायँगे॥ १८३॥

स्त्रीदोषभेदाः—"'स्त्रीदोषाश्च त्रयः स्मृताः । अदक्षपुरुषोत्पन्नः सपत्नीविहितस्तथा। दैवाज्जातस्तृतीयस्तु'''॥ १८४॥

स्त्रीदोष(२) यानी स्त्री को मानसिक कष्ट देने वाले दोष भी तीन प्रकार के होते हैं जैसे-१-अदक्षपुरुषोत्पन्न, २-सपत्नीविहित और ३-दैवजात।

विमर्श—अदक्षपुरुषोत्पन्न—कामकला को न जानने वाले, नपुंसक, बाल, वृद्ध, पत्नी से प्रेम न करने वाले अथवा उसके गुणों का कदर न करने वाले पति से स्त्री के मन में जो संताप उत्पन्न होता है। उसे **अदक्षपुरुषोत्पन्न** कहते हैं। **सपत्नीविहित—**यदि स्त्री के रहते हुए भी पति दूसरा विवाह करता है तथा दूसरी स्त्री को चाहने लगता है, उससे स्त्री के मन में जो संताप होता है उसे **सपत्नीविहित** कहते हैं। सौतों का आपस में न पटना सर्वत्र प्रसिद्ध है ही, जिसको पति अधिक चाहता है वह दूसरी को किसी न किसी तरह सतायेगी ही। इन सब कारणों से जो दुःख होता है, वही **सपत्नीविहित** है। **दैवजात—**दैवयोग से पति-पुत्रादि के मरण आदि से जो दुःख उत्पन्न होता है उसे दैवजात कहते हैं॥ १८४॥

---

(१) **तथा स्तन्योद्भवा-गदा इति। तथेत्यनेन यथा स्तनरोगा दोषभेदेन पञ्च सङ्ख्यका उक्तास्तथैव दोषभेदेन क्षीरभेदा इति तात्पर्यार्थः। स्तन्यं=क्षीरम्।**
तस्य वातजादयो भेदाः—

सम्प्राप्तिः—**गुरुभिर्विविधैरन्नैर्दुष्टैर्दोषैः प्रदूषितम्।**
क्षीरं धात्र्याः कुमारस्य नानारोगाय कल्पते॥

अत एव ते रोगाः क्षीरालसादयो बालरोगेषु दर्शयिष्यामः।

लक्षणम्—**कषायं सलिलप्लावि स्तन्यं मारुतदूषितम्।**
कट्वम्ललवणं पीतराजीमत् पित्तसंयुतम्॥
कफदुष्टं घनं तोये निमज्जति च पिच्छिलम्।
द्विलिङ्गं द्वन्द्वजं विद्यात् सर्वलिङ्गं त्रिदोषजम्॥

शुद्धस्तन्य-माह— **अदुष्टञ्चाम्बुनिक्षिप्तमेकीभवति पाण्डुरम्।**
मधुरञ्चाविवर्णञ्च प्रसन्नं तत् प्रशस्यते॥

(२) स्त्रीदोषाश्च त्रयः—

१-अदक्षपुरुषः—**निजाहाराद्यर्जनेऽप्यसमर्थस्तेनोत्पन्नं दुःखम्।**
२-सपत्नीविहितः—**स्त्रीणां सपत्नीभावोऽतीवदुःखकरो विहितो विपक्षभूतत्वात्।**
"पृथक्शय्या च नारीणामशस्त्रवध उच्यते।" इति वचनात्।
३-दैवाज्जातः—**दैवं भागधेयं तज्जातः सहगमनप्रभृतिक इत्यभिप्रायः।**

सूतिकारोगभेदाः—

...तथा ये सूतिकागदाः । ज्वरादयश्चिकित्स्यास्ते यथादोषं यथाबलम् ॥ १८५ ॥

बालक उत्पन्न होने के बाद प्रसूता के ठीक उपचार न होने से या मिथ्या आहार-विहार से ज्वरादि रोग होते हैं। उनको (१)**सूतिकारोग** कहा जाता है। वे स्वतन्त्र रोग नहीं, पर अवस्था विशेष पर होने से पृथक् निर्देश किया जाता है। ज्वर, अतिसार, शोथ, शूल, भ्रम, आनाह तथा अन्यान्य कफवातिक रोग इस अवस्था में हुआ करते हैं। उनकी चिकित्सा दोष-बल आदि का विचार कर यथायोग्य करना चाहिये ॥ १८५ ॥

बालरोगभेदाः—**द्वाविंशतिर्बालरोगास्तेषु क्षीरभवास्त्रयः ।**
वातात्पित्तात्कफाच्चैव दन्तोद्भेदश्चतुर्थकः ।
दन्तघातो दन्तशब्दोऽकालदन्तोऽहिपूतनम् ॥ १८६ ॥
मुखपाको मुखस्रावो गुदपाकोपशीर्षके । पद्मारुणस्तालुकण्टो विच्छिन्नं पारिगर्भिकः१८७
दौर्बल्यं गात्रशोषश्च शय्यामूत्रं कुकूणकः ।
रोदनं चाजगल्ली स्यादिति द्वाविंशतिः स्मृताः ॥ १८८ ॥

पुरुष तथा स्त्रियों को होने वाले रोग कहने के बाद अब बालकों को होने वाले(२) रोग कहते हैं। बालकों को होने वाले रोग २२ प्रकार के होते हैं। **क्षीरालस** के तीन रोग यानी वातादि-दूषित स्तन पीने से होने वाले तीन रोग—१—वातज क्षीरालस, २—पित्तज क्षीरालस, ३-कफज क्षीरालस, ४—दन्तोद्भेद, ५—दन्ताघात, ६—दन्तशब्द, ७—अकालदन्त, ८—अहिपूतना, ९-मुखपाक, १०—मुखस्राव ११—गुदपाक, १२—उपशीर्षक, १३—पद्मारुण, १४—तालुकण्टक, १५-विच्छिन्न, १६—पारिगर्भिक, १७—दौर्बल्य, १८—गात्रशोष, १९—शय्यामूत्र, २०—कुकूणक, २१-रोदन और २२—अजगल्ली।

---

(१) सूतिकारोगाः—**प्रसूतविषये भवा ये रोगास्ते सूतिकारोगाः ।**
निदानं यथा—**मिथ्योपचारात् संक्लेशाद्विषमाजीर्णभोजनात् ।**
सूतिकायास्तु ये रोगा जायन्ते दारुणाश्च ते ॥
यथा—**ज्वरातिसारशोथाश्च शूलानाहबलक्षयाः ।**
तन्द्राऽरुचिप्रसेकाद्याः कफवातामयोद्भवाः ॥
कृच्छ्रसाध्या हि ते रोगाः क्षीणमांसबलाग्नितः ।
ते सर्वे सूतिकानाम्ना रोगास्ते चाप्युपद्रवाः ॥
सामान्यल०—**अङ्गमर्दो ज्वरः कम्पः पिपासा गुरुगात्रता ।**
शोथः शूलातिसारौ च सूतिकारोगलक्षणम् ॥

(२) बालरोगाः २२—**बाले भवा रोगा बालरोगाः । आषोडशाद्बालः स त्रिविधः क्षीरपः, क्षीरान्नादः, अन्नादः । एतेषु भवा रोगा बालरोगशब्दवाच्याः, यतः षोडश-वर्षपर्यन्तं बालग्रहचिकित्सा दृश्यते ।**

विमर्श—वातज क्षीरालस—वात से दूषित स्तन्यपान करने से बालक वातरोगों से पीडित होता है। बालक का स्वर क्षीण रहता है, बालक कृश हो जाता है तथा वायु, मूत्र और मल रुक जाते हैं। इसे **वातज क्षीरालस** कहते हैं। **पित्तज क्षीरालस**—पित्त से दूषित स्तन्यपान करने से बालक के शरीर से अधिक पसीना निकलता है, पतले दस्त आते हैं, बालक को कामला और पाण्डुरोग हो जाते हैं। इसे **पित्तज क्षीरालस** कहते हैं। **कफज क्षीरालस**—कफ से दूषित स्तन्यपान करने से बालक को कफके रोग हो जाते हैं। बालक के मुख से अधिक लार टपकती है, बालक अधिक सोता है तथा जड़ हो जाता है। उसके चेहरे तथा आँखों में शोथ हो जाता है और बालक पीये हुये दूध को वमन कर देता है। इसे **कफज क्षीरालस** कहते हैं। **दन्तोद्भेद**—स्वाभाविक दाँत निकलना। इस समय बालक को कोई भी रोग हो सकता है। विशेष कर ज्वर, पतले दस्त, कास, वमन तथा शिरःपीडा होते हैं। ये रोग दांत निकल चुकने पर स्वयं शान्त हो जाते हैं। **दन्तघात**—दांतों का गिरना **दन्तघात** कहलाता है। दांत दो तरह से गिरते हैं, एक **स्वाभाविक** तौर से तथा दूसरे **अभिघात** से। दोनों ही अवस्था में बालकों को कष्ट होता है। **दन्तशब्द**—दाँतों का बजना या कटकटाना **दन्तशब्द** कहलाता है। यह विशेष कर स्वप्नावस्था में होता है। अजीर्ण

तत्र क्षीरालसीयं निदा- **धात्र्यास्तु गुरुभिर्भोज्यैर्विषमैर्दोषलैस्तथा।**
नं लक्षणं च- **दोषा देहे प्रकुप्यन्ति ततः स्तन्यं प्रदुष्यति॥**
मिथ्याऽऽहारविहारिण्या दुष्टा वातादयस्त्रयः।
दूषयन्ति पयस्तेन जायन्ते व्याधयः शिशोः॥

१-३-वातादिजन्यक्षी- **वातदुष्टं शिशुः स्तन्यं पिबन् वातगदातुरः।**
रालसमाह- **क्षामस्वरः कृशाङ्गः स्याद्बद्धविण्मूत्रमारुतः॥**
स्विन्नो भिन्नमलो बालः कामलापाण्डुरोगवान्।
तृष्णालुरुष्णसर्वाङ्गः पित्तदुष्टं पयः पिबन्॥
श्लेष्मदुष्टं पिबन् क्षीरं लालालुः श्लेष्मरोगवान्।
निद्राऽन्वितो जडः शूनवक्त्राक्षश्छर्दनः शिशुः॥

४-दन्तोद्भेदमाह—**दन्तोद्भेदः शिशोः सर्वरोगाणां कारणं स्मृतम्।**
विशेषाज्ज्वरविड्भेदकासाक्षेपशिरोरुजाम्॥
अन्यत्राप्युक्तम्-**पृष्ठभङ्गे विडालानां बर्हिणां च शिखोद्गमे।**
दन्तोद्भेदे च बालानां नहि किञ्चित्तु दूषणम्॥

५-दन्तघातः-**दन्तपातः कथितः। स द्विधा, एकः समयोद्भवः, अपर आघात-नितः, तावपि दुःखकराविति प्रयोजनम्।**

६-दन्तशब्दः-**दन्तघर्षणं विशेषेण स्वप्नावस्थायां भवति,** कफजन्यदन्तहर्ष-**मित्तत्वात्। बाल्येऽतीव कफामया भवन्ति तेन बालरोगे** दन्तशब्दः कथितः॥

पेट में कृमि होने से या श्लेष्म से **दन्तहर्ष** होने से **दन्तशब्द** होता है। **अकालदन्त**—दाँत निकलने के स्वाभाविक समय के पूर्व या पश्चात् दन्तोद्गम को **अकालदन्त** कहते हैं। कभी कभी बालक सदन्त जन्म लेता है या जन्म होने के कुछ दिनों में दांत निकल आते हैं। ये दोनों अवस्था शास्त्रों में अदृष्टदोषकारक माने गये हैं। बालकों के पोषणाभाव से अस्थिक्षय (रिकेट्स) होने से दांत देर से निकलते हैं। **अहिपूतन**—बालक के सफाई के अभाव से गुदा में मल-मूत्र लगे रहने से, या पसीना जम जाने से गुदा में रक्त-कफजनित कण्डू होती है। खुजलाने से छोटी छोटी फुंसियां उत्पन्न हो जाती हैं, उन से स्राव होता है तथा वे सब मिल कर एक व्रण हो जाती हैं। समग्र गुदा में व्याप्त होकर यह व्रण घोर पीड़ादायक हो जाता है। इसे **अहिपूतन** कहते हैं। **मुखपाक**—पित्तसे दूषित होने से बालकों का मुख पक जाता है। उसे **मुखपाक** कहते हैं। **मुखस्राव**—बालकों के मुख से लार का अधिक बहना **मुखस्राव** कहलाता है। कहते हैं कि गर्भिणी के किसी चीज़ की खाने पीने की इच्छा की पूर्त्ति न होने से **मुखस्राव** होता है। **गुदपाक**—गुदा का पक जाना **गुदपाक** कहलाता है। **उपशीर्षक**—इसका लक्षण शिरोरोग वर्णन में कहा जा चुका है। कोई कोई बालकों को होने वाले **महापद्म** को **उपशीर्षक** कहते हैं। **पद्मारुण** या **पार्श्वारुण**—यह **महापद्म** का ही भेद है। इसमें मुख, तालु, वस्ति तथा साधारण त्वचा भी कमल के फूल से लाल हो जाते हैं। **तालुकण्टक**—तालुमांस में कफ क्रुद्ध होकर **तालु**-

---

७–अकालदन्तः–**अकालदन्तोत्थानेनानिष्टत्वाद्बालानां दुःखकर इति॥**

८–अहिपूतनामाह–**शकृन्मूत्रसमायुक्तेऽधौतेऽपाने शिशोर्भवेत्।**
स्विन्ने वाऽस्नाप्यमाने वा कण्डू रक्तकफोद्भवा॥
कण्डूयनात्ततः क्षिप्रं स्फोटः स्रावश्च जायते। एकीभूतं व्रणघोरं तं विद्यादहिपूतनम्॥

अन्यच्च–**दुष्टस्तन्यस्य पानेन मलस्याक्षालनेन च।**
कण्डूदाहरुजावद्भिः पिडकाभिः समन्विता॥
सम्भवति यथादोषं दारुणा ह्यहिपूतना॥

९–मुखपाकः–**मुखस्य पाको मुखपाकः।** १०–मुखस्रावः–**लालास्राव इत्यर्थः।**

११–गुदपाकः–**सोऽपि विकृतदोषस्वभावाद्भवतीति।**

१२–उपशीर्षकमाह–**कपालरोगे व्रणविशेष उपशीर्षक शब्दवाच्यः। अथवा पद्मनामानं विसर्पमाहुरेके॥**

यथा–**विसर्पस्तु शिशोः प्राणनाशनो बस्तिशीर्षजः।**
पद्मवर्णो महापद्मो रोगो दोषत्रयोद्भवः॥
शङ्खाभ्यां हृदयं याति हृदयाच्च गुदं व्रजेत्॥

१३–पार्श्वारुणः–**महापद्मभेदस्तत्र लोहितपद्मवर्णः। पद्मवर्णता मुखतालुनि बहिर्देशेषु भवति।**

१४–तालुकण्टकमाह–**तालुमांसे कफः क्रुद्धः कुरुते तालुकण्टकम्।**

कण्टक उत्पन्न करता है। इसमें सिर के ऊपर तालु (जहां स्पन्दन होता रहता है) धस जाता है। **विच्छिन्न—**इसे **तालुपात** भी कहते हैं। इसमें बालक स्तन पीने में अनमना रहता है, तालु में दर्द होने से मुश्किल से स्तन्यपान करता है। प्यासा रहता है तथा पतला मल-त्याग करता है। आँख, कण्ठ और मुख में दर्द होता है तथा बालक सिर को मुश्किल से धारण करता है। **पारिगर्भिक—**गर्भिणी माता के दूध पीने से बालक की खाँसी, अग्निमान्द्य, वमन, तन्द्रा, पतलापन, अरुचि और भ्रम हो जाते हैं तथा पेट कुछ बढ़ जाता है। इसे पारिगर्भिक कहते हैं। **दौर्बल्य—**प्रायः पोषणाभाव से बालक दिन दिन कमजोर हो जाते हैं। चेहरा मुरझा जाता है और सुन्दरता नष्ट हो जाती है। **गात्रशोष—**इस रोग में बालक के मांसक्षय होने से शरीर सूख जाता है। त्वक् भी रूक्ष और प्रभाहीन हो जाती है, पर चेहरा कान्तिमान् बना रहता है। साधारण में इसे **'सूखारोग'** या **'सुखण्डी'** कहते हैं। **शय्यामूत्र—**इस में प्रायः सोते सोते ही बालक बिस्तरे पर मूत्रत्याग कर देते हैं। मूत्र का परिमाण स्वाभाविक रहता है तथा बालक को कोई कष्ट नहीं होता। यह प्रायः निद्रालु और आलसी माताओं के उठकर मूत्र त्यागने की आदत न डालने से हो जाता है। कभी कभी यह आदत बड़ी अवस्था तक भी रह जाती है। **कुकूणक—**यह नेत्ररोग क्षीरदोष से होता है। इसके लक्षण नेत्ररोगों में कह आये हैं। **रोदन—**यह रोग प्रायः जन्म के पश्चात् अङ्गों के कुछ स्थिर होने के समय तक हुआ करता है। माता या धात्री बालक को उठाने वाली स्त्रियों की गलती से हो जाता है। कहीं की कोई संधि इसमें विच्युत हो जाती है जिससे बालक दर्द...

तेन तालुप्रदेशस्य निम्नता मूर्ध्नि जायते ॥

१५–विच्छिन्न (तालु-पात) माह– **तालुपातात् स्तनद्वेषः कृच्छ्रात् पानं शकृद्द्रवम् ।**
तृडाक्षकण्ठास्यरुजा ग्रीवादुर्धरता वमिः ॥

१६–पारिगर्भिकमाह–**मातुः कुमारो गर्भिण्याः स्तन्यं प्रायः पिबन्नपि ।**
कासाग्निसादवमथुतन्द्राकार्श्यारुचिभ्रमैः ॥
युज्यते कोष्ठवृद्ध्या च तमाहुः पारिगर्भिकम् ॥
रोगं परिभवाख्यं च युञ्ज्यात् तत्राग्निदीपनम् ॥

१७–दौर्बल्यं-**दुर्बलत्वम् । बालकस्य सततं बलहानिरित्यर्थः । हतौजा इत्यपरे।**

१८–गात्रशोषः–**गात्रक्षामता बालस्य दोषप्रभावाद् भवति ।**

१९–शय्यामूत्रं–**रात्रौ स्वप्नावस्थायां शय्यागतो बालोऽक्षीणपूर्वकं मूत्रयति दोषप्रभावात् ॥**

२०–कुकूणकमाह–**कुकूणकः क्षीरदोषात् शिशूनामक्षिवर्त्मनि ।**
जायते सरुजं नेत्रं कण्डूरञ्च स्रवेन्मुहुः ॥
शिशुः कुर्याल्ललाटाक्षिकूटनासाऽवघर्षणम्। शक्तो नार्कप्रभां द्रष्टुं न वर्त्मोन्मीलनक्षमः॥

२१–रोदनमाह-**शिशोस्तीव्रामतीव्रां च रोदनाल्लक्षयेद्रुजाम् ।**

स्तन्यपान त्याग कर केवल रोता रहता है। इसे अनुभवी स्त्रियां बालक की चेष्टा से स्थान का अन्दाजा लगा कर कुछ तेल दे हलके हाथ से मालिश करते हुए सन्धि-स्थापन कर देती हैं जिससे बालक चंगा हो जाता है। हम अपनी पूजनीया माता को इस तरह बालकों को चंगा करते हुए अक्सर देखा करते हैं। **अजगल्ली**—त्वचा पर कफवात से मूंग समान स्निग्ध, त्वक्सवर्ण और पीडाहीन ग्रन्थियां होती हैं। उन्हें **अजगल्ली** कहते हैं ॥ १८६-१८८ ॥

बालग्रहभेदाः—**तथा बालग्रहः ख्याता द्वादशैव मुनीश्वरैः।**

स्कन्दग्रहो विशाखः स्याच्छ्वग्रहश्च पितृग्रहः ॥ १८९ ॥

नैगमेयग्रहस्तद्वच्छकुनिः शीतपूतना।

मुखमण्डनिका तद्वत्पूतना चान्धपूतना।

रेवती चैव सङ्ख्याता तथा स्याच्छुष्करेवती ॥ १९० ॥

बालग्रह(१) की संख्या मुनीश्वरों ने १२ बतायी है। १-स्कन्दग्रह, २-विशाखग्रह,

---

स्रोतांस्यङ्गानि सन्धींश्च पश्येद् यत्नान्मुहुर्मुहुः ॥

२२-अजगल्लीमाह—स्निग्धाः सवर्णा ग्रथिता नीरुजो मुद्गसन्निभाः।

कफवातोत्थिता ज्ञेया बालानामजगल्लिकाः ॥

१-(१)बालग्रहाः १२-बालग्रहा अनाचारात् पीडयन्ति शिशुं यतः।

तस्मात् तदुपसर्गेभ्यो रक्षेद्बालं प्रयत्नतः ॥

२-तस्य सामान्यं लक्षणमाह-

क्षणादुद्विजते बालः क्षणात् त्रस्यति रोदिति। नखैर्दन्तैर्दारयति धात्रीमात्मानमेव च॥

ऊर्ध्वं निरीक्षते दन्तान् खादेत् कूजति जृम्भते।

भ्रुवौ क्षिपति दन्तौष्ठं फेनं वमति चासकृत् ॥

क्षामोऽति निशि जागर्त्ति शूनाक्षो भिन्नविट् स्वरः।

मांसशोणितगन्धी च न चाश्नाति यथा पुरा ॥

दुर्बलो मलिनाङ्गश्च नष्टसंज्ञश्च जायते। सामान्यं ग्रहजुष्टानां लक्षणं समुदाहृतम् ॥

एते ग्रहाः पूजाहेतोर्वा-धात्रीमात्रोरात्मनश्चापचाराच्छौचभ्रष्टान्मङ्गलाचारहीनान्।

लान् हिंसन्ति कृत्स्नान् त्रस्तान् दुर्जनांस्ताडितांश्च पूजाहेतोर्हिंस्युरेते कुमारान्॥

स्कन्दग्रहलक्षणम्-

त्रस्ताङ्गः क्षतजसगन्धिकः स्तनद्विड् वक्रास्यो हतचरणैकपक्षनेत्रः ॥

उद्विग्नः स सलिलचक्षुरल्परोदी स्कन्दार्त्तो भवति च गाढमुष्टिबन्धः ॥

ग्रह (स्कन्दापस्मार) नष्टसंज्ञो वमेत् फेनं संज्ञावानतिरोदिति।

माह- पूयशोणितगन्धित्वं स्कन्दापस्मारलक्षणम् ॥

नैगमेयमाह-छर्दिस्पन्दनकण्ठास्यशोषमूर्च्छाऽभिगन्धिताः।

ऊर्ध्वं पश्येदशेद्दन्तान् नैगमेयं ग्रहं वदेत् ॥

३-श्वग्रह, ४-पितृग्रह, ५-नैगमेयग्रह, ६-शकुनिग्रह, ७-शीतपूतना, ८-मुखमण्डनिका, ९-पूतना, १०-अन्धपूतना, ११-रेवतीग्रह, १२-शुष्करेवतीग्रह ।

विमर्श—ग्रह क्या है इसकी आलोचना हम उन्माद रोग की टीका में कर चुके हैं अतः यहां फिर कहने की आवश्यकता नहीं । बालग्रह के नाम से अनेक अद्भुत लक्षणयुक्त रोग-संघों का वर्णन किया गया है ॥ १८९-१९० ॥

चरणभेदरोगभेदाः—**तथा चरणभेदास्तु वातरक्तादिकाश्च ये ।**
द्विचत्वारिंशदुक्तास्ते रोगेष्वेव मुनीश्वरैः ॥ १९१ ॥

शकुनीमाह-त्रस्ताङ्गो भयचकितो विहङ्गगन्धिः स्रास्राववणपरिपीडितः समन्तात् ।
स्फोटैश्च प्रचिततनुः सदाहपाकैर्विज्ञेयो भवति शिशुः क्षतः शकुन्या ॥
शीतपूतनामाह-वेपते कासते क्षीणो नेत्ररोगो विगन्धता ।
छर्द्यतीसारयुक्तश्च शीतपूतनया शिशुः ॥
मुखमण्डनिका-प्रसन्नवर्णवदनः शिराभिरभिसंवृतः ।
मूत्रगन्धिस्तु बह्वाशी मुखमण्डनिकाग्रही ॥
पूतनाजुष्टमाह-अतीसारो ज्वरस्तृष्णा तिर्यक्प्रेक्षणरोदनम् ।
नष्टनिद्रस्तथोद्विग्नो ग्रस्तः पूतनया शिशुः ॥
अन्धपूतनमाह-छर्दिः कासो ज्वरस्तृष्णा वसागन्धोऽतिरोदनम् ।
स्तन्यद्वेषोऽतिसारश्च अन्धपूतनया शिशोः ॥
रेवतीजुष्टमाह-व्रणैः स्फोटैश्चितं गात्रं पङ्कगन्धं स्रवेदसृक् ।
भिन्नवर्चा ज्वरी दाही रेवतीग्रहलक्षणम् ॥
पितृग्रहलक्षणमाह-
रोमहर्षो मुहुस्त्रासः सहसा रोदनं ज्वरः । कासातीसारवमथुजृम्भातृट्शवगन्धताः ।
अङ्गेष्वाक्षेपविक्षेपशोषस्तम्भविवर्णताः । मुष्टिबन्धः स्रुतिश्चाक्ष्णो बालस्य स्युः पितृग्रहे ॥
श्वग्रहलक्षणमाह-कम्पो हृषितरोमत्वं स्वेदश्चक्षुर्निमीलनम् ।
बहिरायमनं जिह्वा दंशोऽन्तः कण्ठकूजनम् ॥
धावनं विटसगन्धत्वं क्रोशनं श्वानवच्छुनि ॥
शुष्करेवतीलक्षणमाह-जायते शुष्करेवत्यां क्रमात्सर्वाङ्गसंश्रयः ॥
असाध्यलक्षणं तु-केशशातोऽन्नविद्वेषः स्वरदैन्यं विवर्णता ।
रोदनं गृद्धगन्धित्वं दीर्घकालानुवर्त्तनम् ॥
उदरे ग्रन्थयो वृत्ता यस्य नानाविधं शकृत् ।
जिह्वाया निम्नता मध्ये श्यावं तालु च तं त्यजेत् ॥
भुञ्जानोऽन्नं बहुविधं यो बालः परिहीयते ।
तृष्णागृहीतः क्षामाक्षो हन्ति तं शुष्करेवती ।

पाद में होने वाले रोग ४२ प्रकार के होते हैं। ये रोग स्वतन्त्र नहीं हैं तत्तद्रोगों में ये अन्तर्भुक्त हो जाते हैं। अतः यहां उनका लक्षण पुनः नहीं कहा जाता है। ये वातरक्त पाद दाह, पाददारी अलसक आदि हैं ॥ १९१ ॥

वातादिदोषभेदाः—**द्विषष्टिर्दोषभेदाः स्युः सन्निपातादिकाश्च ये ।**
तेऽपि रोगेषु गणिताः पृथक्प्रोक्ता न ते क्वचित् ॥ १९२ ॥

वातादि दोषों (१)का भेद तारतम्य से ६२ प्रकार का होता है पर ये भी रोगों में अन्तर्भुक्त हो जाते हैं अतः पृथक् नहीं कहे जाते।

विमर्श—इनका विवरण इस प्रकार का है—एकोल्वण ३, द्वयुल्वण ३, हीनमध्याधिक ६, सम १ आदि ॥ १९२ ॥

पञ्चकर्मरोगभेदाः—**हीनमिथ्याऽतियोगानां भेदैः पञ्चदशोदिताः ।**
पञ्चकर्मभवा रोगा रोगेष्वेव प्रकीर्त्तिताः ॥ १९३ ॥

पञ्चकर्म(२) वमन, रेचन, निरूह, अनुवासन और नस्य के हीन, अति और मिथ्या योग से १५ प्रकार के रोग होते हैं।

विमर्श—इनका विवरण बस्तिविधि अध्याय में देखिये ॥ १९३ ॥

स्नेहादीनां हीनादियो- **स्नेहस्वेदा तथा धूमौ गण्डूषोऽञ्जनतर्पणे ।**
गजरोगभेदाः— **पीडा अष्टादशैतज्जास्ताश्च रोगेषु लक्षिताः ॥ १९४ ॥**

(३)स्नेह, स्वेद, धूमपान, गण्डूष, अञ्जन और तर्पण, इन ६ कर्म के हीन, मिथ्या और

---

(१) द्विषष्टिभेदाः-**द्वयुल्बणैकोल्बणैः षट् च हीनमध्याधिकाश्च षट् ।**
समश्चैको विकाराणां सन्निपातात् त्रयोदश ॥
अन्यच्च-**द्विषष्टिधा वदन्त्येते भूयिष्ठमिति निश्चयः ।**
त्रय एव पृथग् दोषा द्विशो नवसमाधिकैः ॥
त्रयोदशाधिकैकद्विसममध्योल्वणैस्त्रिशः । पञ्चाशदेवं तु सह भवन्ति क्षयमागतैः ॥
क्षीणमध्याधिकक्षीणक्षीणवृद्धैस्तथाऽपरः । द्वादशैवं समाख्यातास्त्रयो दोषा द्विषष्टिधा ॥

(२) पञ्चकर्मजरोगानाह-**पञ्चकर्मभवा इति वमनविरेचननिरूहानुवासननस्यानीतिपञ्चकर्माणि । तज्जाता विकारा रोगेष्वेव ज्ञातव्याः ।**
यदा वमनादिकं हीनमिथ्याऽतियोगेन कृतं तदा रोगत्वं स्याद्, यथा—
हीनमिथ्याऽतियोगेन यदा भवति देहिनाम् ।
पञ्चकर्म तदा नूनं रोगोत्पत्त्यै च केवलम् ॥
अत एव प्रत्येकं त्रिभेदेन पञ्चदश भेदाः पूर्यन्ते ।

(३)स्नेहादिमिथ्यायोगाः-**स्नेहादीनामपि अष्टादशपीडाः भेदाः कथिताः । यथा—**
स्नेहपान-स्वेद-विधि-धूमपान-गण्डूषाञ्जनतर्पणानि स्नेहादयः ।
अत्रापि हीनमिथ्याऽतियोगेनेतिसम्बन्धो बोध्यः ।

अति योग से भी १८ प्रकार के रोग होते हैं। इनका भी वर्णन स्व स्व अध्याय में कि जायगा ॥ १९४ ॥

शीतोष्णशल्यक्षारोपद्रवाः—
शीतोपद्रव एकः स्यादेकश्चोष्णोद्भवो मतः।
शल्योपद्रव एकश्च क्षाराच्चैकः स्मृतस्तथा ॥ १९५ ॥

अतिशीत(१) पाला आदि से होने वाला उपद्रव एक, अत्यन्त गर्मी लगने से होने वाला उपद्रव एक, शल्य का उपद्रव एक तथा क्षार का उपद्रव एक होता है ॥ १९५ ॥

विषस्य विविधा भेदाः—स्थावरं जङ्गमं चैव कृत्रिमं च त्रिधा विषम् ॥ १९६ ॥
तेषां च कालकूटाद्यैर्नवधा स्थावरं विषम्। जङ्गमं बहुधा प्रोक्तं तत्र लूता भुजङ्गमाः॥१९७॥
वृश्चिका मूषिकाः कीटाः प्रत्येकं ते चतुर्विधाः।
दंष्ट्राविषं नखविषं बालशृङ्गास्थिभिस्तथा ॥ १९८ ॥
मूत्रात्पुरीषाच्छुक्राच्च दृष्टेर्निश्वासतस्तथा।
लालायाः स्पर्शतस्तद्वत्तथा शङ्काविषं मतम् ॥ १९९ ॥
कृत्रिमं द्विविधं प्रोक्तं गरदूषीविभेदतः। सप्तधातुविषं ज्ञेयं तथा सप्तोपधातुजम् ॥२००॥
तथैवोपविषेभ्यश्च जातं सप्तविधं मतम्। दुष्टनीरविषं चैकं तथकं दिग्धजं विषम् ॥२०१॥
कपिकच्छुभवा कण्डूर्दुष्टनीरभवा तथा। तथा सूरणकण्डूश्च शोथो भल्लातजस्तथा॥२०२॥

विष (२)तीन प्रकार का होता है। स्थावर, जंगम और कृत्रिम। स्थावर विष कालकूट

(१) शीतादिजन्यरोगाः—अतिशीतेन जनित उपद्रवः, अतिशीतः कालः अतिशीतो देशः, अतिशीता क्रिया चेति।

उष्णः उपतापः, सोपि कालदेशक्रियाभेदेन त्रिविधः।

शल्यं द्विविधं शारीरमागन्तुकं चेति-यथा-शारीरागन्तुकं चैव द्विविधं शल्यमुच्यते। तत्र रोमनखादि धातवोऽन्नं मला श्च दुष्टाः दोषाः शारीरम्। लोहवेणुतृणादिमागन्तुकं दुःखमुत्पादयति ॥

क्षारोपद्रवाः—यथा—स क्षारो यदा अज्ञैः प्रयुक्तस्तदा रोगाय भवतीत्यभिप्रायः॥

तदुक्तं—विषाग्निशस्त्राशनिमृत्युकल्पः क्षारो भवत्यल्पमतिप्रयुक्तः।
स धीमता सम्यगनुप्रयुक्तो रोगान् निहन्यादचिरेण घोरान्॥

(२) विषरोगाः—स्थावर-जङ्गम-कृत्रिमभेदेन त्रिविधा उपद्रवाः—

१-तत्र स्थावरमाह—कालकूटो वत्सनाभः शृङ्गिकश्च प्रदीपनः।
हालाहलो ब्रह्मपुत्रो हारिद्रः शक्तुकस्तथा। सारास्ट्रिक इति प्रोक्ता विषभेदा अमी नव। केषाञ्चिन्मतेऽष्टादश भेदा भवन्ति, तेषु दश जातयस्त्याज्या अष्टौ ग्राह्या इति-

यथा—शक्तुकं मुस्तकं शृङ्गी बालुकं सर्षपाह्वयम्।
वत्सनाभं कार्यमन्यं श्वेतशृङ्गी तथाऽष्टमम्॥ इत्यष्टौ योजयेद् योगे कालकूटादि वर्जयेत्।

कालकूटादि यथा—कालकूटं मेषशृङ्गी हालाहलं च दर्दुरम्।

भेद से नौ प्रकार का होता है। **जंगम विष** अनेक भेदों का होता है। उनमें प्रधान—लूता सर्प, बिच्छू, चूहे, कीड़े हैं। ये प्रत्येक चार प्रकार के विष होते हैं। यथा–दांतविष, नखविष, बाल, सींग, हड्डी, मूत्र, पुरीष, शुक्र, दृष्टि, निश्वास, लार, स्पर्श तथा शंकाविष। **कृत्रिम विष**—दो प्रकार का होता है। **गर** और **दूषीविष, सातधातु** और **सात उपधातुओं** के भी विष जानना। **उपविषों से उत्पन्न विष** भी ७ प्रकार का जानना। **दुष्ट जल से उत्पन्न विष** तथा एक **दिग्धज विष, कॅवाच विष से उत्पन्न** कण्डू, **खराब जल से उत्पन्न** कण्डू, **सूरन से उत्पन्न** कण्डू तथा **भिलावे से उत्पन्न** शोथ भी सब विष से ही जानना।

विमर्श—इन सब का वर्णन **सुश्रुत** कल्पस्थान में देखो ॥ १९६–२०२ ॥

मदभेदाः—**मदश्चतुर्विधश्चान्यः पूगभङ्गाऽक्षकोद्रवैः ।**
चतुर्विधोऽन्यो द्रव्याणां फलत्वङ्मूलपत्रजः ॥ २०३ ॥

कर्कटं गह्वरं ग्रन्थि हारिद्रं रक्तश्रृङ्गिकम् । केशरं दशमं चेति बर्जनीयं भिषग्वरैः ॥

२–जङ्गममाह—जङ्गमं सर्पादिसम्भवं भवेत् तद् बहुधा प्रोक्तम्—तत्र लूता "मकडीशब्दवाच्यः" कीटविशेषो वा। भुजङ्गमाः सर्पास्ते चानेकविधातौः "वृश्चिकमूषकौ-प्रसिद्धौ। कीटा नानाविधा नानाकृतयश्च। ते लूतादयः प्रत्येकं चतुर्विधाः। जरायुजाण्डजस्वेदजोद्भिज्जाः ॥

दंष्ट्राविषमाह—एतेषां मध्ये केचिद्दंष्ट्राऽन्तर्गतविषोपद्रवाः—

केचिन्नखविषाः केचिद्वालश्रृङ्गास्थिविषा इत्यादयो ज्ञातव्याः। तथाहि—

भौमसर्पाणां दंष्ट्राविषम्। मार्जारमकरव्याघ्रादयो दंष्ट्रानखविषाः। विषहतास्थिमत्स्यास्थिप्रभृतयोऽस्थिविषाः। पिच्चिटकौण्डिकादयो मूत्रपुरीषविषाः। मूषिकादयः शुक्रविषाः, दिव्याः सर्पा दृष्टिनिश्वासविषाः। वृश्चिकवरटयुच्चिटकादयो-लालाविषाः, लूतालालास्पर्शविण्मूत्रशुक्रमुखसंदंशविषा इति। तथा शङ्काविषं मतमिति। उक्तप्रकारेणैव शङ्काविषमपि उपद्रवकरं भवति।

३–कृत्रिममाह—कृत्रिमं विषं गरदूषीभेदाद् द्विप्रकारं कथितम्।

गरविषं यथा—सौभाग्यार्थं स्त्रियः स्वेदरजोनानाऽङ्गजान् मलान् ॥
शत्रुप्रयुक्तांश्च गरान् प्रयच्छन्त्यन्नमिश्रितान् ॥

दूषीविषमाह—दूषितं देशकालान्नदिवास्वप्नैरभीक्ष्णशः ।
यस्मात्संदूषयेद्धातूंस्तस्माद् दूषीविषं स्मृतम् ॥

धातुविषमाह—धातवोऽत्र सुवर्णरजतादयः, ते यदा अशुद्धा ।
भक्षितास्तदा विषतुल्या इति तात्पर्यार्थः ॥

उपधातुविषमाह—यथा विषादजनकत्वाद्विषं तथा सप्तोपधातुजं विषमिति शेषः ।
उपधातवो हरितालादयः ॥

उपविषमाह—तथैवोपविषेभ्य इति सप्तविधं विषजातम्। उपविषमत्रार्कसेहु-

मद (१)नशा चार प्रकार का होता है। १—सुपारी से उत्पन्न मद। २—बहेड़े की गिरी से उत्पन्न मद, ३—भांग से उत्पन्न मद। ४—और कोदों से उत्पन्न मद। इससे अन्य प्रकार का मद चार प्रकार का होता है। वनस्पतियों के मूल, त्वक्, फल, और पत्र से उत्पन्न मद। इस तरह यह **मदरोग** भी चार प्रकार का होता है ॥ २०३ ॥

उपसंहारः—**इति प्रसिद्धा गणिता ये किलापद्रवा भुवि।**
असङ्ख्याश्चापरे धातुमूलजीवादिसम्भवाः ॥ २०४ ॥

इति शार्ङ्गधरसंहितायां पूर्वखण्डे रोगगणना नाम सप्तमोऽध्यायः।

इस तरह संसार में प्रचलित प्रधान प्रधान रोगों की गणना की गई। इनके अतिरिक्त धातु, मूल तथा जीवों से होने वाले उपद्रव तो असंख्य हैं। उनको गिनकर बताना असम्भव है। चतुर वैद्य अपने बुद्धि-चक्र से ऊहापोह कर स्वयं कारण-कार्य सम्बन्ध से उनका पता लगाकर उचित चिकित्सा करें ॥ २०४ ॥

इति सुबोधिनीनामिकायां श्रीशार्ङ्गधरसंहिता-भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः समाप्तः ॥

इति प्रथमखण्डः समाप्तः ॥ १ ॥

ण्डप्रभृतिकम्। यथा—

"अर्कसेहुण्डधत्तूरा लाङ्गली करवीरकः। गुञ्जाऽहिफेन इत्येताः सप्तोपविषजातयः॥"

नीरविषमाह—**दुष्टनीराणि व्यापन्नपानीयानि तज्जनितं विषं-विषादजनकत्वात्। तत्तु बाह्याभ्यन्तरं भवति। बाह्यं स्नानादिना, आभ्यन्तरं तु पानादेव ॥** यथा—

न पिबेत् पङ्कशैवालतृणपर्णाविलावृतम्। सूर्येन्दुपवनादृष्टमभिवृष्टं घनं गुरु॥
फेनिलं जन्तुसङ्कीर्णं दन्तग्राह्यतिशैत्यतः। अनार्त्तवं च यद्दिव्यमार्त्तवं प्रथमं च यत्॥
लूताऽदिजन्तुविण्मूत्रविषमं श्लेष्मदूषितम्।

दिग्धजविषमाह—**विषलिप्तं शस्त्रादिकं दिग्धं कथितं-तज्जनितं विषम्। तेन विषलिप्तशस्त्रहतो जन्तुर्दिग्धाहतः कथितः।**

स्पर्शजमाह—**स्पर्शमात्रेण विषादजनकत्वं स्पर्शजम्-यथा कपिकच्छूर्यां तत्फलभवा कण्डूर्जायते। एका दुष्टनीरभवा, एका सूरणजन्या कण्डूः, तथा भल्लातजः शोथ इत्यादि स्पर्शजविषम् ॥**

(१) मदमाह-**मदश्चतुष्प्रकारो ज्ञेयः-स च पूगभङ्गाऽक्षकोद्रवैः कृत्वेत्यर्थः। पूगं स्वल्पमदकरः, भङ्गा प्रसिद्धा, अक्षं बिभीतकफलमज्जा मदकरत्वात् 'तन्मज्जा मदकारी' इति वचनात्। कोद्रवाणि मदकराणि ग्राह्याणि। अन्योऽपि-फलमूलत्वक्पत्रभवः सामान्यो विहितः। फलं खाखसादि, फलनिर्यासः। त्वङ्मदः-आकल्लकेरिमेदादीनाम्। मूलमदः-क्षुद्रवदर्यादीनां मूलम्। पत्रमदः-जातिपत्रिकाभङ्गाप्रभृतीनामित्यर्थः।**

अथ
मध्यखण्डम् ।

स्वरसादिकल्पना-नाम-प्रथमोऽध्यायः ।

अथ पञ्च कषायाः—**अथातः स्वरसः कल्कः क्वाथश्च हिमफाण्टकौ ।**
ज्ञेयाः कषायाः पञ्चैते लघवः स्युर्यथोत्तरम् ॥ १ ॥

अथ शब्द से मङ्गलाचरण करके अब **प्रथमखण्ड** के बाद **स्वरसाध्याय** कहते हैं स्वरस, कल्क, क्वाथ, हिम और फाण्ट ये **पाँच कषाय** हैं । इनमें से आगे आगे के कषाय पहले से हल्के होते हैं ।

विमर्श—याने स्वरस (१) की अपेक्षा कल्क हल्का है, कल्क की अपेक्षा **क्वाथ या** काढ़ा हल्का है, काढ़े की अपेक्षा हिम और हिम की अपेक्षा **फाण्ट** हल्के होते हैं । **स्वरस** सबसे भारी और **फाण्ट** सबसे हल्का है ॥ १ ॥

स्वरसस्य लक्षणम्—**अहतात्तत्क्षणाकृष्टाद् द्रव्यात् क्षुण्णात्समुद्धरेत् ।**
वस्त्रनिष्पीडितो यः स रसः स्वरस उच्यते ॥ २ ॥

तत्क्षण काट या उखाड़ कर लाई हुई ताजी रसदार ओषधि को कूटकर कपड़े में रख कर निचोड़ने से जो रस प्राप्त होता है उसे **'स्वरस'** कहते हैं ।

विमर्श—यहां पर यह ध्यान में रखना चाहिये कि ओषधि अपनी गुण-संपत् से युक्त हो तथा कूटने के पहले उसे धोकर मिट्टी, मैल आदि भी दूर कर देवे ॥ २ ॥

स्वरसस्य द्वितीयं लक्षणम्—**कुडवं चूर्णितं द्रव्यं क्षिप्तं च द्विगुणे जले ।**
अहोरात्रं स्थितं तस्माद्भवेद्वा रस उत्तमः ॥ ३ ॥

यदि रसदार द्रव्य न मिले तो एक कुड़व द्रव्य सूखा ही लेकर चूर्ण करे और दो कुड़व जल में डालकर एक रात-दिन रखा रहने दे । फिर उसे मसलकर कपड़े से छान ले । इससे जो रस प्राप्त होता है वह भी उत्तम **स्वरस** होता है ।

---

(१) **स्वरस इति सद्योरसः, कल्को दृषदि पेषितः, क्वाथः क्वथितः कषायः, हिम-इति शीतकषायः । फाण्ट इति जलप्लावितं चूर्णम् ।**

इस प्रकार इसकी अलग २ परिभाषा हुई । तथा प्रत्येक के पूर्व वाली एक (दूसरे से) बलवान् है जैसे—

रसः कल्कः शृतः शीतः फाण्टश्चेति प्रकल्पना ।
पञ्चधैवं कषायाणां पूर्वं पूर्वं बलाधिका ॥

विमर्श—याने स्वरस के स्थान में इसे बरतना भी उत्तम है ॥

स्वरसस्य तृतीयं लक्षणम्-**आदाय शुष्कद्रव्यं वा स्वरसानामसम्भवे ।**
जलेऽष्टगुणिते साध्यं पादशिष्टं च गृह्यते ॥ ४ ॥

अथवा यदि रसदार द्रव्य न मिले या समय के अभाव से रातदिन भर न ठहरा [illegible] तो द्रव्य को सूखा ही लेकर आठ गुने जल डाल कर औटावे और चौथाई शेष रहने [illegible] उतार कर छान लेवे ।

विमर्श—इसे भी स्वरस के स्थान में ही ग्रहण करते हैं ॥ ४ ॥

स्वरसमात्रा—**स्वरसस्य गुरुत्वाच्च पलमर्धं प्रयोजयेत् ।**
निशोषितं चाग्निसिद्धं पलमात्रं रसं पिबेत् ॥ ५ ॥

स्वरस के भारी होने के कारण उसकी मात्रा आधा पल प्रयोग करे, एवं रात दिन [illegible] रखे हुये की अथवा औटा कर निकाले रस की मात्रा हलका होने के कारण एक पल [illegible] पीने को देवे ॥ ५ ॥

स्वरसे प्रक्षेप्यद्रव्याणि-**मधुश्वेतागुडक्षाराञ्जीरकं लवणं तथा ।**
तेषां परिमाणं च—**घृतं तैलं च चूर्णादीन्कोलमात्रान् रसे क्षिपेत् ॥ ६ ॥**

स्वरस में शहद, शक्कर, गुड़, क्षार, जीरा, नमक, घी, तेल और चूर्ण आदि [illegible] प्रक्षेप (१) करना हो वह एक कोल भर याने आधा तोला भर डाले ॥ ६ ॥

---

(१) जहाँ पर **मधु** आदिकों का प्रक्षेप देना हो वहाँ एक पल का अष्टमांश ([illegible] **कोल** कहते हैं) देना चाहिये । केवल मधु से आठ तरह की जो मधु की जाति है, वह [illegible] भना चाहिये । जैसे—

पौतिकं भ्रामरं क्षौद्रं माक्षिकं छात्रमेव च ।
आर्घ्यमौद्दालकं दालमित्यष्टौ मधुजातयः । इति ।

इसी प्रकार सब जगह विशेषता जाननी चाहिये । **श्वेता** से चीनी ग्रहण करना चा[illegible] **गुड़** प्रसिद्ध ही है, लेकिन कहीं २ दोषादिकों की अपेक्षा से इक्षु के अन्य विकार ([illegible] आदि) भी ग्रहण किया जाता है । **क्षाराः** शब्द से सब क्षारों का बोध है, पर नाम [illegible] रहने से सब जगह **यवक्षार** ही लेना चाहिये । **जीरक** प्रसिद्ध ही है, तथापि विशेष[illegible] जीरा और कृष्णजीरा (स्याहजीरा) मानना चाहिये, यदि विशेषता नहीं हो तो सा[illegible] (श्वेत) जीरा ही मानना चाहिये । **लवण** से भी सामान्यतः पांच तरह का लवण मा[illegible] चाहिये । जैसे—

"सिन्धुसौवर्चलोपेतं विडं सामुद्रमौद्भिदम्" इति ।

लेकिन नाम न रहने से **सैन्धव** लवण ही ग्रहण करना चाहिये ।

घृत और **तैल** से अनेक तरह का पक्वापक्व भेद होता है, पर जब नाम नहीं हो तो [illegible] से **गोघृत,** और **तैल** से **तिलतैल** ही ग्रहण करना चाहिये, जैसे—

अथ रोगानुसारेण स्वरसप्रयोगाः ।

तत्र प्रमेहेऽमृतास्वरसो धात्रीस्वरसश्च—

(१)स यथा—

अमृताया रसः क्षौद्रयुक्तः सर्वप्रमेहजित् ।
हरिद्राचूर्णयुक्तो वा रसो धात्र्याः समाक्षिकः ॥ ७ ॥

गुडूची के (२) स्वरस में शहद प्रक्षेप देकर पान करने से सब प्रकार के प्रमेह का नाश करता है। उसी प्रकार धात्री याने आँवले का स्वरस भी हल्दी का चूर्ण वा कल्क मिला हुआ और शहद प्रक्षेप कियां हुआ पीने से सब तरह के प्रमेह नष्ट होजाते हैं ॥ ७ ॥

रक्तपित्तादिषु वासक- **वासकः स्वरसः पेयो मधुना रक्तपित्तजित् ।**
स्वरसः— **ज्वरकासक्षयहरः कामलाश्लेष्मपित्तहा ॥ ८ ॥**

वासा (३) याने अडूसा के पत्ते का स्वरस शहद प्रक्षेप डालकर पीने से रक्तपित्त, ज्वर, खांसी, क्षय, कामला तथा कफपित्त को नष्ट करता है ॥ ८ ॥

कामलायां त्रिफलाऽऽदीनां स्वरसचतुष्टयम्—

त्रिफलाया रसः क्षौद्रयुक्तो दार्वीरसोऽथ वा ।
निम्बस्य वा गुडूच्या वा पीतो जयति कामलाम् ॥ ९ ॥

घृतेषु गोघृतं श्रेष्ठं तैलेषु तिलजं तथा ॥ इति ।

चूर्ण आदि से **त्रिकटु, त्रिफलादि** का चूर्ण ग्रहण करना चाहिये। **आदि** शब्द के ग्रहण से **क्षार, मूत्र, अरिष्ट, शुक्त** आदि रोगानुसार ग्रहण करना चाहिये। अथवा **गुटिका, अवलेह** आदि का भी आदि शब्द से ग्रहण हो सकता है ॥

(१) "स यथा" का यह अर्थ है कि:—

सः स्वरसः यथा भवति तथा उच्यते ।

सर्वप्रमेहजित् का अर्थ बीसों प्रकार के प्रमेह का नाश करने वाला जानना चाहिये।

दूसरे योग में **वा** शब्द से हरिद्रा के चूर्ण के अलावा हरिद्रा का **कल्क** भी देना समझना चाहिये, जैसे तन्त्रान्तर में कहा है कि:—

निशाकल्कयुतो धात्रीरसो वा माक्षिकान्वितः ।
मधुना त्रिफलाचूर्णं प्रमेहाणां विनाशनम् ॥ इति ।

गुडूची को स्वरस निकालने के पहले खूब साफ कर लेनी चाहिये ॥

(२) **"अमृता (गुडूची) का रस"** से तुरत निकाला गुडूची का रस जानना चाहिये।

(३) **वासकस्वरस** से अरूस के पत्ते का स्वरस ग्रहण करना चाहिये। इसमें जल का अंश बहुत कम होता है, अतः इसके पत्तों को स्वरस के लिये कूटते समय कुछ जल दे देना चाहिये वा अग्नि पर स्वेदित कर रस निकालना चाहिये वा **पुटपाक**-विधि से पकाकर स्वरस निकालना चाहिये ॥

१–त्रिफला का रस, २–दारुहल्दी का रस ३–नीमपत्र का स्वरस ४–अथवा गुरुच स्वरस, शहद प्रक्षेप देकर पान करने से ये योग कामला रोग को नाश करते हैं।

विमर्श--ये (१)चार योग हैं। त्रिफला और दारुहल्दी का औटाया स्वरस और नीमपत्र और गुडूची का ताजा स्वरस ग्रहण करना चाहिये। त्रिफला के लिये एक हरड़ दो बेहेड़ा और चार आमले लेवे। दारुहल्दी की छाल अथवा अभाव में काष्ठ ही ले लेवे ॥ ९ ॥

विषमज्वरे तुलसीद्रोण- **पीतो मरिचचूर्णेन तुलसीपत्रजो रसः।**
पुष्पीपत्रस्वरसौ— **द्रोणपुष्पीरसो वाऽपि निहन्ति विषमज्वरान्** ॥ १० ॥

तुलसीपत्र का स्वरस(२) अथवा द्रोणपुष्पी याने गूमा का स्वरस काली मिर्च के चूर्ण का प्रक्षेप देकर पीने से सब प्रकार के विषमज्वर–पारी, तिजारी चौथैया प्रभृति नष्ट हो जाते हैं।

विमर्श—मरिच का चूर्ण तीक्ष्ण होने के कारण उसका प्रक्षेप दो मासा भर करना चाहिये ॥ १० ॥

रक्तातीसारे जम्ब्वादि- **जम्ब्वाम्रामलकीनां च पल्लवोत्थो रसो जयेत्।**
स्वरसः— **मध्वाज्यक्षीरसंयुक्तो रक्तातीसारमुल्वणम्** ॥ ११ ॥

जामुन, और आमले के कोमल कोमल (३)पत्रों का स्वरस शहद, घी तथा दूध डालकर पीने से अधिक बढ़े हुए भी रक्तातीसार को नष्ट करता है ॥ ११ ॥

सर्वातिसारे निष्कण्टकबब्बूलदल–कुटजादित्वक्स्वरसौ—
स्थूलबब्बूलिकापत्ररसः पानाद्व्यपोहति।
सर्वातिसारान्श्योनाककुटजत्वग्रसोऽथवा ॥ १२ ॥

---

(१) त्रिफलादिक चारो योगों का स्वरस कामला का नाश करता है। यहां पर त्रिफला शब्द से **हरीतकी** आदि ही ग्रहण करना चाहिये। यद्यपि **त्रिफला** शब्द से द्राक्षा, काश्मरी, **परूषक** का भी बोध होता है, जैसे—

पथ्याबिभीतधात्रीभिस्त्रिफला महती स्मृता।
ह्रस्वा काश्मर्यमृद्वीकापरूषकफलैर्भवेत् ॥ इति।

तथापि गुणप्राधान्यात् तथा काश्मरी आदि के लिये विशेष उक्ति भी नहीं है इसलिये हरीतक्यादि ही **त्रिफला** शब्द से ग्रहण करना चाहिये। और चारो योगों में मधु का प्रक्षेप आवश्यक है ॥

(२) **तुलसीपत्रस्वरस** वो मरिच तथा **गूमापत्रस्वरस** वो मरिच का योग तिजैया हिकादि तथा सन्ततादि दोनों तरह के विषमज्वर को नाश करने वाला है।

(३) **पल्लव** शब्द से **कोमल पत्ता** ग्रहण करना चाहिये, और इन पत्तों का रस अरूसपत्ररस के समान ही उसी विधि से निकालना चाहिये। **उल्वण** शब्द से बढ़ा हुआ **तथा बहुत पुराना** ऐसा भी मानना चाहिये। इस योग का प्रयोग उसी अवस्था में करना चाहिये जब मल का पाक हो गया हो, क्योंकि यह योग ग्राही है।

स्थूल बबूल याने बिना काँटे के बबूल के पत्र का रस, अरलू के छाल का स्वरस और कुड़े के छाल का स्वरस प्रत्येक में शहद का प्रक्षेप डालकर पीने से सब तरह के अतिसार का नाश (१)हो जाता है ॥ १२ ॥

वृषणवातप्रतिश्याया- दिष्वार्द्रकस्वरसः— **आर्द्रकस्वरसः क्षौद्रयुक्तो वृषणवातनुत् ।**
श्वासकासारुचीर्हन्ति प्रतिश्यायं व्यपोहति ॥ १३ ॥

अदरख के रस में शहद डालकर पीने से अण्डकोष(२) में गये हुए वात का नाश करता है तथा श्वास, खाँसी, अरुचि और जुकाम को दूर करता है ॥ १३ ॥

पार्श्वादिशूलादिषु बीजपूररसः— **बीजपूररसः पानान्मधुक्षारयुतो जयेत् ।**
पार्श्वहृद्बस्तिशूलानि कोष्ठवातं च दारुणम् ॥ १४ ॥

बिजौरे नीबू का रस शहद और (३)जवाखार मिला कर पान करने से पसलियों (४)का शूल, हृदय (५)शूल तथा वस्ति या (६)पेंडू का शूल एवं पक्काशय (७)गत पीड़ा करने वाली वायु को जीतता है ।

विमर्श—अंग न कहने के कारण कुछ लोग बिजोरे के जड़ का स्वरस लेते हैं पर जड़ के रस से फल का **रस** अधिक गुणकारक होता है तथा प्रसिद्धि से फल ही लिया जाता है ॥१४॥

पित्तशूले शतावरीस्वरसः प्लीहाऽपच्योः कन्यास्वरसश्च—

शतावर्याश्च मधुना पित्तशूलहरो रसः । निशाचूर्णयुतः कन्यारसः प्लीहाऽपचीहरः ॥१५॥

शतावर के स्वरस में शहद डालकर पीने से पित्त के कोप से उत्पन्न हुआ शूल नष्ट हो

---

(१) इस योग का भी प्रयोग मल के पाक हो जाने पर ही करना चाहिये । तथा सर्वातिसार से सातो प्रकार का अतिसार जानना चाहिये ।

(२) वृषणवात से वातिक अण्डवृद्धि तथा उसकी पीड़ा जाननी चाहिये ।

(३) यहां **क्षार** शब्द से **यवक्षार** लेना चाहिये ।

(४) पार्श्वशूल के लक्षण— **रुणद्धि मारुतं श्लेष्मा कुक्षिपार्श्वव्यवस्थितः ।**
स संरुद्धः करोत्याश्वाध्मानं गुडगुडायनम् ॥
सूचीभिरिव निस्तोदः कृच्छ्राच्छ्वासी तदा नरः ।
नान्नं वाञ्छति नो निद्रामुपैत्यर्त्तिनिपीडितः ॥
पार्श्वशूलः स विज्ञेयः कफानिलसमुद्भवः ॥

(५) हृच्छूल के लक्षण—**कफपित्तावरुद्धस्तु मारुतो रसमूर्च्छितः ।**
हृदिस्थः कुरुते शूलमुच्छ्वासरोधकं परम् । स हृच्छूल इति ख्यातो रसमारुतसम्भवः ॥

(६) वस्तिशूल के लक्षण—**संरोधात्कुपितो वायुर्बस्तिमावृत्य तिष्ठति ।**
बस्तिवङ्क्षणनाभीषु ततः शूलोऽस्य जायते । विण्मूत्रवातसंरोधी बस्तिशूलः स मारुतात् ॥

(७) **कोष्ठवायुं पक्काशयगतं वायुम् ॥ १४ ॥**

जाता है तथा घीकुवाँर के पत्र का रस (गूदा) हलदी का चूर्ण डालकर पीने से प्लीहा यानी तिल्ली का बढ़ना और अपची रोग का हरण करता है ॥ १५ ॥

अपच्यादावलम्बुषास्वरसः— **अलम्बुषायाः स्वरसः पीतो द्विपलमात्रया ।**
अपचीगण्डमालानां कामलायाश्च नाशनः ॥ १६ ॥

अलम्बुषा याने गोरखमुण्डी का स्वरस दो पल मात्रा में शहद प्रक्षेप डाल कर पीने से अपची, गण्डमाला तथा कामला रोग को नाश करता है ।

विमर्श—इसकी दो पल(१) की मात्रा हल्का होने के कारण जानना ॥ १६ ॥

सूर्यावर्त्तार्द्धभेदकयोर्मुण्डीस्वरसः— **शशमुण्ड्या रसः कोष्णो मरीचैरवधूलितः ।**
जयेत्सप्तदिनाभ्यासात्सूर्यावर्त्तार्धभेदकौ ॥ १७ ॥

मुण्डी का स्वरस गुनगुना करके मरिच चूर्ण का प्रक्षेप कर लगातार पीने से सात दिन में सूर्यावर्त्त और अधकपारी रोग दूर हो जाते हैं ।

विमर्श—गूढार्थदीपिका टीकाकार **"शशमुण्डरसः कोष्णः"** का पाठ स्वीकार करते हैं । इस मत से खरगोश के सिर को अधकचरा कर उसे क्वाथ की विधि से रस लेकर गुनगुना गुनगुना ही मरिच चूर्ण का प्रक्षेप कर पान करे ॥ १७ ॥

सर्वोन्मादे ब्राह्मयादीनां स्वरसचतुष्टयम्— **ब्राह्मीकूष्माण्डषड्ग्रन्थाशङ्खिनीस्वरसाः पृथक् ।**
मधुकुष्ठयुताः पीताः सर्वोन्मादापहारिणः ॥ १८ ॥

१ ब्राह्मी, २ पेठा, ३ वच, ४ शंखपुष्पी इनमें से किसी एक का भी स्वरस लेकर उसमें कूट के चूर्ण और शहद डालकर पान करने से (२)हर तरह के उन्माद याने पागलपन दूर हो जाते हैं ॥ १८ ॥

कोद्रवजमदे कूष्माण्डकस्वरसः— **कूष्माण्डकस्य स्वरसो गुडेन सह योजितः ।**
दुष्टकोद्रवसञ्जातमदं पानाद्व्यपोहति ॥ १९ ॥

पेठे के स्वरस में गुड़ मिलाकर पीने से दुष्ट कोदो याने नशेला कोदो का नशा उतर जाता है।

विमर्श—यहाँ गुड़ कहने से उसके न मिलने पर खाँड़, चीनी आदि भी ले सकते हैं। गुड़ जहाँ लो और चाहे जिस काम के लिये लो यदि स्पष्ट न लिखा हो तो पुराना एक या तीन साल का ही लेवो ॥ १९ ॥

खड्गादिक्षतजव्रणे गाङ्गेरुकीस्वरसः— **खड्गादिच्छिन्नगात्रस्य तत्कालं पूरितो व्रणः ।**
गाङ्गेरुकीमूलरसैर्जायते गतवेदनः ॥ २० ॥

---

(१) दो पल की मात्रा पहले ही नहीं देनी चाहिये, पहले आधापल से प्रारम्भ कर दो पल तक करना चाहिये ।

(२) चारो योगों का स्वरस (सद्योरस) ग्रहण करना चाहिये अभाव में क्वथित रस देना चाहिये । **षड्ग्रन्था** से **शटी** ग्रहण करना चाहिये अभाव में **बच** लेना चाहिये तथा मधु और कूट का चूर्ण प्रत्येक योगों में देना चाहिये ।

खड्ग आदि से कट गये हुए घाव में यदि उसी क्षण गंगेरन की जड़ का(१)स्वरस भर दिया जाय तो सारा दर्द दूर हो जाता है ॥ २० ॥

अथ पुटपाकप्रकरणम्—

तत्र पुटपाकविधिकथने हेतुः— **पुटपाकस्य कल्कस्य स्वरसो गृह्यते यतः ।**
अतस्तु पुटपाकानां युक्तिरत्रोच्यते मया ॥ २१ ॥

क्योंकि कल्क का पुटपाक करके उसका स्वरस ग्रहण किया जाता है, इसलिये मैं यहाँ पुटपाक करने की विधि को कहता हूँ ॥ २१ ॥

पुटपाकविधिः— **पुटपाकस्य मात्रेयं लेपस्याङ्गारवर्णता ।**
लेपं च द्वयङ्गुलं स्थूलं कुर्याद्वाऽङ्गुष्ठमात्रकम् ॥ २२ ॥
काश्मरीवटजम्ब्वादिपत्रैर्वेष्टनमुत्तमम् । पलमात्रं रसो ग्राह्यः कर्षमात्रं मधु क्षिपेत् ॥
कल्कचूर्णद्रवाद्यास्तु देयाः स्वरसवद् बुधैः ॥ २३ ॥

पुटपाक की पहचान यह है कि जब ऊपर किया लेप अंगार सा लाल हो जावे तो उसे पक्व जाने । लेप की मात्रा दो अंगुल मोटी अथवा अंगूठे भर मोटी करे । गम्भारी, वड़, जामुन, आम आदि के पत्रों से कल्क को लपेटना अच्छा है ।

विमर्श—तात्पर्य यह कि जिस कल्क का पुटपाक करना हो पहले उस पर इन पत्तों में से किसी एक का पत्र लेकर लपेट ले और कच्चे डोरे से बांध दे । फिर उस पर अंगूठे भर मोटा गेहू के आटे का लेप कर देवे और उस पर गाढ़े गाढ़े मिट्टी का लेप दो अंगुल मोटा कर देवे। फिर उसे कण्डों की आग के अंदर रखकर पुट देवे । जब बाहर का लेप लाल सुख हो जावे तो उसे निकाल ले । यही (२)पुटपाक है । इस प्रकार पुटपाक कर उसे निकाल कपड़ में रखकर निचोड़ लेवे । इस रस की मात्रा एक पल याने चार तोला है । इसमें एक तोला भर शहद का प्रक्षेप करे । अन्यान्य कल्क, चूर्ण, क्षार, नमक आदि का यदि प्रक्षेप करना हो तो पूर्व स्वरस में कहे अनुसार डाले ॥ २२–२३ ॥

सर्वातिसारे कुटजपुट-**तत्कालाकृष्टकुटजत्वचं तण्डुलवारिणा ॥ २४ ॥**
पाकः— **पिष्टां चतुष्पलमितां जम्बूपल्लववेष्टिताम् ।**
सूत्रेण बद्धां गोधूमपिष्टेन परिवेष्टिताम् ॥ २५ ॥

(१) यहां पर **गाङ्गेरुकी मूल** की त्वचा का स्वरस जो लिखा है वहां सद्यः रस का ही प्रयोग करना चाहिये । व्रण के लिये क्वथित रस नहीं देना चाहिये । खड्गादि जो लिखा है वहां **आदि** शब्द से अन्य २ शस्त्र जानना चाहिये ।

(२) पुटपाक में अग्नि पर विशेष ध्यान देना चाहिये । प्रमाण की अग्नि से ही वह पक जाता है, पक जाने का प्रमाण चारो ओर लाल आजाना समझना चाहिये । अधिक अग्नि होने से गोला जले हुए अङ्गार की तरह हो जाता है । तथा यदि शुष्क द्रव्य का पुटपाक करना हो तो उसे श्लक्ष्ण चूर्ण कर चावल का धोवन वा वेष्टक पत्रों का ही स्वरस देकर गोला बनाकर पुटपाक कर रस निकालना चाहिये ।

लिप्तां च घनपङ्केन गोमयैर्वह्निना दहेत्। अङ्गारवर्णां च मृदं दृष्ट्वा वह्नेः समुद्धरेत्॥२६॥
ततो रसं गृहीत्वा च शीतं क्षौद्रयुतं पिबेत्।
जयेत्सर्वानतीसारान्दुस्तरान्सुचिरोत्थितान्॥ २७॥

तत्काल लाया हुआ कुड़ा की छाल चार पल लेकर उसे चावलों के धोवन (तण्डुलोदक) में पीसे, फिर उसका गोला बनाकर उस पर जामुन के पत्रों को लपेट कर सूत से बांध देवे और ऊपर गेहूँ के आटे को सान कर लेप कर देवे। फिर मिट्टी का गाढ़ा २ लेप ऊपर से दो अंगुल भर करे और उस गोले को कण्डों की आग में रख कर पकावे। जब मिट्टी अंगार के समान लाल हो जाय तब उसे आग में से निकाल लेवे। फिर मिट्टी आदि दूरकर भीतर के कल्क को कपड़े में रख निचोड़ लेवे। इस रस को ठंडा होने पर एक तोला शहद डाल कर पीवे। इससे सब प्रकार के दुरारोग्य और पुराने अतिसार दूर हो जाते हैं।

विमर्श—शहद हमेशा ठंडी चीजों के साथ तथा ठंडी अवस्था में ही प्रयुक्त होता है, उष्ण होने पर मधु विषतुल्य हो जाता है॥ २४–२७॥

तण्डुलोदकविधिः—**कण्डितं तण्डुलपलं जलेऽष्टगुणिते क्षिपेत्।**
भावयित्वा जलं ग्राह्यं देयं सर्वत्र कर्मसु॥ २८॥

कूटा पिछोड़ा साफ चावल एक पल ले आठगुने याने आठ पल जल में डाल कर कुछ मसल कर धोवे। फिर चावलों को अलग कर धोवन का ग्रहण करे। यही **तण्डुलोदक** है। इसे सब कामों में बरत सकते हैं॥ २८॥

सर्वातिसारेऽरलू पुट-**अरलुत्वक्कृतश्चैव पुटपाकोऽग्निदीपनः।**
पाकः— **मधुमोचरसाभ्यां च युक्तः सर्वातिसारनुत्॥ २९॥**

पूर्ववत् तत्काल लाई अरलू की छाल को पुटपाक कर उसका रस पीने से अग्नि दीप्त होती है। यदि उसमें मधु और मोचरस (मधु एक तोला, मोचरस ६ मासा) का प्रक्षेप देकर पीवे तो वह सब प्रकार के अतिसारों को जीतता है॥ २९॥

सर्वातिसारे न्यग्रोधादि—**न्यग्रोधादेश्च कल्केन पूरयेद्गौरतित्तिरेः।**
तित्तिरपुटपाकः— **निरन्त्रमुदरं सम्यक्पुटपाकेन तत्पचेत्॥**
तत्कल्कस्य रसः क्षौद्रयुक्तः सर्वातिसारनुत्॥ ३०॥

बड़, गूलर, पीपल, पिलखन (पाखर) तथा बेंत, इन पांचों की (अथवा **सुश्रुत** में कहे **न्यग्रोधादिगण** (१)में से यथालाभ वृक्षों की) छाल लेकर पूर्ववत् पीस लेवे। फिर एक

---

(१) **न्यग्रोधादिगण** से कई आचार्य सुश्रुत का न्यग्रोधादिगण ग्रहण करते हैं जैसे— **न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षमधूककपीतनककुम्भाम्रकोशाम्रचोरकपत्रजम्बूद्वयपियालमधुकरोहिणीवञ्जुलकदम्बबदरीतिन्दुकीशल्लकीलोध्रद्वयभल्लातकपलाशा नन्दीवृक्षश्चेति"** न्यग्रोधादिगणः।

गौरवर्ण का तीतर (१)लाकर उसके पेट को फाड़कर आँत आदि (२)निकाल देवे और इसी गुहा के अन्दर उपर्युक्त कल्क को भर देवे एवं पेट को सी देवे। फिर उस पर लेप आदि करके उसे पुट में पकावे। पक जाने पर निकाल, उस कल्क का रस निचोड़, ठण्डा होने पर शहद डाल कर पीने से सब प्रकार के अतिसार को मार भगाता है॥ ३०॥

सर्वातिसारे दाडिमपुट-पाकः— **पुटपाकेन विपचेत्सुपक्वं दाडिमीफलम्।**
तद्रसो मधुसंयुक्तः सर्वातीसारनाशनः॥ ३१॥

अच्छी तरह से पका हुआ (३)अनार लेकर उसे पीस, पुटपाक की विधि से पकावे और उसका रस निचोड़, ठण्डा होने पर शहद डाल कर पीवे तो सब प्रकार के अतिसार दूर होते हैं॥ ३१॥

छर्द्यां बीजपूरादिपुट-पाकः— **बीजपूराम्रजम्बूनां पल्लवानि जटाः पृथक्॥ ३२॥**
विपचेत्पुटपाकेन क्षौद्रयुक्तश्च तद्रसः।
छर्दिं निवारयेद्घोरां सर्वदोषसमुद्भवाम्॥ ३३॥

बिजौरा नीबू, (४)आम और जामुन अलग अलग, इनके कोमल पत्ते अथवा जड़ लेकर कल्क कर पूर्ववत् पुटपाक कर रस निचोड़े। इन रसों को शहद डालकर पीने से अत्यन्त कठिन सन्निपात (५)की छर्दि याने कै होना भी बन्द हो जाती है॥ ३२–३३॥

तथा कई आचार्य—

"न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षवेतसवल्कलैः" को मानते हैं। लेकिन **सुश्रुत** का न्यग्रोधादि अधिक लाभप्रद है। उसी को काम में लेना चाहिये नहीं सब मिल सके तो जितना हीं मिले वही लेवे, न हो सके तो यह न्यग्रोधादि भी काम में ले सकते हैं।

(१) **गौरतित्तिर** कहने का तात्पर्य्य यह है कि तित्तिर तो प्रायः सभी गुणकारी है पर गौरतित्तिर विशेष गुणकारी है—यथा –

तित्तिरिः सर्वदोषघ्नो विशेषाद् गौरतित्तिरिः। इति।

(२) तथा **निरन्त्र** करने का अर्थ है सिर्फ आँत ही नहीं यकृत्प्लीहादि सब निकाल कर तब यह कल्क भरे।

(३) सुपक्व अनार का फल कहने का यह अर्थ है कि उसमें अम्लता न हो, ।अम्ल होने से वह लाभकर नहीं होगा जैसे—

"दाडिमं दीपनं ग्राहि द्विधा स्वाद्वम्लभेदतः।
तयोः स्वादु त्रिदोषघ्नमम्लं वातबलासकृत" ॥ इति ॥

(४) यहाँ दो तरह का योग है एक बीजपूरादिकों का पल्लव से और दूसरी बीजपूरादिकों की जटा के त्वक् से इन दोनों योगों का अलग २ पुटपाक कर रस निकाल कर तब काम में लाना चाहिये।

(५) तथा **सर्वदोषसमुद्भवाम्** से त्रिदोषजनित जानना चाहिये।

रक्तपित्तादौ वासापुट- **पिष्टानां वृषपत्राणां पुटपाकरसो हिमः ।**
पाकः— **मधुयुक्तो जयेद्रक्तपित्तकासज्वरक्षयान् ॥ ३४ ॥**

अडूसे के पत्तों को पीस कर पुटपाक में पकावे । फिर उसका रस निचोड़ कर (१)ठंढा होने पर शहद मिला कर पीवे तो रक्तपित्त, खांसी, ज्वर और क्षय रोग को नाश करता है॥३४॥

कासश्वासादौ कण्टका- **पचेत्क्षुद्रां सपञ्चाङ्गां पुटपाकेन तद्रसः ।**
रीपुटपाकः— **पिप्पलीचूर्णसंयुक्तः कासश्वासकफापहः ॥ ३५ ॥**

छोटी कटेहली का पञ्चांग (जड़, छाल, पत्र, फूल एवं फल) लाकर उसे पीस पुटपाक में पकावें । फिर उसका रस निकाल पीपरों का चूर्ण डालकर पीवे तो खांसी, श्वास और कफ दूर होते हैं ॥ ३५ ॥

कासादौ विभीतकपुट- **विभीतकफलं किञ्चिद्घृतेनाभ्यज्य लेपयेत् ।**
पाकः— **गोधूमपिष्टेनाङ्गारैर्विपचेत्पुटपाकवत् ॥ ३६ ॥**
ततः पक्वं समुद्धृत्य त्वचं तस्य मुखे क्षिपेत् ।
कासश्वासप्रतिश्यायस्वरभङ्गाञ्जयेत्ततः ॥ ३७ ॥

बहेड़े के फल के ऊपर थोड़ा सा घी चुपड़ कर उस पर गेहूँ के साने हुए आटे का लेप कर देवे और कपड़ों के अङ्गारों पर रख कर पुटपाक की विधि से पाक करे। पाक होने पर निकाल, आटे का लेप आदि दूर कर, बहेड़े का छिलका (२)निकाल कर रख लेवे । इस छिलके को थोड़ा सा मुख में डाल कर चूसते रहने से खांसी, श्वास, प्रतिश्याय (नाक का बहना) एवं स्वरभंग को जीत लेता है ॥ ३६–३७ ॥

आमातीसारे शुण्ठीपुट- **चूर्णं किञ्चिद्घृताभ्यक्तं शुण्ठ्या एरण्डजैर्दलैः ।**
पाकः— **वेष्टितं पुटपाकेन विपचेन्मन्दवह्निना ॥ ३८ ॥**
तत उद्धृत्य तच्चूर्णं ग्राह्यं प्रातः सितासमम् ।
तेन यान्ति शमं पीडा आमातीसारसम्भवाः ॥ ३९ ॥

सोंठ (बैतरा) के चूर्ण में थोड़ा सा घी मिलाकर अरंड के पत्रों से ऊपर से लपेट कर सूत बांध, मिट्टी आदि का लेप कर मन्दी मन्दी आँच में पुटपाक की (३)विधि से पाक करे। फिर पाक हो जाने पर चूर्ण को निकाल कर रख लेवे । इस चूर्ण में समभाग चीनी मिला कर सुबह ही सेवन करने से आमातिसार (आँवदस्त) की सब तकलीफें दूर हो जाती हैं ३८–३९

---

(१) **हिमः** से ठण्ढा होने पर ऐसा समझना चाहिये न कि हिम जो कषाय-विशेष है उसे समझना चाहिये ।

(२) यहाँ इस पुटपाक का स्वरस नहीं लेवे त्वचा ही लेवे—जैसे आगे शुण्ठी-पुटपाक का चूर्ण लेने को कहेंगे ।

(३) यहाँ शुण्ठी-पुटपाक में अग्नि पर विशेष ध्यान रखना चाहिये, क्योंकि इसमें जल का अंश नहीं रहता है अतः कम ही अग्नि से पाक होजावेगा । तथा चूर्ण कपड़छन कर तब पुटपाक करना चाहिये ।

आमवातेऽन्यः शुण्ठीपु- **शुण्ठीकल्कं विनिक्षिप्य रसैरेरण्डमूलजः ।**
टपाकः— **विपचेत्पुटपाकेन तद्रसः क्षौद्रसंयुतः ।**
आमवातसमुद्भूतां पीडां जयति दुस्तराम् ॥ ४० ॥

सोंठ के कल्क को अरंड की जड़ के स्वरस के साथ पीस कर उसका पुटपाक करे। फिर उसका रस निचोड़ कर शहद डालकर पीने से कठिन से कठिन आमवात के दर्द भी दूर हो जाते हैं ॥ ४० ॥

अर्शोरोगे सूरणपुट- **सौरणं कन्दमादाय पुटपाकेन पाचयेत् ।**
पाकः- **सतैललवणस्तस्य रसश्चार्शोविकारनुत् ॥ ४१ ॥**

जिमीकन्द के कल्क को पुटपाक में पकाकर उसके रस में तेल और नमक का प्रक्षेप देकर पान करे तो बवासीर को नाश करता है।

विमर्श—विशेष निर्देश न होने से तिल तैल और सेंधानमक पूर्ववत् मात्रा में प्रक्षेप करे। किसी किसी के मत से कल्क में ही तेल और नमक मिला कर पाक करे और उसका रस पान करे। कोई कोई तेल से कडुआ तेल भी कहते हैं ॥ ४१ ॥

हृच्छूले पुटपाकजमृगश्रृ- **शरावसम्पुटे दग्धं शृङ्गं हरिणजं पिबेत् ।**
ङ्गभस्म— **गव्येन सर्पिषा युक्तं हृच्छूलं नाशयेद् ध्रुवम् ॥ ४२ ॥**

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायां मध्यमखण्डे स्वरसादिकल्पना नाम प्रथमोऽध्यायः ।

हिरण के सींग को छोटे छोटे टुकड़े कर दो सराइयों में बन्द कर ऊपर मिट्टी लीप देवे और पुटपाक में (१)भस्म करे। इस भस्म को गाय के घी में मिला कर चाटने से निश्चय ही हृदय का शूल नाश हो जाता है ॥ ४२ ॥

इति श्रीप्रयागदत्तशर्मायुर्वेदाचार्यकृतायां सुबोधिनीनामिकायां श्रीशार्ङ्गधरभाषाटीकायां द्वितीयखण्डे प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ॥ १ ॥

अथ काथकल्पनानाम-द्वितीयोऽध्यायः ।

क्वाथकल्पना— **पानीयं षोडशगुणं क्षुण्णे द्रव्यपले क्षिपेत् ।**
मृत्पात्रे क्वाथयेद् ग्राह्यमष्टमांशावशेषितम् ॥
तज्जलं पाययेद्धीमान्कोष्णं मृद्वग्निसाधितम् ॥ १ ॥

एक पल द्रव्य अधकचरा कर लेवे और उसमें सोलह गुना याने सोलह पल जल डाल कर मन्दी मन्दी आंच में पकावे। जल चुरते चुरते जब आठवां हिस्सा (२ पल) बच रहे तब उतार कर छान लेवे। इसको गुनगुना रहते ही पीवे। इसी को साधारण व्यवहार में काढ़ा(२)कहते हैं।

---

(१) भस्म बनाने के लिये १ तोला मृगशृङ्ग के लिये १ एक सेर कण्डे की अग्नि पर्याप्त है ॥

(२) मध्यमखण्ड के प्रथम अध्याय में **"अथातः स्वरसः कल्कः क्वाथश्चे"** त्यादि लिखा है उसे कई आचार्य इस प्रकार बताते हैं—

विमर्श—धीमान् कहने का मतलब यह कि द्रव्य की मृदुता कठिनता आदि देख कर जलमें भी कमी वेशी करे एवं इसी प्रकार मात्रा आदिमें भी पुरुषापेक्षा से न्यून या अधिक करे।

काढ़े के विषय में कुछ उपयोगी(१) बातें—

१—काढ़ा प्रायः अनेक द्रव्यों का एकत्र पकाया जाता है, पर यदि एक ही द्रव्य का

"अथात्र स्वरसः क्वाथः कल्कश्च हिमफाण्टकौ"

अर्थात् स्वरस के बाद कल्क होना चाहिये वा क्वाथ, तो श्लोक-क्रम में दोनों हो सकते है, पर अनुक्रमणिका में **"स्वरसः क्वाथफाण्टौ च हिमकल्कश्च चूर्णितम्"** ऐसा ही लिखा है, अतः स्वरस के बाद क्वाथ ही का वर्णन उचित है। अस्तु यहाँ स्वरसाध्याय के बाद क्वाथ कहते हैं।

(१) क्वाथ तैयार होने पर बिलकुल ठंढा न होने दे कुछ गर्म रहे तभी पीवे। अगर ठंढा हो जाय तो उसे दुबारा गर्म न करे क्योंकि दुबारा गर्म करने से उसमें दोष आजाता है। जैसे लिखा है—

"तैलं घृतं च पानीयं कषायं व्यञ्जनादिकम्। शृतशीतं पुनस्तप्तं तत्सर्वं विषवद् भवेत्"॥

काढ़ा बनाते समय अग्नि ज्यादा नहीं देना चाहिये मीठी आँच से पकाना चाहिये, मन्द आँच से पकाने से क्वाथ्य द्रव्य का अच्छी तरह से रस निकल आता है तथा जलने आदि का भय भी नहीं रहता है।

कैसे द्रव्य में कितना जल देना चाहिये उसका प्रमाण—

"चतुर्गुणे मृदौ द्रव्ये कठिनेऽष्टगुणं जलम्। अत्यर्थं कठिने देयं बुधैः षोडशिकं जलम्"

यह प्रायः स्नेहपाक-विषय का प्रचार है, क्वाथ प्रायः मृदु, मध्य, कठिन सब द्रव्यों के मेल का ही होता है, अतः कुछ आचार्यों की सम्मति है कि क्वाथ प्रायः अष्टगुण जल में ही पकाना चाहिये जैसे—

"मृद्वादिक्वाथ्यसंघाते मानानुक्तौ चिकित्सकाः।
मध्यस्योभयभागित्वादिच्छन्त्यष्टगुणं जलम्"॥

मात्रा भी दोषबलादिक देख कर ही देना चाहिये-जैसे लिखा भी है—

उत्तमस्य पलं मात्रा त्रिभिश्चाक्षैश्च मध्यमा। जघन्यस्य पलार्धेन स्नेहक्वाथ्यौषधेषु च॥

किसी २ का कहना है कि यह मात्रा विषाधिकार की है, दूसरे जगह चतुर्थांश क्वाथ लेना चाहिये। जैसे—

"क्वाथ्यद्रव्यपले वारि द्विरष्टगुणमिष्यते। चतुर्भागावशेषं तु पेयं पलचतुष्टयम्"॥

क्वाथ पाचनादिक-भेद से सात तरह के हैं-जैसे—

"पाचनो दीपनीयश्च शोधनः शमनस्तथा। तर्पणः क्लेदनः शोषी क्वाथः सप्तविधो मतः"

इसमें पाचन और शोधन के लिये चतुर्थांश लेना चाहिये। यथा—

"पाचनः शोधनीयश्च पादशेषः प्रशस्यते"।

काढ़ा करना हो तो मृदु द्रव्य में चौगुना, मध्यम में आठगुना और कठिन द्रव्य में सोलह गुना जल देकर काढ़ा सिद्ध करे। २–पाचन, दीपन, शोधन, शमन, तर्पण, क्लेदन और शोषण–ये सात प्रकार के क्वाथ होते हैं। पाचन और शोधन कषाय चतुर्थांश शेष लेना उत्तम है। शेष क्वाथ अष्टमांश शेष ग्रहण करे। ३–क्वाथ को मन्दाग्नि से ही पकावे, तेज आंच में काढ़ा ठीक नहीं बनता एवं वीर्य की हानि होती है। हां कठिन द्रव्य के काढे में मृदु की अपेक्षा से आंच अवश्य तेज रखे। ४–काढ़ा बनाते वक्त हांडी को ढकने से न ढाके, इससे काढ़ा भारी हो जाता है। ५–तेल, घी, पन्ना, काढ़ा तथा व्यञ्जनादिकों को ठण्डा होने पर फिर गरम नहीं करना चाहिये, इससे वे विषवत् हो जाते हैं। ६–इनके सिवाय और और क्वाथ सम्बन्धी नियमों को आर्षग्रन्थों से देख लेवें। स्थानाभाव से यहां नहीं लिखा ॥ १ ॥

क्वाथपर्यायनामानि—**शृतः क्वाथः कषायश्च निर्यूहः स निगद्यते ॥ २ ॥**

शृत, क्वाथ, कषाय और निर्यूह ये सब संस्कृत में काढ़े के पर्यायवाची शब्द कहे हुये हैं ॥२॥

क्वाथपानसमयः—**आहाररसपाके च सञ्जाते द्विपलोन्मितम् ।**
वृद्धवैद्योपदेशेन पिबेत्क्वाथं सुपाचितम् ॥ ३ ॥

अच्छी तरह से पकाया हुआ काढ़ा दो पल भर वृद्ध वैद्यों की आज्ञा से आहार-रसपाक हो चुकने पर(१) पीवे ।

विमर्श—याने जब खाया हुआ अन्न आदि बिलकुल हजम हो जाय तब पीना चाहिये। क्योंकि पेट में आहार रहते हुए ओषधि खाना अथवा पेट में ओषधि रहते अन्न खाना रोग को शान्त करने के बजाय अन्यान्य उपद्रवों को खड़ा कर देते हैं। जिन द्रव्यों का काढ़ा बनावे उन्हीं का गन्ध, वर्ण, रस आदि काढे में भी होना चाहिये तभी वह काढ़ा(२) उत्तम कहा जाता है। दो(३) पल की मात्रा साधारण पुरुष के लिये है, अधिक बलवान् मनुष्य को चार पल देवे॥ ३॥

शेष में अष्टमांश ही लेना चाहिये। कहीं २ अवशेष दो पल भी हो तो उसका विरोध भी नहीं है। बलाबल देखकर कार्य करना चाहिये। जैसे—

"दीप्तानलं महाकायं पाययेत् त्वञ्जलिं जलम् ।
अन्ये त्वर्धं परित्यज्य प्रसृतिं तु चिकित्सकाः ॥

(१) भोजन पच जाने पर ही औषध खाना चाहिये, या दवा पच जाने पर भोजन करना चाहिये नहीं तो विकार पैदा हो जाता है–जैसे—

"औषधशेषे भुक्तं पीतं तथौषधं सशेषेऽन्ने । न करोति गदोपशमं प्रकोपयत्यन्यरोगांश्च"

(२) **सुपाचितमिति—गन्धवर्णरसान्वितम्** अर्थात् जब अच्छी तरह क्वाथ्य द्रव्य पक जाय और औषध का गन्ध–वर्णादि क्वाथ में आजाय तब वह काढ़ा **सुपाचित** कहा जाता है–जैसे—

द्रव्यस्य गन्धवर्णश्च तुल्यं कार्यकरं विदुः ।

(३) क्वाथ की मात्रा अष्टमांश शेष होने पर ही (२ पल) पीना चाहिये यथा—

क्वाथे सितामधुनोः प्रक्षेप-परिमाणम्— **क्वाथे क्षिपेत्सितामंशैश्चतुर्थाष्टमषोडशैः ।**
वातपित्तकफातङ्के विपरीतं मधु स्मृतम् ॥ ४ ॥

काढ़े में प्रक्षेप देने के लिये चीनी काढ़े का चौथाई वात रोग में, आठवां भाग पित्त रोग में तथा सोलहवां भाग कफरोग में डाले । शहद की मात्रा इसके विपरीत है ।

विमर्श—याने वात रोग में काढ़े का सोलहवां भाग, पित्त में आठवां भाग एवं कफरोग में चौथाई भाग मधु डाले ॥ ४ ॥

चूर्णद्रव्याणां प्रक्षेपपरिमाणम्— **जीरकं गुग्गुलुं क्षारं लवणं च शिलाजतु ।**
हिङ्गु त्रिकटुकं चैव क्वाथे शाणोन्मितं क्षिपेत् ॥ ५ ॥

जीरा, गूगल, क्षार, नमक, शिलाजीत, हींग और त्रिकुटा-इनका प्रक्षेप काढ़े में एक (१) शाण भर (४ मासा) करे ॥ ५ ॥

द्रवद्रव्याणां प्रक्षेपपरिमाणम्— **क्षीरं घृतं गुडं तैलं मूत्रं चान्यद् द्रवं तथा ।**
कल्कं चूर्णादिकं क्वाथे निक्षिपेत्कर्षसम्मितम् ॥ ६ ॥

दूध, घी, (२)गुड़, तेल, मूत्र या अन्य कोई (३)द्रव पदार्थ, कल्क तथा चूर्ण आदि का प्रक्षेप एक कर्ष प्रमाण करे ॥ ६ ॥

पाकसमये क्वाथपात्रपिधाननिषेधः— **अपिधानमुखे पात्रे जलं दुर्जरतां व्रजेत् ।**
तस्मादावरणं त्यक्त्वा क्वाथादीनां विनिश्चयः ॥ ७ ॥

काढ़े आदि पकाने का नियम यह है कि पकाते समय पात्र का मुख न ढाँका जाय ऐसा करने से काढ़ा आदि भारी याने कठिनता से हजम होने वाले हो जाते हैं ॥ ७ ॥

सर्वज्वरे दाहादौ च गुडूच्यादिक्वाथः— **गुडूचीधान्यकारिष्टरक्तचन्दनपद्मकैः ।**
गुडूच्यादिगणक्वाथः सर्वज्वरहरः स्मृतः ॥
दीपनो दाहहृल्लासतृष्णाच्छर्द्यरुचीर्जयेत् ॥ ८ ॥

गुड़ूची, धनियां, नीम की अन्तर छाल, लाल चन्दन और पद्मकाष्ठ-यह गुड़ूच्यादि गण(४)

क्वाथत्यागमनिच्छन्तस्त्वष्टभागावशेषितम् । पारम्पर्योपदेशेन वृद्धवैद्याः पलद्वयम् ॥
तद्वद्विशुद्धं शुद्धाय कषायममृतोपमम् ॥

(१) हींग आदि की मात्रा क्वाथ में देने के लिये १ शाण लिखा है सो वर्त्तमान अवस्था के लिये अधिक है अस्तु १ से ५ रत्ती तक ही देना उचित होगा ।

(२) गुडोपलक्षितत्वेन सितावशिष्टाः सर्वे इक्षुविकारा गृह्यन्ते ।

(३) अन्यद् द्रवमिति तोयमद्यासवारिष्टशुक्तादिकम् ।

(४) गुडूच्यादिगण के लिये यह शंका हो सकती है कि वह प्रायः कर पित्त की शान्ति करता है, तो "**सर्वज्वरहरः**" क्यों कहा गया ? तो सब ज्वरों के लिये पित्तावरोधिनी क्रिया सिद्ध है, यथा—

"ऊष्मा पित्तादृते नास्ति ज्वरो नास्त्यूष्मणा विना ।
तस्मात् पित्तविरुद्धानि त्यजेत् पित्ताधिकेऽधिकम्" ॥

है। इसका काढ़ा हर प्रकार के ज्वर को नाश करता है तथा अग्नि को दीप्त करता और दाह, जी का मचलाना, प्यास, वमन और अरुचि को नाश करता है ॥ ८ ॥

ज्वरे नागरादिपाचनकाथः—**नागरं देवकाष्ठं च धान्यकं बृहतीद्वयम् ।**
दद्यात्पाचनकं पूर्वं ज्वरितानां ज्वरापहम् ॥ ९ ॥

सोंठ, देवदारु, धनिया, छोटी कण्टकारी, बड़ी कण्टकारी प्रत्येक ६–६ माशे लेकर क्वाथविधि से पका चुकने पर ज्वर के आरम्भ होते ही रोगी को पिला देना चाहिये । इससे ज्वरोत्पादक आमदोष का पाचन होकर ज्वर उतर जाता है ।

विमर्श—यह ज्वर के दोष को पचाने तथा उसकी वृद्धि को रोकने में अत्युत्तम अनुभूत योग है। इसका प्रयोग ज्वर की तरुणावस्था में किया जाता है ॥ ९ ॥

सर्वज्वरे क्षुद्राऽऽदिक्वाथः—**क्षुद्रा किराततिक्तं च शुण्ठी छिन्ना च पौष्करम् ।**
कषाय एषां शमयेत्पीतश्चाष्टविधं ज्वरम् ॥ १० ॥

छोटी कण्टकारी के जड़ की छाल, चिरायता, सोंठ, गुरुच, पोहकरमूल इन सबों का क्वाथ बनाकर पीने से आठ प्रकार के (वातज, पित्तज, कफज, द्वन्द्वज ३, सन्निपातज, आगन्तुक) ज्वर दूर होते हैं ॥ १० ॥

वातज्वरे क्वाथाः ।

गुडूच्यादिक्वाथः—**गुडूचीपिप्पलीमूलनागरैः पाचनं स्मृतम् ।**
दद्याद्वातज्वरे पूर्णलिङ्गे सप्तमवासरे ॥ ११ ॥

गिलोय, पिपरामूल, सोंठ, इनका पाचन कषाय पूरे २ लक्षण वाले वातज्वर में सातवें दिन देवे ।

विमर्श—क्योंकि वातज्वर का पाक(१) सातवें दिन हो जाता है इसलिये पाचन देना लाभप्रद होता है ॥ ११ ॥

शालिपर्ण्यादिक्वाथः—**शालिपर्णी बला द्राक्षा गुडूची सारिवा तथा ।**
आसां क्वाथं पिबेत्कोष्णं तीव्रवातज्वरच्छिदम् ॥ १२ ॥

सरिवन, बला, दाख, गुरुच और अनन्तमूल–इनका एकत्र काढ़ा बनाकर गुनगुना ही पीने से तीव्र वातज्वर नष्ट होता है ॥ १२ ॥

काश्मर्यादिक्वाथः—**काश्मरीसारिवाद्राक्षात्रायमाणाऽमृताभवः ।**
कषायः सगुडः पीतो वातज्वरविनाशनः ॥ १३ ॥

गम्भारी, अनन्तमूल, मुनक्के, त्रायमाण, गुडूची इन सब का काढा गुड़ प्रक्षेप देकर पीने से वातज्वर नष्ट हो जाता है ॥ १३ ॥

---

(१) वातज्वर में सात दिन बाद ही औषधादि का व्यवहार करना चाहिये क्योंकि सात दिन बाद ही वातज्वर का पाक होता है । जैसे—
वातिकः **सप्तरात्रेण दशरात्रेण पैत्तिकः । श्लेष्मको द्वादशाहेन ज्वरः पाकं नियच्छति ॥**
इसी प्रकार पित्त, श्लेष्मादि ज्वर में भी जानना ।

पित्तज्वरे क्काथाः ।

कट्फलादिपाचनक्काथः–**कट्फलेन्द्रयवापाठातिक्तामुस्तैः शृतं जलम् ।**
पाचनं दशमेऽह्नि स्यात्तीव्रे पित्तज्वरे नृणाम् ॥ १४ ॥

कायफल, इन्द्रजौ, पाठा, कुटकी, नागरमोथा–इनका काढ़ा तीव्र पित्तज्वर पर दसवें दिन पाचन देना चाहिये ।

विमर्श—क्योंकि पित्तज्वर का पाक दसवें दिन हो जाता है ॥ १४ ॥

पर्पटादिक्काथः—**पर्पटो वासकस्तिक्ता कैरातो धन्वयासकः ॥ १५ ॥**
प्रियङ्गुश्च कृतः क्काथ एषां शर्करया युतः । पिपासादाहपित्तास्रयुतं पित्तज्वरं जयेत् ॥ १६ ॥

पित्तपापड़ा, अडूसा, कुटकी, चिरायता, दुरालभा, फूलप्रियंगु–इन सबका काढ़ा शक्कर प्रक्षेप देकर पीने से पिपासा, दाह और रक्तपित्तयुक्त पित्तज्वर नष्ट हो जाता है ॥ १५-१६ ॥

द्राक्षाऽऽदिक्काथः—**द्राक्षा हरीतकी मुस्तं कटुकी कृतमालकः ।**
पर्पटश्च कृतः क्काथ एषां पित्तज्वरापहः । तृण्मूर्च्छादाहपित्तासृक्शमनो भेदनः स्मृतः ॥ १७ ॥

मुनक्के, हरड़, मोथा, कुटकी, अमलताश का गूदा और पित्तपापड़ा का काढ़ा पित्तज्वर को हरण करता तथा तृषा, मूर्च्छा, दाह और रक्तपित्त को शान्त करता तथा भेदन है ॥ १७ ॥

पर्पटक्काथप्रशंसा, तत्र वि-शेषश्च— **(एकः पर्पटकः श्रेष्ठः पित्तज्वरविनाशनः ।**
किं पुनर्यदि युज्येत चन्दनोशीरबालकैः)॥ १८ ॥

सिर्फ एक पित्तपापड़ा ही पित्तज्वर को दूर करने में श्रेष्ठ है, फिर यदि चन्दन, खस और सुगन्धबाला मिला दिया जाय तो बात ही क्या ?

विमर्श—याने इसके समान पित्तज्वर–नाशक और दूसरा नहीं क्काथ है ॥ १८ ॥

अथ कफज्वरे क्काथाः ।

तत्र बीजपूरकादिपाचनक्वाथः— **बीजपूरशिफापथ्यानागरग्रन्थिकैः शृतम् ।**
सक्षारं पाचनं श्लेष्मज्वरे द्वादशवासरे ॥ १९ ॥

बीजोरा नीबू के जड़, हरड़, सोंठ, पिपरामूल–इनसे बने काढ़े में जवाखार का प्रक्षेप देकर कफज्वर में बारहवें दिन पाचन के लिये देवे ॥ १९ ॥

भूनिम्बादिक्काथः—**भूनिम्बनिम्बपिप्पल्यः शटी शुण्ठी शतावरी ।**
गुडूची बृहती चेति क्काथो हन्यात्कफज्वरम् ॥ २० ॥

चिरायता, नीम का छाल, पीपर, कचूर, सोंठ, शतावर, गिलोय और बड़ी कटेहली का काढ़ा कफज्वर का नाश करता है ॥ २० ॥

---

(१) तन्त्रान्तर में इस क्काथ का नाम पञ्चतिक्त क्काथ है इसमें की पाचवीं वस्तु भूनिम्ब है और यह क्काथ अत्युपयोगी है । जैसे—

"क्षुद्रामृताभ्यां सह नागेरण सपुष्करश्चैव किराततिक्तम् ।
पिबेत्कषायं भुवि पञ्चतिक्तं ज्वरं निहन्त्यष्टविधं समग्रम्" ॥

अतः इस स्थान में भी क्षुद्रादिकों के साथ त्रिदोषहर होने से **चिरैता** मिला लेना चाहिये ।

पटोलादिकाथः—पटोलत्रिफलातिक्ताशटीवासाऽमृताभवः ।
क्वाथो मधुयुतः पीतो हन्यात्कफकृतं ज्वरम् ॥ २१ ॥

पटोलपत्र, त्रिफला, कुटकी, कचूर, अडूसा और गुडूची का काढ़ा शहद प्रक्षेप देकर पीने से कफज्वर को दूर करता है ॥ २१ ॥

अथ द्वन्द्वजज्वरे क्वाथाः ।

तत्र वातपित्तज्वरे पञ्च-पर्पटाब्दामृताविश्वकैरातैः साधितं जलम् ।
भद्रकाथः— पञ्चभद्रमिदं ज्ञेयं वातपित्तज्वरापहम् ॥ २२ ॥

पित्तपापड़ा, नागरमोथा, गिलोय, सोंठ और चिरायता—इन पाँचों को **'पञ्चभद्र'** कहते हैं, इनका काढ़ा वातपित्त—ज्वर को नष्ट करता है ॥ २२ ।

कफवातज्वरादौ लघु-क्षुद्राशुण्ठीगुडूचीनां कषायः पौष्करस्य च ॥ २३ ॥
क्षुद्राऽऽदिकाथः— कफवाताधिके पेयो ज्वरे वाऽपि त्रिदोषजे ।
कासश्वासारुचिकरे पार्श्वशूलविधायिनि ॥ २४ ॥

छोटी कटेहली, सोंठ, गिलोय और पोहकरमूल का काढा(१) कफवाताधिक ज्वर में पीवे अथवा खाँसी, श्वास, अरुचि तथा पसवाडों में शूल चलने वाले सन्निपात ज्वर में पीवे॥२३—२४॥

वातकफज्वरे आरग्वधा-आरग्वधकणामूलमुस्तातिक्ताभयाकृतः ।
दिकाथः— क्वाथः शमयति क्षिप्रं ज्वरं वातकफोद्भवम् ॥
आमशूलप्रशमनो भेदी दीपनपाचनः ॥ २५ ॥

अमलतास का गूदा, पीपरामूल, मोथा, कटुकी और हरड़, इनका काढ़ा पीने से शीघ्र ही वातकफ—जनित ज्वर शान्त हो जाता है। यह काढ़ा आमदोष से उत्पन्न शूल को नष्ट करता, दस्त लाता तथा दोषों का पाचन करता है और अग्नि को तेज करता है।

विमर्शः—इसे **'आरोग्यपञ्चक'** भी कहते हैं ॥ २५ ॥

पित्तश्लेष्मज्वरेऽमृताऽऽ-अमृतारिष्टकटुकामुस्तेन्द्रयवनागरैः ।
ष्टककाथः— पटोलचन्दनाभ्यां च पिप्पलीचूर्णयुक्शृतम् ॥ २६ ॥
अमृताष्टकमेतच्च पित्तश्लेष्मज्वरापहम् । छर्द्यरोचकहृल्लासदाहतृष्णाविनाशनम् ॥२७॥

गिलोय, नीम की छाल, कुटकी, नागरमोथा, इन्द्रजौ, सोंठ, पटोल और लालचन्दन का काढ़ा बना पीपर का चूर्ण प्रक्षेप देकर पीने से पित्तकफज्वर नष्ट हो जाता है तथा वमन, अरुचि, हृल्लास, दाह और प्यास दूर हो जाते हैं। इसे **अमृताष्टक** कहते हैं ॥ २६—२७ ॥

पित्तश्लेष्मज्वरादौ पटो-(पटोलं चन्दनं मूर्वातिक्तापाठाऽमृतागणः ।
लादिकाथः— पित्तश्लेष्मज्वरच्छर्दिदाहकण्डूविषापहः ।) ॥ २८ ॥

पटोलपत्र, लालचन्दन, मूर्वा, कुटकी, पाठा और गिलोय, इनका काढ़ा पीने से पित्तकफ

---

(१) इस दशमूल में पूर्व की पांच औषधों का पंचाङ्ग तथा पर की पांच ओषधियों का जड़ ग्रहण करना चाहिये।

का ज्वर, वमन, दाह, खुजली और विष के रोगों को नष्ट करता है ॥ २८ ॥

सर्वज्वरे कण्टकार्यादि-**कण्टकारीद्वयं शुण्ठी धान्यकं सुरदारु च ।**
क्वाथः— **एभिः श्रृतं पाचनं स्यात्सर्वज्वरविनाशनम् ॥ २९ ॥**

छोटी और बड़ी कटेहली (भटकटैया), सोंठ, धनियाँ और देवदारु का काढा सब प्रकार के ज्वर को नष्ट करता है ॥ २९ ॥

अथ सन्निपातज्वरे क्वाथाः--

तत्र दशमूलक्वाथः—**शालिपर्णीपृष्ठिपर्णीबृहतीद्वयगोक्षुरः ॥ ३० ॥**
बिल्वाग्निमन्थस्योनाककाश्मरीपाटलायुतैः ।
दशमूलमिति ख्यातं क्वथितं तज्जलं पिबेत् ॥ ३१ ॥
पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं वातश्लेष्मज्वरापहम् । सन्निपातज्वरहरं सूतिकादोषनाशनम् ॥ ३२ ॥
हृत्कण्ठग्रहपार्श्वार्त्तितन्द्रामस्तकशूलहृत् ॥ ३३ ॥

सरिवन, पिठवन, बड़ी कटेहली, छोटी कटेहली, गोखरू, बेल, अरणी, अरलू, गम्भारी और पाढ़ल, इन दसों के जड़ को एकत्र (१)'दशमूल' कहते हैं। इस दशमूल के काढ़े में पिप्पली के चूर्ण का प्रक्षेप देकर पीने से वातश्लेष्मज्वर, सन्निपातज्वर, सूतिकारोग, शोथ, ठंढ लगना, भ्रम, पसीना आना, खाँसी, श्वास, हृद्ग्रह, कण्ठग्रह, पार्श्वशूल, तन्द्रा और सिर के शूल इन रोगों को नष्ट करता है ॥ ३०–३३ ॥

अभयाऽऽदिक्वाथः—**अभयामुस्तधान्याकरक्तचन्दनपद्मकैः ।**
वासकेन्द्रयवोशीरगुडूचीकृतमालकैः ॥ ३४ ॥
पाठानागरतिक्ताभिः पिप्पलीचूर्णयुक्श्रृतम् ।
पिबेत्त्रिदोषज्वरजित्पिपासाकासदाहनुत् ॥ ३५ ॥
प्रलापश्वासतन्द्राघ्नं दीपनं पाचनं परम् ।
विण्मूत्रानिलविष्टम्भवमिशोषारुचिच्छिदम् ॥ ३६ ॥

हरड़, नागरमोथा, धनियाँ, रक्तचन्दन, पद्माख, अडूसा, इन्द्रजौ, खस, गिलोय, अमलतास का गूदा, पाठा, सोंठ और कुटकी इन सबका काढ़ा पीपर-चूर्ण का प्रक्षेप देकर पीने से त्रिदोषज्वर, प्यास, खाँसी, दाह, प्रलाप, श्वास, तन्द्रा को नाश करता, अग्नि को तेज करता, आम को पचाता एवं मल, मूत्र और वायु के रुकने को दूर करता तथा वमन, शोष और अरुचि को जीतता है ॥ ३४–३६ ॥

पिप्पल्यादिक्वाथः—**पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः ।**
वचासातिविषाऽजाजीपाठावत्सकरेणुकैः ॥ ३७ ॥
किराततिक्तकं मूर्वा सर्षपा मरिचानि च । कटुकं पुष्करं भार्ङ्गी विडङ्गं कर्कटाह्वयम् ॥ ३८ ॥
अर्कमूलं बृहत्सिंही श्रेयसी सदुरालभा । दीप्यकं चाजमोदा च शुकनासादिहिङ्गुभिः ॥ ३९ ॥
एतानि समभागानि गणोऽष्टाविंशको मतः । कषायमुपभुञ्जीत वातश्लेष्मज्वरापहम् ॥

हन्ति वातं तथा शीतं स्वेदजं प्रबलं कफम् ।
प्रलापं चातिनिद्रां च रोमहर्षारुची तथा ॥ ४१ ॥
महावातेऽपतन्त्रे च सर्वगात्रे च शून्यताम् । अयं सर्वज्वरान्हन्ति सन्निपातांस्त्रयादश ४२

पिप्पली, पिपरामूल, चाभ, चीतामूल, सोंठ, बच, अतीस, जीरा, पाठा, कुड़े की छाल, रेणुका, चिरायता, मूर्वा, सरसों, काली मिर्च, कुटकी, पोहकरमूल, भारंगी, बायबिडंग, आक की जड़, बड़ी कटेहली, हरड, दुरालभा, अजवायन, अजमोदा, श्योनाक, हींग ये अट्ठाइस चीजें मिलकर **'अष्टाविंशकगण'** कहलाते हैं। इनको समभाग में लेकर काढ़ा बनाकर पीने से वातकफ का ज्वर, वातरोग, शीत लगना, उरःक्षत; प्रबल कफ; प्रलाप; अधिक नींद आना, रोमहर्ष; अरुचि; कठिन वातरोग; अपतन्त्रक; सारा शरीर का सुन्न होना; हर प्रकार के ज्वर और तेरहों सन्निपात को नष्ट करता है।

विमर्श—बाह्योपयोग के लिये **अजमोद** के स्थान में **अजमोद** ही लिया जाता है पर **आभ्यन्तरोपयोग** में **अजमोद** के स्थान में **अजवायन** लिया जाता है ॥ ३७–४२ ॥

अष्टादशाङ्गक्वाथः—**कैरातकटुकीमुस्ताधान्येन्द्रयवनागरैः ।**
दशमूलमहादारुगजपिप्पलिकायुतैः ॥ ४३ ॥
कृतः कषायः पार्श्वार्त्तिसन्निपातज्वरं जयेत् । कासश्वासवमीहिक्कातन्द्राहृद्ग्रहनाशनः ४४

चिरायता; कुटकी; नागरमोथा; धनियाँ; इन्द्रजौ; सोंठ; दशमूल की दवाएँ; देवदारु और गजपीपर; इन अट्ठारह चीजों का काढ़ा (अष्टादशाङ्ग क्वाथ) बना कर पीने से पसवाड़ों का शूल; सन्निपात; खांसी; श्वास; वमन; हिचकी; तन्द्रा तथा हृदय के शूल को नष्ट करता है ४३–४४

कट्फलादिक्वाथः—**कट्फलाम्बुदभार्ङ्गीभिर्धान्यरोहिषपर्पटैः ।**
वचाहरीतकीशृङ्गीदेवदारुमहौषधैः ।
हिक्का कासं ज्वरं हन्ति श्वासश्लेष्मगलग्रहान् ॥ ४५ ॥

कायफल; नागरमोथा; भारंगी; धनियां; रोहिषतृण; पित्तपापड़ा; बच; हरड; काकडाशृङ्गी, देवदारु; सोंठ; इनका काढ़ा हिचकी; कास; सन्निपातज्वर; श्वास; कफ के रोग और गलग्रह को दूर करता है ॥ ४५ ॥

जीर्णज्वरे गुडूचीक्वाथः—**क्वाथो जीर्णज्वरं हन्ति गुडूच्याः पिप्पलीयुतः ॥ ४६ ॥**
पित्तज्वरे पर्पटक्वाथश्च—**तथा पर्पटजः क्वाथः पित्तज्वरहरः परः ।**
किं पुनर्यदि युज्येत चन्दनोदीच्यनागरः ॥ ४७ ॥

सिर्फ गिलोय के काढ़े में पीपरिचूर्ण डालकर पीने से पुराना बुखार दूर हो जाता है। इसी प्रकार सिर्फ एक पित्तपापडा का ही काढ़ा पित्तज्वर के नाशने में सबसे बढ़कर है; फिर यदि उसमें चन्दन; खस और सोंठ मिला दिया जाय तो बात ही क्या याने निःसन्देह नाश करेगा ॥ ४६–४७ ॥

जीर्णज्वरे निदिग्धिका- **निदिग्धिकाऽमृताशुण्ठीकषायं पाययेद्भिषक् ।**
ऽऽदिक्वाथः— **पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं श्वासकासार्दितापहम् ।**

पीनसारुचिस्वरभ्रंशशूलाजीर्णज्वरच्छिदम् ॥ ४८ ॥

छोटी कटेहली; गिलोय; सोंठ; इनका काढ़ा पीपरि का चूर्ण डालकर वैद्य श्वास; खांसी; अर्दितवात; पीनस; अरुचि; स्वर का बिगड़ना; शूल और जीर्णज्वर को नष्ट करने के लिये पिलावे ॥ ४८ ॥

प्रसूतिदोषे देवदार्वादि- (देवदारु वचा कुष्ठं पिप्पली विश्वभेषजम् ॥ ४९ ॥
क्वाथः— कट्फलं मुस्तभूनिम्बतिक्तधान्या हरीतकी ।
गजकृष्णा च दुःस्पर्शा गोक्षुरुर्धन्वयासकम् ॥ ५० ॥
बृहत्यतिविषा छिन्ना कर्कटं कृष्णजीरकम् ।
क्वाथमष्टावशेषं तु प्रसूतां पाययेत्स्त्रियम् ।
शूलकासज्वरश्वासमूर्च्छाकम्पशिरोर्त्तिजित्) ॥ ५१ ॥

देवदारु, वच, कूट, पीपर, सोंठ, कायफल, नागरमोथा, चिरायता, कुटकी, धनियां, हरड़, गजपीपल, जवासा, गोखरू, धमासा, कटेहली, अतीस, गिलोय, काकड़ाशृङ्गी, काला जीरा, सम भाग ले अष्टमांश शेष काढ़ा बनावे याने सोलहगुना जल देकर दुगुना शेष रखे और प्रसूता स्त्री को पिलावे तो शूल, खांसी, ज्वर, श्वास, मूर्च्छा, कपकँपी और सिर की पीड़ा को दूर करता है ॥ ४९-५१ ॥

अथ विषमज्वरे क्वाथाः—

तत्र शीतपूर्वविषमज्वरे क्षुद्राधान्यकशुण्ठीभगुडूचीमुस्तपद्मकैः ।
बृहत्क्षुद्राऽऽदिक्वाथः-रक्तचन्दनभूनिम्बपटोलवृषपौष्करैः ॥ ५२ ॥
कटुकेन्द्रयवा रिष्टभार्ङ्गीपर्पटकैः समैः ।
क्वाथं प्रातर्निषेवेत सर्वशीतज्वरच्छिदम् ॥ ५३ ॥

छोटी कटेहली, धनियाँ, सोंठ, गुरुच, नागरमोथा, पद्माख, लालचन्दन, चिरायता, पटोलपत्र, वासा, पोहकरमूल, कुटकी, इन्द्रजौ, नीम की छाल, भारंगी, पित्तपापड़ा इनको सम भाग ले काढ़ा बनाकर सुबह पिया करे तो हर प्रकार के (१)शीतज्वर नष्ट हो जायँगे॥५२-५३॥

विषमज्वरे मुस्ताऽऽदि मुस्ताक्षुद्रामृताशुण्ठीधात्रीक्वाथः समाक्षिकः ।
क्वाथः— पिप्पलीचूर्णसंयुक्तो विषमज्वरनाशनः ॥ ५४ ॥

नागरमोथा, छोटी कटेहली, गिलोय, सोंठ, आमले, इनका काढा शहद डाल कर और पीपर चूर्ण प्रक्षेप देकर पीने से विषमज्वर शान्त हो जाते हैं ॥ ५४ ॥

सन्ततादिज्वरे पटोलादि-पटोलेन्द्रयवादारुत्रिफलामुस्तगोस्तनैः ।
क्वाथः — मधुकामृतवासानां क्वाथं क्षौद्रयुतं पिबेत् ॥ ५५ ॥

---

(१) शीतज्वर मे वातश्लेष्म ज्वर (मलेरिया) जानना चाहिये जैसे—
"त्वक्स्थौ श्लेष्मानिलौ शीतमादौ जनयतो ज्वरे ।"
इस वचन से शीतज्वर को मलेरिया जानना ।

सन्तते सतते चैव द्वितीयकतृतीयके ।
ऐकाहिके वा विषमे दाहपूर्वे नवज्वरे ॥ ५६ ॥

पटोलपत्र, इन्द्रजौ, देवदारु, हरड़, बहेड़ा, आंवला; नागरमोथा, मुनक्का, मुलेहठी, गुरुच, अडूसा–इनका काढ़ा शहद मिला कर पीवे तो सन्ततज्वर, सततज्वर, दुजारी, तिजारी, इकतरा, विषमज्वर, दाह होकर आने वाले ज्वर तथा नवीन ज्वर शान्त हो जाते हैं ॥ ५५–५६ ॥

ऐकाहिकज्वरे पटोलादि काथः— पटोलत्रिफलानिम्बद्राक्षाशम्पाकवासकैः ।
क्वाथः सितामधुयुतो जयेदैकाहिकं ज्वरम् ॥ ५७ ॥

पटोलपत्र, त्रिफला; नीम की छाल; मुनक्के; धमासा; अडूसा; इनका काढ़ा बनाय; चीनी और शहद का प्रक्षेप देकर पिलाने से ऐकाहिक या इकतरा ज्वर शान्त हो जाता है ॥ ५७ ॥

तृतीयकज्वरे गुडूच्यादिक्वाथः— गुडूचीधान्यमुस्ताभिश्चन्दनोशीरनागरैः ॥ ५८ ॥
कृतं क्काथं पिबेत्क्षौद्रसितायुक्तं ज्वरातुरः ।
तृतीयज्वरनाशाय तृष्णादाहनिवारणम् ॥ ५९ ॥

गुरुच; धनियाँ; नागरमोथा; लालचन्दन; खस; सोंठ; इनके काढ़े में चीनी और शहद का प्रक्षेप देकर पिलाने से तृतीयक या तिजारी ज्वर नष्ट होता एवं प्यास और दाह भी शान्त होते हैं ॥ ५८–५९ ॥

चातुर्थिकज्वरे देवदार्वादिक्वाथः— देवदारुशिवावासाशालिपर्णीमहौषधैः ।
धात्रीयुतं श्रृतं शीतं दद्यान्मधुसितायुतम् ॥ ६० ॥

देवदारु; हरड़; अडूसा; सरिवन; सोंठ और आंवले; का काढ़ा बनाय; (१)ठंडा होने पर शहद डाल कर पीने से चौथिया ज्वर, श्वास; खांसी तथा मन्दाग्नि दूर होते हैं ॥ ६० ॥

ज्वरातीसारे गुडूच्यादि काथः— गुडूचीधान्यकोशीरशुण्ठीबालकपर्पटैः ।
बिल्वप्रतिविषापाठारक्तचन्दनवत्सकैः ॥ ६१ ॥
किरातमुस्तेन्द्रयवैः क्वथितं शिशिरं पिबेत् ।
सक्षौद्रं रक्तपित्तघ्नं ज्वरातीसारनाशनम् ॥ ६२ ॥

गिलोय; धनियां; खस; सोंठ; सुगन्धबाला; पित्तपापड़ा; बेलगिरी; अतीस; पाठा; लालचन्दन; कूड़े की छाल; चिरायता; नागरमोथा; इन्द्रजौ–इनका काढ़ा ठंडा कर शहद डाल कर पीने से रक्तपित्त और ज्वरातीसार शान्त होते हैं ॥ ६१–६२ ॥

नागरादिक्वाथः—नागरं कुटजो मुस्तं भूनिम्बातिविषाऽमृताः ।
एभिः कृतं पिबेत्क्काथं ज्वरातीसारनाशनम् ॥ ६३ ॥

---

(१) श्रृतं शीतं से औटा कर ठंडा किया हुआ काढ़ा जानना चाहिये क्योंकि इस काढ़े में मधु देना है और मधु गर्म काढ़े में देने से दोषोत्पादक होता है। जैसे—

उष्णैर्विरुध्यते शीघ्रं विषान्वयतया मधु ।
उष्णार्त्तमुष्णैरुष्णं वा तन्निहन्ति यथा विषम् ॥

सोंठ; इन्द्रजौ; नागरमोथा; चिरायता; गिलोय; इनका (१)काढ़ा पीने से ज्वरातीसार नष्ट होता है ॥ ६३ ॥

आमशूले धान्यपञ्चक-क्वाथः— **धान्यबालकबिल्वाब्दनागरैः साधितं जलम् ।**
आमशूलहरं ग्राहि दीपनं पाचनं परम् ॥ ६४ ॥

धनियां; नेत्रवाला; वेलगिरी; नागरमोथा; सोंठ; इनसे तैयार किया काढ़ा आमजनित शूल को नष्ट करता एवं ग्राही; दीपन और पाचन होता है ॥ ६४ ॥

आमवाते धान्यनागरज-क्वाथः— **धान्यनागरजः क्वाथः पाचनो दीपनस्तथा ।**
एरण्डमूलयुक्तश्च जयेदामानिलव्यथाम् ॥ ६५ ॥

धनियां और सोंठ का काढ़ा दीपन तथा पाचन होता है; एवं उसमें यदि अरंड की जड़ भी मिला दी जाय तो वह (२)काढ़ा आमवात को शान्त करता है ॥ ६५ ॥

सामरक्तातीसारे वत्सकादिक्वाथः— **वत्सकातिविषाबिल्वमुस्तबालकजः शृतः ।**
अतीसारं जयेत्सामं चिरजं रक्तशूलजित् ॥ ६६ ॥

कुड़े की छाल, अतीस, बेलगिरी, नागरमोथा, नेत्रबाला, इनका काढ़ा पुराने आमातीसार को नाश करता तथा शूल चलने वाले रक्तातिसार को भी शान्त करता है ॥ ६६ ॥

सर्वातीसारे कुटजाष्टक-क्वाथः— **कुटजातिविषापाठाधातकीलोध्रमुस्तकैः ।**
ह्रीवेरदाडिमयुतैः कृतः क्वाथः समाक्षिकः ॥ ६७ ॥
पेयो मोचरसेनैव कुटजाष्टकसंज्ञकः । अतीसाराञ्जयेद्दाहरक्तशूलामदुस्तरान् ॥ ६८ ॥

इन्द्रजौ, अतीस, पाठा, धाय के फूल, लोध, नागरमोथा, नेत्रबाला, दाडिमफल-इनका काढ़ा शहद तथा मोचरस डाल कर पीने से सब तरह के अतिसार, दाह, रक्तशूल और कठिन आमशूल को नष्ट करता है । इस काढ़े का नाम **कुटजाष्टक** है ॥ ६७-६८ ॥

चिरजातीसारे ह्रीवेरादि-क्वाथः— **ह्रीबेरधातकीलोध्रपाठालज्जालुवत्सकैः ।**
धान्यकातिविषामुस्तागुडूचीबिल्वनागरैः ॥ ६९ ॥
कृतः कषायः शमयेदतीसारं चिरोत्थितम् ।
अरोचकामशूलास्रज्वरघ्नः पाचन स्मृतः ॥ ७० ॥

नेत्रबाला, धाय के फूल, लोध, पाठा, लजालू याने छुईमुई, कुड़े की छाल, धनियां, अतीस, नागरमोथा, गिलोय, बेलगिरी, सोंठ, इनका काढ़ा पुराने अतिसार को भी शान्त कर देता है

---

(१) कहीं २ पर ज्वरातिसार के लिये इस क्वाथ की बड़ी प्रशंसा है।

नागरातिविषामुस्ताभूनिम्बामृतवत्सकैः ।
सर्वज्वरहरः क्वाथः सर्वातीसारनाशनः ॥

(२) इस क्वाथ की प्रशंसा इस प्रकार भी है—

धान्यनागरवातारिमूलं क्वथितशीतलम् ।
आमशूलं विबन्धघ्नं स्मृतं दीपनपाचनम् ॥

तथा अरोचक, आमशूल, रक्तदोष तथा ज्वर का नाश करता और आम को पचाता है ॥६८-७०॥

बालातिसारे धातक्या- **धातकीबिल्वरोध्राणि बालकं गजपिप्पली ॥ ७१ ॥**
दिक्वाथः— **एभिः कृतं शृतं शीतं शिशुभ्यः क्षौद्रसंयुतम् ।**
प्रदद्यादवलेहं वा सर्वातीसारशान्तये ॥ ७२ ॥

धाय के फूल, बेलगिरी, लोध, नेत्रबाला, गजपीपर, इनका काढ़ा ठण्डा कर शहद डाल कर बच्चों को पिलावे अथवा इनका समभाग चूर्ण कर शहद में चटावे तो सब प्रकार के अतिसार शान्त होते हैं ॥ ७१-७२ ॥

वातजग्रहण्यां शालिप- **शालिपर्णीबलाबिल्वधान्यशुण्ठीकृतः शृतः ।**
र्ण्यादिक्वाथः— **आध्मानशूलसहितां वातजां ग्रहणीं जयेत् ॥ ७३ ॥**

सरिवन, वरियारा, बेलगिरी, धनियां तथा सोंठ से किया काढ़ा आध्मान तथा शूल-सहित वातज ग्रहणी को नाश करता है ॥ ७३ ॥

सामग्रहण्यां चातुर्भद्र- **गुडूच्यतिविषाशुण्ठीमुस्तैः क्वाथः कृतो जयेत् ।**
कक्वाथः— **आमानुषक्तां ग्रहणीं ग्राही पाचनदीपनः ॥ ७४ ॥**

गिलोय, अतीस, नागरमोथा, सोंठ, इनका काढ़ा पीने से आमदोष से युक्त ग्रहणी को शान्त करता है एवं यह ग्राही, दीपन और पाचन है ॥ ७४ ॥

सर्वातिसारेष्विन्द्रयवा- **यवधान्यपटोलानां क्वाथः सक्षौद्रशर्करः ।**
दिक्वाथः— **योज्यः सर्वातिसारेषु बिल्वाम्रास्थिभवस्तथा ॥ ७५ ॥**

इन्द्रजौ, धनियां, पटोलपत्र, इनके काढ़े में शहद और चीनी प्रक्षेप देकर पीने से सब प्रकार के अतिसार दूर हो जाते हैं। उसी प्रकार से बेल की (१)जड़ अथवा गिरी और आम की गुठली के भीतर की गिरी का भी काढ़ा शहद और चीनी का प्रक्षेप देकर पीने से सब तरह के अतिसार शान्त हो जाते हैं ॥ ७५ ॥

क्रिमिरोगे त्रिफलाऽऽदि- **त्रिफला देवदारुश्च मुस्ता मूषकपर्णिका ।**
क्वाथः— **शिग्रुरेतैः कृतः क्वाथः पिप्पलीचूर्णसंयुतः ॥**
विडङ्गचूर्णयुक्तश्च क्रिमिघ्नः क्रिमिरोगहा ॥ ७६ ॥

हरड़, बहेड़ा, आंवला, देवदारु, नागरमोथा, मूसाकानी और सैजन का काढ़ा पिप्पली चूर्ण और बायविडङ्ग का चूर्ण प्रक्षेप देकर पीने से क्रिमि और क्रिमिरोग नष्ट हो जाते हैं ॥७६॥

कामलाऽऽदौ फलत्रि- **फलत्रिकामृतातिक्तानिम्बकेरातवासकैः ।**
कादिक्वाथः— **जयेन्मधुयुतः क्वाथः कामलां पाण्डुतां तथा ॥ ७७ ॥**

हरड़; बहेड़ा; आँवला; गिलोय; कुटकी; नीम की छाल; चिरायता और अडूसा का काढ़ा

---

(१) यहां पर बिल्वसे बिल्वमूल ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि बिल्वमूल में ये गुण होते हैं।
"बिल्वमूलं मरुच्छ्लेष्मच्छर्दिघ्नं न च पित्तकृत्"।
अभाव में फल लेना चाहिये।

शहद मिलाकर पीने से कामला और पीलिया नष्ट होता है ॥ ७७ ॥

पाण्डुशोथादौ पुनर्नवाऽऽदिक्वाथः—**पुनर्नवाऽभयानिम्बदार्वीतिक्तापटोलकैः ॥ ७८ ॥**
गुडूचीनागरयुतैः क्वाथो गोमूत्रसंयुतः । पाण्डुकासोदरश्वासशूलसर्वाङ्गशोथहा ॥ ७९ ॥

पुनर्नवा (सांठ), हरड़; नीम की छाल; दारुहलदी; कुटकी, पटोलपत्र; गिलोय और सोंठ का काढ़ा गोमूत्र प्रक्षेप देकर पीने से पीलिया; खांसी; उदर रोग; श्वास; शूल और सर्वाङ्गशोथ शान्त हो जाते हैं ॥ ७८–७९ ॥

रक्तपित्तादौ वासाऽऽदि- **वासाद्राक्षाऽभयाक्वाथः पीतः सक्षौद्रशर्करः ।**
क्वाथः— **निहन्ति रक्तपित्तार्त्तिश्वासकासान्सुदारुणान् ॥ ८० ॥**

(१)अड़ूसा; मुनक्के; हरड़; इनका काढ़ा शहद और चीनी प्रक्षेप देकर पीने से रक्तपित्त और कठिन श्वास एवं कास नष्ट होते हैं ॥ ८० ॥

रक्तपित्तादौ वासक- **रक्तपित्तं क्षयं कासं श्लेष्मपित्तज्वरं तथा ।**
क्वाथः— **केवलो वासकक्वाथः पीतः क्षौद्रेण नाशयेत् ॥ ८१ ॥**

रक्तपित्त; क्षयरोग; खांसी और कफपित्त के ज्वर को सिर्फ अड़ूसे का ही काढ़ा शहद डाल कर पीने से नष्ट कर देता है ॥ ८१ ॥

कासे क्वाथद्वयम्—**वासाक्षुद्राऽमृताक्वाथः क्षौद्रेण ज्वरकासहा ।**
कासघ्नः पिप्पलीचूर्णयुक्तः क्षुद्राश्रृतस्तथा ॥ ८२ ॥

अड़ूसा; छोटी कटेहली और गुडूची का काढ़ा शहद डालकर पीने से ज्वर और कास रोग नष्ट हो जाते हैं । एवं छोटी कटेहली का काढ़ा पिप्पली चूर्ण मिलाकर पीने से खांसी दूर हो जाती है ॥ ८२ ॥

श्वासकासयोः क्षुद्राऽऽ- **क्षुद्राकुलत्थवासाभिर्नागरेण च साधितः ।**
दिक्वाथः— **क्वाथः पुष्करचूर्णाढ्यः श्वासकासौ निवारयेत् ॥ ८३ ॥**

छोटी कटेहली; कुलथी; अड़ूसा और सोंठ का काढा पोहकरमूल के चूर्ण का प्रक्षेप देकर पीने से श्वास और खांसी का निवारण करता है ।

विमर्श—पोहकरमूल न मिले तो कूट लेना ॥ ८३ ॥

हिक्कायां रेणुका- **रेणुकापिप्पलीक्वाथो हिङ्गुकल्केन संयुतः ।**
ऽऽदिक्वाथः— **पानादेव हि पञ्चापि हिक्का नाशयति क्षणात् ॥ ८४ ॥**

रेणुका के बीज और पीपर का काढ़ा (२) हींग का कल्क डाल कर पीने से तुरन्त ही पाँचों प्रकार की हिचकी नष्ट हो जाती है।॥ ८४ ॥

छर्दौ क्वाथत्रयम्—**बिल्वत्वचो गुडूच्या वा क्वाथः क्षौद्रेण संयुतः ।**
जयेत्त्रिदोषजां छर्दिं पर्पटः पित्तजां तथा ॥ ८५ ॥

---

(१) वासा से वासा का पञ्चाङ्ग ग्रहण करना चाहिये । और मधु आदि का प्रक्षेप देना चाहिये ।
(२) हींग यहां पर भुनी हुई देनी चाहिये ।

बेल की जड़ की छाल अथवा गिलोय का काढ़ा शहद डाल कर पीने से त्रिदोष का वमन नष्ट होता है एवं पित्तपापड़े का काढ़ा शहद मिलाकर पीने से पित्त से उत्पन्न वमन को शान्त करता है ॥ ८५ ॥

गृध्रस्यां काथद्वयम्—**हिङ्गुपुष्करचूर्णाढ्यं दशमूलश्शृतं जयेत् ।**
गृध्रसीं केवलः क्काथः शेफालीपत्रजस्तथा ॥ ८६ ॥

दशमूल के काढ़े में हींग और पोहकरमूल का चूर्ण प्रक्षेप देकर पीने से गृध्रसी नामक वातरोग को शान्त कर देता है । उसी प्रकार निर्गुण्डी या संभालू के पत्र का काढ़ा भी हींग और पोहकर का चूर्ण मिला कर पीने से गृध्रसी को शांत करता है ॥ ८६ ॥

सप्तधातुगतवाते रास्नापञ्चककाथः— **रास्नाऽमृतामहादारुनागरैरण्डजैः शृतम् ।**
सप्तधातुगते वाते सामे सर्वाङ्गजे पिबेत् ॥ ८७ ॥

रास्ना, गिलोय, देवदारु, सोंठ और एरण्ड की जड़ इन पाचों को **'रास्नापञ्चक'** कहते हैं । रास्नापञ्चक का काढ़ा सप्तधातुगत वात, आमवात तथा सर्वाङ्ग वात में पीवे ॥ ८७ ॥

जङ्घावातादौ रास्नासप्तककाथः— **रास्नागोक्षुरकैरण्डदेदारु पुनर्नवा ।**
गुडूच्यारग्वधश्चैव क्काथमेषां विपाचयेत् ॥ ८८ ॥
शुण्ठीचूर्णेन संयुक्तं पिबेज्जङ्घाकटीग्रहे ।
पार्श्वपृष्ठोरुपीडायामामवाते सुदुस्तरे ॥ ८९ ॥

रास्ना, गोखरू, एरण्डमूल, देवदारु, पुनर्नवा (गदहपुरना), गिलोय, अमलतास, ये सात **'रास्नासप्तक'** हैं । इनका काढ़ा सोंठ का चूर्ण डाल कर जाँघ तथा कमर का रहजाना, पसवाड़े, पीठ और जंघाओं की पीड़ा तथा कठिन आमवात रोग में पीवे ।

विमर्श—ऊपर के दोनों काढ़ों में कई वैद्य एरण्ड के तेल का प्रक्षेप देते हैं क्योंकि आमवात के नाश करने में एरण्ड का तेल सब से उत्तम है ॥ ८८–८९ ॥

सर्ववातरोगे महारास्नादिकाथः— **रास्ना द्विगुणभागा स्यादेकभागास्ततः परे ।**
धन्वयासबलैरण्डदेवदारुशटीवचाः ॥ ९० ॥
वासको नागरं पथ्या चव्या मुस्ता पुनर्नवा ।
गुडूची वृद्धदारुश्च शतपुष्पा च गोक्षुरः ॥ ९१ ॥
अश्वगन्धा प्रतिविषा कृतमालः शतावरी ।
कृष्णा सहचरश्चैव धान्यकं बृहतीद्वयम् ॥ ९२ ॥
एभिः कृतं पिबेत्क्वाथं शुण्ठीचूर्णेन संयुतम् ।
कृष्णाचूर्णेन वा योगराजगुग्गुलुनाऽथ वा ॥ ९३ ॥
अजमोदादिना वाऽपि तैलेनैरण्डजेन वा ।
सर्वाङ्गकम्पे कुब्जत्वे पक्षाघातेऽवबाहुके ॥ ९४ ॥
गृध्रस्यामामवाते च श्लीपदे चापतानके ।
अन्त्रवृद्धौ तथाऽऽध्माने जङ्घाजानुगतेऽर्दिते ॥ ९५ ॥

शुक्रामये मेढ्ररोगे वन्ध्यायोन्यामयेषु च ।
महारास्नाऽऽदिराख्यातो ब्रह्मणा गर्भकारणम् ॥ ९६ ॥

दो भाग रास्ना और अन्य सब ओषधियाँ मिलाकर एक भाग, दुरालभा, बला (खिरैटी); एरण्ड; देवदारु; कचूर; बच; वासा, सोंठ; हरड़; चाभ; नागरमोथा; गदहपुरना (सांठ); गिलोय, बिधारा;सौंफ; गोखरू; असगन्ध; अतीस; धमासा; शतावर; पीपर; पियाबांसा, धनियाँ; बड़ी कटेहली;छोटी कटेहली; इनका मिला हुआ एक भाग । याने दो भाग रास्ना और ये सब मिलाकर एक भाग लेवे और काढ़ा बनाकर सोंठ का चूर्ण; पीपरचूर्ण; योगराजगुग्गुलु; अजमोदादिचूर्ण अथवा एरण्ड का तेल विवेचना कर यथाव्याधि (१)प्रक्षेप देकर पीने से सर्वाङ्गवात; कुबड़ापन; पक्षाघात या लकवा; अपबाहुक; गृध्रसी; आमवात; श्लीपद (फीलपांव), अपतानक; अन्त्रवृद्धि; उदराध्मान; जंघा और जानुगत वात; अर्दित वात; शुक्ररोग; लिंग के रोग; वन्ध्या रोग; योनिरोग आदि सब नष्ट हो जाते हैं तथा जिस स्त्री का गर्भ न रहता हो उसे गर्भ रहता है । यह **'महारास्नाऽऽदि'** काढ़ा ब्रह्मा ने कहा था ॥ ९०–९६ ॥

स्तनादिगतवाते एरण्ड- **एरण्डो बीजपूरश्च गोक्षुरो बृहतीद्वयम् ।**
सप्तककाथः— **अश्मभेदस्तथा विल्व एतन्मूलैः कृतः शृतः ॥ ९७ ॥**
एरण्डतैलहिङ्ग्वाढ्यः सयवक्षारसैन्धवः ।
स्तनस्कन्धकटीमेढ्रहृदयोत्थां व्यथां जयेत् ॥ ९८ ॥

एरण्ड; बिजौरा नीबू ; गोखरू; छोटी कटेहली; बड़ी कटेहली, पाखानभेद; बेल; इनकी जड़ों का काढ़ा एरण्डतैल; भुनी हींग; जवाखार और सेंधा नमक का (२)प्रक्षेप देकर पीने से स्तन; कन्धा, कमर; लिङ्ग और हृदय की पीड़ा को शान्त करता है ॥ ९७–९८ ॥

वातशूले नागरादीन्द्र- **नागरैरण्डजः क्वाथः क्वाथ इन्द्रयवस्य च ।**
यवयोः काथौ— **हिङ्गुसौवर्चलोपेतो वातशूलनिवारणः ॥ ९९ ॥**

सोंठ और एरण्डमूल का काढ़ा अथवा इन्द्रजौ का काढ़ा(३) भुनी हींग और सञ्चरनोन (काला नमक) मिला कर पीने से वातशूल का विनाश होता है ॥ ९९ ॥

---

(१) प्रक्षेप यहां पर यथादोष और यथाव्याधि देना चाहिये, जैसे आमवात में शुण्ठीचूर्ण **श्लीपद** में पिप्पलीचूर्ण; **सर्वाङ्गकम्प** और **वात** में योगराजगुग्गुल; **आध्मान** में अजमोदादि चूर्ण; गृध्रसी और **अण्डवृद्धि** में एरण्डतैल का प्रक्षेप देना चाहिये ।

(२) समुदायात्मकप्रक्षे- **"क्षारसैन्धवचूर्णानां माषैकैकं प्रयोजयेत् ।**
पमानम्— **माषार्द्धं हिङ्गुचूर्णं च तैलं माषचतुष्टयम् ॥**

(३) कोई २ तीनों द्रव्यों के मिलने से एक योग कहते हैं–जैसे —
"हिङ्गुपुष्करमूलाभ्यां हिङ्गुसौवर्चलेन वा ।
विश्वैरण्डयवक्वाथः पीतः शूलनिवारणः ।।

पित्तशूले त्रिफलाऽऽदि- **त्रिफलाऽऽरग्वधक्वाथः शर्कराक्षौद्रसंयुतः ।**
क्वाथः— **रक्तपित्तहरो दाहपित्तशूलनिवारणः ॥ १०० ॥**

त्रिफला(१) और अमलताश का काढ़ा चीनी तथा शहद डालकर पीने से रक्तपित्त; दाह तथा पित्तशूल शान्त होते हैं ॥ १०० ॥

कफशूले एरण्डक्वाथः—

एरण्डमूलं द्विपलं जलेऽष्टगुणिते पचेत् ।।तत्क्वाथो यावशूकाढ्यः पार्श्वहृत्कफशूलहा १०१

एरण्डमूल दो पल लेकर अठगुने जल में काढ़ा बना जवाखार डालकर पीने से पसली का शूल हृदय का शूल एवं कफज शूल को नष्ट करता है ॥ १०१ ॥

हृद्रोगादौ दशमूलक्वाथः—**दशमूलकृतः क्वाथः सयवक्षारसैन्धवः ।**
हृद्रोगगुल्मशूलानि कासं श्वासं च नाशयेत् ॥ १०२ ॥

दशमूल के काढ़े में जवाखार और सेंधानमक पिलाकर पीने से हृद्रोग; गुल्म; शूल रोग; खांसी और श्वास को नाश करता है ॥ १०२ ॥

मूत्रकृच्छ्रादौ हरीतक्या- **हरीतकीदुरालम्भाकृतमालकगोक्षुरैः ।**
दिक्वाथः— **पाषाणभेदसहितैः क्वाथो माक्षिकसंयुतः ।**
विबन्धे मूत्रकृच्छ्रे च सदाहे सरुजे हितः ॥ १०३ ॥

हरड; धमासा; अमलताश; गोखरू और पाखानभेद का (२)काढा शहद मिलाकर पीने से वायु का रुकना और दाह एवं पीडायुक्त मूत्रकृच्छ्र शान्त हो जाते हैं ॥ १०३ ॥

अश्मरीरोगादौ वीरतर्वा- **वीरतरुर्वृक्षवन्दा काशः सहचरत्रयम् ।**
दिगणक्वाथः— **कुशद्वयं नलो गुन्द्रा बकपुष्पोऽग्निमन्थकः ॥ १०४ ॥**
मूर्वा,पाषाणभेदश्च स्योनाको गोक्षुरस्तथा ।
अपामार्गश्च कमलं ब्राह्मी चेति गणो वरः ॥ १०५ ॥
वीरतर्वादिरित्युक्तः शर्कराऽश्मरिकृच्छ्रहा । मूत्राघातं वायुरोगान्नाशयेन्निखिलानपि१०६

गाँडर; वृक्षादनी; काँस; तीनों सहचर (पियावांसा; नीले फूल का कटसरैया और सफेद फूल का कटसरैया); दोनों कुश (कुश; डाभ); नरसल; पटेर; अगस्त; अरणि; मूर्वा; पाखानभेद; अरलू ; गोखरू; चिरचिरा; कमल; ब्राह्मी; यह **वीरतर्वादिगण** है। इनका

---

(१) कोई २ त्रिफला शब्द से यहां पर रक्तपित्त का उपशमन कारक द्राक्षादि का प्रयोग भी करते हैं जैसे—

द्राक्षाकाश्मर्यखर्जूरफलानीति फलत्रिकम् ।
इयं प्रोक्ता द्वितीया च त्रिफला चरकादिभिः ॥
फलत्रिकाणां योगोऽयं चरकाद्युक्तश्च पैत्तिके ॥

(२) यह योग औपसर्गिक मेह (सूजाक) में विशेष उपकारी पाया गया है।

काढ़ा शर्करा; पथरी; मूत्रकृच्छ्र ; मूत्राघात तथा सब प्रकार के वायुरोगों को नाश करने में उत्तम है ॥ १०४-१०६ ॥

शर्कराऽश्मर्यादौ एला- **एलामधुकगोकण्टरेणुकैरण्डवासकाः ॥ १०७ ॥**
ऽऽदिक्वाथः— **कृष्णाऽश्मभेदसहिताः क्वाथ एषां सुसाधितः ।**
शिलाजतुयुतः पेयः शर्कराऽश्मारकृच्छ्रहा ॥ १०८ ॥

छोटी इलायची; मुलेठी; रेणुका, एरण्ड; वासा; पिप्पली; पाखानभेदः इनका काढ़ा शिलाजीत (१)मिलाकर पीने से शर्करा, पथरी और मूत्रकृच्छ्र रोग शान्त हो जाते हैं ॥१०७-१०८॥

मूत्रकृच्छ्रादौ गोक्षुर-**समूलगोक्षुरक्वाथः सितामाक्षिकसंयुतः ।**
क्वाथः— **नाशयेन्मूत्रकृच्छ्राणि तथा चोष्णसमीरणम् ॥ १०९ ॥**

जड़ सहित गोखरू का काढ़ा चीनी और शहद मिलाकर पीने से मूत्रकृच्छ्र तथा उष्णवात को नाश करता है ॥ १०९ ॥

अथ प्रमेहे क्वाथाः—

वराऽऽदिवत्सकादिक्काथौ-**वरादार्व्यब्ददारूणां क्वाथः क्षौद्रेण मेहहा ।**
वत्सकत्रिफलादार्वीमुस्तको बीजकस्तथा ॥ ११० ॥

त्रिफला; दारुहलदी; नागरमोथा; देवदारु ; इनका काढ़ा शहद मिलाकर पीने से प्रमेह रोग नष्ट होता है। एवं उसी प्रकार कुड़े की छाल; त्रिफला; दारुहलदी; नागरमोथा एवं विजयसार का भी काढ़ा शहद मिलाकर पीने से प्रमेह को नाश करता है ॥ ११० ॥

फलत्रिकादिक्काथः—**फलत्रिकाब्ददार्वीणां विशालायाः शृतं पिबेत् ।**
निशाकल्कयुतं सर्वप्रमेहविनिवृत्तये ॥ १११ ॥

त्रिफला; नागरमोथा; दारुहलदी और इन्द्रायण की जड़ का प्रक्षेप देकर पीने से सब प्रकार के प्रमेह नष्ट होते हैं ॥ १११ ॥

प्रदरे दार्व्यादिक्काथः-**दार्वी रसाञ्जनं मुस्तं भल्लातः श्रीफलं वृषः ।**
कैरातश्च पिबेदेषां क्वाथं शीतं समाक्षिकम् ।
जयेत्सशूलं प्रदरं पीतश्वेतासितारुणम् ॥ ११२ ॥

दारुहलदी; रसौत; नागरमोथा; शुद्ध भिलावे; बेलगिरी; अडूसा; चिरायता; इनके काढ़े को ठंडा कर शहद मिलाय पीने से शूलयुक्त तथा पीला; सफेद; काला और लाल सब प्रकार के प्रदर विनष्ट हो जाते हैं ॥ ११२ ॥

योनिरोगव्रणादौ न्यग्रो-**न्यग्रोधप्लक्षकोशाम्रवेतसा बदरी तुणिः ।**
धादिक्काथः— **मधुयष्टी प्रियालश्च लोध्रद्वयमुदुम्बरः ॥ ११३ ॥**
पिप्पलश्च मधूकश्च तथा पारिसपिप्पलः ।
शल्लकी तिन्दुकी जम्बूद्वयमाम्रतरुः शिवा ॥ ११४ ॥

---

(१) शिलाजीत से शुद्ध शिलाजीत मिलाना चाहिये ।

कदम्बककुभौ चैव भल्लातकफलानि च ।
न्यग्रोधादिगणक्वाथं यथालाभं च कारयेत् ॥ ११५ ॥
अयं क्वाथो महाग्राही व्रण्यो भग्नं च साधयेत् ।
योनिदोषहरो दाहमेदोमेहविषापहः ॥ ११६ ॥

बड़ की छाल; पाखर की छाल; आँवडे की छाल; बेंत की छाल; बेर की छाल; तुन की छाल; मुलेठी; चिरौंजी; लोध; पठानीलोध; गूलर की छाल; पीपल की छाल; महुआ की छाल; पारिस पीपल; सलई की छाल; तेंदू की छाल; छोटा और बड़ा जामुन की छाल; आम की छाल; हरड़; कदंब की छाल; अर्जुन वृक्ष की छाल; भिलावे; ये सब **'न्यग्रोधादिगण'** हैं। इनका यथालाभ संग्रह करके काढ़ा बना पीना चाहिये। यह काढ़ा अत्यन्त ग्राही; घाव को भरने वाला; टूटे हड्डी को जोड़ने वाला; योनिदोष हरण करने वाला; दाह; मेद; मेह और विष को दूर करने वाला है ॥ ११३-११६ ॥

अथ मेदोदोषे योगत्र-**बिल्वोऽग्निमन्थः स्योनाकः काश्मरी पाटला तथा ।**
यम्— **क्वाथ एषां जयेन्मेदोदोषं क्षौद्रेण संयुतः ॥ ११७ ॥**
क्षौद्रेण त्रिफलाक्वाथः पीतो मेदोहरः स्मृतः ।
शीतीभूतं तथोष्णाम्बु मेदोहृत्क्षौद्रसंयुतम् ॥ ११८ ॥

१-बेल; अरणि; टेंटू; गम्भारी; पाढ़ल; इन पांचों के जड़ की छाल का काढ़ा (१)शहद मिलाकर पीने से मेदोविकार को विनष्ट करता है। यह **महत्पञ्चमूल** है। २-त्रिफले का काढ़ा शहद मिलाकर पीने से मेदोविकार नष्ट होता है। ३-पानी को गरम करके ठंडा होने पर शहद मिलाकर पीने से मेदोविकार दूर होता है ॥ ११७-११८ ॥

उदररोगे चव्यादि-**चव्यचित्रकविश्वानां साधितो देवदारुणा ।**
क्वाथः— **क्वाथस्त्रिवृच्चूर्णयुतो गोमूत्रेणोदराञ्जयेत् ॥ ११९ ॥**

चाभ, चीते की जड़; सोंठ और देवदारु का काढ़ा निशोथ और गोमूत्र का प्रक्षेप देकर पीने से सर्वविध उदररोग नष्ट होते हैं ॥ ११९ ॥

शोथोदरे पुनर्नवाऽऽदि-**पुनर्नवाऽमृतादारुपथ्यानागरसाधितः ।**
क्वाथः— **गोमूत्रगुग्गुलुयुतः क्वाथः शोथोदरापहः ॥ १२० ॥**

पुनर्नवा (गदहपुरना); गिलोय; देवदारु; हरड़ और सोंठ का काढ़ा गोमूत्र और गूगल (२)प्रक्षेप देकर पीने से उदर का सूजन शान्त होता है ॥ १२० ॥

---

(१) यहाँ पर सभी योगों में मधु चतुर्थांश देना चाहिये यानी दो पल तैयार काढ़े में १ पल मधु देना चाहिये बराबर नहीं क्योंकि—
"मधुसर्पिषी मध्वम्बुनी मानतस्तुल्ये नाश्नीयात्" । इसका प्रयोग प्रातः काल ही करना चाहिये ।

(२) गुग्गुल से शुद्ध गुग्गुल देना चाहिये ।

यकृत्प्लीहगुल्मोदरे प- **पथ्यारोहितकक्वाथं यवक्षारकणायुतम् ।**
थ्याऽऽदिक्काथः— **पिबेत्प्रातर्यकृत्प्लीहगुल्मोदरनिवृत्तये ॥ १२१ ॥**

हरड़ और रोहन के छाल का काढ़ा जवाखार और पीपर का चूर्ण प्रक्षेप देकर पीने से यकृत्; तिल्ली, गुल्म और उदर के रोग दूर होते हैं ॥ १२१ ॥

शोथे पुनर्नवाऽऽदिक्काथः- **पुनर्नवा दारुनिशा निशा शुण्ठी हरीतकी ॥ १२२ ॥**
गुडूची चित्रको भार्ङ्गी देवदारु च तैः शृतः ।
पाणिपादोदरमुखप्राप्तं शोफं निवारयेत् ॥ १२३ ॥

पुनर्नवा; दारुहलदी; हलदी; सोंठ; हरड़; गिलोय; चीते की जड़; भारंगी और देवदारु का काढ़ा पीने से हाथ; पांव; पेट, चेहरे तक गयी हुई सूजन शान्त हो जाती है ॥१२२-१२३॥

वृषणशोथे फलत्रिक- **फलत्रिकोद्भवं क्वाथं गोमूत्रेणैव पाययेत् ।**
क्काथः— **वातश्लेष्मकृतं हन्ति शोथं वृषणसम्भवम् ॥ १२४ ॥**

त्रिफले का काढ़ा गोमूत्र मिला कर पीने से वातकफ से उत्पन्न फोतों की सूजन नष्ट हो जाती है ॥ १२४ ॥

अन्त्रवृद्धौ रास्नाऽऽदि- **रास्नाऽमृताबलायष्टीगोकण्टैरण्डजः शृतः ।**
क्काथः— **एरण्डतैलसंयुक्तो वृद्धिमन्त्रभवां जयेत् ॥ १२५ ॥**

रास्ना; गिलोय; बला (बरियारा); मुलेठी; गोखरू; एरण्ड की जड़ की छाल; इनका काढ़ा एरण्ड का तेल डाल कर पीने से अन्त्रवृद्धि को नाश करता है ॥ १२५ ॥

गण्डमालायां काञ्चना- **काञ्चनारत्वचः क्वाथः शुण्ठीचूर्णेन नाशयेत् ।**
रत्वक्क्काथः— **गण्डमालां तथा क्वाथः क्षौद्रेण वरुणत्वचः ॥ १२६ ॥**

कचनार की छाल का काढ़ा सोंठ का चूर्ण डालकर पीने से गण्डमाला का नाश करता है। उसी तरह वरुण की छाल का काढ़ा भी शहद मिला कर पीने से गण्डमाला का नाश करता है ॥ १२६ ॥

श्लीपदमेदोरोगयोः शा- **शाखोटवल्कलक्काथं गोमूत्रेण युतं पिबेत् ।**
खोटकत्वक्क्काथः— **श्लीपदानां विनाशाय मेदोदोषनिवृत्तये ॥ १२७ ॥**

सिहोड़े की छाल का काढ़ा गोमूत्र मिलाकर पीने से श्लीपद (फीलपांव) और मेदोरोग शान्त होते हैं ॥ १२७ ॥

अन्तर्विद्रधौ क्काथद्वयम्- **पुनर्नवावरुणयोः क्काथोऽन्तर्विद्रधीञ्जयेत् ।**
तथा शिग्रुभवः क्काथो हिङ्गुसैन्धवसंयुतः ॥ १२८ ॥

पुनर्नवा (सांठ) और वरुण की छाल का काढ़ा पीने से अथवा सैंजन की छाल का काढ़ा हींग और सेंधानमक मिलाकर पीने से अन्तर्विद्रधि रोग नष्ट होता है।

विमर्श—यहां हींग भुनी हुई चार रत्ती और सेंधानमक एक मासा लेवे ॥ १२८ ॥

अपक्वान्तर्विद्रधौ वरुणा- **वरुणादिगणक्वाथमपक्वे मध्यविद्रधौ ।**
दिगणक्वाथः— **ऊषकादिरजोयुक्तं पिबेच्छमनहेतवे ॥ १२९ ॥**

वरुणादिगण का काढ़ा ऊषकादिगण का चूर्ण प्रक्षेप देकर पीने से अपक्व और मध्य विद्रधि शान्त हो जाता है ।

विमर्श—यहां **ऊषकादिगण** न कहने से ग्रन्थान्तर से दिया जाता है—लोनीमिट्टी, शिलाजीत; सफेद और पीला कसीस; हींग; गूगल और नीलाथोथा । यह(१) **ऊषकादिगण** है १२९

वरुणादिगणः— **वरुणो बकपुष्पश्च बिल्वापामार्गचित्रकाः ।**
अग्निमन्थद्वयं शिग्रुद्वयं च बृहतीद्वयम् ॥ १३० ॥
सैरयकत्रयं मूर्वा मेषशृङ्गी किरातकः । अजशृङ्गी च बिम्बी च करञ्जश्च शतावरी ॥१३१॥
वरुणादिगणक्वाथः कफमेदोहरः स्मृतः।हन्ति गुल्मं शिरःशूलं तथाऽऽभ्यन्तरविद्रधीन्१३२

वरुणवृक्ष; अगस्तवृक्ष; बेल; चिरचिरा; चीतामूल; दोनों प्रकार की अरणी; सहजना और लाल सहजना; छोटी और बड़ी कटेरी; तीनों कटसरैया (पीला; सफेद और नीले फूल की); मूर्वा; मेढासिङ्गी; कुन्दरू; करञ्ज और शतावर; यह **'वरुणादिगण** है । इसका काढ़ा कफमेद को दूर करता; गुल्म; सिर का शूल और आभ्यन्तर विद्रध को दूर करता है ॥ १३०–१३२ ॥

भगन्दरे खदिरादिक्वाथः- **खदिरत्रिफलाक्वाथो महिषीघृतसंयुतः ।**
विडङ्गचूर्णयुक्तश्च भगन्दरविनाशनः ॥ १३३ ॥

खैरसार और त्रिफले का काढ़ा भैंस का घी और बायविडङ्ग का चूर्ण मिलाकर पीने से भगन्दर का नाश करता है ॥ १३३ ॥

उपदंशे पटोलादिक्वाथः— **पटोलत्रिफलानिम्बकिरातखदिरासनैः ।**
क्वाथः पीतो जयेत्सर्वानुपदंशान्सगुग्गुलुः ॥ १३४ ॥

पटोलपत्र; त्रिफला; नीम की अन्तरछाल; चिरायता; खैरसार और असना का काढ़ा गूगल मिलाकर पीनें से सब प्रकार के उपदंश शान्त हो जाते हैं ॥ १३४ ॥

वातरक्तेऽमृता- **अमृतैरण्डवासानां क्वाथ एरण्डतैलयुक् ।**
ऽऽदिक्वाथः— **पीतः सर्वाङ्गसञ्चारि-वातरक्तं जयेद् ध्रुवम् ॥ १३५ ॥**

गिलोय; एरण्ड की जड़ और अड़ूसे के (२)काढ़े में एरण्ड का तेल; मिलाकर पीने से सारे शरीर में फैला हुआ वातरक्त भी विनाश को प्राप्त होता है ॥ १३५ ॥

वातरक्ते पटोलादिक्वाथः— **पटोलं त्रिफला तिक्ता गुडूची च शतावरी ।**
एतत्क्वाथो जयेत्पीतो वातास्रं दाहसंयुतम् ॥ १३६ ॥

---

(१) ऊषकादिगण में तुत्थ, शिलाजीत, कासीसादि शुद्ध कर देना चाहिये ।
(२) पाठान्तर में भी इसका गुण है जैसे—
वासागुडूचीचतुरङ्गुलानामेरण्डतैलेन पिबेत् कषायम् ।
क्रमेण सर्वाङ्गजमप्यशेषं जयेदसृग्वातभवं विकारम् ॥

पटोलपत्र; त्रिफला; कुटकी; गुरुच और शतावर का काढ़ा पीने से दाहयुक्त वातरक्त शान्त होता है ॥ १३६ ॥

श्वेतकुष्ठेऽवल्गुजचूर्णयु-क्ताथोऽवल्गुजचूर्णाढ्यो धात्रीखदिरसारयोः ।
ग्धात्र्यादिक्काथः— जयेत्सुशीलितो नित्यं श्वित्रं पथ्याशिनां नृणाम् ॥ १३७ ॥

आंवला और खरसार का काढ़ा बाकुची का चूर्ण डाल ठण्डा कर प्रतिदिन सेवन करने से और पथ्य परहेज रहने से मनुष्य निश्चय श्वेतकुष्ठ से छूट जाता है ॥ १३७ ॥

वातरक्तकुष्ठादौ लघुमञ्जिष्ठाऽऽदिक्काथः—मञ्जिष्ठा त्रिफला तिक्ता वचा दारुनिशाऽमृता ।
निम्बश्चैषां कृतः क्काथो वातरक्तविनाशनः।पामाकपालिकाकुष्ठरक्तमण्डलजिन्मतः॥१३८॥

मजीठ; त्रिफला; कुटकी; बच; दारुहलदी; गिलोय और नीम इनका काढ़ा पीने से वातरक्त; पामा; कपालकुष्ठ और रक्तमण्डल (चकत्ते) शान्त हो जाते हैं ॥ १३८ ॥

सर्वकुष्ठे बृहन्मञ्जिष्ठाऽऽ-मञ्जिष्ठामुस्तकुटजगुडूचीकुष्ठनागरैः ।
दिक्काथः— भार्ङ्गीक्षुद्रावचानिम्बनिशाद्वयफलत्रिकैः ॥ १३९ ॥
पटोलकटुकीमूर्वाविडङ्गासनचित्रकैः । शतावरीत्रायमाणाकृष्णेन्द्रयववासकैः ॥ १४० ॥
भृङ्गराजमहादारुपाठाखदिरचन्दनैः । त्रिवृद्वरुणकैरातबाकुचीकृतमालकैः ॥ १४१ ॥
शाखोटकमहानिम्बकरञ्जातिविषाजलैः। इन्द्रवारुणिकाऽनन्तासारिवापर्पटैः समैः॥१४२॥
एभिः कृतं पिबेत्क्काथं कणागुग्गुलसंयुतम् । अष्टादशसु कुष्ठेषु वातरक्तार्दिते तथा॥१४३॥
उपदंशे श्लीपदे च प्रसुप्तौ पक्षघातके । मेदोदोषे नेत्ररोगे मञ्जिष्ठाऽऽदिः प्रशस्यते॥१४४॥

मञ्जीठ; नागरमोथा; कुड़े की छाल; गिलोय; कूट; सोंठ; भारङ्गी; छोटी कटेहली; बच; नीमकी छाल; हलदी; दारुहलदी; हरड़; बहेड़ा; आमला; पटोल; कुटकी; मूर्वा; विडङ्ग; असन; चीतामूल; शतावर; त्रायमाण; पीपर; इन्द्रजौ; अडूसा; भांगरा; देवदारु; पाठा; खैरसार; लाल चन्दन; निसोथ; वरुण की छाल; चिरायता; बाकुची; अमलताश; सहोड़ा; बकायन; करञ्ज; अतीस; नेत्रबाला; इन्द्रायण की जड़; जवासा; अनन्तमूल; पित्तपापड़ा; ये सब द्रव्य सम भाग ले काढ़ा बनाय गूगल और पीपर का चूर्ण डाल कर पीवे तो अट्ठारह प्रकार के कोढ़; वातरक्त; अर्दित; उपदंश (गरमी); फीलपांव; अङ्गों का सो जाना; पक्षाघात; मेदोविकार और नेत्ररोग नष्ट हो जाते हैं । यह **बृहन्मञ्जिष्ठाऽऽदि** काढ़ा बहुत ही बढ़िया है ॥ १३९–१४४ ॥

शिरोरोगे नेत्ररोगादौ च पथ्याऽऽदिषडङ्गक्काथः—
पथ्याऽक्षधात्रीभूनिम्बनिशानिम्बामृतायुतः ॥ १४५ ॥
कृतः क्वाथः षडङ्गोऽयं सगुडः शीर्षशूलहृत् ।
भ्रूशङ्खकर्णशूलानि तथाऽर्धशिरसो रुजम् ॥ १४६ ॥
सूर्यावर्त्तं शङ्खकं च दन्तपातं च तद्रुजम् ।
नक्तान्ध्यं पटलं शुक्रं चक्षुःपीडां व्यपोहति ॥ १४७ ॥

हरड़; बहेड़ा; आंवला; चिरायता; हलदी; नीम की छाल; और गुरुच का षडङ्ग

…नाकर गुड़ डाल कर पीने से शिरःशूल; भौं; कनपटी और कान का शूल, अधकपारी; सूर्यावर्त्त; …ब्बक; दांतों का गिरना; दांतों की पीड़ा; रतौंधी; पटल रोग; मोतियाबिन्द और नेत्रों की पीड़ा …श होती है ॥ १४५–१४७ ॥

नेत्ररोगे वासाऽऽ- **वासाविश्वामृतादार्वीरक्तचन्दनचित्रकैः ।**
दिकाथः— **भूनिम्बनिम्बकटुकापटोलत्रिफलाऽम्बुदैः ॥ १४८ ॥**
यवकालिङ्गकुटजैः क्वाथः सर्वाक्षिरोगहा ।
वैस्वर्यं पीनसं श्वासं नाशयेदुरसः क्षतम् ॥ १४९ ॥

अडूसा; सोंठ; गिलोय; दारुहलदी, लालचन्दन; चीतामूल; चिरायता; नीमकी छाल; कुट…की; पटोल के पत्र, त्रिफला; नागरमोथा; जौ; इन्द्रजौ और कूड़े की छाल का काढ़ा (१)सब प्रकार के नेत्र रोग, स्वर का विगड़ना; पीनस; श्वास और उरःक्षत को नष्ट करता है ॥१४८–१४९॥

…नेत्ररोगेऽमृताऽऽदिक्वाथः– **अमृतात्रिफलाक्वाथः पिप्पलीचूर्णसंयुतः ।**
सक्षौद्रः शीलितो नित्यं सर्वनेत्रव्यथां जयेत् ॥ १५० ॥

गिलोय और त्रिफले के काढ़े में ठंडा होने पर शहद, पीपर का चूर्ण मिलाकर पीने से सब प्रकार के नेत्र की पीड़ा को शान्त करता है ।

विमर्श—जिस किसी भी काढ़े में शहद डालना हो ठंडा करके डालो क्योंकि गरम चीज़ …मे मिलाने पर शहद भी गरम हो जायगा और शहद गरम होने से विष हो जाता है ॥१५०॥

व्रणक्षालनादौ पञ्चव- **अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षवटवेतसजं श्रृतम् ।**
ल्कलक्वाथः— **व्रणशोथोपदंशानां नाशनं क्षालनात्स्मृतम् ॥ १५१ ॥**

पीपल; गूलर; पाखर: वड़ और वेंत इन पाँचों की छालों के काढ़े से व्रण; शोथ और …गरमी आदि के घाव को धोने से शीघ्र ही अच्छे हो जाते हैं ॥ १५१ ॥

अथ प्रमथ्याऽऽदिकषायभेदानाह ।

तत्र प्रमथ्यापरिभाषा– **प्रमथ्या प्रोच्यते द्रव्यपलात्कल्कीकृताच्छृतात् ।**
तोयेऽष्टगुणिते यस्याः पानमाहुः पलद्वयम् ॥ १५२ ॥

---

(१) कषाय होने के कारण यह प्रातः ही पीना चाहिये जैसे कहा है—

वासा घनं निम्बपटोलपत्रं तिक्ताऽमृता चन्दनवत्सकं च ।
कालिङ्गदार्वी दहनं च शुण्ठी भूनिम्बधात्रीविजयाबिभीतकम् ॥
तथा यवाः क्वाथमथाष्टभागिकं पिबेदिमं पूर्वदिने कषायम् ।
तैमिर्यकण्डूं पटलार्बुदं च शुक्लं तथा सव्रणमव्रणञ्च ॥
निहन्ति दाहं सरुजं सरागं सर्वान् निहन्त्यक्षिगतांश्च रोगान् ।

तथा "यवकालिङ्ग" से कई आदमी 'इन्द्रयव' ही केवल रखते हैं परन्तु जौ और इन्द्रजौ दोनों देना चाहिये क्योंकि जौ अन्न नेत्ररोग में उपयोगी है ।

जैसे— '**त्रिफला घृतं मधु यवाः पादाभ्यङ्गः शतावरी मुद्गाः ।**
चक्षुष्यः संक्षेपाद्वर्गः कथितो भिषग्भिरयम् ॥

अब काढ़े का ही एक भेद **प्रमथ्या**(१) को कहते हैं। एक पल दवा लेकर सिल पर पीस कर लुगदी बना लेवे। फिर उसे आठ गुने जल में औटावे और चौथाई याने दो पल शेष रहने पर उतार लेवे। यही **प्रमथ्या** है। इसकी पान करने की मात्रा दो पल है॥ १५२॥

रक्तातिसारे मुस्तकादिप्रमथ्या— **मुस्तकेन्द्रयवैः सिद्धा प्रमथ्या द्विपलोन्मिता।**
सुशीता मधुसंयुक्ता रक्तातीसारनाशिनी॥ १५३॥

नागरमोथा और इन्द्रजौ से बनाई हुई प्रमथ्या ठंडा होने पर शहद मिला कर पीने से रक्तातिसार नष्ट हो जाता है॥ १५३॥

यवागूपरिभाषा—**साध्यं चतुष्पलं द्रव्यं चतुःषष्टिपले जले।**
तत्क्वाथेनार्धशिष्टेन यवागूं साधयेद्घनाम्॥ १५४॥

चार पल ओषधि लेकर चौंसठ पल जल में साधे आधा जल शेष रहने पर उतार छान कर उसमें तण्डुलादिकों को डाल पकावे जब गाढ़ी हो जाय तो उतार ले। इसे यवागू कहते हैं।

विमर्श—यवागू अन्न आदि से पकायी जाती है। जब पकाते पकाते गाढ़ी हो जाती है याने द्रव भाग कम और घन भाग अधिक हो जाता है तब यवागू सिद्ध जाने। यवागू अन्न से छः गुने जल या अन्य काढ़े आदि में पकायी जाती है। जैसे कि कहा है-**'यवागूः षड्गुणेऽम्भसि'** इति। चावल आदि अन्न का प्रमाण यहां नहीं कहा सो मतलब यह कि रोगी का बलाबल विचार कर वैद्य अपनी बुद्धि से लेवे अथवा सामान्य नियम यह है कि रोगी के मामूली भोजन की चौथाई अन्न से यवागू साधन करे। यथा—

'यवागूमुचिताद्भक्ताच्चतुर्भागकृतां वदेत्' इति।

यहाँ जो चार पल द्रव्य लेने को कहा यह भी सामान्य नियम ही है। यदि दवाएं ऐसी हों जो कड़वी, कसैली आदि होने के कारण से अरुचि उत्पन्न कर सक्ती हों तो वहां एक पल द्रव्य लेकर एक आढ़क जल (२५६ तोले) में काढ़ा बनाय यवागू बनावे। कहा भी है-

'वृद्धवैद्याः पलं द्रव्यं ग्राहयन्त्याढकेऽम्भसि' इति।

यवागू जिन जिन ओषधियों से पकाई जाती है उन्हीं के गुणों से युक्त होती है, अत एव यह ओषधि और आहार दोनों का काम करती है। इसके देने का विधि-निषेध ग्रन्थान्तरों से अवगत होंगे॥ १५४॥

ग्रहण्यामाम्रादियवागूः-**आम्राम्रातकजम्बूत्वक्कषाये विपचेद् बुधः।**
यवागूं शालिभिर्युक्तां तां भुक्त्वा ग्रहणीं जयेत्॥ १५५॥

आम, आँवड़ा और जामुन की छालों के काढ़े में शालि चावलों की यवागू बनाकर खावे तो ग्रहणी रोग शान्त हो जाता है॥ १५५॥

यूषपरिभाषा—**कल्कद्रव्यपलं शुण्ठी पिप्पली चार्धकार्षिकी।**
वारिप्रस्थेन विपचेत्स द्रवो यूष उच्यते॥ १५६॥

(१) प्रमथ्या और काथ में भेद इतना ही है कि काथ के लिये द्रव्य कूट कर काथ किया जाता है और प्रमथ्या के लिये द्रव्य पीस कर पकाया जाता है। शेष विधि काथ ही जैसा है।

साधारण कल्क करने की ओषधि एक पल लेवे तथा यदि सोंठ, पीपल आदि तीक्ष्ण द्रव्य हो तो आधा कर्ष लेवे और द्रवद्वैगुण्य से दो प्रस्थ जल में पकाकर आधा रहने पर उतार कर छान लेवे इसी को **यूष** कहते हैं ।

विमर्श—'षडङ्गपरिभाषव प्रायः पेयाऽऽदिसम्मता' याने पेया, यूष आदि के लिये काढ़ा षडङ्गपरिभाषा से तैयार करना चाहिये । अतः इस रीति से प्रस्तुत इस काढ़े में मूंग, मसूर आदि उक्त द्रव्य उचित मात्रा में देकर पकावे । जब ये गल जायँ तो उतार कर छान लेवे । यह छना हुआ द्रव ही यूष है । अन्य मत से सोंठ, पीपर आदि के चूर्ण का यूष सिद्ध होने पर प्रक्षेप देना चाहिये तथा इतना हो देना चाहिये कि यूष कुछ चरपरा हो जाय ॥ १५६ ॥

सन्निपातादौ सप्तमुष्टिक- **कुलत्थयवकोलश्च मुद्गैर्मूलकग्रन्थिकैः ।**

यूषः— **शुण्ठीधान्याकयुक्तैश्च यूषः श्लेष्मानिलापहः ॥ १५७ ॥**

सप्तमुष्टिक इत्येष सन्निपातज्वरं जयेत् ।

आमवातहरः कण्ठहृद्वक्त्राणां विशोधनः ॥ १५८ ॥

कुलथी, जौ, जंगली बेर, मूंग, छोटी मूली की गाँठ, सोंठ और धनियाँ प्रत्येक को मुट्ठी मुट्ठी भर लेकर सोलह गुने जल में पकावे और अन्न आदि गल जाने पर उतार कर छान लेवे । यह **सप्तमुष्टिक** यूष है । जो कि कफवातनाशक है तथा संनिपात के ज्वरों को और आमवात को नष्ट करता है तथा हृदय, कण्ठ और मुख को शुद्ध करता है ।

विमर्श—अन्य मत से मुष्टि से पल अर्थ लेकर इन प्रत्येक का एक एक पल लेकर यूष सिद्ध करना कहा है और व्यवहार से भी यही आता है । अन्य लोग (१)सोठ को सिर्फ चरपरा करने लायक और बेर को खट्टा करने भर का प्रक्षेप देना मानते हैं, पर प्रत्येक का एक एक पल लेना ही सर्वसम्मत है ॥ १५७-१५८ ॥

पानादिकल्पना— **क्षुण्णं द्रव्यपलं साध्यं चतुःषष्टिपले जले ।**

अर्द्धशिष्टं च तद्देयं पाने भक्तादिसंविधौ ॥ १५९ ॥

कुटी हुई ओषधि एक पल लेकर चौंसठ पल पानी में सिद्ध करे और आधा रहने पर उतार कर छान लेवे । यह जल रोगी के पीने को तथा भोजनार्थ भात आदि बनाने के लिये व्यहार में लेवे ।

विमर्श—यहाँ जल शेष आधा ही रखे, कहा भी है—

'अर्धशृतं प्रयोक्तव्यं पाने पेयाऽऽदिसंविधौ' इति ।

याने पीने के काम के लिये या पेया, यूष, यवागू आदि साधने के लिये आधा जल ही शेष रखकर उतार लेना चाहिये ॥ १५९ ॥

पिपासाज्वरघ्नषडङ्गपा- **उशीरपर्पटोदीच्यमुस्तनागरचन्दनैः ।**

नम्— **जलं शृतं हिमं पेयं पिपासाज्वरनाशनम् ॥ १६० ॥**

---

(१) इस योग में शुण्ठी आदि एक पल देना उचित न होगा अतः **धनियां** उतना ही दे जिसमें सुगन्धि आ जावे । **सोंठ** उतना ही दे जिससे चरपरा हो जाय, **बदरीफल** उतना ही दे जिससे अम्लत्व आजावे ।

खस, पित्तपापड़ा, नेत्रबाला, नागरमोथा, सोंठ और लालचन्दन कुल मिलाकर एक तोला लेवे और ६४ तोले जल में औटाकर आधा शेष रहने पर उतार छान कर ठंडा होने पर रोगी को देवे तो इससे ज्वर और प्यास शान्त हो जाते हैं। यह **षडङ्गादिपान** है।

विमर्श—'यदप्सु श्तशीतासु षडङ्गादि प्रयुज्यते । कर्षमात्रं ततो द्रव्यं साधयेत प्रास्थिकेऽम्भसि । अर्धश्तं प्रयोक्तव्यम् ॥ इति ॥ १६०॥

उष्णोदकविधिः—**अष्टमेनांशशेषेण चतुर्थेनार्धकेन वा ।**
अथवा क्वथनेनव सिद्धमुष्णोदकं वदेत् ॥ १६१ ॥

पानी को औटा कर आठवाँ भाग, चौथाई भाग या आधा शेष रखने पर अथवा सिर्फ उबाल कर फेनरहित कर लेने पर ही **उष्णोदक** कहाता है।

विमर्श—उष्णोदक कहने से यह अर्थ होता है कि इसका प्रयोग गुनगुना रहते ही करना चाहिये। ठंडा हो जाने पर फिर गरम करना ठीक नहीं, इससे जल दोषल याने वातादि दोषों को कुपित करने वाला हो जाता है। जल का शेष रखना दोषापेक्ष्य होता है क्योंकि पौन भाग शेष जल पित्त को, चौथाई शेष जल वात को और आधा शेष जल त्तय और कफ को नष्ट करता है तथा चौथाई से भी कम शेष रखा जल ग्राही और त्रिदोषनाशक होता है। सुश्रुत में यद्यपि पौन शेष जल वातनाशक, आधा शेष पित्तनाशक और चौथाई शेष कफनाशक और दीपन होना लिखा है जोकि इस मतके बिलकुल विपरीत है, पर यह मत रोगी के लिये है और **सुश्रुत** का मत स्वस्थावस्था में ऋतु-अनुसार दोषादिकों की शान्तिके लिये है, क्योंकि वहीं शरद ऋतु में आधा शेष जल, शीत ऋतु में पौन शेष जल, शिशिर, वसन्त और ग्रीष्म ऋतुओं में चौथाई शेष जल और वर्षा ऋतु में जल के बहुत बिगड़े रहने के कारण आठवाँ भाग बचा जल पीने की आज्ञा है। ग्रन्थान्तर में इन बातों का बहुत विचार है सो वहीं से देख लेवें ॥ १६१ ॥

उष्णोदकपानसमयः—**श्लेष्मामवातमेदोघ्नं बस्तिशोधनदीपनम् ।**
कासश्वासज्वरहरं पीतमुष्णोदकं निशि ॥ १६२ ॥

शाम को या रात को उष्ण जल पीने से कफ, आमवात और मेदोविकार का नाश करता, पेशाब लाकर बस्ति को साफ करता, अग्नि को तेज़ करता तथा खाँसी, श्वास और ज्वर को दूर करता है।

विमर्श—यह गरम जल का पान शाम को अथवा सोते समय अथवा जब प्यास लगे तब समझना चाहिये ॥ १६२ ॥

क्षीरपाकविधिः—**क्षीरमष्टगुणं द्रव्यात्क्षीरान्नीरं चतुर्गुणम् ।**
क्षीरावशेषं तत्पीतं शूलमामोद्भवं जयेत् ॥ १६३ ॥

द्रव्य से दूध अठगुना लेवे और दूध का चौगुना जल मिला कर चुरावे। जब जल सब निकल जाय और दूध मात्र रह जावे तब उतार कर छान लेवे। इसे पीने से आमशूल नष्ट होता है।

विमर्श—यहां आमशूल से आमरस से उत्पन्न शूल है नकि आमवात का शूल, आमवात में दूध निषिद्ध है। यद्यपि यहां सिर्फ दूध का पाक-विधान कहा है और द्रव्य का निर्देश नहीं है पर अन्यत्र सोंठ, धनियाँ और एरण्डमूल से पाक करना लिखा है, सो यहां भी लेना चाहिये ॥ १६३ ॥

पञ्चमूलीशृतपयः—**(सर्वज्वराणां जीर्णानां क्षीरं भैषज्यमुत्तमम् ।**
श्वासात्कासाच्छिरःशूलात्पार्श्वशूलात्सपीनसात् ।
मुच्यते ज्वरितः पीत्वा पञ्चमूलीश्रृतं पयः) ॥ १६४ ॥

सब प्रकार के पुराने बुखार की उत्तम दवा दूध ही है। (१)पञ्चमूल से पकाया दूध पीने से मनुष्य, श्वास, खाँसी, शिरःशूल, पार्श्वशूल और पीनस रोग से छूट जाता है।

विमर्श—बेल, श्योनाक, गम्भारी, पाढ़ल और गनियारी इन पांचों के जड़ को पञ्चमूल कहते हैं। बड़े और मोटे होने से इनकी जड़ों की छाल ली जाती है। जीर्णज्वरी को दूध देने के लिये अन्यत्र भी कहा है ॥

'जीर्णज्वराणां सर्वेषां पयः प्रशमनं परम्' इति ॥१६४॥

त्रिकण्टकादिश्रृतपयः—**(त्रिकण्टकबलाव्याघ्रीगुडनागरसाधितम् ।**
वर्चोमूत्रविबन्धघ्नं कफज्वरहरं पयः) ॥ १६५ ॥

गोखरू, बरियारा, कटेहली, गुड़ और सोंठ से सिद्ध किया हुआ दूध पीने से मल और मूत्र की रुकावट तथा कफज्वर दूर होते हैं ॥ १६५ ॥

अन्नप्रक्रिया तत्र यवागू-**अथान्नप्रक्रियाऽत्रैव प्रोच्यते नातिविस्तरा ।**
कृशरासाधनविधिः— **यवागूः षड्गुणजले सिद्धा स्यात्कृशरा घना ॥१६६॥**
तण्डुलैर्मुद्गमाषैश्च तिलैर्वा साधिता हिता ।
यवागूर्ग्राहिणी बल्या तर्पणी वातनाशिनी ॥ १६७ ॥

अब यहाँ पर संक्षेप में ही अन्नादिसाधन करने की प्रक्रिया कहते हैं। कोई भी अन्न जैसे-चावल, जौ, तिल, मूंग, उड़द आदि को छः गुने जल में पकाकर गाढ़ी कर लेने से ही उसकी **यवागू** तैयार हो जाती है। उसको और गाढ़ी कर द्रवरहित सी कर लेने से **कृशरा** या खिचड़ी बनती है। (२)**कृशरा** प्रायः चावल, उड़द, मूंग तथा तिल आदि को एक साथ

---

(१) बस्तिशोधनार्थ **तृणपञ्चमूल** से दूध का पाक करना चाहिये जैसे लिखा है—

कुशः काशः शरो दर्भ इक्षुश्चेति तृणोद्भवम् ।
पित्तकृच्छ्रहरं पञ्चमूलं वस्तिविशोधनम् ॥
एतत् सिद्धं पयः पीतं मेढ्रगं हन्ति शोणितम् ।

(२) कोई २ यहां **कृशरा** में तिल, माष, तण्डुल को बराबर रखने को **यवागू** की तरह कहते हैं सो ठीक नहीं है। इसे व्यवहार के अनुसार ही (**चावल** २ भाग, **माष** एक भाग, तिल आधा भाग) रखना और छगुने जल में पकाना चाहिये।

पका कर बनाई जाती है या चावल के साथ किसी अन्य को मिलाकर बनायी जाती है जैसे मूंग चावल की कृशरा, तिल चावल की कृशरा आदि। **यवागू** ग्राहिणी याने मल को रोकने वाली, बल देने वाली, धातुओं को पुष्ट करने वाली एवं वातनाशिनी है ॥ १६६-१६७ ॥

विलेपीसाधनविधिः—**विलेपी घनसिक्था स्यात्सिद्धा नीरे चतुर्गुणे।**
बृंहणी तर्पणी हृद्या मधुरा पित्तनाशिनी ॥ १६८ ॥

कोई भी अन्न को चौगुने पानी में डालकर पकावे। जब पकते पकते गाढ़ी और लिपटने वाली हो जावे तो उतार ले। यही **विलेपी** कहलाती है। **विलेपी** विशेषतः चावलों से ही पकाई जाती है। **विलेपी** धातुओं को बढ़ाने वाली, तृप्त करने वाली, हृदय के लिये हितकारिणी, मीठी और पित्त को नाश करने वाली है ॥ १६८ ॥

पेयायूषसाधनविधिः—**द्रवाधिका स्वल्पसिक्था चतुर्दशगुणे जले।**
सिद्धा पेया बुधर्ज्ञेया यूषः किञ्चिद्घनः स्मृतः ॥ १६९ ॥

अन्न को चौदह गुने जल में डालकर पकावे। जब अन्न पक जाय और अन्न से बहुत अधिक द्रव भाग बच रहे–पीने लायक रहे–तो **पेया** हो गया जाने। इसे कुछ और गाढ़ा पकाने से **यूष** तैयार होता है। **पेया** चावल आदि अन्न से बनाई जाती है और **यूष** मूंग, मसूर चने आदि दालों से बनाई जाती है १६९ ॥

पेयायूषयोर्गुणाः—**पेया लघुतरा ज्ञेया ग्राहिणी धातुपुष्टिदा।**
यूषो बल्यस्ततः कण्ठ्यो लघुपाकः कफापहः ॥ १७० ॥

पेया पचने में हल्की, मल को रोकने वाली(१) और धातुओं को पुष्ट करने वाली है। **यूष** बलकारक, कण्ठ को हितकारी, लघुपाकी और कफनाशक है ॥ १७० ॥

भक्तसाधनविधिः—**जले चतुर्दशगुणे तण्डुलानां चतुष्पलम्।**
विपचेत्स्रावयेन्मण्डं स भक्तो मधुरो लघुः ॥ १७१ ॥

चार पल चावलों को लेकर (२)चौदह गुने पानी में पकावे। चावल पक जाने पर मांड को नितार देवे। यह **भात** मधुर और हलका होता है।

---

(१) पेया को ग्राही बताया है परन्तु अतीसार में द्रव पदार्थ का निषेध है। जैसे—
"वर्जयेद्विदलं शूली कुष्ठी मांसं क्षयी स्त्रियम्। द्रवमन्नमतीसारी सर्वं च तरुणज्वरी ॥"
परिहार इस प्रकार है—
"कार्यं चानशनस्यान्ते प्रद्रवं लघु भोजनम्। (प्रद्रवमत्र प्रकृष्टद्रवम्)
व्रणोदरस्थापनपातितानां प्रमेहिणां छर्द्यतिसारिणां च।
द्रवं न दद्यादथवाऽपि कोष्णं स्वल्पं हितं भेषजसंयुतं च ॥

(२) भात के इस विधान में मांड निकालने के लिये इतने जल का विधान है। पर तन्त्रान्तर में पंचगुने ही जल में भात बनाने का विधान है। जैसे—
श्रृतं पञ्चगुणे भक्तं विलेपीति चतुर्गुणे।

विमर्श—यह भात बीमारों के लिये या दुर्बलों के लिये है जिसमे माँड निकाल दिया जाता है। स्वस्थ और बलवान लोगों के लिये पांचगुने जल में चावल पकाया जाता है और माँड भी नहीं निकाला जाता। यह भात भारी, बलकारक और कफकारक होता है॥ १७१॥

मण्डसाधनविधिः—**नीरे चतुर्दशगुणे सिद्धो मण्डस्त्वसिक्थकः।**
शुण्ठीसैन्धवसंयुक्तः पाचनो दीपनः परः॥ १७२॥

चावलों को चौदह गुने जल में पकाकर माँड निकाल लेवे। यही माँड ही(१) **शुद्ध मण्ड** है। इसमें स्वाद के योग्य थोड़ा सेंधानमक और सोंठ का चूर्ण मिलाकर पीने से अन्न को पचाता तथा अग्नि को तेज़ करता है॥ १७२॥

अष्टगुणमण्डः—**धान्यत्रिकटुसिन्धूत्थमुद्गतण्डुलयोजितः।**
भृष्टश्च हिङ्गुतैलाभ्यां स मण्डोऽष्टगुणः स्मृतः॥ १७३॥
दीपनः प्राणदो बस्तिशोधनो रक्तवर्धनः।
ज्वरजित्सर्वदोषघ्नो मण्डोऽष्टगुण उच्यते॥ १७४॥

धनियाँ, सोंठ, मिर्च, पीपर, सेंधा नमक, मूंग और चावल से बना हींग और तेल से भुना हुआ **अष्टगुण मण्ड** होता है।

विमर्श--स्पष्टार्थ यह है कि चावल दो भाग और मूंग एक भाग लेवे और थोड़ा सा हींग देकर सबको तेल में भून लेवे फिर चौदह गुना जल डालकर पकावे। जब मांड तैयार हो जाय तो उसमें धनियाँ, सोंठ, मरिच, पीपर और सेंधा नमक इस अन्दाज़ से डाले कि उसका स्वाद न बिगड़े और रुचिकर हो। यही **अष्टगुण मण्ड** है। १-अग्नि को दीप्त करना, २-बल को बढ़ाना, ३-बस्ति का शोधन करना याने पेशाब लाना, ४-रक्त को बढ़ाना, ५-ज्वर को दूर करना, ६-८-वात, पित्त और कफ को दूर करना ये आठगुण (२) इस मण्ड में होते हैं॥ १७३-१७४॥

ऐसी अवस्था में १४ गुने का विधान भी व्यर्थ नहीं है क्योंकि भात की दो विधि है। एक धोये हुये चावलों का मांड़ निकालना **दूसरा** विना धोये चावलों का मांड निकालना। जैसे—**"यत् सुधौतप्रस्रुतं तच्च चतुर्दशगुणे जले साध्यम्। अधौतास्रुतं च पञ्चगुणे"** इति भावः।

यथा—**सुधौतप्रस्रुतं चोष्णं विशदं गुणवन्मतम्।**
अधौतप्रस्रुतं शीतं गुरु वृष्यं कफप्रदम्॥

(१) तन्त्रान्तर में मांड की तीन विधियां हैं—
मण्डस्तु **त्रिविधो ज्ञेय एकद्वित्रिपरिस्रुतः। लाजैर्भृष्टैरभृष्टैश्च तण्डुलैः परिसंस्कृतः।**
चतुस्त्रिंशद्गुणं भक्तात् पूर्वः पूर्वो लघुर्हितः॥

(२) तन्त्रान्तरोक्ताष्टगुणमण्डगुणाः—
क्षुद्बोधनो बस्तिविशोधनश्च प्राणप्रदो रक्तविवर्द्धनश्च।
ज्वरापहारी कफपित्तहन्ता वायुं जयत्यष्टगुणो हि मण्डः॥

वाट्यमण्डः—सुकण्डितैस्तथा भृष्टैर्वाट्यमण्डो यवैर्भवेत्।
कफपित्तहरः कण्ठ्यो रक्तपित्तप्रसादनः ॥ १७५ ॥

अच्छी तरह कूटकाट कर तुष निकाले जौ को कुछ कुछ भून कर चौदह गुने जल में पकाकर माँड निकाल लेवे। यही (१)वाट्य मण्ड है। यह कफपित्त-नाशक, कण्ठ को हितकारी और रक्तपित्त को शान्त करता है ॥ १७५ ॥

लाजमण्डः—लाजैर्वा तण्डुलैर्भृष्टैर्लाजमण्डः प्रकीर्त्तितः।
श्लेष्मपित्तहरो ग्राही पिपासाज्वरजिन्मतः ॥ १७६ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायां मध्यखण्डे क्वाथकल्पना-नाम-द्वितीयोऽध्यायः।

धान की खीलों अथवा भुने हुए चावलों से जो मण्ड तैयार होता है वह लाजमण्ड कहाता है। यह मण्ड कफपित्तनाशक, मलरोधक, प्यास और ज्वर को नाश करने वाला है ॥१७६॥

इति श्रीप्रयागदत्तशर्मायुर्वेदाचार्यकृतायां सुबोधिनीनामिकायां श्रीशार्ङ्गधर-भाषाटीकायां मध्यखण्डे द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः ॥ २ ॥

अथ फाण्टादिकल्पनानाम—

तृतीयोऽध्यायः।

फाण्टकल्पना—क्षुण्णे द्रव्यपले सम्यग्जलमुष्णं विनिक्षिपेत्।
मृत्पात्रे कुडवोन्मानं ततस्तु स्रावयेत्पटात् ॥ १ ॥
स स्याच्चूर्णद्रवः फाण्टस्तन्मानं द्विपलोन्मितम्।
सितामधुगुडादींश्च क्वाथवत्तत्र निक्षिपेत् ॥ २ ॥

एक पल अच्छी तरह महीन कुटी औषध को लेकर चौगुने अत्यन्त गरम जल में डालकर कुछ देर तक रहने दे जब दोनों एक दिल से हो जायँ तब कपड़े से छान लेवे। यह द्रव **फाण्ट** या **चूर्णद्रव** कहलाता है। इसके पान करने की मात्रा दो पल की है। चीनी, शहद और गुड़ आदि (२)का प्रक्षेप इसमें क्वाथ की परिभाषा के अनुसार करना चाहिये ॥ १-२ ॥

वातपित्तज्वरादौ बृह-मधूकपुष्पं मधुकं चन्दनं सपरूषकम्।
न्मधूकपुष्पादिफाण्टः—मृणालं कमलं लोध्रं गम्भारीं नागकेशरम् ॥ ३ ॥
त्रिफलां सारिवां द्राक्षां लाजान्कोष्णजले क्षिपत्।
सितामधुयुतः पेयः फाण्टो वाऽसौ हिमोऽथवा ॥ ४ ॥

---

(१) तन्त्रान्तरे वाट्यमण्डगुणाः—

"वाट्यमण्डो लघुर्ग्राही शूलानाहास्रपित्तजित्।"

(२) **आदि** शब्द से क्षीर, घृत, तैल, मूत्र, लवण, क्षार, हिङ्गु, त्रिकटु प्रभृति का ग्रहण करना चाहिये। प्रक्षेपादिकों का मानादि क्वाथ ही जैसा फाण्ट में भी देना चाहिये।

वातपित्तज्वरं दाहं तृष्णामूर्च्छाऽरतिभ्रमान् ।
रक्तपित्तं मदं हन्यान्नात्र कार्या विचारणा ॥ ५ ॥

महुए के फूल, मुलेठी, लाल चन्दन, फालसे, कमल की डंडी कमलके पत्र, लोध, गम्भारी का फल, नागकेसर, हरड़, बहेड़ा, आँवला, अनन्तमूल, मुनक्के और धानकी खील, सब द्रव्य समभाग में कुल एक पल लेवे और उसे चार पल गरम जल में डाले फिर जब द्रव्य भी गरम हो जाय तो उसे कपड़े में छान लेवे और चीनी और शहद प्रक्षेप देकर इस फांट को पीवे अथवा इसी का **हिम** ही बनाकर उपर्युक्त प्रक्षेप देकर पीवे तो वातपित्त का ज्वर, दाह, प्यास, मूर्च्छा, मन का उचटना, चक्कर आना, रक्तपित्त, नशा रहना, इन सब को नष्ट कर देता है। इसमें विचार(१) करने की कोई जरूरत नहीं ॥ ३–५ ॥

ज्वरादावाम्रादिफाण्टः-**आम्रजम्बूकिसलयैर्वटशुङ्गप्ररोहकैः ।**
उशीरेण कृतः फाण्टः सक्षौद्रो ज्वरनाशनः ।
पिपासाच्छर्द्यतीसारान्मूर्च्छां जयति दुस्तराम् ॥ ६ ॥

आम और जामुन के कोमल पल्लव, बड़ की शुंगें, बड़ की दाढ़ी, खस, इन सब द्रव्यों को सम भाग लेकर **फांट** बनावे और ठंडा कर शहद मिला कर पीने से ज्वर दूर हो जाता है। और प्यास, वमन, अतिसार और दुस्तर मूर्च्छा रोग को नष्ट करता है ॥ ६ ॥

दाहपित्तादौ लघुमधूकपुष्पादिफाण्टः—
मधूकपुष्पगम्भारीचन्दनोशीरधान्यकैः ॥ ७ ॥
द्राक्षया च कृतः फाण्टः शीतः शर्करया युतः ।
तृष्णापित्तहरः प्रोक्तो दाहमूर्च्छाभ्रमाञ्जयेत् ॥ ८ ॥

महुए का फूल, गम्भारी का फल, लालचन्दन, खस, धनियां और मुनक्कों का **फांट** ठंडा होने पर शक्कर मिलाकर पीने से प्यास, पित्तविकार, दाह, मूर्च्छा और भ्रम को नष्ट करता है ॥ ७–८ ॥

मन्थविधिः—**मन्थोऽपि फाण्टभेदः स्यात्तेन चात्रैव कथ्यते ।**
जले चतुष्पले शीते क्षुण्णं द्रव्यपलं क्षिपेत् ॥
मृत्पात्रे मन्थयेत्सम्यक्तस्माच्च द्विपलं पिबेत् ॥ ९ ॥

(२)**मन्थ** भी **फांट** ही का एक भेद है, इस लिये उसे भी यहां कहते हैं—अच्छी तरह कुटी

---

(१) इस श्लोक में विचार नहीं करने को **'अचिन्त्यो हि मणिमन्त्रौषधीनां प्रभावः'** इस वाक्य से लिखा है। और कहा भी है—
"नौषधीर्हेतुभिर्विद्वान् परीक्षेत कथञ्चन । सहस्रणापि हेतूनां नाम्बष्ठादिर्विरेचयेत्" ॥

(२) मन्थ तथा फाण्ट में यह भेद है कि **फांट** उष्णोदक में बनता है और **मन्थ** शीतल जल में मथने से बनता है। इस लिये यह फांट का भेद नहीं बल्कि कई आचार्यों के मत से प्रक्षिप्त है।

दवाई एक पल लेकर चार पल ठंडे जल में मिट्टी के पात्र में डाले। फिर मथनी से खूब मथ कर कपड़े से छान लेवे। यह **मन्थ** है। इसकी पीने की मात्रा दो पल है ॥ ९ ॥

मदात्ययादौ खर्जूरादि- **खर्जूरदाडिमीद्राक्षातिन्तिडीकाम्लिकामलैः।**

मन्थः— **सपरूषैः कृतो मन्थः सर्वमद्यविकारनुत् ॥ १० ॥**

पिण्डखजूर, अनारदाने, मुनक्के, तिन्तिड़ी (इमली भेद), इमली, आंवला और फालसे का मन्थ बनाकर पीने से सब प्रकार के मद्यविकार याने सुपारी, कोदों, शराब आदि से उत्पन्न नशा आदि को नष्ट करता है ॥ १० ॥

छर्द्यां मसूरादिमन्थः- **क्षौद्रयुक्ता मसूराणां सक्तवो दाडिमाम्भसा।**

मथिता वारयन्त्याशु छर्दिं दोषत्रयोद्भवाम् ॥ ११ ॥

भुने हुए मसूरों का सत्तू चौगुने जल में मिलावे फिर उसमें अनार के दानों का रस और शहद मिलावे और मथे। इस मन्थ को पान करने से त्रिदोषों की छर्दि याने वात, पित्त और कफ से उत्पन्न वमन रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ११ ॥

तृष्णादाहादौ यवस- **प्लावितैः शीतनीरेण सघृतैर्यवसक्तुभिः।**

क्तुमन्थः— **नातिसान्द्रद्रवो मन्थस्तृष्णादाहास्रपित्तहा ॥ १२ ॥**

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायां मध्यखण्डे फाण्टादिकल्पना-नाम-तृतीयोऽध्यायः।

जौ को भून कर सत्तू बनावे। इसके थोड़े से सत्तू लेकर उसमें थोड़ा घी (चौथाई) मिलावे जल में डाल कर **मन्थ** बनावे। जल इतना देवे कि **मन्थ** न अति (१)गाढ़ा होवे और न अति पतला ही रहे। इस **मन्थ** को पीने से तृष्णा, दाह और रक्तपित्त शांत होता है।

विमर्श—यह जौ का सतुआ वही है जो बाजार में बिकता है। इसमें बड़ा गुण है। यह पीते ही तृप्ति करता है, बलको तुरन्त करता, हृदय को हितकारी है। हवा, धूप, रास्ता, मेहनत आदि से उत्पन्न थकावट को दूर करता, मधुर, हलका, शीतल और रक्तपित्त को नाश करता है। इसे चीनी, ईख के रस, शहद और मुनक्के आदि के साथ पीने से पित्तविकार को एवं दाखें और शहद मिलाकर पीने से कफ के रोगों को दूर करता है। इन सब कारणों से यह यात्रियों के बड़े काम की चीज है। पर इसे ग्रीष्म ऋतु में ही पीना चाहिये। सत्तू को दिन में दो दफे नहीं पीना चाहिये, भोजन करके, सूखा ही, दांतों से चबाकर, रात को एवं सिर्फ सत्तू को ही बिना कुछ और मिलाये नहीं पीना या खाना चाहिये ॥ १२ ॥

इति श्रीप्रयागदत्तशर्मायुर्वेदाचार्यकृतायां सुबोधिनीनामिकायां श्रीशार्ङ्गधरभाषाटीकायां मध्यखण्डे तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ॥ ३ ॥

---

(१) यह मन्थ अत्यन्त द्रव या अत्यन्त घन दोनों में कोई नहीं रहना चाहिये, जैसे कहा है-

शक्तवः सर्पिषाऽभ्यक्ताः शीतवारिपरिप्लुताः।

नातिद्रवा नातिसान्द्रा मन्थ इत्यभिधीयते ॥

अथ हिमकल्पनानाम—
चतुर्थोऽध्यायः ।

हिमकल्पना—**क्षुण्णं द्रव्यपलं सम्यक्षड्भिर्नीरपलैः प्लुतम् ।**
निशोषितं हिमः स स्यात्तथा शीतकषायकः ।
तन्मानं फाण्टवज्ज्ञेयं सर्वत्रैवैष निश्चयः ॥ १ ॥

अच्छी तरह कुटी हुई ओषधि एक पल लेकर छः पल ठंडे जल में डालकर रातभर रखा रहने दे। सुबह उसको मसलकर छान ले। यही द्रव **हिम** और **शीतकषाय** कहलाता है। इसके पीने का मान तथा प्रक्षेप आदि का भी मान **फाण्ट** के ही तुल्य है। यही सर्वत्र निश्चित है ॥ १ ॥

रक्तपित्ते आम्रादिहिमः—**आम्रं जम्बूं च ककुभं चूर्णीकृत्य जले क्षिपेत् ।**
हिमं तस्य पिबेत्प्रातः सक्षौद्रं रक्तपित्तजित् ॥ २ ॥

आम, जामुन और अर्जुन वृक्षों की छालों का चूर्ण समभाग में लेवे और शामको छः-गुने जल में भिगो रखे। सुबह मल और छान कर उसमें शहद डाल कर पीवे तो रक्तपित्त दूर हो जाता है।

विमर्श—क्योंकि इसकी मात्रा भी **फांट** ही जैसी दो पल (८ तोले) की है, इसलिये चूर्ण इतना लेवे कि छःगुना जल डालकर मल छान लेने से दो पल **हिम** मिल जाय और ओषधि खराब न जाय। ऊपर की परिभाषा सामान्यतया कही गई है ॥ २ ॥

तृष्णाऽऽदौ मरीच्यादि-हिमः—**मरिचं मधुयष्टी च काकोदुम्बरपल्लवाः ।**
नीलोत्पलं हिमस्तज्जस्तृष्णाच्छर्दिनिवारणः ॥ ३ ॥

कालीमिर्च, मुलेठी, कठूमर के पत्ते और नीलोत्पल (अभाव में पद्मबीज ले लेवे) का हिम बनाकर पीने से प्यास और वमन रोग का निवारण होता है।

विमर्श—कोई कोई मरिच को तीक्ष्ण होने के कारण सम भाग न लेकर **हिम** बन जाने पर थोड़ा सा चूर्ण प्रक्षेप करते हैं जिससे थोड़ा चरपरा होजाय ॥ ३ ॥

वातपित्तज्वरादौ नीलोत्पलादिहिमः—**नीलोत्पलं बला द्राक्षा मधूकं मधुकं तथा ।**
उशीरं पद्मकं चैव काश्मरी च परूषकम् ॥ ४ ॥
एष शीतकषायश्च वातपित्तज्वराञ्जयेत् ।
सप्रलापभ्रमच्छर्दिमोहतृष्णानिवारणः ॥ ५ ॥

नीलोत्पल, बरियारा, मुनक्के, महुवे के फूल, मुलेठी, खस, पद्माख, गंभारी तथा फालसे सम भाग में ले **हिम** बना कर पीने से वातपित्त का ज्वर, बकझक करना, चक्कर आना, वमन, मोह और प्यास रोग का निवारण हो जाता है ॥ ४–५ ॥

जीर्णज्वरे गुडूचीहिमो- **अमृताया हिमः पेयो जीर्णज्वरहरः स्मृतः ।**
रक्तपित्ते वासाहिमश्च—**वासायाश्च हिमः कासं रक्तपित्तज्वराञ्जयेत् ॥ ६ ॥**

गिलोय का हिम पीने से जीर्ण ज्वर या पुराना बुखार नष्ट हो जाता है ॥

अडूसे(१) का हिम खाँसी, रक्तपित्त और बुखार को नाश करता है ॥ ६ ॥

अन्तर्दाहादौ– **प्रातः सशर्करः यो हिमो धान्याकसम्भवः ।**

धान्याकहिमः—**अन्तर्दाहं तथा तृष्णां जयेत्स्रोतोविशोधनः ॥ ७ ॥**

प्रातः काल ही धनिये के हिम में शक्कर मिला कर पीने से शरीर के अन्दर की जलन और प्यास को दूर करता एवं मल-मूत्र आदि के स्रोतों का विशोधन करता है याने दस्त-पेशाब आदि खुलासे होते हैं ॥ ७ ॥

रक्तपित्तादौ धान्याका- **धान्याकधात्रीवासानां द्राक्षापर्पटयोर्हिमः ।**

दिहिमः— **रक्तपित्तं ज्वरं दाहं तृष्णां शोषं च नाशयेत् ॥ ८ ॥**

।इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायां मध्यखण्डे हिमकल्पना-नाम-चतुर्थोऽध्यायः ।

धनियाँ, आँवला, अडूसा, मुनक्के और पित्तपापड़ा का हिम रक्तपित्त, ज्वर, दाह, तृषा और मुखशोष को नाश करता है ॥ ८ ॥

इति श्रीप्रयागदत्तशर्मायुर्वेदाचार्यकृतायां सुबोधिनीनामिकायां श्रीशार्ङ्गधरभाषाटीकायां मध्यखण्डे हिमकल्पना-नाम-चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः ॥ ४ ॥

अथ कल्ककल्पनानाम—

पञ्चमोऽध्यायः ।

कल्ककल्पना— **द्रव्यमार्द्रं शिलापिष्टं शुष्कं वा सजलं भवेत् ।**
प्रक्षेपावापकल्कास्ते तन्मानं कर्षसंमितम् ॥ १ ॥
कल्के मधु घृतं तलं देयं द्विगुणमात्रया ।
सितागुडं समं दद्याद् द्रवा देयाश्चतुर्गुणाः ॥ २ ॥

गीली ओषधि को लाकर सिल पर पीस कर लुगदी बना लेने अथवा सूखी ओषधि को जल देकर पीस, लुगदी बना लेने से **कल्क** हो जाता है। **प्रक्षेप** और **आवाप** उसकी दूसरी संज्ञाएं है। इसकी भक्षण करने की मात्रा एक (२) कर्ष भर की है। कल्क में शहद, घी और तैल कल्क से दुगुना डालना चाहिये। चीनी, गुड़, मिसरी आदि कल्क के ही बराबर डाले और द्रव पदार्थ–जल, दूध आदि कल्क से चौगुना डालना चाहिये ॥ १-२ ॥

बर्द्धमानपिप्पलीविधिः-- **त्रिवृद्ध्या पञ्चवृद्ध्या वा सप्तवृद्ध्याऽथवा कणाः ।**
पिबेत्पिष्ट्वा दशदिनं तास्तथवापकर्षयेत् ॥ ३ ॥

---

(१) यहां पर वासा से वासा का पञ्चाङ्ग ग्रहण करना चाहिये ।

(२) यहाँ पर कल्क की साधारण मात्रा १ कर्ष कही गयी है, परन्तु दोष-द्रव्य के अनुसार इसकी मात्रा न्यूनाधिक देनी चाहिये ।

एवं विंशदिनैः सिद्धं पिप्पलीबर्द्धमानकम् ।
अनेन पाण्डुवातास्रकासश्वासारुचिज्वराः ।
उदरार्शःक्षयश्लेष्मवाता नश्यन्त्युरोग्रहाः ॥ ४ ॥

अब **बर्द्धमान पिप्पली** की युक्ति कहते हैं—मामूली परिमाण की पीपर ले संख्या में तीन, पांच अथवा सात से शुरू करे और प्रतिदिन जितने से शुरू किया था उतने से अर्थात् तीन, पांच या सात पीपर से बढ़ाते जावे । इस प्रकार दस दिन तक बढ़ाते जावे । फिर ग्यारहवें दिन से उसी क्रम से तीन, पांच या सात घटाते चला जावे जब तक कि सिर्फ तीन ही रह जाय। इस प्रकार पीसकर भक्षण करते रहने से बीस दिन में यह (१)**बर्धमान** सिद्ध हो जाती है याने बीस दिन के बाद इसे बन्द कर देना चाहिये ।

विमर्श—पीपरों की लुगदी को ताजे चौगुने जल में अथवा किसी किसी के मतसे चौगुने दूध में मिलाकर पीना चाहिये ।

इस **बर्धमानपिप्पली** का सेवन करने से पीलिया, वातरक्त, खांसी, श्वास, अरुचि, ज्वर, उदररोग, बवासीर, क्षयरोग, कफ और वात के रोग एवं छाती का रह जाना या जकड़ जाना आदि आराम हो जाते हैं ॥ ३–४ ॥

निम्बकल्को व्रणच्छ-र्दादौ— **लेपान्निम्बदलैः कल्को व्रणशोधनरोपणः ।**
भक्षणाच्छर्दिकुष्ठानि पित्तश्लेष्मकृमीञ्जयेत् ॥ ५ ॥

नीम की पत्तियों को जल में पीस कर घाव में लेप देने से घाव शुद्ध होकर भर जाता है और उसे भक्षण करने से वमन, कोढ़, पित्तकफ के रोग और कृमिरोग नष्ट होते हैं ।

विमर्श—लेप का विधान आदि आगे कहा जायगा ॥ ५ ॥

महानिम्बकल्को गृध्रस्याम्—**महानिम्बजटाकल्को गृध्रसीनाशनः स्मृतः ॥ ६ ॥**

बकायन की जड़ की छाल का कल्क भक्षण करने से गृध्रसी रोग नष्ट होता है ॥ ६ ॥

रसोनकल्को वातरोग-विषमज्वरादिषु-- **शुद्धः कल्को रसोनस्य तिलतैलेन मिश्रितः ।**
वातरोगाञ्जयेत्तीव्रान्विषमज्वरनाशनः ॥ ७ ॥

छिलके आदि उतारे हुए साफ लहसन के कल्क में तिल का तेल मिला कर भक्षण करने से कठिन से कठिन वातरोग तथा सब प्रकार के विषमज्वर नष्ट होते हैं ।

---

(२) **बर्धमान पिप्पली** का योग तीन प्रकार का लिखा गया है । १–तीन तीन का, २–पांच पाच का; ३–सात सात का, इसको रोगी के बलाबल तथा रोग के बलाबल के अनुसार बर्तना चाहिये । जैसे—

१–अल्पबल वाले तथा अल्प रोग वाले को तीन तीन ।
२–मध्यबल तथा मध्यरोग वाले को पांच पांच ।
३–प्रबलरोग तथा पूर्णबल वाले को सात सात ।
यह यथाक्रम लघु, मध्य और उत्तम योग कहलाता है ।

विमर्श—तिल-तैल मूर्च्छित लेना चाहिये। किसी किसी के मत से विषमज्वर में तेल के विना ही भक्षण करना चाहिये ॥ ७ ॥

द्वितीयो रसोनकल्को वातव्याधौ— **पक्वकन्दरसोनस्य गुलिका निस्तुषीकृता।**
पाटयित्वा च मध्यस्थं दूरीकुर्यात्तदङ्कुरम् ॥ ८ ॥
तदुग्रगन्धनाशाय रात्रौ तक्रे विनिक्षिपेत्।
अपनीय च तन्मध्याच्छिलायां पेषयेत्ततः ॥ ९ ॥
तन्मध्ये पञ्चमांशेन चूर्णमेषां विनिक्षिपेत्।
सौवर्चलं यवानीं च भर्जितं हिङ्गु सैन्धवम् ॥ १० ॥
कटुत्रिकं जीरकं च समभागानि चूर्णयेत्।
एकीकृत्य ततः सर्वं कल्कं कर्षप्रमाणतः ॥ ११ ॥
खादेदग्निबलापेक्षी ऋतुदोषाद्यपेक्षया। अनुपानं ततः कुर्यादेरण्डश्रृतमन्वहम् ॥ १२ ॥
सर्वाङ्गैकाङ्गजं वातमर्दितं चापतन्त्रकम्। अपस्मारमथोन्मादमूरुस्तम्भं च गृध्रसीम् ॥ १३ ॥
उरःपृष्ठकटीपार्श्वकुक्षिपीडां क्रिमीञ्जयेत्। अजीर्णमातपं रोषमतिनीरं पयो गुडम् ॥ १४ ॥
रसोनमश्नन्पुरुषस्त्यजेदेतन्निरन्तरम्। मद्यं मांसं तथाऽम्लं च रसं सेवेत नित्यशः ॥ १५ ॥

लहसन के कन्द को जो ठीक पका हुआ हो लाकर छिलके दूर कर पुत्तियों को अलग कर लेवे। फिर इन पुत्तियों को बीचों बीच चीर कर उनके बीच का अंकुर निकाल देवे। यह सब शाम को करे और फिर उसके तेज गंध को दूर करने के लिये रात भर उसे मठे में डाल रखे। सुबह उसे मठे में से निकाल एवं धोकर सिल पर महीन पीस लेवें। फिर इस कल्क में इसका पांचवां भाग इन द्रव्यों का मिलित चूर्ण मिला देवे। संचरनोन, अजवायन, भुनी हींग, सेंधा नमक, सोंठ, मिर्च, पीपर, जीरा, समभाग ले चूर्ण करें। यह चूर्ण कल्क का पञ्चमांश ले उसमें अच्छी तरह मिला देवे। इस मिले हुए कल्क को अग्नि, बल, ऋतु और वातादि दोषों का विचार करके एक कर्ष मात्रा में (यह साधारण मात्रा है, इसे विचार कर कम ज्यादा कर लेवे) भक्षण करे एवम् ऊपर से एरंड की जड़ का काढ़ा पीवे। इस प्रकार प्रति दिन करे। इससे सारे शरीर में कुपित अथवा किसी एक अंग में कुपित वायु, अर्दित वायु, अपतन्त्रक, अपस्मार, पागलपन, ऊरुस्तम्भ, गृध्रसी (रांगन वात), छाती की पीड़ा, पीठ की पीड़ा, पसवाड़े की पीड़ा, कमर की पीड़ा और कोख की पीड़ाओं को तथा कृमिरोग को नष्ट करता है। इस लहसुन के कल्क का सेवन करने वाला अजीर्ण न होने दे या न रखे, धूप, ज्यादा पानी पीना, दूध तथा गुड़ का नित्य परहेज रखे एवं मदिरा, आसव आदि, मांस, खटाई आदि तथा मांसरस (शोर वा) नित्य सेवन किया करे ॥ ८–१५ ॥

पिप्पल्यादिकल्क ऊरुस्तम्भे— **पिप्पली पिप्पलीमूलं भल्लातकफलानि च।**
एतत्कल्कश्च सक्षौद्र ऊरुस्तम्भनिवारणः ॥ १६ ॥

पिप्पली, पीपरामूल और भिलावे के फल समभाग ले कल्क कर शहद के साथ खाने से ऊरुस्तम्भ का नाश होता है।

विमर्श—भिलावे शोध कर और गुठली निकाल कर लेवे। कहीं कहीं कल्क न करके (१)काढ़ा भी बनाते हैं ॥ १६ ॥

विष्णुक्रान्ताकल्कः परि- **विष्णुक्रान्ताजटाकल्कः सिताक्षौद्रघृतैर्युतः ।**
णामशूले— **परिणामभवं शूलं नाशयेत्सप्तभिर्दिनैः ॥ १७ ॥**

अपराजिता की जड़ का कल्क चीनी, शहद और घी मिलाकर खाने से सात दिन में परिणामशूल (२)नष्ट हो जाता है ॥ १७ ॥

शुण्ठीकल्कः परिणामशू- **शुण्ठीतिलगुडैः कल्कं दुग्धेन सह योजयेत् ।**
लामवातयोः— **परिणामभवं शूलमामवातं च नाशयेत् ॥ १८ ॥**

सोंठ और तिल समभाग ले कल्क कर कल्क का समभाग गुड़ मिला चौगुने दूध के साथ पीने से परिणामशूल और आमवात नष्ट हो जाता है।

विमर्श—यह भी (३)सात दिन में फल देता है ॥ १८ ॥

अपामार्गकल्को रक्ता- **अपामार्गस्य बीजानां कल्कस्तण्डुलवारिणा ।**
र्शसि— **पीतो रक्तार्शसां नाशं कुरुते नात्र संशयः ॥ १९ ॥**

चिरचिरे के बीजों का कल्क चावलों के धोवन में मिलाकर पीने से निस्सन्देह रक्तार्श (खूनी बवासीर) का नाश होता है ॥ १९ ॥

बदरीमूलकल्को रक्ता- **बदरीमूलकल्केन तिलकल्कश्च योजितः ।**
तीसारे **मधुक्षीरयुतः कुर्याद्रक्तातीसारनाशनम् ॥ २० ॥**

झड़बेरी के मूल का कल्क एवं तिल का कल्क दोनों सम भाग में (कुल एक कर्ष) लेकर शहद और क्षार (जवाखार) मिलाकर भक्षण करने से रक्तातिसार नष्ट होता है। कहीं कहीं क्षार के स्थान में 'क्षीर' का भी पाठ है, सो शहद मिला कल्क चौगुने बकरी के (४)दूध

---

(१) **भल्लातक-क्वाथ** का प्रचार इस वाक्य से है--

यथा--**पिप्पलीपिप्पलीमूलभल्लातकश्रृतं पिबेत् ।**
कल्को वा समधुर्देय ऊरुस्तम्भविनाशनः ॥

(२) परिणामशूललक्षणम्--**अन्ने जीर्यति यच्छूलं तदेव परिणामजम् ।**

(३) इसके गुण के विषय में दूसरी जगह भी कहा गया है—

जैसे--**"नागरतिलगुडकल्कं पयसा संसाध्य यः पुमानद्यात् ।**
उग्रपरिणामशूलं तस्यापत्यपि सप्तरात्रेण ॥

(४) पर क्षीर से बकरी का दूध ही ग्रहण करना उचित है क्योंकि रक्तातिसारादि में बकरी का दूध गुणकारक होता है। जैसे—

आजं शोषज्वरश्वासरक्तपित्तातिसारजित् ॥

में पीवे क्योंकि बकरी के दूध में रक्तातिसार नाशने की शक्ति मौजूद है ॥ २० ॥

लाक्षाकल्को रक्तक्षये-**कूष्माण्डकरसोपेतां लाक्षां कर्षद्वयं पिबेत् ।**
रक्तक्षयमुरोघातं क्षयरोगं च नाशयेत् ॥ २१ ॥

पीपल अथवा बेर के पेड़ में लगे हुए (१)लाख दो तोले के पेठे के रस में पीस कर चौगुने उसी रस में मिलाकर पीवे तो रक्तक्षय, उरःक्षत और क्षयरोग का नाश हो जाता है ॥ २१ ॥

तण्डुलीयकल्को रक्त- **तण्डुलीयजटाकल्कः सक्षौद्रः सरसाञ्जनः ।**
प्रदरे— **तण्डुलोदकसंपीतो रक्तप्रदरनाशनः ॥ २२ ॥**

चौलाई की जड़ का कल्क रसौत और शहद मिला कर चौगुने चावल के धोवन के साथ मिलाकर पीने से रक्तप्रदर याने योनि से खून का ज्यादह गिरना बन्द हो जाता है ॥ २२ ॥

अङ्कोलमूलकल्कोऽतीसा **अङ्कोलमूलकल्कश्च सक्षौद्रस्तण्डुलाम्बुना ।**
रविषयोः— **अतीसारहरः प्रोक्तस्तथा विषहरः स्मृतः ॥ २३ ॥**

अंकोल की जड़ की छाल के कल्क के साथ शहद मिला चौगुने तण्डुलोदक में मिलाकर पीने से अतिसार एवं विष (२)विकारों को दूर करता है ॥ २३ ॥

वन्ध्याकर्कोटिकाऽऽ-**वन्ध्याकर्कोटिकामूलं पाटलाया जटा तथा ।**
दीनां मूलकल्को विषे—**घृतेन बिल्वमूलं वा द्विविधं नाशयेद्विषम् ॥ २४ ॥**

बांझ ककोड़े(३) की जड़ अथवा पाढ़ल की जड़ अथवा बेल की जड़ के कल्क में घी मिला कर भक्षण करने से स्थावर एवं जङ्गम दोनों विषोंके विकारों की शांति होती है ॥ २४ ॥

अभयाऽऽदिकल्कः त्रिदोषनाशने पथ्याऽऽदिकल्कः पाचनादौ च—
अभयासैन्धवकणाशुण्ठीकल्कस्त्रिदोषहा ।
पथ्यासैन्धवशुण्ठीभिः कल्को दीपनपाचनः ॥ २५ ॥

हरड़, सेंधा नोन, पीपर, सोंठ सम भाग ले कल्क बना सेवन करने से तीनों दोषों की शान्ति होती है । हरड़, सेंधा नमक और सोंठ को सम भाव ले कल्क कर खाने से अग्नि दीप्त होता तथा आमरस का पाचन होता है ॥ २५ ॥

---

(१) यहां पर लाक्षा को शुद्ध कर व्यवहारमें लाना चाहिये । और पीपल या बेर की लाख लेना चाहिये ॥

(२) यहां पर विष से स्थावर विष जानना चाहिये ॥

(३) कही २ **बाझककोड़े** के मूल के कल्क का नास देने का भी विधान है जैसे—
वन्ध्याकर्कोटकीमूलं छागीमूत्रेण भावितम् ।
नस्यं काञ्जिकसंपिष्टं विषोपहतचेतसः ॥

तथा कोई २ **बिल्वमूल** का अञ्जन भी करते हैं । द्विविध विष से स्थावर और जङ्गम दोनों विष जानना चाहिये ॥

त्रिवृदादिकल्कः कृमि-रोगे— त्रिवृत्पलाशबीजानि पारसीकयवानिका ।
कम्पिल्लकं विडङ्गं च गुडश्च समभागकः ।
तक्रेण कल्कमेतेषां पिबेत्क्रिमिगणापहम् ॥ २६ ॥

निसोथ, ढाक के वीज, खुरासानी अजवायन, कबीला, बायविड़ंग और गुड़ सम भाग लेकर कल्क बना मठे के साथ (१)पीने से कृमिरोग नष्ट हो जाता है।

विमर्श—यह योग सिर्फ कोष्ठ में रहने वाली कृमियों के लिये है ॥ २६ ॥

तिलनागकेशरकल्कौ रक्तार्शसि— नवनीततिलैः कल्को जेता रक्तार्शसां स्मृतः ।
नवनीतसितानागकेशरश्चापि तद्विधः ॥ २७ ॥

तिल के कल्क में नौनी (मक्खन) मिला कर (२)खाने से तथा नौनी, चीनी और नागकेसर का चूर्ण मिला कर चाटने से भी रक्तार्श का नाश होता है ॥ २७ ॥

शुण्ठ्यादिबृहतीकल्कौ संग्रहण्याम्— पीतो मसूरयूषेण कल्कः शुण्ठीशलाटुजः ।
जयेत्संग्रहणीं तद्वत्तक्रेण बृहतीभवः ॥ २८ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायां मध्यमखण्डे कल्ककल्पना-नाम-पञ्चमोऽध्यायः ।

सोंठ और वेलगिरी (३)का कल्क मसूर के यूष में मिलाकर पीने से तथा बड़ी कटेहली की जड़ का कल्क मठे के साथ पीने से संग्रहणी रोग शांत हो जाता है ॥ २८ ॥

इति श्रीप्रयागदत्तशर्मायुर्वेदाचार्यकृतायां सुबोधिनीनामिकायां श्रीशार्ङ्गधरभाषाटीकायां मध्यखण्डे पञ्चमोऽध्यायः समाप्तः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः ।

इदानीं चूर्णकल्पनां व्याख्यास्यामः ।

चूर्णादौ चूर्णलक्षणम्—अत्यन्तशुष्कं यद् द्रव्यं सुपिष्टं वस्त्रगालितम् ।
तत्स्याच्चूर्णं रजः क्षोदस्तन्मात्रा कर्षसम्मिता ॥ १ ॥

---

(१) इस जगह **त्रिवृदादिकल्क** के पान की दो विधियां हैं, एक तो समान गुड मिली और दूसरी सबके बराबर गुड मिली हुई। इसमें भी एक मत और है कि गुड़ पहले भक्षण कर तब कल्क पीना चाहिये। जिसके लिये तन्त्रान्तर में इस प्रकार का योग लिखा है—

"पारसीकयवानी पीता पर्युषितवारिणा प्रातः ।
गुडपूर्वा कृमिजालं कोष्ठगतं पातयत्याशु ॥

यह युक्तियुक्त भी प्रतीत होता है, क्योंकि प्रथम गुड़ के खाने से क्रिमि उत्सुक हो जावेंगे पुनः औषध खाते ही नष्ट हो जावेंगे। कृमिनाशक योगों के खाने पर विरेचन कराना चाहिये।

(२) मक्खन के विना मिलाये भी इस योग के प्रयोग करने का विधान प्रचलित है।

(३) यहां पर **शलाटु** से बिल्वफल कच्चा लेना चाहिये। जैसे कहा है—

"आमे फले शलाटुः स्यात्" ॥

तथा तक्र दोनों योगों में अलग २ चौगुना लेना चाहिये।

जो ओषधि (१)अत्यन्त सूखी हो, उसे अच्छी तरह पीस कर कपड़े में छान लेवे। इसे चूर्ण, रजः या क्षोद कहते हैं। इसकी मात्रा साधारणतः एक कर्ष की है॥ १॥

चूर्णे गुडादिमान-कल्पना — **चूर्णे गुडः समो देयः शर्करा द्विगुणा भवेत्।**
चूर्णेषु भर्जितं हिङ्गु देयं नोत्क्लेदकृद्भवेत्॥ २॥

चूर्ण में गुड़ बराबर भागमें मिलावे और शक्कर मिश्री आदि दुगुना मिलावे। चूर्णादिकों में हींग भून कर देनी चाहिये क्योंकि भुनी हींग से उत्क्लेद (मतली) नहीं होता है॥२॥

चूर्णानुपानमान-व्यवस्था— **लिहेच्चूर्णं द्रवैः सर्वैर्घृताद्यैर्द्विगुणोन्मितैः।**
पिबेच्चतुर्गुणैरेव चूर्णमालोडितं द्रवैः॥ ३॥

चूर्ण को घृत, तैल, शहद आदि दुगुना मिला कर चाटे, पीने को हो तो (२)द्रव-दूध, जल आदि चौगुना ले उसमें चूर्ण को मिला कर पीवे॥ ३॥

चूर्णादीनां दोषानुसारेणानुपानमानकल्पना—

चूर्णावलेहगुटिकाकल्कानामनुपानकम्।
वातपित्तकफातङ्के त्रिद्व्येकपलमाहरेत॥ ४॥

अनुपान का प्रमाण चूर्ण, अवलेह, गोली और कल्कों के लिये यह है कि वात, पित्त और कफ के रोगों में तीन, दो और एक पल क्रम से लेवे।

विमर्श—याने वात के रोगों में तीन पल अनुपान, पित्त के रोग में दो पल अनुपान और कफ के रोग में एक पल अनुपान पीवे॥ ४॥

अनुपानस्यावश्यकता—**यथा तैलं जले क्षिप्तं क्षणेनैव प्रसर्पति।**
अनुपानबलादङ्गे तथा सर्पति भेषजम्॥ ५॥

औषध भक्षण करके ऊपर से जो द्रव पदार्थ पिया जाता है उसको **अनुपान** कहते हैं। जिस तरह जल में तेल का बिन्दु गिरते ही क्षण भर में फैल जाता है, उसी प्रकार अनुपान की शक्ति से ओषधि भी शीघ्र ही शरीर भर में फैल जाती है।

विमर्श—अनुपान के प्रयोग से औषध शीघ्र गुणकारी होती है। जहाँ अनुपान न

---

(१) चूर्ण के लिये जो द्रव्य लेवे वह पुराना सड़ा गला, स्वादहीन,कीड़े का खाया हुआ आदि न हो और खूब स्वच्छ करके तब चूर्ण करे। इसकी मात्रा दोष एवं द्रव्य के अनुसार ४ रत्ती से १ तोले तक जानना चाहिये।

(२) **द्रवैः** से जल, दूध, मल, मूत्रादि जानना चाहिये। चूर्ण द्रव पदार्थ में आलोडित करने से पीने में कष्ट नहीं होता तथा पेट में शीघ्र जाकर मिल जाता है। कोई २ चूर्ण तीक्ष्ण होता है जो खाते समय नासारन्ध्र में जाने लगता है और श्वास रुकने लगता है, घबराहट होने लगती है। इसलिये द्रवानुपान से (द्रवमें आलोडित होने से) ये सब भयङ्कर अवस्थायें नहीं होने पातीं।

...हो वहां (१)जल लेवे ॥ ५ ॥

चूर्णार्थ भावनापरिमा-**द्रवेण यावता सम्यक्चूर्णं सर्वं प्लुतं भवेत् ।**
णनिर्देशः- **भावनायाः प्रमाणं तु चूर्णे प्रोक्तं भिषग्वरैः ॥ ६ ॥**

जितने द्रव से चूर्ण सब ठीक तरह से डूब जाता है उतना ही द्रव भावना कार्य में देना चाहिये-ऐसा उत्तम वैद्यों का मत है ।

विमर्श—चूर्ण आदि शुष्क पदार्थों में उक्त परिमाण में द्रव देकर घोट कर धूप या छाया में सुखा लेने को **भावना** देना कहते हैं ॥ ६ ॥

आमलक्यादिचूर्ण सर्व-**आमलं चित्रकः पथ्या पिप्पली सैन्धवं तथा ।**
ज्वरादौ- **चूर्णितोऽयं गणो ज्ञेयः सर्वज्वरविनाशनः ॥**
भेदी रुचिकरः श्लेष्मजेता दीपनपाचनः ॥ ७ ॥

आँवले, चीतामूल, हरड़,पीपर और सेंधा नमक ये **आमलक्यादि गण** हैं । इनको सम भाग ले चूर्ण करके सेवन करे तो सब प्रकार के ज्वर नष्ट होते हैं तथा यह भेदी, रुचिकारक, कफनाशक, दीपन और पाचन है ।

विमर्श—सब ज्वरों पर प्रयोग लिखे रहने पर भी यह चूर्ण खास कर विषमज्वरों में प्रयुक्त होता है ॥ ७ ॥

पिप्पलीचूर्ण हिक्काज्व-**मधुना पिप्पलीचूर्णं लिहेत्कासज्वरापहम् ।**
रादिषु— **हिक्काश्वासहरं कण्ठ्यं प्लीहघ्नं बालकोचितम् ॥ ८ ॥**

पीपरों के चूर्ण में शहद मिलाकर चाटे तो खांसी, ज्वर, हिचकी और श्वास को नष्ट करता, कण्ठ को हितकारी तथा तिल्ली को शांत करता है । यह चूर्ण खास करके बालकों के लिये हितकर है ॥ ८ ॥

त्रिफलाचूर्ण मेहादिषु-**एका हरीतकी योज्या द्वौ च योज्यौ बिभीतकौ ।**
चत्वार्यामलकान्येव त्रिफलैषा प्रकीर्त्तिता ॥ ९ ॥
त्रिफला मेहशोथघ्नी नाशयेद्विषमज्वरान् ।
दीपनी श्लेष्मपित्तघ्नी कुष्ठहन्त्री रसायनी ॥ १० ॥
सर्पिर्मधुभ्यां संयुक्ता सर्वनेत्रामयाञ्जयेत् ॥ ११ ॥

एक हरड़, दो बेहेड़ा एवं चार आंवले एकत्र करने से इसको (२)**त्रिफला** कहते हैं । यह

---

(१) सब अनुपानों में जल का अनुपान श्रेष्ठ है जैसे कहा है—

"सर्वेषामनुपानं स्यान्माहेन्द्रं तोयमुत्तमम्" ।

तथा च—**सर्वानुपानेषु वरं वदन्ति मेध्यं यदन्तःशुचिभाजनस्थम् ।**
लोकस्य जन्मप्रभृति प्रशस्त तोयात्मकाः सर्वरसाः प्रदिष्टाः ॥

(२) यहां पर **त्रिफला** हरीतक्यादि को कहा गया है पर **त्रिफला** से एक दूसरी त्रिफला भी (द्राक्षा, गभार और खर्जूर फल भी) होती है—

त्रिफलाचूर्ण सेवन करने से मेह, शोथ और विषमज्वरों को नाश करता, अग्नि को दीप्त करता, कफ और पित्त को शान्त करता, कोढ़ को नष्ट करता तथा रसायन है। इसी त्रिफले का घृत और शहद असमान भाग लेकर उसके साथ सेवन करने से नेत्ररोगों का नाश करता है।

विमर्श—यहां त्रिफले का मान संख्या से ही किया गया है जहां परिमाण की बात हो वहां सम लेना चाहिये। संख्या में लेने से भी प्रायः सम भाग होता है क्योंकि एक हरड़, दो बेहेड़ा एवं चार आंबले का तौल करीब करीब दो दो तोले का होता है॥ ९-११॥

त्र्यूषणचूर्णं दीपनादौ-**पिप्पली मरिचं शुण्ठी त्रिभिस्त्र्यूषणमुच्यते।**
दीपनं श्लेष्ममेदोघ्नं कुष्ठपीनसनाशनम्॥
जयेदरोचकं सामं मेहगुल्मगलामयान्॥ १२॥

पीपर, गोल मिर्च और सोंठ, इन तीनों को (१)**त्र्यूषण** कहते हैं। इसे **त्रिकटु** भी कहते हैं। यह त्रिकटु या त्रिकुटा अग्नि को दीप्त करता, कफ और मेद को नष्ट करता, कोढ़, पीनस, अरुचि, आमदोष, मेह, गुल्म और गले के रोगों का नाश करता है॥ १२॥

पञ्चकोलचूर्णमरुच्यादौ-**पिप्पलीचव्यविश्वाह्वपिप्पलीमूलचित्रकैः॥ १३॥**
पञ्चकोलमिति ख्यातं रुच्यं पाचनदीपनम्।
आनाहप्लीहगुल्मघ्नं शूलश्लेष्मोदरापहम्॥ १४॥

पिप्पली, चाभ, सोंठ, पिपरामूल और चीतामूल इन पांचों को (२)**पञ्चकोल** कहते हैं। पञ्चकोल रुचिकारक, दीपन, पाचन, आनाह, तिल्ली, गुल्म, शूल, कफ और उदर रोगों का नाश करता है॥ १३-१४॥

त्रिगन्धचतुर्जातचूर्णयो- **त्रिगन्धमेलात्वक्पत्रैश्चतुर्जातं सकेशरः।**
गुणाः— **त्रिगन्धं सचतुर्जातं रूक्षोष्णं लघु पित्तकृत्।**
वर्ण्यं रुचिकरं तीक्ष्णं पित्तश्लेष्मामयाञ्जयेत्॥ १५॥

छोटी इलायची, दालचीनी और तेजपात, इन तीनों को **'त्रिसुगन्ध'** कहते हैं। इनमें

जैसे—**"द्राक्षाकाश्मर्यखर्जूरफलानीति फलत्रिका।**
इयं प्रोक्ता द्वितीया च त्रिफला चरकादिभिः॥

(१) **त्र्यूषण** में तीनों द्रव्य सम भाग में लेना चाहिये।

(२) **पञ्चकोल** में भी पांचो वस्तुयें समान लेनी चाहिये। इन्हीं त्र्यूषण पञ्चकोलादिकों के प्रसंग में ऊषकादि गण भी है जो यहां पुस्तक में नहीं दिया गया है, प्रसङ्गवश इसकी भी गणना दी जाती है।

ऊषकादिगणः—**"ऊषकं सैन्धवं हिङ्गु काशीसद्वयगुग्गुलु।**
शिलाजतु तुत्थकं च ऊषकादिरुदाहृतः॥
ऊषकादिः कफं हन्ति गणो भेदी विशोधनः।
अश्मरीशर्करामूत्रशूलघ्नः कफगुल्मनुत्॥

नागकेसर मिला देने से **'चतुर्जात'** कहते हैं। **त्रिसुगन्ध** और **चतुर्जात**—रूखा, गरम, हलका और पित्तकारक, वर्णकारक, रुचिकारक, तीक्ष्ण, पित्त (पाठान्तर में विष) और कफ के विकारों को दूर करता है ॥ १५ ॥

कृष्णाऽऽदिचूर्णं शिशूनां-**कृष्णारुणामुस्तकशृङ्गिकाणां तुल्येन चूर्णं न समाक्षिकेण ।**
ज्वरातिसारादौ—**ज्वरातिसारः प्रशमं प्रयाति सश्वासकासः सवमिः शिशूनाम्॥१६॥**

पीपर, अतीस, नागरमोथा, काकड़ाशिङ्गी इन सबों को सम भाग में लेकर चूर्ण कर लेने के बाद मधु के साथ मिलाकर मात्रानुसार खाने से बालकों का ज्वर, अतीसार, श्वास, खांसी और वमन रोग दूर होता है ।

विमर्श—यह चूर्ण बालकों के लिये उक्त रोगों में देने से विशेष लाभदायक होता है। अतः बालकों के १—क्षीराशी, २—क्षीरान्नाशी, ३—अन्नाशी। इस भांति से ३ भेद होने के कारण प्रथम के लिये २-४ रत्ती, द्वितीय के लिये ४—८ रत्ती, तृतीय के लिये १—२ माशा तक की एक प्रथम मात्रा समझनी चाहिये । अनुपान में चतुर्गुण मधु मिलाना चाहिये ॥ १६ ॥

जीवनीयगणः—**काकोली क्षीरकाकोली जीवकर्षभकौ तथा ।**
मेदा चान्या महामेदा जीवन्ती मधुकं तथा ॥ १७ ॥
मुद्गपर्णी माषपर्णी जीवनीयो गणस्त्वयम् ।
जीवनीयो गणः स्वादुर्गर्भसन्धानकृद् गुरुः ॥ १८ ॥
स्तन्यकृद् बृंहणो वृष्यः स्निग्धः शीतस्तृषाऽपहः ।
रक्तपित्तं क्षतं शोषं ज्वरदाहानिलाञ्जयेत् ॥ १९ ॥

काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, जीवन्ती, मुलहठी, मुंगवन और मसवन, इनको **'जीवनीयगण'** कहते हैं। यह **जीवनीयगण** स्वादिष्ट, गर्भस्थापन करने वाला, भारी, दूध लाने वाला, शरीर को पुष्ट करने वाला, वीर्य को बढ़ाने वाला, चिकना, शीतल, तृषा (प्यास), रक्तपित्त, क्षयरोग, मुख का सूखना, ज्वर, दाह और वातरोगों को नष्ट करता है ॥ १७–१९ ॥

अष्टवर्गः—**द्वे मेदे द्वे च काकोल्यौ जीवकर्षभकौ तथा ॥ २० ॥**
ऋद्धिवृद्धी च तैः सर्वैरष्टवर्ग उदाहृतः ।
अष्टवर्गो बुधैः प्रोक्तो जीवनीयसमो गुणैः ॥ २१ ॥

मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोर्ला, जीवक, ऋषभक, ऋद्धि और वृद्धि, ये आठ **'अष्टवर्ग'** कहलाते हैं। विद्वानों ने **जोवनीयगण** के समान ही **अष्टवर्ग** का गुण बतलाया है।

विमर्श—यह **अष्टवर्ग** की ओषधियाँ राजाओं के लिये भी अप्राप्य है। आजकल तो इनके नाम ही सुने जाते हैं, इस लिये इनके स्थान में इनके ही समान गुण वाले इनके प्रतिनिधि (१)का ग्रहण करे। मेदा और महामेदा के स्थान में **शतावर**, जीवक और ऋषभक के

---

(१) अष्टवर्ग के अभाव में—

स्थान में **विदारीकन्द,** काकोली और क्षीरकाकोली के स्थान में **असगन्ध** और ऋद्धि और वृद्धि के स्थान में **वाराहीकन्द** लेवे। यदि वाराहीकन्द भी न मिले तो उसके स्थान में **चमार आलू** से काम चलावे ॥ २०–२१ ॥

लवणपञ्चकचूर्णं सृष्टवि- **सिन्धु सौवर्चलं चव विडं सामुद्रिकं गडम् ।**
ण्मूत्रादौ— **एकद्वित्रिचतुःपञ्चलवणानि क्रमाद्विदुः ॥ २२ ॥**
तेषु मुख्यं सैन्धवं स्यादनुक्ते तत्प्रयोजयेत् ।
सैन्धवाद्यं रोमकान्तं ज्ञेयं लवणपञ्चकम् ॥ २३ ॥
मधुरं सृष्टविण्मूत्रं स्निग्धं सूक्ष्मं बलापहम् ।
वीर्योष्णं दीपनं तीक्ष्णं कफपित्तविवर्द्धनम् ॥ २४ ॥

सेंधानमक, संचर या काला नमक, विडनमक, समुद्र नमक और साम्भर नमक, इन पांचों में से पहले को **'एकलवण'** सेंधा और कालानमक को **'द्विलवण'** सेंधा, संचर और विड नमक को **'त्रिलवण'** सेंधा, संचर, विड और समुद्र नमक को **'चतुर्लवण'** और पांचों को **'पञ्चलवण'** कहते हैं याने सेन्धानमक से लेकर साम्भर नमक तक के पांचों को ही **'पञ्चलवण या लवणपञ्चक'** कहते हैं। इनमें से सेंधा नमक मुख्य याने श्रेष्ठ है। जहां यह न लिखा हो कि अमुक लवण लो, सिर्फ लवणमात्र का उल्लेख हो वहां सेंधा नमक लीजिये। ये सब नमक मधुर विपाक वाले, पाखाना–पेशाब खुलासा लाने वाले, चिकने, सूक्ष्म, बलनाशक, उष्णवीर्य याने गरम तासीर वाले, अग्नि को तेज़ करने वाले, तीखे और कफ तथा पित्त को बढ़ाने वाले हैं ॥ २२–२४ ॥

क्षारयोगः—**स्वर्जिका यावशूकश्च क्षारयुग्ममुदाहृतम् ।**
ज्ञेयौ वह्निसमौ क्षारौ स्वर्जिकायावशूकजौ ॥ २५ ॥
क्षाराश्चान्येऽपि गुल्मार्शोग्रहणीरुक्छिदः सराः ।
पाचनाः कृमिपुंस्त्वघ्नाः शर्कराऽश्मरिनाशनाः ॥ २६ ॥

सज्जीखार और जवाखार, ये दोनों **'क्षारयुग्म'** या **'द्विक्षार'** कहलाते हैं। ये दोनों क्षार–अग्नि के समान तेज हैं याने सबसे बढ़कर गर्म वीर्य वाले हैं। **चकार** से इसमें सुहागा मिलाने से (१)**'त्रिक्षार या क्षारत्रितय'** कहाता है। ये क्षार तथा अन्यान्य केला, सैंजन,

---

"वरीविदार्यश्वगन्धावाराहीश्च यथाक्रमात्"।
लिखा गया है पर मतान्तर में एक और वाक्य है—
"मेदाऽभावे अश्वगन्धा महामेदे च शारिवा। जीवकर्षभकाभावे गुडूची वंशलोचना॥
ऋद्ध्यभावे बला देया वृद्ध्यभावे महाबला"।
परन्तु यह व्यवहार में नहीं आता, व्यवहार में उपर्युक्त वरी विदारीत्यादि ही आता है।

(१) क्षार यहां दो ही गिनाये हैं पर क्षार दो, तीन और आठ इस तरह तीन तरह का शास्त्र में कहा गया है। (क्षारद्वय, क्षारत्रय, क्षाराष्टक) जैसे—

चिरचिरा, तिलनाल, सेहुड़, पाढल प्रभृति के क्षार सब गुल्म, अर्श और ग्रहणी रोगों को नाश करने वाले, पाचन करने वाले, कृमिनाशक, वीर्यनाशक तथा पेशाब में शर्करा का आना और पथरी रोग को नाश करने वाले होते हैं।

विमर्श—यहां शर्करा आना पथरी का ही भेद जानें न कि सिकतामेह ॥ २५–२६ ॥

सुदर्शनचूर्ण सर्वज्व- **त्रिफला रजनीयुग्मं कण्टकारीयुगं शटी ।**
रादौ— **त्रिकटु ग्रन्थिकं मूर्वा गुडूची धन्वयासकः ॥ २७ ॥**
कटुका पर्पटो मुस्तं त्रायमाणा च बालकम् ।
निम्बः पुष्करमूलं च मधुयष्टी च वत्सकम् ॥ २८ ॥
यवानीन्द्रयवो भार्ङ्गी शिग्रुबीजं सुराष्ट्रजा । वचा त्वक्पद्मकोशीरचन्दनातिविषाबलाः२९
शालिपर्णी पृष्ठिपर्णी विडङ्गं तगरं तथा । चित्रको देवकाष्ठं च चव्यं पत्रं पटोलजम् ॥३०॥
जीवकर्षभकौ चैव लवङ्गं वंशलोचना । पुण्डरीकं च काकोली पत्रकं जातिपत्रकम् ॥३१॥
तालीसपत्रं च तथा समभागानि चूर्णयेत् ।
सर्वचूर्णस्य चार्द्धांशं कैरातं निक्षिपेत्सुधीः ॥ ३२ ॥
एतत्सुदर्शनं नाम चूर्णं दोषत्रयापहम् ।
ज्वरांश्च निखिलान्हन्यान्नात्र कार्या विचारणा ॥ ३३ ॥
पृथग्द्वन्द्वागन्तुजांश्च धातुस्थान्विषमज्वरान् ।
सन्निपातोद्भवांश्चापि मानसानपि नाशयेत् ॥ ३४ ॥
शीतज्वरैकाहिकादीन्मोहं तन्द्रां भ्रमं तृषाम् ।
श्वासं कासं च पाण्डुं च हृद्रोगं हन्ति कामलाम् ॥ ३५ ॥
त्रिकपृष्ठकटीजानुपार्श्वशूलनिवारणम् ।
शीताम्बुना पिबेद्धीमान्सर्वज्वरनिवृत्तये ॥ ३६ ॥
सुदर्शनं यथा चक्रं दानवानां विनाशनम् ।
तद्वज्ज्वराणां सर्वेषामिदं चूर्णं प्रणाशनम् ॥ ३७ ॥

हरड़, बेहेड़ा, आंवला, हलदी, दारुहलदी, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, कचूर, सोंठ, मरिच, पीपर, पिपरामूल, मूर्वा, गिलोय, जवासा, कुटकी, पित्तपापड़ा, नागरमोथा; त्रायमाणा, नेत्रबाला, नीमछाल, पोहकरमूल, मुलेठी, कूड़े की छाल, अजवायन, इन्द्रजौ, भारंगी, सैजन के बीज, फिटकरी, वच, दालचीनी, पद्माख, खस, लालचन्दन, अतीस, बरियारा की जड़, सरिवन, पिठवन; वायविडंग, तगर, चीते की जड़, देवदारु, चाभ, पटोल के पत्र, जीवक,

---

"स्वर्जिका यावशूकश्च क्षारद्वयमुदाहृतम् । टङ्कणेन युतं तत्तु क्षारत्रयमुदीरितम् ॥
पलाशबीजशिखरिचिञ्चाऽर्कतिलनालजाः । यवजः स्वर्जिका चेति क्षाराष्टकमुदाहृतम्"॥

प्रायः सभी क्षार अग्नि के तुल्य तीक्ष्ण तथा गुल्मादि के नाशक होते हैं तथा बड़े उपकारी हैं।

ऋषभक, लौंग, वंशलोचन, सफेद कमल, काकोली, तेजपात, जावित्री, तालीसपत्र, इन सब (कुल ५२ हैं) दवाओं को समभाग लेकर चूर्ण करे। इस चूर्ण में इसका आधा चिरायते का चूर्ण मिला देवे। यह **सुदर्शन चूर्ण** है। यह चूर्ण त्रिदोषनाशक है। यह सब प्रकार के ज्वरों को नष्ट कर देता है, इसमें दोष आदि का विचार करने की आवश्यकता नहीं याने यह प्रभाव से ही सब ज्वरों को नष्ट करता है। वातज, पित्तज, कफज, वातपित्तज, वातकफज, कफपित्तज, आगन्तुज, धातुओं में स्थित, विषमज्वर, सान्निपातिक, मानसिक, शीतज्वर, ऐकाहिक, द्वयाहिक आदि प्रत्येक प्रकार का ज्वर, मोह, तन्द्रा, भ्रम, तृषा, श्वास, खांसी, पीलिया, हृदयरोग, कामला, त्रिकशूल, पृष्ठशूल, कटीशूल, जानुशूल और पार्श्वशूल, इन सब रोगों को एकदम नष्ट कर देता है। बुद्धिमान इसे ठंडे जल के अनुपान से खावे। जिस प्रकार भगवान् विष्णु का सुदर्शन चक्र राक्षसों का नाश करता है उसी प्रकार यह **सुदर्शन चूर्ण** भी सब ज्वरों को विनष्ट कर देता है ॥ २७–३७ ॥

त्रिफलापिप्पलीचूर्णं कासश्वासज्वरेषु— **कासश्वासज्वरहरा त्रिफला पिप्पलीयुता ।**
चूर्णिता मधुना लीढा भेदिनी चाग्निबोधिनी ॥ ३८ ॥

हरड़, बहेड़ा, आमला और पीपर सम भाग लेकर चूर्ण करे। इस चूर्ण को शहद में मिलाकर चाटे। खांसी, श्वास और ज्वर आराम हो जायगे। यह चूर्ण भेदन करने वाला और अग्नि को तेज करने वाला है॥ ३८ ॥

कट्फलादिचूर्णं ज्वरादौ- **कट्फलं मुस्तकं तिक्ता शटी शृङ्गी च पौष्करम् ।**
चूर्णमेषां च मधुना शृङ्गवेररसेन वा ॥ ३९ ॥
लिहेज्ज्वरहरं कण्ठ्यं कासश्वासारुचीर्जयेत् ।
वायुं छर्दिं तथा शूलं क्षयं चैव व्यपोहति ॥ ४० ॥

कायफल, नागरमोथा,कुटकी, कचूर, काकड़ासिङ्गी, पोहकरमूल–इनको सम भाग ले चूर्ण कर शहद अथवा अदरख के रस के साथ चाटे। यह ज्वरनाशक, कण्ठ को हितकारी, श्वास, खाँसी, अरुचि, वायुशूल, वमन और क्षयरोग को नष्ट करता है॥ ३९–४० ॥

बृहत्कट्फलादिचूर्णं शूलानिलादिषु— **कट्फलं पौष्करं शृङ्गी मुस्ता त्रिकटुकं शटी ।**
समस्तान्येकशो वाऽपि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ ४१ ॥
आर्द्रकस्वरसक्षौद्रैर्लिह्यात्कफविनाशनम् ।
शूलानिलारुचिच्छर्दिकासश्वासक्षयापहम् ॥ ४२ ॥

कायफल, पोहकरमूल, काकड़ासिङ्गी, नागरमोथा, सोंठ, काली मिर्च, पीपर और कचूर, सबको समभाग एकत्र अथवा अलग अलग चूर्ण कर लेवे। इसे अदरख के रस और शहद के साथ चाटे तो कफ, शूल, वायु, अरुचि, वमन, खांसी, श्वास और क्षयरोग नष्ट हो जाते हैं ४१-४२

द्वितीयं कट्फलादिचूर्णं श्वासादिषु— **कट्फलं पौष्करं कृष्णा शृङ्गी च मधुना सह ।**
श्वासकासज्वरहरः श्रेष्ठो लेहः कफान्तकृत् ॥ ४३ ॥

कायफल, पोहकरमूल, पीपर, काकड़ाश्रृङ्गी, इनको समभाग चूर्णकर शहद के साथ चाटे। यह लेह खांसी, श्वास और ज्वर का नाश करने तथा कफ के अन्त करने में उत्तम है ॥४३॥

शृङ्ग्यादिचूर्णं विषाचूर्णं च शिशोः कासज्वरच्छर्दिषु—

श्रृङ्गी प्रतिविषा कृष्णा चूर्णिता मधुना लिहेत् ।
शिशोः कासज्वरच्छर्दिशान्त्यै वा केवला विषा ॥ ४४ ॥

बालकों के खांसी, ज्वर तथा वमन रोग की शान्ति के लिये काकड़ाशृङ्गी, अतीस और पीपरों का सम भाग (१)चूर्ण शहद के साथ चटावे अथवा सिर्फ अतीस का चूर्ण शहद के साथ चटावे ॥ ४४ ॥

यवक्षारादिचूर्णं शिशोः कासे— **(यवक्षारविषाश्रृङ्गीमागधीपौष्करोद्भवम् ।**
चूर्णं क्षौद्रयुतं लीढं पञ्च कासाञ्जयेच्छिशोः ॥ ४५ ॥)

जवाखार, अतीस, काकड़ासिङ्गी, पीपर और पोहकरमूल का चूर्ण शहद में मिलाकर चटाने से बालकों की पांचो प्रकार की खांसी नष्ट हो जाती है ॥ ४५ ॥

शुण्ठ्यादिचूर्णमामातीसारे— **शुण्ठीप्रतिविषाहिङ्गुमुस्ताकुटजचित्रकैः ।**
चूर्णमुष्णाम्बुना पीतमामातीसारनाशनम् ॥ ४६ ॥

सोंठ, अतीस, भुनी(२) हींग, नागरमोथा, इन्द्रजौ और चीतामूल का चूर्ण गरम जल के साथ पीने से आमातीसार बन्द होता है ॥ ४६ ॥

हरीतक्यादिचूर्णमामातीसारे— **हरीतकी प्रतिविषा सिन्धु सौवर्चलं वचा ।**
हिङ्गु चेति कृतं चूर्णं पिबेदुष्णेन वारिणा ॥
आमातीसारशमनं ग्राहि चाग्निप्रबोधनम् ॥ ४७ ॥

(३) हरड़, अतीस, सेंधानमक, काला नमक, वच, हींग, इनका चूर्ण गरम जल के साथ

---

(१) योगान्तर में भी इसका वर्णन इस प्रकार है—

श्रृङ्गी सकृष्णाऽतिविषां विचूर्ण्य लेहं विदध्यान्मधुना शिशूनाम् ।
कासज्वरच्छर्दिभिरर्दितानां समाक्षिकं चातिविषामथैकाम् ॥

इसके उपरान्त इसी तरह का एक और योग है जिसे **चतुर्भद्रिका** (चौहद्दी) कहते हैं। और यह बालकों के लिये विशेष उपकारी है—

सकृष्णारुणाश्रृङ्गीचूर्णं क्षौद्रेण संयुतम् । शिशोर्ज्वरातिसारघ्नं कासं श्वासं वमिं जयेत् ॥

(२) हींग यहां घी में भुनी हुई लेनी चाहिये ।

(३) किसी २ का मत है कि इस योग में से हरीतकी निकाल देनी चाहिये । क्योंकि इसके गण को ग्राही बताया गया है हरीतकी रहने से रेचक होगा ।

("व्याधेरनुक्तं यद् द्रव्यं गणोक्तमपि तत् त्यजेत्")

इस वाक्य से हरीतकी निकाल देने से यह केवल ग्राही रहेगा आमातिसार के आम को भी ग्रहण करेगा । आमातिसार के आम का निकल जाना ही अच्छा है तथा आमातिसार

पीने से आमातीसार को नष्ट करता, ग्राही तथा अग्नि को बढ़ाने वाला है ॥ ४७ ॥

लघुगङ्गाधरचूर्णं पक्वा- **मुस्तमिन्द्रयवं बिल्वं लोध्रं मोचरसं तथा ।**
तिसारे— **धातकीं चूर्णयेत्तक्रगुडाभ्यां पाययेत्सुधीः ॥ ४८ ॥**
सर्वातीसारशमनं निरुणद्धि प्रवाहिकाम् । लघुगङ्गाधरं नाम चूर्णं संग्राहकं परम् ॥४९॥

नागरमोथा, इन्द्रजौ, बेलगिरी, लोध, मोचरस और धाय के फूल सम भाग ले चूर्ण करे। इसे गुड़ और मट्ठा के साथ पीवे तो सब प्रकार के अतिसारों को शान्त करता तथा पेचिश को रोकता है। यह लघुगङ्गाधर चूर्ण दस्त रोकने में सबसे बढ़कर है।

विमर्श—इसे सिर्फ पक्वातीसार में देना चाहिये क्योंकि अपक्व दोषों को रोकना ठीक नहीं, हां जो दुर्बल हो और दस्त ज्यादे आते हों तो उसे दे सक्ते हैं ॥ ४८-४९ ॥

बृहद्गङ्गाधरचूर्णं प्रवा-**मुस्तारलुकशुण्ठीभिर्धातकीलोध्रबालकैः ।**
हिकाऽऽदौ— **बिल्वमोचरसाभ्यां च पाठेन्द्रयववत्सकैः ॥ ५० ॥**
आम्रबीजं प्रतिविषा लज्जालुरिति चूर्णितम् ।
क्षौद्रतण्डुलपानीयः पीतैर्याति प्रवाहिका ॥ ५१ ॥
सर्वातिसारा ग्रहणी प्रशमं याति वेगतः । बृद्धगङ्गाधरं चूर्णं सरिद्वेगविबन्धकम् ॥५२॥

नागरमोथा, अरलू, सोंठ, धाय के फूल, लोध, नेत्रवाला, बेलगिरी, मोचरस, पाठा, इन्द्रजौ, कूड़े की छाल, आम की गुठली, अतीस, और लजालू सम भाग लेकर चूर्ण करे। इसे तण्डुलोदक और शहद को मिलाकर उसके साथ सेवन करे तो प्रवाहिका, सब अतिसार और ग्रहणी शीघ्र ही शान्त हो जाते हैं। यह बृद्धगङ्गाधर नाम का चूर्ण नदी की धार ऐसी चलती अतिसार आदि को भी रोक देता है ॥ ५०-५२ ॥

अजमोदाऽऽदिचूर्णमा- **अजमोदा मोचरसं सशृङ्गवेरं सधातकीकुसुमम् ।**
तीसारे— **गोदधिमन्थितयुक्तं गङ्गामपि वाहिनीं रुन्ध्यात् ॥ ५३ ॥**

अजमोद, मोचरस, सोंठ, धाय के फूल, सम भाग चूर्ण कर गाय के दही के (१)मथित याने पानी विना मिलाये ही मथे हुऐ गाय के दही के साथ खाने से गङ्गा की धारा जैसी जोरदार पेचिश भी रुक जाती है ॥ ५३ ॥

मरिचादिचूर्णं ग्रहण्या-**तक्रेण यः पिबेन्नित्यं चूर्णं मरिचसंभवम् ॥ ५४ ॥**
दौ— **चित्रसौवर्चलोपेतं ग्रहणी तस्य नश्यति ।**
उदरप्लीहमन्दाग्निगुल्मार्शोनाशनं भवेत् ॥ ५५ ॥

में केवल ग्राही ओषधि देनी भी नहीं चाहिये। इसलिये हरीतकी आम को निकालती है और शेष अंश जठराग्नि में पचकर धारण हो जाता है। अतः हरीतकी भी अवश्य रहनी चाहिये।

(१) यहां पर **मथित** गोदधि लिखा है इसे तक्र नहीं समझ लेना चाहिये, तक्र और मथित में भेद है—

यथा—**"सजलं गोरसं घोलं मस्तु तच्चार्द्धवारिकम् ।**
तक्रं त्रिभागभिन्नं तु केवलं मथितं स्मृतम् ॥

जो मनुष्य नित्यप्रति काली मिर्च, काला नमक और चीतामूल का चूर्ण मिलाकर मठा पीता है उसके ग्रहणी, उदररोग, तिल्ली; मन्दाग्नि, गुल्म और बवासीर नष्ट हो जाते हैं५४–५५

कपित्थाष्टकं चूर्णं ग्रहण्यादौ— **अष्टौ भागाः कपित्थस्य षड्भागा शर्करा मता ।**
दाडिमं तिन्तिडीकं च श्रीफलं धातकी तथा ॥ ५६ ॥
अजमोदा च पिप्पल्यः प्रत्येकं स्युस्त्रिभागिकाः ।
मरिचं जीरकं धान्यं ग्रन्थिकं बालकं तथा ॥ ५७ ॥
सौवर्चलं यवानी च चातुर्जातं सचित्रकम् ।
नागरं चैकभागाः स्युः प्रत्येकं सूक्ष्मचूर्णितम् ॥ ५८ ॥
कपित्थाष्टकसंज्ञं स्याच्चूर्णमेतद् गलामयान्। अतीसारं क्षयं गुल्मं ग्रहणीं च व्यपोहति५९

कैथ का गूदा ८ भाग, सफेद चीनी ६ भाग, खट्टे अनारदाना, इमली, बेलगिरी, धाय के फूल, अजमोदा और पीपर प्रत्येक तीन तीन भाग, कालीमिर्च, जीरा, धनियां, पिपरामूल, नेत्रवाला, कालानमक, अजवायन, दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची, चीते की जड़, सोंठ प्रत्येक एक एक भाग–सबको अलग अलग सूक्ष्म चूर्ण कर मिला लेवे तो यह **कपित्थाष्टक** नामक चूर्ण बन जाता है । यह गले के रोगों को, अतिसार, क्षयरोग, गुल्म और ग्रहणी रोगों को नष्ट करता है ॥ ५६–५९ ॥

लघुदाडिमाष्टकचूर्णमरुच्यादौ कासज्वरादिषु च— **दाडिमी द्विपला ग्राह्या खण्डा चाष्टपलाऽपि च ।**
त्रिगन्धस्य पलं चैकं त्रिकटु स्यात्पलत्रयम् ॥ ६० ॥
एतदेकीकृतं सर्वं चूर्णं स्याद्दाडिमाष्टकम् ।
रुचिकृद्दीपनं कण्ठ्यं ग्राहि कासज्वरापहम् ॥ ६१ ॥

खट्टे अनारदाने दो पल (८ तोले), मिश्री ८ पल (३२ तोले), त्रिगन्ध यानी दालचीनी, तेजपात और इलायची का मिलित चूर्ण एक पल (४ तोले), त्रिकटु मिलित चूर्ण तीन पल (१२ तोले) एकत्र कर मिला लेवे तो '**दाडिमाष्टक**' चूर्ण तैयार हो जाता है । यह चूर्ण रुचिकारक, दीपन, कण्ठ को हितकारी, ग्राही एवं कास और ज्वर को नष्ट करने वाला है ॥ ६०–६१ ॥

बृहद्दाडिमाष्टकचूर्णमतीसारादौ— **दाडिमस्य पलान्यष्टौ शर्करायाः पलाष्टकम् ।**
पिप्पली पिप्पलीमूलं यवानी मरिचं तथा ॥ ६२ ॥
धान्यकं जीरकं शुण्ठी प्रत्येकं पलसम्मितम् ।
कर्षमात्रा तुगाक्षीरी त्वक्पत्रैलाश्च केशरम् ॥ ६३ ॥
प्रत्येकं कोलमात्राः स्युस्तच्चूर्णं दाडिमाष्टकम् ।
अतीसारं क्षयं गुल्मं ग्रहणीं च गलग्रहम् ॥
मन्दाग्निं पीनसं कासं चूर्णमेतद्व्यपोहति ॥ ६४ ॥

अनारदाने आठ पल, सफेद चीनी आठ पल, पीपर, पीपरामूल, अजवायन, काली मिर्च, धनियाँ, जीरा और सोंठ प्रत्येक का एक पल, वंशलोचन एक तोला, दालचीनी, तेजपात,

छोटी इलायची और नागकेसर, प्रत्येक का एक तोला, सबको एकत्र चूर्ण कर लेवे। यह 'बृहद्दाडिमाष्टक' चूर्ण है। यह चूर्ण अतिसार, क्षय, गुल्म, ग्रहणी, गलग्रह, मन्दाग्नि, पीनस और खाँसी को नष्ट करता है ॥ ६२–६४ ॥

पिप्पल्यादिचूर्णं वातग्रहण्याम्— (पिप्पली बृहती व्याघ्री यवक्षारकलिङ्गकाः ।
चित्रकं सारिवा पाठा शटी लवणपञ्चकम् ॥ ६५ ॥
तच्चूर्णं पाययेद्दध्ना सुरयोष्णाम्बुनाऽपि वा ।
मारुतग्रहणीदोषशमनं परमं हितम् ॥ ६६ ॥)

पीपर, बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, जवाखार, इन्द्रजौ, चीते की जड़, अनन्तमूल, पाढ़, कचूर और पाँचों नोन सम भाग ले एकत्र चूर्ण कर लेवे। यह दही, सुरा या गरम जल के साथ पीने से वातजग्रहणी नाश करता एवम् परम हितकारी है ॥ ६५–६६ ॥

लवङ्गादिचूर्णमरोचकादौ— लवङ्गं शुद्धकर्पूरमेलात्वङ्नागकेशरम् ।
जातीफलमुशीरं च नागरं कृष्णजीरकम् ॥ ६७ ॥
कृष्णागरुस्तुगाक्षीरी मांसी नीलोत्पलं कणा ।
चन्दनं तगरं वालं कङ्कोलं चेति चूर्णयेत् ॥ ६८ ॥
समभागानि सर्वाणि सर्वेभ्योऽर्द्धा सिता भवेत् ।
लवङ्गाद्यमिदं चूर्णं राजार्हं वह्निदीपनम् ॥ ६९ ॥
रोचनं तर्पणं वृष्यं त्रिदोषघ्नं बलप्रदम् ।
हृद्रोगं कण्ठरोगं च कासं हिक्कां च पीनसम् ॥ ७० ॥
यक्ष्माणं तमकं श्वासमतीसारमुरःक्षतम् ।
प्रमेहारुचिगुल्मादीन्ग्रहणीमपि नाशयेत् ॥ ७१ ॥

लौंग, (१)शुद्ध कर्पूर, छोटी इलायची, दालचीनी, नागकेसर, जायफल, खस, सोंठ, काला

---

(१) शुद्ध कर्पूर से संस्कार से शुद्ध कर्पूर ही लेना चाहिये। कोई २ शुद्ध कर्पूर से पक्वकर्पूर लेते हैं लघु होने के कारण जैसे—

पक्वस्तु द्विविधः प्रोक्तः सदलो निर्दलस्तथा । दृढश्च पीतवर्णश्च विशेषाल्लघुतां गतः ।

तथा कोई शुद्ध कर्पूर से जाति के श्रेष्ठ कर्पूर जिसे ईशावास कहते हैं लेते हैं—

"ईशावासो हिमसंज्ञः पोताश्रय इति त्रिधा । अपक्वे कथ्यते भेदः कर्पूरे तु भिषग्वरैः ।

स्वरूपम्—"ईशावासो भृशं श्वेतो हिमसंज्ञस्तु पाण्डुरः ।
श्वेतः पोताश्रयश्चेति रसवीर्यविपाकतः ॥
प्रभावेणापि ते प्रोक्ताः पूर्वं पूर्वं गुणाधिकाः ॥

इसमें भी जो क्षुद्र न हो और स्फटिक की तरह हो उसे ही उत्तम कहा है। तथा कर्पूर चूर्ण तैयार होने पर मिलाना चाहिये।

शर्करा मान में इसके जितना लिखा है उतना ही देना चाहिये परिभाषा के नियम से दूना नहीं। क्योंकि परिभाषा उस जगह के लिये है जहां मान नहीं दिया गया है।

जीरा, काला अगर, वंशलोचन, जटामांसी, नीलोत्पल, पीपर, सफेद चन्दन, तगर, सुगन्धबाला और कंकोल, प्रत्येक का एक भाग लेकर चूर्ण करे और सब चूर्ण की आधी चीनी मिलावे। यह 'लवङ्गाद्य' चूर्ण राजाओं के योग्य है। यह चूर्ण अग्नि को तेज करता, घाव आदि को भरता, तृप्त करता, वीर्य को बढ़ाता, वातपित्तकफ का नाश करता, बल देता, हृद्रोग, कण्ठरोग, कास, हिचकी, पीनस, यक्ष्मा, तमकश्वास, अतिसार, उरःक्षत, प्रमेह, अरुचि, गुल्म आदि तथा ग्रहणी रोगों का नाश करता है ॥ ६७–७१ ॥

जातीफलादिचूर्णं ग्रहण्यादौ— **जातीफललवङ्गैलापत्रत्वङ्नागकेशरैः ॥ ७२ ॥**

कर्पूरचन्दनतिलैस्त्वक्क्षीरीतगरामलैः ।
तालीसपिप्पलीपथ्यास्थूलजीरकचित्रकैः ॥ ७३ ॥
शुण्ठीविडङ्गमरिचैः समभागविचूर्णितैः ।
यावन्त्येतानि सर्वाणि कुर्याद्भङ्गां च तावतीम् ॥ ७४ ॥
सर्वचूर्णसमा देया शर्करा च भिषग्वरैः ।
कर्षमात्रं ततः खादेन्मधुना प्लावितं सुधीः ॥ ७५ ॥
अस्य प्रभावाद् ग्रहणीकासश्वासारुचिक्षयाः ।
वातश्लेष्मप्रतिश्यायाः प्रशमं यान्ति वेगतः ॥ ७६ ॥

जायफल, लौंग, इलायची, तेजपात, दालचीनी, नागकेसर, कपूर, सफेद चन्दन, धोये तिल, वंशलोचन, तगर, आँवला, तालीसपत्र, पीपर, हरड़, कलौंजी, चीतामूल, सोंठ, वायविडङ्ग और काली मिर्च सम भाग लेकर चूर्ण करे। फिर इस कुल चूर्ण का आधा भाँग का चूर्ण शुद्ध और कुछ कुछ भुनी हुई मिलावे। इन सब चूर्ण के बराबर चीनी मिलावे। इसकी एक कर्ष की मात्रा शहद में सानकर चाटे तो इसके प्रभाव से ग्रहणी, खाँसी, श्वास, अरुचि, क्षय, वातकफ के रोग, जुकाम आदि शीघ्र ही शान्त हो जाते हैं ॥ ७२–७६ ॥

महाखाण्डवचूर्णं मरुच्यादौ– **मरिचं नागपुष्पाणि तालीसं लवणानि च ।**
प्रत्येकमेकभागाः स्युः पिप्पलीमूलचित्रकैः ॥ ७७ ॥

एक **कर्पूरादि चूर्ण** और एक **लघुलवङ्गादि चूर्ण** भी इसी प्रसंग का है जो इस पुस्तक में नहीं है, पर प्रसङ्गवश दिया जाता है।

कर्पूरादिचूर्णम्—**सकर्पूरं च कङ्कोलं जातीफलदलं समम् ।**
लवङ्गनागमरिचकृष्णाशुण्ठीविवर्द्धितम् ॥
चूर्णं **सितासमं ग्राह्यं रोचकं क्षयकासनुद् । वैस्वर्यश्वासगुल्मार्शःकण्ठामयभयापहम् ॥**
प्रयुक्तं चान्नपानेषु भिषजा रोगिणो हितम् ॥

लघुलवङ्गादिचूर्णम्—**लवङ्गजातीफलपिप्पलीनां भागान् प्रकल्प्याक्षसमानमूषाम् ।**
पलार्धमेकं मरिचस्य दत्वा पलानि चत्वारि महौषधस्य ॥
सितासमं चूर्णमिदं प्रसह्य रोगानिमानाशु बलान्निहन्ति ।
कासज्वरारोचकगुल्ममेहश्वासाग्निमान्द्यग्रहणीविकारान् ॥

त्वक्कणा तिन्तिडीकं च जीरकं च द्विभागिकम् ।
धान्याम्लवेतसौ विश्वं भद्रेला बदराणि च ॥ ७८ ॥
अजमोदा जलधरः प्रत्येकं स्युस्त्रिभागिकाः ।
सर्वौषधिचतुर्थांशं दाडिमस्य फलं भवेत् ॥ ७९ ॥
द्रव्येभ्यो निखिलेभ्यश्च सिता देयाऽर्द्धमात्रया ।
महाखाण्डवसंज्ञं स्याच्चूर्णमेतत्सुरोचनम् ॥ ८० ॥
अग्निदीप्तिकरं हृद्यं कासातीसारनाशनम् ।
हृद्रोगकण्ठजठरमुखरोगप्रणाशनम् ॥ ८१ ॥
विषूचिकां तथाऽऽध्मानमर्शोगुल्मकृमीनपि ।
छर्दि पञ्चविधां श्वासं चूर्णमेतद्व्यपोहति ॥ ८२ ॥

काली मिर्च, नागकेसर, तालीसपत्र, पांचो नमक प्रत्येक का एक भाग, पिपरामूल, चीते-मूल, दालचीनी, पीपर, इमली, जीरा, प्रत्येक का दो भाग, धनियां, अमलबेत, सोंठ, इलायची, बेर, अजमोद (अजवायन), नागरमोथा प्रत्येक तीन भाग, एकत्र चूर्ण करे। कुल चूर्ण का चौथाई (सवा दस भाग) खट्टा अनारदाना चूर्ण कर मिलावे। फिर कुल चूर्ण का आधा याने साढ़े २५ भाग शक्कर मिला कर रख देवे। यह (१)**महाखाण्डव** चूर्ण है। यह चूर्ण रुचिकारक, अग्निकारक, हृदय को हितकारी, कास, अतिसार, हृद्रोग, गला, पेट और मुख के रोग, विषूचिका, अफारा, ववासीर, गुल्म, पेट में कीड़े होना, पांचों प्रकार की छर्दि एवं श्वास रोगों को नष्ट करता है ॥ ७७-८२ ॥

नारायणचूर्णमुदरादौ–**चित्रकंत्रिफला व्योषं जीरकं हपुषा वचा ।**
यवानी पिप्पलीमूलं शतपुष्पाऽजगन्धिका ॥ ८३ ॥
अजमोदा शटी धान्यं विडङ्गं स्थूलजीरकम् ।
हेमाह्वा पौष्करं मूलं क्षारौ लवणपञ्चकम् ॥ ८४ ॥
कुष्ठं चेति समांशानि विशाला स्याद् द्विभागिका ।
त्रिवृत्त्रिभागा विज्ञेया दन्त्या भागत्रयं भवेत् ॥ ८५ ॥
चतुर्भागा शातला स्यात्सर्वाण्येकत्र चूर्णयेत् ।
पाचनस्नेहनाद्यैश्च स्निग्धकोष्ठस्य रोगिणः ॥ ८६ ॥
दद्याच्चूर्णं विरकाय सर्वरोगप्रणाशनम् ।
हृद्रोगे पाण्डुरोगे च कासे श्वासे भगन्दरे ॥ ८७ ॥
मन्देऽग्नौ च ज्वरे कुष्ठे ग्रहण्यां च गलग्रहे ।
दद्याद्युक्तानुपानेन तथाऽऽध्माने सुराऽऽदिभिः ॥ ८८ ॥

(१) यह **खाण्डव चूर्ण** दो तरह का है। एक चूर्ण दूसरा लेह—
यथा—**आमे अम्लपलं चैव खण्डपक्वघृतान्वितम् ।**
एलामरिचसंयुक्तं ज्ञातव्यः स च खाण्डवः ॥

गुल्मे बदरनीरेण विड्भेदे दधिमस्तुना ।
उष्णाम्बुभिरजीर्णे च वृक्षाम्लैः परिकर्त्तिषु ॥ ८९ ॥
उष्ट्रीदुग्धेनोदरेषु तथा तक्रेण वा गवाम् ।
प्रसन्नया वातरोगे दाडिमाम्भोभिरर्शसि ॥ ९० ॥
द्विविधे च विषे दद्याद् घृतेन विषनाशनम् ।
चूर्णं नारायणं नाम दुष्टरोगगणापहम् ॥ ९१ ॥

चीते की जड़, हरड़, बेहेड़ा, आंवला, सोंठ, मिर्च, पीपर, जीरा, हाऊबेर, बच, अजवायन, पिपरामूल, सौंफ, बनतुलसी, अजमोदा, कचूर, धनियां, वायविड़ङ्ग, कलौंजी, स्वर्णक्षीरी (सत्यानाशी या चोक), पोहकरमूल, जवाखार, सज्जीखार, पांचों नमक, कूट प्रत्येक एक भाग, इन्द्रायण की जड़ दो भाग, निसोथ और दन्ती की जड़ तीन तीन भाग और सातला चार भाग लेकर सबको चूर्ण कर एकत्र मिलावे । पहले पाचन, स्नेहन तथा स्वेद आदि से कोठे को चिकनाकर रोगी को इस चूर्ण का जुलाब देवे तो सब रोगों का नाश हो जाय । हृद्रोग, पीलिया, खांसी, श्वास, भगन्दर, मन्दाग्नि, ज्वर, कोढ़, ग्रहणी तथा गलग्रह आदि रोगों पर इसे उपयुक्त अनुपानों से देवे । **आध्मान** में सुरा, प्रसन्ना, आसव आदि के साथ, **गुल्म** में बेर के जल के साथ, **पतले पतले दस्त होते** हों तो दही के तोड़ के साथ, **अजीर्ण** में गरम जल के साथ, '**परिकर्त्तिका** याने गुदा में कैंची से काटने सी पीड़ा होने पर अमलबेत के काढ़े के साथ, **उदर-रोग** में ऊँटनी के दूध के साथ अथवा गाय के मट्ठे के साथ, **वातरोग** में प्रसन्ना के साथ, **अर्शोरोग** में अनार के रस के साथ, **स्थावर जंगम** दोनों प्रकार के विषको नष्ट करनेके लिये घी के साथ यह चूर्ण देवे । जिस प्रकार नारायण सब दुष्ट राक्षसों को मार भगाते हैं उसी प्रकार यह नारायण चूर्ण भी सब दुष्ट रोगों को नष्ट करता है ॥ ८३-९१ ॥

हपुषाऽद्यं चूर्णं मजीर्णोदरादौ—

हपुषा त्रिफला चैव त्रायमाणा च पिप्पली ।
हेमक्षीरी त्रिवृच्चैव शातला कटुका वचा ॥ ९२ ॥
नीलिनी सन्धवं कृष्णं लवणं चेति चूर्णयेत् ।
उष्णोदकेन मूत्रेण दाडिमत्रिफलारसैः ॥ ९३ ॥
तथा मांसरसेनापि यथायोग्यं पिबेन्नरः ।
अजीर्णे प्लीह्नि गुल्मेषु शोफार्शोविषमाग्निषु ।
अजीर्णे प्लीह्नि गुल्मेषु शोफार्शोविषमादिषु ॥ ९४ ॥

हपुषा, हरड़, बेहेड़ा, आंवला, त्रायमाणा, पीपर, सत्यानाशी, निसोथ, सातला, कुटकी, बच, नील की जड़, सेंधा नोन, काला नमक, सम भाग ले चूर्ण कर एकत्र मिला लेवे । इसे गरम जल, गोमूत्र, अनार का रस, त्रिफले का काढ़ा अथवा मांस के रस के साथ जैसा रोग हो उसके अनुसार अनुपान के साथ पीवे । अजीर्ण, तिल्ली, गुल्म, शोथ, बवासीर, विषमाग्नि, हलीमक, कामला, पाण्डु, कुष्ठ, आध्मान तथा उदररोग, इन रोगों में इस चूर्ण का प्रयोग करे । ये रोग नष्ट हो जायंगे ॥ ९२-९४ ॥

पञ्चसमं चूर्णं शूलादौ–**शुण्ठी हरीतकी कृष्णा त्रिवृत्सौवर्चलं तथा ।**
समभागानि सर्वाणि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ ९५ ॥
ज्ञेयं पञ्चसमं चूर्णमेतच्छूलहरं परम् । आध्मानजठरार्शोघ्नमामवातहरं स्मृतम् ॥९६॥

सोंठ, हरड़, पीपर, निसोथ, संचरनोन, इन पांच चूर्णों को समभाग लेकर एकत्र करे तो यह **पञ्चसम** चूर्ण बनता है। यह शूलरोग को दूर करने में उत्तम है। आध्मान, उदररोग, बवासीर और आमवात को दूर करता है ॥ ९५–९६ ॥

नाराचचूर्णमाध्मानशूलादौ– **कर्षमात्रा भवेत्कृष्णा त्रिवृता स्यात्पलोन्मिता ।**
खण्डात्पलं च विज्ञेयं चूर्णमेकत्र कारयेत् ॥ ९७ ॥
कर्षोन्मितं लिहेदेतत्क्षौद्रेणाध्माननाशनम् ।
गाढविट्कोदरकफान्पित्तशूलं च नाशयेत् ॥ ९८ ॥

पीपर का चूर्ण एक तोला, निसोथ का चूर्ण ४ तोला तथा खांड चार तोला एकत्र मिला लेवे। इस चूर्ण का एक तोला ले शहद मिला कर चाटे तो अफारा, मल का सूख कर गांठ बँध जाना, उदर रोग, कफ एवं पित्तशूल को नाश करता है।

विमर्श—इस (१)चूर्ण को प्रातः काल ही खावे क्योंकि यह दस्त लाता है ॥ ९७–९८ ॥

लवणत्रितयाद्यं चूर्णं यकृत्प्लीहादौ— **लवणत्रितयं क्षारौ शतपुष्पाद्वयं वचा ।**
अजमोदाऽजगन्धा च हपुषा जीरकद्वयम् ॥ ९९ ॥
मरिचं पिप्पलीमूलं पिप्पली गजपिप्पली ।
हिङ्गु च हिङ्गुपत्री च शटी पाठोपकुञ्चिका ॥ १०० ॥
शुण्ठीचित्रकचव्यानि विडङ्गं चाम्लवेतसम् ।
दाडिमं तिन्तिडीकं च त्रिवृद् दन्ती शतावरी ॥ १०१ ॥
इन्द्रवारुणिका भार्ङ्गी देवदारु यवानिका ।
कुस्तुम्बुरुस्तुम्बुरूणि पौष्करं बदराणि च ॥ १०२ ॥
शिवा चेति समांशानां चूर्णमेकत्र कारयेत् । भावयेदार्द्रकरसैर्बीजपूररसैस्तथा ॥१०३॥
तत्पिबेत्सर्पिषा जीर्णमद्येनोष्णोदकेन वा ।
कोलाम्भसा वा तक्रेण दुग्धेनौष्ट्रेण मस्तुना ॥ १०४ ॥
यकृत्प्लीहकटीशूलगुदकुक्षिहृदामयान् । अर्शोविष्टम्भमन्दाग्निगुल्मप्लीहोदराणि च ॥
हिक्काऽऽध्मानश्वासकासाञ्जयेदेतान्न संशयः ।
एतैरेवौषधैः सम्यग्घृतं वा साधयेद्भिषक् ॥ १०६ ॥

---

(१) यह चूर्ण विरेचक है अतः प्रातः ही भक्षण का विधान है–
खण्डपलं तु त्रिवृता सममुपकुल्याकर्षचूर्णितं श्लक्ष्णम् ।
प्राग्भोजने च मधुना विडालपदकं हि लिहेत् प्राज्ञः ।
इस चूर्ण से शूल में विशेष लाभ होता है।

सेंधा नमक, काला नमक, विड नमक, जवाखार, सज्जीखार, सौंफ, सोया, वच, अजमोद, वनतुलसी, हवुषा, सफेद जीरा, काला जीरा, काली मिर्च, पीपरामूल, पीपर, गजपीपल, भुनी हींग, हिंगुपत्री (हिंगोट), कचूर, पाठा, कलौंजी, सोंठ, चीतामूल, चाभ, वायविडङ्ग, अमलवेत, अनारदाने, इमली, निसोथ, दन्ती की जड़, शतावर, इन्द्रायण की जड़, भारंगी, देवदारु, अजवायन, धनियां, तुम्बुरुफल (चिरफल), पोहकरमूल, झड़वेरी और हरड़ प्रत्येक का चूर्ण एक एक भाग लेकर एकत्र मिला लेवे। फिर इस चूर्ण को अदरख के रस तथा बिजौरे नीबू के रस की सात भावनाएँ देवे। इस चूर्ण को (१)घी, पुराना मद्य, गरम जल, वेर का काढ़ा, मठा, ऊटनी का दूध अथवा दही के तोड़ के साथ रोगानुसार पीवे। यह चूर्ण यकृत रोग, पीठ का शूल, कमर का शूल, गुदरोग, कोख के रोग, हृदय के रोग, बवासीर, कब्ज, शूल, मन्दाग्नि, गुल्म, अष्ठीला, उदररोग, हिचकी, अफारा, श्वास और खांसी को निःसन्देह दूर कर देता है। अथवा वैद्य उपर्युक्त ओषधियों का कल्क कर चौगुने अदरख और बिजौरे के रस से घृत (२)सिद्ध करे। यह घृत भी चूर्ण के ही बराबर गुण रखता है ॥ ९९–१०६ ॥

तुम्बुर्वादिचूर्णं शूलादौ–**तुम्बरूणि त्रिलवणं यवानी पुष्कराह्वयम् ॥ १०७ ॥**

यवक्षाराभयाहिङ्गुविडङ्गानि समानि च।
त्रिवृत् त्रिभागा विज्ञेया सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ १०८ ॥
पिबेदुष्णेन तोयेन यवक्राथेन वा पिबेत्।
जयेत्सर्वाणि शूलानि गुल्माध्मानोदराणि च ॥ १०९ ॥

तुम्बुरुफल, सेंधा नमक, काला नमक, विड नमक, अजवायन, पोहकरमूल, जवाखार, हरड़, भूनी हींग, वायविडङ्ग प्रत्येक एक भाग, (३)निसोथ तीन भाग ले एकत्र सबको चूर्ण करे। इसे गरम जल अथवा जौ के काढ़े के साथ पीने से सब प्रकार के शूल तथा गुल्म, अफारा और उदर रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १०७–१०९ ॥

चित्रकाद्यं चूर्णं मन्दाग्न्यादौ—**चित्रको नागरं हिङ्गु पिप्पली पिप्पलीजटा।**
चव्याजमोदामरिचं प्रत्येकं कर्षसम्मितम् ॥ ११० ॥
स्वर्जिका च यवक्षारः सिन्धु सौवर्चलं बिडम् ॥
सामुद्रकं रोमकं च कोलमात्राणि कारयेत् ॥ १११ ॥

---

(१) **तत्पिबेत् सर्पिषा जीर्णे**––इसका अर्थ–"अन्न के जीर्ण हो जाने पर पीवे" ऐसा होना चाहिये अन्यरोगों की उत्पत्ति के भयसे। जैसे कहा है—
"**औषधशेषे भुक्तं पीतं तथौषधं सशेषेऽन्ने। न करोति गदोपशमं प्रकोपयत्यन्यरोगांश्च**"॥

(२) घृत साधन करना हो तो घृत बनाने की विधि से घृत की मूर्च्छनादि क्रिया करके यथानुमान प्रक्षेपादि देकर सिद्ध करे।

(३) यहां पर **निशोथ** अन्य एक औषध की अपेक्षा तीन भाग लेना चाहिये जैसे — अगर तुम्बुर्वादि १–१ कर्ष हो तो निशोथ ३ कर्ष लेना चाहिये।

एकीकृत्याखिलं चूर्णं भावयेन्मातुलुङ्गजैः । रसैर्दाडिमजैर्वाऽपि शोषयेदातपेन च ॥११२॥
एतच्चूर्णं जयेद् गुल्मं ग्रहणीमामजां रुजम् । अग्निं च कुरुते दीप्तं रुचिकृत्कफनाशनम् ११३

चीतामूल, सोंठ, भुनी हींग, पीपर, पीपरामूल, चाभ, अजमोदा, काली मिर्च, प्रत्येक एक कर्ष, सज्जीखार, जवाखार, सेंधानमक, काला नमक, बिड़ नमक, समुन्दर नोन, साम्भर नोन, प्रत्येक का एक कोल (अर्ध कर्ष), सबका चूर्ण एकत्र कर बिजौरे के रस की अथवा खट्टे अनार के रस की भावना देकर धूप में सुखा लेवे । यह (१)चूर्ण गुल्म, ग्रहणी और आमदोष को नष्ट करता, अग्नि को तेज करता, रुचि करता तथा कफ को नाश करता है ॥११०-११३॥

बडवाऽनलचूर्णं मन्दाग्न्यादौ—

सैन्धवं पिप्पलीमूलं पिप्पलीचव्यचित्रकम् ।
शुण्ठी हरीतकी चेति क्रमवृद्धानि चूर्णयेत् ।
वडवाऽनलनामैतच्चूर्णं स्यादग्निदीपनम् ॥ ११४ ॥

सेंधा नमक, पीपरामूल, पीपर, चाभ, चीतामूल, सोंठ और हरड़—इनका क्रमवृद्ध भाग लेवे याने सेंधा नमक एक भाग, पीपरामूल दो भाग, पीपर तीन भाग, चाभ चार भाग, चीतामूल पांच भाग, सोंठ छः भाग और हरड सात भाग लेकर एकत्र चूर्ण कर लेवे । यह बडवाऽनल नामक चूर्ण है । जठराग्नि को यह चूर्ण अत्यन्त तेज़ कर देता है ॥ ११४ ॥

अजमोदाऽऽदिचूर्णमामवातशोथादौ—

अजमोदा विडङ्गानि सैन्धवं देवदारु च ।
चित्रकः पिप्पलीमूलं शतपुष्पा च पिप्पली ॥ ११५ ॥
मरिचं चेति कर्षांशं प्रत्येकं कारयेद् बुधः ।
कर्षास्तु पञ्च पथ्याया दश स्युर्वृद्धदारुकात् ॥ ११६ ॥
नागराच्च दशैव स्युः सर्वाण्येकत्र चूर्णयेत् ।
पिबेत्कोष्णजलेनैव चूर्णं श्वयथुनाशनम् ॥ ११७ ॥
आमवातरुजं हन्ति सन्धिपीडां च गृध्रसीम् ।
कटिपृष्ठगुदस्थां च जङ्घयोश्च रुजं जयेत् ॥ ११८ ॥
तूनीप्रतूनीविश्वाचीकफवातामयाञ्जयेत् ।
समेन वा गुडेनास्य वटकान्कारयेद्भिषक् ॥ ११९ ॥

अजमोद, वायविडङ्ग, सेंधा नमक, देवदारु, चीतामूल, पीपरामूल, सौंफ, पीपर, मरिच, प्रत्येक का एक कर्ष चूर्ण लेवे, हरड़ के बकले का चूर्ण पांच कर्ष, विधारे का चूर्ण दस कर्ष तथा सोंठ का चूर्ण दस कर्ष लेकर सबको एकत्र कर लेवे । इस चूर्ण को उचित मात्रा में गरम जल के साथ पीने से शोथ, आमवात की पीड़ा, सन्धियों का दर्द, गृध्रसी, कमर का दर्द, पीठ

(१) ग्रन्थान्तर में इसका इस प्रकार वर्णन है—

"चित्रकं पिप्पलीमूलं द्वौ क्षारौ लवणत्रयम् ।
व्योषं हिङ्ग्वजमोदं च चव्यं चैकत्र चूर्णयेत् ॥
गुटिका मातुलुङ्गस्य दाडिमस्य रसेन वा । कृता विपाचयत्यामं दीपयत्याशु चानलम् ॥

का दर्द, गुदे का दर्द, जङ्घाओं का दर्द, तूनी, प्रतितूनी, विश्वाची और कफवात के रोगों को नष्ट करता है । इसके साथ सम भाग गुड़ मिला कर वटक भी बना सक्ते हैं ।

विमर्श—इसमें भी ऊपर से गरम जल अनुपान है ॥ ११५–११९ ॥

शुण्ठ्यादिचूर्णं श्वासादौ–**शुण्ठी सौवर्चलं हिङ्गु दाडिमं चाम्लवेतसम् ।**
चूर्णमुष्णाम्बुना पेयं श्वासहृद्रोगशान्तये ॥ १२० ॥

सोंठ, काला नमक, हींग, अनारदाने तथा अमलबेत सम भाग ले एकत्र चूर्ण कर उचित मात्रा में गरम जल के साथ फांके तो श्वास और हृद्रोग शान्त होते हैं ॥ १२० ॥

(क)हिङ्ग्वादिचूर्णं शूलादौ— **हिङ्गु।पाठाऽभया धान्यं दाडिमं चित्रकः शटी ॥ १२१ ॥**
अजमोदा त्रिकटुकं हपुषा चाम्लवेतसम् ।
अजगन्धा तिन्तिडीकं जीरकं पौष्करं वचा ॥ १२२ ॥
चव्यं क्षारद्वयं पञ्च लवणानि विचूर्णयेत् ।
प्राग्भोजनस्य मध्ये वा चूर्णमेतत्प्रयोजयेत् ॥ १२३ ॥
पिबेद्वा जीर्णमद्येन तक्रेणोष्णोदकेन वा ।
गुल्मे वातकफोद्भूते हृद्ग्रहेऽष्ठीलिकासु च ॥ १२४ ॥
बस्तिपार्श्वशूलेषु शूले च गुदयोनिजे । मूत्रकृच्छ्रे तथाऽऽनाहे पाण्डुरोगेऽरुचौ तथा १२५
त्रिकायां यकृति प्लीह्नि कासे श्वासे गलग्रहे । ग्रहण्यर्शोविकारेषु चूर्णमेतत्प्रशस्यते १२६
भावितं मातुलुङ्गस्य बहुशः स्वरसेन वा ।
कुर्याच्च गुटिका बह्व्यो वातश्लेष्मामयापहाः ॥ १२७ ॥

भुनी हींग, पाठा, हरड़, धनियां, अनारदाने, चीतामूल, कचूर, अजमोदा, सोंठ, काली मिर्च, पीपर, हपुषा, अमलबेत, वनतुलसी (बर्बरी), तिन्तिड़ी, जीरा, पोहकरमूल, वच, चाभ, सज्जीखार, जवाखार, सेंधा नोन, सञ्चर नोन, बिरिया नोन, समुन्दर नोन, साम्भर नोन, सम भाग लेकर एकत्र चूर्ण कर मिलावे । इस चूर्ण को भोजन के (१)पहले सुबह अथवा भोजन के मध्य में प्रयोग करे । इसका अनुपान (२)पुराना मद्य, मठा अथवा गरम जल है । वातकफज गुल्म, हृद्ग्रह, अष्ठीलिका, हृदयशूल, वस्तिशूल, पार्श्वशूल, गुदशूल, योनिशूल, मूत्रकृच्छ्र,

---

(क) इसके उपरान्त एक और हिङ्ग्वादि चूर्ण है जो इस पुस्तक में नहीं है, दिया जाता है–

हिङ्ग्वुग्रगन्धाविडविश्वकृष्णा-कुष्ठाभयाचित्रकयावशूकम् ।
पिबेत् ससौवर्चलपुष्कराह्वयं हिमाम्भसा शूलहृदामयघ्नम् ॥

(१) यहां पर भोजन के पूर्व से प्रातः काल और मध्य से भोजन में मिश्रित कर औषध (चूर्ण) सेवन करना चाहिये ।

(२) और जीर्णमद्य से सेवन करना इसलिये है कि नया मद्य दोषयुक्त होता है, मद्य पुराना ही गुणकारक होता है । जैसे—

"नवं मद्यमभिष्यन्दि गुददोषकरं परम् । जीर्णं च सर्वदोषघ्नं लघुत्वं च कफापहम्" ॥

ध्मानाह, पीलिया, अरुचि, हिचकी, यकृत् , तिल्ली, श्वास, खांसी, गलग्रह, ग्रहणी एवं बवासीर के रोगों में यह चूर्ण देना अति उत्तम है । इसे बिजौरे नीबू के रस की सात (१)भावनाएं देकर बड़ी बड़ी (२ शाण की(२)) गोलियां भी बनाकर प्रयोग कर सक्ते हैं। ये गोलियां वातकफ के रोगों को नष्ट करती हैं ॥ १२१-१२७ ॥

यवानीखाण्डवचूर्ण- मरोचकादौ—

यवानी दाडिमं शुण्ठी तिन्तिडीकाम्लवेतसौ ।
बदराम्लं च कुर्वीत चतुःशाणमितानि च ॥ १२८ ॥
सार्धद्विशाणं मरिचं पिप्पली दशशाणिका ।
त्वक्सौवर्चलधान्याकं जीरकं द्विद्विशाणकम् ॥ १२९ ॥
चतुःषष्टिमितैः शाणः शर्करामत्र योजयेत ।
चूर्णितं सर्वमेकत्र यवानीखाण्डवाभिधम् ॥ १३० ॥
चूर्णं जयेत्पाण्डुरोगं हृद्रोगं ग्रहणीं ज्वरम् ।
छर्दिशोषातिसारांश्च प्लीहानाहविबन्धताः ॥
अरुचिं शूलमन्दाग्निमर्शोजिह्वागलामयान् ॥ १३१ ॥

अजवायन, अनारदाने, सोंठ, तिन्तिड़ी, अमलबेत, झड़बेर, प्रत्येक चार शाण (१६ मासा), काली मिर्च ढाई शाण (१० मासा), पीपर दस शाण (४० मासे), दालचीनी, काला नमक, धनियाँ और जीरा प्रत्येक दो दो शाण, शक्कर चौशठ शाण सबको एकत्र चूर्ण कर चीनी मिलाकर रख देवे । यह चूर्ण (३)**यवानीखाण्डव** है । यह चूर्ण पाण्डुरोग, हृद्रोग, ग्रहणी,

---

(१) **बहुशः भावितम्** (इस पद से) ७ सातवार भावना देना समझना चाहिये।

(२) तथा **गुटिका बह्वयः** से दो शाण प्रमाण की गुटिका बनानी चाहिये ।

(३) इस योग में तिन्तिडी, अम्लवेतस आदि का स्वरस (द्रव) देकर पुनः सुखा लेना चाहिये । और स्वरसादि के सूखने के बाद शर्करा मिलानी चाहिये । नहीं तो चूर्ण न होकर योग अवलेह हो जावेगा । कोई २ इस खाण्डव में नमक देने का विधान करते हैं ॥

अरोचक में ही पृथ्वीकादि चूर्ण का भी प्रयोग होता है जो इस पुस्तक में नहीं है। यहां दिया जाता है । यह भी **खाण्डवचूर्ण** माना जाता है ।

"पृथ्वीका जीरकं धान्यं दाडिमं च तथैव च । चित्रकं पिप्पलीमूलं नागकेसरकं तथा॥
मरिचं दीप्यकं चैव वृक्षाम्लं चाम्लवेतसम् ॥
अजमोदाऽजगन्धा च दधित्थं चेति कार्षिकान् ।
प्रदेयं चातिशुद्धायाः शर्करायाः पलाष्टकम् ॥
चूर्णमेतत्प्रसादं स्यात् परमं रुचिबर्द्धनम् ।
तीव्रकासामयार्शांसि शूलं कासं वमिं ज्वरम् ॥
निहन्ति दीपयत्यग्निं बलवर्णकरं परम् ।
वातानुलोमनं हृद्यं कण्ठजिह्वाविशोधनम् ॥

ज्वर, वमन, शोष (मुंह का सूखना), अतिसार, तिल्ली, आनाह, वातादिकों का रुकना, अरुचि, शूल, मन्दाग्नि, बवासीर, जीभ और गले के रोगों को नष्ट करता है ॥ १२८–१३१ ॥

तालीसादिचूर्ण- मरोचकादौ—
तालीसं मरिचं शुण्ठी पिप्पली वंशरोचना।
एकद्वित्रिचतुःपञ्चकर्षैर्भागान्प्रकल्पयेत् ॥ १३२ ॥
एलात्वचोस्तु कर्षार्द्धं प्रत्येकं भागमाचरेत्।
द्वात्रिंशत्कर्षतुलिता प्रदेया शर्करा बुधैः ॥ १३३ ॥
तालीसाद्यमिदं चूर्णं रोचनं पाचनं स्मृतम्।
कासश्वासज्वरहरं छर्द्यतीसारनाशनम् ॥ १३४ ॥
शोषाध्मानहरं प्लीहाग्रहणीपाण्डुरोगजित्।
पक्त्वा वा शर्करां चूर्णं क्षिपेत्स्याद् गुटिका ततः ॥ १३५ ॥

तालीसपत्र एक तोला, काली मिर्च दो तोला, सोंठ तीन तोला, पीपर चार तोला, वंशलोचन पाँच तोला लेवे। छोटी इलायची और दालचीनी आधा आधा तोला लेकर पहले पांचों को चूर्ण कर लेवे। फिर उसमें इलायची और दालचीनी का भी चूर्ण मिला देवे। फिर इसमें बत्तीस तोले मिश्री पीसकर मिला देवे। यह (१)तालीसादि चूर्ण रुचिकारक एवं पाचन है। खाँसी, श्वास, ज्वर, वमन, अतिसार, मुख का सूखना, आध्मान, तिल्ली, ग्रहणी और पाण्डुरोग को यह चूर्ण नष्ट करता है। इसे चूर्ण के रूप में न रख शक्कर की चासनी बनाकर उसमें इस चूर्ण को डाल कर गोलियां भी बनाले सक्ते हैं पर गोलियाँ अग्निसंयोग से कुछ हलकी हो जायँगी ॥ १३२–१३५ ॥

सितोपलाऽऽदिचूर्णं कासक्षयपित्त-दाहादौ—
सितोपला षोडश स्यादष्टौ स्याद्वंशरोचना।
पिप्पली स्याच्चतुष्कर्षा स्यादेला च द्विकार्षिकी ॥ १३६ ॥
एकः कर्षस्त्वचः कार्यश्चूर्णयेत्सर्वमेकतः।
सितोपलाऽऽदिकं चूर्णं मधुसर्पिर्युतं लिहेत् ॥ १३७ ॥
श्वासकासक्षयहरं हस्तपादाङ्गदाहजित्। मन्दाग्निं सुप्तजिह्वत्वं पार्श्वशूलमरोचकम्।
ज्वरमूर्ध्वगतं रक्तं पित्तमाशु व्यपोहति ॥ १३८ ॥

मिश्री १६ कर्ष, वंशलोचन ८ कर्ष, पीपर ४ कर्ष, छोटी इलायची २ कर्ष, दालचीनी एक कर्ष, सब को एकत्र पीस लेवे। यह (२)**सितोपलाऽऽदि** चूर्ण है। इसको विषम भाग में घी

---

(१) इस योग में विना **वंशलोचन** दिये भी व्यवहार करते हैं। जैसे—

"तालीशं मरिचं शुण्ठी पिप्पल्येकांशकोत्तरा।
त्वगेलार्धांशकं दद्याच्छर्करा कुडवं भवेत्" ॥

कोई २ पित्तज रोग में वंशलोचन देने का विधान कहते हैं—यथा

"पित्तयुक्ते भवेच्छ्रेष्ठं वंशरोचनयाऽन्वितम्"।

(२) इस योग के अन्त्य से द्विगुणित करने का विधान मात्रा के लिये होता है, जैसे—

और शहद लेकर उसके साथ मिला कर चाटे । श्वास, कास, क्षयरोग, हाथ-पांव तथा अंगों के दाह, मन्दाग्नि, सुप्तजिह्वता, पसवाड़ों का शूल, अरुचि, ज्वर, ऊर्ध्वग रक्तपित्त और पित्त को शीघ्र ही यह चूर्ण नष्ट कर देता है ॥ १३६-१३८ ॥

लवणभास्करचूर्णं ग्रह- सामुद्रलवणं कार्यमष्टकर्षमितं बुधैः ।
णीगुल्मादौ— पञ्च सौवर्चलं ग्राह्यं बिडं सैन्धवधान्यके ॥ १३९ ॥
पिप्पली पिप्पलीमूलं कृष्णजीरकपत्रकम् ।
नागकेशरतालीसमम्लवेतसकं तथा ॥ १४० ॥
द्विकर्षमात्राण्येतानि प्रत्येकं कारयेद् बुधः । मरिचं जीरकं विश्वमेकैकं कर्षमात्रकम् १४१
दाडिमं स्याच्चतुष्कर्षं त्वगेला चार्द्धकार्षिकी ।
एतच्चूर्णीकृतं सर्वं लवणं भास्कराभिधम् ॥ १४२ ॥
शाणप्रमाणं देयं तु मस्तुतक्रसुराऽऽसवैः । वातश्लेष्मभवं गुल्मं प्लीहानमुदरं क्षयम् १४३
अर्शांसि ग्रहणीं कुष्ठं विबन्धं च भगन्दरम् ।
शोफं शूलं श्वासकासावामवातं च हृद्रुजम् ॥ १४४ ॥
मन्दाग्निं नाशयेदेतद् दीपनं पाचनं परम् । सर्वलोकहितार्थाय भास्करेणोदितं पुरा १४५

समुन्दर नोन ८ कर्ष, संचर नोन ५ कर्ष, विड नमक, सेंधा नमक, धनियां, पिप्पली, पिपरामूल, काला जीरा, तेजपात, नागकेसर, तालीसपत्र और अमलवेत प्रत्येक दो दो कर्ष, काली मिर्च, जीरा और सोंठ प्रत्येक एक एक कर्ष, अनारदाने चार कर्ष, दालचीनी और छोटी इलायची आधा आधा कर्ष इन सबको बुद्धिमान् लेकर एकत्र चूर्ण कर लेवे। यह (१)**लवणभास्कर** चूर्ण है । इसकी ४ मासे की मात्रा दही का तोड़, मठा, सुरा या आसव आदि के साथ पीवे । वातकफज गुल्म, प्लीहा, उदररोग, क्षयरोग, बवासीर, ग्रहणी, कोढ़, मल-मूत्र का रुकना, भगन्दर, सूजन, शूल, श्वास, खाँसी, आमवात, हृद्रोग तथा मन्दाग्नि को यह चूर्ण नष्ट करता है तथा दीपन और पाचन है । सब लोक के हित के लिये भगवान् भास्कर ने इसे कहा था ।

विमर्श—वास्तव में यह अनुपम चूर्ण है ॥ १३९-१४५ ॥

एलाऽऽदिचूर्णं- एलाप्रियङ्गुमुस्तानि कोलमज्जा च पिप्पली ।
छर्दिरोगे— श्रीचन्दनं तथा लाजा लवङ्गं नागकेशरम् ॥ १४६ ॥

"सितोपलातुगाक्षीरीपिप्पलीबहुलात्वचः ।
अन्त्यादूर्ध्वं द्विगुणितं लेहयेन्मधुसर्पिषा" ॥

मधु तथा घी बराबर नहीं लेना चाहिये मधु से घी दूना चाहिये । इस चूर्ण की मात्रा १ से ३ मासे तक की है । तथा धारोष्ण दूध से भी लेने का विधान है ।

(१) कहीं २ इस योग में बिजौरे नीबू के रस की भावना देने का भी विधान है।

"बीजपूररसेनव भावितं सप्तवारकम्" ॥

ऐसा भी श्लोक में कई जगह दिया है । और इससे सुस्वादु भी हो जाता है॥

एतच्चूर्णीकृतं सर्वं सिताक्षौद्रयुतं लिहेत् ।
वातपित्तकफोद्भूतां छर्दिं हन्त्यतिवेगतः ॥ १४७ ॥

छोटी इलायची, फूलप्रियंगु, नागरमोथा, बेर के गुठली की मींगी, पीपर, सफेद चन्दन, धान की खील, लौंग, नागकेसर सबको एकत्र सम भाग चूर्ण कर उचित मात्रा में चीनी(१) और शहदके साथ चाटे तो शीघ्र ही वात,पित्त,एवं कफजनित वमन नष्ट हो जाताहै ॥१४६-१४७॥

व्याघ्रीचूर्णमूर्ध्ववातम-हाश्वासादौ—(व्याघ्रीजीरकधात्रीणां चूर्णं मधुयुतं लिहेत् ।
ऊर्ध्ववातमहाश्वासतमकैर्मुच्यते क्षणात् ॥ १४८ ॥)

छोटी कटेरी की जड़, जीरा, और आंवला सम भाग लेकर एकत्र चूर्ण कर शहद मिलाकर चाटे तो क्षण भर में ही, ऊर्द्धवात, महाश्वास और तमकश्वास से मुक्त हो जावे ॥१४८॥

पञ्चनिम्बचूर्णं कुष्ठादौ—मूलं पत्रं फलं पुष्पं त्वचं निम्बात्समाहरेत् ।
सूक्ष्मचूर्णमिदं कुर्यात्पलैः पञ्चदशोन्मितैः ॥ १४९ ॥

लोहभस्महरीतक्यौ चक्रमर्दकचित्रकौ । भल्लातकं विडङ्गानि शर्कराऽऽमलकं निशा१५०
पिप्पली मरिचं शुण्ठी वाकुची कृतमालकः । गोक्षुरश्च पलान्मानमेकैकं कारयेद् बुधः१५१
सर्वमेकीकृतं चूर्णं भृङ्गराजेन भावयेत् । अष्टभागावशिष्टेन खदिरासनवारिणा ॥१५२॥
भावयित्वा च संशुष्कं कर्षमात्रं ततः पिबेत् । खदिरासनतोयेन सर्पिषा पयसाऽथवा१५३
मासेन सर्वकुष्ठानि विनिहन्ति रसायनम् । पञ्चनिम्बमिदं चूर्णं सर्वरोगप्रणाशनम्॥१५४॥

(२)नीम के जड़ की छाल, पत्र, फल, फूल और छाल, इन पांचों का कुल पन्द्रह पल (प्रत्येक तीन पल) चूर्ण लेवे । फिर लोहभस्म, हरड़, चकवड़ की जड़, चीतामूल, शुद्ध भिलावे, वायविडङ्ग, शक्कर, आंवला, हलदी, पीपर, कालो मिर्च, सोंठ, वाकुची, अमलतास, और गोखरू इन पन्द्रह चीजों का प्रत्येक का एक कर्ष चूर्ण लेकर सबको एकत्र मिला भांगरे के रस की भावना (३)देवे । फिर अष्टमांशावशिष्ट खैरसार के काढ़े की भावना देवे । तत्पश्चात् असना (पीतशाल) के काढ़े की भावना देवे । फिर सुखा कर चूर्ण कर लेवे । इसकी

---

(१) इस योग में मिश्री अन्य चूर्ण के समान लेना चाहिये । तथा अवलेह होने भर का मधु मिलाना चाहिये ।

(२)पञ्चनिम्ब से नीम के पत्र-पुष्पादिक पञ्चाङ्ग जानना चाहिये । जैसे—

निम्बपत्रं तथा पुष्पं त्वङ्मूलफलमुच्यते । पञ्चनिम्बमिति ख्यातं नामतः शास्त्रकोविदैः॥

तथा समाहरेत् शब्द से समय की सूचना है । जैसे लिखा है—

पुष्पकाले च पुष्पाणि फलकाले फलानि च । संचूर्ण्य पिचुमर्दस्य त्वङ् मूलानि दलानि च॥

कोई कोई मूल के स्थान में काष्ठ ग्रहण करते हैं । जैसे—

काले त्वग्दलसारबीजकुसुमैर्निम्बस्य तुल्यांशकः ।

पलपञ्चदशोन्मितैः से मिलित यानी पांचों तीन तीन पल लेवे ।

(३) भावना इसमें ३ या ७ देनी चाहिये ।

एक कर्ष की मात्रा चौगुने खैरसार अथवा असने के काढ़े के साथ पीवे अथवा घी वा दूधके साथ ही सेवन करे तो एक ही मास में सब प्रकार के कोढ विनष्ट हो जाते हैं। यह पञ्चनिम्ब चूर्ण सर्व (१)रोग नाशक एवं रसायन याने उम्र बढ़ाने वाला है ॥ १४९-१५४ ॥

शतावरीचूर्णं- **शतावरी गोक्षुरश्च बीजं च कपिकच्छुजम् ।**
वाजीकरणे— **गाङ्गेरुकी चातिबला बीजमिक्षुरकोद्भवम् ॥ १५५ ॥**
चूर्णितं सर्वमेकत्र गोदुग्धेन पिबेन्निशि ।
न तृप्तिं याति नारीभिर्नरश्चूर्णप्रभावतः ॥ १५६ ॥

शतावर, गोखरू, कौंवाच के बीज, नागबला की जड़, अतिबला की जड़, तालमखाने के बीज, सम भाग लेकर चूर्ण कर एकत्र करे। उसे उचित मात्रा में रात को दूध के साथ पीवे तो इसके प्रभाव से मनुष्य नारियों से सदा अतृप्त रहता है याने वीर्य की वृद्धि इससे खूब होती है ॥ १५५-१५६ ॥

अश्वगन्धाऽऽदिचूर्णं- **अश्वगन्धा दशपला तन्मात्रो वृद्धदारकः ।**
वाजीकरणे— **चूर्णीकृत्योभयं विद्वान्घृतभाण्डे निधापयेत् ॥ १५७ ॥**
कर्षैकं पयसा पीत्वा नारीभिर्नैव तृप्यति ।
अगत्वा प्रमदां भूयाद्वलीपलितवर्जितः ॥ १५८ ॥

असगन्ध का चूर्ण दस पल (४० तोले) और विधारे का चूर्ण दस पल एकत्र मिला चिकने वासन में रख देवे। इसमें से रोज एक तोला चूर्ण दूध के साथ पीवे तो (२)स्त्रियों से

---

(१) **सर्वरोगप्रणाशनम्** से भगन्दर प्रभृति जानना चाहिये। जैसे इसके गुण में कहा है।

भगन्दरश्लीपदवातरक्त-जडान्धनाडीव्रणशीर्षरोगान् ।
सर्वान् प्रमेहान् प्रदरांश्च सर्वान् दंष्ट्राविषं मूलविषं निहन्ति ॥
स्थूलोदरः सिंह कृशोदरः स्यात् सुश्लिष्टसन्धिर्मधुनोपयोगात् ।
सदोपयोगादपि ये दशन्ति सर्पादयो यान्ति विनाशमाशु ।
जीवेच्चिरं व्याधिजराविमुक्तः शुभे रतश्चन्द्रसमानकान्तिः ॥

(२) **वाजीकरण** उसे कहते हैं जिससे अश्व की तरह मैथुन करने की शक्ति उत्पन्न हो जैसे-

येन नारीषु सामर्थ्यं वाजीवल्लभते नरः ।
येन वाऽत्यधिकं वीजं वाजीकरणमेव तत् ॥

यह तीन प्रकार का होता है। जैसे—

शुक्रवृद्धिकरं किञ्चित् किञ्चित् शुक्रप्रवर्त्तनम् ।
च्युतिवृद्धिकरं किञ्चित् त्रिविधं वृष्यमुच्यते ॥

वृष्य से वाजीकरण की संज्ञा जाननी चाहिये। **क्षीरादि**-वृद्धिकारक, **युवतिस्पर्शादि**-च्युतिकारक, **माषादि**-उत्पादक और प्रवर्त्तक दोनों है। यहां जो दोनों योग वाजीकरण के दिये हैं वे अतिलाभकर हैं। इन्हे नियमितरूप से सेवन करने वाला कभी शिथिलता को नहीं प्राप्त हो सकता है।

कभी तृप्ति नहीं होती। यदि स्त्रीप्रसंग न करे तो मनुष्य इस चूर्ण के प्रभाव से बली-पलित वर्जित हो रहे याने बुढ़ापा न आये ॥ १५७-१५८ ॥

मुसल्यादिचूर्ण- क्लीवतायाम्— (मुसलीकन्दचूर्णं तु गुडूचीसत्त्वसंयुतम्।
वानरीगोक्षुराभ्यां च शाल्मलीशर्कराऽऽमलः ॥
आलोडय घृतदुग्धेन पाययेत्कामबर्धनम्) ॥ १५९ ॥

सफेद मूसली, सत्त गिलोय, केवांच के बीज, तालमखाने, सेमल का मूसला, चीनी और आँवला सम भाग लेकर एकत्र चूर्ण कर रखे। इसमें से उचित मात्रा में घी मिले दूध के साथ पीने से कामशक्ति खूब बढ़ती है ॥ १५९ ॥

नवायसचूर्ण पाण्डु- रोगादौ— चित्रकं त्रिफला मुस्तं विडङ्गं त्र्यूषणानि च।
समभागानि कार्याणि नव भागा हतायसः ॥१६०॥
एतदेकीकृतं चूर्णं मधुसर्पिर्युतं लिहेत्। गोमूत्रमथवा तक्रमनुपाने प्रशस्यते ॥ १६१ ॥
पाण्डुरोगं जयत्युग्रं हृद्रोगं च भगन्दरम्। शोथकुष्ठोदरार्शांसि मन्दाग्निमरुचिं क्रमीन्१६२

चीतामूल, हरड़, बेहेड़ा, आँवला, नागरमोथा, बायविडङ्ग, सोंठ, मरिच, पीपर इन नौ द्रव्यों को प्रत्येक का एक एक भाग ले चूर्ण करे। फिर इसमें नौ भाग लोह भस्म मिला कर रखे। इसे उचित मात्रा में विषमभागयुक्त घी और शहद में मिला कर चाटे तथा ऊपर से गोमूत्र अथवा गाय का मठा पीवे। इससे पाण्डुरोग, उग्र हृद्रोग, भगन्दर, सूजन, कोढ़, उदर रोग, बवासीर, मन्दाग्नि, अरुचि तथा क्रिमि रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १६०-१६२ ॥

आकारकरभादिचूर्ण स्तम्भने— आकारकरभः शुण्ठी कङ्कोलं कुङ्कुमं कणा।
जातीफलं लवङ्गं च चन्दनं चेति कार्षिकान् ॥ १६३ ॥
चूर्णानि मानतः कुर्यादहिफेनं पलोन्मितम्।
सर्वमेकीकृतं चूर्णं माषैकं मधुना लिहेत् ॥ १६४ ॥
शुक्रस्तम्भकरं चूर्णं पुंसामानन्दकारकम्।
नारीणां प्रीतिजननं सेवेत निशि कामुकः ॥ १६५ ॥

अकरकरा, सोंठ, कंकोल, केसर, पीपर, जायफल, लौंग और सफेद चन्दन प्रत्येक एक तोला, एवं (१)शुद्ध अफीम चार तोले लेवे। पहले अफीम के सिवाय सब को चूर्ण कर ले

---

(१) अहिफेन योग में तृतीयांश है, सेवन करने वाले का बलाबल देख कर व्यवहार कराना चाहिये तथा अहिफेन-अद्रक, सेहुंड, निम्बपत्रद्रव वा नीबू के द्रव, इनमें से किसी द्रव के साथ सात भावना देकर शुद्ध कर तब मिलाना चाहिये। कहीं २ इस योग में मिश्री भी देने का विधान है वहां अहिफेन बराबर मात्रे में दिया जाता है—जैसे—

जातीफलार्ककरहाटलवङ्गशुण्ठीकङ्कोलकुङ्कुमकणाहरिचन्दनानि।
एतैः समानमहिफेनमनेन तुल्यां सितां निधाय मधुना वटकं विदध्याद् ॥
माषद्वयोन्मितममुं निशि भक्षयित्वा मिष्टं पयस्तदनु माहिषमाशु पीत्वा।

फिर अफीम मिला कर रख लेवे। इस का एक मासा लेकर शहद के साथ चाटे। इससे वीर्य स्तम्भित होता और पुरुषों को आनन्द की प्राप्ति होती एवं स्त्रियां खुश होकर प्रेम रखती हैं। इसे कामी जनों को नित्य प्रति रात को सेवन करना चाहिये।

विमर्श—इस योग को हम इस प्रकार बनाते हैं। उपर्युक्त सब द्रव्यों को किंचित् जल में पीस कर एक मासे की गोलियां बना रख लेते हैं। शहद में एक गोली चटाकर ऊपर से गाय अथवा भैंस का पाव आध पाव दूध मिश्री मिला कर पिलाते हैं। बहुत उत्तम है। कइयों को दिया, जिसे दिया वही खुश हो गया॥ १६३-१६५॥

बकुलत्वक्चूर्णं दन्तदाढर्ये-**बकुलत्वग्भवं चूर्णं घर्षयेद्दन्तपङ्क्तिषु।**

वज्रादपि दृढीभूता दन्ताः स्युश्चपला ध्रुवम्॥ १६६॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायां मध्यखण्डे चूर्णकल्पनानाम-षष्ठोऽध्यायः।

मौलसिरी के छाल का चूर्ण दांतों में मलने से हिलते हुए भी दांत जम कर वज्र से भी अधिक मजबूत हो जाते हैं॥ १६६॥

इति श्रीप्रयागदत्तशर्मायुर्वेदाचार्यविरचितायां सुबोधिनीनामिकायां श्रीशार्ङ्गधर-भाषाटीकायां मध्यखण्डे चूर्णकल्पनानाम-षष्ठोऽध्यायः समाप्तः।

अथ वटककल्पनानाम—

सप्तमोऽध्यायः।

वटकनामानि—**वटकाश्चाथ कथ्यन्ते तन्नाम गुटिका वटी।**

मोदको वटिका पिण्डी गुडो वर्त्तिस्तथोच्यते॥ १॥

अब वटक याने गोलियों की विधि कहते हैं—इसके दूसरे नाम वटक, गुटिका, वटी, मोदक, (लड्डू), वटिका, पिण्डी, गुड, वर्त्ति आदि हैं॥ १॥

वह्निसाध्यवटी-निर्माणविधिः— **लेहवत्साध्यते वह्नौ गुडो वा शर्करा तथा।**

गुग्गुलुर्वा क्षिपेत्तत्र चूर्णं तन्निर्मिता वटी॥ २॥

गुड़, चीनी अथवा (१)गूगल आगमें अवलेह से पकाये जाते हैं याने उनकी दोतार चासनी बनाई जाती है, फिर उसमें चूर्ण आदि डालकर अच्छी तरह चला कर गोलियां वा लड्डू बांध लिये जाते हैं॥ २॥

कुर्वन्तु कामुकजना न तु बिन्दुपातं चेतांसि तानि चकितानि कलावतानाम्॥

स्वस्थ को यह योग कभी कभी सेवन करना चाहिये। परन्तु जिनका धातु तरल हो उन्हें थोड़े दिन तक निरन्तर सेवन करने से लाभ होगा।

(१) गुटिकादि में गुग्गुल शुद्ध कर देना चाहिये। चूर्ण में मिलाने के पहले शुद्ध गुग्गुल दूध, जल वा निर्दिष्ट क्वाथ में गला देना चाहिये। गुड़, चीनी की चाशनी कर तब देना चाहिये।

अवह्निसाध्यवटी- **कुर्यादवह्निसिद्धेन क्वचिद् गुग्गुलुना वटीम् ।**
निर्माणविधिः— **द्रवेण मधुना वाऽपि गुटिकां कारयेद् बुधः ॥ ३ ॥**

कहीं कहीं विना अग्निसंयोग से भी (१)गूगल के साथ या गुड़ के साथ कूटकर गोली बना ली जाती हैं अथवा जल, दूध या कोई ओषधि का रस आदि द्रव पदार्थ से अथवा शहद से ही सानकर भी गोलियां बना ली जाती हैं ॥ ३ ॥

वटिकायां गुड- **सिता चतुर्गुणा देया वटीषु द्विगुणो गुडः ।**
शर्कराऽऽदिमान- **चूर्णाच्चूर्णसमः कार्यो गुग्गुलुर्मधु तत्समम् ।**
निर्णयः— **द्रवं च द्विगुणं देयं मोदकेषु भिषग्वरः ॥ ४ ॥**

वटिका बनाने के लिये चूर्ण का चौगुना शक्कर, गुड़ दुगुना, गूगल और शहद चूर्ण के समान तथा अन्य द्रव दूना लिये जाते हैं ।

विमर्श—पर यह मान सामान्य है । गोली ठीक ठीक बन जाने के लिये इससे भी कम ज्यादा ले सकते हैं ॥ ४ ॥

वटीमात्रानिर्देशः—**कर्षप्रमाणा तन्मात्रा बलं दृष्ट्वा प्रयुज्यताम् ॥ ५ ॥**

जहाँ पर गुटिका आदि की मात्रा न लिखी हो वहां एक (२)तोला लेवे पर यह भी बल आदि का विचार करके कम ज्यादा अपनी बुद्धि से किया जाता है ॥ ५ ॥

श्रीबाहुशालगुडो **इन्द्रवारुणिका मुस्तं शुण्ठी दन्ती हरीतकी ।**
ऽर्श आदौ— **त्रिवृच्छटी विडङ्गानि गोक्षुरश्चित्रकस्तथा ॥ ६ ॥**

तेजोह्वा च द्विकर्षाणि पृथग्द्रव्याणि कारयेत् । सूरणस्य पलान्यष्टौ वृद्धदारु चतुष्पलम् ७
चतुष्पलं स्याद् भल्लातः क्वाथयेत्सर्वमेकतः । जलद्रोणे चतुर्थांशं गृह्णीयात्क्वाथमुत्तमम् ८
क्वाथ्यद्रव्यात्त्रिगुणितं गुडं क्षिप्त्वा पुनः पचेत्।सम्यक्पक्वं च विज्ञाय चूर्णमेतत्प्रदापयेत्
त्रिवृकत्रिवृतादन्तीतेजोह्वाः पलिकाः पृथक्।पृथक्त्रिपलिकाः कार्या व्योषैलामरिचत्वचः
निक्षिपेन्मधु शीते च तस्मिन्प्रस्थप्रमाणतः।एवं सिद्धो भवेच्छ्रीमान्बाहुशालगुडः शुभः११
हन्यदर्शांसि सर्वाणि गुल्मं वातोदरं तथा । आमवातप्रतिश्यायग्रहणीक्षयपीनसान् ।
हलीमकं पाण्डुरोगं प्रमेहं च रसायनम् ॥ १२ ॥

इन्द्रायण की जड़, नागरमोथा, सोंठ, दन्ती की जड़, हरड़, निसोथ, कचूर, वायविडङ्ग, गोखरू, चीते की जड़ और चाभ प्रत्येक दो दो तोले, सूरन या जमीकन्द ८ पल (३२ तोले), बिधायरा ४ पल (१६ तोले) और शुद्ध भिलावे ४ पल (१६ तोले) सबको एकत्र कर एक द्रोण जल (२५६ पल) में काढ़ा बनावे जब चौथाई जल रह जाय तब काढ़े को उतार कर

---

(१) जहां अग्निसंयोग विना गुटिका बनानी हो वहां शुद्ध गुग्गुल दूध में भिगो कर ही काम में लेना चाहिये ।

(२) **बलं दृष्ट्वा** से देह, दोष तथा व्याधि का बल देख कर तब कर्ष या जितनी भी मात्रा वटिका की देनी चाहिये ।

छान लेवे फिर इस काढ़े में सब क्वाथ्य द्रव्यों की तिगुना (३ सेर १८ तोले) गुड़ डाल कर पकावे । जब देखे कि पाक ठीक हो गया है अब इस में चूर्ण डाल कर गोली बांधने लायक हो गया तब नीचे का चूर्ण डाले—

चीते की जड़, निशोथ दंती की जड़, चाभ प्रत्येक एक एक पल, सोंठ, मरिच, पीपर, छोटी इलायची, आंवले तथा दालचीनी प्रत्येक तीन तीन पल–इनको एकत्र चूर्ण कर पाक में डाल कर उतार अच्छी तरह से चलावे । **ठंडा होने** पर उसमें एक प्रस्थ (६४ तोले) शहद मिला देवे । इस रीति से (१)यह श्रीकारक **बाहुशाल गुड़** तैयार होता है । इसे उचित मात्रा में सेवन करने से सब प्रकार के बवासीर; गुल्म; वातोदर; आमवात; प्रतिश्याय; क्षय रोग; पीनस; हलीमक; पीलिया और प्रमेह आदि कठिन रोगों को नाश करता एवं रसायन (बुढ़ापा-नाशक) है ॥ ६–१२ ॥

मरिचादिगुटिका कासादौ —

मरिचं कर्षमात्रं स्यात्पिप्पली कर्षसंमिता ॥ १३ ॥
अर्धकर्षो यवक्षारः कर्षयुग्मं च दाडिमम् ।
एतच्चूर्णीकृतं युञ्ज्यादष्टकर्षगुडेन हि ॥ १४ ॥
शाणप्रमाणां गुटिकां कृत्वा वक्त्रे विधारयेत् ।
अस्याः प्रभावात्सर्वेऽपि कासा यान्त्येव सङ्क्षयम् ॥ १५ ॥

काली मिर्च एक तोले, पीपर एक तोला, जवाखार, आधा तोला, अनारदाने दो तोले, एकत्र चूर्णकर आठ तोले गुड़ मिलाकर एक एक शाण (३ मासे) की गोलियाँ बना लेवे। इन गोलियों को मुख में रखकर चूसते रहने से इसके प्रभाव से ही पाँचों प्रकार की खाँसी नष्ट हो जाती है ॥ १३–१५ ॥

गुडवटिका विभीतकप्रयोगश्च श्वासकासादौ—

गुडशुण्ठीशिवामुस्तैर्गुटिकां धारयेन्मुखे। श्वासकासेषु सर्वेषु बिभीतं वाऽपि केवलम् ॥१६॥

सोंठ, हरड़ और नागरमोथा सम भाग ले एकत्र चूर्ण कर दुगुने गुड़ मिलाकर गोलियाँ बना लेवे । इन गोलियों को मुंह में रखने से सब प्रकार के श्वास एवं खाँसी शान्त होते हैं। अथवा सिर्फ बहेड़ा का छिल्का ही मुख में रखे तो श्वास–खाँसी शान्त हों ।

विमर्श—यहाँ पीछे कहा पुटपक्व बहेड़े का छिलका समझना चाहिये ॥ १६ ॥

आमलक्यादिगुटिका तृष्णाऽऽदौ—

आमलं कमलं कुष्ठं लाजाश्च वटरोहकम् ।
एतच्चूर्णस्य मधुना गुटिकां धारयेन्मुखे ।
तृष्णां प्रवृद्धां हन्त्येषा मुखशोषं च दारुणम् ॥ १७ ॥

---

(१) इस योग में भिलावा शुद्ध तथा **गुड़** पुराना लेना चाहिये । तथा इसका पाक एक ही दिन में नहीं करना चाहिये । जैसे लिखा है—

घृततैलगुडादींश्च नैकाहादवतारयेत् । प्रकुर्वन्त्युषिता ह्येते विशेषाद् गुणसञ्चयम् ॥

इस लिये तीन चार दिन में करना चाहिये । यह योग बड़ा उपकारक है ।

आँवले, कमल, कूट, धान की खील तथा बड़ की डाढ़ी समान भाग ले चूर्ण कर शहद से गोलियाँ बना लेवे । इसे मुंह में रखकर धीरे २ चूसने से अत्यन्त बढ़ी हुई प्यास तथा कठिन मुखशोष शान्त हो जाते हैं ॥ १७ ॥

सञ्जीवनीवटी सन्निपात- **विडङ्गं नागरं कृष्णा पथ्याऽऽमलबिभीतकम् ॥ १८ ॥**
ज्वरे सर्पदष्टादौ च— **वचा गुडूची भल्लातं सविषं चात्र योजयेत् ।**
एतानि समभागानि गोमूत्रेणैव पेषयेद् ॥ १९ ॥
गुञ्जाभा गुटिका कार्या दद्यादार्द्रकजै रसः । एकामजीर्णगुल्मेषु द्वे विषूच्यां प्रदापयेत् ॥२०॥
तिस्रश्च सर्पदष्टे तु चतस्रः सान्निपातिके । वटी सञ्जीवनी नाम्ना सञ्जीवयति मानवम् ॥२१॥

वायविडंग, सोंठ, पीपर, हरड़, आँवले, बहेड़े, वच, गिलोय, (१)शुद्ध भिलावे और शुद्ध उत्तम विष समभाग लेकर सबको गोमूत्र में अच्छी तरह पीसे और रत्ती जितनी बड़ी गोलियाँ बना लेवे । इसे अदरख के रस के साथ खाने को देवे । आमाजीर्ण और गुल्म में एक एक गोली, हैज़े में दो दो गोलियाँ, साँप काटे को तीन गोलियों की मात्रा देवे । यह संजीवनी वटी अपने प्रभाव से मरते रोगी को फिर जिला देती है ॥ १८–२१ ॥

व्योषादिगुटिका **व्योषाम्लवेतसं चव्यं तालीसं चित्रकं तथा ।**
पीनसादौ— **जीरकं तिन्तिडीकं च प्रत्येकं कर्षभागिकम् ॥ २२ ॥**
त्रिसुगन्धं त्रिशाणं स्याद् गुडः स्यात्कर्षविंशतिः ।
व्योषादिगुटिका सामपीनसश्वासकासजित् । रुचिस्वरकरा ख्याता प्रतिश्यायप्रणाशिनी ॥२३॥

सोंठ, काली मिर्च, पीपर, अमलबेत, चाभ, तालीसपत्र, चीते की जड़, जीरा, तिन्तिड़ो, प्रत्येक एक एक तोला, त्रिसुगन्ध मिलित तीन शाण ले एकत्र चूर्णकर २० तोले पुराने गुड़ में पीस कर गोलियाँ बना लेवे । यह **व्योषादिगुटिका** पीनस, श्वास और खांसी को नष्ट करती है तथा रुचि करती एवं जुक़ाम को नष्ट करती है ॥ २२–२३ ॥

गुडचतुष्टयगुटिका **आमेषु सगुडां शुण्ठीमजीर्णे गुडपिप्पलीम् ।**
आमादौ— **कृच्छ्रे जीरगुडं दद्यादर्शःसु सगुडाभयाम् ॥ २४ ॥**

आमदोष रहने पर सोंठ और गुड़, अजीर्ण पर पीपर और गुड़, मूत्रकृच्छ्र पर जीरा और गुड़, एवं अर्श पर हरड़ और गुड़ सेवन करने से लाभ होता है ।

विमर्श—यहां भी चूर्ण से दुगुना गुड़ लेकर गोली बना लेनी चाहिये ॥ २४ ॥

वृद्धदारुमोदकोऽ **वृद्धदारुकभल्लातशुण्ठीचूर्णेन योजितः ।**
र्शोरोगे— **मोदकः सगुडो हन्यात्षड्विधार्शःकृतां रुजम् ॥ २५ ॥**

विधारा, (२)शोधे भिलावे और सोंठ सम भाग ले चूर्ण कर दुगुने गुड़ में लड्डुएँ बना

(१) शुद्ध भल्लातक और शुद्ध विष अलग गोमूत्र में घोंट कर तब और चूर्ण मिला घोटना चाहिये ।

(२) **भल्लातक** को अलग खूब कूट पीस लेना चाहिये तब अन्य औषधों में मिलाना

कर भक्षण करने से छहों प्रकार के बवासीर को नष्ट करता है।

विमर्श—जहां भी लो भिलावे शोधे हुए तथा गुड़ पुराने ले। तीन साल का पुराना गुड़ अच्छा होता है। पुराने गुड़ के बारे में शास्त्र में कहा है कि—

'पित्तघ्नो मधुरः शुद्धो वातघ्नोऽसृक्प्रसादनः।
स पुराणोऽधिकगुणो गुडः पथ्यतमः स्मृतः।' इति ॥ २५॥

शूरणपिण्डी अर्शोरोगे—
शुष्कशूरणचूर्णस्य भागान्द्वात्रिंशदाहरेत्।
भागान्षोडश चित्रस्य शुण्ठ्या भागचतुष्टयम् ॥ २६ ॥
द्वौ भागौ मरिचस्यापि सर्वाण्येकत्र चूर्णयेत्।
गुडेन पिण्डिकां कुर्यादर्शसां नाशनीं पराम् ॥ २७ ॥

जिमीकन्द को सुखाकर चूर्ण कर लेवे, इस चूर्ण का ३२ भाग, चीतामूल के चूर्ण का १६ भाग, सोंठ के चूर्ण का ४ भाग और मरिच के चूर्ण का दो भाग एकत्र कर लेवे। फिर इसमें दुगुना गुड़ सानकर पिण्डी बना लेवे। इसे यथोचित मात्रा में भक्षण करें तो छहों प्रकार के बवासीर नष्ट हो जाते हैं ॥ २६-२७ ॥

शूरणवटकोऽर्शःप्रभृति-रोगेषु— **शूरणो वृद्धदारुश्च भागः षोडशभिः पृथक् ॥ २८ ॥**
मुसलीचित्रकौ ज्ञेयावष्टभागमितौ पृथक्।
शिवा बिभीतकी धात्री विडङ्गं नागरं कणा ॥ २९ ॥
भल्लातः पिप्पलीमूलं तालीसं च पृथक्पृथक्। चतुर्भागप्रमाणानि त्वगेला मरिचं तथा ३०
द्विभागमात्राणि पृथक् ततस्त्वेकत्र चूर्णयेत्। द्विगुणेन गुडेनाथ वटकान्कारयेद् बुधः ॥३१॥
प्रबलाग्निकरा एते तथाऽर्शोनाशनाः पराः। ग्रहणीं वातकफजां श्वासं कासं क्षयामयम् ३२
प्लीहानं श्लीपदं शोथं हिक्कां मेहं भगन्दरम्।
निहन्युः पलितं वृद्ध्यातथा मेध्या रसायनाः ॥ ३३ ॥

सूरन और विधारा सोलह-सोलह भाग, मूसली और चीतामूल आठ-आठ भाग, हरड़, बहेड़ा, आंवला, वायविडङ्ग, सोंठ, पीपर, शुद्ध भिलावे. पीपरामूल और तालीसपत्र प्रत्येक चार चार भाग, दालचीनी और छोटी इलायची दो-दो भाग लेकर एकत्र चूर्ण कर लेवे। फिर दुगुने गुड़ में बड़े बना लेवे। ये बड़े अग्नि को खूब तेज करते तथा बवासीर के नाश करने में उत्तम, (१)वातकफज ग्रहणी, श्वास, खांसी, क्षयरोग, तिल्ली, फीलपांव, सूजन, प्रमेह, भगन्दर आदि रोगों को तथा बालों के सफेद होने को नाश करते हैं, शरीर की वृद्धि(२) करते, बुद्धि बढ़ाते तथा रसायन हैं याने बुढ़ापे को नष्ट करते हैं ॥ २८-३३ ॥

चाहिये। कइयों को **भल्लातक** असह्य हो जाता है अतः भल्लातक के स्थान में **रक्तचन्दन** देना चाहिये।

(१) **ग्रहणीं वातकफजाम्** से वातज तथा कफज ग्रहणीविकार जानना चाहिये।

(२) और इस योग में कहीं कहीं **वृद्ध्या** की जगह **वृष्याः** पाठ है जिसका अर्थ "वीर्य की वृद्धि करते" समझना चाहिये।

मण्डूरवटकः— कामलाऽऽदौ— त्रिफला त्र्यूषणं चव्यं पिप्पलीमूलचित्रकौ ।
दारुमाक्षिकधातुस्त्वग्दार्वी मुस्तं विडङ्गकम् ॥ ३४ ॥
प्रत्येकं कर्षमात्राणि सर्वं द्विगुणितं तथा । मण्डूरं चूर्णयेत्सर्वं गोमूत्रेऽष्टगुणे क्षिपेत् ॥३५॥
पक्त्वा च वटकान्कृत्वा दद्यात्तक्रानुपानतः । कामलापाण्डुमेहार्शःशोथकुष्ठकफामयान् ॥
ऊरुस्तम्भमजीर्णं च प्लीहानं नाशयेदपि ॥ ३६ ॥

हरड़, बहेड़ा, आँवला, सोंठ, मिर्च, पीपर, चाभ, पीपरामूल, चीते की जड़, देवदारु, मारी हुई शुद्ध सोनामाखी, दारुहलदी, नागरमोथा और बायविडङ्ग, प्रत्येक का एक तोला लेकर एकत्र चूर्ण करे फिर सब चूर्ण का दुगुना शुद्ध(१) मण्डूर का चूर्ण लेवे याने २८ तोले लेवे और उसके आठगुने गोमूत्र में डाल कर पकावे। जब गोमूत्र खूब सूखते सूखते गाढ़ा हो जाय तब समय जान कर सब चूर्ण को उसमें डाल कर वटक बना लेवे। इन्हें उचित मात्रा में मट्ठे के अनुपान से रोगी को देवे। ये वटक कामला, पाण्डुरोग, प्रमेह, बवासीर, शोथ, कोढ़, कफ रोग, ऊरुस्तम्भ, अजीर्ण और तिल्ली को नाश करते हैं ॥ ३४–३६ ॥

...लीमोदको धातुगत-ज्वरादौ— (क्षौद्राद् द्विगुणितं सर्पिर्घृताद् द्विगुणपिप्पली ॥ ३७ ॥
सिता द्विगुणिता तस्याः क्षीरं देयं चतुर्गुणम् ।
चातुर्जातं क्षौद्रतुल्यं पक्त्वा कुर्याच्च मोदकान् ॥ ३८ ॥
धातुस्थांश्च ज्वरान्सर्वान् श्वासं कासं च पाण्डुताम् ।
धातुक्षयं वह्निमान्द्यं पिप्पलीमोदको जयेत् ॥ ३९ ॥)

शहद एक भाग लेवे, शहद से दुगुना घी, घी से दुगुना पीपर, पीपर का दुगुना शक्कर और शक्कर का चौगुना दूध लेकर पीपर के चूर्ण कर सब को एकत्र (२)पकावे। शहद को अलग रखे रहे। जब पाक हो जाय तब चतुर्जात का चूर्ण एक भाग मिलाकर उतार लेवे और ठण्डा होने पर शहद भी मिलाकर खूब चलावे और लड्डू बनावे। यह **पिप्पलीमोदक** है। इसके खाने से सब प्रकार के धातुगत ज्वर, खाँसी, श्वास, पीलिया, धातुक्षय, अग्निमान्द्य आदि रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ३७–३९ ॥

चन्द्रप्रभावटी- प्रमेहादौ— चन्द्रप्रभां वचां मुस्तं भूनिम्बामृतदारुकम् ।
हरिद्राऽतिविषा दार्वी पिप्पलीमूलचित्रकौ ॥ ४० ॥

---

(१)इस योग में मण्डूर देने का विधान है तो इसमें पुराना और शुद्ध किया मण्डूर देना चाहिये। पुराने मण्डूर विशेष गुणकारक होते हैं। जैसे—
शतोत्थमुत्तमं किट्टंमध्यं चाशीतिवार्षिकम् । अधमं षष्टिवर्षीयं ततो हीनं विषोपमम् ॥
अस्तु पुराना जितने भी वर्ष का (६० वर्ष ऊपर का) हो वही लेना चाहिये। आगे इसी ग्रन्थ में मण्डूर का शोधनादिक है। उसी विधान से शुद्ध कर तब मिलाना चाहिये।
(२)पीपर के चूर्ण में घी पहले मिला ले तब दूध में पकने को छोड़े जब गाढ़ा हो जाय तब अन्य द्रव्य मिलावे।

धान्यकं त्रिफला चव्यं विडङ्गं गजपिप्पली।व्योषं माक्षिकधातुश्च द्वौ क्षारौ लवणत्रयम्
एतानि शाणमात्राणि।प्रत्येकं कारयेद् बुधः। त्रिवृद्दन्ती पत्रकं च त्वगेला वंशरोचना
प्रत्येकं कर्षमात्राणि कुर्यादेतानि बुद्धिमान्।द्विकर्षं हतलोहं स्याच्चतुष्कर्षा सिता भवेत्
शिलाजत्वष्टकर्षं स्यादष्टौ कर्षाश्च गुग्गुलोः। एभिरेकत्र संक्षुण्णैः कर्त्तव्या गुटिका शुभा
चन्द्रप्रभेति विख्याता सर्वरोगप्रणाशिनी।प्रमेहान्विंशतिं कृच्छ्रं मूत्राघातं तथाऽश्मरीम्
विबन्धानाहशूलानि मेहनं ग्रन्थिमर्बुदम्। अण्डवृद्धिं तथा पाण्डुं कामलां च हलीमकम्

अन्त्रवृद्धिं कटीशूलं श्वासं कासं विचर्चिकाम्।
कुष्ठान्यर्शांसि कण्डूं च प्लीहोदरभगन्दरम् ॥ ४७ ॥
दन्तरोगं नेत्ररोगं स्त्रीणामार्त्तवजां रुजम्।
पुंसां शुक्रगतान्दोषान्मन्दाग्निमरुचिं तथा ॥ ४८ ॥
वायुं पित्तं कफं हन्याद् बल्या वृष्या रसायनी।
चन्द्रप्रभायां कर्षस्तु चतुःशाणो विधीयते ॥ ४९ ॥

चन्द्रप्रभा, वच, नागरमोथा, चिरायता, गिलोय, देवदारु, हलदी, अतीस, दारुहलदी, पीपरामूल, (१)चीतामूल, धनियाँ, हरड़, बहेड़ा, आँवला, चाभ, वायविडङ्ग, गजपीपल, सोंठ, मरिच, पीपर, सोनामाखी का भस्म, सज्जीखार, जवाखार, सेंधानमक, काला नमक, बिड़ नमक, प्रत्येक का चूर्ण एक एक शाण या तीन तीन मासे लेवे। निसोथ, दन्ती की (२)जड़, तेजपात, दालचीनी, छोटी इलायची, वंशलोचन, प्रत्येक का एक कर्ष (एक तोला), (३)लोह-भस्म दो कर्ष, सफेद चीनी ४ कर्ष, शुद्ध शिलाजीत ८ कर्ष और ८ कर्ष शुद्ध भैंसा गूगल लेवे। पहले गरम जल या गरम दूध अन्दाज से कुछ लेकर उसमें गूगल को डाल कर मिला लेवे। फिर उसमें चीनी और शिलाजीत मिलाकर घोल लेवे। पश्चात् अन्यान्य चूर्ण सब देकर और पीसकर जब गोली बाधने लायक हो जाय तो गोली बना लेवे। इसे (४)यथोचित मात्रा में सेवन करने से सब रोगों को नाशती है, बीस प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, पथरी,

---

(१)चीतामूल से चीते की जड़ में का छाल लेनी चाहिये।

(२)दन्ती से दन्तीमूलत्वक् लेना चाहिये।

(३)इसमें जितने रसादिक हैं सब शास्त्रानुकूल शोधित मारित ही ग्रहण करना चाहिये। इसी प्रकार शिलाजीत और गुग्गुल भी शुद्ध कर ही ग्रहण करना चाहिये।

(४)इस योग में ४ तोला कज्जली वा अभ्रक और ४ तोला रससिन्दूर मिलाने का भी विधान ग्रन्थान्तर में है जिससे विशेष गुणकारी हो जाता है।

वृद्धवैद्योपदेशेन पलार्द्धं रसगन्धकम्। केवलं मूर्च्छितं वाऽपि पलं वा दापयेद्रसम्।
अभ्रकञ्च क्षिपेत् किञ्चित् पलमानं भिषग्वरः संमर्द्य मधुसर्पिर्भ्यामादौ रक्तिचतुष्टयम्॥
भक्ष्यं वृद्धया यथायुक्ति यावन्माषचतुष्टयम्।त्रिवृद्दन्तीं त्रिजातानां कर्षमानं पृथक् पृथक्
इस योग को सेवन करना चाहे और यथाकथित लाभ करना चाहे तो मधु और गोघृत

...न्थ, आनाह, शूल, लिङ्ग के रोग, गांठ, अर्बुद, आंतों का उतरना, कमर का शूल, श्वास, ...सी, विचर्चिका, फोतों का बढ़ना, पीलिया, कामला, हलीमक, सब प्रकार के कोढ़, बवासीर, ...खुजली, तिल्ली, भगन्दर, दांत के रोग, नेत्ररोग, स्त्रियों के आर्त्तवसम्बन्धी रोग, पुरुषों के ...र्यदोष, मन्दाग्नि, अरुचि तथा वात, पित्त और कफ के विकारों को नष्ट करती है, बल देती ...है वीर्य को बढ़ाती है तथा रसायनी याने बुढ़ापानाशक है। चन्द्रप्रभावटी में कर्ष चार शाण ...का लिया जाता है।

विमर्श—इस योग में **चन्द्रप्रभा** शब्द पर कई विचार हैं। किसी **ने** इससे 'कपूर' का ...र्थ किसी ने **'कचूर'** का और किसी ने **शतावर** का लिया है। किसी **ने 'वाकुची'** भी ...र्थ किया है। **सुखबोध** में जो **चन्द्रप्रभावटी** आयी है उसमें भी यही द्रव्य हैं पर **कचूर** ...के सिवाय न **कपूर** न **शतावर** और न **वाकुची** का ही पाठ उसमें है। **सुखबोधकार** उसे ...चन्द्र से प्राप्त होने से **चन्द्रप्रभा** नाम बताया है।

...था—**शम्भुं समभ्यर्च्य कृतप्रसादेनाप्ता गुडी चन्द्रमसः प्रसादात्'** इति।

इसका अनुपान रोगानुसार तक्र, मस्तु, मांसरस, दूध अथवा शीत जल है ॥ ४०-४९ ॥

काङ्कायनगुटिका-गुल्मादौ

यवानी जीरकं धान्यं मरिचं गिरिकर्णिका।
अजमोदोपकुञ्चीच चतुःशाणा पृथक्पृथक् ॥ ५० ॥
हिङ्गु षट्शाणिकं कार्यं क्षारौ लवणपञ्चकम्।
त्रिवृच्चाष्टमितैः शाणैः प्रत्येकं कल्पयेत्सुधीः ॥ ५१ ॥
दन्ती शटी पौष्करं च विडङ्गं दाडिमं शिवा।
चित्रोऽम्लवेतसः शुण्ठी शाणैः षोडशभिः पृथक् ॥ ५२ ॥
...जपूररसेनैषां गुटिकां कारयेद् बुधः। घृतेन पयसा मद्यैरम्लैरुष्णोदकेन वा ॥ ५३ ॥
...त्काङ्कायनप्रोक्तां गुटिकां गुल्मनाशिनीम्। मद्येन वातिकं गुल्मं गोक्षीरेण च पैत्तिकम्॥
...ण कफगुल्मं च दशमूलैस्त्रिदोषजम्। उष्ट्रीदुग्धेन नारीणां रक्तगुल्मं निवारयेत् ॥
हृद्रोगं ग्रहणीं शूलं क्रिमीनर्शांसि नाशयेत् ॥ ५५ ॥

अजवायन, जीरा, धनियां, काली मिर्च, गिरिकर्णी याने अपराजिता की जड़, अजमोद, ...लौंजी, प्रत्येक चार चार शाण, भुनी हींग छः शाण, सज्जीखार, जवाखार, पांचों नमक, ...निसोथ, प्रत्येक आठ शाण, दन्ती की जड़, कचूर, पोहकरमूल, बायविडङ्ग, अनारदाने, हरड़, ...चीते की जड़, अमलवेत और सोंठ सोलह सोलह शाण लेवे। सबको कूट पीसकर बिजौरे ...नींबू के रस की भावना दे गोलियां बना लेवे। इस **काङ्कायन** आचार्य कथित गुल्म को

...अतुल्य के साथ ४ मास जाड़े में सेवन करे। और इसकी पूरी मात्रा ४ रत्ती है, यथाबल ...न्यूनाधिक भी कर सकते हैं। यह योग अत्युत्तम है।

इस औषध के लिये भोजन-पान-मैथुनादि का निषेध नहीं है पर नियमानुसार पथ्य ...तथा स्त्रीप्रसङ्ग करना चाहिये। जैसे गुग्गुल सेवन करने वाले के लिये लिखा है—

'क्षाराम्ल रसयूषाक्तं दोषधात्वबलोचितम्। बुभुक्षितो मात्रपानमद्याद्गुग्गुलुसेवकः ॥

नाशने वाली गोली को घी, दूध, मद्य, अम्ल (बेर, कांजी आदि) अथवा गरम जल के साथ सेवन करे। मद्य के साथ पीने से वातगुल्म, दूध के साथ पित्तज गुल्म, गोमूत्र के साथ कफज गुल्म, दसमूल के काढ़े के साथ त्रिदोषज गुल्म, ऊंटनी के दूध के साथ स्त्रियों का रक्त गुल्म तथा यथायोग्य अनुपान से हृद्रोग, ग्रहणी, शूल, कृमि और बवासीर को नाश करती है।

विमर्श—अन्य ग्रन्थ में इसे बवासीर पर प्रधान लिखा है ॥ ५०–५५ ॥

योगराजगुग्गुलुर्वातरोगे आमवाते वा— **नागरं पिप्पलीमूलं पिप्पली चव्यचित्रकौ ॥ ५६ ॥**

भृष्टं हिङ्ग्वजमोदा च सर्षपो जीरकद्वयम् ।
रेणुकेन्द्रयवाः पाठा विडङ्गं गजपिप्पली ॥ ५७ ॥
कटुकाऽतिविषा भार्ङ्गी वचा मूर्वेति भागतः ।
प्रत्येकं शाणिकानि स्युर्द्रव्याणीमानि विंशतिः ॥ ५८ ॥

द्रव्येभ्यः सकलेभ्यश्च त्रिफला द्विगुणा भवेत्।एभिश्चूर्णीकृतः सर्वैः समो देयश्च गुग्गुलुः॥५९॥
(वङ्गं रौप्यं च नागं च लोहसारस्तथाऽभ्रकम् । मण्डूरं रससिन्दूरं प्रत्येकं पलसम्मितम्॥६०॥
गुडपाकसमं कृत्वा इमं दद्याद्यथोचितम्) । एकपिण्डं ततः कृत्वा धारयेद्घृतभाजने॥६१॥
गुटिकाः शाणमात्रास्तु कृत्वा ग्राह्या यथोचिताः।गुग्गुलुर्योगराजोऽयं त्रिदोषघ्नो रसायनः
मैथुनाहारपानानां त्यागो नैवात्र विद्यते । सर्वान्वातामयान्कुष्ठानर्शांसि ग्रहणीगदम् ६३
प्रमेहं वातरक्तं च नाभिशूलं भगन्दरम् । उदावर्त्तं क्षयं गुल्ममपस्मारमुरोग्रहम् ॥६४॥
मन्दाग्निश्वासकासांश्च नाशयेदरुचिं तथा । रेतोदोषहरः पुंसां रजोदोषहरः स्त्रियाम्॥६५॥
पुंसामपत्यजनको वन्ध्यानां गर्भदस्तथा।रास्नाऽऽदिक्काथसंयुक्तो विविधं हन्ति मारुतम्
काकोल्यादिश्टतात्पित्तं कफमारग्वधादिना । दार्वीश्टतेन मेहांश्च गोमूत्रेण च पाण्डुताम्
मेदोवृद्धिं च मधुना कुष्ठं निम्बश्टतेन वा । छिन्नाक्काथेन वातास्रं शोथं शूलं कणाश्टतात्
पाटलाक्काथसहितो विषं मूषकजं जयेत् । त्रिफलाक्काथसहितो नेत्रार्त्ति हन्ति दारुणाम्॥
पुनर्नवाऽऽदिक्काथेन हन्यात्सर्वोदराण्यपि ॥ ६९ ॥

सोंठ, पीपर, चाभ, पिपरामूल, चीतामूल, भुनी हींग, अजमोदा, सरसों, सफेद जीरा, काला जीरा, रेणुका, इन्द्रजौ, पाठा, वायविडङ्ग, गजपीपल, कुटकी, अतीस, भारंगी, बच, मूर्वा–इन बीस औषधियों का प्रत्येक का चूर्ण एक शाण कुल २० शाण (५ तोले) लेवे। त्रिफले का चूर्ण इनसे दुगुना याने १० तोले लेवे। इन सब चूर्णों के समान गूगल देवे याने १५ तोले गूगल लेवे। वंगभस्म, रौप्यभस्म, सीसभस्म, फौलादभस्म, अभ्रकभस्म, मण्डूर भस्म और रससिन्दूर प्रत्येक एक पल (४ तोला) प्रमाण लेवे। पहले गूगल को जल दे आग पर पकावे। जब गूगल पानी में घुल जाय और गाढ़ा सा होय तब यथाविधि अन्यान्य चूर्ण तथा भस्मादिक देकर खूब कूटे। जब सब एक दिल होकर गोली बांधने लायक हो जाय तब एक एक शाण (३ मासा) की गोलियाँ बना लेवे और चिकने बासन में सुरक्षित रखे। कई वैद्य इसे पाक न कर उचित मात्रा में घी देकर पहले गूगल को खूब कूटते हैं। कूटते वक्त घी बारम्बार थोड़ा थोड़ा कर दिया जाता है। (अधिक कूटने की आवश्यकता होने के कारण

ते ही "बिना एक लाख चोट खाए गूगल नहीं बनता" ऐसी साम्प्रदायिक उक्ति चली आयी है) जब गूगल मधुमक्खी के मोम सा हो जाता है तब अन्यान्य चूर्ण सब देकर फिर कूटते हैं जब सब द्रव्य एक दिल होकर पिण्ड बन जाते हैं तब अंगुलियों में घी लगाकर उसकी गोलियाँ बना लेते हैं। यह विधि भी अच्छी है। कूटने के लिये मजबूत पत्थर का खरल वा लोहे का पात्र व्यवहृत होता है। लोहे के पात्र में कूटने से दवा काली हो जाती है। इसमें भस्मों का मेल प्रक्षिप्त है अतः एक शाण याने तीन मासे की मात्रा बिना भस्म वाले गुग्गुलु की है, भस्म मिले की मात्रा कम (चार–छै रत्ती) देवे। यह **योगराज गुग्गुलु** है बड़ी प्रसिद्ध और लाभप्रद है। यह त्रिदोषनाशक और रसायन है। इसमें (१)मैथुन याने स्त्रीप्रसंग तथा खान–पान की कोई कैद नहीं है, पर स्वस्थवृत्त के नियमों का ध्यान रखना परमावश्यक है। यह सब (८०) वातरोगों को, कोढ़ों को, बवासीर को, ग्रहणी, प्रमेह, वातरक्त, नाभिशूल, भगन्दर, उदावर्त्त, क्षयरोग, गुल्म, अपस्मार, छाती का जकड़ना, मन्दाग्नि, श्वास, खाँसी तथा अरुचि को नाश करता है। पुरुष के वीर्य–दोष तथा स्त्रियों के रजोदोष को दूर कर उन्हें सन्तानोत्पत्ति के लायक बना देता है। **क्वाथ अध्याय** में कहा **रास्नाऽऽदि** काढ़े के साथ सेवन करने से नाना प्रकार के वायुरोगों को, **चूर्णाध्याय** में कथित **काकोल्यादि** जीवनीयगण के काढ़े के साथ पित्त के रोगों को तथा **क्वाथाध्याय** में कहे **आरग्वधादि** के काढ़े के साथ कफ के रोगों को, **दारुहल्दी** के काढ़े के साथ प्रमेहों को, **गोमूत्र** के साथ पीलिया को, **शहद** के साथ मेदोवृद्धि (चर्बी का बढ़ना), **नीम के काढे** के साथ कोढ़ को, **गिलोय** के काढ़े के साथ वातरक्त को, **पीपर** के काढ़े के साथ सूजन और शूल को, **पाढल** के काढ़े के साथ चूहे के विष को, **त्रिफले** के काढ़े के साथ कठिन और अति कष्टदायक नेत्ररोग को तथा **क्वाथाध्याय** के **पुनर्नवाऽऽदि** काढ़े के साथ सब (८) प्रकार के उदर रोगों को यह गूगल नष्ट करता है।

विमर्श—वास्तव में यह अनुपम और आयुर्वेद का एक रत्न है। कोई वैद्य ऐसा नहीं जो इसे उपयोग न करता हो और सफलता न पाता हो ॥ ५६–६९ ॥

कैशोरगुग्गुलुर्वातरक्तादौ–**त्रिफलायास्त्रयः प्रस्थाः प्रस्थैका चामृता भवेत् ॥ ७० ॥**
संकुट्य लोहपात्रे तु सार्धद्रोणाम्बुना पचेत्। जलमर्धश्रृतं ज्ञात्वा गृह्णीयाद्वस्त्रगालितम् ७१
ततः क्वाथे क्षिपेच्छुद्धं गुग्गुलुं प्रस्थसम्मितम्। पुनः पचेदयःपात्रे दर्व्या सङ्घट्टयेन्मुहुः ७२
सान्द्रीभूतं च तं ज्ञात्वा गुडपाकसमाकृतिम्। चूर्णीकृत्य ततस्तत्र द्रव्याणीमानि निक्षिपेत्

---

(१) मैथुन के लिये भी ऐसा निम्नलिखित विधान है—

सेवेत कामतः कामं तृप्तो वाजीकृतैर्हिमे। त्र्यहाद् वसन्तशरदोः पक्षाद् वृष्टिनिदाघयोः॥
प्रकामं च निषेवेत मैथुनं शिशिरागमे। शीते रात्रौ दिवा ग्रीष्मे प्रावृड्वर्जितवर्षणे॥
वसन्ते च दिवारात्रौ ना स्मरेत् च्छरदि स्मरम्॥

इन नियमों का पालन करते हुए सेवन करने से विशेष लाभप्रद होता है।
और इस योग में रसादिक जो दिये गये हैं वह ग्रन्थान्तर के हैं।

त्रिफला द्विपला ज्ञेया गुडूची पलिका मता । षडक्षं त्र्यूषणं प्रोक्तं विडङ्गानां पलार्धकम् ॥७७॥
दन्ती कर्षमिता कार्या त्रिवृत्कर्षमिता स्मृता । ततः पिण्डीकृतं सर्वं घृतपात्रे विनिक्षिपेत् ।
गुटिकाः शाणमात्रेण युञ्ज्याद् दोषाद्यपेक्षया । अनुपाने भिषग्दद्यात्कोष्णं नीरं पयोऽथवा
मञ्जिष्ठाऽऽदिशृतं वाऽपि युक्तियुक्तमतः परम् । जयेत्सर्वाणि कुष्ठानि वातरक्तं त्रिदोषजम्
सर्वव्रणांश्च गुल्मांश्च प्रमेहपिटिकास्तथा । प्रमेहोदरमन्दाग्निकासश्वयथुपाण्डुजान् ॥७८॥
हन्ति सर्वामयान्नित्यमुपयुक्तो रसायनः । कैशोरकाभिधानोऽयं गुग्गुलुः कान्तिकारकः ।
वासाऽऽदिना नेत्रगदान्गुल्मादीन्वरुणादिना । क्वाथेन खदिरस्यापि व्रणकुष्ठानि नाशयेत्
अम्लं तीक्ष्णमजीर्णं च व्यवायं श्रममातपम् । मद्यं रोषं त्यजेत्सम्यग्गुणार्थी पुरसेवकः ॥७९॥

मिलित त्रिफला तीन प्रस्थ तथा गिलोय एक प्रस्थ लेकर एकत्र कूटे । फिर एक लोहे के बड़े पात्र में डेढ़ द्रोण जल में डालकर पकावे । जब आधा जल शेष रहे तब उसे उतार कर छान लेवे । फिर उसमें उत्तम शुद्ध (१)भैंसा गूगल एक प्रस्थ डालकर फिर लोहे के पात्र में पकावे और जल न जाय इसलिये लोहे के कलछे से चलाते रहे । जब पकते पकते गुड़पाक के समान गाढ़ा हो जाय तब त्रिफला का चूर्ण दो पल (८ तोले), गिलोय का चूर्ण अथवा सत्त गिलोय एक पल, त्रिकुटे का चूर्ण छः तोले, वायविडङ्ग का चूर्ण दो तोले, दन्ती की जड़ एक तोला और निसोथ एक तोला, एकत्र डालकर खूब चलावे और पिण्डाकृति होने पर उतार कर

---

(१) गुग्गुल बनाने में अधिकतर महिषाक्ष गुग्गुल ही विशेष गुणकारक माना जाता है । यों तो गुग्गुल पांच होते हैं, जैसे—

सुवर्णवर्णः प्रथमो द्वितीयः कुसुमद्युतिः । तृतीयः पद्मरागस्तु चतुर्थश्चन्द्रनीलकः ।
पञ्चमो महिषाक्षश्च नामतः शास्त्रकोविदैः ॥

इसमें महिषाक्ष गुग्गुल के लिये लिखा है—

वरमहिषलोचनोदरसन्निभवर्णस्य गुग्गुलोः प्रस्थम् ।

पुटपाक की तरह इसका भी पाक करना चाहिये । गुडपाक की परीक्षा इस प्रकार है—

तोयपूर्णे यदा पात्रे क्षिप्तो न प्लवते गुडः ।
क्षिप्तस्तु निश्चलस्तिष्ठेत् पतितस्तु न शीर्यते । एष पाको गुडादीनां सर्वेषां परिकीर्त्तितः ॥

इसकी मात्रा दोष-बल-कोष्ठ-ऋतु आदि का विचार कर देने को कहा है ।
दोष में जैसे—**कफ में** एक निष्क, **पित्त में** दो निष्क, **वायु में** तीन निष्क । **कोष्ठभेद से—**

चत्वारो माषका हीने मध्ये त्वष्टौ च माषकाः ।
श्रेष्ठे द्वादशकाः प्रोक्ताः कोष्ठं विज्ञाय तत् त्रिधा ॥

ऋतुभेद से अनुपान—

प्रावृट्काले च ग्रीष्मे च घृतयुक्तं प्रदापयेत् ।
शरत्काले वसन्ते च दापयेत् त्रिफलायुतम् । हेमन्ते शिशिरे चैव गोमूत्रेण समायुतम् ॥

अन्य विधान योगराजवत् ही जानना चाहिये ।

...से चिकने बासन में सुरक्षित रखे। दोष, बल, कोष्ठ तथा अग्नि और ऋतु आदि का विचार करके साधारणतः एक शाण की मात्रा प्रयोग करे। अनुपान में वैद्य गुनगुना जल, दूध, क्वाथाध्याय में कथित **मञ्जिष्ठाऽऽदि** काढ़ा अथवा अपनी बुद्धि से जो उस रोग में योग्य और लाभदायक हो ऐसा अनुपान देवे। यह सब (१८) प्रकार के कोढ़, त्रिदोष से उत्पन्न वातरक्त, सब प्रकार के घाव, गुल्म, प्रमेहपिडिका, प्रमेह, उदररोग, मन्दाग्नि, खांसी, सूजन, पीलिया आदि को नाश करता है तथा नित्य उपयोग में लाने से रसायन होता है। यह **'कैशोर'** नाम का गूगल शरीर की कान्ति को बढ़ाता है। बूढ़े को भी किशोर जैसा सुन्दर बनाता है इसीसे इसका नाम **'कैशोर'** पड़ा। **वासा** आदि के काढ़ा के साथ नेत्र के रोगों को, **वरुणादि** के काढ़े के साथ गुल्मों को तथा **खैरसार** के काढ़े के साथ सब कुष्ठ और व्रणों को नष्ट करता है। खट्टे, चरपरे पदार्थ, अजीर्ण रखना, कसरत करना, थकावट, धूप, शराब आदि पीना तथा क्रोध करना इस गूगल को खाकर पूरा पूरा गुण लाभ चाहने वाले त्याग देवें याने इस दवा के खाते समय ये चीज़ें अपथ्य हैं, इनसे परहेज़ करे ॥ ७०-८१ ॥

त्रिफलागुग्गुलु- भगन्दरादौ—

त्रिपलं त्रिफलाचूर्णं कृष्णाचूर्णं पलोन्मितम् ।
गुग्गुलुः पाञ्चपलिकः क्षोदयेत्सर्वमेकतः ॥ ८२ ॥
ततस्तु गुटिकां कृत्वा प्रयुञ्ज्याद्वह्न्यपेक्षया । भगन्दरं गुल्मशोथावर्शांसि च विनाशयेत् ॥

त्रिफले का चूर्ण तीन पल और पीपर का चूर्ण एक पल एकत्र करे। फिर शुद्ध गूगल ५ पल लेकर घृत मिलाकर कूटे और ऊपर का चूर्ण मिला कर एक दिल करले। फिर गोलियां बनाले। इसे अग्नि का विचार करके उचित मात्रा में प्रयोग करे। भगन्दर, गुल्म, शोथ और बवासीर को यह नाश करता है॥ ८२-८३ ॥

गोक्षुरादिगुग्गुलुः प्रमेहादौ—

अष्टाविंशतिसंख्यानि पलान्यानीय गोक्षुरात् ।
विपचेत्षड्गुणे नीरे क्वाथो ग्राह्योऽर्धशेषितः ॥ ८४ ॥
ततः पुनः पचेत्तत्र पुरं सप्तपलं क्षिपेत् । गुडपाकसमाकारं ज्ञात्वा तत्र विनिक्षिपेत् ॥८५॥
त्रिकटु त्रिफला मुस्तं चूर्णितं पलसप्तकम् । ततः पिण्डीकृतस्यास्य गुटिकामुपयोजयेत् ८६
हन्यात्प्रमेहं कृच्छ्रं च प्रदरं मूत्रघातकम् । वातास्रं वातरोगांश्च शुक्रदोषं तथाऽश्मरीम् ८७

पंचांग गोखरू २८ पल लेकर अधकचरा कर लेवे। फिर अच्छे बर्तन में छः गुना जल डालकर पकावे। जल आधा मात्र रह जाय तब उतार कर कपड़े में छान लेवे। इस छने काढ़े को फिर से आग पर चढ़ावे और उसमें शुद्ध गूगल सात पल डाल कर पुनः पकावे जब गूगल गुडपाक जैसे हो जाय तब उसमें सोंठ, कालीमिर्च, पीपर, हरड़, बेहेड़ा, आंवला और नागरमोथे का एक एक पल चूर्ण कुल सात पल चूर्ण डाल कर अच्छी तरह चलावे और एक पिण्ड होने पर उतार कर उचित मात्रा की गोलियां बना लेवे। इसे (१) ठीक ठीक अनुपान के साथ भक्षण करने से प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, प्रदर, मूत्राघात (खास कर उष्णवात), वातरक्त,

(१) इस गोक्षुरादि गुग्गुल से पूयमेहादिक में विशेष उपकार होता है। इसे अगर गोरखुल के काढ़े के साथ सेवन किया जावे तो अत्यधिक लाभ होता है।

वातरोग, वीर्यदोष तथा पथरी को नष्ट करता है।

विमर्श—अनुपान गरम जल या गुनगुना दूध देवे ॥ ८४–८७ ॥

त्रिफलामोदकः त्रिफलाऽष्टपला कार्या भल्लातं च चतुष्पलम् ।
कुष्ठादौ-- बाकुची पञ्चपलिका विडङ्गानां चतुष्पलम् ॥ ८८ ॥
हतलोहं त्रिवृच्चैव गुग्गुलुश्च शिलाजतु । एकैकं पलमात्रं स्यात्पलार्द्धं पौष्करं भवेत् ८९
चित्रकस्य पलार्धं स्याद् द्विशाणं मरिचं भवेत् ।
नागरं पिप्पली मुस्ता त्वगेलापत्रकुङ्कुमम् ॥ ९० ॥
शाणोन्मितं स्यादेकैकं चूर्णयेत्सर्वमेकतः । ततस्तत्प्रक्षिपेच्चूर्णं पक्वखण्डे च तत्समे ९१
मोदकान्पलिकान्कृत्वा प्रयुञ्जीत यथोचितान् ।
हन्युः सर्वाणि कुष्ठानि त्रिदोषप्रभवामयान् ॥ ९२ ॥
भगन्दरप्लीहगुल्माञ्जिह्वातालुगलामयान् ।
शिरोऽक्षिभ्रूगतान्रोगान्मन्यापृष्ठगतानपि ॥ ९३ ॥
प्राग्भोजनस्य देयं स्यादधःकायस्थिते गदे । भेषजं भक्तमध्ये च रोगे जठरसंस्थिते ॥
भोजनस्योपरि ग्राह्यमूर्ध्वजत्रुगदेषु च ॥ ९४ ॥

मिलित त्रिफला चूर्ण ८ पल, शुद्ध भिलावे ४ पल, बाकुची ५ पल, वायविडंग ४ पल, लोहभस्म, निसोथ, गूगल और शिलाजीत प्रत्येक का एक पल, पोहकरमूल और चीतामूल दो–दो कर्ष, काली मिर्च दो शाण (आधा कर्ष), सोंठ, पीपर, नागरमोथा, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र और केशर प्रत्येक एक एक शाण (३ मासे) लेकर सबको चूर्ण कर एकत्र मिलावे। फिर इन सब चूर्णों के समान मिश्री (२७ पल) लेकर चासनी बनावे जब पाक ठीक हो जाय तब सब चूर्ण को मिला कर चार–चार तोले के लड्डू बना लेवे। इन्हें यथोचित मात्रा में प्रयोग करे। सब (१८) कोढ़, त्रिदोष से उत्पन्न रोग, भगन्दर, तिल्ली, गुल्म, जिह्वा के रोग, तालु के रोग, गले के रोग, सिर के रोग, आंख के रोग, भौंहों के रोग तथा पीठ के रोगों को यह नष्ट करता है। कमर के नीचे के अंग के रोगों में भोजन के पहले, उदरस्थित रोग में भोजन के बीच में तथा गले के ऊपर के रोगों में भोजन करने के बाद इसका प्रयोग करे ॥ ८८–९४ ॥

काञ्चनारगुग्गुलुर्गण्ड- काञ्चनारत्वचो ग्राह्यं पलानां दशकं बुधैः ॥ ९५ ॥
मालाऽपचीग्रन्थि- त्रिफला षट्पला कार्या त्रिकटु स्यात्पलत्रयम् ।
भगन्दरादौ— पलैकं वरुणं कुर्यादेलात्वक्पत्रकं तथा ॥ ९६ ॥
एकैकं कर्षमात्रं स्यात्सर्वाण्येकत्र चूर्णयेत् । यावच्चूर्णमिदं सर्वं तावन्मात्रस्तु गुग्गुलुः ९७
सङ्कुट्य सर्वमेकत्र पिण्डं कृत्वा च धारयेत् ।
गुटिकाः शाणिकाः कार्याः प्रातर्ग्राह्या यथोचितम् ॥ ९८ ॥
गण्डमालां जयत्युग्रामपचीमर्बुदानि च ।
ग्रन्थीन्व्रणांश्च गुल्मांश्च कुष्ठानि च भगन्दरम् ॥ ९९ ॥

प्रदेयश्चानुपानार्थं क्वाथो मुण्डतिकाभवः।
क्वाथः खदिरसारस्य पथ्याक्वाथोष्णकं जलम् ॥ १०० ॥

कचनार की छाल १० पल, मिलित त्रिफला छः पल, मिलित त्रिकटु ३ पल, वरुण की छाल ७ पल, छोटी इलायची, दालचीनी और तेजपात एक एक कर्ष लेकर सबको एकत्र चूर्ण करे। फिर इन सब के बराबर गूगल (२० पल ३ कर्ष) लेकर घृत के संयोग से चूर्ण के साथ अच्छी तरह कूटकर एक पिण्ड बना (१)घृतभाण्ड में सुरक्षित रखे। इसकी एक एक शाण की गोलियां बना उचित मात्रा में प्रयोग करे। यह भयंकर गण्डमाला, अपची, अर्बुद, गांठ, व्रण, गुल्म, कोढ़, भगन्दर इन सबको नष्ट करता है।

विमर्श—अनुपान के लिये मुण्डी का काढ़ा, खैरसार का काढ़ा, हरड़ का काढ़ा तथा उष्ण जल प्रयोग करे। अति उत्तम योग है ॥ ९५–१०० ॥

माषादिमोदकः पुष्टौ—निस्तुषं माषचूर्णं स्यात्तथा गोधूमसम्भवम्।
निस्तुषं यवचूर्णं च शालितण्डुलजं तथा ॥ १०१ ॥
सूक्ष्मं च पिप्पलीचूर्णं पलिकान्युपकल्पयेत्। एतदेकीकृतं सर्वं भर्जयेद्गोघृतेन च ॥१०२॥
सर्वमात्रेण सर्वेभ्यस्ततः खण्डं समं क्षिपेत्। जलं च द्विगुणं दत्त्वा पाचयेत्तं शनैः शनैः१०३
ततः पक्वं समुद्धृत्य वृत्तान्कुर्वीत मोदकान्।
भुक्त्वा सायं पलैकं च पिबेत्क्षीरं चतुर्गुणम् ॥ १०४ ॥
वर्जनीयौ विशेषेण क्षाराम्लौ द्वौ रसावपि। कृत्वैवं रमयेन्नारीर्बह्वीर्न क्षीयते नरः ॥१०५॥

इति शार्ङ्गधरसंहितायां मध्यखण्डे वटककल्पनानाम-सप्तमोऽध्यायः।

छिलके रहित उड़द का चूर्ण, गेहूं का चूर्ण, छिलके हीन जौ का चूर्ण, शाली चावल का चूर्ण तथा पीपरों का चूर्ण–प्रत्येक एक पल (४ तोले) लेकर एकत्र सबको समान भाग गाय के घी में भून लेवे फिर सब चूर्ण के समान मिश्री मिला दुगुना जल देकर पकावे। जब लड्डू बांधने लायक हो जाय तब एक एक पल के लड्डू बना लेवे। इनमें से एक लड्डू शाम को खाकर ४ पल दूध पीवे। (२)खारी और खट्टी चीजों का त्याग करे। इस रीति से इसके सेवन करने से मनुष्य निश्चय ही अनेक स्त्रियों से सम्भोग कर सक्ता है।

विमर्श—यह स्वस्थ पुरुषों के नित्य खाने की वस्तु है ॥ १०१–१०५ ॥

इति श्रीप्रयागदत्तशर्मायुर्वेदाचार्यकृतायां सुबोधिनीनामिकायां श्रीशार्ङ्गधर भाषाटीकायां मध्यखण्डे वटककल्पनानाम-सप्तमोऽध्यायः समाप्तः ॥७॥

---

(१) इसके रखने का विधान घृतभाण्डादि में है। गण्डमाला में विशेष उपकारी है।

(२) यहां क्षाराम्ल-भक्षण का निषेध है, वह इसलिये कि क्षाराम्ल वीर्यच्युतिकारक है। क्षाराम्ल नहीं छोड़ने पर भी हानि न होगी पर छोड़ देना विशेष उपकारी है।

इसके बनाने में कोई २ माषादिकों को घी में भून कर दूध में पकाने का बिधान करते हैं पक जाने पर मिश्री आदि देते हैं। यह दूसरी विधि है।

अथ अवलेहकल्पनानामा-
अष्टमोऽध्यायः ।

अवलेहस्य लक्षणनाम- **क्वाथादीनां पुनः पाकाद्घनत्वं सा रसक्रिया ।**
मात्रानिर्देशः— **सोऽवलेहश्च लेहः स्यात्तन्मात्रा स्यात्पलोन्मिता ॥ १ ॥**

काढ़े आदि (स्वरस-फाण्ट-कल्क आदि) को पुनः पका कर जो गाढ़ा कर लिया जाता है उसे **रसक्रिया, अवलेह** या **लेह** कहते हैं। यह चाटा जाता है इससे चाटने लायक गाढ़ा होता है। इसकी मात्रा एक पल की है।

विमर्श—पर यह सामान्य में कहा गया है तथा आजकल के लिये बहुत ज्यादा है इसलिये सदा औषध और रोगी के बलाबल का विचार कर एक तोले तक की मात्रा का प्रयोग करना चाहिये। अधिक भारी अवलेह जिसमें भस्म आदि भी हो उनका तो अधिक से अधिक ३ माशे तक प्रयोग करना चाहिये ॥ १ ॥

अनुक्ते सिताऽऽदीनां **सिता चतुर्गुणा कार्या चूर्णाच्च द्विगुणो गुडः ।**
परिमाणनिर्देशः— **द्रवं चतुर्गुणं दद्यादिति सर्वत्र निश्चयः ॥ २ ॥**

अवलेह-पाकार्थ जिस चूर्ण का अवलेह करना हो उससे चीनी चौगुनी लेवे, यदि गुड़ में अवलेह बनाना हो तो गुड़ दुगुना लेवे और जल, दूध एवं काढ़ा आदि चौगुना लेना चाहिये—ऐसा सब तन्त्रों में निश्चित है ॥ २ ॥

अवलेहस्य सिद्धि- **सुपक्के तन्तुमत्त्वं स्यादवलेहोऽप्सु मज्जति ।**
लक्षणम्— **खरत्वं पीडिते मुद्रागन्धवर्णरसोद्भवः ॥ ३ ॥**

(१)जब अवलेह ठीक पकने पर आता है तब उसमें ये लक्षण नजर आते हैं—कलछे से गिराने से तन्तुदार होकर गिरता है या अंगुलियों के बीच दबा कर उठाने से तार निकलते हैं, जल में डालने से डूब जाता है तथा यदि एक बूंद जमीन में गिराया जाय तो ज्यों का त्यों रहता है फैलता नहीं, छूने से कुछ कठिन जान पड़ता है तथा दबने से उसमें अंगुलियों के निशान पड़ जाते हैं तथा जिन द्रव्यों से वह पकाया जाता है उनका गन्ध, रङ्ग व स्वाद उसमें भली भांति व्यक्त होता है। मतलब यह कि इन लक्षणों के दीखने पर लेह सिद्ध हुआ जाने ॥ ३ ॥

---

(१)जब अवलेह पक्क हो जाता है तो उठाने पर तार बंध जाता है। और पानी में देने पर डूब जाता है। जैसे लिखा है—

"तोयपूर्णे यदा पात्रे क्षिप्तो न प्लवते गुडः। क्षिप्तस्तु निश्चलस्तिष्ठेत् पतितस्तु न शीर्यते एष पाको गुडादीनां सर्वेषां परिकीर्त्तितः ॥

तथा दबाने से अंगुली में सटे नहीं दब कर रह जावे बल्कि अंगुली का चिह्न उसमें आ जावे जैसे—**पीडिते तु यदाऽङ्गुल्या निम्नता तत्र जायते ।**

अच्छी तरह पक्क कर उसमें द्रव्यादिकों की सुगन्धि आ जावे तब सिद्ध समझना चाहिये।

अवलेहस्यानुपानानि—**दुग्धमिक्षुरसो यूषः पञ्चमूलकषायजः ।**
वासाक्वाथो यथायोग्यमनुपानं प्रशस्यते ॥ ४ ॥

दूध—यथादोष गाय, भैंस, बकरी, ऊटनी प्रभृति का, ईख का रस—रस, चीनी, मिश्री, गुड़ आदि उसके विकार, पञ्चमूल—ह्रस्व या दीर्घ—के काढ़े से तैयार यूष, अडूसा का काढ़ा (१) आदि यथायोग्य याने जिस रोग में देश-काल आदि से जो अनुपान उपयोगी हो वही देवे॥४॥

कण्टकार्यवलेहः कास- **कण्टकारीतुलां नीरद्रोणे पक्त्वा कषायकम् ।**
श्वासादौ— **पादशेषं गृहीत्वा च तस्मिंश्चूर्णानि दापयेत् ॥ ५ ॥**
पृथक्पलानि चैतानि गुडूचीचव्यचित्रकाः। मुस्तं कर्कटश्रृङ्गी च त्र्यूषणं धन्वयासकः ॥६॥
भार्ङ्गी रास्ना शटी चैव शर्करा पलविंशतिः । प्रत्येकं च पलान्यष्टौ प्रदद्याद् घृततैलयोः॥७
पक्त्वा लेहत्वमानीय शीते मधुपलाष्टकम् । चतुष्पलं तुगाक्षीर्याः पिप्पलीनां चतुष्पलम्॥८
क्षिप्त्वा निदध्यात्सुदृढे मृण्मये भाजने शुभे।लेहोऽयं हन्ति हिक्काऽर्त्तिश्वासकासानशेषतः

पञ्चाङ्ग छोटी कटेहली १ तुला (५ सेर) लेकर उसे एक द्रोण (१२ से० १३ छ०) जल में पकावे । जब चौथाई शेष रहे तब उतार कर छान ले । उसे फिर आग पर चढ़ाकर उसमें गिलोय, चाभ, चीतामूल, नागरमोथा, काकड़ासींगी, त्रिकुटा, धमास, भारङ्गी, रास्ना, कचूर प्रत्येक का चूर्ण एक पल, चीनी २० पल (१ सेर) एवं गौ का घी तथा कडुवा तेल ८-८ पल उसमें डाल कर चला चला कर पाक करे । जब अवलेह (२)सिद्ध हो जाय—ऊपर कहे

---

(१) अनुपान में कषाय से स्वरस, क्वाथ, कल्कादिक यथायोग्य जानना चाहिये । ये सब अनुपान दोषानुरूप कहे हैं जैसे—

१—वातेऽम्लमधुरलवणप्रायाः स्निग्धादयः। २—पित्ते मधुरकषायतिक्तप्रायाः शीतादयः । ३—कफे तिक्तोषणकषायप्राया रूक्षादयः ।

अनुपान मात्रा जो होनी चाहिये उसे कहते हैं—

अनुपानं प्रयोक्तव्यं कफव्याधौ पलं भवेत्। पलद्वयं तु पित्ते वाऽनिलजे च पलत्रयम् ॥
गण्डूषं मात्रया देयं मृदौ क्रूर तु पञ्च च । अनुपानं प्रयोक्तव्यं देशकालाद्यपेक्षया ॥

अब अनुपान की आवश्यकता कहते हैं । जैसे—

यथा जलगतं तैलं तत्क्षणादेव सर्पति । तथा भैषज्यमङ्गेषु प्रसर्पत्यनुपानतः ॥

(२) लेह बनाने में पहले क्वाथ छान कर रख लेवे बाद तेल और घी खरा कर उतार लेवे तब उसमें क्वाथ, चूर्णादि देकर पाक करे जब पाक शेष रहे तब मिश्री और ठण्डा होने पर मधु, वंशलोचनादि डाले ।

इस योग में तेल छोड़ने को लिखा है पर निर्णय नहीं है कि कौनसा तेल ऐसी अवस्था में "**तैलेऽनुक्ते तिलोद्भवम्**" होना चाहिये परन्तु कुछ लोगों का मत है कि कटुतैल छोड़ना चाहिये क्योंकि कहा है कि—

"कासे श्वासे च हिक्कायां कटुतैलं प्रयोजयेत्" ।

लक्षण मिलने लगे—तो नीचे उतार कर ठण्डा होने पर शहद ८ पल (३२ तोले), वंश-लोचन पीसा ४ पल और पीपरों का चूर्ण ४ पल डालकर मिला कर मज़बूत मिट्टी के चिकने पात्र में सुरक्षित रख दे। यह अवलेह हिचकी, श्वास और खांसी को समूल नष्ट करता है॥५-९॥

च्यवनप्राशः क्षय-क्षीणादौ—

पाटलाऽरणिकाश्मर्यबिल्वारलुकगोक्षुराः।
पर्ण्यौ बृहत्यौ पिप्पल्यः शृङ्गी द्राक्षाऽमृताऽभयाः ॥ १० ॥
बला भूम्यामली वासा ऋद्धिर्जीवन्तिका शटी।
जीवकर्षभकौ मुस्तं पौष्करं काकनासिका ॥ ११ ॥

मुद्गपर्णी माषपर्णी विदारी च पुनर्नवा। काकोल्यौ कमलं मेदे सूक्ष्मैलागरुचन्दनम् ॥१२॥
एकैकं पलसम्मानं स्थूलचूर्णितमौषधम्। एकीकृत्य बृहत्पात्रे पञ्चामलशतानि च ॥१३॥
पचेद् द्रोणजले क्षिप्त्वा ग्राह्यमष्टांशशेषितम्। ततस्तु तान्यामलानि निष्कुलीकृत्य वाससा

दृढहस्तेन सम्पीड्य क्षिप्त्वा तत्र ततो घृतम्।
पलसप्तमितं तानि किञ्चिद् भृष्ट्वाऽल्पवह्निना ॥ १५ ॥
ततस्तत्र क्षिपेत्क्वाथं खण्डं चार्धतुलोन्मितम्।
लेहवत्साधयित्वा च चूर्णानीमानि दापयेत् ॥ १६ ॥

पिप्पली द्विपला देया तुगाक्षीरी चतुष्पला। प्रत्येकं च त्रिशाणं स्यात्त्वगेलापत्रकेशराः।
ततस्त्वेकीकृते तस्मिन्क्षिपेत्क्षौद्रं च षट्पलम्। इत्येतच्च्यवनप्रोक्तं च्यवनप्राशसंज्ञितम्
लेहं वह्निबलं दृष्ट्वा खादेत्क्षीणो रसायनम्। बालवृद्धक्षतक्षीणा नारीक्षीणाश्च शोषिणः१९
हृद्रोगिणः स्वरक्षीणा ये नरास्तेषु युज्यते। कासं श्वासं पिपासां च वातास्रमुरसो ग्रहम्२०
वातपित्तं शुक्रदोषं मूत्रदोषं च नाशयेत्। मेधां स्मृतिं स्त्रीषु हर्षं कान्तिं वर्णप्रसन्नताम्

अस्य प्रयोगादाप्नोति नरोजीर्णविवर्जितः ॥ २१ ॥

पाढल की छाल, अरनी की छाल, खम्भारी की छाल, बेल की छाल, अरलू की छाल, गोखरू, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, पीपर, काकड़ासींगी, मुनक्के, गिलोय, हरड़, बरियारे की जड़, भुइआँवला, अडूसा, ऋद्धि, जीवन्तीशाक, कचूर, जीवक, ऋषभक, नागरमोथा, पोहकरमूल, कौवाटोंटा, मुंगवन, मसवन, विदारीकंद, सांठी की जड़, काकोली, क्षीरकाकोली, कमल, मेदा, महामेदा, छोटी इलायची, अगर, सफेद चन्दन-प्रत्येक औषध एक एक पल (४ तोले) लेकर अधकचर कर लेवे और सबको एकत्र कर एक बड़े कलईदार पात्र में एक द्रोण जल (१२ सेर १३ छ०) देकर आग पर चढ़ावे। फिर अच्छे

और यह योग कास-श्वास-हिक्का ही पर है। और यह प्रमाण भी यही सिद्ध करता है। जैसे—

"गुडं कटुकतैलेन मिश्रयित्वा समं लिहेत्। त्रिसप्ताहप्रयोगेण श्वासं निर्मूलतो जयेत्॥"

ग्रन्थ में "व्याधेरयुक्तं यद् द्रव्यं गणोक्तमपि तत्त्यजेत्" ऐसा लिखा है, यहां तो कहा भी नहीं है कौन तेल ग्रहण करना चाहिये इस लिये कटुतैल ही का व्यवहार करना चाहिये।

पके हुए बड़े (१)आंवले ५०० गिन कर लेवे और एक मजबूत पतले कपड़े में पोटली बना उसे पानी में लटका देवे । जब मन्द मन्द आँच से पकते पकते आठवां भाग जल मात्र रह जाय तब पात्र को चूल्हे पर से उतार ले और आँवलों की पोटली को उठाकर काढ़े को दूसरे साफ पात्र में छानकर रख देवे । अब पोटली खोलकर सीजे हुए आँवलों को अलग एक कठौती में रख पिचक कर गुठलियों को निकाल फेंक दे और आंवलों के गूदे को खूब गूद ले या सिल पर पीस ले और मजबूत सूत के कपड़े पर जो ज्यादा घना न बुना हो उस पिट्ठी को रख कर हाथ से रगड़ कर छान ले ताकि आँवले के सिरा आदि अलग हो जायँ । अब फिर से बड़ी कढ़ाई को आग पर चढ़ाकर उसमें ७ पल (२८ तोले) गाय का घी डाले । घी गरम होने पर आंवलों की छनी हुई पीठी को उसमें रखकर मन्दी मन्दी आँच से भूने । जब पिट्ठी ठीक ठीक भुन जाय तब उसमें पहले का रक्खा हुआ काढ़ा और आधा तुला (ढाई सेर) मिश्री देकर धीरे धीरे पकावे । जब अवलेह ठीक सिद्ध हो जाय तब उतार लेवे और उसमें पीपर का चूर्ण २ पल, वंशलोचन का चूर्ण ४ पल, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात और केशर प्रत्येक का चूर्ण ३ शाण (९ मासे) एकत्र कर उसमें डालकर मिला देवे । ठंडा होने पर उसमें छः पल (२४ तोले) शहद भी देकर मिला देवे । यह **च्यवन** ऋषि का कहा हुआ **च्यवनप्राश** नामक अवलेह है । इस रसायन को अपने अग्नि के बल का विचार कर क्षीण पुरुष, बाल, वृद्ध, क्षतक्षीण, स्त्रीगमन से क्षीण, शोषरोगी, हृद्रोग से युक्त, क्षीणस्वर वाला, ऐसे पुरुष उचित मात्रा में सेवन करे । खांसी, श्वास, प्यास, वातरक्त, हृदय का जकड़ना, वात, पित्त, वीर्यदोष तथा मूत्र के दोष को यह अवलेह नाश करता है । इसको सेवन करने वाला पुरुष मेधा (ग्रन्थ–धारणाशक्ति), याददाश्त, स्त्रियों में हर्ष, कान्ति, वर्ण और प्रसन्नता को प्राप्त करता तथा बुढ़ापा (२)से रहित होता है ।

---

(१) इस योग में आंवले का मान नहीं है केवल गिन कर ही लिया गया है इसमें कोई शङ्का की बात नहीं । ओषधियों की गणना पर भी मान है, जैसे–**अगस्त्यहरीतकी** अवलेह में **'हरीतकीशतं भद्रम्'** तथा **भल्लातक गुड** में **'भल्लातकसहस्रे द्वे'** इस लिये गणना काम में आई है । और पलादि मान पर भी काम लिया जाता है, जैसे–**बाहुशालगुड** में **'चतुष्पलं स्याद् भल्लातम्'** ऐसा लिखा है । अस्तु जहां जैसा लेख रहे उसी के अनुसार व्यवहार करना चाहिये । अगर मान की ही आवश्यकता हो तो आंवले का मान कोल से है, इसे कोलफल भी कहते हैं, तो कोल से आधा कर्ष हुआ **'कोलद्वयं च कर्षः स्यात्'** इससे एक आंवले का आधा कर्ष मान हुआ तो ५०० आंवले का मान ऽ३= तीन सेर दो छटांक हुवा ।

(२) इसके गुण में **'नरो जीर्णविवर्जितः'** ऐसा लिखा है जिसका अर्थ है कि–इसको सेवन करने वाला मनुष्य **जीर्ण**=जरा से रहित हो जावे। परन्तु कहीं २ पाठ में **नरोऽजीर्णविवर्जितः'** ऐसा भी कहते हैं, तो यह भी अच्छी ही बात है क्योंकि रोगों का मूल अजीर्ण है, उसी से मुक्ति हो जावे तो शरीर आरोग्य हो जाता है, जैसे लिखा है—

"प्रायेणाहारवैषम्यादजीर्णं जायते नृणाम् । तन्मूलो रोगसंघातस्तद्विनाशाद्विनश्यति"।।

विमर्श—इसके बनाने के लिये सदैव गीले आंवले ही लेवे। यदि गीले न मिले और अधिक जरूरी हो तो १२ सेर सूखे आंवले गुठली निकाल लेवे। इसके भूनने के लिये यहां सिर्फ घी ही ७ पल लिया गया है, पर इससे आंवले ठीक भूने नहीं जा सक्ते और न दवा में काफी चिकनाई ही आती है तथा चरक आदि ग्रन्थों में भी तेल देना लिखा है इससे इसमें तेल भी उतना ही डाल कर भूने। भुनने पर विशेष ध्यान देना चाहिये क्योंकि उसीके ऊपर अवलेह का चिरस्थायी होना निर्भर है। यदि मृदु भुना होगा तो अवलेह थोड़े ही समय में खराब हो जायगा तथा यदि अधिक भुना जायगा या जल जायगा तो गुणहीन और वैकारिक हो जायगा। ठीक ठीक भुना होने का चिह्न यह है कि हाथ में न चिपटे तथा कलछे में लेकर कलछे को उलटा देने में बिना कुछ कलछे में चिपटे सब गिर जाय। आजकल इसकी मात्रा दो तीन तोला पर्याप्त है ॥ १०–२१ ॥

कूष्माण्डावलेहो रक्तपित्तादौ—

निष्कुलीकृत्य कूष्माण्डखण्डान्पलशतं पचेत्।
निक्षिप्य द्वितुलं नीरमर्धशिष्टं च गृह्यते ॥ २२ ॥
तानि कूष्माण्डखण्डानि पीडयेद् दृढवाससा।
आतपे शोषयेत्किञ्चिच्छूलाग्रैर्बहुशो व्यधेत् ॥ २३ ॥
क्षिप्त्वा ताम्रकटाहे च दद्यादष्टपलं घृतम्। तेन किञ्चिद्भर्जयित्वा पूर्वोक्तं तज्जलं क्षिपेत्॥२४
खण्डं पलशतं दत्त्वा सर्वमेकत्र पाचयेत्। सुपक्वे पिप्पली शुण्ठी जीरकं द्विपलं पृथक्॥२५
पृथक्पलार्धं धान्याकं पत्रैलामरिचं त्वचम्।
चूर्णीकृत्य क्षिपेत्तत्र घृतार्धं क्षौद्रमावहेत् ॥ २६ ॥
खादेदग्निबलं दृष्ट्वा रक्तपित्ती क्षयी ज्वरी। शोषतृष्णाभ्रमच्छर्दिश्वासकासक्षतातुरः।
कूष्माण्डकावलेहोऽयं बालवृद्धेषु युज्यते।
उरःसन्धानकृद् वृष्यो बृंहणो बलकृन्मतः ॥ २८ ॥

बड़ा बढ़िया मोटा (१)पुराना पेठे को पहले छील ले फिर उसके बीज के घरों को भी निकाल दे और उसके छोटे छोटे टुकड़े कर ले। इन टुकड़ों में से १०० पल (५सेर) तौल कर ले ले और एक वर्त्तन में १० सेर जल डालकर पकावे। जब जल ५ सेर रह जाय और पेठा

परन्तु बात ऊपर वाली ही उचित है क्योंकि यह रसायन है और अन्य जगहों में इसके गुण में लिखा है कि च्यवन ऋषि को इस योग को खिला कर युवा किया गया जैसे—

"अस्य प्रयोगाच्च्यवनः सुवृद्धोऽभूत्पुनर्युवा"।

इस लिये **'जीर्णविवर्जितः'** ही मानना चाहिये। इसका अनुपान अधिक गुणकारक दूध ही है।

(१) यहां पुराना कूष्माण्ड से सुपक्व कूष्माण्ड ग्रहण करना चाहिये। कच्चे कूष्माण्ड अव-गुण करने वाले होते हैं जैसे लिखा है—

वृन्ताकं कोमलं पथ्यं कूष्माण्डं कोमलं विषम्।

ठीक सीज जाय तो उतार कर पेठे के टुकड़ों को अलग कर कपड़े में रख खूब निचोड़ ले। फिर कुछ कुछ धूप में सुखाकर कांटे से खूब बींध ले (आजकल यह विधि वरती नहीं जाती, यानी सिल पर पीसते हैं या घियाकस में घिस लेते हैं।) फिर तांबे की कलईदार कड़ाही चढ़ाकर आठ पल घी डालकर पेठे को भून ले। ठीक भुना जा चुकने पर उसमें पहले का रखा ५ सेर पेठा पकाया जल एवं ५ सेर मिश्री उसमें डाल देवे और मन्दाग्नि में पाक करे। जब अवलेह सिद्ध हो जाय तो उतार कर उसमें पिपरों का चूर्ण २ पल, जीरे का चूर्ण २ पल, सोंठ का चूर्ण २ पल, धनियां का चूर्ण २ तोला, तेजपात का चूर्ण २ तोला, इलायची का चूर्ण २ तोला, काली मिर्च का चूर्ण २ तोला और दालचीनी का चूर्ण २ तोला डाल कर खूब चला-कर मिला देवे। ठण्डा होने पर उसमें ४ पल शहद भी मिला देवे। इसको अग्निबल के अनुसार मात्रा ठीककर खावे। इससे रक्तपित्त, क्षयरोग, ज्वर, शोष, तृष्णा, भ्रम, वमन, श्वास, खांसी, इन रोग नष्ट हो जाते हैं। यह **कूष्माण्ड अवलेह** है। बालक और बूढ़ों को यह बहुत लाभप्रद है। यह उरःक्षत को ठीक करता, वीर्य को बढ़ाता, शरीर को पुष्ट करता तथा बलवान् बनाता है२२ २८

खण्डशूरणावलेहो- **युक्त्या कूष्माण्डखण्डस्य शूरणं विपचेत्सुधीः ।**
ऽर्शोरोगे- **अर्शसां मूढवातानां मन्दाग्नीनां च युज्यते ॥ २९ ॥**

ऊपर के **खण्ड कूष्माण्ड अवलेह** की विधि के अनुसार ही शूरन याने जिमीकन्द का भी अवलेह पकावे। सब द्रव्य ठीक उसी मान में लेवे, सिर्फ पेठा के स्थान में सूरन लेवे। यह सूरन का अवलेह बवासीर, मूढ़वात तथा मन्दाग्नि वालों के लिये लाभकारी होता है ॥२९॥

अगस्त्यहरीतक्यवलेहः **हरीतकीशतं भद्रं यवानामाढकं तथा ॥ ३० ॥**
क्षयादौ- **पलानि दशमूलस्य विंशतिं च नियोजयेत् ।**
चित्रकः पिप्पलीमूलमपामार्गः शटी तथा ॥ ३१ ॥
कपिकच्छूः शङ्खपुष्पी भार्ङ्गी च गजपिप्पली ।
बला पुष्करमूलं च पृथग्द्विपलमात्रया ॥ ३२ ॥
पचेत्पञ्चाढके नीरे यवैः स्विन्नैः श्रृतं नयेत् ।
तच्चाभयाशतं दद्यात्क्वाथे तस्मिन्विचक्षणः ॥ ३३ ॥
सर्पिस्तैलाष्टपलकं क्षिपेद्गुडतुलां तथा । पक्त्वा लेहत्वमानीय सिद्धे शीते पृथक्पृथक्३४
क्षौद्रं च पिप्पलीचूर्णं दद्यात्कुडवमात्रया । हरीतकीद्वयं खादेत्तेन लेहेन नित्यशः ॥३५॥
क्षयं कासं ज्वरं श्वासं हिक्काऽर्शोऽरुचिपीनसान् । ग्रहणीं नाशयेदेष बलीपलितनाशनः३६
बलवर्णकरः पुंसामवलेहो रसायनम् । विहितोऽगस्त्यमुनिना सर्वरोगप्रणाशनः ॥३७॥

उत्तम(१) हरड़ गिनकर १०० लेवे, जौ एक आढक (४ सेर), दसमूल २० पल (१सेर–

---

(१) इस योग में हरीतकी प्रधान है, हरीतकी नया तथा सुपक्व लेना चाहिये, जैसे लिखा है–

नवा स्निग्धा घना वृत्ता गुर्वी क्षिप्ता तथाऽम्भसि ।
निमज्जेद्या प्रशस्तत्वाद् गुणकृत् सा प्रकीर्त्तिता ॥

प्रत्येक २–२ पल), चीतामूल, पीपरामूल, ओंगा, कचूर, केवाच बीज, शङ्खाहुली, भारङ्गी, गज-पीपल, बला, पोहकरमूल पृथक् पृथक् दो दो पल लेवे। एक बड़े वर्त्तन में हरड़ और जौ को छोड़ शेष औषध को जौकुट कर रखे और उसमें ५ आढक (२० सेर द्रव दुगुना लेने से ४० सेर) (१)जल देवे। फिर हरड़ एवं जौ को ढीली पोटलियों में बांधकर पानी के अन्दर लटका देवे और नीचे से आग देकर पकावे। जब जौ फूट जाय और जल चौथाई बच रहे तब उतार कर हरड़ को अलग कर काढ़े को छान कर रख लेवे। हरड़ को कांटे से खूब बींध ले (जैसा आंवलों को मुरब्बा बनाने के लिये बींधते हैं)। फिर घी और कड़ुवा तेल समभाग ले कुल ८ पल कढ़ाई में चढ़ाकर हरड़ों को कुछ भून ले। फिर ऊपर से रखा हुआ काढ़ा तथा एक तुला (५ सेर) गुड़ उसमें डालकर मन्दाग्नि से पकावे। जब अवलेह पक्व हो जाय तो उतार कर एक कुड़व याने चार पल पिप्पलीचूर्ण मिला देवे और ठण्डा होने पर (२)एक कुड़व शहद भी मिला देवे। इसमें से(३) दो हरड़ खाकर ऊपर से दो तोले लेह चाटे। इससे क्षय-रोग, खांसी, ज्वर, श्वास, हिचकी, बवासीर, अरुचि, पीनस और ग्रहणी को नाश कर शरीर में सलवटों का पड़ना तथा बालों की सफेदी को दूर करता है। यह अवलेह पुरुषों के बल एवं वर्ण को बढ़ाता एवं रसायन है। यह सब रोगों को नष्ट करता है। इसे अगस्त्य मुनि ने बनाया था॥ ३०–३७॥

---

(१) यहां जल ५ आढ़क लिखा है परन्तु इतना जल क्राथ करने में समर्थ नहीं होगा और २॥ गुने जल में क्राथ का कहीं विधान भी नहीं है क्योंकि हरड़, यव एवं ओषधियां मिल-कर २ आढ़क से कुछ अधिक हो जाती हैं तो ५ आढ़क जल क्वाथ नहीं पचा सकता अस्तु चौगुना जल देकर पचाना चाहिये। **द्रवद्वैगुण्यात्** से १० आढ़क जल हो जावेगा तो ओषधि का ठीक पाक हो जावेगा।

(२) मधु इसमें एक कुड़व मिलाने को लिखा है तो कहीं २ मधु आदिकों के लिये कुड़व को दूना करने को भी लिखा है जैसे—

"कुडवेऽपि क चिद् द्वित्वं यथा दन्तीघृते स्मृतम्"।

तथा—**"सर्पिःखण्डजलक्षौद्रतैलक्षीरासवादिषु।**

अष्टौ पलानि कुडवः" इत्यादि।

इससे भी चार पल के स्थान ८ पल का कुड़व दूना हुआ अस्तु मधु ३२ तोला देना चाहिये। परन्तु पीपर के लिये यह मान नहीं है।

(३) इस औषध के भक्षण में हरीतकी दो लिखा है पर लेह के लिये मान नहीं है, पर **"भार्गीगुडादि"** में—

"भक्षयेदभयामेकां लेहस्यार्धपलं लिहेत्।"

ऐसा लिखा है। इस नियम से दो हरड़ पर १ पल लेह हुआ अथवा बलाग्नि विचार कर हरड, लेह दोनों की मात्रा निश्चित करे।

कुटजावलेहोऽर्श- आदिरोगेषु—

कुटजत्वक्तुलां द्रोणे जलस्य विपचेत्सुधीः ।
कषायं पादशेषं च गृह्णीयाद्वस्त्रगालितम् ॥ ३८ ॥
त्रिशत्पलं गुडस्यात्र दत्त्वा च विपचेत्पुनः ।
सान्द्रत्वमागतं ज्ञात्वा चूर्णानीमानि दापयेत् ॥ ३९ ॥
रसाञ्जनं मोचरसं त्रिकटु त्रिफलां तथा । लज्जालुं चित्रकं पाठां बिल्वमिन्द्रयवं त्वचाम् ॥
भल्लातकं प्रतिविषां विडङ्गानि च बालकम् । प्रत्येकं पलसंमानं घृतस्य कुडवं तथा ॥ ४१ ॥
सिद्धशीते ततो दद्यान्मधुनः कुडवं तथा । जयेदेषोऽवलेहस्तु सर्वाण्यर्शांसि वेगतः ॥ ४२ ॥
दुर्नामप्रभवान्रोगानतीसारमरोचकम् । ग्रहणीं पाण्डुरोगं च रक्तपित्तं च कामलाम् ॥ ४३ ॥
अम्लपित्तं तथा शोथं कार्श्यं चैव प्रवाहिकाम् ।
अनुपाने प्रयोक्तव्यमाजं तक्रं पयो दधि । घृतं जलं वा जीर्णे च पथ्यभोजी भवेन्नरः ॥ ४४ ॥

एक तुला कुड़े की छाल लेकर एक द्रोण जल में पकावे । जब जल चौथाई मात्र रह जावे तब उतार कर छान लेवे । फिर इस काढ़े में ३० पल गुड़ देकर पुनः पाक करे । जब अवलेह पाक हो जाय तब रसौत, मोचरस, त्रिकुटा, त्रिफला, लजालू, चीतामूल, पाठा, बेलगिरी, इन्द्रजौ, दालचीनी, शुद्ध भिलावे, अतीस, वायविडंग और नेत्रवाला प्रत्येक का चूर्ण एक एक पल एवं घी एक कुडव (१६ तोला) डाल कर खूब चलाकर उतार लेवे । ठंडा होने पर उसमें शहद भी एक कुड़व मिला कर रख देवे । इस अवलेह को उचित मात्रा में सेवन करने से शीघ्र ही बवासीर, अर्श से उत्पन्न विकार, उदररोग आदि, अतिसार, अरुचि, ग्रहणी, पाण्डुरोग, रक्तपित्त, कामला, अम्लपित्त, शोथ, पतलापन तथा प्रवाहिका नष्ट हो जाते हैं । इसके अनुपान के लिये बकरी का मठा, दूध, दही, घी अथवा जल देवे । औषध जीर्ण होने पर (१) पथ्य पदार्थ भोजन करे तो पूरा पूरा लाभ मिलेगा । दवा पेट में रहते ही भोजन करने से अथवा पेट में खाना रहते हुए दवा खाने से रोग की शांति होने की बात तो दूर है अन्य उपद्रव और उठ खड़े होते हैं ॥ ३८–४४ ॥

कुटजाष्टकाख्यवलेहो- ऽतीसारादौ—

कुटजत्वक्तुलामार्द्रां द्रोणनीरे विपाचयेत् ।
पादशेषं शृतं नीत्वा चूर्णान्येतानि दापयेत् ॥ ४५ ॥
लज्जालुर्धातकी बिल्वं पाठा मोचरसस्तथा । मुस्तं प्रतिविषा चैव प्रत्येकं स्यात्पलं पलम् ।
ततस्तु विपचेद्भूयो यावद्दर्वीप्रलेपनम् । जलेन च्छागदुग्धेन पीतो मण्डेन वा जयेत् ।
सर्वातिसारान्घोरांस्तु नानावर्णान्सवेदनान् ।
असृग्दरं समस्तं च सर्वार्शांसि प्रवाहिकाम् ॥ ४८ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायां मध्यमखण्डेऽवलेहकल्पननामाऽष्टमोऽध्यायः ।

---

(१) औषध सेवन में लिखा है औषध जीर्ण होने पर पथ्य भोजन करने को, सो अत्युत्तम है जैसे कहा है ।
"औषधशेषे भुक्तं पीतं तथौषधं सशेषेऽन्ने । न करोति गदोपशमं प्रकोपयत्यन्यरोगांश्च ॥"

कुड़े की छाल गीली ही एक तुला (५ सेर) लेकर एक द्रोण जल में पाक करे। जब चौथाई जल बचे तो उतार छान कर उसमें लजालू, धाय के फूल, बेलगिरी, पाठा, मोचरस, नागरमोथा, अतीस, प्रत्येक का एक एक पल चूर्ण डालकर पुनः पकावे। जब कलछे में लिपटने वाला हो जाय तो उतार कर रख ले। इसकी उचित मात्रा जल के साथ, बकरी के दूध के साथ अथवा मण्ड के साथ पीने से अनेक रंग के घोर कष्टदायक अतिसार, सब प्रकार के प्रदर, सब अर्श तथा पेचिश नष्ट हो जाते हैं ॥ ४५-४८ ॥

इति श्रीप्रयागदत्तशर्मायुर्वेदाचार्यकृतायां सुबोधिनीनामिकायां श्रीशार्ङ्गधरभाषा-टीकायां मध्यखण्डेऽवलेहकल्पनानामाऽष्टमोऽध्यायः समाप्तः ॥ ८ ॥

अथ स्नेहकल्पनानाम—

नवमोऽध्यायः ।

घृततैलकल्पना—**कल्काच्चतुर्गुणीकृत्य घृतं वा तैलमेव वा ।**
चतुर्गुणे द्रवे साध्यं तस्य मात्रा पलोन्मिता ॥ १ ॥

अब घी तेल आदि का साधन कहते हैं—बहुधा कल्क और द्रव में तैल-घृत साधन किये जाते हैं सो जहां परिमाण न कहा हो वहां का (१)सामान्य नियम बताते हैं-कल्क से स्नेह चौगुना ले और स्नेह से चौगुना द्रव-जल काथादि देकर घी तेल को साधे। इस तरह सधे स्नेह की मात्रा सामान्यतः १ पल की है।

विमर्श—पर यह सब जगह आजकल प्रयुज्यमान नहीं है। वर्तमान समय में तो बलाबल के अनुसार १ तोले की मात्रा काफी है। इसके लिये घृत-तैल आदि मूर्च्छित (२)कर लिये जाते हैं।

---

(१) **स्नेह कल्पना में** एक और सामान्य परिभाषा है जैसे—

"कल्काच्चतुर्गुणः स्नेहः स्नेहात्काथश्चतुर्गुणः ।
काथाच्चतुर्गुणं वारि काथः क्काथ्यसमो मतः ॥

इस परिभाषा को या प्रथम, द्वितीय श्लोक को साधारण जगह ही काम लेने का विधान मानते हैं जैसे—

"स्नेहभेषजतायानां प्रमाणं यत्र नेरितम् । तत्रायं विधिरास्थेयो निर्दिष्टे तत्तदेव तु॥ अनुक्तद्रवकार्ये तु सर्वत्र सलिलं मतम् । कल्कक्काथावनिर्देशे गणात्तस्मात्प्रयोजयेत्॥

परन्तु विशेष में भी वर्तते हैं जैसे **वासाघृत** वा **बलाऽऽदि घृत** में कहा है—

'अत्राप्यष्टगुणैस्तोयैः क्वथितं क्काथदुग्धयोः ।
प्रत्येकं द्विगुणो भागो भिषक् सर्पिषि निक्षिपेत् ॥"

अतः जहां जैसा लिखा हो वैसा करना चाहिये ।

(२) घृततैल-मूर्च्छनविधि यहां नहीं है पर प्रसङ्गवश दिया जाता है—

घृतमूर्च्छनविधिः—**"पथ्याधात्रीबिभीतैर्जलधररजनीमातुलुङ्गद्रवैश्च**

पर इस ग्रन्थ में उसका विधान नहीं है क्योंकि यह एक साधारण प्रचलित बात होने के कारण आचार्य ने इसे लिखने की जरूरत नहीं समझी मूर्च्छनविधि **'वैद्यक-परिभाषा-प्रदीप'** से देख लेवें ॥ १ ॥

स्नेहसाधनार्थं क्वाथ-परिभाषा— **निक्षिप्य क्वाथयेत्तोयं क्वाथ्यद्रव्याच्चतुर्गुणम् ।**
पादशिष्टं गृहीत्वा च स्नेहं तेनत्र साधयेत् ॥ २ ॥

स्नेह-साधन के लिये काढ़ा बनाने की विधि यह है कि-क्वाथ्यद्रव्य में चौगुना जल मिला औटावे। जब चौथाई जल शेष रहे तब उतार छानकर उसी काढ़े से स्नेह का साधन करे ॥२॥

मृदुद्रव्यादौ क्वथने जल-प्रमाणम्— **चतुर्गुणं मृदुद्रव्ये कठिनेऽष्टगुणं जलम् ।**
तथा च मध्यमे द्रव्ये दद्यादष्टगुणं पयः ॥
अत्यन्तकठिने द्रव्ये नीरं षोडशकं मतम् ॥ ३ ॥

ऊपर का नियम मिलितद्रव्यों का सामान्य नियम है। यहां विशेष कहते हैं—(१)कोमल

द्रव्यरेतैः समस्तैः पलकपरिमितैर्मन्दमन्दानलेन ।
आज्यप्रस्थं विफेनं परिचपलगतं मूर्च्छयेद् वैद्यराज-
स्तस्मादामोपदोषं हरति च सकलं वीर्यवत्सौख्यदायि ॥

इसमें पाकार्थ जल ४ सेर छोड़ना चाहिये और पथ्याऽऽदि को चूर्ण कर डालना चाहिये।

घृततैलादिशोधनम्— **"स्नेहो वारिसमं नीत्वा पाचयेद् मृदुवह्निना ।**
पञ्चपल्लवकल्केन द्वात्रिंशांशेन संयुतम् ॥
किञ्चित् सरसगर्भेण वस्त्रपूतं प्रकल्पयेत् । इत्येतद्दुष्टगन्धादिदोषस्तैलाद्विमुच्यते ॥
निर्दोषकरणादेतत्कृत्वा तैलं विपाचयेत् ।

तैलमूर्च्छनविधिः— **तलं कृत्वा कटाहे दृढतरविमले मन्दमन्दानले तत्**
पक्वं निष्फेनभावं गतमिह हि यदा शैत्यभावं समेत्य ।
मञ्जिष्ठारात्रिलोध्रैर्जलधरनलिकैः सामलैः साक्षपथ्यः-
सूचीपुष्पाङ्घ्रिनीरैरुपहितमथितस्तैलगन्धं जहाति ॥

अन्यच्च— **तैलस्येन्दुकलांशिकेन विकसा ग्राह्या तु मूर्च्छाविधौ,**
ये चान्ये त्रिफलापयोदरजनीह्रीबेरलोध्रान्विताः ।
सूचीपुष्पवटावरोहनलिकास्तस्याथ पादांशिकाः-
पाच्यास्तलजगन्धदोषहृतये कल्कीकृतास्तद्विदा ॥

पाकार्थ जल ४ सेर, तेल १ सेर, मजीठ ५ तोला, अन्यान्य द्रव्य २-२तोला लेवे। इसमें जल भी ठण्डा होने ही पर छोड़े, ओषधियों के साथ पुनः पाक करे, जब थोड़ा जल शेष रहे तब उतार लेवे। घृत, तैल इस तरह मूर्च्छित कर तब काम में लाना चाहिये।

(१) **मृदु द्रव्य से** गुडूची, कुटकी, शतावरी, वासा, आमलकी आदि जानना चाहिये।

द्रव्यों का काढ़ा बनाने के लिये चौगुना जल, (१)कठिन द्रव्य के लिये आठगुना एवं मध्यम द्रव्य के लिये भी आठगुना तथा (२)अत्यन्त कठिन द्रव्यके लिये सोलह गुना जल डालकर पकावे।

विमर्श—और (३)एक गुना शेष रहने पर उतार ले। जहां पर सब तरह के द्रव्य मिलित हों वहां पर मध्यम मान याने आठगुना जल लेकर पकाना व्यवहार-सिद्ध है ॥ ३ ॥

मतान्तरे परिमाण विशेषः— **कर्षादितः पलं यावत्क्षिपेत्षोडशकं जलम् ॥ ४ ॥**
तदूर्ध्वं कुडवं यावद्दद्यादष्टगुणं पयः ।
प्रस्थादितः क्षिपेन्नीरं खारीं यावच्चतुर्गुणम् ॥ ५ ॥

एक कर्ष से एक पल पर्यन्त द्रव्य का क्वाथ सोलह गुना जल में, उससे ऊपर कुड़व तक अठगुने जल में तथा प्रस्थ से लेकर खारी पर्यन्त द्रव्य में चौगुना जल देकर क्वाथ सिद्ध करे।

विमर्श—यद्यपि यह मतान्तर में कहा गया है पर है यह बड़े मार्के की बात, यथा-यदि एक कर्ष द्रव्य का काढ़ा करना हो और उसमें सामान्य नियम से चौगुना याने ४ कर्ष जल देकर पकाया जाय तो दो ही चार मिनटों में जल सूख जायगा और द्रव्य का सार उसमें न आसकेगा। फलतः काढ़ा नहीं बनेगा इससे १६ गुना जल देना ठीक होगा। इसी तरह और मानों को भी समझें ॥ ४-५ ॥

अम्ब्वादिभिर्यत्र स्नेहसाधनं तत्र कल्कप्रमाणम्—

अम्बुक्वाथरसैर्यत्र पृथक्स्नेहस्य साधनम् । कल्कस्यांशं तत्र दद्याच्चतुर्थं षष्ठमष्टमम् ॥६॥

जल, काढ़ा, स्वरस में से किसी एक से जब स्नेह का साधन होता है तब क्रम से कल्क स्नेह का चतुर्थांश, षष्ठांश एवं अष्टमांश डाले।

विमर्श—याने यदि सिर्फ जल में साधन करना है तो कल्क स्नेह की चौथाई लेवे, यदि काढ़ा में हो तो छठा भाग एवं यदि स्वरस में हो तो आठवां भाग लेवे क्योंकि ये द्रव भारी होते हैं और इनके अन्दर द्रव्य भी रहता है जो जलांश के सूखने पर कल्क में मिलकर प्रायः चौथाई कर ही देता है, इसी लिये यह नियम है। पूर्वोक्त नियम का कोई विरोध नहीं ॥ ६ ॥

दुग्धादिपाकपरिभाषा-**दुग्धे दध्नि रसे तक्रे कल्को देयोऽष्टमांशकः ।**
कल्कस्य सम्यक्पाकार्थं तोयमत्र चतुर्गुणम् ॥ ७ ॥

यदि दूध, दही, मांसरस, मठा में से किसी एक से स्नेह साधना हो तो भी कल्क स्नेह का आठवाँ भाग देवे पर इस अवस्था में कल्क का पाक ठीक ठीक हो, जिससे स्नेह उसका

---

(१) **कठिन और मध्य से**—दशमूल, निम्बत्वक्, लोध्र, भारङ्गी आदि जानना चाहिये।

(२) **अत्यन्त कठिन से**—देवदारु, पद्मकाठ, दारुहरदी आदि जानना चाहिये।

(३) इन्हीं द्रव्यों में चौगुना, अठगुना और सोलहगुना जल क्रम से डाले (मृदु में चौगुना, कठिन तथा मध्य में अठगुना, अत्यन्त कठिन में सोलहगुना) परन्तु अवशिष्ट जल प्रत्येक में चतुर्थांश ही रहेगा।

सार(१)ग्रहण करे–इसके लिये स्नेह से चौगुना जल भी देवे क्योंकि इन द्रव्यों में जलांश कम होता है ॥ ७ ॥

स्नेहे पञ्चाधिकद्रव-व्यवस्था— **द्रवाणि यत्र स्नेहेषु पञ्चादीनि भवन्ति हि ।**
तत्र स्नेहसमान्याहुर्यथापूर्वं चतुर्गुणम् ॥ ८ ॥

जहाँ द्रव (२)पाँच या उससे अधिक होते हैं याने जहां दूध, दही, काढ़ा, गोमूत्र प्रभृति

---

(१) जब किसी पदार्थ का सार ग्रहण किया जाता है तो बिना जल की सहायता नहीं ग्रहण होता है, जल द्रव्य को द्रवीभूत कर स्नेहांश में पचा देता है और स्वयं भी पच कर गुणवान् बना देता है, जैसे कहा है —

"**स्वरसक्षीरमङ्गल्यैः पाको यत्रेरितः क्व चित् । जलं चतुर्गुणं तत्र वीर्याधानार्थमावपेत् ॥**
न मुञ्चति रसं द्रव्यं क्षीरादिभिरुपस्कृतम् ।
सम्यक् पाको न जायेत तस्मात्तोयं चतुर्गुणम् ॥

अब घृत तैलादिकों के साधन करने के समय को कहते हैं कि–कैसा स्नेह कै दिन में प्रस्तुत करना चाहिये ।

क्षीरे द्विरात्रं स्वरसे त्रिरात्रं तक्रारनालादिषु पञ्चरात्रम् ।
स्नेहं पचेद् वैद्यवरः प्रयत्नादित्याहुरेके भिषजः प्रवीणाः ॥
द्वादशाहन्तु मूलानां वल्लीनां क्रममेव च ।
एकाहं व्रीहिमांसानां पाकं कुर्याद् विचक्षणः ॥

यदि केवल दूध ही स्नेहसाधन के द्रव की जगह लिया जाना लिखा हो तो दूध स्नेह से चौगुना तथा अन्य द्रव के साथ हो तो बराबर लेना चाहिये । जैसे—

"**अत्र द्रवान्तरानुक्तौ क्षीरमेव चतुर्गुणम् । द्रवान्तरेण योगे हि क्षीरं स्नेहसमं भवेत्**"॥

(२) १, २, ३, ४, द्रव का प्रमाण इस प्रकार भी दिया गया है—

एकद्वित्रिद्रवद्रव्यैः कुर्यात् स्नेहाच्चतुर्गुणम् । क्षीरं स्नेहसमं दद्याच्चतुर्भिश्च चतुर्गुणम्॥

जब चार से अधिक पांच हो तब समान देना चाहिये। और भी कई मत हैं जो लिखरहे हैं—

तैलस्यार्धप्रमाणेन दद्यादिक्षुरसं बुधः । तथा मांसरसं चार्धं दत्वा स्नेहं विपाचयेत् ॥

अन्यच्च—**सकृन्मांसौषधिरसं मूत्रसौवीरकादिकम् ।**
स्नेहतुल्यं दधि क्षीरं जलं चैव चतुर्गुणम् ॥

कहीं—**धात्रीफलरसैः सम्यग् द्विगुणैः साधितं हविः ।**
द्विक्षीरं विपचेत्सर्पिर्मालतीकुसुमैः सह ॥

कहीं—**षड्गुणेन च तक्रेण सिद्धं तैलं ज्वरान्तकृत् ।**

कहीं—**तलं दशगुणे सिद्धे भृङ्गराजरसे शुभे ॥**

ऐसा २ दिया गया है । यह कई मत हुआ । अतः जिस योग में जितना लिखा हो उसी मान से देना चाहिये, जहाँ नहीं लिखा हो वहाँ साधारण मान से ही (**स्नेहाच्चतुर्गुणो-द्रवः**) काम करना चाहिये ।

पाँच या उससे अधिक द्रवों में स्नेहपाक करना हो तो वहां प्रत्येक द्रव स्नेह के समान ही ग्रहण करे तथा उससे कम द्रव हों याने ४-३-२ वा एक द्रव हो तो वहां कुल द्रव मिलाकर स्नेह का चौगुना लेवे, यथा यदि एक द्रव हो तो स्नेह से चौगुना लेवे, यदि दो हों तो प्रत्येक दुगुना लेवे यदि तीन हों तो तीनों को मिलाकर चौगुना लेवे आदि।

विमर्श—इस नियम में बड़ा ही मतभेद तथा अनेक वादविवाद हैं पर असली नियम यह जानें कि **"जब एक ही पाक में द्रव पदार्थ पाँच से कम हों तो सर्वमिलित चौगुना एवं पाँच वा उससे अधिक हों तो प्रत्येक स्नेहतुल्य लेवे"**। यह जहां मान न कहा हो वहां के लिये है। जहां जैसा मान कहा हो वहां वैसा ही लेवे ॥ ८ ॥

केवलद्रव्यस्य स्नेहपा- **द्रवेण केवलेनैव स्नेहपाको भवेद्यदि ।**
कार्थं मानम्— **तत्राम्बुपिष्टः कल्कः स्याज्जलं चात्र चतुर्गुणम् ॥ ९ ॥**

जहाँ पर सिर्फ द्रव्य ही से स्नेह का साधन करना लिखा हो, कोई द्रव देना न लिखा हो वहाँ द्रव्य को जल देकर पीसना तथा स्नेह से चौगुना जल देकर स्नेह का पाक करना ॥९॥

केवलक्वाथस्य स्नेहपा- **क्वाथेन केवलेनैव पाको यत्रेरितः क्वचित् ।**
कार्थं मानम्— **क्वाथ्यद्रव्यस्य कल्कोऽपि तत्र स्नेहे प्रयुज्यते ॥ १० ॥**

जहाँ सिर्फ क्वाथ से ही स्नेहसाधन लिखा हो वहाँ क्वाथ्यद्रव्य का कल्क भी देकर (१)पाक किया जाता है।

विमर्श—याने पहले स्नेह से चौगुना काढ़ा देकर सिद्ध कर लिया, फिर दूसरे दफे क्वाथ्य द्रव्य का कल्क स्नेहका चतुर्थांश एवं जल स्नेहसे चौगुना देकर पाक करना चाहिये १०

कल्कहीनस्नेहपाकविधिः—**कल्कहीनस्तु यः स्नेहः स साध्यः केवले द्रवे ॥ ११ ॥**

जहां पर स्नेह का साधन कल्क के विना सिर्फ द्रव में ही करने का आदेश हो वहां स्नेह से चौगुना द्रव लेकर ही स्नेह सिद्ध करे ॥ ११ ॥

पुष्पकल्कस्नेह- **पुष्पकल्कस्तु यः स्नेहस्तत्र तोयं चतुर्गुणम् ।**
पाकविधिः— **स्नेहे स्नेहाष्टमांशश्च पुष्पकल्कः प्रयुज्यते ॥ १२ ॥**

जहां स्नेह का साधन (२)पुष्प कल्क याने फूलों के कल्क से साधना हो वहां स्नेह से

---

(१) यहाँ स्नेह का दो पाक हो जाता है—**पहला** स्नेह में क्वाथ देकर पाक, **दूसरा** कल्क और जल देकर, तो इसमें जितना कल्क देना चाहिये उसे लिखते हैं—

अम्बुक्वाथरसैर्यत्र पृथक् स्नेहस्य साधनम् । कल्कस्यांशं तत्र दद्याच्चतुर्थं षष्ठमष्टमम्॥

स्नेहसाधनार्थं क्वाथ्य द्रव्य का प्रमाण (मान) द्रव्य के मृदु, मध्य, कठिन वीर्यों का प्रभावादि देखकर स्थिर करना चाहिये।

(२) इस योग में पुष्पकल्क देने को लिखा है तो यहां नागकेसर, कुङ्कुम, लवङ्ग, दमनक, सुरपुष्पक, चम्पक, उत्पल, पुण्डरीक, केतकी, जाती, कुसुम्भ प्रभृतिक पुष्प जानना चाहिये। कोई २ **"पुष्पकल्कः प्रयुज्यते"** इस स्थान पर **"अत्र कल्कः प्रयुज्यते"** ऐसा पाठ

जल चौगुना देकर सिद्ध करे एवं स्नेह में उसका आठवां भाग फूलों का कल्क प्रदान करे ॥१२॥

स्नेहसिद्धलक्षणम्— **वर्त्तिवत्स्नेहकल्कः स्याद्यदाऽङ्गुल्या विमर्दितः ।**
शब्दहीनोऽग्निनिक्षिप्तः स्नेहः सिद्धो भवेत्तदा ॥ १३ ॥

जब स्नेह में दिया हुआ कल्क बाहर कलछे में आने लायक हो जाय तब बाहर निकाल कर अंगुलियों से मर्दन करे। मर्दन करने से कल्क जब वत्ती जैसी लम्बी हो जाय तथा थोड़ा लेकर आग पर डालने से शब्दहीन रहे 'चटचट' न करे तो स्नेह सिद्ध हुआ समझे। अर्थात् उसे आग से उतार ले ॥ १३ ॥

घृततैलपाकयोः सिद्धौ **यदा फेनोद्गमस्तैले फेनशान्तिश्च सर्पिषि ।**
स्वरूपनिर्देशः— **गन्धवर्णरसोत्पत्तिः स्नेहः सिद्धस्तदा भवेत् ॥ १४ ॥**

दूसरे भी लक्षण ये हैं कि—जब तैल में झाग उठने लगे और घी में झाग उठकर लीन हो जाय तथा स्नेह में जिन द्रव्यों तथा द्रवों से वह पकाया गया हो उनके गंध, रंग तथा स्वाद आ जायँ तो स्नेह को ठीक सिद्ध हुआ समझ कर उतार ले।

विमर्श—किसी एक लक्षण से ही संतोष न करले, सबसे परीक्षा करले फिर निश्चय करे१४

स्नेहपाकस्य भेदा- **स्नेहपाकस्त्रिधा प्रोक्तो मृदुर्मध्यः खरस्तथा ।**
स्तल्लक्षणानि च- **ईषत्सरसकल्कस्तु स्नेहपाको मृदुर्भवेत् ॥ १५ ॥**
मध्यपाकस्य **सिद्धिश्च कल्के नीरसकोमले । ईषत्कठिनकल्कश्च स्नेहपाको भवेत्खरः ।**
तदूर्ध्वं दग्धपाकः स्याद्दाहकृन्निष्प्रयोजनः ॥ १६ ॥

स्नेह का पाक तीन तरह का होता है—**मृदु, मध्य और खर।** जब स्नेहपाक करते करते द्रवांश सूख कर कल्क में बहुत ही कम रह जाता है याने कल्क को निचोड़ने से बहुत ही कम रस निकलता है तो उस समय **मृदुपाक** होता है। जब वह थोड़ा सा रस भी सूख जाता है और कल्क को निचोडने से भी द्रव नहीं दीखता पर कल्क मुलायम होता है तब **मध्यपाक** होता है। इससे भी जब और आंच दी जाती है तो कल्क कठिन होने लगता है। जब कुछ कठिन हो जाता है तब **खरपाक** होता है। इससे भी और आँच देने से **दग्धपाक** होता है याने इससे आगे आँच देने पर कल्क निश्चय ही जल जाता है। यह दग्धपाक का स्नेह दाहकारक अतः निष्प्रयोजन होता है याने कोई काम का नहीं होता ॥ १५-१६ ॥

आमपाकस्नेहगुणाः— **आमपाकश्च निर्वीर्यो वह्निमान्द्यकरो गुरुः ॥ १७ ॥**

आम पाकः—या कच्चा पाक का स्नेह पूर्ण पाक न होने के कारण उसमें औषधों का वीर्य नहीं आया रहता, इस लिये उसके सेवन से पूरा गुण नहीं मिलता तथा पीने से यह आमदोष-युक्त होने से अग्नि को मन्द कर देता है एवं भारी होता है। इस लिये यह त्याज्य है ॥ १७ ॥

करते हैं और पुष्प के पत्र का कल्क प्रक्षेप करते हैं, जैसे कहा है—
गन्धनिर्यासपुष्पाणां सिद्धशीतेऽवतारिते । प्रक्षेपो गन्धवृद्ध्यर्थं पत्रकल्कं तु तद्विदुः ॥

मृद्वादिपाकस्नेहानां नस्यार्थं स्यान्मृदुः पाको मध्यमः सर्वकर्मसु ।
विषयाः— अभ्यङ्गार्थं खरः प्रोक्तो युञ्ज्यादेवं यथोचितम् ॥ १८ ॥

मृदुपाक का स्नेह सौम्य होता है और नस्य लेने या नाक से चढ़ाने के काम में आता हैं। **मध्यपाक** का स्नेह सब कामों में याने नस्य, मालिश, पान, बस्ति आदि सब कर्मों में व्यवहृत होता है। **खरपाक** का स्नेह सिर्फ शरीर के ऊपर मालिश करने या लगाने के काम में आता है। इन विभिन्न पाक के स्नेहों को जहां जो उपयुक्त हो लगावे ॥ १८ ॥

घृतादिसाधने काल- घृततैलगुडादींश्च साधयेन्नैकवासरे ।
निर्देशः— प्रकुर्वन्त्युषिता ह्येते विशेषाद् गुणसञ्चयम् ॥ १९ ॥

घी तेल आदि स्नेह एवं गुड़ आदि अवलेहों को एक ही दिन में सिद्ध न कर लेवे याने अधिक आँच देकर एक ही दिन में द्रवांश को सुखाकर स्नेहादिक सिद्ध न कर लेवे क्योंकि उषित होने से याने बासी रखे जाने से इनमें गुणों की वृद्धि होती है।

विमर्श—खुलासा यह है कि औषधों में से जिन अंशों का ग्रहण करके घृत, तैल, अवलेहादि गुणाढ्य बनते हैं उनका ग्रहण इतने कम समय में नहीं हो सकता। विशेषतः औषधों का वीर्य तेज आंच के कारणसे नष्ट हो जाता है तथा उनमें रहने वाले उड़नशील पदार्थ (Volatiles) इतनी अधिक उष्णता पर उड़ जाते हैं। अतः इनकी कमी से घृतादिक कभी भी गुणाढय नहीं हो सकते। इसीसे आचार्यों ने इन्हें बासी रखकर याने कम से कम एक रात्रि रहने देकर सिद्ध करने को कहा है क्योंकि समय अधिक होने से आंच भी मन्दी ही देनी पड़ेगी तथा मन्दी आंच एवं अधिक समय मिलने से गुणों का ग्रहण भी अच्छी तरह हो सकेगा। बासी रखने का समय शास्त्रों में इस प्रकार निर्दिष्ट है—दूध के साथ दो रात, स्वरस के साथ तीन रात, मठा, कांजी आदि के साथ पाँच रात, जड़, छाल एवं लतादि के कल्क तथा काढ़े के साथ १२ रात एवं व्रीहि तथा मांसरस आदि के साथ एक दिन में पाक कर लेवै क्योंकि ये दूसरे दिन रहने से विकृत हो जाते हैं। अधिकांश वैद्य इतना झंझट नहीं करते पर घृत, तैल आदि को पूर्ण गुणयुक्त बनाने के लिये इस नियम का पालन होना नितान्त जरूरी है, इसीसे हमने इसे इतना खोल कर लिख दिया है ॥ १९ ॥

अथ घृतकल्पना ।

क्षीरषट्पलघृतं पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः ।
विषमज्वरादौ— ससैन्धवैश्च पलिकैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥
क्षीरं चतुर्गुणं दत्त्वा तद् घृतं प्लीहनाशनम् । विषमज्वरमन्दाग्निहरं रुचिकरं परम् ॥२०

पीपर, पिपरामूल, चाभ, चीतामूल, सोंठ और सेंधानमक प्रत्येक एक एक पल लेवे और जल से पीसकर लुगदी बना लेवे। इस लुगदी को एक बड़ी कढ़ाई में रख ऊपर से एक प्रस्थ (६४ तोला) घी(१) एवं ४ प्रस्थ दूध तथा कल्क के पाकार्थ ४ प्रस्थ जल भी देकर उसे आग

(१) कोई भी स्नेहादि बनाना हो तो उसे यथाविधि मूर्च्छनादि क्रिया करके ही सिद्ध करना चाहिये। अनुपानके लिये दूध, यूष, क्राथादि यथाविधि देना चाहिये।

पर चढ़ाकर धीरे धीरे पाक कर दो दिन में पाक सिद्ध करे। यह घी तिल्ली, विषमज्वर, मन्दाग्नि तथा अरुचि को नष्ट करता है।

विमर्श—प्रस्थ ६४ तोले का होता है पर आज कल व्यवहार में १ सेर लिया जाता है इसलिये जहां प्रस्थ १ सेर का ले वहां पल भी १ छटांक या ५ तोले का लेवे ॥ २० ॥

चाङ्गेरीघृतमतीसारग्रहण्योः—

पिप्पली पिप्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिप्पली ।श्वदंष्ट्रा नागरं धान्यं पाठा बिल्वं यवानिका
द्रव्यैश्च पलिकै रेतैश्चतुःषष्टिपलं घृतम् । घृताच्चतुर्गुणं दद्याच्चाङ्गेरीस्वरसं बुधः ॥ २२ ॥
तथा चतुर्गुणं दत्त्वा दधि सर्पिर्विपाचयेत् । शनैः शनैर्विपक्तव्यं चाङ्गेरीघृतमुत्तमम् ॥२३॥
तद्घृतं कफवातघ्नं ग्रहण्यर्शोविकारनुत् । हन्त्यानाहं गुदभ्रंशं मूत्रकृच्छ्रं प्रवाहिकाम् २४

पीपर. पीपरामूल, चीतामूल, गजपीपल, गोखरू, सोंठ, धनियां, पाठा, वेलगिरी और अजवायन प्रत्येक एक एक पल ले कल्क करे। इस कल्क से पूर्ववत् ६४ पल (४ प्रस्थ) घी, चौगुना (१६ प्रस्थ) चांगेरी का स्वरस तथा चौगुना (१६ प्रस्थ) दही (एवं पाकार्थ जलभी १६ प्रस्थ) देकर धीरे धीरे मन्दाग्नि में पाक करें। यह उत्तम **चांगेरीघृत** है। यह घृत कफवात, ग्रहणी, बवासीर, आनाह, गुदभ्रंश, मूत्रकृच्छ्र और प्रवाहिका को नष्ट करता है ॥ २१–२४ ॥

मसूरघृतमतीसारादौ—**मसूराणां पलशतं नीरद्रोणे विपाचयेत् ।**
पादशेषं शृतं नीत्वा दत्त्वा बिल्वपलाष्टकम् ॥ २५ ॥
घृतप्रस्थं पचेत्तेन सर्वातीसारनाशनम् ।
ग्रहणीं भिन्नविट्कं च नाशयेच्च प्रवाहिकाम् ॥२६॥

मसूर १०० पल (५ सेर) लेकर एक द्रोण या १६ सेर जल देकर पकावे। जब चार सेर जल शेष रहे उतार कर छान लेवे। फिर ८ पल बेलगिरी का कल्क देकर एक प्रस्थ घृत कढ़ाई में रख इस यूष को देकर पाक करे। घृत सिद्ध होने पर उतार कर छानकर रख लेवे। इसे उपर्युक्त मात्रा में (प्रायः १ तोला) प्रयोग करने से सब प्रकार के अतिसार, (१)ग्रहणी, मलभेद तथा प्रवाहिका रोग नष्ट हो जाता है।

विमर्श—इन रोगों में विशेष अवस्था पर ही घृतप्रयोग किया जाता है, हर अवस्था में नहीं। यथा—जब अतिसार रोगी थोड़ा थोड़ा मल निकालता हो, शूल चलता हो तथा अग्नि तेज हो तो दीपन एवं संग्राहक औषधों से सिद्ध या युक्त घृत पान कराना चाहिये, जैसे **मसूरघृत** में मसूर दीपन तथा वेलगिरी संग्राहक है ॥ २५–२६ ॥

कामदेवघृतं रक्तपित्तादौ— **अश्वगन्धा तुलैका स्यात्तदर्धो गोक्षुरः स्मृतः ।**
बलाऽमृता शालिपर्णी विदारी च शतावरी ॥ २७ ॥

---

(१) अतिसार की किस अवस्था में घृत का प्रयोग करना चाहिये उसे लिखते हैं—
सशूलं क्षीणवर्चा यो दीप्ताग्निरतिसार्यते । स पिबेद्दीपनैर्युक्तं सर्पिः संग्राहकैः सह ॥

(१)अश्वत्थस्य च शुङ्गानि पद्मबीजं पुनर्नवा। काश्मर्याश्च फलं चैव माणबीजं तथैव च॥२८
पृथग्दशपलान् भागान् चतुर्द्रोणेऽम्भसि पचेत्।द्रोणशेषे रसे तस्मिन् पचेच्चैव घृताढकम्
मृद्वीका पद्मकं कुष्ठं पिप्पली रक्तचन्दनम्। पत्रकं नागपुष्पं च आत्मगुप्ताफलं तथा॥३०
नीलोत्पलं सारिवे द्वेजीवनीयो गणस्तथा। पृथक् कर्षसमा भागाः शर्करायाः पलद्वयम्॥३१
रसश्च पौण्ड्रकेक्षूणामाढकक्कं समाहरेत्। चतुर्गुणेन पयसा घृताढकं विपाचयेत्॥ ३२॥
घृतमेतन्निहन्त्याशु रक्तपित्तमुरःक्षतम्। हलीमकं पाण्डुरोगं वर्णभेदं स्वरक्षयम्॥ ३३॥
मूत्रकृच्छ्रमुरोदाहं पार्श्वशूलं च नाशयेत्। एतत् सर्पिः प्रयोक्तव्यं बह्वन्तःपुरवासिनाम्॥३४
स्त्रीणां चैवाप्रजातानां दुर्बलानां च देहिनाम्। श्रेष्ठं बलकरं वर्ण्यं हृद्यं पुष्टिरसायनम्॥३५
ओजस्तेजस्करं हृद्यमायुष्यं प्राणवर्द्धनम्। सम्बर्द्धयति शुक्रस्य पुरुषं दुर्बलेन्द्रियम्॥३६॥
सर्वरोगविनिर्मुक्तो पयःसिक्तो यथा द्रुमः। कामदेव इति ख्यातं सर्पिरुक्तं सहागुणम्॥३७

असगन्ध १०० पल (५ सेर), गोखरू पञ्चाङ्ग ५० पल (२½ सेर), शतावर, विदारी-कन्द, सरिवन, बरियारे की जड़, गिलोय, पीपल के पत्राङ्कुर, कमलगट्टा, सांठी, गम्भारी का फल, छिलके हीन उड़द-प्रत्येक १०-१० पल (आध सेर) एकत्र ले कुछ कुछ कूटकर ४ द्रोण जल में (द्रव पदार्थ होने से ८ द्रोण याने १२८ सेर) पकावे। जब चौथाई जल शेष रह जावे तब उतार कर छान लेवे। फिर एक आढ़क (४ सेर) घी इस काढ़े के साथ पकावे। जब काढ़ा शेष होने पर आवे तब मुनक्के, पद्माख, कूठ, पिप्पली, लालचन्दन, तेजपात, नागकेसर, कौंच के बीज, नीलोत्पल, काला अनन्तमूल, सफेद अनन्तमूल तथा जीवनीयगण—(जीवन्ती, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, काकोली, क्षीरकाकोली, मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक, मुलेठी) प्रत्येक का एक एक कर्ष भाग लेकर कल्क करे। इस कल्क को घृत में डालकर ऊपर से दो पल चीनी, पौंडा गन्ना का रस एक आढक (४ सेर) तथा गाय का दूध ४ आढ़क (१६ सेर) देवे और धीरे धीरे पाक करे। पाक हो जाने पर उतार कर घी को छान लेवे। यह घृत शीघ्र ही रक्त-पित्त, उरःक्षत, हलीमक, पाण्डुरोग, वर्णभेद, स्वर का क्षीण हो जाना, मूत्रकृच्छ्र, छाती की जलन, पार्श्वशूल को नष्ट करता है। जिनके अनेक स्त्रियां हों, जिन स्त्रियों के सन्तान न होती हो तथा जो मनुष्य दुर्बल शरीर वाले हों वे इस घृत को सेवन करे। यह घृत श्रेष्ठ, बलकारक,

---

(१) पुनर्नवाऽश्वत्थशुण्ठीकाश्मर्यास्तु फलान्यपि।
पद्मबीजं माषबीजं दद्यादशपलं पृथक्। चतुर्द्रोणेऽम्भसां पक्त्वा पादशेषं श्रृतं नयेत्॥
जीवनीयगणः कुष्ठं पद्मकं रक्तचन्दनम्। पत्रकं पिप्पली द्राक्षा कपिकच्छुफलं तथा॥
नीलोत्पलं नागपुष्पं सारिवे द्वे बले तथा। पृथक्कर्षसमा भागाः शर्करायाः पलद्वयम्॥
रसश्च पौण्ड्रकेक्षूणामाढकैकं समाहरेत्। घृतस्य चाढकं दत्त्वा पाचयेन्मृदुनाऽग्निना॥
घृतमेतन्निहन्त्याशु रक्तपित्तमुरःक्षतम्। हलीमकं पाण्डुरोगं वर्णभेदं स्वरक्षयम्॥
वातरक्तं मूत्रकृच्छ्रं पार्श्वशूलं च कामलाम्। शुक्रक्षयमुरोदाहं कार्श्यमोजःक्षयं तथा॥
स्त्रीणां चैवाप्रजातानां गर्भदं शुक्रदं नृणाम्। कामदेवघृतं नाम हृद्यं बल्यं रसायनम्॥

वर्णकारक, हृदय को हितकारी, पुष्टिकारक तथा रसायन है । ओज और तेज को बढ़ाता, हृदय को बलवान बनाता, उम्र तथा प्राणशक्ति को बढ़ाता, वीर्य को बढ़ाता तथा दुर्बल इन्द्रिय वालों को सबल बनाता है । इस घृत के सेवन से मनुष्य उसी प्रकार बढ़ता है जैसे जल की नित्य सिंचाई से वृक्ष । यह(१) **कामदेव घृत** महागुणकारी है ॥ २७–३७ ॥

पानीयकल्याणकं घृत- **त्रिफला द्वे निशे कौन्ती सारिवे द्वे प्रियङ्गुका ।**
मपस्मारादौ— **शालिपर्णी पृष्टिपर्णी देवदार्व्येलवालुकम् ॥ ३८ ॥**
नतं विशाला दन्ती च दाडिमं नागकेशरम् । नीलोत्पलैला मञ्जिष्ठा विडङ्गं कुष्ठपद्मकम् ३९
जातिपुष्पं चन्दनं च तालीसं बृहती तथा । एतैः कर्षसमैः कल्कैर्जलं दत्त्वा चतुर्गुणम् ४०
घृतप्रस्थं पचेद्धीमानपस्मारे ज्वरे क्षये । उन्मादे वातरक्ते च कासे मन्दानले तथा ॥४१॥
प्रतिश्याये कटीशूले तृतीयकचतुर्थके । मूत्रकृच्छ्रे विसर्पे च कण्डूपाण्ड्वामये तथा ॥४२॥
विषद्वये प्रमेहेषु सर्वथैवोपयुज्यते । बन्ध्यानां पुत्रदं भूतयक्षरक्षोहरं स्मृतम् ॥ ४३ ॥

हरड़, बहेड़ा, आंवला, हलदी, दारुहलदी, रेणुका, सफेद शारिवा, कृष्ण शारिवा, फूल-प्रियङ्गु, शालपर्णी, पृष्ठिपर्णी, देवदारु, एलुवा, तगर पादुका, इन्द्रायण की जड़, दन्ती की जड़, दाड़िम, नागकेसर, नीलोत्पल, इलायची, मजीठ, वायविडङ्ग, कूठ, पद्माख, चमेली के फूल, लाल चन्दन, तालीसपत्र, बड़ी कटेहली, प्रत्येक का एक एक कर्ष लेकर कल्क करे । इस कल्क को देकर एक प्रस्थ घी, ४ प्रस्थ जल डाल कर पकावे । मृगी, ज्वर, क्षयरोग, उन्माद, वातरक्त, खांसी, मन्दाग्नि, जुकाम, कमर का शूल, तिजारी, बुखार, चौथिया बुखार, मूत्रकृच्छ्र, वीसर्प, खुजली, पीलिया, स्थावर और जङ्गम विष तथा प्रमेह को यह हर प्रकार से अच्छा करता है। यह घृत बांझ को सन्तान देने वाला तथा भूत, यक्ष, राक्षस आदि से रक्षा करता है ३८–४३

अमृताघृतं कुष्ठादौ— **अमृताक्वाथकल्काभ्यां सक्षीरं विपचेद् घृतम् ।**
वातरक्तं जयत्याशु कुष्ठं जयति दुस्तरम् ॥ ४४ ॥

गिलोय का यथाविधि काढ़ा बनाकर ४ प्रस्थ लेवे तथा एक पाव गिलोय का कल्क बनावे इनसे एक प्रस्थ घृत, एक प्रस्थ दूध मिलाकर पाक करे। यह घृत पान और अभ्यङ्ग से वातरक्त तथा दुस्तर कुष्ठ को भी नष्ट करता है ।

विमर्श—किसी किसी सम्प्रदाय में इसके तीन पाक करते हैं—**पहला** काढ़े से, **दूसरा** चौगुने दूध से एवं **तीसरा** कल्क तथा चौगुने जल से । यह भी अच्छा है ॥ ४४ ॥

महातिक्तकघृतं वात- **सप्तच्छदः प्रतिविषा शम्याकः कटुरोहिणी ।**
रक्तकुष्ठादौ— **पाठामुस्तमुशीरं च त्रिफला पर्पटस्तथा ॥ ४५ ॥**
पटोलनिम्बमञ्जिष्ठाः पिप्पली पद्मकं शटी । चन्दनं धन्वयासश्च विशाले द्वे निशे तथा ४६
गुडूची सारिवे द्वे च मूर्वा वासा शतावरी । त्रायन्तीन्द्रयवा यष्टी भूनिम्बश्चाक्षभागिकाः ४७

(१) इस कामदेवघृत की मात्रा ।।) भर से १ तोले तक लेना चाहिये । और अनुपान गोदुग्ध लेना चाहिये । बनाने में इसका मानादि भी उपर्युक्त रीति से (प्रस्थ से सेर मान कर) ही करना चाहिये ।

घृतं चतुर्गुणं दद्याद् घृतादामलकीरसः । द्विगुणः सर्पिषश्चात्र जलमष्टगुणं भवेत् ॥ ४८ ॥
तत्सिद्धं पाययेत्सर्पिर्वातरक्तेषु सर्वथा । कुष्ठानि रक्तपित्तं च रक्तार्शांसि च पाण्डुताम् ४९
हृद्रोगगुल्मवीसर्पप्रदरं गण्डमालिकाम् । क्षुद्ररोगाञ्ज्वरांश्चैव महातिक्तमिदं जयेत् ५०

सप्तपर्ण या सतोने की छाल, अतीस, अमलतासके फलका गूदा, कुटकी, पाठा, नागरमोथा, खस, हरड़, बहेड़ा, आंवला, पित्तपापड़ा, पटोलपत्र नीमछाल, मजीठ, पीपर, पद्मकाष्ठ, कचूर, सफेद चन्दन, धमासा, दोनों इन्द्रायण की जड़, हलदी, दारुहलदी, गिलोय, दोनों अनन्तमूल, मूर्वा, अडूसा, शतावर, त्रायमाण, इन्द्रजौ, मुलेठी, चिरायता प्रत्येक एक एक तोला लेकर कल्क करे । इस कल्क का चौगुना याने १ सेर १० छ० २तो० मूर्च्छित घी लेवे, आंवलों का रस(१) दुगुना याने ३ से० ४ छ० ४ तो० लेवे और आठगुने जल ले सबको एकत्र मन्दाग्नि से पाक करे। सिद्ध होने पर उतार छान कर रख लेवे । इसे पान करने से वातरक्त, सब कोढ़, रक्तपित्त, रक्तार्श, पीलिया, हृदयरोग, गुल्म, वीसर्प, प्रदर, गण्डमाला, सब (६४) क्षुद्ररोग तथा ज्वरों को नष्ट करता है। यह **महातिक्त घृत** है ॥ ४५-५० ॥

कासीसाद्यघृतं कुष्ठे- **कासीसं द्वे निशे मुस्तं हरितालं मनःशिलाम् ।**
दद्रूपामाशिरःस्फोटादौ-**कम्पिल्लकं गन्धकं च विडङ्गं गुग्गुलुं तथा ॥ ५१ ॥**
सिक्थकं मरिचं कुष्ठं तुत्थकं गौरसर्षपान् । रसाञ्जनं च सिन्दूरं श्रीवासं रक्तचन्दनम् ५२
इरिमेदं निम्बपत्रं करञ्जं सारिवां वचाम् । मञ्जिष्ठां मधुकं मांसीं शिरीषं लोध्रपद्मकम् ॥५३॥
हरीतकीं प्रपुन्नाटं चूर्णयेत्कार्षिकान्पृथक् । ततस्तच्चूर्णमालोड्य त्रिंशत्पलमिते घृते ॥५४॥
स्थापयेत्ताम्रपात्रे च घमसप्तदिनानि वै । अस्याभ्यङ्गेन कुष्ठानि दद्रूपामाविचर्चिकाः ॥५५॥
शूकदोषा विसर्पाश्च विस्फोटा वातरक्तजाः । शिरःस्फोटोपदंशाश्च नाडीदुष्टव्रणानि च ॥५६॥
शोथो भगन्दरश्चैव लूताः शाम्यन्ति देहिनाम् । शोधनं रोपणं चैव सवर्णकरणं घृतम् ॥५७॥

हीरा कसीस, हलदी, दारुहलदी, नागरमोथा, हरताल, मैनसिल, कबीला, गन्धक, वायविडङ्ग, गूगल, मधुमक्खी का मोम, काली मिर्च, कूठ, तूतिया, सफेद सरसों, रसौत, सिन्दूर, गन्दाबिरोजा, लालचन्दन, इरिमेद (दुर्गन्ध खैर), नीमपत्र, करञ्ज, अनन्तमूल, बच, मजीठ, मुलेठी, जटामांसी, सिरस की छाल, लोध, पद्मकाष्ठ, हरड़ और चकवड़ की जड़ प्रत्येक का एक एक कर्ष लेकर पृथक् पृथक् चूर्ण कर ले। हरताल, मैनसिल, कसीस, गन्धक आदि शुद्ध ले। फिर ३० पल घी मूर्च्छित लेकर उसमें ये सब चूर्ण डालकर मिला लेवे और उसे एक तांबे के पात्र में रख मुंहपर कपड़ा बांध या कांच का चद्दर ढांक कर सात दिन तक धूपमें रखे फिर कांच के पात्र में इसे रख लेवे । इसे लगाने से सब कोढ़, दाद, पामा, विचर्चिका, शूकदोष, विसर्प, वातरक्तजनित फोड़े, सिर के फोड़े फुन्सी, गरमी के घाव, नासूर, दुष्टव्रण, सूजन, भगन्दर तथा मकड़ी के विष सब शान्त हो जाते हैं । इस घृत से घाव शुद्ध होकर भर जाते हैं तथा उस स्थान पर लगने से चमड़ा भी शरीर के रङ्ग को ग्रहण कर लेता है।

(१) आमले के स्वरस के अभाव में क्वाथ भी दिया जा सकता है। इस योग को तथा उपर्युक्त योग को गुडूची क्वाथ के अनुपान से व्यवहार करना चाहिये ।

विमर्श—यह **सूर्यपाक** तैल है यानें विना अग्नि-संयोग के तथा द्रव विना ही चूर्णों के योग से धूप की गरमी से सिद्ध होता है। कोई कोई वैद्य इसकी कल्क योग्य (१)ओषधियों का कल्क कर उसमें पहले घी को चौगुने जल देकर सिद्ध कर लेते हैं फिर छान कर उसमें मैनसिल, गन्धक, कसीस, हरताल आदि अन्य द्रव्यों के चूर्ण का प्रक्षेप देकर ताम्रपात्र में रख सात दिन तक धूप में रखते हैं। आचार्य का मत सिर्फ सूर्यपाक से होने पर भी हम दूसरी विधि को चिरस्थायी तथा अच्छा तेल बनने के कारण अधिक पसन्द करते हैं क्योंकि पहली विधि में काष्ठौषधियां अपना सार दे चुकने पर भी घी में पड़ी रहती हैं यद्यपि उनसे अब कोई फायदा नहीं रहता पर दूसरी विधि में सार तो घृत में आ जाते हैं और निष्प्रयोजन काष्ठ फेंक दिये जाते हैं ॥ ५१–५७ ॥

जात्यादिघृतं व्रणे—**जातीनिम्बपटोलाश्च द्वे निशे कटुरोहिणी ।**

मञ्जिष्ठा मधुकं सिक्थं करञ्जोशीरसारिवाः ॥ ५८ ॥

तुत्थं च विपचेत्सम्यक्कल्कैरेभिर्घृतं बुधः ।

अस्य लेपात्प्ररोहन्ति सूक्ष्मनाडीव्रणा अपि ॥ ५९ ॥

मर्माश्रिताः क्लेदिनश्च गम्भीराः सरुजो व्रणाः ॥ ६० ॥

चमेली की पत्ती, नीम की (२)पत्ती, पटोल के पत्ते, हलदी, दारुहलदी, कुटकी, मजीठ, मुलेठी, मधुमक्खी का मोम, करंज की गिरी, खस, अनन्तमूल और तूतिया प्रत्येक समभाग ले कल्क करे। इन सब से चौगुना घी और घी से चौगुना जल लेकर इस कल्क को देकर घी सिद्ध करे। सिद्ध होने पर छानकर शीशी में भर लेवे। इसके लगाने से सूक्ष्म मुख के नासूर भी भर जाते हैं। मर्म में पैदा हुए, बहुत स्राव बहाने वाले गहरे तथा दर्द करने वाले घाव शीघ्र ही भर जाते हैं।

विमर्श—कोई कोई इसमें से **मोम** और **तुत्थ** को कल्क में शामिल नहीं करते–सिद्ध हो चुकने पर छान कर प्रक्षेप करते हैं। इसमें कोई दोष नहीं। इसी विधि और सम्भार से

---

(१) कल्कार्थ जितने द्रव्य इसमें हैं उनका नाम यहां स्पष्ट करने के लिये लिख दिया जाता है—

जैसे—**हरिद्रामुस्तरक्तचन्दनेरिमेदनिम्बपत्रकरञ्जसारिवावचामञ्जिष्ठामधुमांसीशिरीषलोध्रपद्मकहरीतकी** प्रभृतिक अन्य ओषधियां प्रक्षेपार्थ जाननी चाहिये।

कासीस से पुष्पकासीस जो थोडा पीलापन लिये होता है तथा **हरताल** वर्कों लेना चाहिये और **गन्धक** आमलासार लेना चाहिये।

(२) निम्बादिकों का पत्र ही लेना चाहिये, जैसे लिखा है—

"जातीनिम्बपटोलानां नक्तमालस्य पल्लवाः" ।

यह योग बहुत उपकारी है अगर **"रसकर्पूर"** भी मिला दिया जावे तो फिरंगादि रोगों को समूल नष्ट करता है।

जात्यादितैल भी पकाया जाता है जो गुण में इसी के तुल्य होता है। यह घृत या तैल बड़े काम का है। घाव, फोड़े, फुन्सी, बच्चों का नाभिपाक-गुदापाक आदि तथा अन्यान्य व्रणवत् चर्मरोगों के लिये यहां तक कि गरमी के घाव के लिये भी यह लाभप्रद है ॥ ५८-६० ॥

बिन्दुघृतं जलोदर- **चित्रकः शङ्खिनी पथ्या कम्पिल्लस्त्रिवृतायुगम् ।**
विरेचनादौ— **वृद्धदारुश्च शम्याको दन्ती दन्तीफलं तथा ॥ ६१ ॥**
कोशातकी देवदाली नीलिनी गिरिकर्णिका। सातला पिप्पलीमूलं विडङ्गं कटुकी तथा॥६२
हेमक्षीरी च विपचेत्कल्करेभिः पिचून्मितैः। घृतप्रस्थं स्नुहीक्षीरे षट्पले तु पलद्वये॥६३॥
अर्कक्षीरस्य मतिमांस्तत्सिद्धं गुल्मकुष्ठहृत्। हन्ति शूलमुदावर्त्तं शोथाध्मानं भगन्दरम्॥
शमयत्युदराण्यष्टौ निपीतं बिन्दुसङ्ख्यया । गोदुग्धेनोष्ट्रदुग्धेन कौलत्थेन श्र्तेन वा ६५
उष्णोदकेन वा पीत्वा बिन्दुवेगैर्विरेचयेत् । एतद्बिन्दुघृतं नाम नाभिलेपाद्विरेचयेत् ६६

चीतामूल, शंखपुष्पी, हरड़, कबीला, सफेद निसोथ, काली निसोथ, विधारा, अमलतास का गूदा, दन्ती की जड़, शुद्ध जमाल गोटा, कड़वी तोरई, बन्दाँल डोडा, नीलिनी, अपराजिता, सातला (पीले फूल का सेहुण्ड), पिपरामूल, बायविडङ्ग, कुटकी और सत्यानाशी (चोक) प्रत्येक एक एक कर्ष लेकर पीस कल्क करे। इस कल्क से एक प्रस्थ घृत, छः पल सेहुण्ड का दूध तथा दो पल आक का दूध देकर एवं पाकार्थ चौगुना (१)जल देकर शनैः २ घृत सिद्ध करे। यह घृत गुल्म, कोढ़, शूल, उदावर्त्त, सूजन, आध्मान, भगन्दर तथा आठो प्रकार के उदररोग को नष्ट करता है। गाय के दूध, ऊटनी के दूध, कुलथी का काढ़ा अथवा केवल गरम जल से इसे (२)बिन्दु संख्या में पीना चाहिये। जितना बिन्दु पीवे उतने ही दस्त होंगे। यह बिन्दुघृत नाभि पर लेप करने ही से दस्त लाता है।

विमर्श—पर यह मृदुकोठे वालों की ही नाभी पर फाहे में रख ऊपर से ईटों के टुकड़ोंसे सेकने से दस्त लाता है। व्यवहार में इसे ६ मासा से १ तोले तक पीने को देते हैं ॥६१-६६॥

त्रिफलाऽऽद्यं नेत्ररोगे **त्रिफलाया रसप्रस्थं प्रस्थं वासारसोद्भवम् ।**
तिमिरादौ— **भृङ्गराजरसप्रस्थं प्रस्थमाजं पयः स्मृतम् ।**
दत्त्वा तत्र घृतप्रस्थं कल्कैः कर्षमितैः पृथक् ॥ ६७ ॥
त्रिफला पिप्पली द्राक्षा चन्दनं सैन्धवं बला ।
काकोली क्षीरकाकोली मेदा मरिचनागरम् ॥ ६८ ॥
शर्करा पुण्डरीकं च कमलं च पुनर्नवा । निशायुग्मं च मधुकं सर्वैरेभिर्विपाचयेत्॥६९॥

(१) इस योग में पाकार्थ जल चौगुना देने के लिये प्रमाण—
स्नुह्यर्कपयसोरत्र पाकार्थमुपपत्तितः । चतुर्गुणं जलं देयं पाकार्थे बिन्दुसर्पिषि ॥
(२) मात्रा के लिये बिन्दु का प्रयोग किया गया है—तो बिन्दु के लक्षण इस प्रकार है।
बिन्दुः स्यात्तर्जनीपर्वद्वयमग्नोद्धृतो न्मितः ।
इसके उरान्त कुछ वृद्धवैद्यों ने इसकी मात्रा ६ माशा से १ तोला तक की है।

नक्तान्ध्यं नकुलान्ध्यं च कण्डूं पिल्लं तथैव च ।
नेत्रस्रावं च पटलं तिमिरं काचकं जयेत् ॥ ७० ॥
अन्येऽपि प्रशमं यान्ति नेत्ररोगाः सुदारुणाः ।
त्रैफलं घृतमेतद्धि पाने नस्यादिषूचितम् ॥ ७१ ॥

त्रिफले का रस १ प्रस्थ (अभावे क्राथ), अडूसे का स्वरस १ प्रस्थ, भांगरे का रस १ प्रस्थ और बकरी का दूध १ प्रस्थ लेवे । इस रस में १ प्रस्थ घी, त्रिफला, पीपर, मुनक्के, श्वेत चन्दन, सेंधानोन, बरियारे की जड़, काकोली, क्षीरकाकोली, मेदा, काली मिर्च, सोंठ, शक्कर, सफेद कमल, नील या लाल कमल, सांठी की जड़, हलदी, दारुहलदी और मुलेठी प्रत्येक का एक एक कर्ष ले कल्क कर पाकार्थ चौगुना जल देकर सिद्ध करे । इसके उपयोग (१)से रतौंधी, नकुलान्ध्य, आंख की खुजली, पिल्ल, नेत्र से जल गिरना, पटल, तिमिर, मोतियाबिन्द आदि अन्यान्य कठिन नेत्ररोग सब शान्त हो जाते हैं । यह **त्रिफलाघृत** पीने और नस्य लेने में उपयुक्त होता है ।

विमर्श—नेत्ररोग के लिये बहुत उत्तम है ॥ ६७–७१ ॥

गौराद्यं घृतं व्रणे—**द्वे हरिद्रे स्थिरा मूर्वा सारिवा चन्दनद्वयम् ।**
मधुपर्णी च मधुकपद्मकेशरपद्मकैः ॥ ७२ ॥
उत्पलोशीरमेदाभिस्त्रिफलापञ्चवल्कलैः । कल्कैः कर्षमितैरेतैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥७३॥
विसर्पलूताविस्फोटविषकीटव्रणापहम् । गौराद्यमिति विख्यातं सर्पिर्विषहरं परम् ॥७४॥

हलदी, दारुहलदी, शालपर्णी, मूर्वा, सारिवा, श्वेत चन्दन, लाल चन्दन, माषपर्णी, मुलेठी, पद्मकेसर, पद्माख, नीलकमल, खस, मेदा, हरड़, बेहेड़ा, आँवला, बड़ की छाल, गूलर की छाल, पीपल की छाल, पाखर की छाल और बेंत की छाल, प्रत्येक का एक एक कर्ष लेकर उनका कल्क करे । इस कल्क में १ प्रस्थ घृत तथा चार प्रस्थ जल देकर पाक करे । इसे भोजन के पहले, मध्य में या अन्त में पान करावे तथा नस्य देवे तो वीसर्प, मकड़ीविष, फोड़े, जहरीले कीड़ों के काटने से उत्पन्न घाव सब अच्छे हो जाते हैं । यह (२)**'गौराद्य'** नामका प्रसिद्ध घृत विष नाश करने में अग्रगण्य है ॥ ७२–७४ ॥

मयूरघृतं शिरोरोगादौ—**बलामधुकरास्नाभिर्दशमूलफलत्रिकैः ।**
पृथग्द्विपलिकैरेभिर्द्रोणनीरेण पाचयेत् ॥ ७५ ॥

---

(१) इस योग का व्यवहार भोजन के पहले मध्य तथा अन्त में करना चाहिये जैसे लिखा है—

"ऊर्ध्वपानमधःपानं मध्यपानं च शस्यते" ।

तथा इसे गाय वा बकरी के दूध से लेवे ।

(२) यह ओषधि बाह्य और अन्तः दोनों में प्रयोग किया जाता है, पान से अन्तः रुधिरविकार एवं विषबाधा, लगाने से बाह्य विसर्पादि नष्ट होते हैं । **मात्रा**–यथादोष १ से ५ तोले तक कराना चाहिये । **अनुपान**–गुडूची क्वाथ एवं तुलसीस्वरस ।

मयूरं पक्षपित्तान्त्रयकृत्पादास्यवर्जितम्। पादशेषं शृतं नीत्वा क्षीरं दत्त्वा च तत्समम् ७६
घृतप्रस्थं पचेत्सम्यग्जीवनीयैः पिचून्मितैः। तत्सिद्धं शिरसः पीडां मन्यापृष्ठग्रहं तथा ७७
अर्दितं कर्णनासाऽक्षिजिह्वागलरुजो जयेत्। पाने नस्ये तथाऽभ्यङ्गे कर्णपूरेषु युज्यते ७८
हेमन्तकालशिशिरवसन्तेषु च शस्यते ॥ ७९ ॥

बरियारे की जड़, मुलेठी, रास्ना, वेल की छाल, अरणी की छाल, टेंटू की छाल, पाढल की छाल, गणियारी की छाल, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, बड़ी कटेहली, गोखरू, हरड़, वेहेड़ा और आमला प्रत्येक का दो दो पल ले जौकुट कर उसमें एक मोर सिर, पाँव, पंख, यकृत् अंतड़ियाँ आदि निकाल कर किमाम सा बनाकर मिलावे और सबको एक द्रोण जल में पकावे। जब चौथाई जल शेष रह जाय तब उतार कर छान लेवे। इसमें समान भाग (४ प्रस्थ) दूध भी मिलावे। इसमें अब एक प्रस्थ घृत मुद्गपर्णी, माषपर्णी, काकोली, चीरकाकोली, मेदा, महामेदा जीवक, ऋषभक, मुलेठी और जीवन्ती का प्रत्येक एक एक कर्ष लेकर कल्क कर देकर पाक करे। सिद्ध होने पर घृत को छानकर रख लेवे। इसमें कोई कोई वैद्य द्रवान्तर होने से दूध को घृत के सम लेते हैं और दूसरे दूध को चौगुना लेकर **प्रथम** काथ से, **द्वितीय** दूध से और **शेष** में कल्क तथा चतुर्गुण जल से इस प्रकार तीन पाक करते हैं। तीनों विधियां अदोष हैं। सिर की पीड़ा, मन्यास्तम्भ, पीठ का जकड़ना, अर्दितवात, कान, नाक, जीभ और गले के सब रोगों को यह (१)घृत नाश करता है। इसे यथा-योग्य पीने, नस्य लेने, मालिश करने तथा कान में डालने के प्रयोग किये जाते हैं। इसे हेमन्त, शिशिर और वसन्त में सेवन करना चाहिये क्योंकि अन्यान्य समय में यह दोषकारक या हीनवीर्य रहता है॥७५-७९

फलघृतं वन्ध्यादोषे—**त्रिफला मधुकं कुष्ठं द्वे निशे कटुरोहिणी।**
विडङ्गं पिप्पली मुस्ता विशाला कट्फलं वचा ॥ ८० ॥
द्वे मेदे द्वे च काकोल्यौ सारिवे द्वे प्रियङ्गुका।
शतपुष्पा हिङ्गु रास्ना चन्दनं रक्तचन्दनम् ॥ ८१ ॥

---

(१) घी विना मूर्च्छनादि क्रिया के नहीं काम में लेना चाहिये। और तैयार हो जाने पर इस घृत का पान और अभ्यङ्ग दोनों अवस्थानुसार किया जाता है। इसको किस समय सेवन करने से कैसा गुण-हानि करता है सो लिखते हैं—

हेमन्तकाले शिशिरे च सेव्यं वसन्तकाले च मयूरसर्पिः।
उष्णाद्विदाही विषभक्षणाच्च वर्षाशरद्ग्रीष्ममुखेष्वपथ्यम् ॥
आहारजातं हि विहङ्गमस्य कीटाश्च सर्पाश्च सरीसृपाश्च।
पिपीलिकामत्कुणमक्षिकाश्च तेनोष्णकालेष्वहितो मयूरः ॥
तथैव काले जलदाभिरामे विसृज्य शुक्रं च बलं च बर्ही।
कृशत्वमायात्यतिदीनभावात् शरन्मुखे तेन विवर्जनीयम् ॥

इसकी मात्रा ३ से ६ माशे तक तथा अनुपान गोदुग्ध करना चाहिये।

जातीपुष्पं तुगाक्षीरी कमलं शर्करा तथा। अजमोदा च दन्ती च कल्कैरेतैश्च कार्षिकैः ८२
जीवद्वत्सैकवर्णाया घृतप्रस्थं च गोः क्षिपेत्। चतुर्गुणेन पयसा पचेदारण्यगोमयैः ॥८३॥
सुतिथौ पुष्यनक्षत्रे मृद्भाण्डे ताम्रजे तथा। ततः पिबेच्छुभदिने नारी वा पुरुषोऽथवा ८४
एतत्सर्पिर्नरः पीत्वा स्त्रीषु नित्यं वृषायते।पुत्रानुत्पादयेद्धीमान्बन्ध्याऽपि लभते सुतम् ८५

अनायुषं या जनयेद्या च सूता पुनः स्थिता ।
पुत्रं प्राप्नोति सा नारी बुद्धिमन्तं शतायुषम् ॥ ८६ ॥

एतत्फलघृतं नाम भारद्वाजेन भाषितम्। अनुक्तं लक्ष्मणामूलं क्षिपेत्तत्र चिकित्सकः ८७

हरड़, बेहेड़ा, आँवला, मुलेठी, कूट, हलदी, दारुहलदी, कुटकी, वायविडङ्ग, पीपर, मोथा, इन्द्रायण की जड़, कायफल, वच, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, अनन्तमूल, श्यामालता, फूलप्रियंगु, सौंफ, हींग, रास्ना, श्वेतचन्दन, मालती के फूल, वंशलोचन, कमल, शक्कर, अजमोद तथा दन्ती की जड़ प्रत्येक एक एक कर्ष लेकर कल्क करे। फिर जिस गौ का बछड़ा जिन्दा हो तथा गाय और बछड़े का रङ्ग एक सा होय उसका घी १ प्रस्थ मूर्च्छित कर तथा उसी का या ऐसी ही गाय का दूध चार प्रस्थ ले पूर्वोक्त कल्क देकर घृत का पाक करे। सिद्ध होने पर मजबूत मिट्टीके वा ताम्बे के बर्त्तन में उसे छान कर रख देवे। इसका दो पाक करना अच्छा होता है। पहले दूध से एवं दूसरे कल्क और चतुर्गुण जल से **चक्रदत्त** में शतावर (१)रस से भी पाक करने को लिखा है सो यदि इसे भी करना हो तो दुग्धपाक के बाद इसे भी करले। इस घृत को किसी शुभ तिथि में जब **पुष्य नक्षत्र** हो स्त्री हो या पुरुष पान करना शुरू करे। इस घृत के पान करने से पुरुष स्त्रियों से सांड़ के समान मस्त होकर रमता है तथा शुद्ध वीर्य के होने से उत्तम और बुद्धिमान पुत्रों को उत्पन्न करता है तथा बांझ स्त्री भी पुत्र को जनती है। जो स्त्री अनायुष संतान (पैदा होकर कम उम्र में मर जाने वाली संतान) को जनती है या जो एक दफे जन कर फिर नहीं जनती (काकबन्ध्या) वह स्त्री

(१)इस योग में **चक्रदत्त** के मत से इन औषधों के उपरान्त शतावर का रस भी चौगुना देने को है अतः घी से चौगुना शतावर रस देना चाहिये—

जैसे—**शतावरीरसक्षीरं घृताद् देयं चतुर्गुणम् ।**

तथा **लक्ष्मणा** भी देना चाहिये पर यह अलभ्य वस्तु है इसकी जगह **श्वेतपुष्प की कण्टकारी** लेना चाहिये यहां **लक्ष्मणा** का रूप लिख दिया जाता है अगर किसी को प्राप्त हो वह काम में लावे।

रक्ताकाररक्ताल्पविन्दुभिर्लाञ्छितच्छदा। लक्ष्मणा पुत्रजननी बस्तगन्धाकृतिर्भवेत्।
तत्काले भवति सा फलपुष्पाऽन्विता सदा।गृह्णीयात्पुष्यमूलार्के हस्तार्केचाभिमन्त्र्य च

इसका मूल ग्रहण करना चाहिये तथा यह अत्यन्त गुणकारक औषध है। यह अकेले भी देने से पुत्रोत्पादक है। स्त्री इसे चतुर्थ दिवस से सेवन करे तथा विदाही, एवं गुरु, विष्टम्भी आदि भोजन न करे। **मात्रा** इसकी ६ माशे से १ तोले तक, एक वर्ण की तथा बछड़े वाली गाय के दूध से लेनी चाहिये।

भी इसके प्रभाव से बुद्धिमान और सौ वर्ष उम्रवाला पुत्र पैदा करती है। इस घृत का नाम **'फलघृत'** है। इस योग में न कहे रहने पर भी चिकित्सक लक्ष्मणा की जड़ इसमें डालें।

विमर्श—इसे श्वेत फूल वाली कण्टकारी कहते हैं—गर्भकारक प्रसिद्ध और प्रत्यक्ष चीज है, इससे इसे जरूर डालना चाहिये। इस घृत को सेवन कर नियमानुसार रहने से ऊपर लिखा फल निश्चय मिलेगा ॥ ८०-८७ ॥

लघुफलघृतं- **त्रिफलां द्वे सहचरे गुडूचीं सपुनर्नवाम् ।**
योनिरोगे— **शुकनासां हरिद्रे द्वे रास्नां मेदां शतावरीम् ॥ ८८ ॥**
कल्कीकृत्य घृतप्रस्थं पचेत्क्षीरे चतुर्गुणे । तत्सिद्धं पाययेन्नारीं योनिशूलनिपीडिताम्८९
पीडिता चलिता या च निःसृता विवृता च या ।
पित्तयोनिश्च विभ्रान्ता षण्डयोनिश्च या स्मृता ॥ ९० ॥
प्रपद्यन्ते हि ताः स्थानं गर्भं गृह्णन्ति चासकृत् । एतत्फलघृतं नाम योनिदोषहरं परम्९१

(१)हरड़, बेहेड़ा, आँवला, पियाबांसा, सफेद फूलवाला कटसरैया, गिलोय, पुनर्नवा, श्योनाक वृक्ष की छाल, हलदी, दारुहलदी, रास्ना, मेदा, शतावर सम भाग सब मिलाकर कुल ४ पल लेवे और सिलपर पीस कर कल्क कर लेवे। फिर एक प्रस्थ घृत लेकर उसमें यह कल्क एवं चौगुना याने ४ प्रस्थ दूध एवं पाकार्थ जल भी उतना ही देकर पाक करे। पाक हो चुकने पर उतार छान कर रख लेवे। इस घृत को स्त्रियों को पिलावे तो योनिशूल, पीड़िता, चलिता, निःसृता, विवृता, पित्तयोनि, विभ्रान्ता तथा षण्डयोनि आदि सब योनिरोग नष्ट होकर योनि अपने स्थानमें आ जाती है तथा वह स्त्री इसके प्रभाव से अनेक वार गर्भ धारण करती है। यह **फलघृत** योनि के दोषों को नाश करने में सर्वश्रेष्ठ है ॥ ८८-९१ ॥

पञ्चतिक्तकं घृतं- **वृषनिम्बामृताव्याघ्रीपटोलानां श्रृतेन च ।**
विषमज्वरादौ— **कल्केन पक्वं सर्पिस्तु निहन्याद्विषमज्वरान् ॥**
पाण्डुं कुष्ठं विसर्पं च कृमीनर्शांसि नाशयेत् ॥ ९२ ॥

वासा, नीम की छाल, गिलोय, छोटी कटेरी और पटोल के पत्ते समभाग कुल दो प्रस्थ लेकर १६ प्रस्थ जल में क्वाथ कर ४ प्रस्थ शेष रहने पर छान लेवे। इस क्वाथ में १ प्रस्थ घृत ऊपर कहे पांच ओषधियों का ही सम भाग घृत एक पाव का कल्क तथा तत्पाकार्थ जल ४ सेर देकर घृत सिद्ध कर ले अथवा यदि वर्त्तन बड़ा न हो तो पहले क्वाथ से फिर कल्क से पाक कर लेवे। यह घृत सब प्रकार के विषमज्वर, पाण्डु, कोढ़, विसर्प तथा कृमिरोग और बवासीर को नाश करता है ॥ ९२ ॥

अथ तैल कल्पना ।

लाक्षाऽऽदितैलं **लाक्षाऽऽढकं क्वाथयित्वा जलस्य चतुराढकः ।**
विषमज्वरादौ- **चतुर्थांशं श्रृतं नीत्वा तैलप्रस्थे विनिक्षिपेत् ॥ ९३ ॥**

(१)यह योग **गर्भाशय रोग** में अत्यन्त उपकारी है।

मस्त्वाढकं च गोदध्नस्तत्रैव विनियाजयेत् ।
शतपुष्पामश्वगन्धां हरिद्रां देवदारु च ॥ ९४ ॥
...कीं रेणुकां मूर्वां कुष्ठं च मधुयष्टिकाम् । चन्दनं मुस्तकं रास्नां पृथक्कर्षप्रमाणतः ॥९५॥
...येत्तत्र निक्षिप्य साधयेन्मृदुवह्निना । अस्याभ्यङ्गात्प्रशाम्यन्ति सर्वेऽपि विषमज्वराः ९६
...सश्वासप्रतिश्यायत्रिकपृष्ठग्रहास्तथा । वातं पित्तमपस्मारमुन्मादयक्षराक्षसान् ॥९७॥
...डूं शूलं च दौर्गन्ध्यं गात्राणां स्फुरणं जयेत् । पुष्टगर्भा भवेदस्य गर्भिण्यभ्यङ्गतो भृशम्॥

एक आढ़क (४ प्रस्थ) बेर या पीपल वृक्ष का लाख लेकर चार आढ़क जल में चुरावे । एक आढ़क शेष रहने पर उतार कर छान लेवे । फिर एक बड़ी कढ़ाई में एक प्रस्थ तैल(१) रख कर उसमें इस क्वाथ को तथा गाय के दही का तोड़ भी ४ प्रस्थ डाल देवे एवं सौंफ, असगंध, हलदी, देवदारु, कुटकी, रेणुका, मूर्वा, कूट, मुलेठी, श्वेतचन्दन, नागरमोथा एवं रास्ना प्रत्येक एक एक कर्ष लेकर कल्क बना उसी में डाल देवे और मन्दी मन्दी आंच में पकावे । जब तैल सिद्ध हो जाय तो तैल को छान कर रख लेवे । इस तैल के मालिश करने से सब तरह के विषमज्वर नाश को प्राप्त होते हैं । खांसी, श्वास, जुकाम, त्रिक और पीठ को जकड़ाने वाले तिजारी ज्वर, वात, पित्त, अपस्मार, उन्माद, यक्ष–राक्षसों का प्रभाव, खुजली, शूल, शरीर का दुर्गन्ध, अवयवों का फड़कना आदि नष्ट हो जाते हैं एवं इसके वारबार मालिश से गर्भिणी स्त्री का गर्भ पुष्ट होता है ॥ ९३–९८ ॥

अङ्गारतैलं सर्वज्वरेषु—मूर्वा लाक्षा हरिद्रे द्वे मञ्जिष्ठा सेन्द्रवारुणी ।
बृहती सैन्धवं कुष्ठं रास्ना मांसी शतावरी ॥ ९९ ॥
आरनालाढके तत्र तैलप्रस्थं विपाचयेत् । तैलमङ्गारकं नाम सर्वज्वरविमोक्षणम् ॥१००॥

मूर्वा, लाख, हलदी, दारुहलदी, मजीठ, इन्द्रायण की जड़, बड़ी कटेहली, सेंधानमक, कूट, रास्ना, जटामांसी, शतावरी समभाग कुल ४ पल लेकर कल्क करे । इस कल्क में एक प्रस्थ तैल देकर ४ प्रस्थ कांजी के योग से तैल का पाक करे । सिद्ध होने पर ग्रहण कर रखे । यह अङ्गारक तैल मालिश करने से सब प्रकार के ज्वरों को नष्ट करता है ॥ ९९–१०० ॥

नारायणतैलं वात- अश्वगन्धां बलां बिल्वं पाटलां बृहतीद्वयम् ।
रोगादौ— श्वदंष्ट्राऽतिबलानिम्बं स्योनाकं च पुनर्नवाम् ॥ १०१ ॥
...सारिणीमग्निमन्थं कुर्याद्दशपलं पृथक् । चतुर्द्रोणे जले पक्त्वा पादशेषं श्टतं नयेत् १०२
...ढकेन संयोज्य शतावर्या रसाढकम् । क्षिपेत्तत्र च गोक्षीरं तैलात्तस्माच्चतुर्गुणम् १०३
शनैर्विपाचयेदेभिः कल्कैर्द्विपलिकैः पृथक् ।
कुष्ठैलाचन्दनं मूर्वा वचा मांसी ससैन्धवैः ॥ १०४ ॥
अश्वगन्धावचारास्नाशतपुष्पेन्द्रदारुभिः । पर्णीचतुष्टयेनव तगरेण च साधयेत् ॥१०५॥

---

(१) तैल यहाँ तिल का लेना चाहिये । एवं सर्वप्रथम मूर्च्छितादि क्रिया करके काम में लाना चाहिये ।

तत्तैलं नावनेऽभ्यङ्गे पाने बस्तौ च योजयेत् ।
पक्षाघातं हनुस्तम्भं मन्यास्तम्भं गलग्रहम् ॥ १०६ ॥
खल्लत्वं बधिरत्वं च गतिभङ्गं कटिग्रहम् । गात्रशोषेन्द्रियध्वंसावसृक्शुक्रज्वरक्षयान् १०७
अन्त्रवृद्धिं कुरण्डं च दन्तरोगं शिरोग्रहम् । पार्श्वशूलं च पाङ्गुल्यं बुद्धिहानिं च गृध्रसीम् १०८
अन्यांश्च विषमान्वाताञ्जयेत्सर्वाङ्गसंश्रयान् । अस्य प्रभावाद्वन्ध्याऽपि नारी पुत्रं प्रसूयते १०९
मर्त्यो गजो वा तुरगस्तैलादस्मात्सुखी भवेत् । यथा नारायणो देवो दुष्टदैत्यविनाशनः ११०
तथैव वातरोगाणां नाशनं तैलमुत्तमम् ॥ १११ ॥

असगंध, दरियारे की जड़, बेल की छाल, पाढल की छाल, बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, गोखरू, अतिबला (कंगही), नीम की छाल, श्योनाक की छाल, पुनर्नवा, गंधप्रसारणी, अरणी की छाल, प्रत्येक १० पल (आधा सेर) अलग अलग लेकर थोड़ा थोड़ा कूट लेवे। फिर उसमें ४ द्रोण (करीब १ मन १२ सेर) जल देकर पकावे। जब चौथाई मात्र जल शेष रहे तब उतार कर छान लेवे। फिर एक आढ़क (४ प्रस्थ) तिलतैल मूर्च्छित लेकर उसमें एक आढ़क शतावर का रस डाले तथा दूध भी ४ आढ़क डाल देवे। फिर कूट, इलायची, श्वेतचन्दन, बला, जटामांसी, शिलापुष्प, सेंधा नमक, असगंध, वच, रास्ना, सौंफ, देवदारु, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, पृश्निपर्णी, शालपर्णी तथा तगरपादिका प्रत्येक का दो दो पल कल्क कर तेल में डाले तथा क्वाथ भी डालकर मन्दाग्नि में धीरे धीरे साधे। तैल सिद्ध होने पर छान कर उचित पात्र में रख लेवे। इस तैल को नस्य देने, मालिश करने, पीने तथा बस्ति देने में उपयोग करे। पक्षाघात, हनुस्तम्भ, मन्यास्तम्भ, गलग्रह, खल्ली, बहरापन, गतिभंग, कमर का जकड़ जाना, शरीर का सूख जाना, कर्मेन्द्रियों का बेकार हो जाना, वात से दूषित रक्तविकार, वीर्यविकार, ज्वर, क्षयरोग, आंतों का उतरना, फोतों का बढ़ना, दन्तरोग, सिर का रुकना, पसवाड़ों का शूल, लगड़ापन, बुद्धि का ह्रास, गृध्रसी (रींगणवायु) आदि तथा अन्यान्य सब प्रकार के विषम भाव से गति करने वाले वात रोगों को चाहे किसी एक अंग में हो वा सर्वाङ्ग में हो यह तैल यथाविधि उपयोग करने से नष्ट कर देता है। इस तेल के प्रभाव से बांझ स्त्री भी पुत्र जनती है। सिर्फ मनुष्य ही नहीं हाथी तथा घोड़े आदि जानवर भी इसके उपयोग से सुखी होते हैं। जिस प्रकार से नारायण भगवान् दुष्ट राक्षसों का विनाश करते हैं उसी प्रकार यह तैल भी सब दुष्ट वातरोगों को नष्ट करता है, इसीसे ही यह **नारायण तैल** के नाम से प्रसिद्ध है।

विमर्श—सुविधा तथा ठीक पाक होने के वास्ते इसका चार पाक करे **प्रथम** मूर्च्छित तैल को दुग्ध से पाक करे, **द्वितीय** में शतावर के रस से, **तृतीय** क्वाथ से तथा **चतुर्थ** पाक कल्क एवं चतुर्गुण जल से करे। इसके बाद बड़े आदमियों के लिये (१)गंधपाक करे मजीठ,-

---

(१) गन्धपाक के द्रव्य—

समङ्गानखकङ्कोलनलिकाजातिकोषकम् । त्वक्कुन्दुरुष्ककर्पूरतुरुष्कश्रीनिवासकम् ॥

...ी, कंकोल, नालुका, जावित्री, दालचीनी, कुन्दुरु, कपूर, तुरुष्क, श्रीवास धूप, सौंफ, केशर ...र कस्तूरी प्रत्येक समभाग तेल का सोलहवां हिस्सा ले चूर्ण कर महीन कपड़े की पोटली ...रखकर तैल में लटका कर तैल को गुनगुना करदे। फिर उस पोटली को वैसे ही ८-१० ...न पड़ा रहने दे, फिर निकाल कर निचोड़ ले। तेल बढ़िया गंधयुक्त हो जायगा यही ...त्ययोग है ॥ १०७-१११ ॥

...रुणीतैलं कम्परोगे—(वारुण्या औत्तरं मूलं कुट्टितं तु पलत्रयम् ।
पलद्वादशकं तैलं क्षणं वह्नौ विपाचितम् ॥ ११२ ॥
...कत्रयं भक्तयुक्तं सेवेतास्माद्विनश्यति । हस्तकम्पः शिरःकम्पः कम्पो मन्याशिराभवः)

इन्द्रायण के उत्तर दिशा की जड़ तीन पल (१२ तो०) लेकर खूब पीस ले। फिर इसे ...ढ़ाई में रखकर ऊपर से १२ पल (४८ तो०) मूर्च्छित तिल का तेल डाल देवे और मन्दी ...न्दी आँच में पकावे। कल्क को चलाते जाय। जब कल्क पक कर लाल सा हो जाय कढ़ाई ...ो नीचे उतार ले और ठंडा होने पर तेल को छानकर रखले। यह तैल विना द्रव का पकाया ...ाता है अतः आंच मन्दी रखे तथा पूर्ण सावधान रहे अन्यथा कल्क जल जायगा। इसका ...ीन निष्क (आजकल का ९ मासा) भात के साथ खाने से हाथ का काँपना, सिर का काँपना, ...न्या शिराओं का काँपना नष्ट हो जाते हैं। **विमर्श**—इसके अतिरिक्त यह गरमी तथा फिरंगरोग ...ा विष को भी नष्ट करते देखा गया है ॥ ११२-११३ ॥

बलाऽऽद्यं तैलं वातव्याधौ— **बलामूलकषायेण दशमूलश्रृतेन च ।**
कुलत्थयवकोलानां क्वाथेन पयसा तथा ॥ ११४ ॥
...अष्टभागयुक्तेन भागमेकं च तैलकम् । गणेन जीवनीयेन शतावर्येन्द्रदारुणा ॥११५॥
...मञ्जिष्ठाकुष्ठशैलेयतगरागरुसैन्धवैः । वचापुनर्नवामांसीसारिवाद्वयपत्रकैः ॥११६॥
...तपुष्पाऽश्वगन्धाभ्यामेलया च विपाचयेत् । गर्भार्थिनीनां नारीणां नराणां क्षीणरेतसाम् ॥
...व्यायामक्षीणगात्राणां सूतिकानां च युज्यते । राजयोग्यमिदं तलं सुखिनां च विशेषतः ॥
बलातैलमिति ख्यातं सर्ववातामयापहम् ॥ ११८ ॥

स्पृक्काकुङ्कुमकस्तूरी दद्यादत्रावतारिते ॥

अर्थ—मंजीठ, नखी, शीतलचीनी, नलिका, जावित्री, दालचीनी, कुन्दुरु (लोहबान), ...पूर, तुरुष्क (सिल्हकनिर्यास या पुष्प), लौंग, स्पृक्का (असवरग), केशर, कस्तूरी, प्रत्येक ...व्य समभाग ले किन्तु सब मिलकर तेल के षोडशांश बराबर होना चाहिये। और जब ...नारायण तेल सिद्ध हो जाय तब उक्त गन्ध द्रव्यों को कूटकर चूर्ण बना स्वच्छवस्त्र की पोटली ...में बांधकर तेल में डालकर १० दिन तक मुख बन्द करके पड़ा रहने दे, इतना अवश्य ध्यान ...रखे कि गन्ध द्रव्य डालने के समय तैल उष्ण अवश्य कर ले। पश्चात् १० दिन के पोटली ...निचोड़ कर तैल को बोतलों में यत्नपूर्वक रख देवै। इस गन्धपाक का प्रयोग करने से तेल ...सुगन्धित तथा विशेष गुणकारक हो जाता है।

बरियारे के जड़ का यथाविधि क्वाथ ८ सेर, दसमूल का काढ़ा ८ सेर, कुलथी, जौ और बेर के मिलित का काढ़ा ८ सेर, गोदुग्ध ८ सेर तथा मूर्च्छित तिलतेल १ सेर लेवे। पहले तेल(१) को यथाविधि बरियारे के काढ़े से पाक करे, **दूसरे** दसमूल के काढ़े से, **तीसरे** कुलथी आदि के काढ़े से और **चौथे** दूध से पाक करे। फिर जीवन्ती, मुद्‌गपर्णी, माषपर्णी, काकोली, क्षीरकाकोली, मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक, मुलेठी, शतावर, देवदारु, मजीठ, कूट, शैलेय, तगरपादिका, अगर, सैंधव नमक, बच, पुनर्नवा, जटामांसी, अनन्तमूल, श्यामालता, पत्रक, सौंफ, असगंध तथा इलायची—सब समभाग मिलित एक पाव कल्क एवं ४ सेर जल से **पांचवा** पाक करे। इस प्रकार पाँच पाकों से निष्पन्न तेलको अच्छे कांच के पात्र में भर रखे। गर्भ की प्राप्ति चाहने वाली स्त्रियों को, क्षीणवीर्य पुरुषों को, अधिक मेहनत से क्षीण पुरुषों को तथा प्रसूता स्त्रियों को इसका उपयोग करना चाहिये। यह **बलातैल** राजाओं के तथा सुखार्थी पुरुषों के योग्य है। यह सब वातरोगों को नष्ट करने के लिये प्रसिद्ध है। प्रसूताओं को यह विशेष लाभ करता है।

विमर्श—कोई कोई वैद्य इसका **दस पाक** करते हैं और **दसपाक बलातैल** के नाम से इसे अभिहित करते हैं। उनके अनुसार **दस पाक** इस प्रकार है १—बरियारे के काढ़े से, २—दसमूल के काढ़े से, ३—कुलथी के काढ़े से, ४—जौ के काढ़े से, ५—बेर के काढ़े से, ६—दूध से, ७—जीवनीय गण के काढ़े से, ८—शतावर के रस से, ९—सिर्फ देवदार के काढ़े से एवं १०—अन्य द्रव्यों के कल्क एवं जल से। सब काढ़े प्रतिपाक में तेल से अठगुना लिये जाते हैं। दूध का स्नेह मिल जाने से तेल में भी कमी नहीं होती यह तेल पहले की अपेक्षा अवश्य वीर्य में अधिक होता है पर प्रचार पहले विधि का ही अधिक है॥ ११४–११८॥

प्रसारिणीतैलं वातकफ-रोगादौ—

**प्रसारिणीपलशतं जलद्रोणे विपाचयेत्। पादशिष्टः श्रतो ग्राह्यस्तैलं दधि च तत्समम्॥ ११९॥
काञ्जिकं च समं तैलात्क्षीरं तैलाच्चतुर्गुणम्। तैलात्तथाऽष्टमांशेन सर्वकल्कानि योजयेत्१२०
मधुकं पिप्पलीमूलं चित्रकः सैन्धवं वचा। प्रसारिणी देवदारु रास्ना च गजपिप्पली १२१
भल्लातः शतपुष्पा च मांसी चैभिर्विपाचयेत्। एतत्तैलं वरं पक्वं वातश्लेष्मामयापहं१२२
कौब्जं पङ्गुत्वखञ्जत्वे गृध्रसीमर्दितं तथा। हनुपृष्ठशिरोग्रीवाकटिस्तम्भान्विनाशयेत् १२३
अन्यांश्च विषमान्वातान्सर्वानाशु व्यपोहति॥ १२४॥**

प्रसारणी जड़ सहित १०० पल लेकर कूटकर एक द्रोण (१६ प्रस्थ) जलमें पाक कर चौथाई शेष काढ़ा छान कर लेवे। फिर ४ प्रस्थ तिलतेल, ४ प्रस्थ दही, ४ प्रस्थ काँजी एवं १६ प्रस्थ दूध तथा ऊपर का काढ़ा सब एक बड़ी कढ़ाई में रख उसमें तेल का अष्टमांश याने दो पल कल्क—मुलेठी, पीपरामूल, चीते की जड़, सेंधा नमक, बच, प्रसारणी, देवदारु, रास्ना, गज-

---

(१) सर्व प्रथम तेल–मूर्च्छन करले और द्रव जो देना है उसे द्विगुण करता जावे। दूध गाय या बकरी का देवे तथा तेल तिल का देवे।

...ल, भिलावे (शुद्ध), सौंफ तथा जटामांसी समभाग मिलित (८ तोले कल्क) डाल कर ...त्र पाक करे । इस तैल के उपयोग करने से सब वात-कफ के रोग नष्ट होते हैं। कुबड़ापन, ...ड़ापन, खंजापन, गृध्रसी, अर्दितवात, हनुस्तम्भ, पीठ का जकड़ जाना, सिर का रह जाना, ...र्दन का रह जाना तथा अन्यान्य विषम वात के रोगों को यह तेल नष्ट करता है ॥११९-१२४॥

माषादितैलं वातविकरादौ—

माषा यवातसी क्षुद्रा मर्कटी च कुरण्टकः ।
गोकण्टष्टुण्टुकश्चैषां कुर्यात्सप्तपलं पृथक् ॥ १२५ ॥
...र्गुणाम्बुना पक्त्वा पादशेषं शृतं नयेत् । कार्पासास्थीनि बदरं शणबीजं कुलत्थकम् १२६
...श्चतुर्दशपलं चतुर्गुणजले पचेत् । चतुर्थांशावशिष्टं च गृह्णीयात्क्वाथमुत्तमम् ॥ १२७ ॥
...कं छागमांसस्य चतुःषष्टिपले जले । निक्षिप्य पाचयेद्धीमान्पादशेषं शृतं नयेत् १२८
...प्रस्थे ततः सर्वान्क्वाथानेतान्विनिक्षिपेत् । कल्कैरभिश्च विपचेदमृताकुष्ठनागरैः॥१२९॥
...लापुनर्नवैरण्डैः पिप्पल्या शतपुष्पया । बलाप्रसारिणीभ्यां च मांस्या कटुकया तथा ॥
...र्द्धपलकैः साधयेन्मृदुवह्निना । हन्यात्तैलमिदं शीघ्रं ग्रीवास्तम्भापबाहुकौ ॥१३१॥
...र्धाङ्गशोषमाक्षेपमूरुस्तम्भापतानकौ । शाखाकम्पं शिरःकम्पं विश्वाचीमर्दितं तथा ॥
माषादिकमिदं तैलं सर्ववातविकारनुत् ॥ १३२ ॥

छिलके हीन उड़द, जौ, अलसी, छोटी कटेरी, कौंच की जड़, पियाबाँसा, गोखरू तथा ...टू की छाल, प्रत्येक ७–७ पल (कुल ५६ पल) ले कूटकर चौगुने जल में पकाकर चौथाई ...ष रहने पर उतार कर छान ले । यह **पहला काढ़ा** है । बिनौले की गिरी, सूखे बेर, सन के ...ज, कुलथी प्रत्येक १४–१४ पल (कुल ५६ पल) पूर्ववत् चौगुने जल में पकाकर चौथाई ...ष काढ़ा छानकर रखे । यह **दूसरा काढ़ा** है। एक प्रस्थ (६४ तोले) बकरे का मांस ...कर ६४ पल (४ प्रस्थ होता है पर व्यवहार ८ प्रस्थ का है) जल में पकाकर चौथाई रहने ...र उतार छान रखे । यह **तीसरा काढा** है। फिर एक प्रस्थ तिल–तैल लेकर एक बड़ी ...ढ़ाई में रख उसमें ऊपर के तीनों काढ़े डाल दे । फिर गिलोय, कूट, सोंठ, रास्ना, पुनर्नवा, ...रण्डमूल, पीपर, सौंफ, बला की जड़, प्रसारणी, जटामांसी तथा कुटकी प्रत्येक दो दो तोले ...कर कुल एकत्र करके उसमें डाल देवें और मन्द मन्द आंच देकर पाक करे। तैल सिद्ध होने ...र उतार छानकर रख लेवे । यह तैल शीघ्र ही गर्दन का जकड़ जाना, अपबाहुक, आधा अंग ...ा सूखना, आक्षेपक वात, ऊरुस्तम्भ, अपतानक, शाखा (हाथ–पाँव) का काँपना, सिर का ...पना, विश्वाची, और अर्दित वात को दूर करता है। अतः सब प्रकार के वातरोगों को नष्ट ...रने वाला यह **'माषादि तैल'** है ।

विमर्श—ऊपर के तीन काढ़े तथा कल्क से अलग अलग सार पाक भी कर सकते हैं जैसे ...लातैल में किया था ॥ १२५–१३२ ॥

शतावरीतैलं वातादौ—

...वरी बलायुग्मं पर्ण्यौ गन्धर्वहस्तकः । अश्वगन्धा श्वदंष्ट्रा च बिल्वः काशः कुरण्टकः१३३
...ां सार्द्धपलान्भागान्कल्पयेच्च विपाचयेत् । चतुर्गुणेन नीरेण पादशेषं शृतं नयेत् ॥१३४॥

नियोज्य तैलप्रस्थे च क्षीरप्रस्थं विनिक्षिपेत् । शतावरीरसप्रस्थं जलप्रस्थं च योजयेत्१३५
शतावरीदेवदारुमांसीतगरचन्दनम् । शतपुष्पा बला कुष्ठमेला शलेयमुत्पलम् ॥ १३६ ॥
ऋद्धिर्मेदा च मधुकं काकोली जीवकस्तथा । एषां कर्षसमैः कल्कैस्तैलं गोमयवह्निना १३७
पचेत्तेनैव तैलेन स्त्रीषु नित्यं वृषायते । नारी च लभते पुत्रं योनिशूलं च नश्यति ॥१३८॥
अङ्गशूलं शिरःशूलं कामलां पाण्डुतां गरम् । गृध्रसीप्लीहशोषांश्च मेहान्दण्डापतानकम्१३९
सदाहं वातरक्तं च वातपित्तगदार्दितम् । असृग्दरं तथाऽऽध्मानं रक्तपित्तं च नश्यति १४०
शतावरीतलमिदं कृष्णात्रेयेण भाषितम् ।
ॐ नारायण्यै स्वाहा—उत्तराभिमुखो भूत्वा खनेत्खदिरशङ्कुना ॥ १४१ ॥
ॐ सर्वव्याधिनाशिन्यै स्वाहा । इत्युपाटनमन्त्रः ।
ॐ कुमारजीविन्यै स्वाहा । इति पाचनमन्त्रः ।

शतावर, वरियारे की जड़, गंगेरन की जड़, शालिपर्णी, पृष्ठपर्णी, एरण्ड की जड़ की छाल, असगन्ध, गोखरू, बेल की छाल, काश की जड़, पियाबांसा, इनका प्रत्येक डेढ़ पल (६ तोले) लेवे और कूट कर चौगुने जल (४ प्रस्थ) में काढ़ा बनावे । शेष १ प्रस्थ रख छान लेवे । एक बड़ी कढ़ाई में एक प्रस्थ तैल रख उसमें इसे भी दे देवे । फिर उसमें एक प्रस्थ दूध, शतावरका स्वरस एक प्रस्थ तथा एक प्रस्थ जल भी देवे । फिर शतावर, देवदारु, जटामांसी, तगर, श्वेतचन्दन, सौंफ, वरियारे की जड़, कूट, इलायची, छारछरीला, नीलोफर, ऋद्धि, मेदा, मुलहठी, काकोली तथा जीवक प्रत्येक एक एक कर्ष लेकर कल्क करके उसमें डाल दे और जङ्गली कण्डों की मीठी मीठी आग देकर तेल को सिद्ध करे । इस श्रेष्ठ तैल को पान तथा मालिश करने से पुरुष सर्वदा स्त्रीसम्भोग में सांड की तरह रहता है । स्त्री इसका सेवन करने से पुत्रवती होती है एवं उसका योनिशूल दूर होता है । एवम् शरीर का शूल, सिर का शूल, कामला, पीलिया, गर (संयोगज विष) का दोष, गृध्रसी, प्लीहावृद्धि, शोष, प्रमेह, दण्डापतानक, दाहवाला वातरक्त, वातपित्त के रोग, प्रदर, आध्मान, तथा रक्तपित्त नष्ट हो जाते हैं । यह **शतावरी तैल पुनर्वसु (आत्रेय)** का कहा हुआ है । इस योग में जो शतावर लाया जाता है उसके लाने की विधि—उत्तर की ओर मुख करके शुद्ध चित्त से उत्तर की ओर की जड़ को खैर के शंकु याने मजबूत डण्डा जो खोदने लायक पैना कर लिया गया हो उससे **'ॐ नारायण्य स्वाहा'** इस मन्त्र को जपता हुआ खोदे । फिर(१)'ॐ सर्वव्या-

(१) शतावरी आदि उखाड़ने का जो मन्त्र है उसमें कई **"सर्व्वव्याधिनाशिन्यै"** के स्थान पर **"साधनीये"** ऐसा कहते हैं । तथा औषध ग्रहण करने के दूसरे साधारण ये भी नियम हैं, जहां विशेष मन्त्रादि नहीं दिये गये हैं उस स्थान के लिये ।

गृह्णीयात्तानि सुमनाः शुचिः प्रातः सुवासरे । आदित्यसंमुखो मौनी नमस्कृत्य शिवं हृदि । साधारणधराद्द्रव्यं गृह्णीयादुत्तराश्रितम् ।

इस तेल का पाक भी पृथक् २ ही करे ।

धिविनाशिन्यै स्वाहा' इस मन्त्र का पाठ करता हुआ उखाड़े तथा तैल सिद्ध होने पर **'ॐ कुमारजीविन्यै स्वाहा'** इस मन्त्र का जप कर पान करे ॥ १३३–१४१ ॥

कासीसाद्यं तैलमर्श आदौ—

कासीसं लाङ्गली कुष्ठं शुण्ठी कृष्णा च सैन्धवम् । मनःशिलाश्वऽमारश्च विडङ्गं चित्रको वृषः॥ दन्ती कोशातकीबीजं हेमाह्वा हरितालकम् । कल्कैः कर्षमितैरतैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत् १४३ स्नुह्यर्कपयसी दद्यात्पृथग्द्विपलसंमिते । चतुर्गुणं गवां मूत्रं दत्त्वा सम्यक्प्रसाधयेत् ॥१४४॥ कथितं खरनादेन तैलमर्शोविनाशनम् । क्षारवत्पातयत्येतदर्शांस्यभ्यङ्गतो भृशम् ॥१४५॥ वलीनं दूषयत्येतत्क्षारकर्मकरं स्मृतम् ॥ १४६ ॥

हीराकसीस, कलिहारी, कूट, सोंठ, पीपर, सेंधानमक, मैनसिल, कनेर की जड़, वायविडङ्ग, चीतामूल, कूड़े की छाल, दन्ती की जड़, कड़वी तोरई के बीज, सत्यानाशी, तबकिया हरताल, प्रत्येक एक एक कर्ष लेकर अच्छी तरह कल्क कर ले । इसे एक प्रस्थ तैल में डालकर उसमें सेहुण्ड का दूध दो पल, आक का दूध दो पल तथा गोमूत्र ४ प्रस्थ देकर ठीक विधान से तैल सिद्ध करले । आचार्य **खरनाद** ने बवासीर के मस्सों को नाश करने के लिये इस तैल को कहा है । बारं बार मस्सों पर इसे लगाने से **क्षार** जैसा यह मस्सों को गिरा देता है । यह तेल क्षार का काम करता है पर गुदा की वलियों (आंटों) को दूषित नहीं करता है ।

विमर्श—इसीमें इसकी तारीफ है । यह अवश्य फायदा लाता है । यदि कोई कोमल स्वभाव पुरुष इसे सहन न कर सके तो इसमें थोड़ा मीठे बादामों का तेल मिलाकर कुछ कम शक्ति कर देवे पर समय कुछ अधिक लगेगा ॥ १४२–१४६ ॥

पिण्डतैलं वातरक्ते—**मञ्जिष्ठासारिवासर्जयष्टीसिक्थैः पलोन्मितैः । पिण्डाख्यं साधयेत्तैलमभ्यङ्गाद् वातरक्तनुत् ॥ १४७ ॥**

मंजीठ, अनन्तमूल, राल, मुलेठी तथा बडी मधुमक्खी का मोम प्रत्येक पल प्रमाण ले कल्क कर एक प्रस्थ तैल, ४ प्रस्थ जल देकर सिद्ध करे । यह तैल वातरक्त को दूर करता है ।

विमर्श—इसे ऊपर अभ्यङ्ग करना चाहिये । वातरक्त से जब हाथ–पैर फटने लगते हैं तो उसमें यह बड़ा लाभ करता है । इस **पिण्डतैल** में (१)अरंड का तेल ग्रहण करे ॥ १४७ ॥

अर्कतैलं कुष्ठरोगादौ—**अर्कपत्ररसे पक्वं हरिद्राकल्कसंयुतम् । नाशयेत्सार्षपं तैलं पामां कच्छूं विचर्चिकाम् ॥ १४८ ॥**

---

(१) इस तेल में कई आचार्य **एरण्डतेल** का ग्रहण करते हैं । साथ ही गाय का दूध भी देते हैं । जैसे—

सारिवासर्जयष्ट्याह्वामधूच्छिष्टैः पयोऽन्वितैः । सिद्धमेरण्डजं तैलं वातरक्तरुजाऽपहम् ।

इस तेल के पाक होने पर कल्क का रूप मोम आदि के कारण पिण्ड जैसा हो जाता है इसीसे इसे **पिण्डतैल** कहते हैं ।

सरसों का तैल एक प्रस्थ लेकर उसमें १६ तोला, हलदी का कल्क तथा आक के पत्तों का स्वरस ४ प्रस्थ एवं कल्कपाकार्थ ४ प्रस्थ जल देकर तैल साधन करे। अभ्यङ्ग से यह तैल पामा, खुजली एवं विचर्चिका का नाश करता है।

विमर्श—पामा और कच्छु पर हमारा **परीक्षित** है ॥ १४८ ॥

मरिचादितैलं कुष्ठ- **मरिचं हरितालं च त्रिवृतं रक्तचन्दनम् ।**
व्रणादौ-- **मुस्तं मनःशिला मांसी द्वे निशे देवदारु च ॥ १४९ ॥**
विशाला करवीरं च कुष्ठमर्कपयस्तथा । तथैव गोमयरसं कुर्यात्कर्षमितान्पृथक् ॥१५०॥
विषं चार्द्धपलं देयं प्रस्थं च कटुतलकम् । गोमूत्रं द्विगुणं दद्याज्जलं च द्विगुणं भवेत्॥१५१
मरिचाद्यमिदं तैलं सिध्मकुष्ठहरं परम् । जयेत्कुष्ठानि सर्वाणि पुण्डरीकं विचर्चिकाम्।
पामां श्वित्राणि रक्तं च कण्डूं कच्छूं प्रणाशयेत् ॥ १५२ ॥

कालीमिर्च, तबकिया हरताल, निसोथ, लालचन्दन, नागरमोथा, मैनसिल, जटामांसी, हलदी, दारुहलदी, देवदारु, इन्द्रायण की जड़, कनेर की जड़, कूट, आक का दूध तथा गोबर का रस प्रत्येक एक एक कर्ष ले उत्तम कल्क बनावे। मीठा विष दो कर्ष लेकर इसे भी कल्क करे। इनको एक प्रस्थ कडुवे तैल में देकर दो प्रस्थ गोमूत्र तथा दो प्रस्थ जल (१)देकर तैल साधन करे। यह **मरिचाद्य तैल** है। इसका उपयोग करने से कोढ़ तथा व्रण नष्ट होते हैं। सब तरह के (१८) कोढ़, पुण्डरीक, विचर्चिका, पामा, श्वित्र, रक्त, कण्डू, कच्छु आदि नष्ट हो जाते हैं ॥ १४९-१५२ ॥

त्रिफलाऽऽदितैल- **त्रिफलाऽरिष्टभूनिम्बं द्वे निशे रक्तचन्दनम् ।**
मरूंषिकायाम्– **एतैः सिद्धमरूंषीणां तैलमभ्यञ्जने हितम् ॥ १५३ ॥**

हरड़, बेहेड़ा, आमला, नीम की छाल, चिरायता, हलदी, दारुहलदी तथा लाल चन्दन प्रत्येक आधी आधी छटांक ले सिल पर कल्क करे। फिर एक सेर तिलतैल में ४ सेर जल तथा इस कल्क को देकर सिद्ध कर लो। यह तैल सिर में होने वाली फुंसियों पर लगाने से निश्चय ही आराम कर देता है।

विमर्श—इसके सिवाय अन्यान्य घाव आदि को भी अच्छा करता है ॥ १५३ ॥

निम्बबीजतैलं **भावयेन्निम्बबीजानि भृङ्गराजरसेन हि ।**
पलिते— **तथाऽसनस्य तोयेन तत्तैलं हन्ति नस्यतः ॥ १५४ ॥**

---

(१) यहां द्रवद्वैगुण्य की परिभाषा कर जल चौगुना नहीं लेना चाहिये दुगुना ही लेना चाहिये। और दुगुना गोमूत्र लेना चाहिये तथा कड़ुए तेल को पूर्वरीत्यनुसार मूर्च्छित कर गोमूत्र में पहले पका लेना चाहिये। और तब अन्य द्रव्यों का द्विगुण जल में पाक करना चाहिये।

कडुये तेल के मूर्च्छनार्थ द्रव्य—

वयस्यारजनीमुस्तबिल्वदाडिमकेशरैः । कृष्णजीरकह्रीबेरनीलकैः सबिभीतकैः ।
एतैः समांशैः प्रस्थं च कर्षमात्रं प्रयोजयेत् । अरुणा-द्विपलं तत्र तोयं चाढकसम्मितम्॥
कटुतलं पचेत्तेन चामदोषहरं परम् ॥

अकालपलितं सद्यः पुंसां दुग्धान्नभोजिनाम् ॥ १५५ ॥

नीम के बीजों की गिरी लेकर उसमें भांगरे के रस की २१ भावना देवे तथा विजयसार के काढे की भी २१ भावना (१)देवे । फिर यंत्र में दबाकर उसका तेल निकाल लेवे । इस तेल का नस्य लेवे तथा पथ्य में दूध–भात खाय तो बेसमय सफेद हुए बाल फिर काले हो जाते हैं ॥ १५४–१५५ ॥

यष्टीमधुकतैलं खालते— **यष्टीमधुकक्षाराभ्यां नवधात्रीफलैः शृतम् ।**
तैलं नस्यकृतं कुर्यात्केशान्श्मश्रूणि सङ्घशः ॥ १५६ ॥

मुलेठी और जवाखार का मिलित १ पाव का कल्क, तिल तैल १ सेर तथा ताजे आँवलों का स्वरस ४ सेर । पहले कल्क तथा ४ सेर जल से तैलपाक करे फिर आँवलों के रस से । इस तेल का नस्य लेने से बाल तथा दाढ़ी–मूँछ गुच्छे के गुच्छे होकर निकल आते हैं याने बहुत घने पैदा होते हैं ॥ १५६ ॥

करञ्जतैलमिन्द्रलुप्तरोगे—

करञ्जश्चित्रको जाती करवीरश्च पाचितम् । तैलमेभिर्हुतं हन्यादभ्यङ्गादिन्द्रलुप्तकम्॥१५७॥

करंज की गिरी या पत्ते, चीतामूल या उसके पत्ते, चमेली के पत्ते तथा कनेर के पत्ते सम भाग ले कल्क कर, कल्क से चौगुना तिलतैल तथा तैल से चौगुना जल ले तैल सिद्ध करे । इस तेल की मालिश करने से सिर के बाल या दाढ़ी जो झड़ गये हों शीघ्र ही उग आते हैं१५७

नीलिकाऽऽद्यं तैलं केशकल्पादौ—

नीलिका केतकीकन्दं भृङ्गराजः कुरण्टकः । तथाऽर्जुनस्य पुष्पाणि बीजकात्कुसुमान्यपि ॥
कृष्णास्तिलाश्च तगरं समूलं कमलं तथा । अयोरजः प्रियङ्गुश्च दाडिमत्वग्गुडूचिका १५९
त्रिफला पद्मपङ्कश्च कल्कैरेभिः पृथक्पृथक् । कर्षमात्रैः पचेत्तैलं त्रिफलाक्काथसंयुतम् १६०
भृङ्गराजरसेनैव सिद्धं केशस्थिरीकृतम् । अकालपलितं हन्ति दारुणं चोपजिह्विकाम् १६१

नील के पत्ते, केवड़े की जड़, भांगरा, पियाबांसा, अर्जुनवृक्ष के फूल, बिजयसार, चमेली के फूल, काले तिल, तगर, कमल का कन्द, कमलफूल, लोहचूर्ण, प्रियंगु, अनार का बकला, गिलोय, हरड़, बेहेड़ा, आँवला तथा कमल के जड़ की कीच प्रत्येक कर्ष प्रमाण ले कल्क करे । इस कल्क से चौगुना त्रिफला क्वाथ तथा उतना ही भांगरे का रस देकर तैल सिद्ध करे । इसका तीन पाक करे **पहले** कल्क से, **दूसरे** त्रिफले के काढ़े से तथा **तीसरे** भांगरे के रस से । इस तैल की मालिश सिर पर खुब करने से बाल स्थिर याने गिरते रहने से गिरना बन्द हो जाता तथा बाल दृढ़मूल होते हैं । बेसमय बाल की सफेदी, दारुण तथा उपजिह्विका रोग नष्ट हो जाता है ॥ १५८–१६१ ॥

भृङ्गराजतैलमकालपलितादौ— **भृङ्गराजरसेनैव लोहकिट्टं फलत्रिकम् ।**
सारिवां च पचेत्कल्कैस्तैलं दारुणनाशनम् ।

(१) भावना के लिये स्वरस या क्वाथ उतना ही देना चाहिये जो दिन में सूख जावे इससे अधिक समय तक रहने से बीज सड़ जावेंगे।

अकालपलितं कण्डूमिन्द्रलुप्तं च नाशयेत् ॥ १६२ ॥

लोहकीट, हरड़, बेहेड़ा, आंवला तथा श्यामालता सम भाग कल्क कर उससे चौगुना तिल तैल एवं तेल से चौगुना भांगरे का रस(१) तथा उतना ही जल भी कल्कपाकार्थ एकत्र कर तैल साधन करे। इस तैल की सिर पर मालिश करने से दारुण, अकाल में बाल का पकना, खुजली तथा इन्द्रलुप्त नष्ट हो जाता है ॥ १६२ ॥

इरिमेदाद्यं तैलं मुख- दन्तरोगादौ— इरिमेदत्वचं क्षुण्णां पचेच्छतपलोन्मिताम् । जलद्रोणे ततः क्वाथं गृह्णीयात्पादशेषितम् ॥ १६३ ॥

तैलस्यार्द्धाढकं दत्त्वा कल्कैः कर्षमितैः पचेत् । इरिमेदलवङ्गाभ्यां गैरिकागरुपद्मकैः॥१६४
मञ्जिष्ठालोध्रमधुकैर्लाक्षान्यग्रोधमुस्तकैः । त्वग्जातीफलकर्पूरकङ्कोलखदिरैस्तथा ॥१६५॥
पतङ्गधातकीपुष्पसूक्ष्मैलानागकेशरैः । कट्फलेन च संसिद्धं तैलं मुखरुजं जयेत् ॥१६६॥
प्रदुष्टमांसं पलितं शीर्णदन्तं च सौषिरम् । श्यावदन्तं प्रहर्षं च विद्रधिं कृमिदन्तकम् १६७
दन्तस्फुटं च दौर्गन्ध्यं जिह्वाताल्वोष्ठजां रुजम् ॥ १६८ ॥

दुर्गन्ध खैर की छाल १०० पल (५ सेर) लेकर एक द्रोण (१२ से० १३ छ०) जल में पकाकर चौथाई शेष रख काढ़ा छान लेवे। इस क्वाथ से आधा आढक (३२ पल) तैल, दुर्गन्ध खैर की छाल, लौंग, गेरू माटी, अगुरु, पद्माख, मंजीठ, लोध, मुलेठी, लाख (इसके स्थान में लाख का रस लिया जाता है), वड़ के अंकुर, नागरमोथा, दालचीनी, जायफल, कर्पूर, कङ्कोल, खैरसार, कुचन्दन, धाय के फूल, छोटी इलायची, नागकेसर तथा कायफल प्रत्येक का एक एक कर्ष लेकर कपूर के सिवाय सब का कल्क देकर एवं पाकार्थ चतुर्गुण जल भी देकर तैल सिद्ध करे। तैल छान कर उसमें खूब महीन पीस कर कपूर का प्रक्षेप करे। यह तैल सब मुखरोगों को नाश करता है। मसूड़ों का सड़ना, पलित, शीर्णदन्त, सौषिर, श्यावदन्त, प्रहर्ष, दन्तविद्रधि, कृमिदन्त तथा दाँतों का फड़कना आदि दन्तरोग, मुख की दुर्गन्धि, जीभ की पीड़ा, तालु की पीड़ा तथा ओंठ की पीड़ा को यह तैल दूर करता है।

विमर्श—इसका उपयोग गण्डूष याने कुल्ले कराने में, फाहे से रखने में तथा मालिश करने में यथायोग्य व्यवहार होता है ॥ १६३–१६८ ॥

जात्यादितैलं नाडी व्रणादौ— जातीनिम्बपटोलानां नक्तमालस्य पल्लवाः । सिक्थं समधुकं कुष्ठं द्वे निशे कटुरोहिणी ॥ १६९ ॥

मञ्जिष्ठा पद्मकं लोध्रमभया नीलमुत्पलम् । तुत्थकं सारिवाबीजं नक्तमालस्य दापयेत्१७०
एतानि समभागानि पिष्ट्वा तलं विपाचयेत् । नाडीव्रणे समुत्पन्ने स्फोटके कच्छुरोगिषु१७१

(१) कहीं कहीं इस योग में **भृङ्गराजरस न** देकर भृङ्गराज का भी कल्क ही देकर पकाने का विधान है, जैसे—

भृङ्गराजत्रिफलोत्पलशारी लोहपुरीषसमन्वितकारि ।
तैलमिदं पच दारुणहारि कुञ्चितकेशघनस्थिरकारि ॥

सद्यःशस्त्रप्रहारेषु दग्धविद्धेषु चव हि । नखदन्तक्षते देहे व्रणे दुष्टे प्रशस्यते ।) ॥१७२॥

चमेली के पत्र, नीम के पत्र, पटोल के पत्र, करंज के पत्र, मधुमक्खी का मोम, मुलेठी, कूट, हलदी, दारुहलदी, कुटकी, मंजीठ, पद्माख, लोध, हरड़, नील कमल, तूतिया, श्यामा लता, करंज की गिरी प्रत्येक समभाग ले कल्क कर कल्क से चौगुना तिलतैल एवं तेल से चौगुना जल देकर तेल सिद्ध करे । यह तैल नासूर, फोड़े, कच्छु, तुरंत शस्त्र से कटा घाव, जला घाव, छिदा हुआ घाव, नख या दांत का चत तथा दुष्ट व्रण में उत्तम फल देता है ॥ १६९-१७२ ॥

हिङ्ग्वादितैलं कर्णशूले— हिङ्गुतुम्बुरुशुण्ठीभिः कटुतैलं विपाचयेत् ।
तस्य पूरणमात्रेण कर्णशूलं प्रणश्यति ॥ १७३ ॥

हींग, धनियां और सोठ समभाग ले कल्क कर उससे चौगुना (१)कडुवा तैल एवं तेल से चौगुना जल देकर तैलपाक करे । इस तेल को कान में (२)पूरण करने से याने कान में पूरा भरकर कुछ देर (१०० मात्रा) तक (३)रखने से कर्णशूल तुरंत शान्त हो जाता है ॥१७३॥

बिल्वादितैलं बाधिर्ये— बालबिल्वानि गोमूत्रे पिष्ट्वा तलं विपाचयेत् ।
साजक्षीरं च नीरं च बाधिर्यं हन्ति पूरणात् ॥ १७४ ॥

कच्चे बेल की गिरी को गोमूत्र में पीस उससे चौगुना कडुवा तैल तथा तेल से चौगुना गोमूत्र एवं चौगुना बकरी का दूध एवं चौगुना जल देकर तैल पाक(४)करे । इस तेल को कान में पूरण करने से बहरापन नष्ट होता है ।

विमर्श—कहीं कहीं जल विना भी पाक करते हैं पर अच्छा यह है कि पहले सिर्फ दुग्ध में, फिर गोमूत्र में तथा तृतीय बार कल्क तथा जल में पाक करे अथवा यदि जल न दे तो कल्क तथा गोमूत्र का पाक एक ही दफे कर डाले ॥ १७४ ॥

क्षारतैलं कर्णरोगेषु—बालमूलकशिम्बीनां क्षारः क्षारयुगं तथा ।
लवणानि च पञ्चैव हिङ्गु शिग्रु महौषधम् ॥ १७५ ॥

---

(१) सरसों का तेल यहां तीक्ष्ण होने के कारण ग्रहण किया गया है ।

(२) **पूरण** शब्द से कर्णपूरण ही समझना चाहिये जैसे कहा है—

'धारयेत् पूरणं कर्णे कर्णशूलविमर्दनात् । रुजः स्यान्मार्दवं यावन्मात्राशतमवेदनः ॥'

(३) अब प्रसंगवश मात्रा का लक्षण भी लिख देते हैं—

यावत् पर्येति हस्ताग्रं दक्षिणे जानुमण्डले ।
निमेषोन्मेषकालं वा सा मात्रा परिकीर्त्तिता ॥

(४) पाक अलग २ करना चाहिये गोमूत्रादि का और इस योग में ग्रन्थान्तर में जल देना नहीं लिखा है जैसे—

फलं बिल्वस्य मूत्रेण पिष्ट्वा तैलं विपाचयेत् । सक्षीरं तच्च विपचेद् बाधिर्ये कर्णपूरणम् ॥

परन्तु जल के बिना पाक सम्यक् नहीं होगा इसलिये जल अवश्य देना चाहिये ।

देवदारु वचा कुष्ठं शतपुष्पा रसाञ्जनम् । ग्रन्थिकं भद्रमुस्तं च कल्कैः कर्षमितैः पृथक् ॥
तैलप्रस्थं च विपचेत्कदलीबीजपूरयोः । रसाभ्यां मधुशुक्तेन चातुर्गुण्यमितेन च ॥१७७॥
पूयस्रावं कर्णनादं शूलं बधिरतां कृमीन् । अन्यांश्च कर्णजान्रोगान्मुखरोगांश्च नाशयेत् ॥

कच्ची मूलियों को सुखाकर प्राप्त किया क्षार, जवाखार, सज्जीखार, सेंधानमक, कालानमक विडनमक, समन्दर नमक तथा साम्भर नमक, हींग, सैंजन के जड़ का रस, सोंठ, देवदारु, बच, कूट, सौंफ, रसौत, पिप्पलीमूल, नागरमोथा, प्रत्येक का एक एक कर्ष लेकर कल्क करे। एक प्रस्थ कड़ुवा तेल मूर्च्छित किया हुआ लेकर **पहले** केले के जड़ का रस ४ प्रस्थ देकर पाक करे। **दूसरा पाक** ४ प्रस्थ बिजौरा नीबू का रस देकर करे। **तीसरा पाक** मधुशुक्त (आगे कहा जायगा) ४ प्रस्थ देकर करे, एवं **चौथा पाक** ऊपर कहे कल्क तथा ४ प्रस्थ जल देकर करे। फिर छान कर रख लेवे। इस तेल को कर्ण में पूरण करने से कर्णस्राव, कर्णनाद, कर्णशूल, बहरापन, कान में कीड़ों का पड़ना तथा अन्यान्य कान के रोग एवं गण्डूष आदि से मुख के रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १७५-१७८ ॥

मधुशुक्तम्—**जम्बीराणां फलरसः प्रस्थैकः कुडवोन्मितम् ।**
माक्षिकं तत्र दातव्यं पलैका पिप्पली स्मृता ॥ १७९ ॥
एतदेकीकृतं सर्वं मृद्भाण्डे च निधापयेत् । यवाम्भो मधुसंयुक्तं शृङ्गवेरगुडान्वितम् ॥
धान्यराशिस्थितं मासं मधुशुक्तमुदाहृतम् ॥ १८० ॥

जम्भीरी नीबू का रस एक प्रस्थ, शहद एक कुड़व (१६ तोले) तथा पीपर ४ तोला एकत्र मिट्टी के पात्र में रख मुँह बन्दकर अनाज के ढेर में एक मास रख दे। फिर निकाल ले। यह **मधुशुक्त** है। अथवा जौके मांड में शहद, अदरख तथा गुड़ ठीक मात्रा में मिला कर धान के ढेर में तीन दिन-रात रहने दे। फिर निकाल ले तो **मधुशुक्त** (१)तैयार हो जाता है ॥ १७९-१८० ॥

पाठाऽऽदितैलं पीनसे— **पाठा द्वे च निशे मूर्वापिप्पलीजातिपल्लवैः ।**
दन्त्या च तैलं संसिद्धं नस्यं स्याद् दुष्टपीनसे ॥ १८१ ॥

पाठा, हलदी, दारुहलदी, मूर्वा, पीपर, चमेली की पत्ती, तथा दंती की जड़ समभाग ले कल्क कर कल्क से चौगुना तिलतैल एवं तेल से चौगुना जल देकर तैल सिद्ध कर लेवे। इसका नस्य लेने से दुष्ट पीनस याने जो पीनस बारंबार लौटता रहता है वह आराम हो जाता है ॥ १८१ ॥

---

(१) तन्त्रान्तर से मधुशुक्तविधान—
यन्मस्त्वशुचौ भाण्डे सक्षौद्रगुडकाञ्जिकम् ।
धान्यराशौ त्रिरात्रस्थं शुक्तं चुक्रं तदुच्यते ॥
अथवा—**जम्बीरस्य फलरसं पिप्पलीमूलसंयुतम् ।**
मधुभाण्डे विनिक्षिप्य धान्यराशौ निधापयेत् । मासेन तज्जातरसं मधुशुक्तमुदाहृतम् ॥

व्याघ्रीतैलं पीनसे— **व्याघ्रीदन्तीवचाशिग्रुतुलसीव्योषसैन्धवैः ।**
कल्कैश्च पाचनं तैलं पूतिनासागदापहम् ॥ १८२ ॥

छोटी कटेली की जड़, दन्ती की जड़, बच, सैजन की जड़, तुलसी की पत्ती, सोंठ, पीपर, काली मिर्च तथा सेंधा नमक सम भाग ले कल्क कर उसका चौगुना तिलतेल, तेल से चौगुने जल में पका कर सिद्ध कर लेवे । इस तैल के पान से कफ का पाचन होता तथा नस्य लेने से पूतिनासा तथा उसका स्राव दूर होता है ॥ १८२ ॥

कुष्ठादितैलं छिक्कायां–**कुष्ठं बिल्वकणाशुण्ठीद्राक्षाकल्ककषायवत् ।**
साधितं तैलमाज्यं वा नस्यात्क्षवथुनाशनम् ॥ १८३ ॥

कूट, बेल की छाल, पीपर, सोंठ तथा दाख सम भाग कल्क करे । इस कल्क का चौगुना फिर यही द्रव्य ले चौगुने जल में काढ़ा बनाय चौथाई शेष पर उतार छान लेवे । फिर तिलतैल या घृत काढ़े के बराबर लेवे और उसमें ऊपर का कल्क, काढ़ा तथा चौगुना जल देकर तेल या घृत सिद्ध कर लेवे । इस तेल या घृत का नस्य लेने से छींक आने का रोग बन्द हो जाता है ॥ १८३ ॥

गृहधूमतैलं नासाऽर्शसि—**गृहधूमकणादारुक्षारनक्ताह्वसैन्धवैः ।**
सिद्धं शिखरिबीजैश्च तैलं नासाऽर्शसां हितम् ॥ १८४ ॥

घर का धूआं (भूल), पीपर, देवदारु, जवाखार, करञ्ज की गिरी, सेंधा नमक तथा चिरचिरे का बीज सम भाग कल्क करे । कल्क से तैल चतुर्गुण एवं तैल से जल चतुर्गुण लेकर तैल सिद्ध करे । इस तेल का नस्य लेने से नासाऽर्श या नाक का बवासीर नष्ट हो जाता है ॥ १८४ ॥

वज्रतैलं कुष्ठादौ— **वज्रीक्षीरं रविक्षीरं द्रवं धत्तूरचित्रजम् ॥ १८५ ॥**
महिषीविड्भवं द्रावं सर्वांशं तिलतैलकम् । पचेत्तैलावशेषं च गोमूत्रेऽथ चतुर्गुणे॥१८६॥
तैलावशेषं पक्त्वा च तत्तैलं प्रस्थमात्रकम् । गन्धकाग्निशिलातालं विडङ्गातिविषाविषम्
तिक्तकोशातकीकुष्ठवचामांसीकटुत्रयम् । पोतदारु च यष्ट्याह्वं स्वर्जिकाक्षारजीरकम्।१८८
देवदारु च कर्षांशं चूर्णं तैले विनिक्षिपेत् । वज्रतैलमिदं ख्यातमभ्यङ्गात्सर्वकुष्ठनुत् १८९

सेहुंड का दूध १ प्रस्थ, आक का दूध १ प्रस्थ, धतूर के पत्ते का रस १ प्रस्थ, चीते के पत्ते का रस १ प्रस्थ तथा भैंस के गोबर का रस एक प्रस्थ एकत्र कर इसमें एक प्रस्थ तिलतैल पाक करे । पाक हो जाने पर **दूसरा पाक** ४ प्रस्थ गोमूत्र से करे । फिर तेल को छान कर रख लेवे । इस १ प्रस्थ तेल में शुद्ध गन्धक, शुद्ध भिलावे, शुद्ध मैनसिल, शुद्ध हरताल तबकी, वाय विडङ्ग, अतीस, मीठा विष, कड़वी तोरई, कूट, बच, जटामांसी, सोंठ, मरिच, पीपर, दारुहलदी, प्रत्येक एक एक कर्ष ले अत्यन्त महीन चूर्णकर मिलादेवे । और उत्तम शीशीमें रखलेवे। (१)यह

---

(१) इस योग में सिद्ध होने पर चूर्ण का प्रक्षेप करना चाहिये । और पहले प्रक्षेप द्रव्य को थोड़े सिद्ध तेल में खूब मिला लेना चाहिये जब लेह जैसा हो जावे तब सब में मिलाना चाहिये । इसके कल्क का पाक नहीं होता है ।

विख्यात **वज्रतैल है**। इसके अभ्यङ्ग याने लगाने से सब प्रकार के (१८) कोढ़ नष्ट हो जाते हैं ॥ १८५-१८९ ॥

करवीरतैलं लोमशातनार्थम्— **करवीरशिफादन्तीत्रिवृत्कोशातकीफलम् ।**
रम्भाक्षारोदके तैलं प्रशस्तं लोमशातनम् ॥ १९० ॥

कनेर की जड़ की छाल, चीते की जड़, दन्ती की जड़, निसोथ तथा कड़वी तोरई का गूदा सम भाग ले कल्क से चौगुना तिलतैल एवं तैल से चौगुना केले के जड़ का चार एवं कल्कपाकार्थ चारोदक समजल एकत्र कर तैल सिद्ध करे । यह तैल बाल उड़ाने के लिये उत्तम है।

विमर्श—क्षारोदक की विधि यह है कि–सूखे केले के स्तम्भ को जलाकर राख कर ले। फिर उस राख को छः गुने पानी में अच्छी तरह घोल कर चार तह के कपड़े में २१ बार छान ले या फिलटर करले। यह छना हुआ जल **क्षारोदक** है ॥ १९० ॥

चन्दनादितैलं क्षयरोगादौ— **(चन्दनाम्बुनखैर्यास्यं यष्टीशैलेयपद्मकम् ।**
मञ्जिष्ठा सरलं दारु सेव्यैलं पूतिकेसरम् ॥ १९१ ॥
पत्रकैलं मुरा मांसी कङ्कोलं वनिताऽम्बुदम् । हरिद्रा सारिवा तिक्ता लवङ्गागरुकुङ्कुमम् ॥ १९२ ॥
त्वग्रेणुनलिका चेति तैलं मस्तु चतुर्गुणम् । लाक्षारससमं सिद्धं ग्रहघ्नं बलवर्द्धनम् ॥ १९३ ॥
अपस्मारज्वरोन्मादकृत्याऽलक्ष्मीविनाशनम् । आयुःपुष्टिकरं चैव वशीकरणमुत्तमम् ॥
विशेषात्क्षयरोगघ्नं रक्तपित्तहरं परम् ।) ॥ १९४ ॥

श्वेतचन्दन, सुगंधवाला, नख, रक्तचन्दन, मुलेठी, शैलेय, पद्माख, मंजीठ, सरल धूप, देवदारु, खस, बड़ी इलायची, पूतिकेसर (गन्धमार्जारवीर्य), तेजपात, छोटी इलायची, मुरा, जटामांसी, काकोली, फूलप्रियंगु, नागरमोथा, हलदी, श्यामालता, लता कस्तूरी, लौंग, अगुरु, केशर, दालचीनी, रेणुका तथा नलिका सम भाग ले कल्क करे। कल्क से चौगुना तेल के बराबर लाख का रस या क्वाथ, तैल का चौगुना दही का तोड़ एवं कल्क-पाकार्थ जल चौगुना ले एकत्र पाक कर तैल सिद्ध करे। यह तैल ग्रहों के दोष को नाश करता, मालिश करने से ताक़त को बढ़ाता, अपस्मार, ज्वर, पागलपन, कृत्या तथा अलक्ष्मी को नाश करता, आयु की पुष्टि करता तथा वशीकरण के लिये उत्तम है। यह खास करके क्षयरोग को नाश करता तथा रक्तपित्त के विनाश करने में अति उत्तम है ॥ १९१-१९४ ॥

वचाऽऽदितैलं गण्डमालायाम्— **(वचां शटीं हरिद्रे द्वे देवदारुमहौषधौ ।**
हरीतकीमतिविषामुस्तकेन्द्रयवान्समान् ॥ १९५ ॥
एतान्दशपलान्भागांश्चतुर्द्रोणेऽम्भसः पचेत् । चक्रमर्दरसैस्तैलं कटुकं मृदुनाऽग्निना ॥ १९६ ॥
पादशेषे विनिक्षिप्य सिन्दूरमवतारयेत् । एतत्तैलं निहन्त्याशु गण्डमालां सुदारुणाम्) ॥ १९७ ॥

वच, कचूर, हलदी, दारुहलदी, देवदारु, सोंठ, हरड़, अतीस, नागरमोथा, इन्द्रजौ प्रत्येक दस दस पल लेकर ४ द्रोण जल में पकावे और एक द्रोण (१२ सेर १३ छ०) जल शेष

हने पर उतार कर छान लेवे। इस क्वाथ में कड़ तैल ४ प्रस्थ, चकवड़ के पंचाङ्ग का स्वरस १ स्थ देकर तथा चतुर्गुण (१६ प्रस्थ) जल भी देकर सिद्ध करे। तेल सिद्ध होने पर उतार न कर उसमें असली सीसे का (१)सिंदूर १ प्रस्थ (६४ तोले) मिला देवे। इस तेल के लगाने गण्डमाला दारुण भी हो तो नष्ट हो जाती है॥ १९५–१९७॥

लाङ्गलीतैलं गण्डमालायाम्— **निर्गुण्डीस्वरसे तैलं लाङ्गलीमूलकल्कितम्।**
तैलं नस्यान्निहन्त्याशु गण्डमालां सुदारुणाम्॥ १९८॥

कलिहारी की जड़ १२ तोले ले कल्क करे। फिर १ प्रस्थ कड़वा तेल में उसे दे उसमें ४ स्थ संभालू के पत्तों का स्वरस एवं कल्क के पाक के लिये जल ४ प्रस्थ देकर तैल सिद्ध कर वे। इस तैल का नस्य लेने से कठिन गण्डमाला भी आरोग्य हो जाती है।

विमर्श—इस तैल में जहर है अतः इसकी अवचारणा में जरा सावधान रहना चाहिये योंकि इसकी तेजी से रोगी को यदि सहन न हुवा तो ज्वर हो आता है। ऐसी हालत में सके या विकार के दूर होते तक इसे देना बन्द करदे तथा पुनः प्रयोग में कम मात्रा ले॥ १९८॥

धत्तूरादितैलं वातरोगादौ— **(धत्तूररसमादाय हयमारान्तिकारसम्।**
भृङ्गराजरसश्चैव सारिणी निम्बपत्रकम्॥ १९९॥
शोभाञ्जनश्चित्रकश्च अश्वगन्धा प्रसारिणी।
शिरीषः कुटजोऽनन्ता शाल्मली नक्तपत्रकम्॥ २००॥

विप्रियो महानिम्बो डिण्डिघोषा महेरणा। बला ज्योतिष्मती चैव श्यामाकश्चक्रमर्दकः॥
तेस्तु रसमादाय तैलतुल्यं च दीयते। देवदारु हरिद्रे द्वे मांसी कुष्ठं सचन्दनम्॥ २०२॥
रिचं त्रिवृता दन्ती हरितालं मनःशिला। कम्पिल्लको गन्धकश्च खदिरः पिप्पली वचा
ञ्जनं च सिन्दूरं श्रीवासो रक्तचन्दनम्। इरिमेदस्तथा तुम्बी मञ्जिष्ठा सिन्दुवारकः॥ २०४
वीरजटा रास्ना विश्वा श्रेष्ठा च पौष्करम्। शटी तालीसपत्रं च प्रियङ्गू रेणुका तथा॥
चातुर्जातकमञ्जीरं कङ्कोलं जातिपत्रिका।
ज्योतिष्मती च पलिका विषस्य द्विपलं भवेत्॥ २०६॥
ढकं कटुतैलस्य गोमूत्रं च चतुर्गुणम्। मृत्पात्रे लोहपात्रे च शनैर्मृद्वग्निना पचेत्॥ २०७
ज्जाश्रितं त्वग्गतं च वातं चास्थिगतं तथा। ऊरुग्रहं चाढ्यवातं कृच्छ्रं दण्डापतानकम्॥
कुब्जत्वं चाथ शोथं च पक्षाघातं तथाऽर्दितम्।
हनुस्तम्भं शिरःकम्पं मूर्च्छितं दृष्टिविभ्रमम्॥ २०९॥
अपस्मारं तथोन्मादं तथा चैवापतन्त्रकम्।
आक्षेपकं चास्थिभग्नं सन्धिभग्नं च नाशयेत्॥ २१०॥)

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायां मध्यखण्डे स्नेहकल्पना-नाम-नवमोऽध्यायः।

---

(१) सिन्दूर एक ऐसी वस्तु है जो तेल में केवल छोड़ देने से नहीं मिल जाती उसे थोड़े ल में खुब फेंट लेवे बाद में सब तेल में मिलावे। और जब काम में लाना हो तब भी मिला- र काम में लावे नहीं तो सिन्दूर तेल में नीचे बैठकर जम जाने की तरह रहता है।

धतूरे के पत्ते का रस, कनेर का रस, भांगरे का रस, अतिबला का रस, नीमपत्र का रस, सँहजने का रस, चीते का रस, असगंध का रस, प्रसारणी का रस, सिरस की छाल का रस, कूड़े की छाल का रस, अनन्तमूल का रस, सेमल की छाल का रस, करंज के पत्ते का रस, लाल कमल का रस, बकायन की छाल का रस, लाल अरंड के जड़ का रस, सल्लकी वृक्ष की छाल का रस, बरियारे के जड़ का क्वाथ, मालकांगुनी का रस या क्वाथ, काले निसोथ का रस या काढ़ा, चकवड़ का रस प्रत्येक तैलतुल्य (४ प्रस्थ) ग्रहण करे। देवदारु, हलदी, दारुहलदी, जटामांसी, कूट, श्वेतचन्दन, कालीमिर्च, निसोथ, दंती की जड़, तबकिया हरताल, मैनसिल, कबीला, गंधक, काला कत्था, पीपर, वच, रसौत, सिन्दूर, सरल धूप, लालचन्दन, दुर्गंध खैर की छाल, तुम्बी, मंजीठ, निर्गुण्डी की छाल, कनेर की जड़, रास्ना, सोंठ, स्थलपद्म, पोहकरमूल, कचूर, तालीसपत्र, प्रियंगु, रेणुका, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेसर, तुलसी, कंकोल, जावित्री और मालकांगनी प्रत्येक एक एक पल तथा मीठा विष दो पल लेवे । कडवा तेल एक आढ़क (४ प्रस्थ) तथा गोमूत्र ४ आढ़क लेवे । पहले प्रत्येक स्वरस या क्वाथ से पृथक् पृथक चतुर्गुण जल दे दे कर पाक करे। फिर कल्कार्थ द्रव्यों का कल्क कर गोमूत्र तथा चतुर्गुण जल देकर पाक करे। पाक सिद्ध हो जाने पर तैल को छान कर रख लेवे । तैल का पाक मिट्टी के मजबूत पात्र किंवा लोहे के पात्र में करे। (१)यह तैल मज्जाश्रित वात, त्वग्गत वात, अस्थिगत वात, ऊरुग्रह, आमवात, मूत्रकृच्छ्र, दण्डापतानक, कुबड़ापन, शोथ, पक्षाघात, अर्दितवात, हनुस्तम्भ, सिर का कांपना, मूर्च्छा रोग, देखने में भ्रम होना, अपस्मार, उन्माद, अपतन्त्रक, आक्षेपक, हड्डी का टूटना, संधों का टूटना आदि सब कठिन वातविकारों का नाश करता है ॥ १९९-२१० ॥

इति श्रीप्रयागदत्तशर्मायुर्वेदाचार्यकृतायां सुबोधिनीनामिकायां श्रीशार्ङ्गधरभाषाटीकायां मध्यखण्डे स्नेहकल्पना-नाम-नवमोऽध्यायः समाप्तः ॥ ९ ॥

अथासवारिष्टादिसन्धानकल्पनानाम—

दशमोऽध्यायः ।

आसवारिष्टसंज्ञा—**द्रवेषु चिरकालस्थं द्रव्यं यत्संधितं भवेत् ।**
आसवारिष्टभेदैस्तु प्रोच्यते भेषजोचितम् ॥ १ ॥

द्रव (जल या क्वाथ आदि) में द्रव्य (गुड़, मधु तथा अन्यान्य औषध) डाल कर मुख मुद्रा देकर चिरकाल याने बहुत समय तक रखने से (यह समय प्रत्येक कल्पना के लिये प्रायः नियत रहती है तथा इनमें ऋतु आदि के अनुसार कमी बेशी भी होती है) जो दवा के काम

(१) इस तैल का प्रयोग, पान, धारण, मर्दन, नस्य, पूरण, पिचु-प्लोतादि सब विधानों से किया जाता है ।

में व्यवहारोपयोगी पदार्थ बनते हैं वे (१)आसव तथा अरिष्ट आदि भेद (सुरा-मैरेय-सीधु आदि) से कहे जाते हैं ॥ १ ॥

आसवारिष्टयोर्भेदः—**यदपक्वौषधाम्बुभ्यां सिद्धं मद्यं स आसवः ।**
अरिष्टः क्वाथसाध्यः स्यात्तयोर्मानं पलोन्मितम् ॥ २ ॥

बिना पकाये याने बिना अग्निसंयोग किये ओषधि तथा जल को संधित कर जो मद्य तैयार किया जाता है उसको **'आसव'** एवम् अग्निसंयोग से पकाये क्वाथ आदि ओषधियों का जो मद्य संधित किया जाता है वह **'अरिष्ट'** कहा जाता है ।

विमर्श—यह भेद सिर्फ कल्पना के हिसाब से है तथा (२)**शार्ङ्गधराचार्य** ने ही यह भेद अपने मन से लिखा है । **चरक** आदि आर्ष ग्रन्थों में (३)पक्वौषधि-युक्त संधान को भी **आसव** एवम् अपक्वौषधिसंधान को अरिष्ट भी माना गया है । अतः यह भेद कोई ऐसा महत्त्व का नहीं

---

(१) **आसव** तथा **अरिष्ट** दोनों एक ही तरह की ओषधि है। क्योंकि जिस शक्ति से आसव स्थायी रहता है उसी शक्ति से अरिष्ट भी स्थायी रहता है। जिस द्रव्य का अरिष्ट गुणकारी होता है उसी द्रव्य का बनाया हुआ आसव भी वही गुण करेगा । महर्षियों ने ओषधियों को अनेक रूप में किया है । जैसे—

सुरामन्थासवारिष्टांल्लेहांश्चूर्णान्ययस्कृतीः।सहस्रशोऽपि कुर्वीत बीजेनानेन बुद्धिमान् ।

इसी प्रकार आसव, अरिष्ट भी किया गया है। अर्थात् ओषधि का सन्धान करके उसमें के सार को पृथक् कर लेने को (चुवा लेने को) **आसव** तथा जो विकारहीन तथा कभी बिगड़ने वाला नहीं हो ऐसी सिद्ध ओषधि को **अरिष्ट** कहते हैं । सन्धित ओषधि के चुआये हुए अंशको **मद्यसार** कहते हैं और यही आसवारिष्ट में रहता है जिससे ये बिगड़ते नहीं हैं। आसव से अरिष्ट कुछ अधिक गुणकारी होता है ।

(२) केवल **शार्ङ्गधर जी** ही आसवारिष्ट में भेद मानते हैं पर **अन्य आचार्य्य** आसवारिष्ट का एक में ही विधान करते हैं । जैसे—

आसवारिष्टयोर्यत्र न गुणो लभ्यते यदा । एकद्वित्रिश्शतं कृत्वा दापयेद् गुणवृद्धये ॥

अन्यच्च— अष्टावशेषितं कृत्वा गुडक्वाथसमं क्षिपेत् ।
गुडं क्वाथ्यौषधसमं जलं चापि चतुर्गुणम् ॥
आसवारिष्टमद्येषु......

यहां आसवारिष्ट में भेद नहीं है ।

(३) इसी प्रकार कई जगह क्वाथ करके भी आसव करने का विधान है, उसे अरिष्ट नहीं कहा जाता । जैसे—

क्वाथ्यद्रव्यं घटसमं जलं दशघटं क्षिपेत् । निक्वाथ्य पादशेषं तु गुडं सार्द्धघटं न्यसेत् ॥
विमृद्य सन्धितं यच्च तच्चैवासवमीरितम् ॥

अस्तु आसवारिष्ट में भेद नहीं जानना चाहिये ।

प्रतीत होता है । वस्तुतः दोनों **मद्यसार** वा **एलकोहल** के बनने से बनते तथा चिरकाल तक रहते हैं । इसलिये इनको एक दूसरे से सर्वथा पृथक् मानना भ्रम है । इन आसव-अरिष्टों की मात्रा(१) एक पल की है ॥ २ ॥

अनुक्तमानारिष्टेषु जलादिमानव्यवस्था— **अनुक्तमानारिष्टेषु द्रवद्रोणे तुलां गुडम् ।**
क्षौद्रं क्षिपेद् गुडादर्द्धं प्रक्षेपं दशमांशिकम् ॥ ३ ॥

जहां आसवारिष्ट में द्रव्यों का मान न कहा हो वहां १ द्रोण (१२ सेर १३ छ०) द्रव में **गुड़** एक तुला (५ सेर), **शहद** गुड़ का आधा याने ढाई सेर एवं प्रक्षेप (पीछे देने के औषध) गुड़ का दसवां भाग याने आधा सेर देवे ।

विमर्श—यह मान सिर्फ अनुक्त स्थान में प्रयुक्त होता है । आसवारिष्टों में सब द्रव्यों का मान निर्दिष्ट रहता है क्योंकि इनका मान द्रव्यों के अवस्था आदि पर निर्भर करते हैं। अतः उन सबका (२)विचार कर वैद्य अपनी बुद्धि लगाकर काम करे ॥ ३ ॥

कथिताकथितभेदाभ्यां सीधोर्लक्षणद्वयम्— **ज्ञेयः शीतरसः सीधुरपक्वमधुरद्रवैः ।**
सिद्धः पक्वरसः सीधुः सम्पक्वमधुरद्रवैः ॥ ४ ॥

ईख के रस आदि मीठे रस वाले द्रवों को विना पकाये ही जो संधान से मद्य बनता है वह **शीतरस सीधु** एवं उनको पकाकर जो संधान किया जाता है उसको **पक्वरस सीधु** कहते हैं । ये **सीधु** के दो भेद हैं ॥ ४॥

सुराप्रसन्नाऽऽदीनां मद्यभेदानां लक्षणानि— **परिपक्वान्नसन्धानसमुत्पन्नां सुरां जगुः ।**
सुरामण्डः प्रसन्ना स्यात्ततः कादम्बरी घना ॥ ५ ॥
तदधो जगलो ज्ञेयो मेदको जगलाद्घनः । पक्वोऽसौ हृतसारः स्यात्सुराबीजं च किण्वकम् ६

---

(१) तथा इसके पान में **"पलोन्मितम्"** और **"जलोन्मितम्"** दो पाठ है जो निरोग शरीरवाले पीवे उनके लिये **जलोन्मित** ही ठीक है, जैसे—

शुद्धकायः पिबेत्प्रातः सोपदंशं पलद्वयम् । मध्याह्ने द्विगुणं तच्च स्निग्धाहारेण पाययेत्॥

मात्रा-इसकी पुष्ट शरीर के लिये १ पल अन्यथा कम भी दिया जाता है ।

(२) आसवारिष्ट में पड़ने वाले गुडादि द्रव्यों की मानपरिभाषा इस प्रकार है—

क्वाथ्यद्रव्यस्य हि समं क्वाथं नीत्वा तु धारयेत् ।
पात्रे मृण्मयके भूमौ निखाते तु गुडं न्यसेत् ॥
क्वाथादर्द्धं ततो द्रव्यं प्रदेयं चाष्टमांशिकम् ।
क्षौद्रं क्षिपेद् गुडादर्द्धं शर्करां च तथा न्यसेत् ॥
कर्कन्धूमूलप्रभृतीन् गुडतुल्यं प्रदापयेत् । धातकीकुसुमं देयं क्षौद्रशर्करयोर्द्विकम् ॥
सम्यक् पक्वं ततो ज्ञात्वा न्यसेद् यन्त्रे प्रसाधयेत् ॥

अन्यच्च—**अरिष्टेषु च सर्वेषु द्रोणे पलशतं गुडम् ।**
चिरस्थायिष्वरिष्टेषु द्विगुणं गुडमावपेत् । क्षौद्रं क्षिपेद् गुडादर्द्धं प्रक्षेपस्तु दशांशिकः ॥

चावल, जौ आदि अन्न को पकाकर उसका संधान करके जो मादक पदार्थ बनता है उसको (१)**'सुरा'** कहते हैं। इस संधान में ऊपर जो स्वच्छ निर्मल भाग होता है उसको **प्रसन्ना** कहते हैं। उसके नीचे के कुछ घन भाग को **'कादम्बरी'** कहते हैं। उससे भी नीचे के घन भाग को **'जगल'** कहते हैं। जगल से भी नीचे जो अधिक घन भाग रहता है उसको **'मेदक'** कहते हैं। सुरा आदि को यंत्र या भभके से उड़ा कर खींच लेने के बाद जो निःसार पदार्थ रह जाता है उसको **'सुराबीज'** या 'किण्व' कहते हैं॥ ५-६॥

वारुणीशुक्तयोर्लक्षणे—**यत्तालखर्जूररसैः सन्धिता सा हि वारुणी।**
कन्दमूलफलादीनि सस्नेहलवणानि च। यत्र द्रवेऽभिषूयन्ते तच्छुक्तमभिधीयते॥७॥

तालफल तथा खजूर से जो संधान करके मद्य तैयार होता है अथवा ताड़-खजूर आदि के वृक्ष के अग्रभाग को काटकर वहीं घड़ा लगा निकले हुए रस का जो मद्य बनता है उसे (२)**वारुणी** कहते हैं। साधारण भाषा में उसको **ताड़ी** कहते हैं।

कन्द-याने सूरन, शकरकंद, आलू आदि, **मूल**-याने मूली, गाजर प्रभृति, **फल**-याने करौंदे, वेर आदि तथा **"आदि"** पदसे पत्र, नाल, पुष्प आदि, **स्नेह**-याने कडुवा तेल, **लवण** तथा हलदी, राई प्रभृति मसाले के साथ एक पात्र में बंद कर संधित होने पर खट्टा पदार्थ बनता है। उसको **शुक्त** कहते हैं। यह भोजन के साथ बड़ा स्वादिष्ट होता है।

विमर्श—कई लोग **शुक्त** को ही **सिरका** समझ बैठते हैं। यह भूल है। सिरका **चुक्र** को कहते हैं जो आगे कहा जाता है। **शुक्त-अचार** का एक भेद है॥ ७॥

चुक्रलक्षणम्—**विनष्टमम्लतां यातं मद्यं वा मधुरद्रवः।**
विनष्टः सन्धितो यस्तु तच्चुक्रमभिधीयते॥ ८॥

जो मद्य विगड़ कर खट्टा हो जाता है अथवा जो मीठा द्रव बिगड़ कर खट्टा हो जाता है उसको संधान करके जो खट्टा पदार्थ मिलता है उसको (३)**चुक्र** या **सिरका** कहते हैं।

---

(१) जो सुरादिक यहां कहे गये हैं वे सभी प्रचलित नहीं हैं अतः इनका विशद विवरण अनुभवियों द्वारा जानना चाहिये।

(२) इसको **वारुणीयन्त्र** से खींचा जाता है इसीसे **वारुणी** कहते भी हैं। पर प्रचलित यही है कि पेड़ के पुष्प के पास काटकर घड़ा लगा दिया जाता है और चुये हुए रस को काम में लाया जाता है।

(३) गुड़, शर्करादिक से अगर **चुक्र (सिरका)** तैयार करना होतो शर्करादिक ५ सेर, २० सेर जल में घोल घड़े में रख उसका मुख बन्दकर शुष्क और उष्ण स्थान पर रख देवे १०-१५ दिन बाद देखे की उसमें पूर्ण अम्लत्व आया है या नहीं, अगर आ गया हो तो छानकर रख ले और दो तीन मास तक प्रति सप्ताह छानता जावे। इसके बनाने के लिये दिनप्रमाण दिया जाता है—

घनात्यये तथा ग्रीष्मे सन्धानं षड्दिनैर्भवेत्।

विमर्श—भारतवर्ष में सिरका बहुधा ईख के रस से तैयार करते हैं। **यूरोप** में इसे मद्य वा शर्करा के घोल से तैयार करते हैं ॥ ८ ॥

हेमन्ते शिशिरे स्थाप्यं भिषजा दिग्दिनावधि। प्रावृडवसन्ते सन्धानं भवेदष्टदिनेन वै॥

अन्य विधि—**यन्मध्वादि शुचौ भाण्डे सगुडक्षौद्रकाञ्जिकम्।**
धान्यराशौ त्रिरात्रस्थं शुक्तं चुक्रं तदुच्यते॥

शुक्तादिकों को यथापूर्व गुरु समझना चाहिये—

जैसे—**गौडानि रसशुक्तानि मद्यशुक्तानि यानि च।**
यथापूर्वं गुरुतराण्यभिष्यन्दकराणि च॥

घोल—गुडादि पदार्थ को अलग निर्दिष्ट क्वाथ या जल में घोल कर कपड़े से छान कर तब घड़े में देना चाहिये, इसके बाद प्रक्षेप देना चाहिये, और घड़े का मुख ढक कर सन्धियां बन्द कर देनी चाहिये।

किण्वदान—आसवादि के घट के नीचे का जो शुष्क द्रव्य है जिसे प्रचुर मद्योद्गम अथवा शीघ्र तैयार होने के लिये दिया जाता है उसे ही **किण्व** कहते हैं। उसे १ घड़े में एक सेर देना चाहिये।

ऋतु—आसवादि के लिये ग्रीष्म ऋतु उत्तम है अन्य ऋतु मध्यम माने जाते हैं। ग्रीष्म में ३ से ७, **शीत** में ७ से १५, २० दिनों में उसके अन्दर एक रासायनिक परिवर्त्तन होता है यही सब द्रव्यों को आसवादि में परिणत करता है। **ग्रीष्म** में यह परिवर्त्तन ७ दिन तक तथा **शीत में** १५, २० दिन तक रहता है। वर्षा में नहीं बनाना चाहिये।

दिनमर्यादा—आसवादि की अलग २ दिनमर्यादा है, परन्तु घोल, स्थान, देश, ऋतु, काल और पात्र को भी प्रभाव पड़ता है। प्रायः उष्ण ऋतु में १५ दिन और शीत ऋतु में एक मास समय लगता है, इसलिये ऋतु के अनुसार दिनमर्यादा मानना चाहिये अन्यथा आसवारिष्ट दोषयुक्त भी हो जाते हैं।

उत्सेचनक्रिया—जब रासायनिक परिवर्त्तन आरम्भ होता है उसी समय यह क्रिया भी प्रारम्भ हो जाती है और इसी क्रिया से क्रमतः **कार्बोलिक गैस** होता है और आसवीय घोल मद्य में परिणत होने योग्य होता है। इसी काल में आसवादि ठीक २ बनता या विगड़ता है। इस अवस्था में यदि शैत्य-स्पर्श हो जाय तो पुनः द्विगुण या त्रिगुण समय लगता है। जैसे प्रारम्भ होते ही सन्धि-लेप में एक छिद्र करदे वाष्प बाहर निकलता रहे। इसके नहीं निकलने से आसव अम्ल होकर **शुक्त** के रूप में हो जावेगा। इसके ज्ञान के लिये घट में कान सटा कर शब्द जो घट में होवे—उसे सुने, यदि गैस की उत्पत्ति हो गयी रहेगी तो शब्द सुनाई देने लगेगा। अथवा मुंह खोल कर एक दियासलाई जला कर भीतर करे यदि गैस समाप्त होगया होगा तो दियासलाई नहीं बुझेगी नहीं तो बुझ जावेगी। इस परीक्षा से गैस का ज्ञान हो जावेगा, इसके सिद्ध हो जाने पर (गैस की विशेषता पर) ७ दिनतक मुंह बन्द ही

गुडशुक्तेक्षुशुक्तद्राक्षाशु- गुडाम्बुना सतैलेन कन्दमूलफलैस्तथा ।
क्तानां लक्षणानि— सन्धितं चाम्लतां यातं गुडशुक्तं तदुच्यते ॥ ९ ॥
एवमेवेक्षुशुक्तं स्यान्मृद्वीकासम्भवं तथा ॥ १० ॥

रखना चाहिये इससे **मद्यांश** में बृद्धि होती है । उष्ण ऋतु में ७ दिन के सिवाय ३।४ दिन ही गैस बन्द होने के बाद मुख बन्द रखना चाहिये । इससे अधिक (शीत में ७ दिन या ग्रीष्म में ३।४ दिन) रखने से आसवादि शुक्त में परिणत हो जाता है । पक्वापक्व का ज्ञान और इसी अवस्था को आसवादि की पक्वापक्व अवस्था कहते हैं (गैस के रहते अपक्व और समाप्त होने पर पक्व) ।

गन्धप्रक्षेप—लवङ्ग, इलायची, दालचीनी, केसर आदि गन्धार्थ दिये जाते हैं । इनका प्रक्षेप भी **उत्सेचन क्रिया** की समाप्ति होते ही करना चाहिये । केसर आसवीय घोल में पीस कर देना चाहिये शेष का श्लक्ष्ण चूर्ण ।

पात्र में रखना—जब उपर्युक्त परीक्षा सब हो जावे तब आसवादि को ठीक हुआ समझना चाहिये । आसवादि जब ठीक हो जाते हैं तब प्रवाही, स्वच्छ, स्वादिष्ट, मद्य के गन्ध से युक्त एवं उसमें पड़े हुए द्रव्यों के स्वाद के होते हैं। जब इन गुणों से युक्त हो जाय तब स्वच्छ बोतल को एक पात्र में रख कर और बोतल के मुख पर सींक रख कर उस पर से कपड़ा रखकर धीरे धीरे निकाल कर छोड़े जिसमें वायु न मिले नहीं तो आसवादि का विशेष अंश वायु में विलीन हो जाता है जिससे हीनवीर्यता हो जाती है । तत्पश्चात् बोतल में कड़ी डाट लगा दे । हवा लगने से (बोतल खुला रहने से) बोतल में के आसवादि अम्ल हो जाते हैं । और बोतल में आसवादि स्वच्छ तरल पदार्थ ही रखना चाहिये । घन भाग नहीं रखना चाहिये । यह घन भाग यदि बोतल में रहेगा तो आसवादि 'शुक्त' हो जावेगा ।

सुवर्णमिश्रण—जब अरिष्टादि बोतलों में रख दिये जावें तब सुवर्ण भस्म को उसी में घोल कर यथामान मिला देवे । ग्रन्थान्तर में **स्वर्णमिश्रण** इस प्रकार है—

विशोधितं पावकभागिकं तु स्वर्णं तु सत्काचशरावसंस्थम् ।
सुराप्रदीप्तं विनिधाय चाथ मन्दानलेनेह पचेद्रसज्ञः ॥
शनैः शनैः सन्ततमल्पमल्पं तुर्यांशसोराम्लकमिश्रितं तु ।
क्षिपेद्विशुद्धं लवणाम्लमाराद् यावत् सुवर्णं द्रवतामुपैति ॥
द्रुतं सुवर्णन्तु विलोक्य शुद्धं दिग्भागिकं सिन्धुभवं क्षिपेच्च ।
नारङ्गरङ्गं तु जले विशुष्कं सुवर्णपूर्वं लवणं हरेद्व ॥

लौहादि मिश्रण—लोहादि का भस्म ही ग्रहण करना चाहिये, तथा यह विचार कर लेना चाहिये कि किस द्रव्य में कौन सी धातु के विलीन करने की शक्ति है । त्रिफला में लोह विलीन हो जाता है । पहले लोह को एक पात्र में रख उसमें त्रिफला का जल मिला दो चार दिन रख दे, जब लोह एक दम मिल जाय तब आसवीय घट में छोडे । इसी प्रकार इसका विधान समझे ।

गुडजल, कन्द, मूल और फल तथा कडुवा तेल मिलाकर जो संधान होता है उसे **गुड शुक्त** कहते हैं। इसी प्रकार गुडजल के स्थान में यदि ईख का रस दिया जाय तो उसको **इक्षुशुक्त** और यदि अंगूर का रस दिया जाय तो उसको (१)**द्राक्षाशुक्त** कहते हैं॥ ९-१०॥

तुषाम्बुसौवीरयोर्लक्षणे— **तुषाम्बु सन्धितं ज्ञेयमामैर्विदलितैर्यवैः।**
यवैस्तु निस्तुषः पक्वैः सौवीरं सन्धितं भवेत्॥ ११॥

अपक जौ को दल कर जल के साथ संधान करने से जो खट्टा पदार्थ प्राप्त होता है उसे **तुषाम्बु** कहते हैं। तथा छिलकेहीन जौओं को पकाकर संधित करने से जो खट्टा पदार्थ बनता है उसको **सौवीर** कहते हैं।

विमर्श—सौवीर (२)गेहूँ से भी बनता है॥ ११॥

काञ्जिकसण्डाक्योर्लक्षणे— **कुल्माषधान्यमण्डादि सन्धितं काञ्जिकं विदुः।**
सण्डाकी सन्धिता ज्ञेया मूलकैः सर्षपादिभिः॥ १२॥

कुलथी तथा चावल आदि को पका कर इनके मांड का संधान करने से जो खट्टा पदार्थ बनता है उसको (३)**कांजी** कहते हैं। कतरी मूली, सरसों का शाक प्रभृति में हलदी, राई,

---

मद्योत्पादक—आसवादि में धतकीपुष्प, गुड़, द्राक्षा, शर्करा, खर्जूर, बब्बूलत्वक् ऊष्मा आदि मद्योत्पादन के लिये दिये जाते हैं।

द्राक्षा—इसको धोकर बीजरहित कर पीस ले तब घोल के साथ मिलावे।

कर्पूरादि—कर्पूर, केसर, कस्तूरी आदि में केसर, कस्तूरी आसवादि के प्रस्तुत होने पर उसी में पीस कर यथाभाग बोतलों में डाले और कर्पूर को **मद्यसार** में विलीन कर बोतलों में डाले। इस विषय के लिये पूर्ण अनुभव की आवश्यकता है अतः किसी अनुभवी से इसकी शिक्षा लेनी चाहिये।

योजना—आसवादि को निराहार और आहार के पश्चात् दोनों अवस्थाओं में रोगानुसार दिया जाता है, पर—प्रायः आहारान्त में और समान शुद्ध जल में मिला कर ही दिया जाता है।

(१) कोई २ **मृद्वीका** के स्थान में **मधुना** पाठ कर **द्राक्षाशुक्त** का **मधुशुक्त** बनाते हैं-

यथा—**जम्बीराणां फलरसं पिप्पलीमूलसंयुतम्।**
मधुभाण्डे विनिक्षिप्य धान्यराशौ निधापयेत्। त्र्यहेण तज्जातरसं मधुशुक्तमुदाहृतम्॥

(२) **"निस्तुषः"** से **गेहूँ** का भी बोध होता है क्योंकि सौवीरादिक में गेहूँ का विधान है। जैसे—

सौवीरकं सुवीराम्लं ज्ञेयं गोधूमसम्भवम्॥

तुषाम्बु उपरसादिक शोधन में और सौवीर ओषधिकार्य में व्यवहृत होता है।

(३) धातूपधातु-शोधनार्थ जो कांजी (आरनाल) कहा जाता है उसकी विधि यों है—

तुलामितं षष्टिकतण्डुलं च प्रगृह्य चाग्निं विधिवद् विधाय।

नमक, मिर्च आदि देकर संधित करने से **सण्डाकी** बनती है ॥ १२ ॥

अथासवाः ।

(तत्रादा वुशीरासवो- रक्तपित्तादौ—) **उशीरं बालकं पद्मं काश्मीरीं नीलमुत्पलम् । प्रियङ्गुं पद्मकं लोध्रं मञ्जिष्ठां धन्वयासकम् ॥ १३ ॥**

पाठां किराततिक्तं च न्यग्रोधोदुम्बरं शटीम् । पर्पटं पुण्डरीकं च पटोलं काञ्चनारकम् १४

द्रोणेऽम्भसि क्षिप्तमथ त्रियामास्वमुं प्रक्षेत् पिहितं प्रयत्नात् ॥

ततस्तु कल्कं सकलं निरस्येत् तत्काञ्जिकं कथ्यत आरनालम् ॥

आसवारिष्ट के विषय में उपयोगी ज्ञातव्य विषयः—

आसवारिष्ट संधान में जलादि—स्वच्छ, मधुर, क्रिमिरहित, अपने रूप, रस तथा गन्ध से युक्त होना चाहिये । दुर्गन्धित या दूषित जलाशयादि का न हो ।

क्वाथ्य द्रव्य—नवीन, दोषरहित और सुकुट्टित लेना चाहिये ।

क्वाथ—इसके लिये जलादि मान जिस योग में जितना और जैसे लिखा हो वैसे ही देना चाहिये क्योंकि शास्त्र में इसका नियम स्थिर नहीं है । जैसे—

पुनर्नवाद्यरिष्ट में द्रव्य के ३२ गुना पानी देकर अर्धावशेष का विधान है ।

अभयारिष्ट में २५ गुना पानी देकर चतुर्थांशावशेष का विधान है ।

दन्त्यरिष्ट में १६ गुना पानी देकर चतुर्थांशावशेष का विधान है । इत्यादि २ । कहीं अष्टगुण जल देकर त्रिभागावशेष का विधान है ।

अस्तु जिस योग में जितना जल और जितना शेष लिखा हो उसी नियम से करना चाहिये । परन्तु इतना अवश्य होना चाहिये कि जिसमें जल में औषधि पक जाय और उसका सार आ जाय, कम जल में ऐसा नहीं होगा ।

जैसे लिखा है—**क्वाथ्यद्रव्यस्य बाहुल्यादुदकं स्वल्पमेव चेत् ।**

सम्यक् पाकं न मुञ्चन्ति हीनवीर्यन्तु केवलम् ॥

प्रक्षेपद्रव्य—नवीन, दोषरहित और कपड़े में का छना श्लक्ष्ण चूर्ण कर देना चाहिये और अन्य घोल आदि देने के उपरान्त मिलाना चाहिये ।

गुड़, शर्करा तथा मधु—क्वाथ या अन्य उपयोगी जल में (जो आसवारिष्ट में देने हों) सबसे पहले मिला देना चाहिये । और पूर्ण स्वच्छ कर (जिस में मिलाव-जुलाव कुछ न हो) ग्रहण करना चाहिये ।

पात्र—मिट्टी का नवीन अथवा घृतभाण्ड होना चाहिये । अगर नवीन हो तो पहले धाय का फूल और लोध पीस कर भीतर लेप कर सुखा कर अगर, चन्दन, कर्पूर, जटामांसी, गुग्गुल आदि के धूम से धूपित करले । अगर पात्र पुराना हो अथवा जिसमें एकवार बन चुका हो तो उसे पानी से भरकर एक सेर चूना की कली डालकर आग पर पकावे । ४ घण्टे बाद उतार कर स्वच्छ जल से साफ धोकर काम में लावे । इससे अम्लांश की सम्भावना नहीं रहती । वर्त्तमान समय में तो चीनी मिट्टी और लकड़ी के पात्र भी व्यवहार में लाये जाते हैं ।

जम्बूशाल्मलिनिर्यासं प्रत्येकं पलसम्मितान्। भागान्सुचूर्णितान्कृत्वा द्राक्षायाःपलविंशतिम्
धातकीं षोडशपलां जलद्रोणद्वये क्षिपेत्। शर्करायास्तुलां दत्त्वा क्षौद्रस्यैकतुलां तथा१६
मासकं स्थापयेद्भाण्डे मांसीमरिचधूपिते। उशीरासव इत्येष रक्तपित्तविनाशनः।
पाण्डुकुष्ठप्रमेहार्शःकृमिशोथहरस्तथा ॥ १७ ॥

खस, सुगंधवाला, पद्म, गम्भारी की छाल, नीलोत्पल, फूलप्रियंगु, पद्माख, लोध, मंजीठ, अमलताश, पाठा, चिरायता, बड़ की छाल, गूलर की छाल, कचूर, पित्तपापड़ा, श्वेतकमल, पटोलपत्र, कचनार की छाल, जामुन की छाल तथा मोचरस प्रत्येक एक एक पल ग्रहण करे और सबको कूट लेवे। फिर २० पल (१ सेर) मुनक्के लेकर उनका बीज निकाल सिल पर पीस कर दो द्रोण जल (२५ सेर १० छ०) जल में मिला कर उसमें १६ पल (६४ तो०) धाय का फूल और ऊपर कहा कूटा हुआ चूर्ण मिला देवे। १ तुला शक्कर तथा १ तुला (५ सेर) शहद उसमें मिला मिट्टी का मजबूत पात्र जो जटामांसी तथा मरिच से धूपित हो उसमें रख उसका मुँह बन्दकर उसे एक मास तक रहने दे। फिर निकाल कर स्वच्छ वस्त्र में ठीक ठीक छान कर कांच के बोतलों में भर कर अच्छी तरह मुख बन्दकर रखे। यह **उशीरासव** है। रक्तपित्त, पाण्डु, कुष्ठ, प्रमेह, बवासीर, कृमि, शोथ आदिको यह नाश करता है१३-१७

कुमार्यासवः प्रमेहादौ—**सुपक्वरससंशुद्धं कुमार्याः पत्रमाहरेत्।**
यत्नेन रसमादाय पात्रे पाषाणमृण्मये ॥ १८ ॥
द्रोणे गुडतुलां दत्त्वा घृतभाण्डे निधापयेत्। माक्षिकं पक्वलोहं च तस्मिन्नर्द्धतुलां क्षिपेत्॥
कटुत्रिकं लवङ्गं च चातुर्जातकमेव च। चित्रकं पिप्पलीमूलं विडङ्गं गजपिप्पली ॥२०॥
चविकं हपुषा धान्यं क्रमुकं कटुरोहणी। मुस्ता फलत्रिकं रास्ना देवदारु निशाद्वयम्२१
मूर्वा मधुरसा दन्ती मूलं पुष्करसम्भवम्। बला चातिबला चैव कपिकच्छुस्त्रिकण्टकम्२२
शतपुष्पा हिङ्गुपत्री आकल्लकसुटिङ्गणम्। पुनर्नवाद्वयं लोध्रं धातुमाक्षिकमेव च ॥२३॥
एषां चार्द्धपलं दत्त्वा धातक्यास्तु पलाष्टकम्। पलं चार्द्धपलं चैव पलद्वयमुदाहृतम् ॥२४॥
वपुर्वयःप्रमाणेन बलवर्णाग्निदीपनम्। बृंहणं रोचनं वृष्यं पक्तिशूलनिवारणम् ॥ २५ ॥
अष्टावुदरजान्रोगान्क्षयमुग्रं च नाशयेत्। विंशतिं मेहजान्रोगानुदावर्त्तमपस्मृतिम्॥२६॥
मूत्रकृच्छ्रमपस्मारं शुक्रदोषं तथाऽश्मरीम्। कृमिजं रक्तपित्तं च नाशयेत्तु न संशयः॥२७॥

स्थान—स्वच्छ होना चाहिये जहां उचित वायु तथा ऊष्मा पहुंचे। योग में कहीं पृथ्वी में गाड़ने का विधान है कहीं ऊपर ही रखकर बनाने का, जहां जैसा लिखा हो वैसा करना चाहिये। आर्द्र भूमि में रखने या गाड़ने दोनों में विगड़ जायेगा। जहां आर्द्र भूमि हो वहां ४ हाथ गहरा ३ हाथ चौड़ा गढ़ा खोदकर दो चार दिन छोड़ देना चाहिये। बाद भूसा भरकर उसीमें घड़ा रखना चाहिये। घड़े का मुंह बन्द कर देना चाहिये और योग, तिथि आदि का स्मरण रखना चाहिये। यदि पृथ्वीपर रख कर ही बनाना हो तो स्वच्छ शुष्क स्थान में जहां सूर्यताप (घाम) तथा वायु उचित हो थोड़ा भूसा रखकर घड़ा रक्खे और घड़े को कम्बल या बोरियों से लपेट देवे।

घीकार के सुपक्व पत्तों को लाकर (१)यत्नपूर्वक उसका रस निकाल ले (किंचित् खिन्न कर लेने से रस सरलता से निचोड़ा जाता है। इसके लिये एक पात्र में रख मुख बन्द कर मन्दी आंच में कुछ देर रखो। इसका १ द्रोण (१२ से० १३ छ०) रस को चिकनी हांडी में रख उसमें १ तुला (५ सेर) गुड़, ढाई सेर शहद तथा ढाई सेर पक्व (२)लोह चूर्ण (लोह भस्म) डाल देवे। फिर सोंठ, मरिच, पीपर, लौंग, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेसर, चीतामूल, पिपरामूल, वायविडङ्ग, गजपीपल, चाभ, हवुषा, धनियां, सुपारी, कुटकी, नागरमोथा, हरड़, बेहेड़ा, आँवला, रास्ना, देवदारु, हलदी, दारुहलदी, मूर्वा, मुलेठी, दन्ती की जड़, पोहकरमूल, बरियारे की जड़, अतिबला, केवांच की जड़, गोखरू, सौंफ, हिंगोट, अकरकरा, उटङ्गन के बीज, सफेद और लाल गदहपुरना की जड़, लोध, सोनामाखी धातु. प्रत्येक आधा आधा पल याने दो दो तोले लेकर अच्छी तरह कूट कर मिलावे। फिर ८ पल (३२ तोले) धाय के फूल भी उसी भांड में डाल कर उसके मुख को मुद्रित कर रख देवे। जब देखे कि आसव सिद्ध हो गया तब उसे छान कर बोतलों में भर के रख लेवे। इसकी मात्रा बल तथा उम्र के अनुसार आधा पल, एक पल अथवा दो पल की है। (३)यह बल, वर्ण और अग्नि को बढ़ाता, शरीर को पुष्ट करता, रुचि लाता, रतिशक्ति को बढ़ाता तथा परिणामशूल, आठो उदररोग, दारुण क्षयरोग, बीस प्रमेहरोग, उदावर्त्त, स्मरणशक्ति का ह्रास, मूत्रकृच्छ्र, अपस्मार, वीर्य के दोष, पथरी, क्रिमिरोग तथा रक्तपित्त को निश्चय ही नाश करता है॥ १८–२७॥

पिप्पल्याद्यासवः क्षयादौ—**पिप्पली मरिचं चव्यं हरिद्रा चित्रको घनः॥ २८॥**
विडङ्गं क्रमुको लोध्रः पाठा धात्र्येलवालुकम्। उशीरं चन्दनं कुष्ठं लवङ्गं तगरं तथा २९
मांसी त्वगेलापत्रं च प्रियङ्गुर्नागकेशरम्। एषामर्द्धपलान्भागान्सूक्ष्मचूर्णीकृताञ्शुभान्३०

---

(१) कुमारी के पत्रों को जो पक्व हो लेकर छील कर बीच के तरल अंश को मर्दन कर कपड़े से छान ले, अथवा एक पात्र में बन्द कर संस्वेदित कर रस निचोड़े इस कार्य में मिट्टी का पात्र ग्रहण करना चाहिये अथवा पत्थर का।

(२) इस योग में लोहभस्म अधिक मात्रे में रहता है जो आसव के भाण्ड में नीचे बैठा रहता है। उसे फेंकना नहीं चाहिये, आसब छान लेने पर भाण्ड में जमे हुए पदार्थ को खूब सुखा कर किसी पात्र में रख कर आग का अङ्गार उस पर रखना चाहिये। जब अन्यान्य ओषधियां उसमें की जल जावें तब धोकर लोह अलग कर इस लोह को त्रिफलादि के क्वाथ से पुनः ५–७ पुट देकर काम में लाना चाहिये।

(३) ग्रन्थान्तर में **कुमारी-आसव** का एक योग है—जिसमें लोह नहीं देकर उसके स्थान में अनेक ओषधियों का क्वाथ देकर सिद्ध किया है। उसमें ४१ सेर मिलित क्वाथ और रस में ४ तुला गुड़ तथा २ तुला धातकीपुष्प दिया गया है। यह आसवारिष्ट की विलक्षण परिभाषा है।

जलद्रोणद्वये क्षिप्त्वा दद्याद् गुडतुलात्रयम् ।
पलानि दश धातक्या द्राक्षा षष्टिपला भवेत् ॥ ३१ ॥
एतान्येकत्र संयोज्य मृद्भाण्डे च विनिक्षिपेत् । ज्ञात्वाऽऽगतरसं सर्वं पाययेदग्न्यपेक्षया३२
क्षयं गुल्मोदरं कार्श्यं ग्रहणीं पाण्डुतां तथा ।
अर्शांसि नाशयेच्छीघ्रं पिप्पल्याद्यासवस्त्वयम् ॥ ३३ ॥

पीपर, कालीमिर्च, चाभ, हलदी, चित्रक, नागरमोथा, वायविडङ्ग, सुपारी, लोध, पाठा, आंवला, एलुवा, खस, श्वेतचन्दन, कूट, लौंग, तगर, जटामांसी, दालचीनी, इलायची, तेजपात, फूलप्रियंगु, नागकेसर, प्रत्येक का अर्धपल (२ तोला) लेकर कूट पीस कर छान ले। फिर सब चूर्ण को दो द्रोण जल (२५ सेर १० छ०) में मिला उसमें ३ तुला (१५ सेर) गुड़ मिला देवे तथा धायका फूल १० पल (आध सेर) उसमें डाल देवे। फिर ६० पल (३ सेर) वीज निकाले मुनक्के पीसकर उसमें मिला देवे एवं मुख वन्द कर रख छोड़े। जब देखे कि आसव हो गया और उसमें सब का रस आ गया तब उसको छान कर बोतलों में चुस्त काग लगा कर रख देवे। इसे अग्नि आदि का विचार कर ठीक मात्रा में पीवे। क्षयरोग, गुल्म, उदररोग, पतलापन, ग्रहणी, पीलिया, बवासीर आदि को यह **पिप्पल्याद्यासव** शीघ्र ही नष्ट करता है ॥ २८–३३ ॥

लोहासवः पाण्ड्वादौ–**लोहचूर्णं त्रिकटुकं त्रिफलां च यवानिकाम् ।**
विडङ्गं मुस्तकं चित्रं चतुःसङ्ख्यापलं पृथक् ॥ ३४ ॥
धातकीकुसुमानां तु प्रक्षिपेत्पलविंशतिम् । चूर्णीकृत्य ततः क्षौद्रं चतुःषष्टिपलं क्षिपेत्३५
दद्याद् गुडतुलां तत्र जलद्रोणद्वयं तथा । घृतभाण्डे विनिक्षिप्य निदध्यान्मासमात्रकम्३६
लोहासवममुं मर्त्यः पिबेद्वह्निकरं परम् । पाण्डुश्वयथुगुल्मानि जठराण्यर्शसां रुजम् ३७
कुष्ठं प्लीहामयं कण्डूं कासं श्वासं भगन्दरम् । अरोचकं च ग्रहणीं हृद्रोगं च विनाशयेत्३८

लोह का चूर्ण, सोंठ, मरिच, पीपर, हरड़, बेहेड़ा, आँवला, अजवायन, वायविड़ङ्ग, नागरमोथा तथा चीतामूल प्रत्येक चार चार पल (१६ तोले) तथा धाय के फूल २० पल (१ सेर) लेकर चूर्ण कर डाले और दो द्रोण (२५ सेर १० छ०) जल में डाल कर उसमें फिर ६४ पल शहद तथा १ तुला गुड़ मिला देवे। तब सबको घृतभाण्ड में रखकर एक मास तक पड़ा रहने दे। फिर निकाल कर छान लेवे। इस **लोहासव** को मनुष्य पीवे। यह अग्नि की खूब वृद्धि कराता है। पाण्डु, सूजन, गुलम, उदररोग, बवासीर, कोढ़, प्लीहा, खाज, कास, श्वास, भगन्दर, अरुचि, ग्रहणी तथा हृद्रोग को नाश करता है ॥ ३४–३८ ॥

अथारिष्टाः ।

तत्रादौ मृद्वीकाऽरिष्टोऽ-र्शः प्रभृतिरोगेषु— **(मृद्वीकायाः पलशतं चतुर्द्रोणेऽम्भसः पचेत् ।**
द्रोणशेषे सुशीते च पूते तस्मिन्प्रदापयेत् ॥ ३९ ॥
तुले द्वे क्षौद्रखण्डाभ्यां धातक्याः प्रस्थमेव च ।
कङ्कोलकं लवङ्गं च फलं जात्यास्तथैव च ॥ ४० ॥

**लांशकं च मरिचत्वगेलापत्रकेसराः । पिप्पली चित्रकं चव्यं पिप्पलीमूलरेणुके ॥४१॥
घृतभाण्डे विनिक्षिप्य चन्दनागरुधूपिते । कर्पूरवासितो ह्येष ग्रहण्या दीपनः परः॥४२॥
अर्शसां नाशने श्रेष्ठ उदावर्त्तस्य गुल्मनुत् । जठरक्रिमिकुष्ठानि व्रणास्तु विविधास्तथा॥
अक्षिरोगशिरोरोगगलरोगांश्च नाशयेत् ।) ॥ ४३ ॥**

मुनक्के १०० पल (५ सेर) लेकर ४ द्रोण (१ मन ११ सेर ३ छ०) जल देकर पाक करे। जब चौथाई मात्र शेष रहे तब उतार कर छान लेवे एवं ठंडा होने पर उसमें १ तुला (५ सेर) शहद एवं १ तुला खांड और १ प्रस्थ (६४ तोले) धाय के फूल मिला देवे । फिर शीतलचीनी, लौंग, जायफल, कालीमिर्च, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेसर, पीपर, चीतामूल, चाभ, पिपरामूल तथा रेणुका प्रत्येक एक एक पल प्रमाण ले चूर्ण कर उसमें डाल कर सबको सुदृढ़ घृतभाण्ड जो चन्दन तथा अगुरु से धूपित हो रखकर मुख मुद्रा दे संधित करे। जब आसव तैयार हो जाय तो उसको छानकर कर्पूर से सुगंधित कर बोतलों में भरकर मुख बन्दकर रख देवे । यह ग्रहणी याने पाचकाग्नि को बढ़ाने में उत्तम है तथा बवासीर नाश करने में श्रेष्ठ है । उदावर्त्त, गुल्म, उदररोग, क्रिमिरोग, कोढ़, नाना प्रकार के व्रण, आँख के रोग, सिर के रोग तथा गले के रोगों को यह नाश करता है ।

विमर्श—चार द्रोण जल का एक द्रोण शेष रखने से द्रव बहुत कम होता है, इसलिये इसमें द्रवद्वैगुण्य से ८ द्रोण जल दे २ द्रोण शेष रखने से उत्तम आसव बनता है । क्वाथ के स्थान में यदि ताजे अंगूरों का रस लिया जाय तो परमोत्तम **आसव** (१)बनता है ॥३९–४३॥

कुटजारिष्टो ज्वरादौ—**तुलां कुटजमूलस्य मृद्वीकाऽर्द्धतुलां तथा ।
मधूकपुष्पकाश्मर्यो भागान्दशपलोन्मितान् ॥ ४४ ॥
चतुर्द्रोणेऽम्भसः पक्त्वा क्वाथे द्रोणावशेषिते ।
धातक्या विंशतिपलं गुडस्य च तुलां क्षिपेत् ॥ ४५ ॥
मासमात्रं स्थितो भाण्डे कुटजारिष्टसञ्ज्ञितः। ज्वरान्प्रशमयेत्सर्वान्कुर्यात्तीक्ष्णं धनञ्जयम्४६**

कूड़े की जड़ की छाल १ तुला (५ सेर), मुनक्के २॥ सेर, महुए के फूल १० पल (आधसेर) तथा गंभारी का फल १० पल ले एकत्र सबको ४ द्रोण जल में पकावे । एक द्रोण शेष रहने पर उतार कर छान लेवे । ठंडा होने पर उसमें २० पल (१ सेर) धाय के फूल एवं गुड़ १ तुला डालकर उचित भाण्ड में संधित कर रख देवे । एक मास में जब संधान ठीक हो जाय तब निकाल कर छान लेवे । यह **कुटजारिष्ट** है । यह (२)सब प्रकार के ज्वरों को शांत करता तथा अग्नि को तीक्ष्ण करता है ।

विमर्श—इसके सिवाय पक्वातिसार तथा ग्रहणी में भी यह गुण करता है ॥ ४४–४६ ॥

---

(१) यह बहुत लाभदायक है, बालक से बृद्ध तक सभी के व्यवहार में आता है ।

(२) इसका व्यवहार पुरातन ज्वर, पक्वातिसार ग्रहणी तथा अविच्छेद ज्वर में विशेष होता है ।

विडङ्गारिष्टो विद्रध्यादौ-विडङ्गं ग्रन्थिकं रास्ना कुटजत्वक्फलानि च ॥ ४७ ॥
पाठलबालुकं धात्री भागान्पञ्चपलान्पृथक् ।
अष्टद्रोणेऽम्भसः पक्त्वा कुर्याद् द्रोणावशेषितम् ॥ ४८ ॥
पूते शीते क्षिपेत्तत्र क्षौद्रं पलशतत्रयम् । धातकीं विंशतिपलां त्रिजातं द्विपलं तथा ४९
प्रियङ्गुकाञ्चनाराणां सलोध्राणां पलं पलम् । व्योषस्य च पलान्यष्टौ चूर्णीकृत्य प्रदापयेत् ५०
घृतभाण्डे विनिक्षिप्य मासमेकं विधारयेत् । ततः पिबेद्यथाऽर्हं तु जयेद्विद्रधिमूर्जितम् ५१
ऊरुस्तम्भाश्मरीमेहान्प्रत्यष्ठीलाभगन्दरान् ।
गण्डमालां हनुस्तम्भं विडङ्गारिष्टसञ्ज्ञितः ॥ ५२ ॥

बायविडंग, पिपरामूल, रास्ना, कूड़े की छाल, इन्द्रजौ, पाठा, एलुवा तथा आँवले प्रत्येक पाँच पल (१ पाव) प्रमाण ले एकत्र आठ द्रोण जल में पकावे। एक द्रोण शेष रहने पर उतार कर छान लेवे। ठंडा होने पर उसमें ३०० पल (१५ सेर) तथा धाय के फूल २० पल (१ सेर) डाल देवे। फिर त्रिजात (दालचीनी, तेजपात, इलायची) दो पल, फूलप्रियंगु, कचनार की छाल तथा लोध एक एक पल, मिलित त्रिकुटा ८ पल, चूर्ण कर उस में डाल कर घृतभाण्ड में रख मुद्रा दे १ मास तक संधित रहने दे। फिर निकाल कर छान लेवे यथाविधि रख लेवे। इसे बल, काल, अग्नि आदि का विचार कर ठीक मात्रा में पीवे तो विद्रधि जो निकल पड़ा हो तो भी शांत हो जाता है। ऊरुस्तम्भ, पथरी, प्रमेह, प्रत्यष्ठीला, भगन्दर, गण्डमाला तथा हनुस्तम्भ को यह **विडङ्गारिष्ट** नष्ट करता है ॥ ४७-५२ ॥

देवदार्वाद्यरिष्टः प्रमेहादौ— तुलाऽर्द्धं देवदारु स्याद्वासा च पलविंशतिः ।
मञ्जिष्ठेन्द्रयवा दन्ती तगरं रजनीद्वयम् ॥ ५३ ॥
रास्ना कृमिघ्नं मुस्तं च शिरीषं खदिरार्जुनौ । भागान्दशपलान्दद्याद्यवान्या वत्सकस्य च
चन्दनस्य गुडूच्याश्च रोहिण्याश्चित्रकस्य च । भागानष्टपलानेतानष्टद्रोणेऽम्भसः पचेत् ५५
द्रोणशेषे कषाये च पूते शीते प्रदापयेत् । धातक्याः षोडशपलं माक्षिकस्य तुलात्रयम् ५६
व्योषस्य द्विपलं दद्यात्त्रिजातस्य चतुष्पलम् । चतुष्पलं प्रियङ्गोश्च द्विपलं नागकेशरम् ५७
सर्वाण्येतानि सञ्चूर्ण्य घृतभाण्डे निधापयेत् । मासादूर्ध्वं पिबेदेनं प्रमेहं हन्ति दुर्जयम् ५८
वातरोगान्ग्रहण्यर्शोमूत्रकृच्छ्राणि नाशयेत् । देवदार्वादिकोऽरिष्टः कण्डूकुष्ठविनाशनः ५९

देवदारु का काष्ठ आधा तुला (२॥ सेर), अड़ूसे के जड़ की छाल २० पल (१ सेर), मजीठ, इन्द्रजौ, दंती की, जड़, तगर, हलदी, दारुहलदी, रास्ना, विडंग, नागरमोथा, सिरस की छाल, खैरसार, अर्जुन वृक्षकी छाल, प्रत्येक १०-१० पल (आध सेर), अजवायन, कूड़े की छाल, श्वेतचन्दन, गुडूची, कुटकी तथा चीतामूल प्रत्येक ८-८ पल लेकर सबको एकत्र ८ द्रोण जल में पकावे। एक द्रोण शेष रहने पर उतार कर छान लेवे। (एक द्रोण द्रव बहुत कम होता है इससे १६ द्रोण जल डाल २ द्रोण शेष रखे तो अच्छा होगा) ठंडा होने पर उसमें धाय के फूल १६ पल तथा ३ तुला (१५ सेर) शहद मिला देवे। फिर त्रिकुटा २ पल, त्रिजात ४ पल, प्रियंगु ४ पल तथा नागकेसर २ पल ले चूर्ण कर उसमें डाल देवे।

भाण्ड में भरकर मुद्रा दे एक मास तक रहने दे। फिर संधित होने पर निकाल कर छान लेवे। (१)यह अरिष्ट कठिन प्रमेह, वातरोग, ग्रहणी, अर्श, मूत्रकृच्छ्र, खाज, कोढ़ आदि को नाश करता है। यह **देवदार्वाद्यरिष्ट** है ॥ ५३–५९ ॥

खदिरारिष्टः कुष्ठादौ—**खदिरस्य तुलाऽर्द्धं तु देवदारु च तत्समम् ।**

वाकुची द्वादशपला दार्वी स्यात्पलविंशतिः ॥ ६० ॥

त्रिफला विंशतिपला ह्यष्टद्रोणेऽम्भसः पचेत्। कषाये द्रोणशेषे च पूते शीते विनिक्षिपेत्६१
तुलाद्वयं माक्षिकस्य तुलैका शर्करा मता। धातक्या विंशतिपलं कङ्कोलं नागकेशरम् ६२
जातीफलं लवङ्गैलात्वक्पत्राणि पृथक्पृथक्।पलोन्मितानि कृष्णाया दद्यात्पलचतुष्टयम्६३
घृतभाण्डे विनिक्षिप्य मासादूर्ध्वं पिबेन्नरः। महाकुष्ठानि हृद्रोगं पाण्डुरोगार्बुदे तथा ६४
गुल्मं ग्रन्थि कृमीन्कासं श्वासं प्लीहोदरं जयेत्। एष वै खदिरारिष्टः सर्वकुष्ठनिवारणः ६५

खैर का सार अर्ध तुला (२॥ सेर), देवदारु २॥ सेर, बाकुची १२ पल, दारुहलदी २० पल तथा मिलित त्रिफला २० पल लेकर सबको कूटकर एकत्र ८ द्रोण जल देकर पकावे। एक द्रोण मात्र शेष रहने पर उतार कर छान लेवे। ठंडा होने पर उसमें शहद दो तुला (१० सेर) तथा चीनी १ तुला (५ सेर) घोल देवे। धाय के फूल २० पल (१ सेर) डाल देवे तथा कबाबचीनी, नागकेसर, जायफल, लौंग, इलायची, दालचीनी तथा तेजपात प्रत्येक एक पल प्रमाण तथा पीपर ४ पल ले चूर्णकर उसमें मिला घृतभाण्ड में रख संधित कर एक महीना तक रख छोड़े। फिर निकाल कर छान बोतल में रख लेवे। सब याने ७ महाकुष्ठ, हृद्रोग, पाण्डुरोग, अर्बुद (रसौली), गुल्म, ग्रन्थि, कृमिरोग, खांसी, श्वास तथा प्लीहावृद्धि को यह अरिष्ट नष्ट करता है। यह **खदिरारिष्ट** सब (१८) कोढों को नाश करने वाला है ॥ ६०–६५ ॥

बब्बूलारिष्टः क्षय-कासादौ— **तुलाद्वयं तु बब्बूल्याश्चतुर्द्रोणे जले पचेत् ।**
द्रोणशेषे रसे शीते गुडस्य त्रितुलां क्षिपेत् ॥ ६६ ॥

धातकीं षोडशपलां कृष्णां च द्विपलां तथा। जातीफलानि कङ्कोलमेलात्वक्पत्रकेशरम्६७
लवङ्गं मरिचं चैव पलिकान्युपकल्पयेत्। मासं भाण्डे स्थितस्त्वेष बब्बूलारिष्टको जयेत्॥
क्षयं कुष्ठमतीसारं प्रमेहश्वासकासकम् ॥ ६८ ॥

बबूल की छाल दो तुला (१० सेर) लेकर ४ द्रोण जल में पकावे। १ द्रोण शेष रहने पर उतार कर छान लेवे। ठंडा होने पर उसमें १ तुला गुड़ तथा १६ पल धाय के फूल डाले और पीपर २ पल, जायफल, शीतलचीनी, इलायची, दालचीनी, तेजपात, नागकेसर, लौंग तथा कालीमिर्च प्रत्येक एक तोला लेकर सबको चूर्ण कर उसमें डाल घृतभाण्ड में रख संधित कर एक माह तक रहने दे। फिर छान कर बोतलों में भर काग लगा रख देवे। यह **बब्बूलारिष्ट** क्षयरोग, कुष्ठ, अतिसार, प्रमेह, श्वास और खांसी को नष्ट करता है ॥६६–६८॥

(१) इसका व्यवहार प्रमेह और कुष्ठ में निराहार और शेष रोगों में भोजनोपरान्त करना चाहिये।

द्राक्षाऽरिष्टः पुष्ट्यादौ-द्राक्षातुलाऽर्द्धं द्विद्रोणे जलस्य विपचेत् सुधीः ।
पादशेषे कषाये च पूते शीते विनिक्षिपेत् ॥ ६९ ॥
गुडस्य द्वितुलां तत्र त्वगेलापत्रकेशरम् । प्रियङ्गुमरिचं कृष्णा विडङ्गं चेति चूर्णयेत् ॥७०॥
पृथक्पलोन्मितैर्भागस्ततो भाण्डे निधापयेत् । समन्ततो घट्टयित्वा पिबेज्जातरसं ततः ॥७१॥
उरःक्षतं क्षयं हन्ति कासश्वासगलामयान् । द्राक्षाऽरिष्टाह्वयः प्रोक्तो बलकृन्मलशोधनः ७२॥

मुनक्के आधा तुला (२॥ सेर) लेकर दो द्रोण (१)जल में पकावे । जब चौथाई मात्र जल शेष रह जावे तब उतार कर छान लेवे । ठंडा होने पर इसमें गुड़ दो तुला (१० सेर) उसमें घोल देवे । फिर दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, नागकेसर, प्रियंगु, काली मिर्च, पीपर तथा वायविडङ्ग प्रत्येक एक पल प्रमाण ले सबको चूर्ण कर उसमें डाल भाण्ड में मुद्रित कर संधित होने तक रख छोड़े । फिर छानकर बोतलों में भर काग लगाकर रख लेवे । इसके पीने से उरःक्षत (सील), क्षयरोग, खाँसी, श्वास, गले के रोग को नाश करता तथा बल बढ़ाता और मलों का शोधन करता है । यह **द्राक्षारिष्ट** है ॥ ६९–७२ ॥

रोहितकारिष्टो गुदज- ग्रहण्यादौ— रोहीतकतुलामेकां चतुर्द्रोणे जले पचेत् ।
पादशेषे रसे शीते पूते पलशतद्वयम् ॥ ७३ ॥
दद्याद् गुडस्य धातक्याः पलषोडशिका मता । पञ्चकोलं त्रिजातं च त्रिफलां च विनिक्षिपेत् ॥
चूर्णयित्वा पलांशेन ततो भाण्डे निधापयेत् । मासादूर्ध्वं च पिबतां गुदजा यान्ति संक्षयम् ७५
ग्रहणीपाण्डुहृद्रोगप्लीहगुल्मोदराणि च । कुष्ठशोफारुचिहरो रोहितारिष्टसञ्ज्ञितः ॥७६॥

रोहड़े की जड़ की छाल १ तुला (५ सेर) लेकर उसे ४ द्रोण जल में पकावे । १ द्रोण शेष रहने पर उतार कर छान लेवे । ठंडा होने पर उसमें २०० पल (१० सेर) गुड़ घोल देवे एवं १६ पल धाय का फूल दे देवे । पिप्पली, पिपरामूल, चाभ, चीतामूल, सोंठ, दालचीनी, तेजपात, इलायची, हरड़, बेहेड़ा, आँवला, प्रत्येक पल प्रमाण ले चूर्ण कर उसमें डाल भाण्ड में रख मुख मुद्रित कर १ मास तक रखे । जब अरिष्ट पक जाय तब निकाल कर छान बोतलों में भर लेवे । इसके पीने से बवासीर, ग्रहणी, पाण्डुरोग, हृद्रोग, प्लीहावृद्धि, गुल्म, उदर रोग, कोढ़, सूजन तथा अरुचि नष्ट हो जाते हैं । यह **रोहितकारिष्ट** है ॥ ७३–७६ ॥

दशमूलारिष्टो वातादौ—(पर्ण्यौ बृहत्यौ गोकण्टो बिल्वोऽग्निमन्थकोऽरलुः ॥ ७७ ॥
पाटला काश्मरी चेति दशमूलमिहोच्यते ।) दशमूलानि कुर्वीत भागैः पञ्चपलः पृथक् ७८
पञ्चविंशतिपलं कुर्याच्चित्रकं पौष्करं तथा । कुर्याद्विंशपलं लोध्रं गुडूची तत्समा भवेत् ७९
पलैः षोडशभिर्धात्री रविसङ्ख्यैर्दुरालभा । खदिरो बीजसारश्च पथ्या चेति पृथक्पलैः ८०
अष्टभिर्गणितः कुष्ठं मञ्जिष्ठा देवदारु च । विडङ्गं मधुकं भार्ङ्गी कपित्थोऽक्षः पुनर्नवा ॥८१॥
चव्यं मांसी प्रियङ्गुश्च सारिवा कृष्णजीरकम् । त्रिवृता रेणुकं रास्ना पिप्पली क्रमुकः शटी ॥

---

(१) इस योग में ८ सेर क्वाथ्य जल में १० सेर गुड़ मिलाना है जो ठीक नहीं होगा अस्तु **द्रवद्वैगुण्य** परिभाषा करनी चाहिये ।

हरिद्रा शतपुष्पा च पद्मकं नागकेशरम् । मुस्तमिन्द्रयवः शुण्ठी जीवकर्षभकौ तथा॥८३॥
मेदा चान्या महामेदा काकोल्यौ ऋद्धिवृद्धिके । कुर्यात्पृथग्द्विपलिकान्पचेदष्टगुणे जले ॥
चतुर्थांशं श्टतं नीत्वा मृद्भाण्डे संनिधापयेत् । चतुःषष्टिपलां द्राक्षां पचेन्नीरे चतुर्गुणे ॥८५
त्रिपादशेषं शीतं च पूर्वक्काथे श्टतं क्षिपेत् । द्वात्रिंशत्पलिकं क्षौद्रं दद्याद् गुडचतुःशतम् ८६
त्रिंशत्पलानि धातक्याः कङ्कोलं जलचन्दनम् । जातीफलं लवङ्गं च त्वगेलापत्रकेशरम् ८७
पिप्पली चेति संचूर्ण्य भागद्विपलिकःपृथक् । शणमात्रां च कस्तूरीं सर्वमेकत्र निक्षिपेत्८८
भूमौ निखातयेद्भाण्डं ततो जातरसं पिबेत् । कतकस्य फलं क्षिप्त्वा रसं निर्मलतां नयेत्८९
ग्रहणीमरुचिं श्वासं कासं गुल्मं भगन्दरम् । वातव्याधिं क्षयं छर्दिं पाण्डुरोगं च कामलाम्
कुष्ठान्यर्शांसि मेहांश्च मन्दाग्निमुदराणि च । शर्करामश्मरीं मूत्रकृच्छ्रं धातुक्षयं जयेत्॥९१॥
कृशानां पुष्टिजननो बन्ध्यानां गर्भदः परः । अरिष्टो दशमूलाख्यस्तेजःशुक्रबलप्रदः ॥९२॥
इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायां मध्यखण्डे आसवारिष्टादिसन्धानकल्पनानामदशमोऽध्यायः ।

शालपर्णी, पृश्निपर्णी, छोटी कटेहली, बड़ी कटेहली, गोखरू, बेल, अग्निमन्थ, अरलु, पाटल, गम्भारी ये दसमूल हैं । इनमें से प्रत्येक का ५-५ पल (१-१ पाव) ग्रहण करे। चीतामूल २५ पल, पोहकरमूल २५ पल, लोध २० पल, गिलोय २० पल, आँवला १६ पल, धमासा १२ पल, खैरसार, विजयसार तथा हरड़ प्रत्येक ८ पल, कूट, मंजीठ, देवदारु, बायविडङ्ग, मुलेठी, भारङ्गी, कैथ, बेहेड़ा, पुनर्नवा, चाभ, जटामांसी, फूलप्रियङ्गु, अनन्तमूल, काला जीरा, निसोथ, रेणुका, रास्ना, पीपर, सुपारी, कचूर, हलदी, सौंफ, पद्माख, नागकेसर, नागरमोथा, इन्द्र-जौ, सोंठ, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि, वृद्धि-प्रत्येक दो दो पल ग्रहण करे। अष्टवर्ग को दवाएं न मिलने से उनकी प्रतिनिधि लेवे । यथायोग सबको कूट कर कुल द्रव्य का आठगुना जल देकर पकावे। चौथाई जल बाकी रहने पर उतार कर छान लेवे । इस काढ़े को एक काफी बड़े मिट्टी के मजबूत हाण्डी में रखे । फिर ६० पल (३ सेर) मुनक्के बीज निकाले लेकर छोटे छोटे टुकड़े कर डाले एवं चतुर्गुण (१२ सेर) जल में उसको पकावे । जब तीन सेर जल जाय और १ सेर शेष रहे तब उतार कर छान लेवे एवं शीत होने पर पूर्वकाढ़ा के साथ मिला देवे। ३२ पल शहद तथा गुड़ ४०० पल (२० सेर) क्वाथ में घोल देवे । फिर धाय के फूल ३० पल, शीतलचीनी, नेत्रबाला, सफेद चन्दन, जायफल, लौंग, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र, नागकेसर, तथा पिप्पली प्रत्येक का चूर्ण दो दो पल तथा कस्तूरी १ शाण (३ मासा) लेकर सबको उस भाण्ड में डाल कर उचित आकार का गढ़ा खोदकर हण्डी को मुद्रित कर उसमें धीरे से रखे तथा ऊपर मिट्टी से ढांक देवे । एक मास या कम ज्यादा समय में जब देखे कि अरिष्ट जातरस हो गया तब बाहर निकाल निर्मली का फल घिस कर उस भाण्ड में डाले । जब घन पदार्थ नीचे सब बैठ जाय तो धीरे से ऊपर के निर्मल भाग को निकाल छान कर बोतलों में भर देवे । इसको ठीक मात्रा में पीने से ग्रहणी, अरुचि, श्वास, खाँसी, गुल्म, भगन्दर, वातरोग,

क्षयरोग, वमन रोग, पीलिया, कामला, कोढ़, अर्श, प्रमेह, मन्दाग्नि, उदररोग, शर्करा (पेशाव में बालू आना), पथरी, मूत्रकृच्छ्र, धातुक्षय-इन रोगों को नष्ट करता है। कृश लोग इसके सेवन से पुष्टिलाभ तथा वांझ सन्तान लाभ करते हैं। यह **दशमूलारिष्ट** तेज, वीर्य और बल देने वाला है।

विमर्श--चूंकि आसवारिष्ट के बनाने में बहुत सावधानी की तथा अनुभव की आवश्यकता है अन्यथा आसवादि खट्टे और बेकाम हो जाते हैं, इस लिये हम कुछ आवश्यकीय बातों का विस्तार पूर्वक वर्णन करते हैं:—

१–**आसवारिष्ट** के लिये जो भी द्रव ले वह स्वच्छ शुद्ध और पवित्र यथोक्त गुण-युक्त और दोषवर्जित हों। इसी प्रकार ओषधि भी प्रक्षेपार्थ या क्वाथार्थ जो लें पहले देखलें कि वे सब अपने अपने गुणसम्पत् से युक्त हैं। गुड़ साफ और पुराना, शक्कर स्वच्छ श्वेत तथा बालुका आदि से रहित एवं शहद शुद्ध हों। बाजारका शहद बिलायती चीनी के चाशनी का बना होता है जो कालान्तर में कुछ खट्टा हो गया रहता है। इस लिये इसके डालने से आसवादि भी खट्टे हो जाते हैं जो कि विदाही पित्तप्रकोपक और ओषधि के लिये अनुपयुक्त हो जाते हैं।

२–पात्रों पर भी विशेष ध्यान देना चाहिये। शास्त्रों में प्रायः मृद्भाण्ड और घृत भाण्ड आदि का निर्देश है। घृतभाण्ड पुराना मजबूत चिकना तथा सूक्ष्म छिद्रों से रहित होने के कारण से उत्तम माना गया है। जिस हाण्डी में अनेक दिन से पानी वगैरह गरम करने का काम लिया जा रहा है वह भी अच्छी होती है। यदि अभाववशतः भाण्ड नवीन ही लेना पड़े तो उसके भीतरी दीवाल को राल को गरम करके पतला सा लेप कर देना चाहिये। आज कल लकड़ी के पीपे तथा चीनी के बर्तन भी इस काम में प्रयुक्त होते हैं। यह भी अच्छा है। जिस पात्र में पहले कभी आसवादि तैयार किये गये हों वे खट्टे रहते हैं अतः उनको गरम पानी तथा कली चूना कुछ डालकर भर देना चाहिये एवं दो तीन दिन वैसे ही रखकर फिर गरम पानी से धो लेना चाहिये जिससे उनका अम्लभाव नष्ट हो जाय। उत्तम तो यह कि आसवादि तैयार होने के बाद पात्र को इसी तरह धोकर रख दे एवं उपयोग करने के पहले फिर से इसी रीति से धो ले।

३–शास्त्र में प्रायः घड़े को जमीन में गाड़ने की आज्ञा है पर कहीं कहीं तथा कोई कोई उसे बाहर भी रख कर बनाते हैं। दोनों विधियों से संधान ठीक तो बनता है पर बात यह है कि गरमी ठीक और बराबर लगे। बाहर रखने से उसमें सर्दी गर्मी का अकस्मात् कम ज्यादा लगने का डर रहता है जिससे या तो बिगड़ ही जाता है अथवा समय में कमी बेशी हो जाती है। यदि बाहर ही रखा जाय तो उसको अच्छी तरह फटे कम्बल, बोरी या कपड़ों से लपेट कर रखना चाहिये तथा घड़े को गिंडुई पर या भूसी बिछा कर उसके ऊपर रखना चाहियें जिससे लुढ़क जाने का डर न रहे। घड़े को ऐसे स्थान में रखे जो सूखा, छायादार तथा सूर्य

ी रोशनी गर्मी और वायु के संचार से युक्त हो। ऐसे स्थान में सरदी गरमी को अकस्मात् टने बढ़ने का डर नहीं होता। यदि जमीन में गाड़ना हो तो उपर्युक्त प्रकार के स्थान में खे गढ़े में गाड़े। हाण्डी में घोल आदि भर कर गढे में रखने की अपेक्षा हांडी को पहले ढ़े में जमा कर पीछे सब चीजें डालना हितकर है। इससे उठाने रखने के समय फूटने का र नहीं रहता।

४–आसवादिक की तैयारी के लिये शास्त्र में प्रायः समय नियत रहता है। किसी का ५, किसी का २० और किसी का एक मास आदि। पर यह समय ऋतुभेद से कम–ज्यादा ोता रहता है। चूंकि मद्य बनने के लिये एक खास परिमाण की गरमी चाहिये। इस वास्ते ीत या वर्षा काल में समय बढ़ तथा ग्रीष्मऋतु में घट जाता है। चैत्र मास में प्रायः आसवादि ठीक समय में और उत्तम बनते हैं, इसी से इस मास का नाम **'मधुमास'** पड़ा है। दि आसवादि बनाते समय शीत पड़ने की सम्भावना हो या शीघ्र बनाना हो तो भाण्ड को मीन में जमाकर उसके चारो ओर ऐसा सूखा गोबर जो खाद बनाने के ढेरी में से लाया या हो जहांकि उसका खाद बनना प्रारंभ हो गया हो भर देवे। यह गोबर ऊष्मा दाकर आसवादि के बनने की क्रिया में सहायता करेगा। यदि गरमी कम लगे तो बहुत ीरे धीरे बनेगा और समय अधिक लगेगा।

५–संधान के थोड़े समय पश्चात् जब उचित मात्रा में गरमी पहुंचती है तो भाण्ड के न्दर मद्य बनना आरम्भ होता है। इस क्रिया के सबब से हाँडी के अन्दर अंगारमल या **ार्बनद्विओषिद् गैस** की उत्पत्ति होती है। यदि यह वायु जरूरत से ज्यादा होजाय तो द्य बनकर वह फिर सिरके में परिणत हो जाता है। इसके लिये घट की ढंपनी हमेशा मिट्टी े नये खपरे या शराव से करे तथा उसके बीचले भाग पर मिट्टी आदि न लीपे। इसमें सूक्ष्म ूक्ष्म छिद्र होते हैं तथा इनसे आवश्यकता से अधिक वायु बाहर निकल जाता है। यदि गढ़े ं हांडी हो तो ऊपर मिट्टी ढीली ढीली दे रखे।

इस गैस के अस्तित्व का पता लगाने की विधि यह है कि–मुख का ढपना धीरे से ोलकर घट के भीतर एक काँच की डंडी को चूने के थिरे पानी में डुबाकर लेजावे। यदि ैस होगा तो डंडे में स्थित पानी दूध सा हो जायगा। अथवा एक दियासलाई जलती हुई अन्दर लेजावे। इस गैस के रहने पर सलाई बुझ जायगी।

गैस के रहने पर फिर मुख की मुद्रा दे दे। ऐसा समय समय पर करता रहे। जब जाने ि अब गैस की उत्पत्ति बन्द हो गयी तो उसके बाद **सर्द ऋतु** में ६–७ दिन तथा **ग्रीष्म में** ३–४ दिन बाद घड़े को निकाल ले। इसके बाद अधिक समय रखने पर मद्य काल में परिणत ोने लगता है। यदि आपका सन्धान उत्तम बना है तो वह उत्तम मद्य गंधयुक्त तथा स्वच्छ और प्रदत्त दवाओं के रस रंग आदि से युक्त होगा। सुबासित करने के लिये लौंग, इलायची आदि गैस के उद्भावन बन्द होने पर डालना चाहिये।

६-हाण्डी को निकालने के बाद साफ सूखे बोतलों को तैयार रखे। बोतल के मुख पर चाड़ी लगाकर उस पर चार तह के पतला कपड़ा डाल देवे। फिर हाण्डी के मुख को खोल किसी कांच या चीनी अथवा मृत्-पात्र से नीचे के घन भाग को बिना हिलाये डुलायें ही ऊपर के स्वच्छ द्रव को निकाल लेवे तथा हांडी को ढंक दे। द्रव को चाड़ी पर डाल कर चाड़ी को काँच की पटरी से या लकड़ी के पटिये से ढक देवे। आसवादि को वायु के सम्पर्क से जहां तक हो सके बचावे। इससे वह हीनवीर्य होता है। बोतल भर जाने पर उसमें कार्क या काँच का डाँट लगाकर वातागम्य या airtight कर देवे। ध्यान रखे बोतल के अन्दर कोई भी घन भाग न जाय। यदि गया हो तो वह दो एक दिन बाद नीचे बैठ जायगा तब फिर नितार कर छान लेना। यदि बोतल के अन्दर घन भाग रहे या बोतल के अन्दर वायु आना जाना करने का जरा भी रास्ता हो तो आसवादिक अम्ल हो जायंगे। इसी असावधानता के ही कारण अधिकांश वैद्यों का आसवादि बिगड़ जाता है एवं वे उसे लालचवश न फेंक कर रोगियों को दे आरोग्य के बदले बीमारी बढ़ाते हैं।

७—कर्पूर, कस्तूरी एवं केशर जिस में डालना हो तो पहले न डालकर जब छन जाय तब थोड़े से आसव अथवा **एलकोहल** में उनको घोलकर यथाविभाग सब बोतलों में डालकर हिला देवे। जिसमें धातु आदि डालना हो उसमें शुद्ध और ऐसे रूप में ले जिससे धातुएँ आसवादि में घुल सकें अन्यथा वे नीचे हाँडी में रह जायंगी और उनका देना न देना बराबर होगा। मुनक्के को धो, बीजरहित कर छोटे छोटे टुकड़े कर या पीस कर घोल में मिलावे।

यह विषय बड़े महत्त्व का है और लिखकर समझाना कठिन काम है तथा यहां स्थानाभाव भी है। इसके लिये Practical शिक्षा आवश्यक है। तो भी हमने आवश्यकीय बातें समझा कर लिख दी हैं, पर हो सके तो गुरु से इनकी विधि एक दफे अवश्य देख लेवे॥७७-९२॥

इति श्रीप्रयागदत्तशर्मायुर्वेदाचार्यकृतायां सुबोधिनीनामिकायां श्रीशार्ङ्गधरभाषाटीकायां मध्यखण्डे आसवारिष्टादिसन्धानकल्पनानामदशमोऽध्यायः समाप्तः ॥ १० ॥

अथ धातुशोधनमारणकल्पनानामा-
एकादशोऽध्यायः।

अथ धातूनां समुदायेन शोधनमारणम्।

तत्रादौ धातूनां संख्या-**स्वर्णताराररताम्राणि नागवङ्गौ च तीक्ष्णकम्।**
नामानि च— **धातवः सप्त विज्ञेयास्ततस्तान् शोधयेद् बुधः ॥ १ ॥**

स्वर्ण, चांदी, पीतल, तांबा, सीसा, रांगा तथा तीक्ष्णलोह ये सात द्रव्य धातुएँ कहलाती हैं। **रसायन शास्त्र को** जानने वाला वैद्य इनका शोधन करे।

विमर्श—शार्ङ्गधर जी ने सप्त धातुओं में **पीतल** का पाठ किया है पर अन्य आचार्य उसी स्थान में **यशद (जस्ता)** का पाठ करते हैं जो अधिक संगत है, क्योंकि **पीतल** स्वयं

ई मौलिक धातु नहीं है वरन मिश्र धातु हैं। संख्यामें भी अन्यत्र आठ (१)लोह का पाठ है।
धातुओं में दो तरह के दोष होते हैं जो शरीर के अन्दर जाने से रोग उत्पन्न करते हैं।
१–निजदोष २–बाह्य या मिश्रण दोष। **निजदोष** यथा–पारा तथा सीसा का विष दोष। **बाह्यदोष** यथा–पारा का नाग, वंग, मल, गिरि, इत्यादि। इन दोषों से धातुओं को मुक्त करना ही शोधन है। भारतवर्ष के प्राचीन रसायनज्ञ इन सब दोषों का अन्वेषण किया और उनके दूर करने की भी विधियाँ आविष्कार कीं पर उन्होने किस किस विधि से उन दोषों को खोजा और किन किन नियमों से उनके दोषों को दूर करने की विधियाँ प्राप्त कीं उनका वर्त्तमान न रहने से आधुनिक भारतीयों को **पाश्चात्त्य विज्ञान** के आगे नतमस्तक होना पड़ता है॥ १॥

धातुशोधनविधिः—**स्वर्णताराराताम्रायःपत्राण्यग्नौ प्रतापयेत्।**
निषिञ्चेत्तप्ततप्तानि तैले तक्रे च काञ्जिके॥ २॥
मूत्रे च कुलत्थानां कषाये च त्रिधा त्रिधा। एवं स्वर्णादिलोहानां विशुद्धिः सम्प्रजायते॥ ३॥

सोना, चांदी, पीतल, ताम्र तथा लोह के कण्टकवेधी पत्रों को कोयलों की आग पर लाल होने तक गरम कर कर उनको तिलतेल, गाय का मठा, कांजी, गोमूत्र तथा कुलथी के काढ़े में प्रत्येक में तीन तीन वार बुझावे। इस तरह इन (२)स्वर्ण आदि धातुओं की शुद्धि हो जाती है यानें ये दोषरहित हो जाते हैं॥ २–३॥

---

(१) ग्रन्थान्तर में धातु आठ माने जाते हैं—
यथा—**"स्वर्णं तारं ताम्रनागं रङ्गं कान्तं च तीक्ष्णकम्।**
मुण्डान्तमष्टधा लोहं कांस्यारं घोषकं त्रिधा। उपलोहं समाख्यातम्" इत्यादि।
कहीं २ धातुओं की स्थिति इस प्रकार है—
"शुद्धं लोहं कनकरजतं भानुलोहाश्मसारम्। पूतीलोहं द्वितयमुदितं नागवङ्गाभिधानम्॥
मिश्रं लोहं त्रितयमुदितं पित्तलं कांस्यवर्त्तम्"॥
किस देवता से किस धातु की उत्पत्ति हुई सो इस प्रकार है—
"शिवस्य तेजः प्रथितो रसेन्द्रो देवीभवं गन्धमथाभ्रकं च।
शुल्वं तु सूर्यस्य सहस्ररश्मेश्चन्द्रस्य रौप्यं परमेश्वरस्य॥
हेमन्तु विष्णोः प्रभवं वदन्ति नागं च नागस्य तु वासुकेश्च।
लोहं यमस्यैव तु कालमूर्त्तेर्वङ्गं च शुक्रस्य पुराविदो बुधाः"॥
समग्र धातुयें लोह कही जाती हैं, **लोह** का अर्थ **आकर्षण करना** है। अर्थात् सब धातुयें पृथ्वी से आकर्षित होती हैं अथवा धातुओं की भस्में शरीर के रोगों को आकर्षित कर नष्ट करती हैं। अस्तु इनका **लोह** नाम ठीक ही है।
(२) सुवर्ण की उत्पत्ति—
"पुरा निजाश्रमस्थानां सप्तर्षीणां जितात्मनाम्।
पत्नीं विलोक्य लावण्यं लक्ष्मीसम्पन्नयौवनाः॥

नागवङ्गयोः शोधन-विधिः— **नागवङ्गौ प्रतप्तौ च गालितौ तौ निषेचयेत् ।**
त्रिधा त्रिधा विशुद्धिः स्यादृविदुग्धेन च त्रिधा ॥ ४ ॥

सीसा और राँगा को पिघला पिघला कर उपर्युक्त तैलादिमें प्रत्येक में तीन तीन बार तथा आक के दूध में भी तीन बार बुझावे तब इनकी शुद्धि होती है ।

विमर्श—नाग और वंग तैल के सिवाय अन्य द्रव्यों में बुझाये जाने से भयंकर शब्द के साथ चारों ओर छितर जाते हैं और शोधनकर्त्ता के मुंह-हाथ आदि में चोट पहुंचाकर घाव पैदा कर देते हैं तथा आंख जाने का भी डर रहता है । इसलिये इन उपद्रवों से बचने के लिये पूरीं सावधानी चाहिये । एक युक्ति यह है कि एक मजबूत पात्र मिट्टी का या अधिक मात्रा में शोधना हो तो मजबूत टीनपाट का लेवे । उसमें तक्रादि भर कर पात्र के मुख को एक ऐसे वजनदार पत्थर से ढांक देवे जिसके ठीक बीच में एक चाड़ी सा छिद्र हो जो नीचे दुअन्नी से बड़ा न हो एवं पत्थर और पात्र के बीच सांस न हो । यदि हो तो कपड़ों के चीथड़ों से बन्द कर दो । **नाग** तथा **वंग** को गला कर इसी छिद्र में से हो कर द्रवों में डालना चाहिये तथा जल्दी से डालकर छिद्र को कलछे से ढांप देना चाहिये । इस विधि से शोधन-कार्य निरापद हो जाता है ॥ ४ ॥

अथ स्वर्णमारणम्—

स्वर्णाच्च द्विगुणं सूतमम्लेन सह मर्दयेत् । तद्गोलकसमं गन्धं निदध्यादधरोत्तरम् ॥५॥
गोलकं च ततो रुन्ध्याच्छरावदृढसम्पुटे । त्रिंशद्वनोपलैर्दद्यात्पुटान्येवं चतुर्दश ॥
निरुत्थं जायते भस्म गन्धो देयः पुनः पुनः ॥ ६ ॥

कन्दर्पदर्पविध्वस्तचेतसो जातवेदसः । पतितं यद्धरापृष्ठे रेतस्तत् स्वर्णतामगात् ॥"

सुवर्ण भेद—

"प्राकृतं सहज वाह्निसम्भूतं खनिजं तथा । रसेन्द्रवेधसञ्जातं स्वर्णं पञ्चविधं मतम् ॥
ब्रह्माण्डं संवृतं येन दुर्लभं प्राकृतं हि तत् । ब्रह्मव्रतं तु सहजं वह्निजं परिकीर्त्तितम् ।
एतत स्वर्णत्रयं दिव्यं वणर्यैच्चांशुभिर्युतम् । धारणादेव तत्कुर्याच्छरीरमजरामरम् ॥
खनिजं खननाज्जातं वेधजं रसवेधतः । तच्चतुर्दशवर्णाढ्यं भक्षितं सर्वरोगजित् ॥"

अशुद्ध स्वर्ण की परीक्षा—

"श्वेताङ्गं कठिनं रूक्षं विवर्णं च समदलम् । दाहे छेदे सितं श्वेतं वर्षे चापि मलं त्यजेत्॥

स्वर्णशोधन की आवश्यकता—

सौख्यं वीर्यं बलं हन्ति नानारोगान् करोति च । अशुद्धममृतं स्वर्णं तस्माच्छुद्धं तु मारयेत्॥

ग्राह्य स्वर्ण के लक्षण—

"दाहे रक्तं सितं छेदे निषेके कुङ्कुमप्रभम् । तारं शुल्वोज्झितं स्निग्धं कोमलं गुरु हेम सत्॥

स्वर्ण का पृथक् शोधन—

"कर्षप्रमाणं तु सुवर्णपत्रं शरावरुद्धं पटुधातुयुक्तम् ।
अङ्गारसंस्थं प्रहरार्द्धमात्रं ध्मातेन तत्स्यान्ननु पूर्णवर्णम् ॥"

(१)सोने के अत्यन्त पत्तले पत्रों को कैंची से काटकर महीन महीन टुकड़े कर लेवे। फिर से दुगुना पारा देकर मजबूत खरल में डाल कर दृढ़ मर्दन करे जब दोनों मिलकर पीठी सी बन जांय तब नीबू के रस से तीन चार घण्टा घोटे फिर उसकी टिकिया बनाकर सुखा लेवे। फिर इस टिकिया के बराबर शुद्ध गन्धक का चूर्ण लेवे और आधा चूर्ण एक सराव में बिछा देवे। उसके ऊपर सोने की पिष्टी को रख कर बाकी आधा गन्धक भी उसके ऊपर बिछा देवे। फिर उसके ऊपर दूसरी सराव ढांक कर दोनों को कपड़-मिट्टी से अच्छी तरह मुद्रित कर देवे और सुखा कर ३० जंगली कण्डों का एक पुट (**कुक्कुटपुट**) देवे। पुटानन्तर निकाल कर पुनः सम गन्धक ले उसी प्रकार कर **कुक्कुटपुट** देवे। इसी तरह प्रतिबार गन्धक देता हुआ कुल १४ पुट देवे तो स्वर्ण की निरुत्थ भस्म तैयार हो जाती है।

विमर्श—निरुत्थ शब्द का अर्थ यह है कि भस्म का फिर से धातुरूप में न आना पर यह परिभाषा सिर्फ **मित्रपञ्चक** के ही द्वारा समझना चाहिये क्योंकि कोई भी भस्म हो आधुनिक रासायनिक विधि से पुनः जीवित हो सकती है। कुछ **भारतीय रसशास्त्रज्ञ** का भी मत है कि स्वर्ण का अत्यन्त मूर्च्छन ही होता है जो निरुत्थ के बराबर ही है पर कुछ अन्य वैद्य उसके निरुत्थ भस्म बनाने का भी दावा करते हैं॥ ५-६॥

स्वर्णमारणे द्वितीयो विधिः—**काञ्चने गालिते नागं षोडशांशेन निक्षिपेत्॥ ७॥**
चूर्णयित्वा तथाऽम्लेन घृष्ट्वा कृत्वा च गोलकम्।गोलकेन समं गन्धं दत्त्वा चैवाधरोत्तरम्॥८
शरावसम्पुटे धृत्वा पुटेत् त्रिंशद्वनोपलैः। एवं सप्तपुटैर्हेम निरुत्थं भस्म जायते॥ ९॥

शोधित स्वर्ण को लेकर **मूषा** में गलावे जब सोना गल जाय तो उसमें सोने के सोलहवां भाग शुद्ध सीसे का चूर्ण भी मिला देवे और उसी अवस्था में ही खरल में डालकर मर्दन

---

(१) सुवर्ण के गुण—
'स्निग्धं मेध्यं विषगदहरं बृंहणं वृष्यमग्र्यं यक्ष्मोन्मादप्रशमनवरं देहरोगप्रमाथि।
मेधाबुद्धिस्मृतिसुखकरं सर्वदोषामयघ्नं रुच्यं दीप्तिप्रशमितरुजं ,स्वादुपाकं सुवर्णम्॥"

स्वर्ण की मात्रा—**समारभ्याष्टमाद् भागाद् रक्तिकाया भिषग्वरः।**
योजयेत्तुर्यभागान्तं मृते स्वर्णे तु कालवित्॥

सुवर्ण भस्म के विशेष गुण—
मृतं सुवर्णं शिशिरं वयःस्थापनमुत्तमम्। स्मृतिप्रदं परञ्चैव त्रिदोषज्वरनाशनम्॥
शिरोदेशे प्रवृद्धान्तु रक्तसञ्चरणक्रियाम्। आत्मघाताभिलाषां च प्राबल्येन समुत्थिताम्॥
हृद्वेपनप्रशमनं मुष्कशोथप्रणाशनम्। अस्थिशोषहरं चैव मूर्च्छायपरिकृन्तनम्॥
कासश्वासप्रशमनं परमोजोविवर्द्धनम्। अतिसारग्रहणिकापाण्ड्वामयनिषूदनम्॥

जब भस्म में चमक मिट जावे, और मृदु तथा लघु (हलकी) मालूम हो तब सेवन करने योग्य समझना चाहिये। तथा दोषानुसार, मधु, मक्खन, मलाई अथवा अन्यान्य योगों का अनुपान देना चाहिये।

करे। जब स्वर्ण चूर्ण सा हो जाय तब नीबू के रस से घोटकर टिकिया बना लेवे। फिर टिकिये के बराबर शुद्ध गन्धक चूर्ण लेकर प्रथम विधि के अनुसार ऊपर नीचे दे सराव को बन्द कर ३० जङ्गली कण्डों के आग का एक पुट देवे। इसी तरह कुल ७ पुट देने से स्वर्ण की निरुत्थ भस्म प्राप्त होती है ॥ ७-९ ॥

तृतीयो विधिः—**काञ्चनाररसैर्घृष्ट्वा समसूतकगन्धयोः।**
कज्जल्या हेमपत्राणि लेपयेत्सममात्रया ॥ १० ॥
काञ्चनारत्वचः कल्को मूषायुग्मं प्रकल्पयेत्।
धृत्वा तत्संपुटे गोलं मृण्मूषासंपुटे च तत् ॥ ११ ॥
निधाय संधिरोधं च कृत्वा संशोष्य गोमयैः। वह्निं खरतरं कुर्यादेवं।दद्यात्पुटत्रयम् ॥
निरुत्थं जायते भस्म सर्वकार्येषु योजयेत् ॥ १२ ॥

पारा और गन्धक सम भाग लेकर निश्चन्द्र कज्जली करे। फिर उसे कचनार की छाल के रस में घोट कर लेप योग्य बना लेवे। सोने का पत्र जितना हो उतना ही यह कज्जली भी लेकर स्वर्णपत्रों पर लेपकर सुखा लेवे। कचनार के छिलके को अत्यन्त महीन पीस कर उस की दो सरावें बना उसके अन्दर इस स्वर्ण पत्र को रखकर बन्दकर देवे, पुनः इस कल्कसंपुट को दो मिट्टी की सरावों के बीच रख कर कपड़ मिट्टी से अच्छी तरह बन्द कर देवे। इस संपुट को खैर के कोयले की तेज अग्नि पर रख कर पुट देवे। इसी प्रकार और दो पुट देने से स्वर्ण भस्म निरुत्थ तथा सब कामों के लायक प्राप्त होती है ॥ १०-१२ ॥

चतुर्थो विधिः—**काञ्चनारप्रकारेण लाङ्गली हन्ति काञ्चनम्।**
ज्वालामुखी यथा हन्यात्तथा हन्ति मनःशिला ॥ १३ ॥

जिस प्रकार कचनार का उपयोग किया गया है ठीक उसी विधि से कचनार के स्थान में कलिहारी अथवा (१)ज्वालामुखी का उपयोग करने से भी स्वर्ण भस्म बनती है तथा मैनसिल के योग से भी सोना मर जाता है ॥ १३ ॥

पञ्चमो विधिः—**शिलासिन्दूरयोश्चूर्णं।समयोरर्कदुग्धकैः ॥ १४ ॥**
सप्तव भावना दद्याच्छोषयेच्च पुनः पुनः।
ततस्तु गालिते हेम्नि कल्कोऽयं दीयते समः ॥ १५ ॥
पुनर्धमेदतितरां यथा कल्को विलीयते। एवं वेलात्रयं दद्यात्कल्कं हेममृतिर्भवेत् ॥१६॥

मैनसिल और सिन्दूर समभाग लेकर उसे आक के दूध की सात भावना देकर सुखा लेवे। फिर शुद्ध सोने को कुल्हड़े में रख कर गलावे। जब सोना गल जाय तब यही मैनशिल-सिन्दूर का भावना दिया हुआ कल्क स्वर्ण के बराबर ही डाल देवे और आग को तेज धमावे जिससे यह कल्क स्वर्ण में विलीन हो जाय। इसके विलीन होते ही **दूसरी बार** फिर उतना

(१) **ज्वालामुखी** जयन्ती को कहते हैं, वह चार प्रकार की होती है। जैसे—
"श्वेता रक्ता तथा पीता कृष्णा ज्वालामुखी भवेत् ॥"

ही कल्क डाल कर पुनः धमावे । फिर **तीसरी बार** भी ऐसा ही करे । इस बार सोने की भस्म बन जायगी ॥ १४–१६ ॥

ो विधिः—**पारावतमलैर्लिम्पेदथवा कुक्कुटोद्भवैः। हेमपत्राणि तेषां च प्रदद्यादधरोत्तरम्**
गन्धचूर्णं समं दत्त्वा शरावयुगसंपुटे । प्रदद्यात्कुक्कुटपुटं पञ्चभिर्गोमयोपलैः ॥ १८ ॥
एवं नवपुटान्दद्याद्दशमं च महापुटम् । त्रिंशद्वनोपलैर्देयं जायते हेमभस्मकम् ॥ १९ ॥

सोने के पतले पत्रों पर कबूतर अथवा मुर्गे के मल का लेप कर सुखा लेवे । फिर उसके सम भाग गन्धक ले सोने के ऊपर नीचे देकर सरावों में बन्द कर पांच जंगली कंडों का एक **कुक्कुट पुट** देवे । इसी प्रकार से नौ पुट देवे । तथा यही दसवां पुट तीस कण्डों का देवे । इस बार सोने की भस्म(१) बन जायगी । ॥ १७–१९ ॥

स्वर्णभस्मगुणाः—**(सुवर्णं च भवेत्स्वादु तिक्तं स्निग्धं हिमं गुरु ।**
बुद्धिविद्यास्मृतिकरं विषहारि रसायनम्)॥ २० ॥

स्वर्ण स्वादु (मधुर), तिक्त, स्निग्ध, हिम तथा भारी एवं बुद्धि, विद्या और स्मृति का देने वाला होता है तथा विषनाशक और रसायन है ॥ २० ॥

रजतमारणे प्रथमो विधिः—

भागकं तालकं मर्द्यं जम्बेनाम्लेन केनचित् । तेन भागत्रयं तारपत्राणि परिलेपयेत्॥२१॥
धृत्वा मूषापुटे रुद्ध्वा पुटेत्त्रिंशद्वनोपलैः । समुद्धृत्य पुनस्तालं दत्त्वा रुद्ध्वा पुटे पचेत्॥
एवं चतुर्दशपुटैस्तारं भस्म प्रजायते ॥ २२ ॥

एक भाग हरताल लेकर उसे जंबीरी नीबू के रस में पीस कर तीन भाग (२)चांदी के

---

(१) भस्मादि–सेवन के सम्बन्ध में ऐसा भी सुना जाता है कि ४० वर्ष की अवस्थाके नीचे नहीं सेवन करना चाहिये, परन्तु यह शास्त्रीय विधान नहीं है । शास्त्र में तो जन्मकाल में ही स्वर्णभस्म खिलाने का विधान है । जैसे—

"अथ कुमारं शीताभिरद्भिराश्वास्य जातकर्म्मणि कृते मधुसर्पिरनन्ताब्राह्मीरसेन सुवर्णचूर्णमङ्गुल्याऽनामिकया लेहयेत्" ।

अस्तु यथाऽवसर रस-भस्मादि का प्रयोग सब अवस्थाओं में बाल-वृद्ध सबको करना चाहिये।

(२) रजत की उत्पत्ति—

"त्रिपुरस्य वधार्थाय निर्निमेषविलोचनः । निरीक्षयामास शिवः क्रोधेन परिपूरितः ॥
अग्निस्तत्कालमपतत्तस्यैकस्माद्विलोचनात् । ततो रुद्रः समभवद्वैश्वानर इव ज्वलन् ॥
द्वितीयादपतन्नेत्रादश्रुबिन्दुस्तु वामकात् । तस्माद्रजतमुत्पन्नमुक्तकर्मसु योजयेत्॥
कृत्रिमं च भवेत्तद्धि वङ्गादिरसयोगतः ॥

रजतभेदाः—
"सहजं खनिसम्भूतं कृत्रिमं च त्रिधा मतम् । रजतं पूर्वपूर्वं हि स्वगुणैरुत्तरोत्तरम् ॥
कृत्रिमं रसवादोत्थं किंवा रामपदोद्भवम् । निष्कल्मषं प्रभाहीनं दाहे छेदे सितं शुभम् ॥
अशुद्धं सर्वथा शोध्यं नागं दत्वा विचक्षणैः ॥"

अत्यन्त पतले पत्रों पर लीप देवे । सूखने पर इन पत्रों को सरावों के संपुट में रखकर तीस जंगली कण्डों का एक पुट दे देवे । शीतल होने पर पुनः तृतीयांश हरताल को नीबू के रस में पीस लेप दे पुनः संपुट में रख एक पुट ३० कण्डों की देवे इसी प्रकार हर वार हरताल का लेप दे देकर कुल चौदह पुट देने से चांदी की भस्म बन जाती है ॥ २१-२२ ॥

द्वितीयो विधिः—**स्नुहीक्षीरेण सम्पिष्टं माक्षिकं तेन लेपयेत् ॥ २३ ॥**
तालकस्य प्रकारेण तारपत्राणि बुद्धिमान् । पुटेच्चतुर्दशपुटैस्तारं भस्म प्रजायते ॥२४॥

उपर्युक्त हरताल की विधि से ही शुद्ध सोनामक्खी को थूहर के दूध में पीस कर चांदी के पत्रों पर लेप करके चौदह पुट देने से चांदी की भस्म(१) बन जाती है ॥ २३-२४ ॥

आर (पित्तल) मार- **अर्कक्षीरेण सम्पिष्टो गन्धकस्तेन लेपयेत् ।**
णविधिः— **समेनारस्य पत्राणि शुद्धान्यम्लद्रवैर्मुहुः ॥ २५ ॥**
ततो मूषापुटे धृत्वा पुटेद्गजपुटेन च । एवं पुटद्वयेनैव भस्मारं भवति ध्रुवम् ।
आरवत्कांस्यमप्येवं भस्मतां याति निश्चितम् ॥ २६ ॥

---

(१) पारद से रजतमारणविधि—
विधाय पिष्टं सूतेन रजतस्याथ मेलयेत् । तालं गन्धं समं पश्चान्मर्दयेन्निम्बुकद्रवैः ॥
द्वित्रिपुटैर्भवेद्भस्म योज्यमेतद्रसादिषु ॥

अशुद्ध रजत के लक्षण—
"आयुः शुक्रं बलं हन्ति तापविड्बन्धरोगकृत् ।
अशुद्धं न मृतं तारं शुद्धं मार्यमतोऽन्यथा ॥

अप्रशस्त रजत के लक्षण—
"दाहे रक्तं च पीतं च कृष्णं रूक्षं लघु स्फुटम् । स्थूलाङ्गं कर्कशाङ्गं च रजतं त्याज्यमष्टधा॥

प्रशस्त रजत के लक्षण—
"घनं स्वच्छं गुरु स्निग्धं दाहे च्छेदे सितं मृदु । शङ्खाभं मसृणं स्फोटरहितं रजतं शुभम्॥

रजत का विशेष शोधन—
"तारं त्रिवारं निक्षिप्तं तले ज्योतिष्मतीभवे ।
अन्यच्च—**"रजतं दोषनिर्मुक्तं किंवा क्षाराम्लपाचितम् ॥"**

रजत के गुण—
"रूप्यं शीतं कषायाम्लं स्वादुपाकरसं सरम् । वयसः स्थापनं स्निग्धं लेखनं वातपित्तजित्॥
प्रमेहादिकरोगांश्च नाशयत्यचिरं ध्रुवम् ॥"
अन्यच्च—**"रौप्यं विपाकमधुरं तुवराम्लसारं शीतं सरं परमलेखनकं च रुच्यम् ।**
स्निग्धं च वातकफजिज्जठराग्निदीपि बल्यं परं स्थिरवयस्करणं च मेध्यम्॥"

रजत की मात्रा—
"रक्तिकायास्तुरीयांशाद्रक्तिकैकमितं परम् । मृतं तारं नियुञ्जीत बलकालाद्यपेक्षया ॥

पीतल के पत्रों को तपा तपाकर नीबू आदि खट्टे द्रव्यों में बारबार (२१ बार) बुझाकर शुद्ध कर लेवे । फिर पीतल के बराबर ही शुद्ध गन्धक लेकर आक के दूध में पीस पीतल के पत्रों पर लेप देवे । फिर उस को मिट्टी की सरावों के बीच रख कपड़मिट्टी करके गजपुट में फूँक देवे । इसी तरह दो पुट देने से पीतल (१)निश्चय ही भस्म बन जाता है । इसी विधि से काँसा(२) भी भस्म बन जाता है ॥ २५–२६ ॥

ताम्रपित्तलकांस्य- **अर्कक्षीरवदाजं स्यात्क्षीरनिर्गुण्डिका तथा ।**
मारणविधिः— **ताम्ररीतिध्वनिवधे समगन्धकयोगतः ॥ २७ ॥**

अर्कक्षीर की तरह बकरी के दूध या निर्गुण्डी के रस में समान भाग गन्धक पीस शुद्ध

---

(१) पीतल के दो भेद होते हैं एक **"रीतिका"** दूसरा **"काकतुण्डी"** ।

पीतल के पत्र को अग्नि में तपा कर कांजी में बुझा देवे, यदि उसका वर्ण बुझाने पर ताम्र की तरह हो तब **"रीतिका"** और कृष्णवर्ण हो जावे तब **"काकतुण्डी"** समझना चाहिये ।

मारणादि क्रिया में **"रीतिका"** उत्तम है ।

रीतिका के गुण—

"रीतिस्तिक्तरसा सूक्ष्मजन्तुघ्नी सास्रपित्तनुत् ।
कृमिकुष्ठहरा योगात्सोष्णवीर्या च शीतला ॥"

प्रशस्त पित्तल के लक्षण—

"गुर्वी मृद्वी च पीतात्मा साराङ्गी ताडनक्षमा ।
सुस्निग्धा मसृणाङ्गी च रीतिरेतादृशी शुभा ॥"

अग्राह्य पित्तल के लक्षण—

'पाण्डुपाती खरा रूक्षा बर्बरी ताडनक्षमा । पूतिगन्धा तथा लघ्वी रीतिर्नेष्टा रसादिषु ॥'

पित्तल के विशेष शोधन—

"तप्त्वा क्षिप्त्वा च निर्गुण्डीरसे श्यामारजोऽन्विते ।
पञ्चवारेण संशुद्धिं रीतिरायाति निश्चितम् ॥"

(२) कांस्यशोधन—

"तप्तं कांस्यं गवां मूत्रे वापितं परिशुद्धयति ।"

कई विद्वानों का मत है कि इसकी भी क्रिया पित्तल की तरह ही होनी चाहिये ।

जैसे—**"कांस्यारघोषपत्राणि तेन कल्केन लेपयेत् ।**
रुद्ध्वा गजपुटे पक्त्वा शुद्धिमायान्ति निश्चितम् ॥
ताम्रवच्च मृतिं तेषां कृत्वा सर्वत्र योजयेत् ॥"

"घोष" को प्रलचित भाषा में "जसद" कहते हैं ।

कांस्य के गुण—

"कांस्यं लघु च तिक्तोष्णं लेखनं दृक्प्रसादनम् ।
कृमिकुष्ठहरं वातपित्तघ्नं दीपनं हितम् ॥"

पत्रों पर लहेस कर **गजपुट** में दो बार फूंकने से तांबा, पीतल और कांसा भस्म हो जाते हैं॥२७॥

ताम्रमारणविधिः— **सूक्ष्माणि ताम्रपत्राणि कृत्वा संस्वेदयेद् बुधः।**
वासरत्रयमम्लेन ततः खल्वे विनिक्षिपेत् ॥ २८ ॥

पादांशं सूतकं दत्त्वा याममम्लेन मर्दयेत्। तत उद्धृत्य पत्राणि लेपयेद् द्विगुणेन च॥२९॥
गन्धकेनाम्लघृष्टेन तस्य कुर्याच्च गोलकम्। ततः पिष्ट्वा च मीनाक्षीं चाङ्गेरीं वा पुनर्नवाम्
तत्कल्केन बहिर्गोलं लेपयेदङ्गुलोन्मितम्। धृत्वा तद्गोलकं भाण्डे शरावेण च रोधयेत्३१
बालुकाभिः प्रपूर्याथ विभूतिलवणाम्बुभिः। दत्त्वा भाण्डमुखे मुद्रां ततश्चुल्ल्यां विपाचयेत्
क्रमवृद्धाग्निना सम्यग्यावद्यामचतुष्टयम्। स्वाङ्गशीतलमुद्धृत्य मर्दयेत्सूरणद्रवैः ॥ ३३ ॥
दिनैकं गोलकं कुर्याद्दर्द्धगन्धेन लेपयेत्। सघृतेन ततो मूषां पुटे गजपुटे पचेत् ॥ ३४ ॥
स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य मृतं ताम्रं शुभं भवेत्। वान्ति भ्रान्ति क्लमं मूर्च्छां न करोति कदा चन३६

(१)ताम्र के सूक्ष्म कण्टकवेधी पत्रों को **दोलायन्त्र** में रख कांजी आदि खट्टे रसों से

---

(१) यद्यपि ऊपर के श्लोक से इसकी शुद्धि हो जाती है—तथापि इसके विष की निवृत्ति के लिये लिखना पड़ता है क्योंकि ताम्र में विष से भी अधिक उपद्रव की सम्भावना है। जैसे कहा है—

"न विषं विषमिच्छन्ति ताम्रमेव महाविषम्। विषस्य चकदोषस्तु शुल्वदोषोऽष्टधा मतः
विषं मूर्च्छा विदाहश्च छर्दिः क्लेदनभेदने। सन्तापश्चारुचिश्चव शुल्वदोषो विषोपमः॥"

अन्यच्च—**"न विषं विषमित्याहुस्ताम्रं तु विषमुच्यते।**
एक एव विषे ताम्रे त्वष्टौ दोषाःप्रकीर्त्तिताः। भ्रमो मूर्च्छा विदाहश्च स्वेदः क्लेदो वमिस्तथा
अरुचिश्चित्तसन्ताप इति दोषा विषोपमाः। तस्माच्छुद्धं तु संग्राह्य ताम्रं रोगप्रशान्तये

ताम्र की उत्पत्ति—**"शुक्रं यत्कार्त्तिकेयस्य पतितं धरणीतले।**
तस्मात्ताम्रं समुद्भूतमिदमाहुः पुराविदः ॥"

ताम्र के दो भेद होते हैं पहला **"म्लेच्छ"** नामका और दूसरा **"नेपाल"** नाम का। जैसे लिखा है—

"म्लेच्छं नेपालकं ताम्रं तयोर्नेपालमुत्तमम्। नेपालादन्यदेशोत्थं शुल्वं म्लेच्छमिति स्मृतम्

म्लेच्छ ताम्र के लक्षण—

सितकृष्णारुणच्छायं वान्तिभेदकरं च यत्। क्षालनाच्च पुनः कृष्णं ताम्रं म्लेच्छमुदाहृतम्॥

नेपाल ताम्र के लक्षण—

"सुस्निग्धं मृदुलं रक्तं विशोधनक्षमं गुरु। त्रिदोषहरणं श्रेष्ठं क्षाराम्लैर्नैति वैकृतिम्॥
तन्नेपालकमित्युक्तं देहलोहविधायकम्। वान्तिभ्रान्तिज्वरहरं क्लेदभेदभ्रमापहम् ॥"

त्याज्य ताम्र के लक्षण—

"पाण्डुरं कृष्णशोणं च लघु स्फुटनसंयुतम्। रूक्षाङ्गं सदलं ताम्रं नेष्यते रसकर्मणि ॥"

ताम्र के शोधन की विशेष विधि—

"गोमूत्रेण पचेद् यामं ताम्रपत्रं दृढाग्निना। शुद्ध्यते नात्र सन्देहो मरणं चाप्यथोच्यते॥"

तीन दिन तक स्वेदित कर निकाल लेवे और धोकर रखे। फिर इन पत्रों को कैंची से काट कर चावल जितने बड़े टुकड़े कर डाले और खरल में डालकर उसमें उससे चौथाई शुद्ध पारद देकर मर्द्दन करे। इस तरह एक पहर भर मर्द्दन करने से पारा ताम्रपत्रों पर चढ़ जाता है। इनको अलग रखकर ताम्र से दुगुना गन्धक ले जम्भीरी नीबू के रस में पीस कर चन्दन सा कर लेवे। फिर अलग रखे हुए ताम्रपत्र को उसमें डालकर अच्छी तरह मिला लेवे और सबका एक गोला बना लेवे। मछेछी, खट्टा चौपतिया अथवा पुनर्नवा किसी एक या तीनों को पीसकर इस गोले के ऊपर अंगुल भर मोटा लेप चढ़ा देवे। इस गोले को फिर एक मजबूत हाण्डी में रख कर एक अनुरूप सराव से ढांक देवे और कण्डों की राख और

अशुद्ध ताम्र के दोष—

"अशुद्धं ताम्रमायुघ्नं कान्तिवीर्यबलापहम्। वान्तिमूर्च्छाभ्रमोत्क्लेदकुष्ठं शूलं करोति तद्॥

अन्य मारणविधि—

"जम्बीररससंपिष्टं रसगन्धकलेपितम्। शुल्वपत्रं शरावस्थं त्रिपुटैर्याति पञ्चताम्॥"

ग्रन्थान्तर से ताम्रमारण—

"सूक्ष्माणि ताम्रपत्राणि पलद्वितयमात्रया। गोमूत्रे स्वदेयेन्नित्यमेकविंशतिवासरम्॥
पुनरम्ले विनिक्षिप्य स्थापयेद्दिनसप्तकम्। सूततुर्य्यांशकं दत्त्वा तत्तुल्यं विडचूर्णकम्॥
पत्राणि खल्वे निक्षिप्य मर्दयेत् सर्वमेव तत्। दिनसप्तप्रमाणेन सर्वतुल्यं च गन्धकम्॥
कज्जलीकृत्य पत्रेषु अध ऊर्ध्वं प्रदापयेत्। हण्डिकायां शरावेण मुद्रयित्वा विधानतः॥
वालुकाभिः प्रपूर्याथ पाचयेत्प्रहरद्वयम्। स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य भक्षयेद्रक्तिकाद्वयम्॥
लवङ्गं पिप्पलीसार्द्धंकफरोगविनाशनम्। श्वासकासहरं ताम्रं वातघ्नं वह्निमान्द्यजित्॥
अत्यन्तकफरोगेषु वासां क्षुद्रां पिबेदनु॥"

ताम्र के गुण—ताम्रं कषायं मधुरं सतिक्तमम्लं च पाके कटु सारकञ्च।
पित्तापहं श्लेष्महरं च शीतं तद्रोपणं स्याल्लघुलेखनं च
पाण्डूदरार्शोज्वरकुष्ठकासश्वासक्षयान्पीनसमम्लपित्तम्।
शोथक्रिमीञ्छूलमपाकरोति प्राहुर्बुधा बृंहणमल्पमेतत्॥"

अन्यच्च—श्वासं कासं क्षयं पाण्डुमग्निमान्द्यमरोचकम्।
गुल्मप्लीहयकृन्मूर्च्छाः शूलं च पक्तिसंज्ञकम्॥
दोषत्रयसमुद्भूतानामयाञ्जयति ध्रुवम्। रोगानुपानसहितं जयेद्धातुगतं ज्वरम्॥'

विशिष्ट गुण—"मृतन्तु ताम्रं शमयत्यवश्यं शाखाश्रितं कोष्ठसमाश्रितं वा।
जत्रूर्ध्वगञ्चापि मलाभिधानं पित्तं कफञ्चापि परं प्रवृद्धम्॥"

अनुपान—"पिप्पलीं मधुना सार्द्धं सर्वरोगेषु योजयेत्॥"

परीक्षा—ताम्र भस्म को दही पर छोड़ना चाहिये यदि नीलिमा दही पर आ जावे तो दोषयुक्त समझ कर पुनः पञ्चामृत में घोट कर पुट देना चाहिये।

नमक पीसकर सन्धें बन्द कर देवे। हाण्डी के बचे हुए खाली स्थान को बालू से भर देवे और हाण्डी के मुख पर भी एक शराव देकर उसी राख नमक के कल्क से मुद्रित कर देवे। इस हाण्डी को फिर चूल्हे के ऊपर रख कर लगातार चार पहर तक मृदु, मध्य और तेज़ आंच यथाक्रम देवे। स्वांग शीतल होने पर हाण्डी के अन्दर से गोले को निकाल लेवे एवं एक दिन जमीकन्द के रस से घोटे व गोला बनावे। फिर ताम्रमान से आधा शुद्ध गन्धक लेकर घृत में पीस उस गोले पर लेप कर देवे एवं सरावों के सम्पुट में बन्द कर **गजपुट** में फूंक देवे। स्वांग-शीतल होने पर निकाल कर चूर्ण कर लेवे एवं कपड़े में छान कर रख लेवे। यह भस्म उत्तम एवं कै, भ्रम, क्लम, मूर्च्छा आदि के दोषों से रहित होगी।

विमर्श—ताम्बा विष से भी बढ़कर उपद्रव करने वाला है अतः इसे खूब बढ़िया तथा अच्छी तरह शोधा हुआ लेना चाहिये। नेपाली तांबा उत्तम होता है। गरम करके नीबू आदि के रसमें बुझाने से जो काला नहीं पड़ता उसीको शुद्ध तांबा जानना चाहिये।

ताम्रभस्म बन जाने पर **पञ्चामृत** में घोंट कर दो बार पुट दे देना अच्छा है। इससे ताम्र अमृततुल्य हो जाता है। बने हुये ताम्रभस्म में किसी प्रकार का स्वाद नहीं होता है ॥ २८-३५ ॥

सीसकमारणे प्रथमो विधिः— **ताम्बूलीरससम्पिष्टशिलालेपात्पुनः पुनः।**
द्वात्रिंशद्भिः पुटैर्नागो निरुत्थो याति भस्मताम् ॥ ३६ ॥

सीसे के (१)पतले पत्रों पर चौथाई भाग शुद्ध मनःशिला, नागरपान के रस से पीस कर लीप देवे। फिर इसे **शरावसम्पुट** में रख कर **गजपुट** में फूँक देवे। इस प्रकार प्रत्येक बार चौथाई भाग मैंनसिल का लेप चढ़ाकर गजपुट में फूकता जाय। कुल बत्तीस पुट देने से सीसे की भस्म बन जाती है जो **निरुत्थ** होती है ॥ ३६ ॥

---

(१) नाग की उत्पत्ति, विवरण—

"दृष्ट्वा भोगिसुतां रम्यां वासुकिर्मुञ्चयेद् यतः। वीर्यं जातस्ततो नागः सर्वरोगापहो नृणाम्॥ द्रुतद्रावं महाभारं छेदे कृष्णं समुज्ज्वलम्। पूतिगन्धि बहिः कृष्णं शुद्धं शीतमतोऽन्यथा॥

नाग के मारण की अनेकों विधियां हैं पर **मनःशिला** से ही मारण करना श्रेष्ठ है इससे नागदोष पूर्ण नष्ट हो जाता है। इसकी तैल-तक्रादि से शुद्धिकर तब भस्म करनी चाहिये। १ सेर **नाग** को १०-१२ सेर ही कण्डे की अग्नि में फूंकना चाहिये। नहीं तो पिघलने का भय है।

अशुद्ध नाग के अवगुण—

"शुद्धिपाकविहीनं तु सीसकं परिशीलितम्। गुल्मं प्रमेहमानाहं श्वयथुं च भगन्दरम्॥ वह्निमान्द्यं त्वंसशोथं बाह्वोर्निश्चेष्टतांतथा। शूलं क्षयादिकान् रोगाञ् जनयत्यविकल्पतः॥"

शुद्ध नाग के गुण—

"अत्युष्णं शीशकं स्निग्धं, तिक्तं वातकफापहम्। प्रमेहतोयदोषघ्नं दीपनं चामवातनुत्॥

द्वितीयो विधिः—**अश्वत्थचिञ्चात्वक्चूर्णं चतुर्थांशेन निक्षिपेत् ।**
मृत्पात्रे द्राविते नागे लोहदर्व्या प्रचालयेत् ॥ ३७ ॥
यामैकेन भवेद्भस्म तत्तुल्यां च मनःशिलाम् । काञ्जिकेन द्वयं पिष्ट्वा पचेद् दृढपुटेन च ३८
स्वाङ्गशीतं पुनः पिष्ट्वा शिलया काञ्जिकेन च । पुनः पुटेच्छरावाभ्यामेवं षष्टिपुटैर्मृतिः ३९

सीसे का चौथाई भाग पीपल वृक्ष के छाल का चूर्ण एवं इतना ही इमली वृक्ष के छाल का चूर्ण तैयार रखे । फिर मिट्टी के पात्र में सीसे को रख कर आग पर गरम करे । जब सीसा गल जाय उसमें थोड़ा थोड़ा कर पीपल के छाल का चूर्ण डालता जाय और लोहे के कलछे से घोटता जाय । पीपल के छाल का चूर्ण खतम होने पर इमली का चूर्ण डाल डाल कर चलावे । इस प्रकार तीन घंटे में सीसा (१)भस्म हो जायगा । इस भस्म को खरल में डाल उसके समान ही शुद्ध मैनसिल मिलावे और काँजी से पीस कर गोला बना लेवे । इस गोले को सम्पुट में रखकर **गजपुट में** फूंक देवे । स्वाङ्गशीतल होने पर भस्म निकाल कर फिर से मैनसिल मिलावे एवं कांजी से पीस गोला बनाकर **गजपुट** में फूंक देवे । इस प्रकार प्रतिबार मैनसिल डालकर कांजी से घोटकर पुट देवे । कुल ६० पुट देने से सीसा मर जाता है याने **निरुत्थ** भस्म बन जाती है ।

विमर्श—सीसा विष है जो यकृत रोग तथा गलगण्ड आदि उत्पन्न करता है । सीसविष को **आर्सेनिक** नाश करता है । मैनसिल **आर्सेनिक** तथा **गन्धपाषाण** का यौगिक है । अतः मैनसिल के योग से मारा हुआ नागभस्म श्रेष्ठ और निरापद है । यों तो मैनसिल के बिना भी नागभस्म बनती है । **नागभस्म** मटिया, काला, पीला, नारंगी, लाल आदि कई रङ्ग की बनती है ॥ ३७–३९ ॥

वङ्गमारणविधिः— **मृत्पात्रे द्राविते वङ्गे चिञ्चाऽश्वत्थत्वचो रजः ॥ ४० ॥**
क्षिप्त्वा तेन चतुर्थांशमयोदर्व्या प्रचालयेत् ।
ततो द्वियाममात्रेण वङ्गभस्म प्रजायते ॥ ४१ ॥
अथ भस्मसमं तालं क्षिप्त्वाऽम्लेन प्रमर्दयेत् । ततो गजपुटे पक्त्वा पुनरम्लेन मर्दयेत् ४२
तालेन दशमांशेन याममेकं ततः पुटेत् । एवं दशपुटैः पक्वो वङ्गस्तु म्रियते ध्रुवम् ॥४३॥

सीसे के ही समान इसमें भी (२)वंग की चौथाई भाग इमली एवं पीपल वृक्षों के छाल

---

(१) नागमारण की अन्य विधि—
"त्रिभिः कुम्भिपुटैर्नागो वासारसविमर्दितः । सशिलो भस्मतामेति तद्रजः सर्वरोगहृत ॥"

(२) वङ्ग भस्म करने की विधि में कड़ाही अग्नि से लाल रहनी चाहिये कम आंच से चूर्ण पूर्णरूप से भस्म न होगा । और लोहे की करछी से खूब रगड़ २ कर चलाना चाहिये । वङ्ग के दो भेद होते हैं, एक का नाम **"मिश्रक"** और दूसरे का **"खुरक"** है । जैसे लिखा है—**"मिश्रकं खुरकं चेति द्विविधं वङ्गमुच्यते ।**
खुरकं तु गुणैः श्रेष्ठं मिश्रकं न रसे हितम् ॥"

का चूर्ण रखे। फिर मिट्टी के पात्र में वंग को गला कर चूर्ण थोड़ा थोड़ा पूर्ववत् डालता जाय तथा लोहे की कलछी से चलाता जाय। दो पहर में इस तरह से रांगा भस्म में परिणत हो जायगा। इस भस्म को खरल में डाल उसका सम भाग शुद्ध बांसपत्री हरिताल मिलावे एवं नीबू के रस से घोटे। सूखा सा होने पर गोला बना लेवे और सुखा कर सरावों के संपुट में

लक्षण—चपलं मृदुलं स्निग्धं द्रुतद्रावञ्च गौरवम्।
निःशब्दं खुरवङ्गं स्याद् मिश्रकं श्यामशुभ्रकम् ॥"

वङ्ग के गुण—"वङ्गो दाहहरः शीतः कफपीडाऽऽमयाञ्जयेत्।
क्रिमीनष्टादशविधान् प्रमेहान्नात्र संशयः ॥"

वङ्ग की अन्य शोधनमारणविधि—

"गोमूत्रे प्रथमं दद्यात् तक्रे दद्याद् द्वितीयकम्। तृतीयं काञ्जिके देयं चतुर्थं कटुतैलके॥
शुभलग्नेन योगेन शोधनं कारयेद्भिषक्। निर्लिप्तं द्रावितं वङ्गं सर्वरोगेषु योजयेत्॥"
चुल्ल्युपरिस्थितं पात्रं पाचयेद् यामकद्वयम्। घर्षणं लोहदण्डेन चूर्णं देयं पुनः पुनः॥
प्रथमं रजनीचूर्णं दीप्यकं च द्वितीयकम्। तृतीयं जीरकं देयं चतुर्थं तिन्तिडीत्वचम्॥
एवं क्रमेण चूर्णेन वङ्गं निश्चन्द्रिकं भवेत्। स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य भस्म चन्द्रसमं सितम्॥"

वंग की मात्रा और अनुपान—

"गुञ्जामात्रं प्रदातव्यं वङ्गभस्म सुभक्षितम्। अनुपानं प्रवक्ष्यामि यथाव्याध्यनुपानतः॥
धात्रीस्वरससंयुक्तं प्रमेहं हन्ति दुस्तरम्। शतावरीरसेनैव मूत्रकृच्छ्रविनाशनम्॥
बहुमूत्रहरं तत्तु पारिभद्ररसेन तु। रजनीचूर्णमधुकं धात्रीफलरसेन तु॥
चतुःप्रकारं प्रदरं नाशयेन्नात्र संशयः। पञ्चतिक्तकषायेण पाययेत्सर्वकुष्ठजित्॥
शर्करामधुसंयुक्तं कूष्माण्डस्य रसेन तु। रक्तपित्तक्षयं कासं श्वासं हन्ति सुदुस्तरम्॥
कण्टकारीरसेनैव पातव्यं पञ्चकासाजत्॥"

वंगसेवन में पथ्य—

"मुद्गं सशर्करं क्षौद्रं जाङ्गलं पिशितं रसम्। उदुम्बरफलं चैव तण्डुलीयकवास्तुकम्॥
रम्भाप्रसूतं चाङ्गेरीमयकं कदलीफलम्। नवनीतं तथा क्षीरमभ्यङ्गस्नानमाचरेत्॥"

वङ्गेश्वर की विधि—

"शुद्धं सूतं शुद्धवङ्गं द्रावयित्वकतश्चरेत्। तालकं तु द्वयोस्तुल्यं शटीद्रावेण मर्दयेत्॥
शुष्कं काचमये पात्रे पचेद्यामचतुष्टयम्। तुर्यांशं तालकं दत्वा पुनर्वारत्रयं पचेत्॥
गुञ्जाऽर्धं वाऽथ गुञ्जकं बलमानेन भक्षयेत्। जयेद्वातं कफश्वासं कुष्ठं कासं भगन्दरम्॥
वातरक्तं क्षयं वाऽपि वह्निमान्द्यं त्रिदोषकम्। नाम्ना वङ्गेश्वरः सूतः सर्वरोगेषु पूजितः॥
पक्षाघातादिवातेषु प्रसूत्यादौ विशेषतः।"

स्वर्णवङ्ग की विधि—

"कर्षत्रयमितं वङ्गं दर्व्यां न्यस्यानले न्यसेत्। विद्रुते तत्समं सूतं द्रुतं तत्र विनिक्षिपेत्॥

बन्द कर लेवे फिर उसे **गजपुट** में रख कर फूंक देवे। स्वांगशीतल होने पर भस्म को संपुट से निकाल कर दसवां भाग हरताल फिर मिलावे और नीबू के रस से घोट कर गोला बना, संपुट में रख **गजपुट** में फूंक देवे। स्वांगशीत होने पर भस्म को पुनः निकाल दशमांश हरताल मिला पूर्ववत् पुट देवे। कुल दस पुट देवे। केवल पहिली बार समान भाग हरताल देवे। बाकी नौवार दसवां भाग। प्रतिवार घुटाई एक एक पहर की होगी। इस प्रकार दसपुट में वंग निश्चय ही मर जाता है। इसका रङ्ग भूरा होगा।

विमर्श—सीसे और रांगे की उपर्युक्त विधियों के लिये मिट्टी के बदले अच्छी लोहे की कढ़ाई भी काम में लाई जाती है क्योंकि मिट्टी का खपर यदि फूट जाय तो सब माल चूल्हे में गिर जायगा और नष्ट होगा।

प्रसङ्गवश हम यहां पर एक ऐसी अनुभूत विधि लिखते हैं जो कम स्थान में कम समय में तथा आसानी से तैयार हो जाता है। पहले हलदी, अजवायन, सफेद जीरा, इमली की छाल तथा पीपल की छाल—इन पांचों का चूर्ण पृथक पृथक रांगे के बराबर बराबर लेकर पांच पात्रों में पास ही रख लीजिये। फिर एक मजबूत मोटे पेंदे की कढ़ाई और काफी चौड़ी तथा करीब गज भर लम्बी मजबूत डंडे वाली कलछी लोहे की लीजिये। भस्म बनाने के समय धूम खूब उठेगा तथा कलछी का डंडा भी खूब गरम हो जायगा इससे डंडा लम्बा तथा लकड़ी के बेंट वाला होना चाहिये। यदि बेंट न हो तो कपड़े लपेट कर रस्सी से मजबूत कस दीजिये। कढ़ाई को चूल्हे पर रख कर नीचे आग तेज कीजिये और रांगे को उसमें डाल दीजिये। जब रांगा पिघल जाय तब हल्दी का चूर्ण मुट्ठी भर उसमें डाल दीजिये और कलछी से खूब घोटिये। घुटाई आदि से अन्त तक ऐसी ही होनी चाहिये अन्यथा बहुत सा रांगा शेष में ज्यों का त्यों बच जायगा। इसी तरह हलदी का चूर्ण डालते जाइये और घोटते रहिये। हलदी के चूर्ण शेष होने पर अजवायन का चूर्ण, उसके बाद जीरे का फिर इमली और पीपल के छाल का चूर्ण भी क्रम से मुट्ठी मुट्ठी डाल कर घोटते जायँ जब सब शेष हो जाय तब कढ़ाई के भस्म को बीच में जमा कर लीजिये और एक मिट्टी का सराव उस पर उलट दीजिये और आग को तेज कर दीजिये। जब भस्म सफेद हो जाय कढ़ाई को उतार लीजिये और भस्म को कपड़े में छान कर रख लीजिये। इसमें पुट आदि देने की जरूरत नहीं, बस एक कढ़ाई, एक कलछी और भट्ठी में ही कुछ समय में भस्म तैयार हो जाती है ॥ ४०–४३ ॥

द्रुतं विनिक्षिप्य खल्वे पेषयेदतियत्नतः। अम्लेन केन चिद्वाऽपि सह सम्मर्दयेत्ततः ॥
विमर्द्य सैन्धवं दत्त्वा बहुशः क्षालयेत्ततः। विशुद्धं गन्धकं चाथ दद्यादीश्वरसम्मितम् ॥
चूलिकालवणं चैव बलितुल्यं विनिक्षिपेत्। सम्पेष्य चातियत्नेन श्लक्ष्णचूर्णं तु कारयेत् ॥
सवस्त्रमृत्तिकालिप्तकाचकूप्यां ततो न्यसेत्। यत्नतः सिकतायन्त्रे चतुर्यामं पचेत्ततः ॥
निर्धूमे जायमाने च काचकूपीमुखे भिषक्। सन्दंशेन गृहीत्वाऽथ कूपीं भूमौ तु विन्यसेत् ॥
काचकूपीं विभिद्याथ कूपिकातलसंस्थितम्। स्वर्णवर्णं स्वर्णवङ्गं भिषग्यत्नः समाहरेत् ॥

लौहमारणे प्रथमो विधिः— शुद्धं लोहभवं चूर्णं पातालगरुडीरसैः ।
मर्दयित्वा पुटेद्वह्नौ दद्यादेवं पुटत्रयम् ॥ ४४ ॥
पुटत्रयं कुमार्या च कुठारच्छिन्निकारसैः ।
पुटषट्कं ततो दद्यादेवं तीक्ष्णमृतिर्भवेत् ॥ ४५ ॥

शुद्ध किया हुआ लोह(१) चूर्ण को पातालगरुडी के रस में घोटकर और टिकिया बनाकर शरावसंपुट में रख **गजपुट** की एक आग देवे। इसीतरह कुल तीन पुट देवे। फिर घीग्वार के रस में घोट और टिकिया बना **गजपुट** में फूके। इसका भी तीन पुट देवे। फिर कुठारिया के

---

(१) लौह की उत्पत्ति—

"देवाः सुरसमाजेन मथ्यमाने महोदधौ । समुत्पन्नं पुरा तस्मिन्नमृतं देवजीवनम् ॥
पीयमानात्सुरैस्तस्मादुत्थिताः क्षुद्रबिन्दवः ।
ज्ञात्वा तान्भूगतान् बिन्दून् योगमासाद्य धूर्जटिः ॥
लौहपाषाणरूपेण कृत्वा तान् वसुधातले । पापरोगाभिभूता ये मानवास्ते भजन्तु तान्
इत्येवं शिवगुप्ता ये सुधाया बिन्दवः परम् । तेषां मया समासेन कथ्यते साधनं स्फुटम्

यद्यपि लौह के १८ भेद हैं परन्तु आठही लौह श्रेष्ठ माने जाते हैं। जैसे—

"सामान्याद् द्विगुणं सारं तस्मादष्टगुणं कलिः। कलेः शतगुणं भद्रं भद्राद्वज्रं सहस्रधा ॥
वज्रात् षष्टिगुणं पाण्डिनिरिवाद्दशभिर्गुणैः।ततः कोटिगुणं तस्मादयसः कान्तकं मतम् ॥

इन लौहों का लक्षण—

"क्षमाभृच्छिखराकारलिङ्गान्येवाम्लिते सति । दृश्यन्ते यत्र सूक्ष्माणि सारञ्च तदुदाहृतम्
यत्र कृष्णायसे विशललक्षणानि सितानि च पल्लवाल्पकृतीन्याहुस्तद्बुधाः कृष्णवज्रकम्॥
यत्र कृष्णतरा भूमिर्वर्त्तुलाङ्गानि सर्वशः । रेखा स्याद्धेमवर्णा च तत्पिण्डी च विधीयते ॥
कलिस्तरसमावर्त्तो यदुक्तं च विचक्षणैः । किञ्चित्तत्स्थे जले क्षिप्तं तैलबिन्दुर्न सर्पति॥
अपि केनापि कालेन निर्मलत्वं न मुञ्चति । भ्रश्यते यन्न कालेन निर्द्रवं तदयो मतम् ॥
येन पर्वतसारेण भिद्यन्ते शुष्ककाष्ठवत् । अन्यानि गिरिसाराणि तत्तीक्ष्णं कान्तमुच्यते ॥

कान्तलौह का विशेष लक्षण—

"पात्र यस्मिन् प्रविशति जले तैलबिन्दुर्निषिक्तो-
हिङ्गुर्गन्धं विसृजति निजं तिक्ततां निम्बकल्कः ॥
पाके दुग्धं भवति शिखराकारकं नैति भूमौ
कान्तं लोहं भवति तदिदं लक्षणोक्तं न चान्यत् ॥"

इन लौहों में **कान्त लौह** ही श्रेष्ठ कहा गया है। जैसे—

"किट्टाद्दशगुणं मुण्डं मुण्डात्तीक्ष्णं शतोन्मितम् ।
तीक्ष्णाल्लक्षगुणं कान्तं भक्षणात्कुरुते गुणम् ॥
तस्मात् कान्तं सदा सेव्यं जरामृत्युहरं नृणाम् ॥"

